प्रकाशक,
गोविन्दराम हासानन्द
२० कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता ।

पुस्तक मिलनेका पता—
(१) गोविन्दराम हासानन्द
"वैदिक पुस्तकालय"
२० नं० कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता ।
(२) महाशय राजपाल, आर्य्य पुस्तकालय,
सरस्वती आश्रम लाहौर ।
(३) "आर्य बुक डिपो" नई सड़क देहली ।
तथा सब आर्य पुस्तक विक्रेताओंके यहां ।

प्रिंटर
गोविन्दराम हासानन्द
"वैदिक प्रेस"
२० कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता ।

मुख्य घटनाओंकी सूची

	पृष्ठ
श्रीदयानन्दजीके जन्म समय, देश दशाका दिग्दर्शन	२
शिवरात्रिमें प्रबोध भास्करका उदय	८
भगिनीकी मृत्युसे विवेकका उदय	१२
अनुराग रज्जु आजन्मके लिये टूट गया	१३
ब्रह्मचर्यदीक्षा और शुद्धचैतन्य नाम	२०
पिता पुत्रका अन्तिम मिलाप	२३
पूर्णानन्दजीसे संन्यास ग्रहण और दयानन्द सरस्वती नाम	२७
दो सन्तोंने श्रीदयानन्दजीको निहाल कर दिया	२९
हिमालयकी यात्रा और टिहरीमें शाक्तलीला	३१
तुङ्गनाथकी उतराई	३५
ओखी मठके महन्तका प्रलोभन पाश	३७
हिमालयका हेम्नीभाग और अलखनन्दा नदी	३८
नन्दी वृषभ और स्वामी दयानन्द	४५
नर्मदा नदीकी संकटसंकुल यात्रा	४६
श्रीविरजानन्दजी दण्डीका परिचय	५१
महाराजकी गुरुभक्ति	५६
विस्मृत पाठ स्मरण करना	६०
गुरु ताड़नामें भी विनय प्रदर्शन	६१
आदर्श शिष्यकी आदर्श दक्षिणा	६८
परमकर्मयोगीका कार्यक्षेत्रमें अवतरण	७०
शैव वैष्णव शास्त्र समरमें दयानन्द वीर	८१
पुष्करके महामेलेमें प्रचार और सुधार	८२
ईसाइयोंसे सम्वाद	८८
दो महात्माओंकी परीक्षा	९०
गुरुराजके चरणोंका अन्तिम स्पर्श	९६
वासनाजालको जीतनेका उपाय	९६
हरिद्वारके पर्वमें अकर्मण्यताका चित्र	१००
मैं मनुष्योंको बन्धवाने नहीं आया किन्तु छुड़वाने आया हूं।	११२
राजपूतोंके यज्ञोपवीत	११६
मैं यहांसे तब उठूंगा जब स्वामीजीके हाथसे भोग लगवा लूंगा	११८
बुलन्द शहरके राज कर्मचारी	१२१
माघमासकी पछवा पवन	१२४
आपको मिथ्याकी प्रतीति कैसे हो गई	१२६
एक जाटका मोटा सोटा	१३६
कर्णसिंहकी कृपाणके दो टुकड़े	१४०
झूठेके घर तक पहुंचना	१४४
प्रजा प्रेमका नया बखेड़ा	१४६
गङ्गातीरके दयानन्द	१५१
वे बाहर नहीं आये	१५८
महाराजमें क्षमा अपार थी	१६८
ब्रह्मानन्दकी प्रकृतिसे उपद्रव	१७०
गङ्गापुत्रकापाठ और उसका फल	१७८
काशीयान	१८१
श्रीज्योतिःस्वरूपजीका सहमत हो जाना	१८२
बलदेव! कुछ भी चिन्ता न कीजिए	१८८

	पृष्ठांक
काशीके सारे सेनापतियोंके सामने अकेला संन्यासी	१६१
जलतलमें पद्मासन	२०१
हुङ्कारनाद	२०२
दयानन्द दयालुकी दया	२०५
छोटूगिरका छोटापन	२०८
जगद्गुरुमें अगाध अनुराग	२१४
कर्णसिंहका दुबारातिबारा कोप	२२०
ऊधोसिंहजीको उपदेश	२४२
महाराजकी सुनियमता	२४३
मिष्टान्नमें विष	२५३
स्मरण रखिये अब भी मैं मारा नहीं जाऊंगा	२५६
भक्ति भावके भूरिभारसे नम्र ब्रह्मचारीजी	२६२
प्रत्येक आर्यको आर्यमर्यादाका पालन करना चाहिये	२६८
मैं आपको आपबीती सुनाता हूँ	२६८
अभूत पूर्व सभा	२६४

	पृष्ठांक
पर्णकुटीमें आग	३११
नियम निर्माण	३१५
गुरु गद्दीका मठ	३१७
शिवपुराणकी समालोचना	३२६
भलाई मनुष्यको कितना कोमल बना देती है	३५०
राष्ट्र भाषाके प्रथम प्रचारक	३६३
चाहे चक्रवर्त्ती राजाभी अप्रसन्न क्यों न हो जाय	४०६
पादरी स्काटसे सम्वाद	४१०
मितव्यय और समयका महत्व	४२१
धर्मवीर शिष्य और कर्मवीर गुरुका मिलाप	४८६
मातृशक्तिके मानकी कथा	४६५
मायाको जीतने वाले मुनि	५२५
जगन्नाथका घोर विश्वासघात	५५८
भक्त लक्ष्मणकी भक्ति	५६६
निराशामें आशाकी विद्युद्रेखा	५८१

चित्रोंकी सूची।

(१) स्वामी सत्यानन्दजी महाराज	आरम्भमें
(२) योगीराज दयानन्दर्षि (तिरङ्गा)	१
(३) शिवरात्रि जागरण और ऋषिबोध	८
(४) पिताजीसे अन्तिम भेंट	२२
(५) गुरुविरजानन्दजीके समीप विद्याध्ययन	५४
(६) गुरुदक्षिणाका अपूर्व दृश्य	६८
(७) सर्वत्यागी दयानन्दर्षि	१०२
(८) पानमें विष प्रयोग	११२
(९) राव कर्णसिंहके तलवारके दो टुकड़े	१४१
(१०) काशीके सारे सेनापतियोंके सामने अकेला संन्यासी ...	१९२
(११) देहली कैसरे हिन्द महोत्सवपर नेताओंकी अपूर्व सभा ...	२६४
(१२) स्वामीजीके व्याख्यानमें पत्थर रूपी फूलोंकी वर्षा	३२०
(१३) ब्रह्मचर्य बलका प्रदर्शन	३४०
(१४) लार्ड रोबर्टस् और स्वामी दयानन्द	४३६
(१५) अद्वितीय व्याख्याता स्वामी दयानन्द सरस्वती	४८०
(१६) विष देनेवालेको (प्राणरक्षार्थ), धन दे विदा करना ...	५६३
(१७) मृत्युञ्जय दयानन्दर्षि मृत्युशय्यापर	५७६

श्रीमद्दयानन्द-प्रकाश

प्रथम संस्करण सम्बन्धी

निवेदन।

महर्षि दयानन्दके ग्रन्थोंके अध्ययनरूप संघर्षणहीने मेरे अन्तरात्मामें आस्तिक भावकी ज्योतिको प्रकट किया है। विश्वास शिलापर आरूढ़ होनेके समयसे अपने धार्मिक जन्मदाता महापुरुषके प्रति, मेरे हृदयमें गाढ़ अनुरागवृत्ति और अगाध भक्ति अनवच्छिन्नरूपसे चली आई है। इस कारण, आर्य-समाजके धर्मक्षेत्रमें रात्रिंदिवा विचरण करते, जहां कहींसे अद्वितीय दयानन्दके गुणोंका कोई मणि मोती मिल जाता, तो मैं उसे बड़ी सावधानीसे अपनी टिप्पणी पत्रिकाकी पेटीमें छिपाकर सुरक्षित रख लेता। फिर, प्रसङ्गानुसार, अपने भाषणोंमें, व्याख्यानोंमें, कथाओंमें, वार्त्तालापमें बार बार उनका कीर्त्तन करता। इस प्रकार अनेक वर्षों की कार्यतत्परतासे, मेरे पास ऋषिराजके समुज्ज्वल वृत्तान्तोंकी एक रत्नराशि संचित हो गई।

इसके अतिरिक्त, पांच वर्षतक, ऋषि-जीवनकी विशेष सामग्री एकत्र करनेके प्रयोजनसे, मैं ने विशेष पर्य्यटन किया। उस यात्रामें जहां मुझे महाराजके उत्तमोत्तम वृत्त प्राप्त हुए, वहां अतिशय वृद्ध ऋषि-भक्तोंके चित्तादर्शमें-उनकी मनोहर छवि देखनेका भी सौभाग्य उपलब्ध हुआ। जिस समय वयोवृद्ध भक्तजन प्रेमाश्रुओंसे अपने कपोलोंको, आंचलोंको, अपने वक्ष-स्थलोंको सिंचन करते, ऋषिके रहन सहनका, बोलचालका, रीति-नीतिके कर्म-क्रियाका दिनचर्य्याका और आपादमस्तक, मनोमोहिनी मूर्तिका वर्णन करते करते गद्‌गद् हो जाते तब पता लगता कि आर्य्यसमाजका आदर्श-पुरुष कितना महान् है! कितना उत्तम है और कितना पवित्र है।

इस भूरि परिभ्रमणसे, मेरे पास, महाराजके जीवन समाचारोंकी कई टिप्पणी पत्रिकायें हो गईं। मैं चाहता तो यही था कि अभी दो वर्षतक और मनन करूँ परन्तु गत शीतकालमें, मेरी विचार-परम्परामें परिवर्त्तन आ गया। मैं ने निश्चय कर लिया कि आगामी उष्णकालमें, किसी एकान्त प्रदेशमें, बैठकर, अधिक नहीं तो व्याख्यान-माला को माला तो निर्माण कर ही लेनी चाहिये।

मुख्य दो कारणोंसे, मैं ने दो वर्ष पहले लेखनी अवलम्बन की। एक तो सज्जन स्नेही पुनः पुनः प्रेरणा करते थे कि टिप्पणी पत्रिकाओंको पुस्तकाकार कर देना उचित है। इनके खो जानेका भी भय है। आजकल करते कार्य्य रह भी जाया करते हैं।

दूसरे गतवर्षके पौष और फाल्गुनमें मैं ने दो बार काशीकी यात्रा की। वहां, कई दिनोंतक रह कर, स्वर्गीय देवेन्द्रनाथद्वारा संग्रह की हुई ऋषिजीवनकी सामग्रीको भी देखा। उनकी टिप्पणी पत्रि-

काओंको सुना। उनमें कई ऐसी प्रतिकायें थीं जिनके पृष्ठोंके पृष्ठ पढ़े नहीं जाते थे। संकेत समझमें नहीं आते थे। प्रसङ्गोंके मिलानेमें कठिनतासे कामलेनापड़ता था। उनपरसे प्रति उतारनेवाला अटकल और अनुमानसे काम लेता था। स्वर्गीय बाबूकी संगृहीत सामग्रीकी ऐसी अस्तव्यस्त अवस्था देखकर मैंने मन ही मन कहा कि किसीके अधूरे छोड़े कार्य्यकी पीछे ऐसी ही दशा होती है। मुझे अपनी टिप्पणियोंको, यथासम्भव शीघ्र ग्रन्थन कर देना चाहिये।

ऊपर कहे कारणोंसे प्रेरित हो, गत उष्णकालमें, मैंने एक बहुतही विविक्त स्थानमें रहकर इस पुस्तकको लिखा। इसमें आर्य्यपथिक श्रीलेखरामजीकी सामग्रीसे बड़ा भारी भाग लिया है। कई प्रश्नोत्तरों और लेखोंको संक्षिप्तवो करना पड़ा है परन्तु भावोंकी सुरक्षापर पूरा ध्यान रक्खा है। 'भारत सुदशाप्रवर्त्तक' आदि समाचार पत्रोंसे भी कुछ एक अंश लिये गये हैं।

इतनी महर्घताके युगमें, मैं इस ऋषिकथाको मुद्रण न कर सकता यदि लाहौर निवासी पंडित ठाकुरदत्त शर्म्मा, अधिपति अमृतधारा; सुप्रसिद्ध सर्जन रायसाहिब डा० मथुरादासजी, अमृतसरके प्रसिद्ध डा० श्रीयुत सत्यपालजी, श्रीयुत लाला जयदयालजी कपूर और लाला देवीदयालजी कोटनक्का निवासी अपनी उदारतासे मुझे प्रोत्साहित न करते। पंजाबके प्रसिद्ध हिन्दी लेखक श्रीसन्तरामजी बी० ए० ने मेरी लिखी पुस्तककी मुद्रणालयके लिये शुद्ध और स्वच्छ प्रति उतारनेमें प्रभूत परिश्रम किया है। श्री पं० ठाकुरदत्तजीके लघुभ्राता पं० श्रीहीरानन्दजीका मैं हार्दिक धन्यवाद करता हूँ कि तीसरे संस्करण से संशोधनादिका भार अपने ऊपर लेकर वे इस पुस्तकको सुन्दर बनाने में भरसक प्रयत्न करते रहे हैं। इन सज्जनों की सहायतासे आज मैं महर्षिके महत्त्वरूप मणि—मुक्ताओंकी महामूल्य माला आर्यमंडलको अतिशय समादर और सम्मानसे समर्पण करता हूँ।

सम्वत् १९७५ सत्यानन्द।

अवतरणिका

स्वामी दयानन्दजी महाराजके जीवनका मुख्य कार्य्य धर्म्मप्रचार था। वे आर्य्यों के धर्म्मको सर्वोत्तम, सबसे पुरातन और ईश्वर-प्रदत्त मानते थे। यह बात है भी ठीक, क्योंकि आर्य्य धर्म्मसे भिन्न धर्म अपनी आयुकी दृष्टिसे, अपने विचारोंकी दृष्टिसे, अपने कर्मों की दृष्टिसे और अपनी आदर्शकी दृष्टिसे उससे अतीव पीछे हैं। आर्य्य धर्ममें आत्मविचार और ब्रह्म-विज्ञानका ऐसा उत्तम वर्णन किया गया है कि दूसरे धर्म्म उसका स्वरूप अभी तक स्वप्नमें भी नहीं देख सके। आत्मज्ञान ही आर्य्यधर्म्मकी प्रधानताका सूचक है। आत्मज्ञानहीका इसमें महत्व है। आत्म-ज्ञानसे आर्य्यों का पहले उत्कर्ष हुआ था। इस अपकर्ष-कालमें भी ये आत्मज्ञानके ही आश्रयपर अवस्थित हैं। आगामी-कालमें इनकी उत्कर्ष-कला आत्म-ज्ञानहीसे उत्तरोत्तर चमकेगी। आत्मविवेक इनकी निज सम्पत्ति है। इसके साथ इनका आधाराधेय सम्बन्ध है। इस तत्वके पाठ इन्होंने सब जातियोंको पढ़ाये हैं इसमें ये सारे संसारके शिक्षक रहे हैं, और अब भी हैं।

इस आत्म-तत्वके मूल स्रोत वेद हैं। वेदहीसे इस तात्विक ज्ञानका निःसरण हुआ है। इस लिए श्री स्वामीजीकी वेदोंमें अपार भक्ति थी। वे पक्के वेदानुगामी थे। वेद-विश्वासमें जब कोई उनका साथी न बनता तो वे तत्काल उसका संग छोड़ देते। वेद विश्वासको स्थगित कर वे किसीसे भी सन्धि करनेको समुद्यत न थे। इसी अड़चनके आ पड़नेपर वे मुम्बई तथा अहमदाबादके प्रार्थना-समाजियोंके आशा-भंगके भाजन कहलाये। कलकत्तेके प्रेमियोंके, पीछेसे, अप्रीतिपात्र बन गये। उनके लाहौरी सहायकोंने उन्हें बुलाकर पहले सत्कृत किया। उनके व्ययका बोझा अपने ऊपर लिया। परन्तु ज्यों ही वेदविषयमें मत-भेद हुआ, लाहौरी ब्राह्म-गण उनसे इतने रुष्ट हुए कि उनको खान-पानकी सहायता देना भी एकाएक बन्द कर बठे। पर स्वामीजी अपनी धारणासे अँगुलभर भी इधर उधर नहीं हुए।

महाराजका परमात्मदेवमें परम विश्वास था। वे ईश्वरतत्वपर पूरा भरोसा रखते थे। उसी जगदीशको शान्त शरणमें रहते हुए वे विपत्ति-वज्रपातमें भी नहीं घबराते थे। सब सम्प्रदायोंकी, सब मत-मतान्तरोंकी, सारे पंथाई गुरुओंकी और सकल मठधारियोंकी-निधड़कपनसे, तीव्र समालोचना करते थे। उनको सतानेके लिए मताभिमानियोंने खड्ग उठाये, विष तक दिया, परन्तु वे निडर जङ्गलोंमें पड़े रहते, एकाकी घूमते। सहस्रों विरोधियोंमें अकेले खड़े गर्जते। उनका यह बल केवल भुवन-भावन भगवानहीके भरोसे पर था।

महाराज वेद-विश्वासकी भांति ही ईश्वर-विश्वास में भी पक्के थे। जब उनको ज्ञात हुआ कि मैडम ब्लेवस्किकीजी ईश्वरमें विश्वास नहीं रखती हैं, तो वे झट ही थियासोफीकल सभासे अपना सम्बंध भंग करनेपर कटिबद्ध हो गये। उन्होंने अपने पश्चिमी शिष्यों की अपार प्रीतिका कुछ भी ध्यान नहीं किया। वेदाज्ञा और एक ईश्वरकी भक्ति, धर्म्मके ये दो अङ्ग उनके सार्वजनिक थे। इस केन्द्रपर सारी जातियोंको लानेके लिए वे आजीवन सचेष्ट रहे। समाज-संशोधन, समाज सुधार और समाजसंस्कारके बिना किसी पुरानीजातिका सुधारना और सुदिनोंके दर्शन लाभ करना सुगम काम नहीं। स्वामीजी अपने युगके सबसे बड़े समाज-सुधारक और संस्कारक थे। यद्यपि उनके समकालीन अनेक ऐसे सज्जन थे जो रात दिन सुधारकी धुनमें निमग्न रहते थे, परन्तु स्वामीजी उन सबसे अग्रसर थे। इनका कार्य स्थायी था; उत्थापना-मूलक नहीं किन्तु अस्थापनारूप था। वे पुरातन आचारोंको, प्राचीन व्यवहारोंको, पुराने इतिहासको, पुरानी स्मृतियोंको अतीत कालके धर्म्म-कर्म्मको और पूर्व समयकी आर्य सभ्यता तथा मान महत्वको माथेपर त्योरी डाल कर दूर नहीं फेंकते थे। उनसे नाक-मुँह सिकोड़ कर घिना करनेवाले सुधारक नहीं थे। वे प्राचीनताके नामसे दूर भागनेवाले संस्कारक नहीं थे। सच पूछो तो वे प्राचीनताकी दुर्गाके अनन्य प्रेमसे पक्के पूजक थे। आर्य्योंका अतीत काल, उनको सुवर्णमय आचारों और सुवर्णमय विचारोंसे समावृत, सुवर्ण स्वरूप प्रतीत होता था। आर्य्योंकी पुरानी सभ्यताकी अवहेलना वे सहन नहीं कर सकते थे। वे मानते थे कि आर्य्योंकी प्राचीन सभ्यतापर कालके अर्वाचीन चक्रने चंचलतासे चलकर उसे धूलिधूसर कर दिया है। उसके रंग-रूप तकको बदल डाला है। पर क्या हुआ? यह रत्न है और हमारा ही चिन्तामणि रत्न है। हमारी पैतृक सम्पत्ति है। संशोधनके हाथोंके साथ इसे धो धो कर स्वच्छ कर लेना हमारा कर्तव्य कर्म्म है। जी—जीवनसे इसे बचाये रखना हमारा धर्म्म है।

आर्य्यावर्तीय सम्प्रदायोंको, आर्य्योंके प्राचीन तत्त्वको दूसरोंकी दृष्टिमें घटानेवाले समझते थे; उनका निश्चय था कि नवीन मतोंने, महन्तोंने और मठोंने पुरातन कालको महत्तापर मिट्टी डाल दी है। उसकी विशुद्धताको मिश्रित कर दिया है। जब तक मतोंको मिटाया न जाय आर्य्योंमें परम धर्म्मका होना कठिन है।

महाराज सार्वजनिक हितके लिए ही हाथमें तर्कका तीर लेकर खण्डनके भूखण्डमें उतरे थे रोगीके फोड़े-फुन्सियोंका जब तक छेदन न किया जाय उसका स्वस्थ होना दुष्कर है। खेतमेंसे जब तक झाड़ झंखाड़ उखाड़ कर, घास फूस निकाल कर उसका शोधन न किया जाय उसमें खेतीका सुफलित होना असम्भव है। ऐसे ही किसी देश और जातिमेंसे जब तक कुरीतियोंको दूर न किया जाय और उसके आचार-विचारका संशोधन न हो तबतक उसका उन्नतिके उत्तम

सोपानपर पदार्पण करना महाकठिन है। सुधारका काम सर्वप्रिय तो नहीं परन्तु सार्वजनिक हितसे पूर्ण अवश्य हुआ करता है।

खण्डन खड्गका अवलम्बन करते समय श्रीमहाराजके महान् हृदयमें पर-हित परिपूर्ण हो रहा था—इसका परिपुष्ट प्रमाण उनका अपना ही लेख है। स्वामीजी लिखते हैं "यद्यपि आजकल बहुतसे विद्वान् प्रत्येक मतमें पाये जाते हैं, (परन्तु यदि) वे पक्षपात छोड़कर सर्व-तंत्र सिद्धान्तको स्वीकार करें, जो जो बातें सबके अनुकूल हैं और सबमें सत्य हैं उनको ग्रहण करके, और जो बातें एक दूसरेसे विरुद्ध पाई जाती हैं उनको त्याग कर परस्पर प्रीतिसे वर्तें वर्तावें तो जगत्‌का पूर्ण हित हो जाय। विद्वानोंके विरोध हीसे अविद्वानोंमें विरोध बढ़कर विविध दुखोंकी वृद्धि और सुखोंकी हानि होती है। यह हानि स्वार्थी मनुष्योंको प्यारी है परन्तु इसने सर्वसाधारणको दुःख-सागरमें डुबो दिया।

जो सज्जन सार्वजनिक हितको लक्ष्यमें धरकर कार्य्यमें प्रवृत्त होता है उसका विरोध स्वार्थी जन तत्परतासे करने लग जाते हैं। उसके मार्गमें अनेक प्रकारकी विघ्न-बाधायें डालते हैं। परन्तु "सत्यमेव जयति नानृतम्, सत्येन पन्था विततो देवयानः" सर्वदा सत्यका विजय और असत्यका पराजय होता है। सत्यहीसे विद्वानोंका मार्ग विस्तृत हो जाता है। इस दृढ़ निश्चयके अवलम्बनसे आप्त लोग परोपकार करनेसे उदासीन नहीं होते, सत्यार्थ—प्रकाश करनेसे कभी पीछे नहीं हटते।" *

स्वामीजीने आर्य्यावर्तीय मतोंसे भिन्न मतोंपर भी समालोचना की है। वह समालोचना उन मतोंकी मान्य पुस्तकोंके आधार पर ही की गई है। उसमें गहरी गवेषणा और अकाट्य युक्तियोंसे काम लिया गया है। वह आर्य धर्म्मकी रक्षा और दूसरे धर्मोंका अधूरापन दिखानेके निमित्त की गई है। यह सिद्ध करनेकी कोई आवश्यकता नहीं कि ऐसी और इससे भी कड़ी समालोचना, बुद्धदेवसे लेकर आज पर्यन्त, सभी धर्म्मोंके गुरुजन करते आये हैं। स्वामी दयानन्दजी अपने युगके सबसे बड़े समाज—संस्कारक थे। वे अद्वितीय सुधारक थे। उन्होंने करोड़ों मनुष्योंकी हित-कामनासे कार्य किया है। आर्य्य जातिके पुरुषोंको सहस्रों वर्षोंसे संचित सम्पत्तिको सर्वनाशके मुखसे निकाला है। समाज चक्रको चलानेके लिये उसकी चूलमें अपने प्यारे प्राणोंको तैल बनाया है। सर्वप्रियताकी अपेक्षा सर्व-हितहीको सर्वोपरि माना है। ऐसे महापुरुषके सुधारकार्य्यपर छोटे और अधमतम शस्त्रोंसे काम लेनेवाले छुट—भैया लोग सुधारपद्धतिसे सर्वथा अजान हैं। संशोधनकी रीतिसे निरे अबोध हैं।

महाराजने दूसरे धर्म्मोंकी किस भावसे समालोचना की है इसका वे स्वयं प्रकाश करते हैं। वे लिखते हैं—"यद्यपि मैं आर्यावर्त्त देशमें उत्पन्न हुआ और बसता हूं तथापि जैसे इसके मतमतान्त-

* भाषाकी अपेक्षा भावपर अधिक ध्यान दिया है।

रोंकी झूठी बातोंका पक्षपात किये विना यथातथ्य प्रकाश करता हूं वैसाही वर्त्ताव दूसरे देशके मत-वालोंके साथ करता हूं। मेरा मनुष्योंकी उन्नतिका व्यवहार जैसा स्वदेशियोंके साथ है वैसाही विदेशियोंके साथ है। सब सज्जनोंको इसी प्रकार वर्त्तना योग्य है।

यदि मैं किसी एकका पक्षपाती होता तो जैसे आजकलके मतवादी अपने मतका मण्डन और प्रचार करते हैं तथा दूसरे मतोंकी निन्दा और हानि करते हैं और उनका प्रचार बंद करा देते हैं वैसाही मैं भी करता। परन्तु ऐसा करना अमानुषी कर्म है। जैसे बलवान् पशु निर्बलोंको दुःख देते और मार डालते हैं, ऐसा ही काम यदि मनुष्य-तन पाकर भी किया तो यह मानुषी स्वभावसे विपरीत है, पशुओंके सदृश है। जो बलवान् होकर निर्बलों की रक्षा करता है वही मनुष्य कहा जाता है और जो स्वार्थवश परहानिपर तुला रहता है वह तो मानों पशुओंका भी बड़ा बन्धु है।"

स्वामीजी महाराजने सामाजिक सुधारमें ब्रह्मचर्य्यावस्था पालन करना अत्यावश्यक बताया है। एक एक दो दो वर्षके बालकोंका विवाह करना वे देशके अधःपतनका प्रबल कारण मानते थे। उन्होंने कुरीतियोंके निवारणमें अति बल लगाया। उनके लेखोंमें पूर्ण युवावस्थाके विवाहका विधान प्रबल प्रमाणोंद्वारा किया गया है।

उन्होंने वर्णाश्रम-मर्य्यादाको गुणकर्मके अनुसार माना है किसी जातिके जनका उत्तम तथा निकृष्ट होना, वे जन्म और नामहीसे नहीं मानते थे। उनके निश्चय में जैसे किसीके गुण कर्म्म हैं वैसेही वर्णमें वह परिगणित होना चाहिये। वे कहते हैं कि "जिस पुरुषमें जिस वर्णके गुण-कर्म हों उसको उसी वर्णका अधिकार देना चाहिये। ऐसी अवस्था रखनेसे सब मनुष्य उन्नतिशील हो जाते हैं।"

महाराज शूद्रोंके सुधारके बड़े पक्षपाती थे। उन्हें भी, सर्जन कर्त्ताकी सर्व श्रेष्ठ सृष्टिमें समझते थे। चतुर्थ वर्णसे घृणा करना उसे अस्पृश्य समझना उनके निकट मनुष्य पदवीसे गिरा हुआ कर्म है जो लोग कुत्तोंको छूते हैं, बिल्लियोंसे खेलते हैं, भैंसोंको हाथ लगाते हैं, ऊटोंका स्पर्श करते हैं, घृणित जीवजन्तुओंको भी छू लेते और अपने हाथसे जूता तक उतार देते हैं वे मनुष्योंको अछूत समझें, उनसे दूर भागा करें यह कितना अन्याय है, कितना अधर्म्म है, यह बात सहजसे समझी जा सकती है। महाराज शूद्रोंको वेदाधिकार देते हुए लिखते हैं "जैसे परमात्माने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य और अन्नादि पदार्थ सबके लिए बनाये हैं वैसे ही वेद भी सब मनुष्योंके लिए प्रकाशित किये हैं।"

श्रीस्वामीजीने स्त्री जातिके सुधारका भी परम कार्य्य किया है। शास्त्ररीतिसे उनको वेदाधिकार दिया है। महिलाओंकी महत्ताको जितना उन्होंने वर्णन किया है उतना किसी आचार्यने नहीं

किया। वे चाहते थे कि कुछ एक विदुषी स्त्रियां मिलकर मातृ मण्डल निर्माण करें और फिर मातृ शक्तिको सर्वगुणसम्पन्न बनायें। उन्होंने श्रीरमाको परोपकारके लिये जीवनोत्सर्गकी प्रबल प्रेरणा भी की, परन्तु सफलता न हुई। श्रीमती रमाबाई इस परम कर्मको करनेका साहस न कर सकी। महाराज स्त्रियोंका महत्त्व वर्णन करते हुए लिखते हैं—"स्त्रियोंको भी ब्रह्मचर्य्य धारण और विद्या- का ग्रहण अवश्य करना चाहिये। भारतकी स्त्रियोंमें भूषणरूप गार्गी आदि देवियां शास्त्रोंको पढ़- कर पूरी विदुषी हुई थीं। देखो, आर्यावर्तके राजपुरुषोंकी स्त्रियां धनुर्वेद, युद्ध-विद्या अच्छे प्रकार जानती थीं। यदि ऐसा न होता तो कैकेयी आदि स्त्रियां दशरथादि राजाओंके साथ संग्राममें कैसे जा सकतीं ? स्त्रियोंको व्याकरण, धर्म्म-वैद्यक-गणित और शिल्पविद्या अवश्य सीखनी चाहिये।

महाराजने शिक्षा-सुधार पर भी बड़ा बल दिया है। वे जानते थे कि जब तक सर्व साधारणमें सुशिक्षाका प्रचार नहीं होता तबतक उन्नति नहीं हो सकती। करोड़ों मनुष्योंको एक उद्देश्यपर लानेके लिए शिक्षा सबसे ऊंचा साधन है। वह शिक्षा भी धर्म्म-सहित और जातीय होनी चाहिए। शिक्षापर लिखते हुए वे कहते हैं, "जब पांच वर्षका लड़का लड़की हों तब उनको देव-नागरी अक्ष- रोंका अभ्यास कराना चाहिए। अन्यदेशीय भाषाओंके अक्षरोंका भी अभ्यास कराना उचित है।"

स्वामीजीने ही सबसे पहले शिक्षाके आवश्यकीय सिद्धान्तको उद्घोषितकिया वे अनिवार्य्य शिक्षाके पक्षपाती थे और नहीं चाहते थे कि कोई भी मनुष्य लिखने पढ़नेके ज्ञानसे शून्य रह जाय। अनिवार्य शिक्षापर लिखते हुए वे कहते हैं कि "इसमें राज-नियम और जाति-नियम होना चाहिए। कि पांचवें अथवा आठवें वर्षके उपरान्त कोई मनुष्य अपने लड़के या लड़कियोंको घरमें न रख सके। अवश्यमेव उन्हें पाठशालामें भेजे। यदि न भेजे तो वह दण्डित किया जाय।"

श्रीस्वामीजी महाराजसे भारत-वासियोंकी दरिद्र दलित दशा छिपी न थी। उन्होंने अपने विस्तृत पर्य्यटनमें अकाल-पीड़ितोंकी करुणा जनक अवस्थाको अपनी आंखों देखा था। उनके हृदय- वेधक रोदनको अपने कानों सुना था। वे जानते थे कि भारतीय प्रजाके सहस्रों जन, निर्जीव यन्त्रकी भांति, दिनभर परिश्रम करनेपर भी अपने बाल-बच्चोंके मुंहमें पूरा ग्रास नहीं डाल सकते। ऐसे कितनेही परिवार हैं जो अपने पेटकी निरन्न पीड़ा मिटानेमें निपट निरुपाय हो रहे हैं। भोज्य पदा- र्थोंकी महर्घता दिनों दिन बढ़ती ही चली जा रही है। जिससे भिखारियोंका कातर क्रन्दन विराम- विश्राम विहीन होने लग गया है।

श्रीस्वामीजी यह भी जानते थे कि भारत-भूमि रत्न-गर्भा है सुजला, सुफला है। ऊसर नहीं, किन्तु उर्व्वरा और सस्यशालिनी है। इसपर आहार-योग्य नाना धान्य उत्पन्न होते हैं। इसपर सुस्वादु फलोंकी त्रुटि भी नहीं है। भोजन आच्छादन और व्यवहारके योग्य सब वस्तुयें यहां उत्पन्न होती

हैं। तो फिर माता वसुन्धरा अपनी सन्तानका लालन-पालन क्यों नहीं कर सकती ! इसके लाड़ले लड़के-बाले भूखके मारे इसकी गोदमें बैठे बिलख बिलख कर आठ आठ आंसू क्यों रो रहे हैं ?

ऊपरके प्रश्नोंका उत्तर, महर्षिने अच्छी तरह समझ लिया था। उनकी दिव्य दृष्टिसे नित्यके अकालके कारणोंका छुपे रहना सर्वथा असम्भव था। वे जानते थे कि भूमिकी उपजमें भेद नहीं पड़ा किन्तु कुछ वृद्धि हो गई हो तो कोई आश्चर्य नहीं। फिर भी यहां भूख है और दुर्भिक्ष है तो इसका कारण शिल्पकलाका भारी अभाव है। आवश्यकीय व्यवहारकी वस्तुयें यहां निर्मित नहीं होतीं। विदेशी वस्तुओंकी भरमारसे यहांके लाखों परिश्रमी निकम्मे हो रहे हैं। उनके पास आजीविकाका कोई उपाय नहीं रहा। पहले साधारण परिस्थितिके मनुष्यसे लेकर महाराजों और राजेश्वरों तक इसी देशके बने वस्त्रोंसे वेष-विन्यास करते थे। यहांके रत्न-जटित और मणि-मुक्ता-खचित आभूषणोंसे विभूषित होते। उनके आकाश-भेदी भवन इसी देशके कृतकर्म्मा विश्वकर्म्माओंके द्वारा बनाये जाते। उनको सुसज्जित करनेके लिए भारतकी चित्रशालाओंके चित्रकारोंहीसे अद्भुत चित्र प्राप्त हो जाते। परन्तु आज सब कुछ विपरीत हो गया है।

महाराज, दूसरे वक्ताओंकी भांति, अपने भाषणको व्याख्यान-भवनकी खुली खिड़कियोंसे पार कर देनेमें ही अपने देश-हितकी सम्पूर्ण सफलता नहीं मानते थे। वे परम कर्म-योगी थे, इस कारण क्रियात्मक कर्म करना चाहते थे। उनके जीवनके अन्तिम वर्षोंमें, उनके धर्म-प्रचार और समाज-सुधार आदि उदात्त उद्देश्योंमें भारतवर्षमें शिल्पकलाका विस्तारित करना भी सम्मिलित हो गया था। वे इसके लिये पूर्ण प्रयत्न कर रहे थे। उन्होंने अपने पश्चिमी शिष्य 'वीस' महाशयको लिखा था कि आप भारतवासियोंको शिल्प-कला सिखानेका प्रबन्ध कीजिए। महाराजके पत्रके उत्तरमें जर्मन देश-निवासी श्रीमान् जो० ए० वीसने जो पत्र लिखे उनके कुछ एक अंश यहां उद्धृत किए जाते हैं इनसे पाठकोंको पता लग जायगा कि महाराज स्वदेश-वस्तु-प्रचारमें कितने सचेष्ट और सच्ची रीतिसे सचेष्ट थे। अपने २१ जून सन् १८८० के पत्रमें श्रीमान् वीस महाशय लिखते हैं, "जो जो विषय आपके विद्यार्थियोंके प्रयोजनके लिए सबसे अधिक उपयोगी और आवश्यक प्रतीत होते हैं वे सब हम उन्हें सिखा देंगे। साधारण विद्यार्थियोंकी अपेक्षा, जिनके सामने ऐसा कोई विशेष उद्देश्य नहीं होता, हम आपके विद्यार्थियोंकी विशेष शिक्षा पर अधिक ध्यान देंगे। कृपया लिखिये कि इस प्रस्तावके विषयमें आपकी क्या सम्मति है। इस विषयमें खुलकर अपने विचार लिखिये। हम ऐसे प्रबन्ध करनेके लिये सदा उद्यत हैं जो आपके देशवासियोंके लिये और हमारे लिये सन्तोष-जनक हों।" उसी सन्की ३० जूनको वे फिर लिखते हैं, "यदि आप दूरदर्शितासे आरम्भ करें और प्रारम्भहीमें सीमातीत शीघ्रतासे काम न लें तो मैं समझता हूँ कि कालक्रममें, भारतकी मण्डीमें अपने प्रतिद्वन्द्वियोंको पराभव

कर देनेका आपके पास अच्छा अवसर है। क्यों कि आपको कुछ एक ऐसी सुविधायें प्राप्त हैं जो उनके पास नहीं हैं।

एक तो आपके देशमें दैनिक वेतन सस्ता है। दूसरे आपके देशमें सूक्ष्म कामको कुशलतासे करनेके, साधारणतः यूरोपियनोंकी अपेक्षा अधिक प्रवीण परिश्रमजीविजन मिल जाते हैं।"

तीसरे, बहुतसे यूरोपियनोंकी अपेक्षा आप लोगोंका आचार अच्छा है। आप अपने ग्राहकोंको सस्ती और निकम्मी वस्तुयें दे उनका रुपया नहीं बटोरेंगे। आप जीवनमें वाणिज्यमें और कला-कौशलमें निर्दोष नियमका पालन करेंगे।

आप जब चाहें अपने विद्यार्थियोंको हमारे पास भेज दें। जितना शीघ्र भेजें उतनाही उत्तम है क्योंकि हम उनको उनके अध्ययनके भिन्न भिन्न उद्देश्योंके अनुसार काममें लगानेके लिये तत्पर हैं।

उन्होंने फिर लिखा, "मेरे इस पत्रका उद्देश्य आपको इस बातकी सूचना देता है कि मैंने आपके नव-युवक देश-बन्धुओंको ऐसे स्थानोंमें भेजनेके विषयमें और भी अधिक पूछ-ताछ की, वे विविध कलायें और व्यवसाय अत्यन्त क्रियात्मक और वाचनिक रीतिसे सीख सकते हैं। हम आपके अनुयायी आर्य विद्यार्थियोंको सारी उपयुक्त कलायें और वस्तुयें सिखलानेके लिए अपनी रक्षा और देख-रेखमें लेनेके लिए बड़े उत्सुक हैं। यहाँ वे इन कलाओंको स्वदेश अथवा किसी अन्य देशकी अपेक्षा अधिक उत्तम रीतिसे सीख सकेंगे। अपने उद्देशमें सफल होने और गौण तथा निष्फल बातोंमें रत होने, अथवा जिन बातोंको वे जानना और सीखना चाहते हैं उनकी समीचीन व्याख्या और उपदेशके न मिलनेसे अपना बहुमूल्य समय नष्ट न करनेके लिए ऐसे विद्यार्थियोंको सबसे बढ़कर ठीक पथ प्रदर्शकोंका प्रयोजन है, जो अपनी पूरी योग्यतासे उन्हें मार्ग दिखावें, उन्हें परामर्श दें और उन्हें पढ़ायें। आर्य्य विद्यार्थियोंको मैं यही काम देना चाहता हूं उनकी ओर, मैं प्राण और आत्मायें एक आध्यात्मिक सम्बन्ध द्वारा, आकर्षित अनुभव करता हूँ। मैं अपने नवयुवक भारतीय मित्रोंकी देख-रेख और विकासपर पूर्ण ध्यान दूंगा। उनको मैं किसी दूसरेकी देखरेख और रक्षामें कदापि नहीं छोड़ूँगा, इसके लिये चाहे मुझे अपने यूरोपीय विद्यार्थियोंकी रक्षा और शिक्षाके निमित्त दूसरोंको भी नियुक्त करना पड़े।"

'वीस' महाशयने ३० सितम्बर १८८० को फिर लिखा, "आपके पुत्र हमसे भौतिक कलायें और अन्य विद्यायें तथा शिल्प-कर्म सहर्ष सीख सकते हैं। हमें आपकी उन्नतिका डाह नहीं है।

मैं निर्धन माता-पिताओंके पुत्र लेने और उनको अपने सर्वोत्तम पुरुषोंसे शिक्षा दिलानेके लिए समुद्यत हूँ। कालान्तरमें ज्योंही हमारी आय इस योग्य हो जायगी, जब आप कहेंगे, तो मैं आपके कुछ दरिद्र सुधी विद्यार्थी लेलूँगा। उनको बहुत थोड़े शुल्कपर अथवा बिना शुल्क शिक्षा दूंगा। और उनकी उन्नतिके लिये सहायता दूंगा।

श्रीमान् वीसके पत्रोंके ऊपर दिये अंशोंसे भली भांति प्रकाशित होता है कि महाराज भारतमें शिल्प-कलाका विस्तार करनेके लिये बड़ा भारी उद्यम कर रहे थे। वे विदेशमें कला-कौशल सीखनेके लिये एक मण्डली भेजना चाहते थे उन्होंने लाहौर आदि नगरोंमें अपने प्रेमियोंको पत्रों द्वारा प्रेरित भी किया कि शिल्प सीखनेके लिए विदेश जाइये। परन्तु इस उद्देशको क्रियात्मक बनानेके लिये द्रव्य और मनुष्य, दोनों वस्तुयें चाहिएँ। इन दोनोंके अभावको दूर करनेके लिए वे रात दिन यत्न करते थे। यदि, कालकी गति उनके मार्गमें बाधक न होती तो वे कालान्तरमें, इस कार्यमें अवश्यमेव कृतकार्य हो जाते। भारतकी हित-कामनाके उपयुक्त परमोपयोगी उद्योगको देखकर, यह बात साह-सपूर्वक कही जा सकती है कि स्वामी दयानन्दजी पहले महापुरुष थे, जिन्होंने देश-दशा सुधारनेके लिए, इसकी नौकाको भूखके भयङ्कर भंवरसे निकालनेके लिए और स्वदेश-बन्धुओंका दरिद्र धोनेके लिए पूर्ण पुरुषार्थ किया। स्वामीजी जहां लोगोंकी आत्मिक भूख-प्यासको वेदोपदेशद्वारा दूर करते थे वहां उनकी शारीरिक क्षुत्पिपासाको उपशम करनेके लिए शिल्प-विद्याके सुदृढ़ पात भी कर रहे थे। वे सजग थे। उनकी दृष्टि व्यापिनी थी। वे इस मर्मको जानते थे कि कबूतरकी तरह आंखें मूंद लेनेसे भूखकी बिल्ली दूर नहीं हो सकती। निरे कूपमण्डूक बने रहनेसे हित-साधित नहीं होता।

उस महापुरुषके माहात्म्योंमें हम प्रथम पद एक निराकार ईश्वरके पूजनको देते हैं। हमारे पास इतिहास-सम्बन्धी पुष्ट प्रमाण है कि जबसे आर्य्यधर्ममें मत-भेद हुए तबसे स्वामीजी महाराजके बिना ऐसा एक भी आचार्य्य नहीं हुआ जिसने उनकी भांति एक ईश्वरवादका ऐसे निर्दोष रीतिसे वर्णन किया हो।

महाराजका दूसरा महत्व वेद-विश्वास है। यद्यपि आर्य धर्मके मौलिक मन्तव्योंसे निकली हुई साम्प्रदायिक शाखाओंमें वेद मान्य माना जाता है, परन्तु साम्प्रदायिक मतोंके मन्तव्य-कर्त्तव्य वेदसे उतना ही भेद रखते हैं, जितना कि दिनसे रात और धूपसे छाया। स्वामीजी महाराज केवल वेदपर आश्रित थे। वे उससे बाहर जाना जानते ही न थे।

शास्त्र-रीतिसे स्त्री-जातिको स्वातंत्र्य देना, उनको वेदाधिकार प्रदान करना स्वामीजीका तीसरा माहात्म्य है। उनसे पूर्व आचार्य्योंने ऐसी उदारता कभी नहीं दिखाई।

श्रीमहाराजका चतुर्थ माहात्म्य शूद्रोंका उद्धार है। भील, कोल और पैरिहा आदि लाखों मनुष्य आर्य्योंमें अछूत समझे जाते हैं। ऐसे कुलिन जन भारतमें पाये जाते हैं जो इनकी छाया भी अपने शरीर पर नहीं पड़ने देते। ऐसे कुत्सित व्यवहारसे जो हानियां हो रही हैं उन्हें सभी जानते हैं। श्रीस्वामीजीने सर्व प्रकारके शूद्रोंको आर्य जातिका अङ्ग वर्णन किया है। उन्होंने अपने नूतन संस्कारमें इस भारी भूलको, दूषित भेद-भावनाको और तुच्छाभिमानको निकाल डाला है, अस्पृश्यता-

विचार उठा दिया है आर्य धर्म्ममें जबसे आचार्य-चक्र चला है, सम्प्रदायोंकी जबसे स्थापना हुई है। और जबसे समाज-संशोधक सन्तजन उत्पन्न होते आये हैं तबसे यह अनुपम पदवी एक स्वामी दयानन्दजीको ही प्राप्त हुई है कि उन्होंने दूसरे धर्मों और जातियोंके जनोंके लिए वेद-मर्यादासे आर्य-धर्मका द्वार खोल दिया। अब चाहे जो आर्य धर्म्ममें प्रवेश करे, उसके मार्गमें प्रतिबन्धक बात कोई भी नहीं है। इतिहास-मालामें यह माहात्म्य सदा सम्मानसे स्मरण किया जायगा।

पुरानी पद्धतिके पण्डित लोग लोक-हितके कार्यों से विरक्त हो जाते हैं। निरे नामके परमार्थपर घोटा लगानेवाले, संसार-सुधारमें कुछ भी समय नहीं देते प्रत्युत व्यावहारिक कर्मों से घृणा करने लग जाते हैं। कुछ एक इने गिने सन्त जन अवश्य ऐसे हुए हैं जिन्होंने अपने शिष्योंको समाज रक्षाके लिये प्रेरित किया। परन्तु जिस प्रकार संसारका उपकार कर्म करना स्वामीजीने आर्य्य समाजके कर्त्तव्योंमें मुख्य कर्त्तव्य स्थापित किया, देश-हितके लिए दौड़ धूप की और एक बड़े भारी परिमाण में शिल्पकलाका उद्योग करना आरम्भ किया, इस प्रकार इस दिन तक किसी धर्माचार्यने नहीं किया। उनका यह उद्योग उनके माहात्म्यको प्रख्यात करता है।

वैदिक कालके अनन्तर आर्यावर्त्त में जितना धार्मिक साहित्य संचित हुआ है उसमें निष्क्रियवाद को अति प्रधानता दी गई है। निष्क्रियताको ही एक प्रकारसे धर्म बताया गया है। ऐसे साहित्यमें कर्म-काण्डकी इतनी अवहेलना की गई है कि इसे अज्ञानियोंके बांधनेके लिये एक खूंटा वर्णन किया है। कर्म-रूप धर्म्मका खण्डन करते हुए कई ज्ञानी ध्रुव पुरुष, परुष भाषामें कर्मकाण्डियों को पशु तक कह गये हैं।

हम मानते हैं कि इस निष्क्रियवादके चरण-चिह्न महाभारत-कालमें ही चमकने लग गये थे। इनको मिटाने के लिये उस समयके परम कर्मयोगी श्रीकृष्ण देवने पूर्ण बल लगाया था। वे उस समय मिटे तो नहीं किन्तु ढाई सहस्र वर्षके पश्चात् ऐसे चमके कि उन्होंने सारे साहित्यको चकाचौंध लगा दी। बुद्ध महाराजके प्रचारने इस अकर्मण्यतावादको अति पुष्ट किया। वही समय निष्क्रियवाद का यौवन युग कहा जा सकता है।

निष्क्रिय धर्मका पालन कोई भी मनुष्य नहीं कर सकता। क्रियाके किये बिना किसीकीभी प्राण-यात्रा नहीं चल सकती। अपने विचारोंको प्रकट करनेके लिये भी क्रियाकी आवश्यकता होती है। और तो और, निष्क्रियवाद धर्म्म है, ऐसी समझ, ऐसा ज्ञान और ऐसी धारणा भी सूक्ष्म क्रियाहीसे उत्पन्न होती हैं।

सृष्टिमें क्रिया स्वभावसे ही हो रही है। प्रत्येक परमाणु गतिमान् है। यदि एक भी अणु एक पलके लिए निष्क्रिय हो जाय तो सारा ब्रह्माण्ड रुक जाय। उसी क्षणमें उसका सर्वनाश हो जाय।

हमारे शरीर इस ब्रह्माण्डका एकांशमात्र हैं। जो नियम समष्टिमें काम कर रहा है वही इस व्यष्टि देह में भी कार्य करता है। इस कारण गतिशील संसार में निष्क्रियता का स्वप्न देखना भी सर्वथा असम्भव है।

निष्क्रियता धर्म्म नहीं है। धर्म्म तो कर्मात्मक है। वह पुरुषार्थसे उपार्जित है। क्रियासे निष्पन्न होता है। इसलिए ज्ञानियोंने धर्म्मका लक्षण प्रेरणा वर्णन किया है। ऐहिक और पारलौकिक सुख-सिद्धिका साधन बताया है। स्मार्त्त धर्म्मके व्याख्याता भगवान् मनु भी धर्म्मके लक्षण क्रिया-रूपही वर्णन करते हैं।

यदि अक्रिया-रूप धर्म हो तो भेड़ें और बकरियाँ कभी असत्य भाषण नहीं करतीं। ममियानेके बिना वे दूसरा कोई शब्द नहीं बोलतीं। तब तो वे सत्यवादियोंमें सर्वशिरोमणि होजायँ। भोले भोले मृग मनुष्यके पांवकी आहट सुनकर कोसों दूर भाग जाते हैं। कभी किसीकी हिंसा नहीं करते परन्तु कोई भी अकर्मवादी उनको परमदयालु नहीं मानता। एक अंधा, बहिरा, मूक और विकल शरीर मनुष्य वनमें जीवनके दिन काटता हुआ न अशुभ सुनता है और न अशुभ देखता है, न अशुभ बोलता है और न अशुभ करता है, परन्तु वह मुनि नहीं कहला सकता। उन्मत्त अथवा मूर्छित मनुष्य अशुभ सङ्कल्प-विकल्पसे शून्य तो होता है पर वह महात्मा नहीं माना जाता। गहरी नींदमें कोई अशुभ क्रिया नहीं होती परन्तु वह समय पुण्य उपार्जनका समय नहीं समझा जाता।

अशुभ विचारोंको, और अशुभ आचारोंको शुभ विचारों और शुभ आचारों द्वारा धक्का देकर भीतरसे निकाल देना, उनको अपने निकट न आने देना शुभ सम्पत्ति सम्पादनका सर्वोत्तम साधन है। वह साधन क्रिया-जन्य है। यही धर्म है।

आर्य्योंमें जबसे निष्क्रिय वादने घर किया है तभीसे इनका विनिपात होना आरम्भ हुआ है। जातियोंमें जो नर-रत्न होते हैं वे प्रायः धार्मिक भी हुआ करते हैं। समाजके लिए उनका जीवन अत्यन्त उपयोगी होता है उनका समाजसे पृथक् हो जाना समाजको अवनत करना है। निष्क्रियवादके निष्ठावान् सज्जन जन समूहसे दूर भागते हैं। उनको समाज-संशोधन, समाज-सुधार और समाज संरक्षण कर्त्तव्य कर्म ज्ञात नहीं होते। वे उलटे इन कर्मोंसे घृणा करने लग जाते हैं। यही कारण है कि अकर्मवादकी पोषक पुस्तकोंमें पुरुषार्थ धर्मका निरादर है। गृहस्थको पाप और बन्धन वर्णन किया है। माता-पिता, पुत्र कलत्र आदि सम्बन्धोंको दुःखका कारण माना है। क्षात्र धर्मादि उत्तम धर्म्मोंको प्रशंसित नहीं समझा गया। आर्य प्रजाके अनेक दीप्तिमान रत्न इसी अकर्मवादकी उलझनमें उलझकर अपनी उपयोगिता नष्ट कर गये हैं उनकी उज्ज्वल कान्तिसे किसीने कुछभी लाभ नहीं उठाया

इसी निष्क्रियवादकी बेलके फलका नाम त्यागवाद है। त्यागी कहलानेमें लोग जबसे मुक्ति और महत्ता मानने लगे हैं तबसे आर्य्यजातिमें नाना अनिष्टोंकी, दुःखोंकी और अभावोंकी सृष्टि हुई है।

वहाँ लाखों त्यागी वास करते हैं। उनकी आँखोंके सामने, उनकी कुटियाओंके पास, उनकी कन्दराओंके निकट और उनके आश्रमोंके समीप दिन दोपहरमें उनका धर्म-धन लूटा जा रहा है, लोग अपना पुरातन धर्म्म परित्याग कर रहे हैं। अनाथोंकी बिलबिलाहट और कृश प्रजाका करुणाक्रन्दन हो रहा है। इसे देखकर पराये भी पिघल गये हैं। परन्तु इधर ये अपने सर्वस्वत्यागी हैं कि दुर्दिन-दलित दरिद्र बन्धुओंपर दृष्टि डालना तक भी आवश्यक नहीं समझते। दुर्दिन-दलित दरिद्र बन्धुओंपर दृष्टि डालना तक भी बड़े दया दिखानेमें भी आनाकानी करते हैं। इस संकीर्णताका प्रबल कारण है। बाके त्यागियोंने त्यागके अर्थ छूआछूत समझ रक्खे हैं। इसका तात्पर्य घृणा करना, पृथक् हो जाना, संकुचित बनना और पीड़ित प्राणियोंको भी क्रियात्मक सहायता न देना निकाला है।

सच्चा त्याग वही है जिसमें घृणाका त्याग है, वैर-विरोधका त्याग है, अभिमानका त्याग है। दूसरेको सुख देनेके लिए परोपकार करनेके लिए अपने प्राणोंतककी भी ममता न करना सच्चा त्याग है। यह परम त्याग ईश्वर-भक्ति और प्रजा-प्रेमसे उत्पन्न होता है। भक्ति और प्रीति पुरुषार्थ और शुभ क्रियाके बिना प्राप्त नहीं होती।

स्वामीजी महाराजने समाज-संस्कार करते समय क्रियात्मक धर्म्मका निरूपण किया है। उन्होंने कई स्थलोंमें कहा है कि पर-हानि पाप और परोपकार पुण्य है। उन्होंने अपने ग्रन्थोंमें गृहस्थादि आश्रमोंके और चारों वर्णोंको मोक्ष धर्म्मके साधन वर्णन किया है।

महाराजने वेद-भाष्यके भावार्थमें पुरुषार्थके लिये अनेक महत्व-सूचक वाक्य लिखे हैं। वे ऋग्वेद १-३७-३ में वर्णन करते हैं कि 'किसीको उद्यमके विना न रहना चाहिये'। ऋग्वेद १-४-७ में लिखा है कि 'ईश्वर पुरुषार्थी मनुष्य पर कृपा करता है, आलस्य करनेवालेपर नहीं। जब तक मनुष्य ठीक ठीक पुरुषार्थ नहीं करता तब तक ईश्वरको कृपाका भागी नहीं होता और वह अपने किये कर्मोंसे प्राप्त पदार्थोंकी रक्षा करने में समर्थ कभी नहीं हो सकता। इस लिए सब मनुष्योंको पुरुषार्थी होकरही ईश्वरकी कृपाका भागी होना चाहिये'। फिर ऋ० २-४-१ में लिखा है कि 'जो मनुष्य पावकके समान पवित्र, जलके समान कोमल, सिंहके समान पराक्रम करने वाले और वायुके समान बलिष्ठ होकर अन्यायको निवृत्त करें वे समस्त सुखोंको प्राप्त हों।'

महाराजकी महत्ताका यह ज्वलन्त प्रमाण है कि वे धर्म्मके मर्मका और उसके तात्त्विक स्वरूपका उपदेश करते थे। वे ईश्वर-भक्ति और प्रजानुरागमें जीवन तक त्याग देनेको सच्चा त्याग निरूपण करते थे।

स्वामीजी महाराज पहले महापुरुष थे जो पश्चिमी देशोंके मनुष्योंके गुरु कहलाये, जिनको अनेक पश्चिमी मनुष्य गुरु, आचार्य और धर्म-पिता मानते थे।

जिस युगमें श्री स्वामीजी हुए हैं उससे कई वर्ष पहलेसे आज तक ऐसा एक ही पुरुष हुआ है जो विदेशी भाषा नहीं जानता था जिसने स्वदेशसे बाहर एक पैर भी नहीं रक्खा था, जो स्वदेशके ही

अन्न-जलसे पला था, जो विचारोंमें स्वदेशी था, आचारोंमें स्वदेशी था, भाषा और वेशमें स्वदेशी था, परन्तु वीतराग और परम विद्वान् होनेसे सबका भक्ति-भाजन बना हुआ था, जिसका देशी विदेशी सभी मान करते थे। ऊँचेसे ऊँचे विदेशी पदाधिकारी और स्वदेशी राजे महाराजे जिसका अति सन्मान करते थे। वह महापुरुष महर्षि दयानन्द ही था।

महर्षिको छोड़कर भारतके इस युगमें ऐसा एक भी पुरुष नहीं हुआ जिसने विदेशी भाषा न सीखी हो अथवा विदेश-यात्रा न की हो और फिर स्वदेशमें सम्मानित हुआ हो। शिक्षक दलके जितने नेता आज तक हो चुके हैं उन सब पर विदेशी भाषा अथवा विदेश-गमनका ठप्पा लगा हुआ है। उसीके प्रभावसे देशी और विदेशी बाजारमें उनका नाम तक बिका है। परन्तु स्वामीजी महाराज पांवसे लेकर ब्रह्माण्ड तक भीतर और बाहरसे पवित्र स्वदेशी थे। वे अपने ही गुण-ज्ञानसे बड़े बने थे। किसीके कंधेपर बैठकर ऊँचे नहीं हुए थे। जितना मान देशियों और विदेशियोंने उनका किया है उतना आज तक किसी भी भारत वर्षीय मनुष्यका नहीं हुआ।

महाराज निरपक्ष भावसे समालोचना किया करते। सब मतों पर टीका टिप्पणी चढ़ाते। परन्तु इतना करने पर भी उनमें कोई ऐसी अलौकिक शक्ति और कोई ऐसे गुण थे कि जिनके कारण वे अपने समयके सारे बुद्धिमानोंके सम्मान-पात्र बने हुए थे। मुसलमान दलके सर्वोपरि नीति निपुण नेता श्रीमान् सर सैयद अहमद खां महाशय अन्तरात्मासे महाराजके अनुगामी थे। पादरी स्काट ऐसे सज्जन उनको अति आदर देते थे। स्थान स्थानपर उनको ईसाई मन्दिरोंमें उपदेश देनेके लिए आमन्त्रित किया जाता। लाहौरमें तो प्रतिष्ठित मुसलमान सज्जनोंहीने अपने मकान देकर उनका आतिथ्य किया। श्रीयुत केशवचन्द्रसेनजी उनसे अपार प्रेम करते थे। महात्मा देवेन्द्रनाथ ठाकुरने उनको श्रद्धापूर्वक सम्मान दिया। महामति गोविन्द रानडे तो उनकी भक्तमालाके एक आभावान् मोती थे। सभी प्रान्तोंके गण्य मान्य सज्जन उनके चारु चरणोंमें बैठनेमें गौरव मानते थे। तीव्र समालोचक होते हुए इतनी विस्तृत प्रियताका माहात्म्य दूसरे किसी व्यक्तिको कदाचित् प्राप्त हुआ होगा।

महाराजके उच्चतम जीवनकी घटनाओंको पाठ करते समय हमें तो ऐसा प्रतीत होने लगता है कि आज तक जितने भी महात्मा हुए हैं उनके जीवनोंके सभी समुज्वल अंश दयानन्दमें पाये जाते थे। वह गुण ही न होगा जो उनके सर्व-सम्पन्न स्वरूपमें न विकसित हुआ हो। महाराजका हिमालयकी चोटियों पर चक्कर लगाना, विन्ध्याचलकी यात्रा करना नर्मदाके तट पर घूमना स्थान स्थानपर साधु-सन्तोंके शुभ दर्शन और सत्सङ्ग प्राप्त करना मङ्गल नाम श्रीरामको स्मरण कराता है। कर्णवासमें कर्णसिंहके बिजलीकी भाँति चमकते खड्गको देखकर भी महाराज नहीं कांपे, तलवारकी अतितीक्ष्ण धाराको अपनी ओर झुका हुआ अवलोकन करके भी निर्भय बने रहे और साथ ही गम्भीर भावसे

कहने लगे कि आत्मा अमर है। अविनाशी है! इसे कोई हनन नहीं कर सकता। यह घटना, और ऐसी ही अन्य अनेक घटनायें ज्ञानके सागर श्रीकृष्णको मानस नेत्रोंके आगे मूर्तिमान बना देती हैं। ऐसा प्रतीत होने लगता है कि मानो वेही बोल रहे हैं।

अपनी प्यारी भगिनी और पूज्य चचाकी मृत्युसे वैराग्यवान् होकर वन वनमें कौपीन-मात्रावशेष दिगम्बरी दशामें फिरना, घोरतम तपस्या करना और अन्तमें मृत्युंजय महौषधको ब्रह्म समाधिमें लाभ कर लेना महर्षिके जीवनका अंश बुद्ध देवके समान दिखाई देता है।

दीन दुःखियों, अपाहजों और अनाथोंको देखकर श्रीमद्दयानन्दजी क्राइस्ट बन जाते हैं। धुरन्धर वादियोंके सम्मुख श्रीशंकराचार्यका रूप दिखा देते हैं। एक ईश्वरका प्रचार करते और विस्तृत भ्रातृ भावकी शिक्षा देते हुए भगवान् दयानन्दजी श्रीमान् मुहम्मदजी प्रतीत होने लगते हैं। ईश्वरका यशोगान करते हुए स्तुति प्रार्थनामें जब प्रभु दयानन्द इतने निमग्न हो जाते हैं कि उनकी आंखोंसे परमात्म-प्रेमकी अविरल अश्रुधारा निकल आती है, गद्गद-कण्ठ और पुलकित-गात हो जाते हैं, तो सन्तवर रामदास, कबीर, नानक, दादू, चेतन, और तुकारामका समय बँध जाता है। वे सन्त-शिरोमणि जान पड़ते हैं। आर्यत्वकी रक्षाके समय, वे प्रातःस्मरणीय प्रताप श्रीशिवाजी तथा गुरु गोविन्द सिंहजीका रूप धारण कर लेते हैं।

महाराजके जीवनको जिस पक्षसे देखें वह सर्वाङ्ग सुन्दर प्रतीत होता है। त्याग और वैराग्यकी उसमें न्यूनता नहीं है। श्रद्धा और भक्ति उसमें अपार पाई जाती है। उसमें ज्ञान अगाध है। तर्क अथाह है। वह समयोचित मतिको मन्दिर है। प्रेम और उपकारका पुंज है। कृपा और सहानुभूति उसमें कूटकूट कर भरी पड़ी है। वह ओज है, तेज है, परम प्रताप है, लोक-हित है और सकल कला सम्पूर्ण है।

सत्यानन्द।

श्रीमद्दयानन्द-प्रकाश ।

वैराग्य काण्ड ।

पहला सर्ग ।

स्वामी दयानन्दजी एक आदर्श संन्यासी थे। उत्तम कोटिके संन्यासी जन कभी अपनी आश्रम--मर्यादाका अतिक्रमण नहीं करते। इसलिये स्वामी दयानन्दजी पूर्वाश्रमका अपना और अपने बन्धुओंका नामनिर्देश करने में मौन ही रहा करते थे। वे गुर्जर देशमें गये। काठियावाड़में भी पधारे। राजकोट में उन्होंने अनेक व्याख्यान दिये, परन्तु पूर्वाश्रमके सम्बन्धियोंका नाम और ग्राम नहीं बताया।

माता-पिता आदि परिवार-परिजनका परिचय देनेमें वे इसलिये सकुचाते थे कि गुर्जर देश-वासियोंमें मोह विशेषतासे होता है। पता लगनेपर बन्धुवर्गका बार बार मिलना, घरेलू काम-धन्धोंकी चर्चा चलाना और संयोग-वियोगकी वार्त्ता बताना ये कुछ ऐसे साधन हैं जिनसे समदृष्टि संन्यासियोंमें आत्मीय जनों के लिये स्नेह-स्रोतका स्राव करने लग जाना सम्भावित होता है। ऐसा होनेसे उस महापुरुषके महोपकारार्थ धारण किये महाव्रतमें बड़ी बाधा पड़ जानेकी आशङ्का थी।

भक्त अल्काट आदि सज्जनोंने उनसे साग्रह प्रार्थना की कि भगवन्, भारत

अमेरिका और योरुपनिवासी आपके शिष्य और सेवक आपके मङ्गलमय जीवनकी मङ्गल कथा जानना चाहते हैं। कृपया अपने जीवनके मुख्य मुख्य अंश लिखकर हमारे पत्र थियासोफिस्टमें प्रकाशित कराइए। महाराजने उनके कथनको स्वीकार किया और अपने जीवनके कुछ एक मोटे मोटे भाग लिखाकर थियासोफिस्टमें छपनेके लिये भेजे। उनमें उन्होंने अपने जन्मदेशका इतना ही वर्णन किया है कि मेरा जन्म मछुकांटा नदीके किनारे मोरवी-राज्यके एक कसबेमें ब्राह्मण कुलमें सम्वत् १८८१ में हुआ था। मेरे वंशीय उदीच्य ब्राह्मण हैं। मेरे पिताकी पुष्कल भूमिहारी थी। उनको मोरवीराज्यसे अधिकार भी प्राप्त थे। वे अच्छे सत्ताधारी थे और प्रबन्धको स्थिर रखनेके लिये कुछ सैनिक भी रखते थे।

प्रातः स्मरणीय स्वर्गीय धर्म्मवीर श्री लेखरामजी अपनी खोजके पश्चात् इस परिणामपर पहुंचे थे कि महाराजका जन्म स्थान काठियावाड़ देशमें मोरवी नगर है। परन्तु श्री देवेन्द्रनाथजीने राजसहायतासे ६ मास तक परिश्रम करके यह निश्चित परिणाम निकाला कि श्री स्वामी दयानन्दजीका जन्म स्थान मोरवी राज्यमें टंकारा ग्राम है। उनके पिता का नाम कर्षनजी था। कर्षनजी बड़े भूमिहार थे और लेनदेनका भी काम करते थे। कर्षनजीके ज्येष्ठ पुत्र (दयानन्द) का नाम मूलजी था, मूलजीको लोग दयालजी भी कहकर पुकारा करते थे। अध्यापक श्री रामदेवजीने भी अपनी ढूँढ खोजसे श्री देवेन्द्रनाथ मुकर्जीके निश्चय ही को सुनिश्चित किया है।

उक्त परिणामको इस समय प्रमाणरूप मानकर यह कहना पड़ता है कि श्री दयानन्दजी का जन्म एक परिवर्तन के युग में हुआ। उस समय भारत में बड़ा भारी विप्लव हो रहा था। राष्ट्रीय शक्ति किसी सुदृढ नीति सूत्रमें आवद्ध न थी। मुगल राज्यका मङ्गल ग्रह म्लानमुख हो चुका था। राजपूतानेकी समर शालिनी शक्ति परिश्रान्त होकर अपने ही मरुस्थलों और पहाड़ियों के क्रोड में कभीकी सो गई थी। उन दिनों महाराष्ट्रका महाबल नीति निपुण अँगरेजों के दल बलसे टक्कर ले रहा था। पेशवा और सिन्धिया शक्ति को स्वतंत्रता का

तारा अस्ताचलकी ओटमें होरहा था। नैपाली सैनिक संग्राम भूमिको उत्तेजित करने के अनन्तर अपनी पर्वतमालाओं में जा रहे थे।

ईस्ट इण्डिया कम्पनीके शासन के प्रतिनिधि लार्ड एम्हर्स्ट, भारत के कई विभागों के भाग्यकी वागडोर अपने हाथों में लेकर शासन कर रहे थे। इसी काल में ब्रह्मदेशकी स्वाधीनताका सूर्य्य अशुभ सूचक चिन्हों से घिर रहा था। उसके अस्त हो जानेके पल, उसके पास ही आकर उपस्थित हो गये थे।

पंजावके केसरी श्रीमन्महाराजा रणजीतसिंहजी अपने सिंह-नादसे हिमालय के कुछ विभागों-समेत शतद्रु से लेकर सिन्धु महानदके तटोंतक सारे पंजाब प्रान्तको प्रतिध्वनित कर रहे थे। उनके दहाड़नेसे अफ़रीदियों और मसूदियों की कन्दरायें भी काँपने लग जाती थीं।

उस समय देशमें अशान्तिके चिन्ह जहां तहां दिखाई दे रहे थे। इसी लिए देशवासी प्रायः भयसे शङ्कितचित काल व्यतीत करते थे। लुटेरोंके अत्याचार विशेष करके असह्य हो गये थे। उनके त्राससे लोग काँप उठे थे। उस समयकी सामाजिक दशा भी अत्यन्त शोचनीय थी। भारत-भूमि अनेक कुरीतियोंसे कण्टकाकीर्ण होगई थी। सैंकड़ों चितायें अवलाओंकी सजीव देहोंसे धधक रही थीं। परस्पर ईर्ष्या, द्वेष और जातिविद्रोहने घोरतम रूप धारण किया था। जन-शिक्षणकी आवश्यकताका अनुभव करके अधिकारी और नेतावर्ग उसकी पद्धति पर परस्पर विचार कर रहे थे। ईसाई धर्म्मके पादरी लोग आर्य्यावर्तको ईसाई वनाने के लिए सर्वथा सुसज्जित होकर आ रहे थे। उस समय ईसाई सेनाने गङ्गा और सागरके समीपवर्ती स्थानोंमें अपने दुर्ग निर्माण करके कुछ एक ऐसे प्रारम्भिक शस्त्रपात किये थे कि जिनसे पौराणिक धर्म्मकी अवस्था डाँवाडोल हो रही थी। प्रारम्भमें पादरी लोग लोक-शिक्षा और धर्म्म-दीक्षा दोनोंका प्रचार करते थे। इससे उनके कार्य्यका प्रभाव दिन पर दिन अधिकाधिक होता जाता था। राज-धर्म्म वैसे ही प्रलोभनपूर्ण, आकर्षणकारी होता है; परन्तु जब उसके साथ लोक-हितकी बात भी मिल गई तो वह नव-शिक्षितों

और पश्चिमी सभ्यतामें दीक्षितोंको एक एक करके अपने मन्दिरमें प्रवेश कराने लगा।

आर्य जातिके करोड़ों मनुष्य धर्म्म ग्रन्थोंको पढ़ना तो कहाँ उनके सुननेके भी अधिकारी नहीं समझे जाते थे। कुसंस्कारोंका इतना प्राबल्य था कि विदेश गमन, समुद्र यात्रा और विदेशीके स्पर्श आदिसे ही लोग जातिपतित किये जाते थे। इससे भी अधिक, भारत वर्षमें चारों ओर अविद्या और अन्धेरी रात राज्य करती थी। आर्य्य जातिकी रीति नीतिका आकाश पश्चिमी सभ्यताकी घनघोर घटाओंसे आक्रान्त हुआ जाता था। नवीन संस्कारोंकी झंझा वात पुरातन चाल ढाल, आचार विचारके प्रत्येक पेड़को जड़से कम्पित कर रही थी। इस पर, नवीन धर्म्मकी उक्तियोंकी बाणवर्षा आर्य धर्म्मके मूलाधार स्थलको पोला करनेके प्रयत्नमें थी। परन्तु भारतवासी किंकर्तव्य विमूढ़ होकर आलस्यकी गहरी निद्रामें निमग्न हो रहे थे। कहीं कहीं इस घटाटोपमें ब्रह्मविद्याकी विद्युत् रेखा चमक जाती थी, नहीं तो भारतके भविष्य पर निराशताका गहरा परदा पड़ा हुआ था।

इस अवस्थाकी विद्यमानतामें सम्वत् १८८१ में एक सम्मानित समृद्ध गृहको स्वामी दयानन्दके प्रकाशने प्रकाशित किया।

पहले पुत्रकी प्राप्तिसे माता पिताका हृदय प्रसन्नताके पूरसे प्लावित होगया। संपूर्ण परिवारमें आनन्द मनाया जाने लगा। उत्सवके बाजे बजने लगे। और चारों ओरसे नगरवासी तथा बंधु परिजन बधाई देने लगे। स्वामी दयानन्दके पिताने, अपने यहाँकी मर्यादाके अनुसार, अपने पुत्रके जातकर्मादि संस्कार क्रमशः और विधिपूर्वक किये। और इस शुभ अवसरों पर उसने जी खोलकर दान, मान और दक्षिणासे समागत सज्जनोंको सत्कृत किया।

बालक दयानन्द माताकी प्रेममयी गोदमें, पिताके प्यार पूर्ण हाथोंमें, बन्धु जनोंके स्नेहसहित लालन पालनमें, सुरक्षित अशोकलता और शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी कलाकी भाँति दिनों दिन बढ़ने लगा। जब उनकी आयु पांच वर्षकी हुई तो उन्हें देवनागर अक्षरोंका लिखाना आरम्भ कराया गया। उनके माता पिता

आदि वृद्ध बान्धव उनको कुलाचार और कुलरीति भी शनैः शनैः सिखाने लगे बड़े बन्धुजनोंने उनको बहुतसे स्तोत्र, मंत्र, श्लोक और उनकी टीकायें कण्ठ-स्थ करा दीं।

आठवें वर्षमें स्वामीदयानन्दका यज्ञोपवीत संस्कार यथाविधि बड़े समारोह और महोत्सवपूर्वक कराया गया। उनको गायत्री और सन्ध्याकी उपासना विधि सिखाई गई। उनके पिता यद्यपि उदीच्य वंशीय होनेसे सामवेदान्तर्गत थे। परन्तु इनको उन्होंने रुद्राध्यायकी शिक्षाके अनन्तर यजुर्वेद-संहिता पढ़ानी आरम्भकी। श्री दयानन्दके सभी सगे सम्बन्धी शैव थे। विशेष करके उनके पिता तो पक्के शिवोपासक थे, इसलिए वे दयानन्दको शिवोपासना में प्रवीण करनेकी चेष्टा करने लगे। इनपर शैव सम्प्रदाय के बहुत से संस्कार डाले गये। इनके पिता शैव सम्प्रदायके प्रदोष आदि व्रतोपवास करनेकी प्रबल प्रेरणा किया करते, और कहा करते कि मिट्टीकी शिव-पिण्डी बनाकर उसका प्रतिदिन पूजन किया करो।

सम्वत् १८९० अर्थात् दशम वर्षमें दयानन्द साधारणतया पार्थिव पूजाहीं किया करते थे, पर उनके पिता चाहते थे कि उनका पुत्र नियमानुसार शिवसम्प्रदायका पालन करे। उपवास करके कथा सुनता और जागरण करता हुआ वह निष्ठावान् शैव बन जाय। परन्तु माताका मोह भी कोई वस्तु होता है। दयानन्दकी माता अपने प्यारे पुत्रको क्षुत्पिपासा पीड़ित, कष्टदायक क्रियाकलापसे व्याकुल चित्त देखना नहीं चाहती थी। इसीलिए वह अपने पतिसे साग्रह कहा करती थी कि यह सुकोमल बालक ऐसे कष्टदायक व्रतोपवासों के योग्य नहीं है। इससे भूख नहीं सही जाती। परन्तु स्वामी दयानन्द के पिता बड़ी धारणाके धनी थे। वे उनको शिवोत्सवोंमें और कथादिमें सर्वत्र संग ले जाया करते और समझाते कि शिवोपासना सर्वोत्तम है।

इसी प्रकार जब श्री दयानन्दजी १८९४ में चौदह वर्षकी आयुको प्राप्त हुए तो उस समय यजुर्वेद-संहिता उनके कण्ठ हो गई थी। अन्य वेदोंका भी उन्होंने कुछ कुछ अभ्यास कर लिया था। व्याकरणके भी शब्दरूपावली आदि छोटे

छोटे ग्रन्थ पिताजीसे पढ़ लिये थे। इसी वर्ष स्वामीजीके पिताने उनको शिव-रात्रिका व्रत रखनेकी आज्ञा की परन्तु वे ऐसा करने के लिये उद्यत न हुए। तब उनको इस व्रतके माहात्म्यकी कथा और उससे होनेवाले स्वर्गसुखों के वर्णन सुनाए गये, जिससे उनके हृदय में व्रत करने के लिये रुचि उत्पन्न हो गई। वे प्रतिदिन कुछ प्रातराश किया करते थे, इसलिये उनकी माता आग्रहसे कहती थी कि इसको उपवास न कराओ। इससे उपवास न निभेगा। यदि हठसे निभा भी लिया तो रुग्ण हो जायगा। परन्तु उनके पिताने एक न मानी, और बोले कि कुल-धर्मके अनुसार व्रतादि रखकर शिवार्चन अवश्यमेव करना चाहिये। इस प्रकार स्वामीजी को व्रतोपवास की अनिवार्य आज्ञा दी गई।

दूसरे देशोंकी रीतिसे भिन्न काठियावाड़में फाल्गुनके स्थान यह व्रत माघ वदी १४ को होता है। उस दिन सायं समयही श्री दयानन्दजीको समझाया गया कि आज रात भर तुम्हें जागरण करना होगा। ऐसा न करोगे तो व्रत निष्फल हो जायगा। पूजन का प्रकार भी इन्हें बता दिया गया। इस रात्रि को, नगर से बाहर एक बड़े शिवालयमें नगरके सर्वसाधारण भक्त और प्रतिष्ठित जन जाकर व्रतपूर्वक पूजापाठ, जप और जागरण किया करते थे। स्वामीजी के पिता भी उनको इसी मन्दिरमें ले गये, स्नानादि करके शुचिवदन, रेशमी धोतियां धारण किये, भालपर विभूति रमाये, हाथमें शुद्धोदकपूर्ण कलश और पूजाकी सामग्री लिये शैव भक्तोंकी मण्डलियां एक एक करके सायं समय मन्दिरमें प्रवेश करने लगीं। मन्दिर-प्रवेशिकामें लटके हुए अति गुरु घन्टेको जब भक्तोंने "हर हर बम्म बम्म महादेव" कहते हुए संचालित किया तो उसका "टन टन" नाद शिवालयसे भी ऊंचा होकर शिवरात्रि-जागरणकी सारे नगर में उद्घोषणा करने लगा। सुरीले स्तोत्रों से मन्दिर निनादित हो रहा था। दीपसे सर्वत्र जगमगा-हट थी। धूपकी सुगंधिका पूर सारे शिवालयको पूर्ण करके बाहर के वायु को भी वासित कर रहा था। लोगोंने प्रथम प्रहरकी पूजा बड़े भाव और भक्ति के साथ समाप्त की। दूसरे प्रहरकी पूजा में यथा तथासे काम लिया गया। परन्तु

रात्रिके तीसरे प्रहरके प्रारम्भ होनेपर लोगोंकी आंखें मिचने लगीं, और वे लगे ऊंघमें झूलने। निद्रा-देवी की मायाने सब को मूर्च्छित करके जहां तहाँ सुला दिया। सबसे प्रथम जो किसीको निद्रा आई तो वे थे स्वामीजी के पिता। पुजारी लोगोंने जब देखा कि सारे भक्त सो गये हैं और आनन्द से खर्राटे ले रहे हैं तो वे भी धीरे धीरे मन्दिरके बाहरी भागमें जाकर निद्रामें लीनता लाभ करने लगे।

ऐसे गम्भीर, निस्तब्ध, नीरव, सुनसान समयमें उस शोभन शिवालय की ऊपर की छतको चारों ओरकी दिवालों को, समतल भूमि को, और पूजोपहार सहित शिव-पिण्डीको दो ही ज्योतियां प्रकाशित कर रही थीं-एक तो मन्दिरके दीपककी ज्वलन्त वत्ती और दूसरे जागरूक दयानन्द की उज्वल चित्तवृत्ति। दीपक की बत्ती ग्रहणशक्ति-रहित है, ज्ञान-शून्य है, किसी घटना का परिणाम निकालने में असमर्थ है, वह केवल उजाला ही उगल सकती है, कदाचित् बुझने लगे तो अपने बचानेका उसके पास कोई उपाय नहीं। परन्तु दयानन्द की चमत्कारिणी चित्तवृत्ति ज्ञानवती और ग्रहणशक्ति-सम्पन्न है। उस में अतुल त्वरासे घटना के परिणाम पर पहुंच जानेका सामर्थ्य है। श्री दयानन्द जी पर जब निद्राका आक्रमण होता और उनकी आँखें झिपने लगतीं तो वे नेत्रों पर ठण्ढे पानीके छींटे दे देकर अपने आपको सावधान और सचेत करते। उन्हें भय था कि आँखें लग जानेसे कहीं व्रत निष्फल न हो जाय। पर उनका चित्त आश्चर्यसे चकित हो गया, जब उन्होंने देखा कि शिव-पिण्डीपर- अपवित्र क्षुद्र जन्तु चूहे कूद कूद कर और उछल उछल कर चढ़ते हैं- और उस पर चढ़ाया हुआ भक्तोंका पूजोपहार बड़े आनन्दसे खा रहे हैं। जिस प्रकार मेघमालामें रह कर विद्युत्की रेखा फिर जाती है, और जिस प्रकार वायुसे ताड़ित महासागरमें ऊंचे ऊंचे तरङ्ग उठते हैं- वैसे ही दयानन्दके चिदाकाशमें इस घटनासे संचलित बिचार और प्रश्नोंके तारे एक एककरके चमचमा उठे शङ्कासमाकुल हृदयमें उन्होंने सोचा कि शिव-कथामें तो मैंने सुना है कि शिव त्रिशूल-

धारी हैं, उनका वाहन वृषभ और निवास कैलास है, वह मनुष्याकार धारी देवता, डमरु बजानेवाला अस्त्रसम्पन्न, और वर-शापप्रदानमें समर्थ परब्रह्म है। वह पाशुपतास्त्रसे दैत्योंका संहार करता है, तो क्या वही महादेव यह मूर्ति हो सकती है? अहो! इसके सिरपर तो ये अपावन प्राणी चूहे दौड़ लगा रहेहैं, इसके चढ़ावेको बड़ी निर्भयतासे खा रहे हैं। इसमें तो इस तुच्छ जीवोंको भगानेका भी बल नहीं? यह महादेव कैसा?

दूसरा सर्ग।
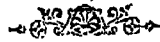
बहुत देर तक उन्होंने इस आन्दोलनको अपने भीतर रक्खे रक्खा। परन्तु उस दिव्य ज्योतिने, जो अन्तरात्मामें स्वभावतः और सहसा संघर्षित हो उत्पन्न हुई थी, उस दिव्य वाणीने जो उन्होंने अन्तःकरणके कानोंसे श्रवण की थी, उन्हें बलात्कारसे उत्तेजित किया कि वे अपना हार्द पिताके समक्ष प्रकाशित करें।

श्रीदयानन्दजीने अपने पिताको जगाकर विना झिझक अपने शङ्कासमूहको उनके सम्मुख उपस्थित कर दिया। और विनय की कि जिस देवका वर्णन मुझे सुनाया गया है क्या उसके समान ही यह मन्दिर की मूर्ति है? अथवा चूहोंसे अवहेलना प्राप्त यह कोई दूसरी वस्तु है? पिताने पुत्रके इन प्रश्नोंको सुनकर क्रोधसे आँखें लाल कर लीं और भर्त्सनापूर्वक कहा—यह बात तू क्यों पूछता है? ऐसे शिवाराधनके समय ऐसा प्रश्न क्यों करता है?" पर जिस महात्माको, अकस्मात् स्वात्माहीमें सत्यसम्प्राप्ति हो गई थी, जो साधारण घटना से असाधारण प्रबोधका धनी हो चुका था, उसके लिये पिताकी कोरी झिड़की प्रश्नका उत्तर न हो सका। जिसको बोलनेके लिये आत्मा प्रेरणा कर रहा था उसका मुख डांट डपटसे बन्द न हुआ। श्री दयानन्द निर्भिक भावसे बोले 'पिताजी जिस महादेव की कथा मुझे सुनाई गई है, वह तो गुणोंसे चेतन प्रतीत

शिवरात्रि जागरण और ऋषिबोध ।

होता है, यदि यह मूर्ति वही महादेव होता तो भला इन भ्रष्ट महामलीन मूषकोंको अपने ऊपर क्यों चढ़ने देता। चूहे उसके शरीर पर सपाटेसे दौड़े फिरते हैं और यह शिर तक नहीं हिलाता, और न इन घृणित जन्तुओंके स्पर्शसे ही अपनेको बचाता है। इस अचेतन महादेवसे मैं उस सर्वशक्तिसम्पन्न चेतन परमेश्वरको समझना असम्भव समझता हूं, यही भेद जाननेके लिए आपको जगा कर प्रश्न पूछा है।"

पुत्रके इन अश्रुतपूर्व प्रश्नोंको सुन पिताने गम्भीरतासे समझाना आरम्भ किया:—"पुत्र! इस कलिकालमें महादेवके साक्षात् दर्शन नहीं होते, इस लिये उसी कैलासवासी शिवकी मूर्ति बनाकर प्राण-प्रतिष्ठापूर्वक पूजन किया जाता है। इन पाषाण आदिकी मूर्तियोंको यदि कोई महादेवकी भावनासे पूजे तो इससे महादेव अपनी पूजाके समान प्रसन्न हो जाता है। 'बेटा! तेरी तर्कबुद्धि बहुत बड़ी है' यह सत्य है कि 'यह तो केवल देवताकी मूर्ति है' साक्षात् देवता नहीं।"

इस पितृ उपदेशसे दयानन्दकी सन्तुष्टि नहीं हुई। उनकी मूर्तिपूजनसे आस्था उठ गई। उन्होंने पिताके वचनोंको एक पर्दावा मात्र, गोलमोल बातसे टाल देना ही समझा। उसी समयसे उन्होंने दृढ़ सङ्कल्प कर लिया कि जब चेतन सत्ताधारी शिवको प्रत्यक्ष देखूंगा तब उसका पूजन करूंगा। इन जड़ प्रतिमाओंको कभी भी नहीं पूजूंगा।

बाल्यकालसे ही, श्री दयानन्दकी यह प्रकृति थी कि वे सहसा किसी बात को ग्रहण नहीं करते थे। पर जब विचारपूर्वक किसी बातको ग्रहण कर लेते तो ऐसे दृढ़ हो जाते थे कि उसके पालनमें, चाहे कैसा भी कष्ट हो, उसे नहीं छोड़ते थे। इसी प्रकार जब ज्ञानसे निश्चय हो जाता कि प्रबल हाथोंसे पकड़ी हुई वस्तु असत्य है, भ्रान्त है, तो तुरन्त, तुच्छ तृणवत् उसका परित्याग कर देते थे। उनके चरित्रके इस चित्रसे यह बात स्पष्ट प्रतीत होती है कि जबतक शिव रात्रिके व्रतादिमें निश्चय नहीं था तो पूज्य पिताकी आज्ञा भंग करनेपर भी उद्यत हो गये, परन्तु जब कथा-श्रवणसे रुचि उत्पन्न हुई तो आधी रातके समय सबके

सो जानेपर श्री दयानन्द आँखोंको जलके छींटे देकर जाग रहा था। और जिस समय अन्तःकरणके आकाशमें सत्यके सूर्यने अपनी किरणका संचार किया तो उन्होंने अपने पिताको स्पष्ट कह दिया कि मैं इस जड़ मूर्तिसे परमेश्वरके विचार प्राप्त करना असम्भव समझता हूं। इतना ही नहीं किंतु निश्चय बदल जानेके पश्चात् उन्हें प्रतीत होने लगा कि क्षुधाके कारण इतनी देर बैठनेसे मैं श्रांत होगाया हूं और इससे मुझमें दुर्बलता आ रही है। अब मन्दिरमें बैठे रहनेका कोई प्रयोजन न रहा, इसलिये उन्होंने पितासे घर जानेके लिये पूछा। पिताने पुत्रकी बुद्धिका चमत्कार अभी ही देखा था, इस कारण अनुमति देते हुए यही कहना उचित समझा कि अच्छा घर जाते हो तो अकेले मत जाओ। सिपाहीको साथ लेकर जाओ, परन्तु भोजन कदाचित् न करना।

भाव बदल जाने पर श्री दयानन्दजी को भूखा रहना असह्य भार ज्ञात होने लगा। इसलिये घर जाते ही कहा, माताजी ? मुझे बड़ी भूख लग रही है। माताने कहा "बेटा मैं तो तुझे पहले ही से कहती थी कि तू उपवास न कर सकेगा, परन्तु तूने बड़ा हठ किया।" इन बचनोंके साथ माताने पुत्रको खानेके लिए मिठाई दी और कहा "तेरे पिता बड़े पक्के शैव हैं। यदि उन्हें व्रत-भंग का भेद ज्ञात हो गया तो वे तुझे-ताड़ना तर्जना करेंगे, इसलिये उनके पास जाकर अपनी भोजनकथा न बताना।" भोजन आदि करके कहीं एक बजेके पश्चात् दयानन्द सोये, इसीलिये सबेरे आठ बजेके पहले उनकी आंख न खुल सकी। प्रातःकाल घरमें पदार्पण करते ही दयानन्दजीके पिताको किसी प्रकार उनका भोजन-वृत्त विदित होगया। वे व्रतातिक्रमणके कारण पुत्रपर अति कुपित हुए, और आवेशमें बोले "तुमने बहुत बुरा काम किया। विनयावनत पुत्रने स्पष्टवादितासे निवेदन किया कि "पिताजी! जब ग्रन्थ-कथित महादेव मंदिर में था ही नहीं तो मैं एक कल्पित बातके लिए व्रतोपवासका कष्ट क्यों सहता" इसके अनंतर उन्होंने अपने प्यारे चचाजीसे प्रार्थना की कि अध्ययनके कारण मुझसे पूजोपवासका आडम्बर नहीं निभ सकता। यह बात आप पिताजीको समझा दीजिए।

श्री दयानन्दके चचा और माताजीने उनके पिताको यह कहकर समझाया कि लड़का पढ़नेमें बड़ा परिश्रम करता है। उसे कठोर कर्मकाण्डमें डालना उसके स्वास्थ्यके लिये हानिकारक होगा। अभी उसे भलीभांति पढ़ने दो। उक्त सम्पूर्ण वार्ताओंको लक्ष्य करके, पिताने पुत्रके यथा रुचि अध्ययन के लिए; प्रसन्नता से अपनी अनुमतिका प्रकाश कर दिया। अब पूजापाठ से खुली छुट्टी मिल जानेके कारण श्री दयानन्दजीने विद्याध्ययन में बहुत अच्छी उन्नति की। अपने स्थानके समीपवर्ती एक विद्वान् ब्राह्मण से उन्होंने निघण्टु निरुक्त और मीमांसादि शास्त्र पढ़ना आरम्भ कर दिया, और साथ ही वे कर्मकाण्डकी 'स्मार्त' पुस्तकें भी पढ़ा करते थे। इस प्रकार वे सारा समय शास्त्रानुशीलनमें व्यतीत करते थे। दो छोटी वहिनें और दो छोटे भाई, ये सब मिलकर श्री दयानन्द जी पांच वहिन भाई थे। सब वहिन भाई परस्पर सुदृढ़ स्नेहसूत्र सम्बद्ध और गाढ़ अनुराग रञ्जित थे। ऐसे बहिन भाईयोंके प्रेममय स्वर्गीय सुखका अनुभव करते हुए और विद्याध्ययन से अपने अन्तः करण के कोशको भरते हुए श्री दयानन्दजी सोलहवें वर्षको प्राप्त हुए।

सम्वत् १८९६ विक्रमी में जब वे सोलहवें वर्षको अतिवाहित कर रहे थे तो एक रात उन्हें अपने बन्धुओं सहित एक इष्ट मित्रके यहां नृत्योत्सवमें जाना पड़ा। उत्सवको आरम्भ हुए अभी बहुत देर न हुई थी कि श्री दयानन्दजीके घरसे एक नौकर बड़े वेगसे दौड़ा हुआ आया। उसने हांपते हांपते आकर समाचार दिया कि उनकी चौदह वर्षीया छोटी भगिनी को विशूचिका हो गई है। इस समाचारने दयानन्द और उनके कुटुम्बियोंपर वज्रपात किया। वे सब वहांसे उठ तुरन्त घर पहुंचे। सारा परिवार रोगिनी की सेवा-शुश्रूषा में लग गया। वैद्य लोग अपने सारे विद्याबलसे चिकित्सा कर रहे थे, पर रुग्णाकी दशा पल पलमें शोचनीय होती गई। उस आसन्नमरणा कुमारीके सुकोमल तनको, मत्तहस्तिद्वारा उत्पाटित और प्रखर आतपद्वारा तापित कमलिनीके सदृश कुम्हलाते और क्षण क्षणमें मूर्च्छा खाते देख पास खड़ी ममतामयी माताका कलेजा

काँप उठा, पिता व्याकुल चित्त हो गया, सबपर उदासीनता छा गई और सारे परिवारकी आँखें डबडबा आई। लाख यत्न किये, बहुतेरा बल लगाया पर 'कर्म-गत टारी नाहिं टरे।' अन्ततः सकल सम्बंधी समूहकी उपस्थितिमें, चार घण्टों के भीतरही, भाई बहिनोंकी स्नेहलता सदा के लिए सूख गई, माता-पिता की प्रियपुत्रीके प्राणपँखेरू उड़ गये, कुलदीपिका, अकालही में कालकी विकट वायु से शान्त हो गई।

जिस समय इस दुःखद दुर्घटनासे सकल परिवारके नेत्रोंसे अविरल अश्रु धारायें बह रही थीं, रोने पीटनेसे हाहाकार मचा हुआ था, रो रोकर हिचकियाँ लेते लेते माता की घिघी बँध गई थी और सर्व स्नेही वर्गपर शोक का सागर उमड़ आया था, उस समय एक दयानन्दही था जो मृता भगिनी की शय्याके समीपवर्ती दिवालसे लगा हुआ अश्रु विहीन नेत्रोंसे चुपचाप प्यारी बहिनके शव को एकटक देख रहा था। उसके चित्तकी गहरी चिन्ताको न पहचानकर बन्धु-ओंने उसपर बहुतेरे कटु कटाक्ष किये, पिताने पाषाण हृदय कहा, यहाँ तककि सदा प्रेम प्रदर्शित करनेवाली माताने भी यही शब्द दुहराये, परन्तु दयानन्दके सम्मुख उस घटनाने एक ऐसी समस्या उपस्थित करदी थी कि जिसकी पूर्तिके लिए उनका चित्त चंचल हो उठा था।

जैसे वायुका तीव्र वेग नौकाके मुखको फेर देता है, जैसे विशाल चट्टानसे टक्कर खाकर नदीका बहाव बदल जाता है, ऐसे ही इस अदृष्टपूर्व घटना को देखकर श्रीदयानन्दकी चित्तवृत्तियां अपने क्लिष्ट प्रवाहको क्रमशः वदलने लगीं। विद्युत्पातसे कम्पित मनुष्यकी भाँति भयभीत दयानन्द सोचने लगे अहो! मेरी बहिनकी तरह सभी लोग एक एक करके, अवश्यमेव विकराल कालके गालमें ग्रास बनेंगे। निश्चय मुझे भी उसी मार्गका अनुसरण करना पड़ेगा। मृत्यु ऐसी अवश्यम्भावी है कि इससे, छोटा बड़ा कोई भी जीव बच नहीं सकता। हा!! यह असह्य वियोग-वेदना सबको सहनी होगी। यह दुर्दिन जीवमात्रको देखना होगा। सचमुच, यह जीवन क्षण-भंगुर है, जलबुद्‌बुद्वत् चंचल है, संध्या

रागकी भाँति अस्थिर है, पलाश पत्रपर पड़े ओसकणकी तरह चलायमान है। तब तो कोई ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे जन्म मरण के दारुण दुःख से मुक्तिलाभ हो, अमरजीवनकी उपलब्धि हो।

दो अरणियोंके मथन से जैसे अग्नि उत्पन्न हो आती है, उचित वस्तुओंके मिश्रण और संघर्षणसे जैसे विद्युत् बहाव वह निकलता है ऐसे ही मृत्युघटना से संचालित दयानन्द-चित्तमें, चिर कालके निरन्तर चिन्तनरूप संघर्षणसे विवेक विद्युत्की रेखाका उदय हो गया-वैरागकी ज्वलन्त ज्वाला उछलने लगी, जिसने प्रकट होते ही दयानन्दकी चित्तभूमि से सांसारिक वासनाओं के घास-पात को भस्मसात् करना आरम्भ कर दिया।

कुलकी रीतिके अनुसार पाँच दिन तक सहानुभूति करने वाले लोग आते जाते रहे और घर में रोना-धोना बना रहा, परन्तु दयानन्द के हृदय-स्रोत को मृत्युके भय और वैराग्यकी आगने इतना शुष्क कर दिया था कि लोगों के धिक्कारने पर भी उनकी आँख गीली नहीं हुई। वे रात दिन चुप्पी साधे अपनी चिन्तामें चूर रहते। बड़ी रात बीत जानेपर भी जब वे न सोते तो उन्हें बन्धु-जन सोनेके लिए प्रेरणा करते, परन्तु भला इतनी चिन्ता, इतनी अशान्ति में नींद कहाँ! बिछोनेपर पड़े बार बार चौंक पड़ते। इस मृत्युव्याधि के नाशकी औषधि कहाँ मिलेगी? अमरजीवनके लिए कौनसे उपायोंका अवलम्बन करना चाहिए? मुक्ति-मार्ग में किसका भरोसा किया जाय? इत्यादि विचारों में वे रात दिन निमग्न रहते। अन्तमें दयानन्दजी ने यह दृढ निश्चय कर लिया कि जैसे भी हो, मुक्ति हस्तगत करूंगा और मृत्युके मुखसे छुटकारा पाऊँगा, इस धारणाके साथही उनके मनसे संसार का अनुराग दूर हो गया, उनका चित्त स्वस्थ हो गया, और उसमें उत्तरोत्तर उत्तम विचारों की उन्नति होने लगी।

महात्माओंके महत्वको सम्पादन करनेवाली प्रायः घटनायें ही हुआ करती हैं। बुद्धदेवको भी मृतककी ऐसी ही एक घटना देखकर वैराग्य उत्पन्न हुआ था, परन्तु उपर्युक्त घटनासे जो वैराग्य दयानन्द को हुआ, विरक्तिकी जो आग

उनके भीतर प्रकट हुई, उसमें एक विशेषता थी। वह यह, उन्होंने उसी समय धारण करली कि चाहे जो हो,मैं अब इस वैराग्य-अग्निपर सांसारिक स्नेह और सांसारिक सम्बंधका गीला ईंधन और हरी घास डालकर इसे धूमायमान नहीं बनाऊँगा। परन्तु इन विचारोंको उस समय प्रकट करना उचित न जानकर वे अपने पढ़ने लिखने में यथापूर्व लगे रहे।

सम्बत् १८९९ श्री दयानन्दजीकी आयुका उन्नीसवां वर्ष था। इस वर्षमें उनसे अति प्रेम करने वाले उनके धार्मिक तथा विद्वान् चचा विशूचिका महा रोगके चंगुलमें फंस गये। बहुत उपचार किये पर एक भी सफल न हुआ। अपने परम प्रिय और पूज्य चचाको भयङ्कर रोगसे पीड़ित देख दयानन्दका हृदय दुःखसे विदीर्ण हुआ जाता था। जिस समय काल महासागरमें रोगीकी डूबती हुई नाड़ीनौकाको बन्धु-बान्धवजन उङ्गलियोंसे टटोल रहे थे, उसी अन्त समयमें म्रियमाण चचाने अपने भतीजे दयानन्दको समीप बुलाकर बैठनेका संकेत किया। आरम्भ कालसे, प्रयत्नपूर्वक लालित पालित अपने प्रेम-पात्र भ्रातृपुत्रसे सदाकी विदाई लेते समय उनकी आँखोंसे आँसू टप टप करके गिर पड़े। उनकी यह दशा देखकर दयानन्द अधीर हो गये, और करुणक्रन्दन करते हुए फूट फूट कर रोने लगे, यहां तक कि रोते रोते उनकी आँखें भी सूज गईं। उन्होंने अपने सारे गत जीवनमें इतना रोदन कभी न किया था। यह दूसरी घटना, दयानन्दके वैराग्य-दावानलके संग पवनका प्रसंग था, उनकी संवेग नदीका वेग बढ़ानेमें महामेघका वर्षण था, उनके विरक्ति अग्नि-कुण्डमें घृत-धाराका पात था।

उन्होंने देखा कि यहसम्पूर्ण दृश्य असार है। यहां स्थायी कुछ भी नहीं। भावीसे खींचे हुए सभी प्राणी कालके गालमें जा रहे हैं और अन्तको मेरी देह भी मरण धर्मा है। अपने इन भावोंको उन्होंने माता पिताके सामने तो प्रकट न किया परन्तु इष्ट मित्रों और विद्वत्सज्जनोंसे जिज्ञासा करने लगे कि अमरपद-प्राप्तिके उपाय बताइये।

पण्डित लोगोंने जिज्ञासुको परमपद-प्राप्तिका उपाय योगाभ्यास बताया।

उत्कट लगनसे प्रेरित होनेके कारण दयानन्दके मनमें योगाभ्यासकी धुन समा गई। वे मन ही मन कहने लगे कि यह योग घर बारके काम-काजमें मोह-ममता के जगड्वालमें सिद्ध नहीं हो सकेगा, अतएव गृह त्यागकर कहीं चलना चाहिये। इस निश्चयके पश्चात् उन्होंने अपने मित्रोंको अपना मनोगत भेद खोलकर बता दिया। उन्होंने कहा "मैंने यह निश्चित कर लिया है कि यह संसार सार रहित है। इसमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं जिसके लिये जीनेकी इच्छा की जाय, और वास्तवमें कोई भी मनोज्ञ वस्तु नहीं जिसमें मन लगाया जाय मैं इसे रसरहित और फीका समझता हूं।" इष्ट मित्रोंने यह वार्ता उनके माता-पिताको बता दी।

इतिहासोंमें ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जहां दयानन्द ऐसे वैराग्यवान् वीरों को स्नेह-बन्धनमें बांधनेके लिये, बन्धुवर्ग विवाह श्रृङ्खलाको सर्वोत्तम समझते आये हैं। इसी परम्पराप्राप्त पद्धति पर श्री दयानन्दजीके माता पिता आरूढ़ हो गये और लगे शीघ्रतासे उनके विवाहका उद्योग करने। उन्होंने स्थिर कर लिया कि बीसवें वर्षमें ही पुत्रका विवाह कर दिया जाय। यह वैराग्यकी आग अनुरागकी बदलीके बरसने पर आपही शान्त हो जायगी। श्री दयानन्दजीको जब ज्ञात हुआ कि उनको सदाके लिये जकड़नेके निमित्त, एक प्रबल पाश प्रस्तुत करनेका प्रस्ताव होगया है तो उन्होंने मित्रों द्वारा इसका घोर विरोध किया। इससे विवश हो, उनके पिताको उस वर्ष विवाह-कार्य रोक देना पड़ा।

श्री दयानन्दजी निश्चिन्त नहीं थे। उन्हें भय था कि इक्कीसवें वर्षके आरम्भ होते ही विवाहकी चर्चा फिर चलेगी। उस समय उसका टालना कठिन कार्य हो जायगा। इसलिये सम्वत् १९०० में बीसवें वर्षकी समाप्ति पर ही उन्होंने पूज्य पितासे प्रार्थना करना आरम्भ कर दिया कि मुझे व्याकरण, ज्योतिष, और वैद्यकके ग्रन्थ पढ़ना है। कृपया मुझे काशीजी भेज दीजिये क्योंकि इन ग्रन्थोंकी पढ़ाई वहीं अच्छी होती है। जो माता पिता यह जानते थे कि पुत्र वैराग्यवान् हो गया है और गृह त्यागके अवसर ढूंढ रहा है भला वे काशी गमन कब स्वीकार करने लगे थे। उन्होंने कहा "हम तुम्हें काशी कभी न भेजेंगे

जो कुछ अध्ययन कर चुके हो वही पर्याप्त है। अधिक पढ़कर क्या करोगे और बहुत पढ़ाकर हमने करना भी क्या है? तुम्हारे विवाहमें और थोड़े दिन शेष हैं। तुमने गृहस्थ बनना है इसलिये काम-धन्धेमें जी लगाना सीखो।" माताने तो स्पष्ट कह दिया "बेटा! मैं अच्छी तरह जानती हूं कि बहुत पढ़े हुए लड़के विवाह करना उचित नहीं समझते। तुम्हारे काशीगमनमें भी यही झलक है।" फिर श्री दयानन्दजीने पिताजीसे तीन वार साग्रह कहा कि काशीमें विद्याध्ययन करके जब तक मैं पूर्ण पण्डित न हो जाऊं उसके पहले विवाह होना ठीक नहीं परन्तु माताजी उनके इस आग्रहसे उनके काशी-गमनके और भी विरुद्ध हो गईं और कहने लगीं "हम तुम्हें कहीं नहीं भेजते अब तो बेटा, शीघ्र ही विवाह करेंगे" यह सोच कर कि अधिक आग्रह करनेसे कार्य कभी सिद्ध नहीं होता किन्तु बिगड़ जाया करता है, श्री दयानन्दजी चुप हो गये और माता पिताके सामनेसे टल गये। पुत्रको अन्यमनस्क, उदासीन देखकर पिताने भूमि-सम्बन्धी कार्य करनेकी आज्ञा दी परन्तु उन्होंने उसे स्वीकार न किया।

वैराग्यवान् श्री दयानन्दजीको घरमें एक एक दिन भारी प्रतीत होता था, इस लिये वे फिर कुछ दिनोंके बीतनेपर पिताजीसे बोले "आपने मुझे काशी जाने से रोका इसमें मेरा कुछ आग्रह नहीं, परन्तु इतना तो मान लीजिये कि यहाँ से तीन कोसपर अपनी जातिके एक वयोवृद्ध बहुत बड़े विद्वान् रहते हैं उन्हींके पास जाकर पढ़ा करूं।" वहां अपनी भूमिहारी है इसलिये कोई कष्ट भी न होगा। इस प्रस्तावको पिताजीने स्वीकार कर लिया, और श्री दयानन्दजी उन प्रशंसित पण्डितजीके पास जाकर पढ़ने लग गये। कुछ काल बीत जानेपर वे एक दिन प्रशंसित पण्डितजीसे वार्तालाप कर रहे थे कि बीचमें विवाहका प्रसङ्ग छिड़ गया। उस समय दैवयोगसे उनके मुखसे ये शब्द निकल गये—"मुझको विवाहसे ऐसी घृणा है कि जो किसी प्रकार मेरे मनसे दूर नहीं हो सकती।" विवाहसे घृणाकी बात यदि पण्डितजीके पास ही रहती तो उनका पाठ तो चलता रहता, परन्तु श्री दयानन्दजीकी पाठशालासे निकलकर उनके पिताजीके

कानों तक पहुंच गई। इसपर पिताने पुत्रको तुरन्त अपने पास बुला भेजा, और शीघ्रतासे विवाहका उद्योग करने लगे। श्री दयानन्दजीने घर आते ही देखा कि उनके विवाह सम्बन्धी वस्त्राभूषण प्रस्तुत हो रहे हैं नाना प्रकारकी सामग्री विवाहके लिये एकत्रित की जा रही है। यह सब कुछ देखकर वे भौंचक हो गये। उनका चित्त चञ्चल हो उठा।

श्री दयानन्दजीके मनमें जो वैराग्य समाया हुआ था उसके साथ उनका कोई इष्ट मित्र सम्मत न था। सब उनके विवाहके पक्ष पोशक थे। चर्म-चक्षुओंसे अपना कोई सहायक न देखते हुए, वे अपने गम्भीर हृदय-सरोवरमें गहरी डुबकी लगाकर, मन ही मन विचारने लगे कि मेरे विद्योपार्जनका द्वार अब बन्द किया जाता है। यदि मैं गृहमें रहा तो अब मेरे माता पिता मेरा विवाह किए विना न रहेंगे। ये जितने लोग मेरे विवाहके बाँधनू बाँध रहे हैं, मेरा ब्रह्मचर्य-व्रत भंग करना चाहते हैं, मेरा भविष्य विगाड़ना चाहते हैं। ऐसे सोच विचारके अनन्तर श्री दयानन्दजीने निश्चय कर लिया कि वे कुटुम्बियोंके इस कथनपर नहीं चलेंगे, किंतु अब वह काम करेंगे जिससे जन्म भरके लिये विवाहके बखेड़ेसे बच जाँय। इस मनोरथको वे किसीपर प्रकट नहीं करते थे किन्तु अनुकूल अवसरका अवलोकन करते थे कि कब इसे पूरा किया जाय। इधर विवाहका उद्योग आरम्भ हुए भी एक मास होने लगा। सारी विवाह-सामग्री प्रस्तुत हो गई।

तीसरा सर्ग।

सारे इष्ट मित्र, बंधुबान्धव और मेली जोली श्रीदयानन्दका विवाहोत्सव देखनेके उत्सुक हैं। दूरवासी सम्बन्धियोंके आनेका समय भी समीप आ गया है। एक समृद्धिशाली गृहस्थका विशाल गृह आङ्गन स्वच्छ सुसज्जित हो गया है। वस्त्राभूषण सब सजा कर रक्खे जा रहे हैं। अनेक प्रकारके महोत्सवयोग्य भोज्य पदार्थ एकत्र करनेके लिये पूरा प्रयत्न किया जारहा है। पिता सुप्रसन्न हैं। माता

के आनन्दकी सीमा नहीं। घरके सब छोटे बड़े हर्षित हृदय और प्रफुल्ल वदन हैं। ऐसा जान पड़ता है मानों इस गृहमें आज कोई प्रसन्नताका स्रोत बह निकला है। सारा परिवार हर्षसे फूला नहीं समाता पर दयानन्द गहरे विचारमें निमग्न हैं। उनके मुख-मण्डलपर चित्तसे उठी हुई चिंताओंके मेघ मंडला रहे हैं। वे विकसित नेत्रोंसे देख रहे हैं, जाग्रत मनसे जान रहे हैं कि सामने दृश्यमान संध्याराग जैसे मुहूर्त्त भरमें पश्चिम दिशाके नीलाकाशमें लीन हो जायगा, इसी प्रकार इन सम्बन्धियोंकी यह प्रसन्नताकी लालिमा भी थोड़ी देर पीछे शोककालकी काली घटाओंमें छुप जायगी।

वह १९०२ का सम्वत् था। उनकी आयु बाईस वर्षकी हो चुकी थी। एक दिन सायं समय उनका मन सम्बन्धियों के ममता-मोह से उठ गया, अनुराग रज्जु आजन्मके लिये टूट गया। उन्होंने यह कहते हुए "फिर लौट कर घर न आऊंगा" वासना-समूह की पूर्णाहुति दे दी, और वे चुपचाप, एकाएक अपने समृद्ध गृहसे चल निकले। विवाहोत्सवसे सुशोभित धनधान्य पूर्ण गृहको माता पिताके पूर्ण प्रेमको, सज्जन सम्बन्धियोंके सरस स्नेहको, और सबसे बढ़कर यौवन अवस्थाके सामने खड़े विकसित अबाध्य वसन्तको सर्वथा परित्याग कर देना-तिलाञ्जलि दे देना-श्रीदयानन्दकी गहरी लगन और तीव्र वैराग्यको, प्रदर्शित करता है। वे घरसे इसीलिये निकले कि सर्वथा स्वतन्त्र होकर मृत्यु महारोगकी महौषधि ढूँढें, और अमर जीवन प्राप्त करें।

सुनसान रातके समय, अनिश्चित स्थानको एकाएकी जाते हुए नवीन त्यागी दयानन्दके हृदयमें क्या क्या भाव उद्भव हुए, उन्हें दो ही सत्तायें जानती हैं। एक तो दयानन्दका अपना अमर आत्मा, और दूसरे प्रभु परमात्मा।

श्री दयानन्दजीने गृह त्यागकी पहिली रात्रि अपने नगरसे छः कोसके अन्तर पर व्यतीत की। अभी रात्रिका एक प्रहर शेष था कि वे फिर यात्राके लिये सन्नद्ध हो गये। उन्होंने, सायंकालसे पूर्व बीस कोसपर एक ग्राममें पहुंच कर विश्राम लिया। यहां उन्होंने हनुमान् के एक मन्दिर में रात्रिकाल बिताया।

उन्होंने अपनी यात्रामें चातुर्यसे काम लिया। वे प्रसिद्ध मार्गपर न चलकर एक ऊँचे नीचे विषम पथसे जाते थे कि कहीं कोई जानपहचानवाला सामनेसे न मिल जाय।

उधर जब माता आदिने किसी प्रकार जान लिया कि दयानन्द अचानक कहीं चला गया है तो वे भौंचक हो गये। उनपर मानो एक भीषण वज्रपात हुआ। पिताकी व्याकुलताका ठिकाना न रहा। जननी जलहीन मीनकी भांति तड़पने लगी। बन्धुवर्गके मस्तिष्कोंको उनके हृदयसे उछलते हुए शोक-तरङ्गोंने निमग्न कर किया। विवाह-सम्बन्धी सारा ठाठ-बाट, साज-सामग्री राग-रंग सहसा फीका होगया। घरबार, द्वारदिवाल, सबपर उदासीनता छा गई। अन्वेषण-कार्य तुरन्त आरम्भ कर दिया गया। चारों ओर घुड़चढ़े और पदाति सिपाही दौड़ाये गये। जहां जहां श्रीदयानन्दजी के जानेकी सम्भावना हो सकती थी वहां वहां खोजनेवाले पहुंचे। परन्तु मानसरोवरकी यात्राके लिए, पिंजड़ा तोड़कर निकले हुए राजहंसका कोई भी पता न चला।

श्रीदयानन्दजी जिस समय टेढ़ेमेढ़े मार्गों से तीसरे दिनकी यात्रा कर रहे थे, तो मार्गमें एक राजपुरुष द्वारा उन्हें भी ज्ञात हो गया कि अमुक पुरुष के भागे हुए पुत्रकी खोजमें कुछ घुड़चढ़े और प्यादे यहां तक आये थे। यह सुनकर वे और आगे जानेके लिये अग्रसर हुए।

उसी दिन मार्गमें उनको साधु-वेषमें एक ठगोंका दल मिला। उनमें से एक वैरागी बाबा बनकर मार्गमें मूर्ति स्थापित करके बैठा हुआ था। उसने प्रथम तो श्रीदयानन्द नवीन यात्रीसे उसकी यात्राका कारण पूछ लिया और फिर लगा इनको चिढ़ाने—"देखो त्यागी बनने चला है। हाथकी अंगूठियां तो छोड़ीही नहीं गईं, वैराग्य-सिद्धि क्या धूल करोगे। भला, कभी ऐसे वस्त्राभरण वालेको भी सिद्धि प्राप्त होती है? इस लिये सारा भूषणालङ्कार मूर्त्तिजी के आगे चढ़ादो। इससे तुम्हें दो लाभ होंगे। एक देवार्चन से पुण्य, दूसरे सर्वत्याग से वैराग्य-सिद्धि।" जिस महात्माने ऐरावत हाथी त्याग दिया वह उसके बांधनेके रस्सेसे कब स्नेह करने लगा था। उन ठगोंके चिढ़ानेसे उन्होंने अंगू-

ठियां अंगुलियोंसे उतार कर उन कपटवेषधारियों के आगे फेंक दीं और अपने मार्गपर चल पड़े।

पर्यटन करते हुए श्रीदयानन्दजीने लोगोंसे सुना कि सायले नामक ग्राम में एक विचारवान् व्यक्ति, लाला भक्त रहता है वहाँ अन्य भी अनेक साधु-सन्त विराजते हैं। इस जिज्ञासासे कि सम्भव है वहां कोई मुक्तिका मार्ग जानने वाला मिल जाय, वे वहां पहुंचे। इस ग्राम में उन्हें एक ब्रह्मचारी मिले, जिन्होंने प्रेरणा की कि तुम नैष्ठिक ब्रह्मचारी बन जाओ। ब्रह्मचारीजी के कथनको श्रीदयानन्दजीने स्वीकार कर लिया। उसके पश्चात् ब्रह्मचारीजीने उन को दीक्षा देकर काषायवस्त्र धारण कराए। एक तूम्बा हाथमें अवलम्बन कराया और आदेश किया कि आजसे आपका नाम "शुद्धचैतन्य" हुआ। इसके अनन्तर ब्रह्मचारी श्री शुद्धचैतन्यजी उन्हीं साधु-सन्तोंकी मण्डलीमें मिलकर वहीं कुछ योग-साधनमें भी प्रवृत्त हो गये। एक रातका वर्णन है कि श्री शुद्धचैतन्यजी मठसे बाहर एक विशाल वृक्षके नीचे बैठे हुए आराधना कर रहे थे। इतनेमें पेड़पर पक्षियोंकी एक विलक्षण "घू घू" ध्वनि उस गहरी रातमें गूंजने लगी। ब्रह्मचारीजीने बाल्यावस्थामें माँ बापसे भूत प्रेतके भ्रमयुक्त संस्कार ग्रहण किये थे, वे सहसा उद्भूत हो आये, और भूत-भय समझ कर वे मठ में प्रविष्ट हो गये।।

नवीन काषायाम्बरधारी ब्रह्मचारीजी बहुत दिनों तक श्रीलाला भक्तके मठमें योगाभ्यासादि साधन करते रहे, परन्तु यह देखकर कि उनकी वास्तविक कामना यहाँ पूर्ण न हो सकेगी, वे उस मठसे प्रस्थान करके कोट काङ्गड़ा नामके एक छोटेसे नगरमें आ पधारे। यह स्थान अहमदाबाद के समीप, गुजरात प्रान्तके एक छोटेसे राज्यके अन्तर्गत है। उस गांवमें बहुतसे वैरागी वास करते थे। वहीं, एक राणी भी वैरागियोंके फन्देमें फँसी हुई उनके पास रहती थी। श्री शुद्ध-चैतन्यजीको गेरुए वस्त्रोंमें देखकर वैरागियोंने उनकीहँसी उड़ाई, और वैरागी-जमातमें मिलजानेकी प्रेरणाकी, इनकी रेशमी धोतियोंपर वैरागियोंने आक्षेप किया। श्री

ब्रह्मचारीजीके पास उस समय तीन रुपये शेष थे। उनसे उन्होंने नई सादी धोतियाँ लेकर, वे रेशमी धोतियाँ वहीं फेंक दी, और वैरागियोंकी अबोध जमात से वे पृथक् किसी अन्य स्थानमें निवास करने लगे। उस स्थानमें उन्होंने तीन मास बिताए।

कोट काङ्गड़ामें, उस समय सिद्धपुरमें कार्तिक मासमें होनेवाले मेले को बड़ी चर्चा हो रही थी। मेलेका होना सुनकर शुद्धचैतन्यजी इस भावनासे कि सम्भव है, भाग्यवशात् वहाँ किसी योगीजनका मंगल मिलाप उपलब्ध हो जाय, सिद्धपुरकी ओर चल पड़े। गाँवसे थोड़ी ही दूर जाने पाये थे कि उन्हें एक ग्रामीण वैरागीसे साक्षात् हुआ। वह उनका परिचित था और उनके सारे कुल को भी अच्छी तरहसे जानता था। गृह-त्यागके अनन्तर चिरकाल पश्चात् शुद्ध चैतन्यजीने एक स्वस्नेही व्यक्तिका अवलोकन किया, इसी लिए, उसे देखकर उनका हृदय उमड़ पड़ा और उनकी आँखोंसे टप टप आँसू गिरने लगे। उन्हें देखकर यही दशा वैरागी की हुई। वैरागीने ब्रह्मचारीजी के मुखसे उनके गृह-त्यागकी सारी कहानी श्रवण की। उनके मार्गकी सम्पूर्ण घटनाओं को सुना। काषायवस्त्र धारण करनेके कारणको भी जाना। प्रथम तो ब्रह्मचारीजीके वेष-पर वैरागीजीको हँसी आ गई। परन्तु तुरन्त गम्भीर होकर उनके इस प्रकार घरसे निकल भागनेपर उसने अतीव खेद प्रकट किया और इस कार्य्यके लिए उन्हें धिक्कारा भी। अन्तमें दुःखित होकर वैरागीजीने पूछा—"क्या तुमने घर छोड़ दिया? अब गृहपर न जाओगे?" शुद्धचैतन्यजीने प्रथम-मिले स्नेहीको स्पष्ट उत्तर दिया--"हाँ मैंने गृह-त्याग दिया है। कार्तिकके मेलेपर सिद्धपुर जाऊँगा।" वे इन्हीं बातोंको करते करते, अन्तमें एक दूसरेसे पृथक् होगये; और श्रीशुद्ध-चैतन्यजी ग्रामाँनुग्राम विचरते हुए कुछ कालान्तर में सिद्धपुर आ पहुंचे। वहाँ उन्होंने नीलकण्ठ महादेव के मन्दिरमें आसन किया, इस मन्दिरमें पहि-लेहीसे कई दण्डी स्वामी और बहुतसे ब्रह्मचारी विराज रहे थे। शुद्धचैत-न्यजी, उन समीप-वासी सन्तोंका सत्संग तो करते ही थे, परन्तु यदि, वे सुनते

कि अमुक स्थानमें कोई अभ्यासी आत्मज्ञानी महात्मा विराजते हैं, तो तुरन्त वहीं पहुंच जाते। समादरसे, नम्र भावसे, उनके आगे योग-विद्याकी जिज्ञासा करते।

जहां सिद्धपुरके मेलेमें आए हुए सहस्रों जन इष्ट मित्रोंसे मिलते थे, इधर उधर मार्गों में भ्रमण करते फिरते थे, मेलेकी शोभाको निहार रहे थे, क्रय-विक्रयमें लगे हुए थे, हास्य-विलासमें लीन थे, आमोद-प्रमोदमें मग्न थे, खान-पान और शयनमें सुख मानते थे, वहां वैराग्यके रंगमें रंगे हुए, सच्ची लगनसे प्रेरित, धुनके धनी ब्रह्मचारी श्रीशुद्धचैतन्यजी एक एक कुटियापर चक्कर लगा रहे थे, एक एक महात्माके आसन पर जाकर सिर झुकाते थे, इस लिए कि किसीसे भव-भय-भंजिनी भगवती योगविद्या प्राप्त हो, और अमर जीवनका मार्ग मिले।

उधर, उस वैरागीने जो उन्हें कोट काङ्गड़ा गाँवसे निकलतेही मिला था, स्वस्थानपर जाकर पत्र द्वारा उनके पिताको सूचित कर दिया कि तुम्हारे पुत्रने गृहत्याग कर काषायम्बर धारण कर लिए हैं और अब वह सिद्धपुरके मेलेपर गया है। यह समाचार पाते ही, उनके पिता चार सैनिकों समेत सिद्धपुर आ पहुंचे और मेलेमें घूम घूम कर अपने पुत्रको ढूँढने लगे। एक दिन, प्रातःकाल, उनके पिता एकाएक उस शिवालयमें आ खड़े हुए जिसमें कि उनका पुत्र गेरुए वस्त्र धारण किये सामने बैठा था। पुत्रको इस दशामें देखकर उनके कोपका पार न रहा। उनकी आंखें रक्तवर्ण हो गई। वे कड़कती हुई वाणीसे बोले "तूने सदैवके लिये हमारे बंशको दूषित कर दिया। तू हमारे कुलको कलंक लगाने वाला जन्मा है।" आवेशमें उन्होंने और भी बहुत कुछ ऊंचा नीचा कहा। ब्रह्मचारीजी कोप से भीत होकर अपने पिताकी ओर नेत्र भरकर देखने का भी साहस न कर सकते थे। उन्हें उस समय पिताकी ताड़ना से त्राण प्राप्त करने का एक ही उपाय सूझा और वह यह कि उन्होंने आसन से उठकर पिताके दोनों चरण पकड़ लिए, साथ ही प्रार्थना की कि गृह-त्याग, मैंने धूर्त्त लोगोंके

सिद्धपुरके मेलेमें शुद्धचैतन्य ब्रह्मचारी और पिताजीसे अन्तिम भेंट

बहकानेसे किया है। मैं अपने इस कर्मका पर्याप्त फल पा चुका हूं। मैंने दुःख उठाए हैं। आप शान्त हूजिये। मेरे अपराधोंको क्षमा कीजिए। मैं तो यहांसे घर ही आनेको था परन्तु यह भी अच्छा हुआ जो आप आ गये हैं। जब आज्ञा करें, मैं प्रसन्नता पूर्वक आपके साथ चलने को उद्यत हूं।

परन्तु पिताकी प्रचण्ड कोपाग्नि ऐसी न थी कि शीघ्र ही शान्त हो जाती। उन्होंने झपटकर ब्रह्मचारीजीके गेरुए कुरतेको हाथसे पकड़ा और बलपूर्वक खींच कर उसकी धज्जियां उड़ा दीं, साथ साथ शतशः दुर्वचन-वृष्टि भी करते गये। श्वेत वस्त्र पहराकर वे उन्हें अपने ठहरनेके स्थानपर ले गये, वहां ले जाकर भी बहुत कटु वचन कहे और यह कहा कि तेरी माता तेरे वियोग के कारण रो रो कर मर रही है और तू ऐसा कठोर हृदय है कि मातृ-हत्या करना चाहता है। पुत्रने अति अनुनय विनयसे कहा कि अब निश्चित हो जाइए। मैं आपके संग चलकर माताजीके दर्शन करूंगा। पर पिता निश्चिन्त नहीं हुए। उन्होंने पुत्र पर कड़ा पहरा लगा दिया। सैनिकोंको आज्ञा दी कि इस निर्मोहीको अकेले कहीं आने जाने न दो, सदा इसके सङ्ग रहो। रात भर जागते हुए इसे अपनी दृष्टिमें रक्खो। इस प्रकार श्री शुद्धचैतन्यजी अपने पूज्य पिताके आदेश से दृष्टिबन्ध तो हो गये, परन्तु गृह-त्याग और अमर जीवनकी प्राप्तिकी धुनमें वे उतने ही पक्के थे, जितने, अपने प्रयत्न में उनके पिता।

ब्रह्मचारीजीको उस समय अपनी उद्देश्य-सिद्धिका जो भी मार्ग सूझा, वे उसपर चलनेसे, केवल यही नहीं कि हिचकिचाये ही न हों किन्तु उन्होंने उस का पूरा पूरा उपयोग भी किया। इधर पिताजीको भरसक यत्नसे विश्वास दिलाते रहे कि मैं अवश्यमेव गृहपर चलूंगा और उधर यह सोचते-विचारते रहे कि जिस समय अवसर अनुकूल आये, जब दांव लगे, यहाँसे भाग निकलें। पितृ-बन्धनमें पड़े दो दिन और दो रातें बीत गईं। तीसरा दिन भी ज्यों त्यों करके काटा। तीसरी रात आ गई। उसके एक एक पलको शुद्धचैतन्यजी आँखोंमें काट रहे थे। वे बिछौनेपर लेटे हुए अवश्य थे—देखने वालोंको भी सोये हुए

दिखाई देते थे, परन्तु तीव्र मानस लगनसे संचालित, भीतर से जागते थे। तीसरी रात्रिका भी आधा भाग बीत गया, और तीसरा पहर आरम्भ हुआ। निद्रासे अभिभूत पहरेवाला ऊँघते ऊँघते दैवयोगसे गाढ़ निद्रामें निमग्न हो गया। ब्रह्मचारीजी अनुकूल काल हाथ लगा समझ वहांसे शीघ्रता से चल निकलनेको बद्धपरिकर हो गये। चलते समय हाथमें जलपूर्ण कलश ले लिया कि यदि किसीने पूछा तो "लघुशंका करने जा रहा हूं" कह दिया जायगा। विना रोक टोक, भागते हुए सिद्धपुरसे आध कोस दूर वे एक उद्यान में जा पहुंचे। उस उद्यानमें एक पुराना मन्दिर था। वटवृक्षकी जटाओंके सहारे वे उस मन्दिरके शिखर पर हाथमें कलश लिये जा बैठे। बैठे बैठे मन ही मन सोचने लगे कि देखें दैवअब क्या २ दृश्य दिखाता है।

दूसरी ओर जब पहरे वालों और ब्रह्मचारीजीके पिताको पता लगा कि वे भाग गये हैं तो वहां हलचल मच गई। उन्हें पकड़ने के लिये चारों ओर मनुष्य दौड़ पड़े। ढूंढ़ते ढूंढ़ते ये लोग उस उद्यानमें भी पहुंचे जहाँ ब्रह्मचारीजी छिपे बैठे थे। मन्दिरके भीतर बाहर ढूंढा, मालियोंसे भी पूछताछ की, परन्तु कोई पता न चला। अन्तको निराश होकर वे लोग उद्यानकी ओरसे चले आये। यह दृश्य रात्रिके चार बजे तक ब्रह्मचारीजीके सामने होता रहा, परन्तु वे ऐसे दबके बैठे थे कि हिलना जुलना, खाँसना खखारना तो दूर रहा, श्वासप्रश्वास की गति भी वशमें किये हुए थे। सारा दिन इस घोर कष्टमें और उपवासमें उन्होंने वहीं बैठे बैठे बिताया। जब रातके सात बजे तो उस समय कुछ अंधेरा हो गया था। ब्रह्मचारीजी मन्दिरकी चोटीसे नीचे उतर आये और सड़क छोड़ कर आगे चल पड़े। किसीसे गाँव आदिका भी नाम पूछ लिया। उस उद्यानसे दो कोसके अन्तर पर जाकर उन्होंने एक ग्राममें विश्राम किया। प्रातःकाल होने पर उस गाँवसे भी प्रस्थान कर गये। ब्रह्मचारीजीका बन्धुमिलाप-पितृदर्शन-सिद्धपुरमें अन्तिम ही समझना चाहिये।

ग्राम ग्राम और नगर नगर विचरते हुए वे अहमदावाद से बड़ौदा नगरमें

आकर कुछ काल ठहर गए। यहां चैतन्य मठमें कुछ ब्रह्मचारी और संन्यासी रहते थे। उनसे शुद्धचैतन्यजीका वेदान्त विषयपर बहुत वार्तालाप हुआ करता था। वहां रहनेवालोंमें ब्रह्मानन्दजी आदि ब्रह्मचारी और संन्यासी लोग वेदान्तमें बहुत घुटे हुए थे। उन्होंने अपनी कोटियों और पंक्तियोंको सुना सुनाकर शुद्ध चैतन्यजीको पक्का वेदान्ती बना दिया। यद्यपि, पहिले वेदान्त शास्त्रके अध्ययन कालमें, उनका विचार उस ओर कुछ झुक गया था, परन्तु मठमें तो उनपर ऐसा रंग चढ़ा कि वे स्वात्मासे भिन्न सबको मिथ्या मानने लगे और उन्होंने अपने आपको ब्रह्म कहना आरम्भ कर दिया।

श्री शुद्धचैतन्यजीने यद्यपि 'अहं ब्रह्मास्मि' इस वाक्यको अपने ऊपर घटा लिया था, परन्तु इससे उनके उन्नतिशील अंतःकरणमें जो जिज्ञासाकी ज्योति जाग रही थी वह वेदान्तकी फीकी फक्किकाओंसे शान्त नहीं हुई। इसलिये वाराणसीकी रहनेवाली एक बाईके मुखसे ज्योंही उन्होंने सुना कि नर्मदा-तटपर बड़े बड़े विद्वानोंकी एक बड़ी सभा होने वाली है वे तुरन्त बड़ौदेसे नर्मदाकी ओर चल पड़े। वहाँ पहुंचकर वे एक सच्चिदानन्द नामके परम-हंससे मिले और उनसे अनेक प्रकारकी ज्ञानचर्चा करते रहे। सच्चिदा-नन्दजीने उन्हें बताया कि इसी नर्मदाके तटपर, चाणोदकर्नाली में बड़े बड़े विद्वान् ब्रह्मचारियों और संन्यासियोंकी एक मण्डली आज कल ठहरी हुई है। उस मण्डलीके महात्माओंसे मिलकर आपको विशेष लाभ होगा। जैसे कर्मयोगके आदर्शस्वरूप श्रीराम दण्डकारण्यमें विचरते हुए, जहाँ कहीं दूर समीप, ऋषि मुनियोंका आश्रम सुन पाते, सत्सङ्ग जिज्ञासासे वहाँ पहुंच जाते थे, उसी प्रकार अमर जीवनकी जड़ीको जाननेके आदर्शभूत जिज्ञासु श्रीशुद्ध-चैतन्यजी चाणोदकर्नालीमें जा विराजे। उन्होंने वहां श्रीचिदाश्रम आदि सच्चे विद्वान् संन्यासियोंकी भेंट प्राप्त की। कई सुयोग्य पण्डित ब्रह्मचारियों का भी मिलाप उपलब्ध किया, और वे अनेक शास्त्रीय, पारमार्थिक विषयोंपर वार्तालाप करके ज्ञानगोष्ठीका सुख अनुभव करते रहे। वहीं एक परमानन्द

नामके परमहंस विराजते थे। श्री शुद्धचैतन्यजीने उनके पास अध्ययन करना आरम्भ कर दिया। कई मासके अध्ययनसे उन्होंने वेदान्तसार, आर्य हरिमीडे तोटक, आर्य हरिहर तोटक और वेदान्त-परिभाषा-प्रमुख ग्रन्थ पढ़ लिये।

चौथा सर्ग।

अपनी ब्रह्मचर्य-दीक्षाकी पद्धति के अनुसार शुद्धचैतन्यजी अपने हाथका पकाही खाते थे। इस कारण उनके विद्याध्ययन में वाधा पड़ती थी। सम्पूर्ण सांसारिक वासनाओं से वे पहिलेही विमुक्त हो चुके थे, परन्तु फिर भी आश्रम-शैली से यथाविधि संन्यास लेनेमें उन्होंने दो लाभ देखे—एक तो भोजन बनानेके बखेड़ेसे वच जायँगे और दूसरे चतुर्थाश्रममें प्रवेश करने से नाम और आकृति आदिमें परिवर्तन हो जानेपर कोई उन्हें पहचान भी न सकेगा। इस प्रकार पिता आदि द्वारा पकड़े जानेका भय भी जाता रहेगा। इस प्रकार सोच-कर वे संन्यासग्रहण करने के लिये सर्व प्रकार सन्नद्ध होगये। उन्होंने अपने एक मित्र दक्षिणी पण्डित द्वारा स्वामी श्री चिदाश्रमजी को कहलाया कि आप शुद्धचैतन्य ब्रह्मचारीजीको संन्यास-दीक्षा देना स्वीकार कीजिए। परन्तु उस परमदीक्षित संन्यासीप्रवरने यह कह कर कि ब्रह्मचारी अभी युवक है, अपनी अस्वीकृति प्रकाशित कर दी।

श्री चिदाश्रमजीके संन्यास न देने से शुद्धचैतन्यजी का उत्साह भंग न हुआ। वे विद्याध्ययनमें, योग-साधनमें, स्वसमय यापन करते और किसी अन्य महाभाग संन्यासी का प्रतीक्षण करते कि जिस से संन्यास ग्रहण कर सर्वथा निर्द्वन्द्व होजायँ। सन्तोंके सत्संगमें, मुनियोंके विमल मिलापमें, विद्याविनोदमें शास्त्र चर्चामें, आत्मिक आराधन, चिन्तन और ध्यानमें शुद्धचैतन्यजीने नर्मदा तटपर डेढ़ वर्ष व्यतीत किया। इस समय उनकी आयु २४ वर्ष २ मास की हो गई थी।

एक दिन श्रीशुद्धचैतन्यजीने किसीसे सुना कि चाणोद से डेढ़ कोस के अन्तर पर जङ्गलमें एक दाक्षिणात्य दण्डी स्वामी आकर विराजे हैं। वे बड़े विद्वान् उत्तम संन्यासी हैं। उनके साथ एक ब्रह्मचारी भी है। तब शुद्ध-चैतन्यजी अपने उपर्युक्त मित्र दक्षिणी पण्डितको साथ लेकर प्रशंसित दण्डी-जीकी सेवामें उपस्थित हुए और समादर नमस्कार करनेके पश्चात् पास बैठकर उन्होंने वार्त्तालाप करना आरम्भ कर दिया। ब्रह्मविद्या-सम्बन्धी अनेक विषयों-पर बातचीत होती रही। अन्तमें श्रीचैतन्यजी को निश्चय होगया कि दण्डीजी महाराज और उनके संगी ब्रह्मचारी दोनों ब्रह्मविद्या में निपुण हैं। दण्डीजीका शुभ नाम पूर्णानन्द सरस्वती था। शुद्धचैतन्यजी के हृदय में उनसे संन्यास ग्रहण करनेकी उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई। तब उन्होंने अपने मित्र पण्डितजीको संकेत किया कि दण्डीजीके सन्मुख उनके संन्यासका प्रस्ताव करें। पण्डितजीने निवेदन करते हुए कहा—"दण्डीजी महाराज! यह विद्यार्थी, ब्रह्मचारी, शुद्ध-चैतन्य, अति सुशील और विनीत है। ब्रह्मविद्या पढ़नेके लिए अतीव उत्क-ण्ठित है। परन्तु क्या करे भोजन बनानेके बखेड़े ही में इसका बहुतसा समय व्यर्थ व्यय हो जाता है, जिससे यथारुचि विद्याध्ययन नहीं कर सकता। इसकी कामनाके अनुसार, आप कृपा करके इसे चतुर्थ प्रकारका संन्यास दे दीजिये।"

यह प्रार्थना सुनकर, उक्त स्वामीजीने, शुद्ध चैतन्यजीकी भरपूर युवाव-स्थाके कारण उन्हें संन्यास देनेसे एक बार तो जी हटा लिया। पर पण्डित-जीके अधिक आग्रहसे संन्यासकी अनुमति देते हुए यह कहा कि यदि ये पूर्ण वैराग्यवान् हैं तो किसी गुजराती संन्यासीसे दीक्षा लें। हम तो महाराष्ट्र हैं। पण्डितजी बोले—"महाराज दक्षिणी संन्यासी, गौड़ोंको जो पंच द्राविड़ों से बाहर हैं, संन्यास दे देते हैं तो आप इसे संन्यास क्यों नहीं देते? यह गुर्जर ब्राह्मण हैं। और यह तो आप जानते ही हैं कि गुर्जर पंच द्राविड़ोंमें गिने जाते हैं।" पण्डितजीकी अन्तिम युक्तिसे दण्डीजीने संन्यास देना स्वीकार कर लिया और अति प्रसन्नता प्रकाशित करते हुए श्री शुद्धचैतन्य मुमुक्षुको व्रत उपवास

और जपादि क्रियानुष्ठान करनेका आदेश किया।

दो दिन तक जपादि साधनोंको यथा विधि करके तीसरे दिन ब्रह्मचारीजी दण्डीजीकी सेवामें उपस्थित हुए। उनसे उसी दिन श्राद्ध कराके, दण्डी स्वामीजीने विधिपूर्वक संन्यास धारण कराया। हाथमें दण्ड अवलम्बन कराकर उनका नाम 'दयानन्द सरस्वती' उद्घोषित किया। विनयसे नम्रशिर, नव शिष्यको स्वामी पूर्णानन्दजीने यतियोंके धर्म बताए, संन्यास की रीति-नीतिका उपदेश दिया। आश्रम-मर्यादा और विद्योपार्जन, जपतप आदिके करनेकी शिक्षा की। वे कई दिन तक गुरुचरणोंमें बैठकर बड़ी विनीततासे ब्रह्मविद्या के ग्रन्थ पढ़ते रहे। अब, उन्होंने गुरु-आदेशके अनुसार विद्याराधनामें विघ्नकारी जानकर दण्डको विसर्जन कर दिया। स्वामी पूर्णानन्दजी शृङ्गेरी मठसे द्वारिकाको जाते हुए मार्गमें कुछ दिनों के लिये 'चाणोद' में ठहर गये थे। कुछ दिन के पश्चात्, जब वहांसे चलने लगे तो उनके नूतन शिष्य दयानन्दने बड़ी पूजा और सम्मानसे गुरुचरणोंमें प्रणाम किया। स्वामीजी महाराज बड़े वात्सल्य भावको प्रदर्शित करते हुए उनसे विदा होकर द्वारिका दर्शनको चल पड़े। स्वामीदयानन्द सरस्वती पीछे कई दिनों तक चाणोद ही में टिके रहे।

एक दिन उन्होंने सुना कि व्यासाश्रममें योगानन्दजी एक महात्मा विराजमान हैं और वे योगकी क्रियाओंमें कुशल हैं। उस महात्माके मिलापकी उत्सुकतासे प्रेरित होकर वे व्यासाश्रममें जा पहुंचे। वहां उन्होंने उक्त महात्मा से योगविद्याके रहस्य सुने और इसकी पुस्तकें भी अच्छी तरह पढ़ीं। योगकी क्रियाओंको सीख लेनेके अनन्तर उन्होंने सुना कि छिन्नाड़ेमें कृष्णशास्त्री नामका एक धुरन्धर वैयाकरण पण्डित रहता है। वे व्याकरणके अध्ययनकी लालसासे उस ग्राममें जा विराजमान हुए कुछ काल तक कृष्णशास्त्रीजीसे व्याकरणके ग्रन्थ पढ़कर फिर चाणोद कर्नालीमें पधारे और वहां एक राजगुरुसे वेदाध्ययन करने लगे।

स्वामीदयानन्दजीको सत्यके जाननेकी इच्छा, योग विद्याकी प्राप्तिकी परम लगन, साधु-सन्तोंके शुभ दर्शनों और शान्ति दायक सत्संगोंके लिये सदा

उत्साहित करती रहती थी। नई नई विद्यायें सीखनेके लिये वे सदा उत्सुक रहते थे। किसी महात्माके समीप जानेमें उन्हें कभी संकोच न होता था। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने गृहपरित्याग करते ही सबसे पहले अहङ्कार के काँटेको हृदयके भूमिसे उखाड़ फेंका था, मानको मर्दन कर दिया था, सङ्कीर्णता सर्वथा छोड़ दी थी और तब आत्मप्रेम-प्रसादी मांगनेके निमित्त लगनकी झोली हाथमें लिये श्रद्धापूर्वक कुटी कुटी और द्वार द्वार पर चक्कर लगाने लगे थे। यह हो नहीं सकता कि ऐसे श्रद्धालु जिज्ञासुओंकी कामनायें पूर्ण न हों सच है 'जिन ढूँढ़ा तिन पाया।'

चाणोदकर्नालीमें स्वामी दयानन्दजीने दो महात्माओंके दर्शन प्राप्त किये। उनमेंसे एकका नाम ज्वालानन्दपुरी और दूसरेका नाम शिवानन्दगिरि था। ये दोनों महानुभाव प्रसन्नचित्त, प्रशान्तात्मा, योगी थे। स्वामी दयानन्दजी अपने अहोभाग्य मानकर लगे उनके मङ्गल मिलापका लाहा लूटने। योगी महात्माओंने भी जान लिया कि यह जिज्ञासु आत्मपिपासु है। इसलिये उसे अपने साथ मिलाकर अभ्यास आरम्भ कराया। अभ्यासानन्तर तीनों मिलकर योगशास्त्रकी चर्चा किया करते थे। कुछ कालके उपरान्त वे दोनों योगी अहमदाबाद चले गये और दयानन्दजीको आदेश कर गये कि एक मासके पश्चात् आप हमारे पास अहमदाबादमें आइयेगा। उस समय हम आपको योगसाधनके सम्पूर्ण गूढ़तत्व क्रियाओं सहित भली भांति समझा देंगे। वहां हमारा आसन नदीके किनारे दूधेश्वर महादेवके मन्दिरमें होगा।

स्वामी दयानन्दजी चाणोदमें रहकर एक मासतक जप तप क्रियानुष्ठान करते रहे। फिर महात्माओंकी आज्ञानुसार अहमदाबाद चले गये। सीधे दूधेश्वरके मन्दिरमें जाकर उनके दर्शनोंसे कृतार्थ हुए। वहां उन सन्तशिरोमणिओंकी शुभ सङ्गतिमें रातदिन रहकर, आत्म-तृष्णाकी परितृप्तिमें परायण रहते थे। प्रतिदिनके सहवाससे योगिराजोंने समझ लिया कि स्वामी दयानन्दजी, एक उत्तम कोटीके सुपात्र हैं। इन्हें योग तत्वोंके अमूल्य रत्नोंसे आकण्ठ भर

देना चाहिये। उन्होंने योगका प्रत्येक भेद और रहस्य स्वामी दयानन्दजीको बताया। उन योगियोंकी शुभ कामनासे श्रीस्वामीजीको जो लाभ हुए उनका उन्होंने अपनी कृतज्ञताके साथ इस प्रकार वर्णन किया है—"वहां उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की और अपने कथनानुसार मुझे निहाल कर दिया। उन्हीं महात्माओंके प्रभावसे, मुझे क्रिया-समेत पूर्ण योगविद्या भली भांति विदित हो गई इसलिये मैं उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूं। वास्तवमें उन्होंने मुझपर एक महान् उपकार किया। इस कारण मैं उनका विशेष रूपसे अनुगृहीत हूं।"

चिरकाल तक योगिजनोंके सत्सङ्गसे कृतकृत्य होकर श्रीस्वामीजीने आबू पर्वतकी यात्राके लिये प्रस्थान किया। उन्होंने सुना था कि आबूपर बहुतसे योगी जन रहते हैं इस कारण, इस पर्वत पर आकर महात्माओंके मिलापार्थ यत्न करने लगे। वहाँ अर्बुदा भवानी नामके पर्वत शिखरपर तथा अन्य अनेक स्थानोंमें उनकी सन्त महात्माओंसे भेंट हुई। यहाँके कई योगी, पूर्वोक्त दो योगियोंसे विशेष रूपसे आगे बढ़े हुए थे। उनसे भी स्वामी जीने विशेष योग तत्त्वोंकी प्राप्ति की।

इस प्रकार भिन्न भिन्न स्थानोंका पर्यटन करते हुए स्वामीजी महाराज महात्माओंके मिलापसे, विद्वानोंके सम्पर्कसे, अभ्यासियोंके मेलजोलसे, और योगी सन्तोंके शुभ संगसे आत्मिक उन्नति करते रहे, शान्तिके साधनोंका संचय करते रहे। वे विद्यार्थी बनकर सबके पास गये और जिससे जो भी कुछ शुभ प्राप्त हुआ उसे कृतज्ञतासे धारण करते रहे।

इस प्रकार यतियों मुनियोंको मिलते हुए स्वामीजी महाराज वैशाख सम्वत् १९१२ में होनेवाले कुम्भके महामेलेपर हरिद्वार पधारे। उस समय उनकी आयु ३२ वर्षकी थी। उनके यहाँ आनेका प्रयोजन यह था कि कुम्भ पर, बहुतसे योगीजन गुप्त रूपसे आकर रहते हैं, जिनको साधारण जन नहीं जान सकते। उनसे मिलकर ज्ञान-चर्चा करेंगे। गंवारके लिए कंकड़ और हीरा समान है। परन्तु उनमें कौन महत्ववान् है, यह बात जौहरी तुरन्त जान जाता है।

स्वामी दयानन्द, इसी प्रकार महान् साधुसमारोहमें, अपनी परखके प्रभाव से उत्तमोत्तम सन्तोंको मिलते थे। हरकी पैड़ियोंकी ओर बड़ी भारी भिड़ और महा कोलाहल था। मनुष्य पर मनुष्य गिरता था, कन्धेसे कन्धा छिलता था। संकीर्ण भूमि, जन संघटसे समाकुल थी। सर्वत्र अगणित मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। जहाँ देखो जूठी पत्तलें, उच्छिष्ट-सहित पत्ते पड़े थे। तट-समीप वाहिनी गङ्गाधारा भी लाखों नरनारियोंके नहानेसे, वस्त्रों के धोनेसे, बर्तनोंके प्रक्षालनसे, नांगोंके देहकी राखसे शुद्ध तो कहाँ? निर्मलभी न रही थी। धूलिसे भूतलाकाश एक हो रहा था। गङ्गाका यह किनारा, ध्यानसमाधि तो कहाँ, सुखसे विश्राम लेनेके भी अयोग्य हो गया था। इसी कारण महात्मा दयानन्दजी महाराज, जो योग-साधनपरायण थे मेलेके दिनोंमें गङ्गाके उसपार चण्डी पर्वतके जंगलमें निवास करते रहे। ऐसे मेलोंपर आये अन्य योगी जन भी प्रायः नदीके उसी पार रहा करते हैं।

मेलेके पश्चात् स्वामीजी महराजने हृषीकेशकी यात्रा की। वहां उच्चतर महात्मा संन्यासियोंके समीप रह कर योग साधनकी रीतियां सीखीं, विमल-चित्त और विशुद्ध आत्माओंका सत्संगलाभ लिया। उष्णताके विशेष बढ़जाने से सन्त लोग गंगाके उपरिभागोंमें चले जाते हैं, परन्तु स्वामीदयानन्दजी बहुत दिनों तक हृषीकेशमें ही अकेले विराजते रहे।

एक दिन यहां उन्हें एक ब्रह्मचारी और दो पहाड़ी साधु मिले, परस्पर अधिक परिचय हो जानेसे स्वामीजी उनके साथ टिहरीकी यात्रामें प्रवृत्त हुए। टिहरी नगरके बाहर उन्होंने किसी स्वच्छ स्थानमें आसन किया। यह नगर उस समय विद्यावृद्ध साधुजनोंके निवास और बहुतसे सुपठित राजपण्डितोंके कारण प्रसिद्ध था। एक दिनका वर्णन है कि एक राजपण्डितने स्वामीजीके आसन पर आकर उन्हें गृहपर भोजन पानेके लिये सादर निमन्त्रित किया। नियत समयपर उनको लिवा लानेके लिये एक पुरुष भी आया, स्वामी दया-नन्दजी और उनका साथी ब्रह्मचारी दोनों निमन्त्रणदाता गृहस्थके गृहपर गए।

गृहद्वारसे आगे बढ़ते ही स्वामीजीको अत्यन्त घृणा आई, क्योंकि उन्होंने देखा कि एक पण्डित मांस काट काट कर पका रहा है। कुछ अधिक आगे जानेपर उन्होंने देखा कि मांस और अस्थियोंके ढेर और पशुओंके भुने हुए सिरोंपर कई पण्डित छुरी आदिसे कार्य कर रहे हैं ! इस सारे तान्त्रिक दृश्यको देख स्वामीजी घृणासे व्याकुल और आश्चर्यसे चकित होगए, इतनेमें उन्हें आते देख गृहपति सम्मानपूर्वक स्वागतके लिये सन्मुख आया। उसने आदरसे कहा "कृपया विना संकोच भीतर चले आइए।" परन्तु स्वामीजीको तो घृणाके कारण वहां एक क्षण ठहरना भी भारी प्रतीत हो रहा था। इस लिये यह कह कर "आप अपना काम करते जाइए, मेरे लिए कुछ कष्ट न कीजिए" वे झट वहांसे लौट पड़े और अपने स्थानपर आकर विश्राम लिया। थोड़े समयके अनन्तर वह गृहपति स्वामीजीके पास फिर आया और उनके लौट आनेपर दुःख प्रदर्शित करता हुआ बोला—"कृपया चलिए, गृहपर भोजन पाइए। न जाने आप क्यों पीछे लौट आये हैं। हमने तो आपके निमित्त मांसादि उत्तमोत्तम भोजन प्रस्तुत किये हैं।" स्वामीजीने स्पष्ट कह दिया "यह सब वृथा और निष्फल है क्योंकि आप मांस—भक्षी हैं। मांसका खाना तो दूर रहा मैं तो उसके देखने से रोगी हो जाता हूं। मेरे योग्य तो केवल फलादि हैं। यदि आप मेरा न्योता करना ही चाहते हैं तो कुछ अन्न और फल आदि वस्तु भिजवा दीजिये। मेरा ब्रह्मचारी यहीं पर भोजन बना लेगा।" यह सुनकर वह पण्डित अपने किए पर लज्जित हुआ, और घरपर जाकर उसने अन्न फलादि, स्वामी निर्दिष्ट पदार्थ उनके स्थान पर पहुंचा दिये।

स्वामीजी महाराज कई दिनोंतक टिहरीमें रहे। वह निमन्त्रणदाता पण्डित उनके पास आने जाने लग गया। स्वामीजीने उससे प्रसिद्ध परन्तु दुष्प्राप्य पुस्तकोंका पताआदि पूछा। उसने बताया कि यहाँ बड़े बड़े कवियोंके रचे हुए संस्कृत, व्याकरण, कोष, और तन्त्र-ग्रन्थ मिल सकते हैं। श्रीस्वामीजीने उन दिनों तक तन्त्र ग्रन्थोंका अवलोकन नहीं किया था, इस कारण पण्डितजीको

तन्त्र ग्रन्थ ले आनेके लिये कहा। वह स्वल्प समयमें कुछ एक तन्त्र पुस्तकें स्वामीजीको दे गया। स्वामीजी उनमेंसे एक पुस्तकको उठाकर ज्योंहीं खोलकर पढ़ने लगे तो अकस्मात् उनकी दृष्टि एक ऐसे लेखपर पड़ी, जिसमें अत्यन्त लज्जाजनक, अशुद्ध और ऊटपटांग बातें लिखी हुई थीं। उस लेखको पढ़कर वे कांप उठे। उन्हों ने उस पुस्तकमें यह लिखा देखा कि माता, भगिनी, कन्या, चूहड़ी चमारीसे अनुचित सम्बन्ध धर्म है। मद्य, तथा मत्स्य आदि अनेक जन्तुओं के मांसका सेवन, और ब्राह्मणसे लेकर चण्डालपर्यंत सबका एक स्थानमें भोजन करना तन्त्र धर्ममें विहित है! यह भी लिखा देखा कि मद्य, मांस, मछली, मुद्रा और मैथुन इन पांच मकारों के सेवनसे मोक्ष प्राप्त होता है। इस प्रकारके लेख तन्त्रग्रन्थों में पढ़कर स्वामीजीको पूर्ण निश्चय होगया कि उनके रचयिता कवि धूर्त, स्वार्थी और दुष्ट थे।

टिहरीसे प्रस्थान कर स्वामीजीने श्री नगरमें पधार केदार घाटपर एक मन्दिरमें आसन लगाया। श्रीनगरके पण्डितोंसे उनकी जब कभी बातचीत होती तो स्वामीजी, टिहरीमें पढ़े हुए तन्त्रग्रन्थोंके प्रमाणोंसे उन्हें ऐसा लज्जित करते कि, वे अपनी हार स्वीकार कर लेते। श्रीनगरके समीप, एक वनावृत पहाड़ीपर गङ्गागिरि नामके एक अच्छे विद्वान् महात्मा, निवास करते थे। वे महात्मा दिनके समय कभी उस पहाड़ीसे नीचे नहीं उतरते थे। स्वामी दयानन्दजीका उस एकान्तवासी शान्तात्माके साथ मिलाप हो गया, प्रति दिनके वार्तालापसे दोनों परस्पर मित्र हो गये। वे नित्यप्रति मिलकर योगादि उत्तम उत्तम विषयोंकी चर्चामें समय बिताते। नित्यके समागम और तर्क-वितर्कसे स्वामीजीको यह निश्चय हो गया कि हम और गङ्गागिरिजी आपसमें मिलकर रहनेके सर्वथा योग्य हैं। स्वामीजीको तो उस एकान्तवासी महात्माकी संगति ऐसी अच्छी लगी कि वे दो माससे अधिक काल तक उनके साथ रहे।

ग्रीष्म-ऋतुके आरम्भमें गङ्गागिरिजीसे विदा होकर श्री स्वामीजी अपने एक ब्रह्मचारी और दो पहाड़ी साधुओं-सहित, केदारघाटसे चलकर रुद्रप्रयाग आदि

स्थानोंमें घूमते हुए अगस्त्य मुनिकी समाधिपर पहुंचे। इस स्थानसे उत्तरकी ओर आगे एक पर्वत-शिखर 'शिवपुरी' नामसे प्रख्यात है। स्वामीजी उसपर गये। वहाँ उन्होंने शरद् ऋतुके चार मास व्यतीत किये। शिवपुरीसे पीछे लौटते समय स्वामीजीने साथियोंके संगको भी एक प्रकारका खटका ही समझा। इसलिए उनसे पृथक् होकर, एकाकी फिर केदारघाटमें आ गये। वहाँसे जाकर कुछ समय, गुप्तकाशी में रहे। गुप्तकाशीसे गौरीकुण्ड, भीमगुफा, त्रियुगी नारायण होते हुए थोड़े ही दिनोंमें तीसरी बार फिर केदारघाटमें सुशोभित हुए। केदारघाटका वास उन्हें अति प्रिय था और वहाँ गङ्गागिरिजीका सत्सङ्ग-सुखभी मनोभावन था। इस लिए इस बार, वे वहाँ चिरकालतक उस स्थानमें रहे, जहाँ जंगम जातिके कुछ एक पुजारी ब्राह्मण निवास करते थे। इसी बीचमें स्वामीजीके साथी दोनों पर्वतीय साधु और एक ब्रह्मचारी भी उन्हें आ मिले। यहाँ स्वामीजी केदारघाटवासी ब्राह्मणों और पण्डितोंकी करतूतोंको भी देखते रहे। उन लोगोंकी जो बात स्मरण रखने योग्य थी उन्हें वे ध्यानगत कर लेते जब वहाँ रहते हुए स्वामीजीने वहाँवालोंकी रीति और प्रकृतिको भली भाँति समझ लिया तब उनके मनमें निकटवर्ती हिममण्डित हिमालयकी पर्वतमालाओंमें भ्रमण करनेकी उमङ्ग पैदा हुई। उन्होंने चलते समय सुदृढ़ निश्चय करलिया कि चाहे जो हो, जिन सन्तों-सिद्धोंकी इतनी कथायें-वार्त्तायें सुनते आये हैं उनका पता अवश्य लगाना चाहिये। वे महात्मा इन शिखरों और गिरि-गुहाओंमें हैं भी या नहीं ? इसका निश्चय करना चाहिये। दुर्गम, विषम पर्वतों की यात्राकी कठिनाइयाँ स्मरण कर, शरदृतुके दिनों दिन बढ़ते हुए अति शीतको सोचकर स्वामीजीने पहले पर्वतवासियोंसे महात्माओंके सम्बन्धमें पूछनाताछना आरम्भ कर दिया। इस सारे प्रयत्नसे उन्हें पता लगा कि पर्वतवासी भोले भाले लोग, एक तो भ्रममूलक गप्पें हांकते हैं और दूसरे महात्माओंके विषयमें अनभिज्ञ हैं। स्वामीजीके साथी शीतसे पीड़ित होकर दो दिन पहले ही उनसे पृथक् हो गये थे, इसलिए वे अकेले ही हिमाच्छादनसे श्वेत, आकाश-

स्पर्शी, अति उत्तुङ्ग और अतिशीतल शैलशिखरों के ऊपर नीचे, इधर उधर बीस दिन तक घूमकर पीछे लौट आये, परन्तु उन्हें किसी महात्माका साक्षात् न हुआ।

इसके पश्चात् स्वामीजीने तुङ्गनाथकी चोटीपर चढ़ना आरम्भ किया। वहां पहुंचकर उस स्थानके मन्दिरको उन्होंने मूर्तियों और पुजारियोंसे परिपूर्ण पाया, पुजारियोंके ऐसे जमघटेको देख वे उसी दिन वहांसे उतर आये। परन्तु कुछ आगे चलकर उन्हें दो मार्ग दीख पड़े। उनमेंसे एक मार्ग पश्चिमको जाता था और दूसरा नैऋत्यको। इनमेंसे स्वामीजी उस ओर झुके, जो एक बड़े बिकट वनको जाता था, थोड़ी दूर जानेपर ही वे ऐसे सघन अरण्यमें जा निकले जो बड़ी बड़ी शिलाओं और छोटे मोटे अगणित पत्थरोंसे आकीर्ण था। वहांके नाले जलहीन और भयावने हो रहे थे। इसपर विपत्ति यह कि आगे चलनेके लिए मार्गका कोई चिह्न तक न दिखाई पड़ता था। इस प्रकार वृक्षसमूहसे घनीभूत, लता-पताओंसे आवृत विषम वनमें स्वामीजी महाराज घिर गये। नभभेदी घने वृक्षोंके घोर आवरणने सूर्यके प्रकाशको रोका हुआ था। इसलिए दिनके समय ही उन्हें रातसी प्रतीत होने लगी। ऐसी दशामें स्वामीजीने सोचा कि अब ऊपरको लौटें या नीचेको ही चलते चलें। पहले उन्होंने ऊपरकी ओर दृष्टि डाली। जो मार्ग उतरते समय, अति ढलवानके कारण सुगम जान पड़ा था वही अब एक सीधी रेखाके समान, चोटीतक खड़ा दिखाई दिया इस लिए फिर ऊपर चढ़ना उन्होंने प्रायः असम्भव समझा। सोच विचार कर उन्होंने निर्धारित कर लिया कि नीचे उतरनेसे ही निस्तार होगा। तब वे शुष्क घास और झाड़ियोंको, पत्रहीन सूखी शाखाओंको पकड़ पकड़ कर एक नालेके तटपर आ पहुंचे। वहां एक ऊपरको उठी हुई शिला पर आरूढ़ होकर उन्होंने चहुं ओर दृष्टि डाली। उन्हें पर्वतोंकी अगम्य चोटियों और मनुष्यके चलनेके लिये असम्भव जटिल जङ्गलके विना और कुछ भी दिखाई न पड़ा। उस समय सूर्य भी अस्त ही हुआ चाहता था। ऐसे कड़े कालमें, स्वामीजी महाराज के चित्तमें चिन्ताकी रेखा रह रह कर उत्पन्न होती थी। वे सोचते थे कि ऐसे सुन-

स्थान निर्जन वनमें, जहां पीनेको पानी नहीं, निशाके घोर शीतपातसे परित्राण पानेके लिए अग्नि जलानेका कोई साधन नहीं, मेरी क्या दशा होगी। अन्तमें उन्होंने यही निश्चय किया—

पुरुषार्थ और यत्नको कभी न त्यागे धीर,
सकल विघ्नको बाध कर अन्त सफल हों वीर।

परन्तु उस विकट जङ्गलमें ऐसे स्थानोंमेंसे होकर निकलना पड़ा, जहां कण्टकाकीर्ण झाड़ियोंमें उनके वस्त्र उलझ कर खण्ड खण्ड हो गये। नुकीले पत्थरोंकी ठोकरोंसे और काण्टोंके चुभनेसे उनके पांव लङ्गड़े होगये शरीर पर भी घाव दीखने लगे। रक्त बहता था, वेदना होती थी। अन्तको दुःख संकट सहते हुए बड़ी कठिनतासे उस गहन बनको पार करके नीचे तुङ्गनाथ पर्वतकी तलेटीमें—आ पहुंचे, वहां आकर उन्होंने देखा कि अब वे साधारण मार्गपर गमन कर रहे हैं। उस समय निस्तब्ध, नीरव रजनीका राज्य था। सर्वत्र अन्धकार छा रहा था। इसलिये स्वामीजी बड़ी सावधानीसे मार्ग टटोल टटोल कर चल रहे थे। वे बड़े ध्यानसे मुख्य मार्गसे इधर उधर होनेसे बचते थे। अन्ततः वे चलते चलते एक ऐसे स्थानपर आ पहुंचे जहां कतिपय पर्ण-कुटियां दीख पड़ीं। पूछने पर पता लगा कि जिस मार्गपर चल रहे हैं वह ओखी मठ-को जाता है। महाराज आगे चल पड़े और बड़ी रात बीते ओखी मठमें पहुंचे।

शेष रात उन्होंने उसी मठमें निश्चिन्ततासे काटी। प्रातःकाल जब सुख-पूर्वक सो उठे तो उत्तरकी ओर चल पड़े। परन्तु थोड़ी दूर जाकर उन्हें लौट आना पड़ा, क्योंकि मठको देखनेकी अभिलाषा उनके मनमें ही रह गई थी। साथ ही वे वहांके कन्दरा-निवासी साधुओंकी भी अवस्थाको जानना चाहते थे। पीछे लौट आनेसे स्वामीजीको मठ देखनेका एक अच्छा अवसर मिल गया। उस समय मन्दिरमें ऐसे साधुओंकी भरमार थी जो प्रायः पाखण्डपरायण थे। वे लोग बड़े आडम्बरसे रहते थे। स्वामीजीके ज्ञान और गुणोंपर उस मठका मुख्य महन्त मोहित होगया और चेला बन जानेके लिये उन्हें प्रेरणा करता

हुआ बोला—"यदि हमारे शिष्य बन जाओ तो गद्दीके स्वामी हो जाओगे। लाखों रुपयोंकी सम्पत्ति तुम्हारे हाथमें होजायगी। तुम महन्त कहलाओगे इसलिये मान प्रतिष्ठाका भी पार न रहेगा। इस प्रकार स्वच्छन्दता पूर्वक यथेष्ट सुख भोगोगे।"

ओखी मठके महन्तका वह प्रलोभन पूर्णसूत्र महात्यागी दयानन्दको बाँधनेके लिये उतना ही दृढ़ था, जितना ऐरावत हाथीको बद्ध करनेके लिये सूत का कच्चा तार। महाराजने महन्तको कहा कि यह तुम्हारा कथन, सब व्यर्थ है। मेरे पिताकी सम्पत्ति आपकी पूजापाठके पाखण्ड द्वारा एकत्रितकी पूंजी से कई गुणा अधिक है। जब मैं उसे भी काष्ठ-लोष्ठसमान त्याग आया हूं तो आपके धन धान्यकी ओर कब ध्यान कर सकता हूं ? जिस उद्देश्यसे प्रेरित हो कर मैंने सकल सांसारिक सुखोंसे मुख मोड़ा और ऐश्वर्यशाली पितृ-गृहको सदाके लिये छोड़ा है, मैं देखता हूं उस उद्देश्यपर न तुम चलते हो और न उसका तुम लोगोंको कुछ ज्ञान ही है। इस अवस्थामें चेला बनना तो दूर, मेरा तुम्हारे पास रहना भी असम्भव है।

वह महन्त स्वामी मुखसे लक्ष्मीके तिरस्कारके वचन सुनकर कहने लगा कि अच्छा, बताइये—आपका वह उद्देश्य क्या है ? किस वस्तुकी जिज्ञासामें मग्न तुम इतने कष्ट क्लेश उठा रहे हो ? श्रीस्वामीजीने उत्तरमें कहा कि मैं सत्य योग-विद्या और मोक्ष चाहता हूं। जबतक यह प्रयोजन सिद्ध न होगा तब तक तपश्चर्या करता हुआ मनुष्यमात्रके कर्त्तव्य, स्वदेशोपकार को, बराबर करता रहूंगा। वह महन्त उनके महात्याग और उच्च उद्देश्यको सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और बोला, "यह बहुत अच्छी बात है। पर कुछ दिन तो हमारे समीप निवास करो।" स्वामीजी बहुत वार्तालापमें कुछ सार न देख उस समय तो मौन रहे, परन्तु अगले दिन प्रातःकाल ही उठ कर जोशी मठकी ओर चले गये।

जोशीमठमें संन्यासाश्रमकी चौथी श्रेणीके बहुतसे सच्चे महाराष्ट्र संन्यासी

वास करते थे। श्रीस्वामीजीने भी उन्हींके समीप अपना निवास नियत किया। वहाँ उन्हें कई योगीजन सत्संगके लिए मिल गये। स्वामीजीने उनसे कई नवीन भेद भी प्राप्त किये और साथ ही विद्वान् साधु-सन्तोंसे परमार्थ-विषयक वार्त्तालाप करते रहे।

पांचवाँ सर्ग।

जोशीमठसे प्रस्थानकर स्वामीजी बद्रीनारायण पहुंचे। वहाँके मुख्य महन्त उस समय 'रावलजी' थे। स्वामीजीने उनके निकट कई दिनतक निवास किया। कभी कभी रावलजीके साथ स्वामीजीका वेदों और दर्शनों पर बड़ा वाद विवाद छिड़ जाया करता था। एक दिन स्वामीजीने रावलजीसे पूछा कि आसपासके पर्वतोंमें कोई सच्चा योगी भी निवास करता है? रावलजीने अति शोकके साथ कहा कि इन दिनों उधर कोई ऐसा योगी महात्मा नहीं है। परन्तु मैंने सुना है कि इस मन्दिरके दर्शनार्थ प्रायः योगीजन आया करते हैं।

वहाँ श्रीस्वामीजीने दृढ़ सङ्कल्प कर लिया कि इस समस्त प्रान्त में और विशेषतः पार्वत्य प्रदेशों में सर्वत्र भ्रमण करके ऐसे महापुरुषोंका अन्वेषण अवश्यमेव करेंगे। एक दिन सूर्योदयके साथ वे बद्रीनारायणसे चल पड़े और पर्वतके पाँवके साथ चलते हुए अलखनन्दा नदीके तटपर जा पहुंचे। नदीके दूसरे पार एक 'मांस' नामक ग्राम था। उसे वे पहले कभी देख चुके थे, इस लिए उस पार न जाकर पूर्वावलम्बित तटके साथ साथ नदीके ऊपरकी ओर जाने लगे। पर्वतोंकी ऊँची ऊँची चोटियाँ, सघन-हिममयी चिट्टी चादर ओढ़े स्फटिककी भाँति, ऐसी चमक रही थीं कि देखकर आँखोंमें चकाचौंध लगता था, अलखनन्दाका जल उसके बहावमें पड़ी हुई शिलाओंसे टकराकर चट्टानोंसे टक्कर खाकर गिरता था, उछलता था, फेन फेंकता था, गरगराता था, गर्जता

था, और चीत्कार करता हुआ बड़े वेगसे नीचेको दौड़ा चला जा रहा था। इस प्रकार श्रीस्वामीजी अपने चारों ओर प्रकृतिके स्वाभाविक सौन्दर्यको निहारते हुए नदीके स्रोतकी ओर बढ़ रहे थे। मार्ग बड़ा बीहड़ और विषम था। अतिकष्ट उठाकर बड़ी कठिनतासे वे अन्तको नदीके निर्गम स्थानपर जा पहुंचे। वहाँ उन्होंने देखा कि मैं इन स्थानोंसे अपरिचित हूं, हिमाच्छादित नालोंसे, निकलनेके मार्गोंसे और पर्वत मालाओंके भेदोंसे अजान हूं। उन्हें वहाँ सब ओर गगनभेदी गिरिशिखर ही दिखाई दिये और आगे चलनेके मार्गका सर्वथा अभाव ही जान पड़ा। इस अवस्थामें थोड़ी देरके लिए वे किंकर्तव्यकी चिन्तामें निमग्न हो गये। अन्तमें मार्ग-अन्वेषणके निमित्त उन्होंने अलखनन्दा पार करनेका निश्चय किया।

स्वामीजीके शरीरपर वस्त्र बहुत ही थोड़े थे। इसलिए हिमप्राय हेम्नीप्रदेश का अतिशीतल पवन तनको तीरकी तरह आरपार करने लगा। क्षण क्षणमें बढ़ते हुए शीतका सहन करना एक बार तो उन्हें असम्भवसा जान पड़ा। प्यासके कारण मुख सूख रहा था, होठ शुष्क हो रहे थे। कण्ठमें काँटे पड़ गये थे और क्षुधाने भी घोर रूप धारण कर रक्खा था। इन दोनों बाधाओंसे बचनेके लिए स्वामीजीने हिमका एक टुकड़ा लेकर चबाया, परन्तु उसने कुछ भी सहारा न दिया। उदरकी आग उससे शान्त न हुई। तब वे नदी पार करनेमें साहससे प्रवृत्त हुए। उस जगह अलखनन्दा कहीं तो बहुत गम्भीर और कहीं एक दो हाथ गहरी थी। उसका पाट आठ दस हाथका था। वह हिमके छोटे छोटे, तिरछे और नुकीले टुकड़ोंसे भरी हुई थी। नदीको चीरकर पार करते समय ये नुकीले हिमखण्ड श्री स्वामीजी महाराजके नंगे पाँवपर बार बार आघात करते थे। इससे उनके पैरोंके तलुए छिल गये, उङ्गलियोंमें घाव हो गये, और स्थान स्थानसे रक्त बहने लगा। परन्तु अति शीतलताके कारण उनके पाँव ऐसे सन्न हो गये थे कि कितने ही काल तक उन्हें इन बड़े बड़े घावोंका भान ही न हुआ। इस समय भूमि, आकाश और पवन सभी अति-

शीतल हो रहे थे। इन सबने स्वामी-शरीरकी स्वाभाविक ऊष्माको अभिभूत कर लिया था महाराजकी कायापर शून्यता छाई जा रही थी। उनके हृदयपर अचेतनता धीरे धीरे बढ़ रही थी। यहाँ तक कि वे शून्य अवस्थामें मूर्छा खाकर हिममय जलमें गिरनेकोही थे कि उनके अन्तःकरणमें चैतन्यकी रेखा चमक उठी, और वे सम्भल गये। अपने आपको थाम कर महाराजने विचारा कि यदि एक बार भी मैं यहां गिर गया तो फिर न उठ सकूंगा, यहीं सन्न होकर समा जाऊंगा।

वे साहससे सावधान होकर बड़े बलके साथ उस नदीसे बाहर निकले और दूसरे तट पर जा पहुंचे। वहां पहुंचकर भी उनकी अवस्था कुछ काल पर्यन्त मृततुल्य बनी रही। परन्तु तो भी साहसका अवलम्बन कर उन्होंने अपने तनके उपरिभागके सारे वस्त्र उतार कर, उनके साथ पांवसे लेकर घुटनों तक का सारा भाग लपेट लिया। उस समय वे चलनेमें अशक्त, हिलने जुलनेमें असमर्थ और व्याकुलचित्त थे। विगतशक्ति खड़े खड़े इस बातकी प्रतीक्षा करते थे कि कोई सहायता मिल जाय तो इस संकट समाकुल स्थानसे निकल कर कहीं आगे चलूं। ऐसे सुनसान शीतप्रधान प्रदेशमें कोई मनुष्य मिल जायगा यह आशा भी नहीं बंधती थी। वे उस स्थानमें निस्सन्देह विवश थे, निस्सहाय थे, अजान थे, निराश थे, परन्तु उत्साहहीन नहीं थे, इसलिए विकसित लोचनोंकी ज्योतिको चारों ओर संचालन कर रहे थे। जैसे घटाटोपसे घिरी हुई अमावस्याकी महाकाली रात्रिमें अकस्मात् विजलीकी रेखा, दौड़ जाय, ठीक वैसेही स्वामीजीको दो पहाड़ी पुरुष सामनेसे आते दिखाई दिये। उन आगन्तुक भद्रजनोंने एक परमहँसको दुःखाकुल दशामें पड़ा देख पहले तो नमस्कार किया और फिर समादरपूर्वक निवेदन किया कि महाराज! आइए हमारे संग हमारे घर चलिये। आप शीतसे ताड़ित और भूख प्याससे व्यथित हैं। हमारे गृहपर आपको पूर्ण सुख और पुष्कल भोजन मिल जायगा। स्वामीजीकी क्लेश-कहानीको सुनकर उन पहाड़ियोंने कहा कि आप चिन्ता न करें, हम

आपको 'सिद्धपत' तीर्थस्थान तक भी पहुंचा देंगे। स्वामीजी चलनेमें असमर्थ थे, इसलिये उन्होंने उनका कथन स्वीकार नहीं किया और कहा, "महाराज" खेद है मैं आपकी इस कृपापूर्ण सहायताको स्वीकार नहीं कर सकता, क्योंकि मुझमें चलनेकी किञ्चित् भी शक्ति नहीं है।" उन भद्र गृहस्थोंने फिर भी भक्ति भावसे आग्रह और अनुरोध किया कि हमारे साथ अवश्य पधारिये। परन्तु स्वामीजी यह कह कर कि इस समय मैं हिलने जुलनेकी अपेक्षा यहां मर जानाही उत्तम समझता हूं मौन होगये, फिर उनके कथनपर उन्होंने कर्णपात नहीं किया। अन्तको वे पहाड़ी मनुष्य अति खेदके साथ वहांसे चल पड़े और किञ्चित् कालहीमें पर्वतके टीलों और उतराईकी ओटमें स्वामीजीकी दृष्टिसे ओझल हो गए।

चिरकालतक वहीं विश्राम लेनेसे स्वामीजीका शरीर स्वस्थ और उनका चित्त शान्त होगया। उसी समय चलकर वे 'वसुधारा' तीर्थस्थानपर जा पहुंचे। वहां थोड़ी देर विश्राम लेनेके अनन्तर फिर चल पड़े और 'मग्रम' के समीप वर्ती प्रदेशोंसे होते हुए रातके आठ बजे बद्रीनारायणमें जा विराजे। उनकी देहकी दशाको देखकर रावलजी तथा उनके संगी-साथी सब घबरा गये। विस्मित होकर उन्होंने पूछा—"आप आज सारा दिन कहां रहे? आपकी अवस्था ऐसी क्यों हो रही है?" उस समय स्वामीजीने उन्हें अपनी सिद्धोंके दर्शनार्थ की गई संकट-संकुल यात्रा आद्योपान्त कह सुनाई। रावलजी आदिने स्वामीजीको कुछ भोज्य पदार्थ दिये। उनको खाते हुए उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा कि अशक्त शरीरमें अब शक्तिका संचार हो रहा है, निकला हुआ साम-र्थ्य फिर प्रवेश कर रहा है। स्वामीजी फिर सुखपूर्वक रातभर सोते रहे। दूसरे दिन सवेरेही शीघ्र उठकर रावलजीसे प्रस्थान निमित्त आज्ञा मांगी। सम्मान-पूर्वक एक दूसरेसे मिलकर स्वामीजी महाराजने वहांसे प्रस्थान किया और राम-पुरको चल पड़े। चलते चलते उसी सायंको एक योगीके स्थानपर आ निकले वह महात्मा बड़ा तपस्वी था। तत्कालीन ऋषियों और साधुसन्तोंमें उच्चको-

टीका ऋषिहोनेका गौरव रखता था। स्वामीजी महाराजने ऐसे महापुरुषके पास ही रात्रि विश्राम लेना उचित समझा। योगीराजजीके साथ स्वामीजी धार्मिक विषयोंपर बहुत देर तक वार्त्तालाप करते रहे। वहां स्वामीजीने अपने सङ्कल्पोंको पहिलेसे भी अधिक दृढ़ कर लिया। प्रातःकाल उठते ही यात्रा आरम्भ कर दी। मार्गमें कई वनों और पर्वतोंको उल्लङ्घन करते चिलका घाटी उतरकर रामपुरमें आ गए। इस नगरमें सदाचार और आध्यात्मिक जीवनके लिये प्रसिद्ध, रामगिरि नामके एक महात्मा निवास करते थे। श्री स्वामीजीने उन्हींके पास अपना आसन लगाया। उन्होंने उस पुरुषकी प्रकृतिमें यह विचित्रता देखी कि वह सारी रात जागता रहता और ऊँचे ऊँचे बातें करने लग जाता था। कभी चिल्लाने लगता था और कभी ऊँची ध्वनीसे रोदन करता हुआ जान पड़ता था। स्वामीजी जब कौतूहलवश उठकर देखने गये तो उन्हें वहां उसके विना अन्य कोई भी दृष्टिगोचर न हुआ। अत्यन्त विस्मित होकर उन्होंने उस महात्माके चेलोंसे पूछा कि रातको यह क्या कौतुक होता है ? वे बोले "गुरुजी महाराज की ऐसा करनेकी प्रकृति ही है।" परन्तु स्वामीजी इतने उत्तरसे कब सन्तुष्ट होनेवाले थे। अन्तमें उन्होंने महात्माजीसे जा पूछा, और कई बार एकान्तमें चर्चा की, तब स्वामीजीको सारा भेद ज्ञात हो गया। स्वामीजीने यह सार निकाला कि यह पूर्ण योगी नहीं है, प्रत्युत अभी अधूरा है। हां इसकी योगमें गति अवश्य है। इसे योगके पूरे फल अभी प्राप्त नहीं हुए। परन्तु जिस वस्तुको मैं प्राप्त करना चाहता हूं वह इसके पास नहीं है।

छठा सर्ग।

कालान्तरमें रामपुरसे चलकर श्री स्वामीजी काशीपुर होते हुए 'द्रोणासागर' में आये और उन्होंने सारा शरदृऋतु यहीं विताया। द्रोणासागरमें निवास करते समय एक बार उनके हृदयमें यह विचार स्फुरित हुआ

कि हिमालयके हिममय भागमें जाकर देह त्याग देना चाहिए। परन्तु तुरन्त दूसरे विचार उत्पन्न हो आये कि अभी ज्ञान संचय करना उचित है। शरीर त्यागना हो तो पूर्ण ज्ञानी होकर त्यागना चाहिए। भागीरथके प्रयत्नसे प्रेरित जैसे गङ्गाजीका पवित्र प्रवाह, हिमालयके उत्तुंग शिखरोंको त्यागकर, नीचे सम-भूमिकी ओर बहने लगा था वैसे ही ज्ञानसंचयके विचारोंसे संचालित, योगा-भ्याससे विमलात्मा, स्वामी दयानन्दजी हिमालयमें समाधि ले लेनेके विचारको त्याग कर, पार्वत्य प्रान्तको छोड़कर, समभूमिपर विचरते हुए किसी ज्ञानी गुरु के अन्वेषणमें प्रवृत्त हुए।

द्रोणासागरसे स्वामीजी मुरादाबाद आये। वहांसे सम्भल, गढ़मुक्तेश्वरमें होते हुए गङ्गा-तटपर आ पहुंचे। उस समय उनके पास कई धर्मपुस्तकोंके अतिरिक्त शिव-सन्ध्या, हठ प्रदीपिका, योगबीज और केशराणीसंगति नामक पुस्तकें भी थीं। उनमेंसे कई पुस्तकोंमें नाड़ीचक्रका बड़ा विस्तृत वर्णन था। वह भ्रान्त करने वाला विषय न तो कभी पूर्ण रीतिसे स्वामीजीकी बुद्धिमें समाया और न ही वे उसे ध्यानपूर्वक स्मरण ही कर सके। उसकी सत्यतामें उन्हें सदैव सन्देह रहा करता था। यहां तक, उन्होंने साधारण साधनोंसे उस संशयको निवारण करनेका यत्न भी किया। पर यह संशय निवृत्त होनेके स्थान दिनों दिन बढ़ता ही गया। गङ्गा-तटपर विचरते हुए दैवयोगसे एक दिन उन्होंने जलमें एक शव बहता देखा। शवको देखतेही वे मनही मन विचारने लगे कि नाड़ीचक्रके विषयमें जो संशय सदा बना रहता है आज इस शव द्वारा परीक्षा करके उसे मिटा लेना चाहिए। मनमें यह आते ही उन्होंने पुस्त-कोंको नदी-तटपर रख दिया, वस्त्र सम्भाल कर गङ्गा-प्रवाहमें कूद पड़े। और तुरन्त ही बहते हुए शवको पकड़कर किनारे पर ले आये। अपने उपकरणोंमेंसे एक तीक्ष्ण चाकू निकाल कर लगे शवको चीरने। सावधानीसे चीरकर प्रथम हृदय निकाला। उसकी आकृतिको, स्वरूपको और लम्बाई चौड़ाईको पुस्त-कलिखित वर्णनके साथ देर तक मिलाते रहे। इसी प्रकार सिर, ग्रीवा आदि

अङ्गोंकी भी तुलना की। नाभि आदि चक्रोंका भी परीक्षण किया। परन्तु उन पुस्तकोंमें वर्णित चक्रों और अङ्गोंको उन्होंने वास्तविक चक्रों और अङ्गों से लवलेश मात्र भी मेल खाते न देखा। उस परीक्षणसे स्वामीजीको पूर्ण निश्चय होगया कि इन पुस्तकोंके ऐसे लेख, सब काल्पनिक हैं। इससे उन्होंने उन पुस्तकोंको तुरन्तही फाड़ कर खण्ड २ कर डाला और शवके साथ ही गङ्गा के प्रवाहमें बहा दिया। उसी समयसे विचारते हुए वे इस परिणामपर पहुंचे कि वेदों, उपनिषदों, पातञ्जल और शांख्य शास्त्रके अतिरिक्त शेष समस्त पुस्तकें जो विज्ञान और योगपर लिखी गई हैं, मिथ्या और अशुद्ध हैं।

ऐसे ही गङ्गाके साथ साथ चलते हुए सम्वत् १९१२ की समाप्ति पर स्वामीजी फर्रुखाबाद गये। वहांसे शृङ्गीरामपुर होते हुए छावनीसे पूर्व दिशा वाली सड़कसे कानपुरकी ओर प्रस्थान किया। सम्वत् १९१३ में पांच मास तक स्वामीजी कानपुर और प्रयागके मध्यवर्त्ती स्थानोंमें विचरते रहे। भाद्र पदके प्रारम्भमें गङ्गाके तीरपर विचरते हुए मिर्जापुरमें जाकर एक माससे कुछ अधिक समय तक विन्ध्याचल अशोलजीके मन्दिरमें जा विराजे। आश्विन मासके आरम्भमें काशी आये। वहां वरुणा और गङ्गाके सङ्गमके पासही एक गुफामें जाकर टिके। उस गुफा पर उस समय भवानन्द सरस्वतीका अधिकार था। काशीमें रहते हुए स्वामीजीका परिचय काकाराम, राजाराम इत्यादि अनेक शास्त्रियोंसे हो गया। इस बार आप केवल बारह दिनही काशीमें रहे।

महाराज काशीसे चलकर आश्विन सुदी २, सम्वत् १९१३ को चण्डाल-गढ़में दुर्गाकुण्डके मन्दिरमें दस दिन तक रहे। वहां चावल खाना सर्वथा परित्याग कर दिया। केवल दूधपर ही निर्वाह करके रात दिन योग-विद्याके अध्ययन और अभ्यासमें परायण रहते थे। हिमालयमें विचरने वाले और गङ्गा-तीरपर अटन करने वाले अच्छे अच्छे साधुओंमें भी प्रायः यह दोष पाया जाता है कि पानी-लागसे बचनेके लिए वे भाँगका सेवन करने लग जाते हैं। इस प्रदेशमें आया हुआ कोई नवीन साधु उन्हें मिल जाय तो उसे भी जल-

दोषसे बचे रहनेकी औषधि विजया ही बताते हैं। इस प्रकार संगति दोषसे विजया-सेवनके संस्कार साधुओंमें अतीव प्रबल हैं। इस व्यापक संस्कारके प्रभावसे परमहंस स्वामी दयानन्द जी भी न बचे! जब वे चण्डालगढ़में थे तो यह संसर्ग-जन्य दोष उनमें लगा हुआ था कई बार भाँगके प्रभावसे वे अचेत हो जाया करते थे।

एक दिनका वर्णन है कि स्वामीजी चण्डालगढ़से निकलकर उसके निकट-वर्ती एक ग्रामको चल पड़े। मार्गमें उन्हें एक पुराना साथी मिला। उससे शिष्टा-चार आदि करके गाँवके दूसरी ओर एक शिवालय में रात्रिको विश्राम लेने लगे। जब, वे भाँगकी मादकतामें, बेसुध सो रहे थे तो उन्होंने स्वप्न-लीलामें देखा कि, महादेव और पार्वती दोनों उनके समीप खड़े परस्पर बातें कर रहे हैं। गौरीने शङ्करसे कहा कि महाराज, अच्छा हो यदि दयानन्द सरस्वतीका विवाह हो जाय परन्तु शिवजी भांगका संकेत करके अपनी सम्मति पार्वतीके प्रस्तावके विरुद्ध देते थे। इतनेमें ही स्वामीजीकी तंद्रा टूट गई। स्वप्नको स्मरण कर उन्हें बहुत दुःख और क्लेश हुआ। उस समय आकाश मेघावृत था। मूसलाधार वर्षा हो रही थी। स्वामीजी मन्दिरके भीतरसे निकल कर वराण्डेमें आये। वहां नन्दी वृषभकी एक विशाल मूर्त्ति स्थापित थी। उन्होंने अपने पुस्तकादि उपकरण वृषभ देवताकी पीठपर रख दिये, और आप उसके पीछे बैठ विचारमें निमग्न हो गये। विचारते हुए उनकी दृष्टि अचानक मूर्त्तिके भीतर जा पड़ी। उन्हें वहां कोई मनुष्य छिपा बैठा दिखाई दिया। कौतूहलवश स्वामीजीने ज्योंही उसकी ओर हाथ पसारा वह अति भयभीत होकर कांप उठा और तत्काल छलाङ्ग मारकर, एकदम ग्रामकी ओर भाग गया। उसके पश्चात् उस नन्दी वृषभके भीतर प्रवेश कर स्वामीजी सुखसे सो रहे। प्रातः काल होनेपर वहाँ एक वृद्धा स्त्री आई और उसने आकर उस वृषभ-देवताका पूजन किया। स्वामीजी वहीं तन्द्रामें बैठे यह दृष्य देखते थे। वह स्त्री पूजा करके चली गई, परन्तु स्वल्प समयमें ही कुछ गुड़ और दही लेकर फिर लौट

आई। उस भोलीने स्वामीजीको मूर्तिका अभिमानी देवता समझ लिया। इस लिए उसने उनका भी अर्चन किया और भक्ति-भावनासे दही-गुड़का नैवेद्य उनको निवेदन किया। साथ ही कहा—"हे नन्दी वृषदेव! आप इस मेरी भेंटको ग्रहण कीजिये और दयालु होकर इसमेंसे कुछ भोग लगाइये।" स्वामीजीको भी इस समय भूख बहुत सता रही थी। उन्होंने सारा नैवेद्य खा लिया। दही बहुत ही खट्टा था। उनकी भाँगकी मादकताको तुरन्त उतारनेमें एक औषध बन गया। भाँगका प्रभाव दूर होनेपर उन्हें आराम प्रतीत हुआ।

चैत्र १९१४में वहांसे आगे चलकर स्वामीजी महाराजने नर्मदा नदीका स्रोत देखनेकी लालसासे यात्रा आरम्भ की। पहाड़ी मार्ग बड़ा विखड़ा था। चलते हुए वे किसीसे भी मार्ग न पूछते थे। दक्षिणाभिमुख चुपचाप चलते चले जाते थे। इस प्रकार चलते हुए मार्गमें एक विस्तृत घना जङ्गल आगया। उन्हें वह वन जनसंचार शून्य जान पड़ा, परन्तु विशेष देखनेसे सुदुर झाड़ियोंमें अनियमित रूपसे कुछ मलिन झोपड़ियां दिखाई पड़ीं। स्वामीजी उस समय क्षुत्पिपासासे पीड़ित थे, इस लिये वे एक झोपड़ीमें गये और उसके अधिपतिसे माँगकर कुछ दूध ग्रहण किया। वहाँसे आगे चलकर कोई पौन कोस पहुंचने पाये थे कि मार्गका लोप दिखाई दिया। हाँ छोटी छोटी पगडंडियां, जो वास्तवमें भेड़-बकड़ियोंके आने जानेसे ऐसे वनोंमें बन जाया करती है चारों और फैली हुई थीं। उन्होंने उनमेंसे एकको चुन लिया और चल पड़े। थोड़ी दूर जाकरही वे एक निविड़ निर्जन वनमें जा फँसे। इस वनमें बेरीके बहुतसे वृक्ष थे। घास अति घनी और लम्बी थी। ऐसे स्थानमें ऐसी पद-पंक्तियाँ भी प्रलुप्त हो गई थीं। स्वामीजी थोड़े समयके लिए वहाॅं ठहरकर यह सोचरहेही थे कि किस ओरसे आगे बढ़ें, इतनेमें अचानक एक काला रीछ बड़े वेगसे दौड़ता चला आता सामने दिखाई दिया। वह हिंसक पशु चिंघाड़ता हुआ अपने पिछले पांवपर खड़ा होगया और मुंह खोल कर उनको

खानेके लिये आगेकी ओर लपका। स्वामीजी महाराज कुछ क्षण तो आश्चर्य चकित, निष्क्रिय होकर खड़े रहे, परन्तु जब अन्तमें देखा कि वह पशु कुचलनेही लगा है तो अपना सोटा उन्होंने रीछकी ओर बढ़ाया। वह पशु स्वामी-दण्डको देखकर वहांसे उलटे पांव भाग गया। उस भालूका चिंघाड़ना सुनकर जिन झोपड़ियोंमें स्वामीजीने दुग्ध ग्रहण किया था वहांके लोग शिकारी कुत्ते लेकर घटना-स्थलपर आ गये। वे परमहंसजीको सुरक्षित देख प्रसन्न हुए और बोले—"महाराज, इस जङ्गलमें यदि और थोड़ा भी आगे बढ़ोगे तो आपको घोर संकटोंके सन्मुख होना पड़ेगा। इस पर्वतमें इस सघन वनमें बड़े बड़े विकट बनैले पशु वास करते हैं। यहां आपको सिंह आदि अति क्रूर और भयङ्कर जीव अवश्यमेव मिलेंगे। कृपा करके आप हमारे साथ हमारे गाँवमें पीछे चले चलिये। हम आपकी सेवाशुश्रूषा करेंगे।"

स्वामीजीने उन वनवासी हितेच्छुओंके वचन आदरसे सुने और फिर कृतज्ञताके साथ कहा "आप मेरे लिये चिन्ता न कीजिये। मेरे कुशल-मङ्गलका भय छोड़ दीजिये। क्योंकि मैं सकुशल और सुरक्षित हूं।" स्वामीजी महाराजने नर्मदाका स्रोत देखनेका दृढ़ संकल्प कर लिया था। वे जानते थे कि मार्गमें भीषण प्रकृतिके हिंस्र जन्तुओंसे पूर्ण, भयावने वन आयँगे। इस लिये, पहिले उन्होंने अपने हृदयसे समस्त भय निकाल दिये और फिर वे स्रोत दर्शनकी कामनासे चले। ग्रामीण भक्तोंने देखा कि भयकी बातोंसे श्रीपरमहंसजीका हृदय यत्किंचित् भी डांवाडोल नहीं हुआ और वे अपने विचारमें पक्के हैं, तो उन्होंने स्वामीजीको एक ऐसा लट्ठ दिया जो उनके अपने सोटेसे मोटा और लम्बा था। फिर स्वामीजीके धैर्य्यको धन्य कहते हुए वे लौट गये।

धृति धर्म्मका मूल है, है जीवनका सार,
की जिसने धारण धृति, उस पाये फल चार।
ध्रुवता धरणीपे धरें, पांव निश्चयके जो,
उनको बाधक कार्यमें, भय संकट न हो।

स्वामीजीने ग्रामीणोंका दिया हुआ लट्ठ वहीं फैंक दिया और अति साहससे आगे बढ़ने लगे। उस दिन मार्गमें उन्हें बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी। चलते चलते सायंकाल होगया, पर दूर दूर तक मानव वस्तीका कोई चिह्न दिखाई न देता था, न ही मार्गमें आता जाता कोई मनुष्यही मिलता था। चारों ओर सघन वन था जिसमें स्थान स्थानपर मत्त हस्तियोंके उखाड़े हुए ऊंचे ऊँचे पेड़ भूतल-शायी हो रहे थे। सर्वत्र सुनसान और सन्नाटा था, परन्तु स्वामी दयानन्दका हृदय निष्कम्प, चित्त निश्चिन्त, बुद्धि स्थिर और मन क्षोभ-रहित था। इस विकट विस्तीर्ण वनको पार करते हुए श्रीस्वामीजीको बड़ा कष्ट सहन करना पड़ा। प्रथम तो उस वनमें प्रवेश करतेही छोटी छोटी कण्टका-कीर्ण अविरल झाड़ियोंने उनके तनको छलनी बनाना आरम्भ कर दिया। ज्यों ज्यों वे आगे बढ़ते थे उनके शरीरके वस्त्र पगपगपर काँटोंमें फँसकर, झाड़ियोंमें अटककर, और शाखाओंमें उलझकर उन्हें पीछेको खींचते थे। इस बंधनसे बचनेके लिए उन्हें अपने वस्त्रोंको फाड़कर टुकड़े टुकड़े कर देना पड़ा। पर क्या इतनेसे ही विपत्तिकी समाप्ति हो सकती थी? तीक्ष्ण कांटोंसे लदी हुई घनी झाड़ियोंकी डालियों और छोटी छोटी टहनियोंने परस्पर ओतप्रोत होकर, किसीके लिए निकलनेका मार्ग न छोड़ा था। स्वामीजीको थोडी देरतक तो वह वन-दुर्ग उल्लंघन करना दुस्तर दीखने लगा उस समय वे मानों कांटोंके कोटमेंसे लांघ रहे थे। सीधे खड़े खड़े चलना वहाँ असम्भव था। टेढ़े होकर आगे बढ़ना भी महादुष्कर था। ऐसे स्थानोंमें स्वामीजी घुटनोंके सहारे सरककर और पेटके बल रेंगकर आगे निकले। अनेक बार उनके पाँवपर आघात हुए, तलुवे लहूसे लाल हो गये, देह अगणित काँटोंके चुभनेसे रक्तस्राव करने लगी, तनपरसे कहीं कहीं मांसकी बोटियां उड़ गईं, परन्तु धुनके धनी स्वामी दया-नन्दजी सकल विघ्न बाधाओंको अपने साहससे पार करके अन्तको उस वन-दुर्गपर विजयी हुए। जब वे वनसे बाहर आये तो बहुत घायल थे और उनकी अवस्था अधमुईसी हो रही थी।

उस समय सर्वत्र अन्धकार छा रहा था। दृष्टि पसारनेपर कुछ भी दृष्टि-गोचर न होता था। यहाँ भी मार्ग कहीं प्रतीत न होता था, पर स्वामीजी थे कि इतने कष्ट पानेपर भी उत्साहहीन नहीं हुए। उन्होंने अपनी अग्रगतिको बन्द नहीं किया। वे इस अन्धकारपूर्ण रात्रिमें इस आशासे चलेजा रहे थे कि कहीं तो मार्ग मिल ही जायगा। आगे जाकर ऐसे भयानक प्रदेशमें पहुंचे, जहां, चारों ओर पर्वत और टीले ही दृष्टिगत होते थे। वह स्थान वनस्पतिसे ढका हुआ था। परन्तु उन्हें वहां मानव-निवासके कुछ चिन्ह प्रतीत होने लगे। ज्योंही, कुछ आगे गये तो उन्हें टिमटिमाते हुए दीपक दिखाई पड़े। ये दीपक मानों आनेवाले पथिकको वहाँ पहुंच जानेकी बधाई देते हुए उसका स्वागत कर रहे थे। समीप जानेपर स्वामीजीको गोबरके ढेरसे घिरी हुई कुछ झोंपड़ियां दिखाई दीं। उन कुटियोंसे थोड़ी दूरीपर स्वच्छ जलकी एक धारा बह रही थी उस जलधाराके तटपर बकरियोंका एक रेवड़ चर्वन कर रहा था। वहीं एक विशाल वृक्षके नीचे स्वामीजीने विश्रामके लिए स्थान बनाया। यह वृक्षराज खुली भूमिपर शाखाओंका एक चँदुआसा ताने था। इसके नीचे एक कुटिया भी थी।

उस समय स्वामीजी अपने घावोंपर विशेष ध्यान न देकर निद्रादेवीकी गोदमें चले गये। सवेरे उठनेपर शौचादिसे निवृत्त होकर उन्होंने नदी जलसे अपने घावोंको धोया। हाथ पाँव प्रक्षालन किये। दण्डको भी जलसे साफ कर-लिया। तत्पश्चात् सन्ध्योपासनामें बैठाही चाहते थे कि उन्हें एक घोर गर्जन सुनाई दिया। इसे उन्होंने किसी जङ्गली पशुकी ध्वनि समझा। परन्तु थोड़ी देरमें वे क्या देखते हैं कि एक टमटम चली आ रही है। वे समझ गये कि यह उच्च गर्जना इस गाड़ीकीही थी। कुछ कालके अनन्तर स्त्री-पुरुष और बालक बालिकाओंका एक समूह उन झोंपड़ियोंमेंसे बाहर निकला। उनके साथ बहुतसी गायें और बकरियां थीं। ऐसा प्रतीत होता था कि वे लोग किसी धार्मिक त्योहार की रीतिका पालन करनेके लिए गत रात्रिको वहाँ आये थे। जब उस जन-समूहने नदी-तीरपर एक परमहंसको बैठे देखा तो वे उनके समीप आये।

उन्होंने आकार आदिसे यह भी समझ लिया कि यह सन्त इस प्रान्तके नहीं और इन स्थानोंसे अपरिचित हैं। उन्होंने आदर आदि प्रदर्शन करके स्वामीजीके इर्द गिर्द घेरा डाल लिया। अन्तमें एक वृद्धने पूछा—"महाराज ! आप कहाँसे पधारे हैं?" स्वामीजीने उत्तर दिया—"मैं काशीसे आया हूं और नर्मदा नदीका स्रोत देखनेके लिए जा रहा हूं।" तत्पश्चात् स्वामीजी उपासनामें निमग्न हो गये और वे लोग भी वहाँसे चले गये। आध घण्टेके पश्चात् उस जन-मण्डलीका प्रधान पुरुष दो पर्वतीय मनुष्योंको साथ ले स्वामीजीके पास आया और एक ओर बैठकर उसने स्वामीजीसे अपनी झोपड़ियोंमें पधारनेकी प्रार्थना की। पहले आनेवाले लोगोंकी ओरसे वह वास्तवमें एक प्रतिनिधि होकर आया था; परन्तु स्वामीजीने यह जानकर कि ये सब लोग मूर्ति-पूजा परायण हैं, उसका कुटियोंमें जानेका निमन्त्रण अस्वीकार कर दिया। उस प्रधान पुरुषने अपने साथियोंको अग्निप्रज्वालनका आदेश देकर कहा कि तुम दोनों यहाँ ही रहो और रात्रिभर जागते हुए सावधानीसे परमहंसजीकी रक्षा करो। तत्पश्चात् उस श्रद्धालु भक्तने हाथ जोड़कर स्वामीजीसे भोजनके लिए प्रार्थना की, स्वामीजीने उत्तर दिया कि मैं आजकल अन्न ग्रहण नहीं करता किन्तु कुछ दूधहीपर निर्वाह किया करता हूं। यह सुन कर उस सदय-हृदय मुखिया पुरुषने स्वामीजीसे उनका तूँबा माँग लिया। वह उसे लेकर कुटियाकी ओर चला आया। फिर, थोड़ी देर पीछे दुग्धसे आकण्ठपूर्ण तूँबा लेकर स्वामी-सेवामें उपस्थित हुआ। स्वामीजीने उसमेंसे कुछ दूध ग्रहण कर लिया। वह प्रधान पुरुष परमहंसजीको नमस्कार आदिसे पूजन करके जब स्वस्थानको जाने लगा तो उसने फिर उन दोनों पुरुषोंको सचेत किया कि सारी रात जागते हुए परमहंसजीका रक्षण करना। उस मुख्य व्यक्तिके चले जानेके पश्चात् स्वामीजी उसी स्थानपर विराजते रहे और रात होनेपर वहीं सो गये। पिछले दिनके परिश्रमसे उनका सारा शरीर श्रान्त था, इसलिए, उस रात उन्हें ऐसी गाढ़ निद्रा आई कि सूर्योदयके समय ही

जागे। सन्ध्योपासनादिसे अवकाश पाकर परमहंसजीने फिर यात्रा आरम्भ कर दी। इसी प्रकार तीन वर्ष पर्यन्त श्री परमहंसजी नर्मदातीरपर पर्यटन करते रहे। इस अन्तरमें उन्हें अनेकसन्त महात्माओंके सत्संग प्राप्त हुए। उन्होंने अपने अन्तःकरणके सुवर्णको, सन्तोंके सत्सङ्ग और तपस्याकी आगमें तप्त करके, मल विक्षेप-आवरणरूप तीनों दोषोंसे विमुक्त कुन्दन बना लिया। उस समय उनका आत्मा अभ्यासकी ऊपरी पैरियोंपर पदार्पण कर रहा था। इतनेमें, वे स्वामी श्री विरजानन्दजीका विमल-यश श्रवण कर, विशेष ज्ञानकी जिज्ञासासे मथुरा आ पहुंचे।

सातवां सर्ग।

स्वामी श्री विरजानन्दजीका जन्मस्थान पञ्जाब प्रान्त अन्तर्गत कर्तारपुरके समीपवर्ती कोई ग्राम विशेष था। कहते हैं कि उनका जन्मग्राम कपूरथलेके पाससे बहनेवाली बेई नामक नदीके तीर पर है। वे शारद शाखाके सारस्वत ब्राह्मण थे। उनका गोत्र भारद्वाज था। उनके पिताका नाम नारायणदत्त था। जब विरजानन्दजी पांच वर्षके थे तो उनपर शीतला रोगका घोर आक्रमण हुआ। जीवन तो उनका बचा रहा, परन्तु वे इस रोगसे चक्षुहीन हो गये। वे अभी ग्यारह वर्षके ही थे कि उनके माता पिताका देहान्त हो गया। मातृ-पितृ विहीन, छोटे अन्धे भाईको बड़े भाईने अनेक प्रकारसे दुःख देना आरम्भ कर दिया, विरजानन्द स्वबन्धुओंके सतानेसे घर छोड़नेपर विवश हुए। घरसे चलकर वे हृषीकेशमें आये। यह स्थान हिमालयके एक भागसे आवृत्त है, यहां वे अधिक काल गङ्गा जलमें बैठकर गायत्री जपमें लगाया करते थे। इस प्रकार उनका एक वर्ष बीता। एक दिन स्वप्नमें उन्होंने श्रवण किया "विरजानन्द! तुम अब यहांसे चले जाओ। जो कुछ तुम्हारा होना था, सो हो गया।" वे इसे दैववाणी समझकर वहांसे कनखल चले आये।

वहां वे पूर्णानन्द स्वामीसे षड्लिङ्गादि व्याकरणके भाग पढ़ते रहे। ऐसा प्रतीत होता है कि विरजानन्दजीने गृह-परित्यागके अनन्तर ही परमहंसवृत्ति धारण कर ली थी।

कनखलमें अध्ययन समाप्त कर वे प्रयाग आदि तीर्थ स्थानोंके पर्यटनमें प्रवृत्त हो गये। एक दिनका वर्णन है कि सोरोंमें गङ्गा-स्नान करके विरजानन्दजी विष्णुस्तोत्रकी आवृत्ति कर रहे थे। उस समय अलवरके राजा विनयसिंहजी वहां विद्यमान थे। वे स्तोत्रके उच्चारण और विरजानन्दजीके मधुर स्वरको सुनकर अतिशय प्रसन्न हुए। वार्तालापमें उनकी चमत्कारिणी प्रतिभाका परिचय पाकर राजा आश्चर्यमय हो गये। उन्होंने विरजानन्दजीसे अपने साथ चलनेके लिये अनुरोध किया। अति आग्रहसे विवश होकर विरजानन्दजीने कहा कि यदि हमसे तुम प्रति दिन पढ़ा करो तो मैं तुम्हारे साथ चल सकता हूं, नहीं तो व्यर्थ कालक्षेप करनेके लिये नहीं चलूंगा। अलवरनरेशने अध्ययन करनेकी प्रवल इच्छा प्रकट की और उन्हें अपने साथ अलवर लिवा ले गये। अलवर स्थानमें खान-पानका पूर्ण प्रवन्ध राज्यकी ओरसे हो गया। ऊपरके फुटकर व्ययके लिये दो रुपये दैनिक मिलने लगे। महाराजा विनयसिंहजी नित्यप्रति तीन घण्टे उनसे अध्ययन करते। जव कभी कोई राज्यसम्बन्धी विशेष विषय उपस्थित होता तो महाराजा स्वामीजीसे भी परामर्श लिया करते। स्वामी विरजानन्दजी, प्रतिदिन राजप्रासादमेंही नियत समयपर जाकर महाराजको पढ़ाया करते थे। एक दिन स्वामीजी तो समयपर राजप्रासादमें पढ़ानेके लिये चले गये, परन्तु अलवर-अधिपति उपस्थित न हो सके। कहते हैं कि वे, उस समय वाराङ्गनाओंके नृत्य-गायनमें कालक्षेप कर रहे थे। स्वामीजी स्वस्थानपर लौट आये, परन्तु इतने विरक्त हो गये कि अपने ग्रन्थादि सभी उपकरण वहीं छोड़कर सोरोंमें आ विराजे। वहां थोड़े दिन ठहरकर मथुराके समीपस्थ मुरसानके राजाके पास जाकर रहने लगे। राजा वलवन्तसिंहजीके आग्रहसे मुरसानसे भरतपुर चले गये। वहां छः मास यापन करके

फिर सोरोंमें चले आये। इसके पश्चात् विरजानन्दजीने अपना स्थान मथुरामें नियत किया।

रेलवे स्टेशनसे यमुनाके विश्रामघाटतक जो राजपथ जाता है उसी राजमार्गकी एक ओर एक छोटीसी अट्टालिकामें विरजानन्दजी विराजा करते थे। यही छोटासा स्थान उनकी पाठशालाका भी काम देता था। उनके आहारके प्रबन्धके लिये अलवरके महाराजा विनयसिंहजी सहायता देते थे और कभी कभी जयपुरके महाराजा रामसिंहजी भी। इसके अतिरिक्त मथुरामें आनेवाले अनेक धनी लोग उनके विद्याबलसे प्रेरित होकर स्वेच्छासे द्रव्यादि प्रदान कर जाया करते थे। विरजानन्दजी अन्नाहार बहुत कम करते थे। उनका प्रायः दुग्धपर ही निर्वाह था। रातको बहुत थोड़ी देरके लिये सोते थे। ब्राह्ममुहूर्तमें उठ स्नानादि करके प्राणायाम पूर्वक ध्यानमें निमग्न हो जाते थे। सूर्योदयतक प्रातः—कृत्यसे निवृत्त हो लेते थे। फिर अध्यापनकार्यमें प्रवृत्त हो मध्याह्न कालतक पढ़ाते रहते थे। उसके पश्चात् कुछ काल विश्राम लेकर फिर पढ़ाने लग जाते थे। चतुर्थ प्रहरतक अध्यापन होता रहता था। विद्यार्थियोंको कभी कभी विशेष शिक्षायें भी दिया करते थे। प्रतिदिन सायंसमय स्नानादि करके ध्यानावस्थित हो जाया करते थे। इस शोभन वृत्तिमें श्री विरजानन्दजीके पुण्यमय जीवनके दिन बीतते थे। विरजानन्दजीकी विचारशक्ति अतिशय प्रबल थी। वे विषयकी तहमें तुरन्त पहुंच जाते थे। वे अपनी असाधारण बुद्धिके कारण विख्यात होगये थे। स्मरणशक्ति और धारण-शक्तिका तो कहना ही क्या है? यदि कोई नवीन श्लोक दो एक बार भी उनके श्रुतिगोचर हो जाता तो वे, उसे इतनेमें ही स्मरण कर लेते, और फिर वह उनके स्मृति-पथसे कभी उतरने न पाता था। जो कुछ वे सुनते थे उनके मस्तिष्कमें वह अङ्कित सा हो जाता। ऐसी स्मृति ईश्वरहीकी देन समझनी चाहिये। इस अद्भुत स्मृतिके कारण अनेक ग्रन्थ उनके कण्ठाग्र थे। काशी आदि नगरोंकी पण्डित मंडलीमें उनका पाण्डित्य प्रख्यात था। जो भी शास्त्रीय विषय विरजा-

नन्दजीके सन्मुख उठाया जाता था, वे उसका ऐसा उत्तम आलापन करते थे कि विद्वान् जन धन्य धन्य करने लग जाते थे। विरजानन्द एक स्पष्टवक्ता, निष्कपटस्वभाव, और सरलवृत्ति, साधु थे। वे ज्ञान-ध्यानमें निमग्न रहनेवाले अभ्यासी और उत्तम कोटीके दण्डी संन्यासी थे। दण्डीजीको अनार्ष ग्रन्थोंसे अप्रीति होगई थी। इस लिये उनकी पाठशालामें कौमुदी, मनोरमा, शेखर आदि कोई भी व्याकरणका अनार्ष ग्रन्थ नहीं पढ़ाया जाता था। उनके विद्यार्थी व्याकरणके निघण्टु, निरुक्त-अष्टाध्यायी और महाभाष्य प्रभृति ग्रन्थ पढ़ाकरते थे। उन्हें श्रीमद्भागवतसे भी अति घृणा थी। उसके पढ़नेसे भी लोगोंको रोका करते थे संक्षेपतः जिस समय स्वामी दयानन्दजी मथुरामें आये उस समय श्रीविरजानन्दजीकी प्रतिभा-व्याकरण-विद्याकी दीप्ति अद्वितीय समझी जाती थी और वे आर्ष ग्रन्थोंके एक प्रबल पक्षपाती तथा प्रचारक थे। दण्डीजीकी आयु उस समय इकासी वर्षकी थी।

सम्बत् १९१४ की भारी सैनिक हलचल प्रायः शान्त हो गई थी। अब यत्र तत्र ही उसकी सुलगती हुई चिङ्गारियां दिखाई देती थीं। शान्ति और समानताका घोषण-नाद भी दिग्दिगन्तर-गुंजायमान कर चुका था कि कार्तिक सुदी २ सम्वत् १९१७ को स्वामी दयानन्द सरस्वती मथुरामें प्रविष्ट हुए, और सीधे दण्डीजीकी अट्टालिकापर चढ़कर उसका द्वार खटखटाने लगे। दण्डीजीने पूछा "कौन है ?" उत्तर मिला—"दयानन्द सरस्वती"। "कुछ व्याकरण भी पढ़े हो ?" "महाराज ! सारस्वत आदि व्याकरण ग्रन्थ पढ़ा हूं।"

यह सुनते ही दण्डीजीने द्वार खोल दिया। स्वामी दयानन्दजीने भीतर प्रवेश करके अतिशय सम्मानसे विरजानन्दजीको नमस्कार किया। वे निर्देश पाकर बड़े विनीत भावसे उनके समीप बैठ गये। विरजानन्दजीने आगन्तुकसे परीक्षाकी रीतिपर पहले थोड़ासा कुछ पूछा। स्वामी दयानन्दजीके उत्तरोंको सुनकर विरजानन्दजीने कहा—"दयानन्दजी ! अबतक जो कुछ तुमने अध्ययन किया है उसका अधिक भाग अनार्ष ग्रन्थ हैं। ऋषि-शैली बड़ी सरल और

सुन्दर है परन्तु लोग उसका अवलम्बन नहीं करते। जबतक तुम अनार्ष पद्ध-तिका परित्याग न करोगे तबतक आर्ष ग्रन्थोंका महत्व और मर्म समझ न सकोगे।" दण्डीजीने फिर कहा कि आधुनिक अनार्ष ग्रन्थोंके रचयिता कैसी प्रकृतिके थे इसको सारस्वत नामक व्याकरण-ग्रन्थकी रचनाकी कथासे समझ सकते हो। अनुभूतिस्वरूप आचार्य एक दिन विद्वानोंके साथ वादमें प्रवृत्त हो रहा था। बुढ़ापेके कारण उसके अगले दांत गिर गये थे। इस लिये वादप्र-संगमें 'पुंसु' पदके स्थान उसके मुखसे अशुद्ध शब्द 'पुंक्षु' निकल गया। उप-स्थित पण्डितोंने 'पुंक्षु' पदपर आक्षेप किया, परन्तु अपनी अशुद्धि स्वीकार करना तो दूर रहा, उसने नूतन ग्रन्थकी रचना करके 'पुंक्षु' पद सिद्ध करनेका यत्न किया। यद्यपि उसका यह यत्न सफल नहीं हुआ तो भी अनार्ष ग्रन्थोंके कर्त्ताओंकी प्रकृति प्रकट करनेके लिये यह एक ही दृष्टान्त पर्याप्त है। यदि तुम मेरे समीप अध्ययन करना चाहते हो तो मनुष्यकृत ग्रन्थोंको विस्मरण कर दो। पठन-पाठनमें उनसे कोई भी काम न लो। स्वामी दयानन्दजीने दण्डी-जीके इस प्रथम आदेशको प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया।

दण्डीजीने फिर यह भी कहा कि हम संन्यासियोंको नहीं पढ़ाया करते। इसका कारण यह है कि उनके भोजनका यहाँ कोई प्रबंध नहीं। इस लिए पढना आरम्भ करनेके पहिले आपको अपने भोजनका प्रबन्ध अवश्य कर लेना चाहिए। निश्चिन्तता प्राप्त किये विना अध्ययन नहीं हो सकता। स्वामी दया-नन्दजीने इस दूसरे कथनको भी सादर स्वीकार करते हुए कहा—"महाराज! आप पढ़ाना आरम्भ कर दीजिए। भोजनके विषयमें निश्चिन्ता, मैं थोड़े ही दिनोंमें लाभ कर लूंगा।"

कहते हैं, दण्डीजी सिद्धान्तकौमुदीके सम्पादक भट्टोजीदीक्षितपर इतने अप्रसन्न थे कि अपने विद्यार्थियोंसे उसके नामपर जूते लगवाया करते थे, जिससे उनके मनमें उसके लिए प्रतिष्ठाका लेश भी शेष न रह जाय, और वे अष्टा-ध्यायीका पूरा सम्मान करने लग जायँ। इस आज्ञाका पालन पहले स्वामी

दयानन्दजीसे भी कराया गया और इसके पश्चात् उनका पाठ आरम्भ हुआ। दण्डीजीकी प्रेरणासे सारे नगरसे चन्दा करके स्वामी दयानन्दजीके लिए महाभाष्यकी एक प्रति ३१) रुपयेको मँगवाई गई।

आठवां सर्ग।

जिस वर्ष स्वामी दयानन्दजीने मथुरामें अध्ययन आरम्भ किया उस वर्ष देशमें घोर दुष्काल पड़ रहा था। उत्तरीय भारत अति पीड़ित था। यद्यपि बहुत सहायता की जाती थी, पर फिर भी सबके पेटकी आग न बुझ सकी। सबकी भूखका विषम विषैला कीड़ा न मरा। दुर्दिनदलित सभी दरिद्रोंकी दुर्भिक्षजनित दारुण, वेदना दूर न हुई। सैंकड़ों नरनारी आबालवृद्ध भूखके मारे सिर पीट-पीटकर, पाँव पीट पीटकर, पेट मसूसते हुए मर गये। बड़ा यत्न करनेपर भी उस अकालमें दो लाख मनुष्य कालके गालमें जानेसे न बच सके। इसके प्रभावसे मथुरा नगरी भी बची हुई न थी। स्वामीजीके वहाँ आनेके पश्चात् भी छः मासतक दुर्भिक्ष बना ही रहा। मथुरावासके प्रथम दिनोंमें वे चिरकालतक चनोंपर निर्वाह करके अध्ययनमें लगे रहे। फिर कुछ दिनों तक दुर्गाप्रसाद क्षत्रियने उनका आतिथ्य किया।

अमरलाल नामक एक आदर्श-दानी मथुरामें निवास करते थे। वे बड़े ज्योतिषी थे। महाराजा सिन्ध्या उनकी ज्योतिषसे इतने प्रसन्न हुए थे कि उन्होंने अमरलालजीको कुछ एक ग्राम प्रदान कर दिये थे और साथ ही 'ज्योतिषी बाबा' की उपाधिसे भी विभूषित किया था। तबसे वे अमरलालजी ज्योतिषी बाबाके नामसे प्रसिद्ध थे। उनके गृहपर प्रायः एक सौ ब्राह्मण प्रतिदिन भोजन पाया करते थे। वे एक आनुष्ठानिक उदीच्यवंशज ब्राह्मण थे। एक दिन अमरलालजीने श्री स्वामीजीकी कीर्ति सुनकर उनका मिलाप प्राप्त किया। स्वामीजीकी अद्भुत प्रतिभा, विलक्षण बुद्धि, दिव्यदेह और ब्रह्मचर्य-दीप्तिसे

चमकते हुए मुखमण्डलको देखकर वह उनकी ओर आकर्षित हो गया। उन्हें अपना वंशीय जानकर उसकी प्रीति और भी बढ़ी। उसने अति सन्मानपूर्वक स्वामीजीसे विनय की कि आप प्रतिदिन हमारे यहाँही भोजन ग्रहण किया कीजिये। स्वामीजीने उनके निमन्त्रणको स्वीकार कर लिया। श्रीअमरलालजी; श्रीस्वामीजीके इतने प्रेमीभक्त बन गये थे कि वे नित्यप्रति उन्हें अपने साथ गृहपर ले जाते। प्रथम स्वामीजीको भोजन कराते और फिर पीछे आप किया करते यदि किसी दिन उन्हें किसी अन्य गृह-पर जीमने जाना पड़ता तो प्रथम स्वगृहपर स्वामीजीको जिमाकर उसके पश्चात् जीमने जाते। इस प्रकार, एक भावनावान् भक्तने स्वामीजीको भोजनके विषयमें सर्वथा निश्चिन्त कर दिया था; उनके आतिथ्यके लिए स्वामीजीने इन शब्दोंमें कृतज्ञता प्रकट की थी—"भोजन और ग्रन्थादिके विषयमें अमरलालजीने जो मुक्तहस्तसे सहायता की उसके लिए मैं उनका अत्यन्त बाधित हूं।"

स्वामीजी रातको भी पठन कार्य्यमें परायण रहते थे। उनके तेलके व्ययके लिए चार आने मासिक लाला गोवर्धन सराफ दिया करते थे। दूधका प्रबन्ध दो रुपये मासिकके व्ययसे हरदेव पत्थरवालेने किया हुआ था।

निवासके विषयमें तो स्वामीजी प्रथम दिवससे ही निश्चिन्त थे। विश्रामघाटके ऊपरी भागमें स्थित, लक्ष्मीनारायणके मन्दिरके नीचेकी एक छोटीसी कोठरीमें, वे रहा करते थे। वह कोठरी, मन्दिरमें द्वार प्रवेश करते दहिने भागमें है। वह इतनी छोटी है कि स्वामी दयानन्दजी महाराज, उसमें अति कठिनतासे पाँव पसारकर सो सकते होंगे।

उन दिनों स्वामीजी भालपर विभूति रमाया करते थे। गलेमें रुद्राक्षकी एक माला होती थी। सिरपर उपरना बांधे रखते थे और हाथमें एक लम्बा और मोटा दण्ड हुआ करता था।

वे बहुत सवेरे उठ स्नानादिसे निवृत्त हो सन्ध्योपासनामें निमग्न हो जाते थे। वे समीप आनेवाले ब्राह्मणादिकों और विद्यार्थियोंको भी सन्ध्यादि नित्य-

कर्मों का उपदेश देते थे। आगन्तुकोंके साथ संस्कृतमें वार्त्तालाप किया करते थे। कण्ठी तिलकादि सम्प्रदायिक चिन्होंका खण्डन किया करते थे। स्वास्थ्य-रक्षाके निमित्त वे भ्रमण करने दूर तक जाते थे। आसनादिकी रीतिसे व्यायाम भी करते थे। इन सब क्रियाओंको करते हुए भी नियत समयपर अध्यनार्थ गुरु-सेवामें उपस्थित हो जानेमें बड़े नियमवद्ध थे।

गुरु-भक्तिमें भी स्वामी दयानन्दजीने अपनेको एक आदर्श शिष्य सिद्ध किया है। विरजानन्दजी महाराज ब्राह्ममुहूर्तमें पुष्कल पानीसे स्नान किया करते थे। परन्तु, स्वामी दयानन्द इतने उद्यमी और परिश्रमी थे कि बड़ी रात रहते उठ कर, गुरु-स्नान-समयके पूर्व ही, यमुना-जलके कई घड़े अपने कन्धेपर उठा उठा कर लाते और पर्याप्त जल इकट्ठा कर देते थे। गुरु महाराजके सायं-कालके स्नानके लिए भी वे नियमपूर्वक यमुनासे जल लाते थे। स्वामी विरजा नन्दजी पीते भी यमुनाका ही पानी थे। इस लिये, स्वामी दयानन्दजी यमुनाके भीतर प्रवेश करके, अति प्रीतिसे पीने योग्य पानी लाया करते थे। इस बीचमें कई बार आँधियाँ आईं, बड़ी बड़ी वर्षायें हुईं परन्तु स्वामीजीका गुरुसेवा समय कभी अतिक्रान्त नहीं हुआ। अबेरे, सवेरे अन्धेरा, चाँदना, कीचड़, कर्दम, सब कुछ, समय समयपर होता रहा पर श्रीदयानन्दजी, गुरुसेवामें घटिका यन्त्रकी सूइयोंके सदृश नियमनिष्ठ थे। वे जलके पन्द्रह बीस घड़े प्रतिदिन लाया करते थे। गुरुजीकी आज्ञापालन करनेमें उन्होंने शीत उष्ण और सुखदुःखका कभी नाम तक भी नहीं लिया। वे,साधु-स्वभाव और सरल प्रकृति थे। आदेश-पालन, सेवा-शुश्रूषा, और चमत्कारिणी प्रतिभाके कारण, श्रीदया-नन्द, गुरुदेवके पूर्ण कृपा पात्र हो गये थे।

शीत, उष्ण, प्रतिकूलता तथा अनुकूल समान,
मानामान जो न गिने सो सेवक गुणवान।
सेवामें जो लीन हो, करे एक दिन रात,
हिचके न पानी पवनसे, महातम वा उत्पात।

दूर निकट जाने नहीं, क्षुत्पिपासा एक मान,
दुःख सुखमें भी रत रहे, सो सेवक पहचान।
जाति-जीवन सेवा है, सभाका यह सिंगार,
नर-जीवनका सार है, कुल कुटुम्ब आधार।
सेवा जहाँ न दुःख वहाँ, जहाँ सेवा न हान,
पथ है उन्नति शिखरका, स्वर्गधाम-सोपान।
आर्यजनोंकी रीति यह, करें सेवा निष्काम,
तन धन तक अर्पण करें, पर चाहें न दाम।
विश्वामित्र मुनिराजकी, सेवा की श्रीराम,
नींद छोड़ी छः रात दिन, तब, हुए पूर्ण काम।
जनक-हृदयमें जगमगा, ब्रह्मज्ञानका दीप,
याज्ञवल्क्य मुनिदेवका, सेवक हुआ समीप।
वाल्मीकि नारदादिने, इससे धोये पाप,
चरण धुलाने द्विजोंके, माधो धाये आप।
जितना हो सेवक बड़ा, उतना वही महान,
यह बड़ाई तात्त्विकी, शेषाडम्बर जान।

श्री स्वामीजीकी स्मरण-शक्ति वैसे तो बड़ी प्रबल थी। दो एक बारहीके सुननेपर पाठ स्मरण कर लेते थे। उनकी धारणा-शक्तिके कारण दण्डीजी उनपर प्रसन्न भी थे। परन्तु एक दिन अष्टाध्यायीकी कोई प्रयोग सिद्धि कुछ ऐसी क्लिष्ट आई कि स्वामीजीको अपने निवास स्थानपर जाकर विस्मृत हो गई। पूर्व ऐसा कभी न हुआ था। इस लिये स्वयं उन्हें बड़ा खेद हुआ। अन्तमें गुरुजीसे आकर विस्मृत प्रयोग-सिद्धि पूछी। विरजानन्दजीने दयानन्दजीको पाठ कभी बार बार न बताया था। इस लिये कुछ झिड़क कर कहा "जाओ स्मरण करके आओ। यहाँ बार बार उसी पाठको पढ़ानेके लिये नहीं बैठे हैं।" दो तीन दिन तक श्री दयानन्दजी गुरुजीसे प्रार्थना

करते रहे "महाराज! कृपा करके एक बार फिर बता दीजिये; मैं सारा बल लगा चुका, पर क्या करूं वह पाठ स्मरण ही नहीं आता।" परन्तु विरजानन्दजीने दुबारा प्रयोग-सिद्धि न बताई और अन्तमें खिज कर श्रीदयानन्दजीको कहा "हमने एक बार तुम्हें कह दिया है कि जब तक पहलेका पढ़ा हुआ पाठ न सुना लोगे तुम्हारा पाठ आगे नहीं चलेगा। अब तुम्हें कहा जाता है, यदि वह प्रयोग, तुम्हें स्मरण न हो आवे तो यमुनाजीमें भले ही डूब मरना परन्तु मेरे पास न आना।" स्वामीजी, गुरु महाराजके चरण स्पर्श करके वहाँसे चले आये और विश्रामघाटके समीप, सीताघाटके शिखरपर आरूढ़ होकर विस्मृत प्रयोग-सिद्धिको स्मृति-पथपर लानेके लिये मस्तिष्कपर बल देने लगे। उस समय उन्होंने प्रण कर लिया कि यदि आज सायंकाल तक वह प्रयोग स्मरण न हो आया तो, अवश्यमेव, यहींसे, यमुनामें कूद पड़ूंगा और अपने कलेवरको मगर आदि जलचरोंका आहार बना दूंगा। इस भीषण प्रतिज्ञाको धारण करके स्वामीजी विस्मृत प्रयोगके स्मरण करनेमें इतने लीन हुए, इतने एकाग्र हुए कि उन्हें देश और कालका भी ध्यान न रहा। वे अपनी देहके अभ्यासको भी भूल गये। उनपर स्वप्नकीसी अवस्था आ गई। उसमें उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानों कोई व्यक्ति लम्बी प्रयोग-सिद्धि सुना रहा है। जब वे सारी प्रयोग सिद्धि सुन चुके तो सचेत हो गये और उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा मानो अभी सोकर उठे हैं। स्वामीजीकी प्रसन्नताका पार न रहा। दौड़े हुए गुरु चरणोंमें आये और अथसे इतितक सारी प्रयोग-सिद्धि सुना दी। श्रीदयानन्दजीकी धारणा और धैर्य्यको देखकर विरजानन्दजी भी प्रेमसे पुलकित-तनु हो गये। उनकी आँखोंमें हर्षके आंसू डब डबा आये। गुरुजीने वत्सलतासे दयानन्दजीको कण्ठ लगा लिया और भूरि भूरि आशीर्वाद दिये। उस दिनसे, स्वामीजीको, जब कभी कोई बात विस्मृत हो जाती तो वे उसी प्रकार समाधिस्थ होकर स्मरण कर लिया करते थे।

नववाँ सर्ग ।

इस समय स्वामीजीकी अवस्था ३५ वर्षकी हो चुकी थी। तप्त ताम्र और कुन्दन सुवर्णकी भाँति उनका मुखमण्डल उद्दीप्त था। अखण्ड ब्रह्मचर्य्यके कारण उनका चेहरा एक प्रकारके तेजोमय चक्रसे घिरा रहता था। उनकी विशाल आकृति और दिव्य मूर्त्तिको देखकर, सभी लोग मुक्तकण्ठसे उनके ब्रह्मचर्य व्रतकी प्रशंसा करने लग जाते थे। स्वामीजी गुरुराजके स्नानादिके लिए जलके कोई बीस घड़े लानेके लिए अनेक वार यमुनापर जाते थे। एक प्रकारसे उनका आसन भी यमुनाघाटपर ही था। ऐसे स्थानोंमें प्रायः नाना प्रकृतिके लोग वास किया करते हैं। किसी किसी समय राह-चलतोंसे भी कोई कोई व्यक्ति छेड़छाड़ और उपहासादि करनेसे नहीं चूकते, परन्तु स्वामीजी थे कि उनसे उपहास करनेका साहस कभी किसी अधमसे अधम नर-नारीको भी न हुआ। वे बाजारोंमें चलते, गलियोंमें जाते और घाटसे बार बार पानी लेते थे। इन स्थानोंमें सैकड़ों स्त्रियां इधर उधर आती जाती थीं, परन्तु ढाइ वर्षमें कभी किसीने उन्हें किसी स्त्रीकी ओर आँख उठाकर देखते नहीं देखा। वे सदा नीची मार्गविलोकिनी दृष्टि रखकर चला करते थे। उनकी इस वृत्तिकी सारी मथुरामें धाक थी। मन्दिरोंमें, घाटोंपर, विश्रांतोंमें, पाठशालाओंमें, बाजारोंमें, हाटोंपर, गृहोंमें, चौबोंके अखाड़ोंमें, और विजयापानकी मण्डलियोंमें, सर्वत्र श्रीदयानन्दकी सुशीलता और अभंग ब्रह्मचर्य-व्रतका गुण-गान किया जाता था।

एक दिनका वर्णन है कि श्री स्वामीजी यमुनाके पुलिनपर ध्यानमें मग्न बैठे थे। एक स्त्री स्नान करके आई। उसने देखा कि सामने एक परमहंस पद्मासन लगाये समाधिस्थ है। श्रद्धावती देवीने, भक्तिभावसे अति निकट आकर स्वामीजीके चरण-कमलोंपर सिर रखकर नमस्कार किया। भीगे हुए शीतल वस्त्रके स्पर्शका अनुभव करके स्वामीजीने ज्योंही नेत्र खोले तो उन्होंने पैरोंपर एक माईका शिर पड़ा देखा। वे चौंक पड़े और माता, माता कहते हुए

सहसा उस स्थानसे उठ गये। जहां तक बन पड़ता श्री स्वामीजी स्त्री-स्पर्श नहीं किया करते थे, परन्तु उस दिन, एक स्त्रीने ध्यान दशामें उनके पाँवपर सिर रख दिया, इसलिए वे वहाँ से उठ गोवर्द्धनकी ओर जा, निर्जन एकान्त स्थानमें स्थित एक टूटे फूटे मन्दिरमें तीन दिन और तीन रात निराहार ध्यान और चिन्तनमें लीन रहे। चौथे दिन जब पाठके लिए गुरु-सेवामें उपस्थित हुए तो गुरुजीने तीन दिवसकी अनुपस्थितिके लिए उनकी भर्त्सना की और उसका कारण पूछा। स्वामीजीने प्रायश्चित्त की कथा आदिसे अन्त-पर्यन्त गुरुचरणोंमें निवेदन करदी। स्वशिष्यकी व्रत-वार्त्ता सुनकर श्रीविरजानन्दजीको प्रसन्नतासे रोमाञ्च हो आया। अनेक साधुवाद देते हुए उन्होंने उनकी प्रभूत प्रशंसा की। यदि कभी श्री दण्डीजी पठन पाठन में, कारणवश कुपित हो जाते और आवेश में स्वामीजीको ताड़नातर्जना भी कर बैठते तो वे गुरुजीके कोपको कृपाके समान ही समझते थे; चिढ़ते नहीं थे। एक दिनका वर्णन है, स्वामी विरजानन्दजीने आवेशमें आकर श्रीदयानन्दजी पर लाठीका एक ऐसा प्रहार किया कि उनकी भुजापर बड़ी कड़ी चोट आई। परन्तु पीड़ाका कोई ध्यान न करके उन्होंने गुरुजीसे प्रार्थना की "महाराज! मेरा शरीर कठोर है और आपके हाथ कोमल हैं। मारनेसे आपको क्लेश होता होगा। इसलिए मुझे मारा न कीजिये।" कहते हैं, उस दिनके घावका चिन्ह उनकी भुजापर जीवन भर बना रहा। वे उसे जब देखते थे गुरुजी के उपकारोंका स्मरण करने लग जाते थे।

स्वामी श्रीविरजानन्दजीकी शिष्यमण्डलीमें मणि-मुक्ताकी भाँति आभावान् नयनसुख नामक एक जड़िया भी था। उसकी धारणा-शक्ति बड़ी प्रबल थी। दण्डीजीकी दयाका वह विशेष भाजन था। वैसे पढ़ा तो कुछ भी न था, परन्तु जिस समय विद्यार्थीगण अध्ययन किया करते वह पास बैठा सुनता रहता था। अपनी उज्वल मेधाके माहात्म्यसे उसने सुनते सुनते अष्टाध्यायी और महाभाष्य कण्ठाग्र कर लिए। उसका संस्कृत उच्चारण विशुद्ध था। संस्कृत भाषामें वार्त्ता-

लाप करनेकी शक्ति भी उसे इसी प्रकार प्राप्त हो गई थी। स्वामी दयानन्दजीसे उसे अति प्रेम था और वह उनका बड़ा आदर-सत्कार करता था।

एक दिन ऐसा हुआ कि संथा देते समय दण्डीजी कुछ क्रुद्ध हो गये। उस समय कठोर शब्द कहते हुए उन्होंने स्वामीजीको एक लाठी भी लगाई। स्वामीजी तो समावस्थामें, पहलेकी भाँति अपने पाठमें परायण रहे, परन्तु पास बैठे हुए नयनसुखजीसे न रहा गया। उन्होंने हाथ जोड़कर विरानन्दजीसे निवेदन किया "स्वामीजी महाराज! ये दयानन्दजी कोई हमारे समान गृहस्थ नहीं हैं, जिनका विशेष ध्यान न दिया जाय। ये संन्यासी हैं। इनको न तो अवाच्य कहना उचित है और न मारना।" दण्डीजीने नयनसुखजीके वचनको स्वीकार करते हुए कहा—बहुत अच्छा, आगेको हम इन्हें आदर और प्रतिष्ठापूर्वक पढ़ायेंगे।" संथाकी समाप्तिपर जब विद्यार्थीगण गुरु-कुटीसे बाहर निकल आये तो स्वामी दयानन्दजीने नयनसुख पर अप्रसन्नता प्रकाशित की कि तुमने मेरे लिए गुरुजीको क्यों कुछ कहा? उनका हमारे साथ कोई द्वेष तो है नहीं; फिर यदि मारते हैं तो हित-बुद्धिसे प्रेरित होकर ही मारते हैं। जैसे कुम्हार मिट्टीको पीट-पीटकर उसका एक सुडौल सुन्दर घड़ा बनाता है, ठीक उसी प्रकार श्री गुरुदेव हमारी कल्याण-कामनाके वशीभूत होकर ही हमें ताड़ना करते हैं।

एक समय, श्रीदण्डी विरजानन्दजीका शास्त्रार्थ, रंगाचार्य से वृन्दावन में हुआ। उस समय स्वामी दयानन्दजी भी साथ गये। वहां रंगाचार्यके किसी चेलेने संस्कृतमें कुछ कथन आरम्भ किया; परन्तु वह बोलता अति अशुद्ध था। उसका उच्चारण भी बड़ा भद्दा था। इसपर स्वामी दयानन्दजीने आक्षेप करते हुए उसे रोका, परन्तु दण्डीजीने उन्हें ऐसा करनेसे रोक दिया। दण्डीजी महाराज वैसे तो एक निःस्पृह संन्यासी थे, परन्तु अपनी प्रकृतिसे राजेश थे। उनकी बातचीतमें भी राजाओंके सदृश परिभाषायें पाई जाती थीं' ठीक तो है—

चाह चिन्ताको दूर कर हुआ जो विगतक्लेश,
इन्द्रियगणको दमन कर वही राजराजेश।

कलह कल्पना मेटके निरपेक्षित परिव्राट्,
उसके मानस महलमें सोहे राजसी ठाठ।

एक समयका वृत्त है कि दण्डीजीका, कोई दूर समीपका सम्बन्धी मथुरामें आया। वहाँ आकर उसे दण्डीजीके मिलापकी भी बड़ी उत्कण्ठा उत्पन्न हुई, परन्तु दण्डीजीने उन दिनों आज्ञा दे रक्खी थी कि विद्यार्थियोंके विना दूसरा कोई भी मेरे स्थानपर न आये। इससे उनका सम्बन्धी अतिशय दुःखित हुआ। एक दिन कहीं मार्गमें स्वामी दयानन्दजीको मिला और बड़ी विनयसे बोला—"महाराज किसी प्रकार मुझे दण्डीजीका दर्शन करा दीजिए; मैं बड़ी दूरसे आया हूं। यदि यहाँ आकर भी उनके दर्शनसे वञ्चित रहा तो फिर जन्म भरमें, दूसरी वार अवकाश मिलना दुर्लभ है।" स्वामीजीने आगन्तुकको बहुत समझाया कि वे पढ़नेवालोंके विना अपने स्थानपर किसी दूसरेको नहीं आने देते, और यदि मैं अपने साथ तुम्हें ले चलूँ तो वे मुझपर अत्यन्त अप्रसन्न हो जायँगे। परन्तु आगन्तुकने अति आग्रह करते हुए स्वामीजीके पैर पकड़कर कहा; मेरे लिये गुरुजीकी अप्रसन्नता सह लीजिएगा; परन्तु मुझे दर्शन अवश्य करा दीजिये। मैं चुपचाप दूरसे दर्शन करके चला जाऊँगा।" स्वभावसे दयालु श्री दयानन्दजी सदयहृदय होनेके कारण उसे अपने साथ गुरुअट्टालिकापर ले आये। थोड़ी देर तक वह मौनसाधे खड़ा दण्डीजीके दुर्लभ दर्शनोंका लाहा लूटता रहा, और अन्तमें स्वामीजीका संकेत पाकर शनैः शनैः पीछे चला गया। स्वामीजी भी उसके साथ, विश्रामघाटपर जानेके लिये वहाँसे उतर आये। दोनों सीढ़ियोंसे उतरही रहे थे कि स्वामीजीको अपना एक सहाध्यायी मिला। उन्होंने उसे संकेतसे समझा दिया, परन्तु उसने जाकर स्वामी विरजानन्दजीको कहही दिया "महाराज आज दयानन्दके साथ आपके पास जो व्यक्ति आया था वह कौन था? पहरावेसे तो पञ्जावी प्रतीत होता था।" यह जानकर कि मेरे पास कोई चुपचाप आया और फिरकर लौट गया, श्रीविरजानन्दजी क्रोधमें आ गये। स्वामी दयानन्दके आनेपर उन्हें बहुत

झिड़कियाँ दीं और कहा "तूने मुझे नेत्रहीन जानकर ऐसा किया है। यहाँसे चले जाओ। तुम्हारे लिए डेवढ़ी बन्दकर दी गई है।" स्वामीजी उसी समय गुरु-चरण ग्रहण कर क्षमा-याचना करने लगे, परन्तु सुनवाई न हुई। अन्तमें कई दिनोंके अनन्तर, नयनसुखजीने विनय करके श्रीदयानन्दजीका, विरजानन्द दण्डीके दरबारमें आना खुलवा दिया। जैसे पवन-कम्पित प्रफुल्ल पद्मपरसे भ्रमर उड़कर, फिर परागके अनुरागसे वहीं आ बैठता है, ऐसे ही गुरु-गुण-गरिमासे मोहित श्रीदयानन्दजी, तिरस्कार होनेपर भी गुरु-चरणोंके समीप बार बार आ जाते थे।

स्वामीजी का दरबारमें आना एक बार फिर बन्द हुआ। उसका वर्णनयों है कि एक दिन श्रीदयानन्दजीने गुरुजीकी बैठकके स्थानमें झाड़ू देकर कूड़ाकर्कट एक कोनेमें इकट्ठा कर दिया और बुहारी रखकर कूड़ाकर्कट फेंकनेके लिए किसी वस्तुका अन्वेषण करने लगे। इतनेमें श्रीदण्डीजी टहलते हुए उसी ओर आ गये और उनका पाँव उस कूड़ेमें पड़ गया, इससे वे क्रोधावेशमें आ गये। स्वामी दयानन्दजीको आलसी, अनुद्यमी आदि अनेक वचन कहकर उनकी डेवढ़ी बन्द कर दी। उस समय स्वामीजीका अध्ययन समाप्त होनेमें भी थोड़ा समय शेष रह गया था। स्वामीजी नन्दन चौबे और नयनसुखके पास गये। उन्हें कहा कि, "गुरुजी वास्तवमें तो कुपित नहीं है, फिर भी कुछ आवेश में आकर उन्होंने मेरा आना जाना बन्द कर दिया है। अब मेरे विद्यासमाप्तिके दिन भी समीप आ रहे हैं। इस लिए मैं नहीं चाहता कि मेरे विषयमें गुरुजीकी उदासीनता बनी रहे। आप दोनों साथ चलकर मेरे अपराध क्षमा करा दीजिए"। दोनोंको साथ लेकर स्वामीजी महाराज आये और दोनों हाथोंसे गुरुचरणोंका ग्रहण कर अपराध क्षमा कराये। श्रीविरजानन्दजी यद्यपि शिष्यों-पर कभी कभी कोपका प्रकाश किया करते थे, परन्तु उनका कोप दूधके उबाल और पानीकी लकीरकी भाँति क्षणिक हुआ करता था। वे शान्त भी तुरन्त हो जाते थे। स्वामी दयानन्दजीपर भी तत्काल ही प्रसन्न हो गये।

दसवाँ सर्ग ।

महात्मा विरजानन्दजी अपने शिष्योंसे विपुल प्रेमवद्ध भी थे। एक दिन सायंसमय उन्हें पता लगा कि उनका एक शिष्य आज इस लिए अध्ययनार्थ नहीं आया कि वह किसी पीड़ाविशेषसे अत्यन्त पीड़ित है। उसी समय एक दूसरे शिष्यको संग लेकर उस शिष्यके गृहपर पहुंचे और आश्वासन देते हुए बड़ी देरतक उसके पास बैठे रहे। स्वामी दयानन्दजीपर तो उनकी अपार प्रीति थी। उन्होंने अपने सारे शिष्योंके समक्ष कई वार यह कहा कि मेरे शिष्योंमें योग्य, तो एक दयानन्दही है। यही एक मेरे आशयको पूर्ण रीतिसे समझा है। मुझे इस पर भरोसा है कि यह अपनी विद्याको सफल करेगा।

श्री दयानन्दजीकी तर्क-शैलीपर भी श्री विरजानन्दजी मोहित थे। विद्याविनोदमें किसी किसी दिन गुरु-शिष्यमें परस्पर युक्ति प्रयुक्तिकी वाण-वर्षा होने लग जाती तो द्रोण-अर्जुन संग्रामका समय वन्ध जाता था। विरजानन्दजी अपने शिष्यके तर्क-चातुर्यकी प्रशंसा करने लग जाते थे। कभी कभी तो विरजानन्दजी कह देते थे, "दयानन्द ! तुमसे कोई क्या वाद करे ? तुम तो कालजिव्ह हो ! जैसे काल सव पर वली है वैसे तुम्हारी तर्क शक्ति भी प्रवल है। सब कुमतोंका खण्डन करनेमें समर्थ है।"

श्रीविरजानन्दजीके निकट दयानन्दजीके अतिरिक्त अन्य भी अनेक शिष्य अध्ययन करते थे; परन्तु उनकी तर्क शक्ति प्रवल न थी। गुरुजी जैसा पाठ पढ़ाते, शास्त्रकी जैसी व्याख्या करते वे सव सुनते चले जाते थे। वीचमें कोई प्रश्नोत्तर करनेका साहस न करता था। परन्तु जव श्रीदयानन्दजी अध्ययन करने आते थे तो मध्यमें वारवार प्रश्नोत्तर छिड़ जाते थे, तर्ककी झड़ी लगजाती थी, युक्तियोंप्रयुक्तियोंका तार वन्ध जाता था। गुरुजी प्रायः कह दिया करते थे, "दयानन्द ! आजतक मैंने वहुतेरे विद्यार्थियोंको पढ़ाया परन्तु जो स्वाद, जो आनन्द तुम्हें पढ़ानेमें आता है वह अन्य किसीको भी पढ़ानेमें आजतक नहीं आया।'

शास्त्रगत वार्त्ताओंसे पृथक् पुस्तक-लिखित भेदोंसे भिन्न, ऐसे कई रहस्य और मर्म होते हैं, जो तत्त्वदर्शी गुरुजनोंके हृदय-कोशमें सुरक्षित रक्खे रहते हैं। किसी अत्यन्त श्रद्धावान्, उत्तमाधिकारी, अन्तेवासीको अकेले और एकान्तमें बताये जाते हैं। विरजानन्दजी, अपने पवित्र प्रेमके पुनीत पात्र श्री दयानन्दजीको पाठ-कालसे अतिरिक्त समय देकर ऐसे सारे रहस्य समझाया करते थे। एकान्त समयमें गुरुशिष्यमें चिरकालतक वार्त्तालाप होता रहता था। प्रायः गूढ़ तत्वोंकी ही चर्चा चला करती थी। इस प्रकार श्रीविरजानन्द महाराजने उन अमूल्य रत्नोंको, जो उन्होंने युवा-कालसे लेकर उस समय तक अन्तःकरण में संचित किये थे, एक एक करके श्रीस्वामीजीको सौंप दिये। और इस दान से वे अति सन्तुष्ट हुए।

स्वामीजी महाराजने ढाई वर्षतक महात्मा विरजानन्दजीके पदपद्मोंमें बैठ कर अष्टाध्यायी, महाभाष्य, वेदान्तसूत्र तथा अन्य अनेक पुस्तकोंका अध्ययन किया। इतने कालका गुरु-सत्संग स्वामी महाराजके लिये सुवर्ण और सुगन्धिका योग हो गया। अपने आपको विद्यासे भरपूर कर लेनेके पश्चात् उनकी इच्छा हुई कि गुरु-महाराजका आदेश लेकर देशाटन करें। श्री विरजानन्दजी एक तो अपने विद्यार्थियोंसे द्रव्य लेनाही उचित न समझते थे, और दूसरे श्री स्वामी दयानन्दजीके पास द्रव्य था भी नहीं। स्वामीजीने बिदा होनेके समय, पुरातन आर्य मर्यादाके अनुसार गुरुजीके समीप रीते हाथ जाना उचित न समझा। जाते हुए कुछ लौंग ले गये। लौंग निकट रखकर गुरु महाराजके चरणोंको स्पर्श करके नमस्कार किया और कहा "महाराज! आपने मुझपर असीम कृपा करके मुझे विद्यादान दिया है। उसके लिये मेरा रोम रोम आपका धन्यवाद करता है। प्रभो, अब आपका आज्ञाकारी शिष्य आपसे देशाटनकी आज्ञा ग्रहण करना चाहता है। ऐसी कोई वस्तु नहीं जो आपकी भेंट कर सकूं, परन्तु सेवकके पास ये कुछ लौंग हैं; जो सम्मानपूर्वक श्री-सेवामें समर्पित हैं।"

सच्चे गुरुओंके समीप सच्चे शिष्य किसी अवस्थामें सन्तानसे भी अधिक

स्नेहके पात्र हुआ करते हैं। महात्मा विरजानन्दजीने तो सन्तान-स्नेहका आस्वादन ही न किया था उनके लिये तो शिष्यसे परे इस संसारमें स्नेह पात्र और कोई दूसरा सम्बन्धही न था। शिष्यमें भी वह शिष्य जिसे सम्पूर्ण शास्त्रीय भेद बताये, जिसके आगे हृदय खोलकर रख दिया, जिससे कुछ भी छिपा न रक्खा—जो स्वयं उज्वल ज्वलन्त बुद्धिका धनी था, आज पृथक् होता है, यह जानकर उनका जी भर आया। पांवमें, नम्रीभूत शिष्यके सिरको हाथसे स्पर्श करके कहा—वत्स ! मैं आपके लिये मंगल-कामना करता हूं। ईश्वर आपकी विद्याको सफलता प्रदान करें। परन्तु गुरु-दक्षिणामें इन लौंगोंसे भिन्न वस्तु मांगता हूं। वह वस्तु तुम्हारे पास भी है।"

स्वामीजीने निवेदन किया—"गुरुदेव ! यह सेवक अपने मनसहित तनको आपके चरणोंमें अर्पण किये हुए हैं। श्रीमुखसे जो भी आदेश होगा, उसे शिरोधार्य करूंगा—आजीवन निभाऊँगा। गुरुमहाराज ! आज्ञा कीजिये।" अपने प्यारे शिष्यके प्रोत्साहनपूर्ण वाक्य सुनकर विरजानन्दजीका रोमराजी हर्षित हो गया—उनके हृदयमें शिष्य-स्नेहका स्रोत प्रबलतासे प्रवाहित होने लगा। उन्होंने फिर आशीर्वादपूर्वक स्वामीजीको कहा—वत्स ! भारत देशमें दीन-हीन जन अनेक विध दुःख पा रहे हैं, जाओ उनका उद्धार करो। मत-मतान्तरोंके कारण जो कुरीतियां प्रचलित हो गई हैं उन्हें निवारण करो। आर्य-जनताकी बिगड़ी हुई दशाको सुधारो। आर्य सन्तानका उपकार करो। ऋषि-शैली प्रचलित करके वैदिक ग्रन्थोंके पठन पाठनमें लोगोंको प्रवृत्तिशील बनाओ। गङ्गायमुनाके निरन्तर गतिशील प्रवाहकी भांति लोकहित-कामनासे क्रियात्मक जीवन बिताओ। प्रिय पुत्र ! गुरु दक्षिणामें यही वस्तु मुझे दान करो। अन्य किसी सांसारिक पदार्थकी मुझे चाह नहीं है।"

स्वामी दयानन्दजीने गुरुदेवके एक एक वचनको स्वीकार किया और गद्गद कण्ठसे कहा कि, "श्रीमहाराज देखेंगे कि उनका प्रिय शिष्य इन आज्ञाओंका किस प्रकार प्राणपनसे पालन करता है।" श्री विरजानन्दजीने पुलकित

गुरु-दक्षिणाका अपूर्व दृश्य।

गात्र होकर अन्तमें फिर नतशिर शिष्यके सिर पर हाथ रक्खा, और भूयोभूय आशीर्वाद देकर कहा, "बहुत अच्छा, दयानन्दजी जाइये। ईश्वर आपको सुख-सफलतासम्पन्न करे! आप सफल-मनोरथ, सिद्ध-काम होवें।"

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी गुरु-चरण-कमलोंका गाढ़ आलिङ्गन करके वहांसे बिदा हुए और आगरेको जानेकी तैयारी करने लगे। पृथक् होते समय शिष्यको विरजानन्दजीने जो अन्तिम बात कही वह यह थी—दयानन्द! स्मरण रखना, मनुष्य कृत ग्रन्थोंमें परमात्मा और ऋषि-मुनियोंकी निन्दा भरी पड़ी हैं, परन्तु आर्ष ग्रन्थोंमें इस दोषका लेश भी नहीं है। आर्ष और अनार्ष ग्रन्थों की यही बड़ी परख है। इस कसौटीको हाथसे कभी न छोड़ना।"

गंगा काण्ड।

पहला सर्ग।

पूर्व समयमें लोकहितार्थ मृत्युको भी वशमें करनेवाले महायोगी महात्मा अगस्त्यके आश्रमसे जैसे श्रीरामजी दिव्य-अस्त्र-सम्पन्न होकर जनस्थान को अग्रसर हुए थे, वैसेही महात्मा विरजानन्दजीकी कुटीसे, महाराज दयानन्द विद्याके अलौकिक अस्त्रोंसे सुसज्जित होकर कार्यक्षेत्राभिमुख हुए। श्रीकृष्णसे प्रोत्साहनको पाकर जैसे श्रीअर्जुनकी नाड़ी-नाड़ी और नसनसमें वीरताका रक्त खौलने लग गया था, ऐसेही विरजानन्दजीके वचन-विद्युत्ने श्रीदयानन्दजीकी कायामें क्रियात्मक जीवनकी कल्पनातीत गति उत्पन्न कर दी। वे एक सुशिक्षित, निपुण सेनापतिकी भाँति अति साहससे उस क्षेत्रमें उतर आये, जहां, मत-मतान्तरोंका घोर संग्राम होरहा था, ईर्ष्याद्वेषके धूम्रसे लोगोंके सांस घुटे जातेथे-आंखें बन्द हुई जाती थीं; पैशुन, निन्दा और लांछनाकी जहां धूल उड़ रही थी; और जहां बड़े बड़े वीरोंने भी स्वार्थपाठकाही सबसे अधिक माहात्म्य मान रक्खा था।

स्वामीमहाराजके पास परहित-साधना और परमार्थोपदेशरूपी दो वरुणास्त्र थे। इन्हींको लेकर, वे रण-रङ्गमें अपनी वीरताका परिचय देकर साम्प्रदायिक सैनिकोंके उत्पन्न किये हुए धुंवे-धूलको उपशमन करनेमें प्रवृत्त हुए।

महाराज वैशाख सम्वत् १९२० के अन्तमें आगरा नगरमें पधारे। यह नगर उस समय बड़ी रौनकपर था। हाईकोर्ट वहां होनेसे इस नगरकी बड़ी शोभा थी। स्वामीजीने वहाँ यमुना के किनारे भैरवमन्दिरके निकट लाला गल्लामल रूपचन्द अग्रवालके बगीचेमें अपना आसन किया। उसी उद्यानमें एक और साधु निवास करता था। वह स्वामीजीके दर्शनोंसेही उनका श्रद्धालु भक्त बन गया और उसने पोस्टमास्टर जनरलके कार्यालयमें रायबहादुर पंडित सुन्दरलालजीको और नगरमें अनेक सद्गृहस्थोंको जाकर समाचार दिया कि अमुक उद्यानमें एक

बड़े विद्वान् परमहंस पधारे हैं। उनका उपदेश तो पृथक् रहा, उनके दर्शनोंसे ही शान्ति प्राप्त हो जाती है।

अब स्वामीजीके पास बहुतसे नगरवासी आने लगे। पं० सुन्दरलालजीने दर्शन करके अति तृप्ति प्राप्त की। उन्हीं दिनोंमें एक कैलाशपर्वत नामक संन्यासी उसी उद्यानमें आकर ठहरे। स्वामीजीसे भी उनका मेलजोल हो गया। एक दिन कैलाशस्वामीजीसे किसी भक्तने पूछा "महाराज! गीताके 'सर्वधर्मान् परित्यज्य' इस पदका अर्थ समझाइए।" कैलाश स्वामीजीने जो अर्थ किया उससे लोगोंको सन्तोष न हुआ। उनमेंसे एक जनने वही निवेदन स्वामी दयानन्दजीसे जा किया। स्वमीजीने कहा कि इस पदमें जो समास है उसमें अकारका लोप हुआ है, इस लिए "सर्व अधर्मों को छोड़कर" अर्थ करना चाहिए।

यह सुनकर लोग परम सन्तुष्ट हुए और धन्य धन्य करने लगे। इस यशोगानमें कैलाशजीने भी भाग लिया। उन्होंने लोगोंसे यह भी कहा "वास्तवमें दयानन्द बहुत बड़े विद्वान् हैं। यदि आपमेंसे किसीको कुछ पढ़ना हो तो उन्हींसे पढ़ना चाहिये।" इस वृत्तान्तने नगरमें बड़ा विस्तार प्राप्त किया, जिससे श्री-स्वामीजीकी धवल-कीर्त्ति, पूर्णमासीके चाँदकी चाँदनी की भाँति सारे नगरमें चमकने लगी, और धर्मजिज्ञासुओंकी मण्डलियाँ उनके पास आने लगीं।

कैलाशस्वामी तो दस दिनपर्यन्त उद्यानमें रहकर भरतपुर चले गये, परन्तु स्वामीजी वहीं रहे। उन्होंने भगवद्गीताकी कथा करना आरम्भ कर दिया। उनकी, गीताके अर्थों को वर्णन करनेकी शैली मनोरंजक और अपूर्व थी। उनके श्लोक-उच्चारणपर, अर्थ-वर्णनपर, व्याख्याआलापनपर, रससम्पादनपर, और वचन-माधुर्यपर श्रोताजन मोहित हो जाते थे। प्रायः घरोंको लौटते समय यह कहते जाते थे "गीताका ऐसा रसीला और सारगर्भित व्याख्यान हमने पहले कभी नहीं सुना।" यह कथा एक माससे अधिक कालतक, प्रतिदिन रातको दो घण्टेपर्यन्त होती रही। स्वामीजीने लोगोंके कहनेपर कुछ दिन पंचदशीकी भी व्याख्या की। परन्तु पढ़ते हुए एक दिन उसमें यह पद आया

कि कदाचित् ईश्वरको भी भ्रम हो जाता है। इसपर उन्होंने उसे भ्रममूलक समझकर पटक दिया। स्वामीजीके सत्संगमें नगरके साधारण और गण्य-मान्य सभी लोग आते थे। पण्डितवर भी प्रायः उपस्थित हुआ करते थे।

एक बार आदित्यवारके दिन पं० सुन्दरलालजीने स्वामीजीसे निवेदन किया "संस्कृत भाषा तो अब मृत मानी जाती है, कहीं व्यवहारमें काम नहीं आती तो आपने इसपर इतना परिश्रम क्यों किया ?" स्वामीजीने उत्तर दिया "इससे अपना परलोक सुधारेंगे और यदि कोई अन्य पुरुषभी स्वकल्याण करना चाहे तो साहाय्य देनेके लिए उद्यत हैं।" इस उत्तरसे प्रेरित होकर पं० सुन्दरलालजी और बालमुकुन्दजीने अष्टाध्यायी अध्ययन करना आरम्भ कर दिया। पं० सुन्दरलालके मस्तकमें कोई दोष था, जिससे सुगन्धि दुर्गन्धिका ज्ञान उन्हें नहीं होता था। स्वामीजीने नेती, धोती, और न्योली कर्म विधिपूर्वक कराकर उन्हें स्वस्थ कर दिया और उनका वह दोष सर्वथा दूर हो गया। अन्यभी अनेक जन स्वामीजीसे योग-क्रियायें सीखने लग गये थे। कुछ एकने अच्छी उन्नति भी कर ली थी; परन्तु जब स्वामीजी वहांसे चलने लगे तो नेती आदि कर्म उनसे छुड़वा दिये; क्योंकि गृहस्थ होनेके कारण वे निभा नहीं सकते थे।

आगरेमें रहते हुए स्वामीजीकी देहपर फुंसियाँ निकल आईं। एक दिन कुछ मनुष्योंके साथ वे यमुनाके राजघाटपर गये और वहाँ उन्होंने वस्ती कर्मकी विधिसे तीन चार बार मूलाधारसे अँतड़ियोंमें जल भरकर न्योली-कर्म-विधिसे नाभि-चक्रको घुमाकर जलको बाहर निकाल दिया। फिर स्नान करके स्वस्थान पर आ गये। उस दिन उन्होंने केवल दालभातही ग्रहण किया। स्वामीजी कहते थे कि यह क्रिया उन्होंने नर्मदाके समीप विन्ध्याचलपर रहनेवाले एक कन-फटे नाथके पास कई दिन रहकर सीखी थी। इस क्रियासे उनकी फुंसियां शान्त हो गईं। उन्होंने वहां यह भी कहा था कि हम जलमें बहुत देरतक बैठ कर तप करते रहे हैं, इसलिए सिरपर शीतका अधिक प्रभाव हो गया है। उसके निवारणार्थ कभी कभी अभ्रक भस्मका सेवन कर लिया करते हैं। पं० सुन्दर-

लालजीने स्वामीजीसे अभ्रक-भस्म-विधान भी सीखा था ।

आगरेमें श्रीस्वामीजीने सन्ध्याकी एक पुस्तकका सम्पादन किया था। उस के अन्तमें लक्ष्मीसूक्त रक्खा गया था। महाशय रूपलालजीने डेढ़ सहस्र रुपये लगाकर उस पुस्तककी तीस सहस्र प्रतियां छपवाई थी। उसमें विनियोग न होनेसे अनेक पण्डितोंने पहले आक्षेप किया, परन्तु अन्तमें सबने उसे क्रय कर लिया। स्वामीजी तीनों वर्णोंके लिये सन्ध्या करना शास्त्रसम्मत बताते थे।

उस समय स्वामीजी प्रतिमा-पूजनका खण्डन किया करते थे। इसपर प्रसिद्ध पण्डित चेतूलाल और कालीदासजीके साथ बातचीत भी हुई। वे दोनों स्वामीजीके साथ सहमत तो हो गये, परन्तु कहने लगे कि गृहस्थ होनेसे हम स्वतन्त्र नहीं, इस लिए इसके विरुद्ध नहीं कह सकते। कहते हैं कि स्वामीजी के उपदेशसे पं० सुन्दरलालजीने भी शिवपूजन छोड़ दिया था। स्वामीजी भागवतका बड़ा कड़ा खण्डन किया करते और महाभारतको विचारा करते थे।

एक मथुरावासी पण्डित घासीराम आगरेमें आया। वह स्वामीजीके सत्संगसे इतना प्रभावित हुआ कि मूर्तिपूजासे उसे अति घृणा हो गई।

एक अपढ़ ब्राह्मण वहां आया। वह योगके चौसठ आसन लगाना जानता था। स्वामीजीने उसे वस्त्रादि धोनेके कार्यपर पास रख लिया। वह था जितेन्द्रिय और सदाचारी। कभी कभी विनोदवश उससे आसन लगवाकर देखा करते थे। एक ब्रह्मचारी भोजन बनानेवाला उनके साथ था। लिहाफके बिना दूसरा कोई सिला हुआ वस्त्र नहीं पहरते थे। महाभाष्य आदि पुस्तकें उनके पास थीं। उन्हीं दिनों भागवतखण्डनपर एक 'पाखण्ड-खण्डन' नामक पुस्तक उन्होंने संस्कृतमें लिखी थी। वेदको विचारनेका आपका बहुत विचार था। कालीदासजी वेदके पत्रे आपके पास लाये, पर उनसे काम न चला। कहा जाता है कि पं० सुन्दरलालजीने जयपुरसे वेद मंगवाकर स्वामीजीको दिया था। यदि किसी विषयमें सन्देह हो जाता तो स्वामीजी पत्रव्यवहारद्वारा अथवा स्वयं जाकर गुरुजीसे निवारण करा लेते थे।

स्वामीजी उन दिनों दोनों समय नियमसे योगारूढ़ हुआ करते थे। किसी किसी दिन पहरों अचल भावसे ध्यानावस्थित रहते थे। आगरेमें लोगोंने उनको अठारह घण्टों तक भी समाधिस्थ देखा था।

आगरेसे वेदोंके अन्वेषणमें चलकर श्रीस्वामीजी धौलपुर पधारे। वहाँ पन्द्रह दिन तकठहरकर फिर आबू पर्वतपर चले गये।

माघ वदी १२ सम्वत् १९२१को स्वामीजी महाराज ग्वालियरमें आये। उस समय उनके साथ चार विद्यार्थी थे। वहां उन्होंने रामकुई बापूआपाड़ जरनैलके गङ्गा-मन्दिरमें डेरा किया। उन दिनों महाराजाजीने राजधानीमें भागवतका सप्ताह बड़ी धूमधामसे बिठलाया था। दूर दूरके पण्डित लोग बुलाये गये थे। श्रीमहाराजने अपने कर्मचारियोंद्वारा भागवत-सप्ताहका माहात्म्य श्रीस्वामीजीसे भी पुछवाया। उत्तरमें श्री स्वामीजी महाराजने कहा "ऐसे कार्य्योंके फल कष्ट-क्लेशसे भिन्न कुछ नहीं हुआ करते। विश्वास न हो तो करके देखलो।" यह सुनकर महाराजा हंसकर बोले, 'स्वामीजी संन्यासी हैं, इसलिये चाहे जो कह सकते हैं; परन्तु हम गृहस्थ हैं। हमें तो सब कुछ करनाही पड़ता है। अब तो वैसे भी सप्ताहकी सामग्रीका उद्योग पूर्ण कर लिया गया है।' अन्तमें स्वामीजीको महाराजाकी ओरसे कथामें सम्मिलित होनेके निमित्त निमन्त्रण आया। उसके उत्तरमें स्वामीजीने कहला भेजा 'गायत्रीका पुरश्चरण होना चाहिए। भागवतके सप्ताहमें हम सम्मिलित नहीं होंगे।' इस विषयमें भी राजाने यही कहा कि भागवत सप्ताहका तो अब पूर्ण रीतिसे उद्योग हो चुका है। ऐसे समयमें गायत्रीपुरश्चरण कैसे किया जा सकता है।

सम्पूर्ण राज्यमें प्रसन्नताका सागर उमड़ा पड़ा था। सारा नगर स्वच्छ, सुसिक्त और सुसज्जित था। काशीके, कलकत्तेके, दक्षिणके तथा अन्यान्य स्थानोंके अनेक शास्त्री-शिरोमणि निमन्त्रित होकर आये थे। आसपासके राज्योंके सुप्रतिष्ठित सज्जन और राजा लोग तथा राजबन्धुवर्ग आकर स्ववेश-भूषासे नगरकी शोभा बढ़ा रहे थे। समग्र राज्यकी विभूति वहां एकत्रित हो रही थी। उत्तुङ्ग

राज-प्रासादसे लेकर एक घसियारेकी पर्ण-कुटीतक, सब कहीं एक उत्सव मनाया जा रहा था। घरबाहर, हाट-बाट, जहां देखो भागवत कथाकी चर्चा चल रही थी उसी समय श्री स्वामीजी महाराजने रामकुई पर भागवत-खण्डनपर व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया। उन निर्भय परमहंसजीके व्याख्यानोंमें भी भारी भीड़ होने लगी। स्वामीजीकी अभयताने नगरनिवासियोंको भी निडर बना दिया। वे उत्साहसे भागवतखण्डन सुनते और स्वामीकथनकी सत्यताको स्वीकार करते थे। स्वामीजी यह भी कहते थे कि लश्करमें बड़ा भारी विघ्न होनेवाला है। महा उपद्रव उपस्थित हुआ है।

सप्ताह-समाप्तिपर सारी राजधानीमें प्रसन्नताके बाजे बजे, परन्तु तुरन्तही जबलोगोंने सुना कि 'महारानीका पञ्चमासिक गर्भ गिर गया है तो सारी प्रसन्नता एकाएक शोक-सागरमें डूब गई। उसी मास विषूचिका महारोग भीषणरूपसे नगरमें फैला। छोटे राजकुमार, जिनकी दीर्घायुकी कामनासे कथा बिठलाई गई थी और जिस कुमारको सप्ताह समाप्तिपर पण्डितोंने आशीर्वाद दिया था, उसका देहान्त होगया। इससे नगरी-सहित सारे राज्यमें हाहाकार मच गया।"

स्वामीजी नित्यप्रति व्याख्यानमें पण्डितोंको शास्त्रार्थके लिये ललकारते रहे, विज्ञापनों द्वारा भी निमन्त्रित करते रहे। परन्तु इतने विख्यात विद्वानोंमेंसे एकने भी उनके सन्मुख आनेका साहस न किया। विषूचिकाके कारण रामकुई पर बहुत रोना पीटना होने लगा, इस लिये स्वामीजी वहांसे डेरा उठाकर बाबाजीके उद्यानमें चले गये।

दूसरा सर्ग।

ग्वालियरसे चलकर श्रीस्वामीजी अन्तिम मईके लगभग करौलीमें पधारे। वहां श्रीराजाजीके साथ धर्म्म-विषयपर वार्त्तालाप होता रहा। पण्डितोंसे भी कुछ थोड़ी बहुत शास्त्र-चर्चा चलती रही। उस स्थानमें स्वामीजी वेदा-

भ्यासमें विशेष समय लगाया करते थे। करौलीमें स्वामीजीने कई मास तक निवास किया।

करौलीसे प्रस्थान कर आश्विन १६२२ में आप जयपुर आये। वहां रामकुमार और नन्दराम मोदीके उद्यान में डेरा किया। उस समय उनके साथ सच्चिदानन्द, चेतराम और एक ब्रह्मचारी, ये तीन विद्यार्थी थे। सच्चिदानन्दने स्वामीजीसे गायत्रीका उपदेश लिया था, और प्रतिदिन सायंकाल सूर्याभिमुख खड़े होकर जप किया करता था, घाटमें एक गोपालानन्दनामक परमहंस निवास करता था। उसने जीव-ब्रह्मविषयक कुछ प्रश्न स्वामीजीकी सेवामें भेजे। स्वामीजीने उनका उत्तर ऐसा उत्तम और पांडित्यपूर्ण दिया कि वह उसे पढ़कर स्वामीजीकी विद्वत्तापर लट्टू हो गया। यहांतक कि अपना स्थान छोड़कर स्वामीजीके समीपही आकर ठहर गया और रातदिन अपने सन्देह निवृत्त करता रहा।

श्रवणनाथके शिष्य, लक्ष्मणनाथजी वहाँ निवास करते थे। उनको महाराजा रामसिंहजी जोधपुरसे लाये थे उन्होंने स्वामीजीके साथ व्रजनन्दनजीके मन्दिरमें संभाषण किया। उन्हें निश्चय होगया कि ये सकलशास्त्र-ज्ञाता और योगीजन हैं। स्वामीजीसे उन्होंने निवेदन किया "कृपा करके श्रीमन्त इसी मन्दिरमें विराजें। हमारा साम्प्रदायिक लोगोंके साथ एक शास्त्रार्थ होनेवाला है। दया कर उसमें सहायता दीजियेगा।" स्वामीजीने कहा "यदि शास्त्रार्थमें मुझे बुलाना चाहते हो तो स्मरण रखिए, मैं वहाँ जो कुछ कहूंगा अपने निश्चयके अनुकूलही कहूंगा।" नाथजीने यह बात स्वीकार करली। जयपुरमें स्वामीजीने व्याकरण-सम्बन्धी पन्द्रह प्रश्न लिखकर पण्डितोंके पास भेजे। पण्डित-प्रवरोंने उत्तरमें गालीप्रदान करना ही पर्याप्त समझा। स्वामीजीने उनके लेखमें आठ प्रकारके दोष निकालकर हरिश्चन्द्र आदि भद्र पुरुषोंके पास पत्र भेजा। उन्होंने स्वामीजीके पक्षकी पुष्टि करते हुए पण्डितों के व्यवहार की अति निन्दा की। स्वामीजीने पण्डितोंके पास जो प्रश्न भेजे थे उनमें दो ये भी थे—१ "कल्मष किं भवति ?' २ "येन कर्मणा सर्वे धातवः सकर्मकाः किं तत्कर्म ?'

एक दिन सब पण्डित मिलकर व्यास बक्षीरामजीके निकट गये और बोले 'किसी प्रकार आप स्वामी दयानन्दजीसे हमारा शास्त्रार्थ करा दीजिए।' पण्डितोंकी प्रेरणासे, व्यासजीने स्वामीजीको महलोंमें निमन्त्रित किया। पण्डित भी वहां एकत्रित हो गये। सब पण्डितोंकी ओरसे एक पंडितने स्वामीजीसे पूछा 'क्या पन्द्रह प्रश्न और आठ प्रकारके दोष आपनेही लिखकर भेजे थे ?'स्वामीजीने कहा 'हां मैंने भेजे थे। तत्पश्चात् पंडितने 'कल्म, शब्दकी व्याख्या की स्वामीजीने उसका तुरन्त खण्डन कर दिया। इसपर पंडित लोग अति विस्मित हुए और कहने लगे, "अच्छा, इसका अर्थ आपही कीजिये।" स्वामीजीने कहा कि जो कुछ परस्पर कथन हो वह लिखा जाना चाहिए, परन्तु पण्डितोंने स्वीकार न किया। तब स्वामीजीने 'कल्म' शब्दकी बड़ी योग्यतासे व्याख्या की। अन्य पण्डित तो चुपचाप सुनते रहे, परन्तु एक मैथिल पण्डितने आक्षेप करते हुए कहा, "यह—अर्थ कहाँ लिखा है ?'

स्वामीजीने उत्तर दिया "जो मैंने वर्णन किया है। उसका तात्पर्य महाभाष्यके अनुकूल है।" मैथिल पंडितजीने कहा, "महाभाष्य तो व्याकरण ही नहीं।" यह सुनकर स्वामीजीने उसे, यही बात कि महाभाष्य की गिनती व्याकरणमें नहीं है, लिखदेनेके लिये बाधित किया, परन्तु वे पण्डित यह कहते हुए "अब जाने दो, रात बहुत बीत गई आपको भी नगरसे बाहर उद्यानमें जाना है, द्वार बन्द हो जायँगे, फिर आपको कष्ट होगा" वहाँसे उठ खड़े हुए। स्वामीजीने उठते हुए कहा "यह एक विलक्षण सभा है, जिसमें महाभाष्य व्याकरण नहीं माना जाता और यह पंडितजी भी एक विचित्र बुद्धिके धनी हैं, जो भाष्यकी गणना व्याकरणमें नहीं करते।"

तदनन्तर एक जैन-गुरुने स्वामीजीसे शास्त्रार्थ करनेकी इच्छा प्रकटकी। स्वामीजीने उत्तर भिजवा दिया कि, "जब आपका जी चाहे पधारिये, मैं वार्त्तालाप के लिए उद्यत हूं।" जैन-यतिने कहलवा भेजा कि "किसीके स्थानपर जानेसे हमारे नियमोंमें बाधा पड़ती है। परन्तु यदि कहीं आते जाते उद्यान आदिमें

मिलाप हुआ तो धर्मचर्चा करेंगे ।' स्वामीजीने यह कहकर कि जब ऐसा मिलाप होगा तो देखा जायगा, १५ प्रश्न लिखकर जैन-यतिके पास भेज दिये । प्रश्नोंका उत्तर तो यतिजीकी समझमेंही नहीं आया, परन्तु स्वमतानुसार आठ प्रश्न लिखकर स्वामीजीकी सेवामें पहुंचवा दिये । उनका उत्तर तत्काल प्राप्त करके, यतिजी मौनावलम्बी हो गये ।

अचरौलके ठाकुर रणजीतसिंहजी एक सत्संगी पुरुष थे । साधु-सन्तोंमें उनकी बड़ी भक्ति थी । वे राधाकृष्ण नामका जाप करते और इसीके उपासक थे। बीकानेर राज्यके निवासी ठाकुर दमीरसिंह, किसी मुकद्दमेमें जयपुर आये हुए थे । वे स्वामीजीसे भी परिचित थे । मूर्ति-पूजामें अनास्थावान् थे । एक दिन उन्होंने अचरौलके ठाकुरजीको समझाया "आप पूजा-पाठके किस मिथ्याडम्बरमें खचित हो रहे हैं ? यदि अन्तःकरणमें आत्मिक कल्याण कामना है तो सन्मार्गका अवलम्बन कीजिए ।"

श्री रणजीतसिंहजी अपने मित्रके वचनोंको सुनकर विस्मयके साथ बोले, "तो इस पूजा-पाठको छोड़कर हम किससे सदुपदेश ग्रहण करें ?" तब ठाकुर दमीरसिंहजीने कहा "इस समय सद्गुरु स्वामी श्रीदयानन्दजी महाराज हैं । उनके उपदेशसे सत्यका बोध होजाता है और सौभाग्यवश वे आजकल जयपुरमें ही विराजमान हैं ।" इन शब्दोंने ठाकुरजीके हृदयमें स्वामीजीके प्रति श्रद्धाका स्रोत खोल दिया । वे स्वामीजीके दर्शनार्थ जयपुर आये और अचरौल पधारनेके लिए अतिशय सम्मानपूर्वक निमन्त्रण दे गये । स्वामीजीको लिवा लानेके लिए अगले दिन उन्होंने एक मझोली भिजवाई, परन्तु वे पैदलही चलकर वहां पहुंच गये । स्वामी-सत्संगसे ठाकुरजीको बड़ा लाभ हुआ । उनके सारे भ्रम मिट गये; सम्पूर्ण संशय निवृत्त होकर उन्हें सन्मार्गका ज्ञान प्राप्त होगया, और उनकी मूर्त्ति-पूजासे धारणा उठ गई ।

प्रथम चार दिवस तो स्वामीजीका आसन राजमन्दिरमें ही लगा रहा, परन्तु स्वामीजी एकान्तसेवी थे, इसलिए उनकी आज्ञासे, एक विविक्त प्रदेशमें ठाकुर-

जीने एक स्वच्छ पर्ण-कुटी प्रस्तुत करा दी। वह पर्णकुटी बारहदरीके आकार-पर निर्मित हुई थी। वहां प्रतिदिन ठाकुरजी तथा अन्य अनेक सत्संगी सज्जन श्री स्वामी-सेवामें उपस्थित हुआ करते थे। स्वामीजी मनुस्मृति, उपनिषद्, और गीता आदि ग्रन्थोंके प्रकरण सुनाकर कृतार्थ किया करते थे। बहुतसे विद्यार्थी भी स्वामीजीके पास जाते थे। उन्हें, वे ब्रह्मचर्य आदिका उपदेश देते थे। एक दिनका वर्णन है कि, ठाकुरजीका कार्यकर्त्ता, हीरालाल कायस्थ मदिरापान किये हुए उसी मार्गसे जारहा था, जिसके समीप स्वामीजीकी कुटी थी। उसे वहां पहुंचकर स्मरण हो आया कि स्वामीजीको श्री ठाकुरजीने बुलवाया है। उनके पास भी चलना चाहिए। वह स्वामीजीके पास चला गया और नमस्कार करके विनीत भावसे पास बैठकर सुनने लगा। उस समय स्वामीजी मनुस्मृतिका प्रायश्चित्ताध्याय सुना रहे थे। गोवध, सुवर्ण-चोरी, सुरापान आदि पापोंके जो फल अगले जन्ममें मिलते हैं, उनका व्याख्यान स्वामीजीने कुछ ऐसे शब्दोंमें-कुछ ऐसे भावमें, कुछ ऐसे ढंगसे—किया कि हीरालालका भयके मारे हृदय कांप उठा; वह रोमांचित होगया। पूर्वकर्मों पर, पश्चात्तापके अश्रुपात करते हुए उसने वहीं यह व्रत धारण किया कि भविष्यमें यह दुराचरण कदापि नहीं करूंगा। उस दिनके अनन्तर-भ्रमण करने जाते समय, वह प्रतिदिन स्वामी शरणमें जाया करता था।

स्वामीजी महाराज चार मासके लगभग वहां टिके। नित्यप्रति उपनिषदों और गीताकी कथा सुनाया करते थे। प्रतिमा-पूजनका खण्डन करते थे और कहते थे कि ध्यान भीतर करना चाहिये। उस समय उन्होंने भागवत-खण्डनमें एक पत्र भी छपवाया था। एक पत्र 'तत्त्वबोध' के नामसे लिखकर ठाकुरजीको दिया था। स्वामीजी शिवसे निराकार ईश्वरका वर्णन करते थे। और पार्वतीके पति, पौराणिक शिवका उनके कथनमें कोई संकेत न होता था।

उन्हीं दिनोंमें महाराजा रामसिंहजी, वैष्णवों और शैवोंके शास्त्रार्थ-संग्रामका उद्योगपर्व करा रहे थे। दोनों सम्प्रदायोंके सन्त-महन्त, प्रवर पण्डित एकत्रित

हो रहे थे। इस समरके सूत्रपातकर्त्ता शैव सम्प्रदायके सेनापति लक्ष्मणनाथजी थे। यद्यपि नाथजीके कारण शैव प्रबल थे, परन्तु शास्त्रवादमें जीतनेका भरोसा वे अपने किसी भी पण्डितपर न रखते थे। व्यास बक्षीराम और उनके भाई कनीराम, ये दोनों शास्त्रार्थ-सम्बन्धीप्रबन्धके अधिष्ठाता थे। स्वामी महाराजके विद्याबल और अतिशय बुद्धि-शक्तिका ये लोग, पण्डितोंके प्रथम सम्वादमें, परिचय पा ही चुके थे। वे जानते थे कि दयानन्दके समक्ष खड़े होनेका साहस कोई विरलाही कर सकता है। उसे जीतना नितान्त असम्भव है। अपनी विजयको निश्चित बनानेके लिये व्यास बक्षीराम आदि शैव पण्डितोंने, साम्प्रदायिक संग्राममें, अपनी ओरसे स्वामीजीको सेनापति नियत करनेका निश्चय कर लिया। इस विषयमें वर्त्तालाप करनेके लिये व्यास बक्षीरामजी स्वामीजीके पास भी गयेऔर महाराजाजीसे मिलनेके लिये भी कहा; पर स्वामीजीने इसे उपेक्षाभावसे सुना। बक्षीरामजीने फिर महाराजारामसिंहजीसे निवेदन किया कि स्वामी दयानन्दजी अखण्डब्रह्मचारी और अद्वितीय विद्वान् हैं। आगामी शैव-वैष्णवसंग्राममें वे वैष्णव-मत निराकरण करनेके लिये शैव सम्प्रदायकी ओर ही खड़े होंगे। आप उनके दर्शन अवश्य करें। महाराजाके हृदयमें स्वामी दर्शन-लालसाका भाव जाग्रत होगया। उन्होंने ठाकुर रणजीतसिंह द्वारा स्वामीजीको राजभवनमें लानेके लिए यत्न किया। प्रातःकाल वहीं कनीराम व्यास स्वामीजीके पास आ गया। दिनके दस बजे स्वामीजी पीनस पर आरोहण करके राजराजेश्वरके मन्दिरमें जा विराजे।

स्वामीजीके जीवनमें, शिवरात्रिकी घटनाके अनन्तर, प्रतिमा-पूजनके भावका लेशमात्र भी शेष न रह गया था। इसलिये मन्दिरमें प्रवेश करते समय उन्होंने मूर्त्तियोंके लिये कोई सम्मान प्रदर्शित न किया। व्यास बक्षीरामजी, स्वामीजीको यह कह कर कि मैं आपके शुभागमनकी सूचना महाराजाको देता हूं, वहांसे चल पड़े। परन्तु किसी मनुष्यने व्यासजीको समझाया कि स्वामीजी तो सब देवताओंकी मूर्त्तियोंका खण्डन करते हैं, यदि इनका मेल-मिलाप श्रीमहाराजाजीसे हो गया तो तुम्हारी बात बिगड़ जायगी वर्षोंकी जमी हुई पटड़ी

सदाके लिये उखड़ जायगी। इससे व्यासके हृदयमें भी स्वार्थवश आशङ्का उत्पन्न हो गई। अन्तमें कोई बहाना बनाकर संन्यासीराजके मिलापसे महाराजाको वञ्चित रक्खा गया।

दो जातियोंके संग्रामके समय जैसे किसी निरपेक्ष जातिका वीर सेनानी समर-रससे संचालित होकर, स्वजातिसे अपेक्षाकृत अधिक सम्बन्ध सूत्र आबद्ध जातिके पक्षमें संग्राम-भूमिमें उतर आवे ठीक उसी प्रकार वैष्णव सम्प्रदायकी अपेक्षा अधिक समीपवर्ती शैव-सम्प्रदायके पक्षको अवलम्बन करके, शास्त्रीय रण-रंग-रसिक, स्वामी दयानन्द वैष्णवाचार्योंके साथ भिड़ गये। उनका प्रति-पक्षी, वैष्णव सम्प्रदायका परम पंडित श्रीयुत हरिश्चन्द्र था। स्वामीजीको यह सिद्ध करना था कि वैष्णव सम्प्रदाय बहुत आधुनिक है, काल्पनिक है, निर्मूल है, और भद्र भी नहीं है। स्वामीजीने जब वैष्णव धर्मकी पुस्तकोंसे प्रमाण दे देकर इस सम्प्रदायकी समालोचना की तो जहां वैष्णवोंको लज्जा और परा-जयने अभिभूत कर लिया वहां शैवोंकी प्रसन्नताकी कोई सीमा न रही! मारे हर्षके शैव उछल रहे थे। उनके मुखमण्डल प्रफुल्ल कमल बन रहे थे। उस विज-यसे प्रभावित होकर लोग धड़ाधड़ शैव बनने लगे। कंठियोंका स्थान रुद्राक्षकी मालायें लेने लगीं। महाराजा रामसिंहने भी शैव सम्प्रदायको स्वीकार कर लिया। इससे राजकीय हाथियों और घोड़ोंके गलेमें भी रुद्राक्षकी मालायें पड़ गईं। स्वामीजीके हाथसे भी मालायें वितरण कराई गईं।

वैष्णव सम्प्रदायके दिग्गजको जीतनेसे स्वामी-केसरीकी कीर्ति दसों दिशा-ओंमें विस्तृत हो गई। उनके पांडित्यका सिक्का पंडितमात्रपर बैठ गया। इस प्रकार साढ़े चार मास स्वामीजीने जयपुरमें निवास किया। उस राज्यके अनेक ठाकुर उनके भक्त होगये। बगरूके ठाकुरजीने अपने ग्राममें पधारनेके लिए स्वा-मीजीसे बहुत प्रार्थना की। इस प्रार्थनाको स्वीकार कर श्री महाराज वहाँ गये और दो दिन बिराजकर फिर दूदूको चले गये। दूदूके ठाकुर इन्द्रसिंहजीने दो दिन तक स्वामीजीके उपदेश श्रवण किये और वे भक्तिभावसे स्वामीजीके शिष्य

बन गए। तत्पश्चात् श्री स्वामीजी कृष्णगढ़में जाकर दो दिन रहे। वहाँसे अजमेर पधारे और राय दौलतरामजीके उद्यानमें चार दिन ठहरे। इसके पश्चात् आप पुष्करराज चले गये।

तीसरा सर्ग।

स्वामीजी महाराज चैत्र कृष्णपक्ष ११ सम्वत् १९२२ को पुष्कर पहुंचे। वहाँ उन्होंने अपना डेरा ब्रह्माके मन्दिरमें किया। मन्दिरके बाहरी भागके द्वारसे भीतर जानेपर दहिने भागमें स्वामीजीका निवास था। वहाँ आकर उन्होंने प्रतिमापूजनका खंडन बड़े बलपूर्वक करना आरम्भ कर दिया। बहुतसे ब्राह्मण चिढ़कर स्वामीजीके पास शास्त्रार्थके लिये आये; परन्तु वहाँ पहुंचकर उनमेंसे किसीको भी स्वामीजीका सामना करनेका साहस न हुआ। वे सब मिलकर व्यंकटशास्त्रीके समीप गये। यह पंडित बालशास्त्रीके समान विद्वान् था। तर्कशास्त्रमें अति निपुण था। नागपर्वतकी एक कन्दरामें रहा करता था। उसका गुरु एक अघोरी था। व्यंकटशास्त्रीने प्रथम तो स्वामीजीके समीप जाकर शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया, परन्तु अन्तमें वह आनेसे टल गया। उसे टलता हुआ जान श्रीस्वामीजी स्वयं उसके पास जा खड़े हुए। उस समय कोई तीन चार सौ ब्राह्मण वहां एकत्रित हो गये थे। वादका विषय नियत हुआ, 'भागवत'। शास्त्रीजीने भागवतका मंडन किया, परन्तु स्वामीजीने अपने समयमें उसका खंडन इतनी प्रबल युक्तियोंसे इतने प्रबल प्रमाणोंसे किया कि व्यंकटजीको अपना बचाव उस विषयसे किनारा खींचनेमेंही सूझा, वह एक शब्दके शुद्धाशुद्ध उच्चारणपर वाद करने लगा। स्वामीजी उस शब्दको "दैवासुर" कहते थे और वह "देवासुर" कहता था। अन्तमें उसने स्वामी पक्षको स्वीकार करते हुए कहा कि स्वामीजीकी विद्या बड़ी प्रबल है। स्वामीजीने शास्त्रीजीसे

व्याकरणपर भी घंटाभर वाद किया और विजयी हुए। शास्त्रीजीने स्वामीजीकी विद्याकी प्रभूत प्रशंसाकी और उन्हें अपने अघोरी गुरुजीसे भी मिलाया। वह अघोरी अति हृष्ट-पुष्ट, बड़ा लम्बा-चौड़ा मनुष्य था। जो कोई उसके पास जाता उसे वह पत्थर उठा उठाकर मारा करता था गालियां भी दे दिया करता था। मृतकोंकी देहोंको चिताओंपरसे उठाकर खा जाया करता था। परन्तु संस्कृत भाषाका एक अच्छा विद्वान् था। स्वामीजी महाराज उसके साथ देरतक बातें करते रहे। समाप्तिपर उसने सबको अभिमुख करके संस्कृतमें कहा "दयानन्द-जीका कथन सत्य है; इनसे झगड़ा न करो।" फिर उन्हीं शब्दोंको व्यंकटजीने आर्यभाषामें सब उपस्थित जनोंको सुनाते हुए कहा "स्वामी दयानन्दजीका पक्ष सर्वथा सत्य है। इनसे व्यर्थकी कलह न करो।' यह सुन, सब ब्राह्मण उदा-सीनमुख होकर वहांसे चले गये। व्यंकटशास्त्रीजीका उतने ही समयमें स्वामी-जीके साथ इतना सख्यभाव हो गया कि स्वामीजीको उसने कहा "जब कभी आपको शास्त्रार्थमें सहायताकी आवश्यकता पड़े तो मुझे स्मरण कीजियेगा। मैं विना विलम्ब उपस्थित हो जाऊंगा।

मेलेकी वड़ी धूमधाम थी। उधर स्वामीजी महाराज भी कुरीतियोंका धुंआ धार खंडन कर रहे थे, जिससे उस महामेलेमें एक भारी हलचल मच गई थी। साम्प्रदायिक सागर, श्रीदयानन्दजीके वाणी-वायुसे विचलित होकर, संशयके झकोले खाने लगा था। स्वामीजी महाराजके उपदेशोंसे लोग इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने कंठियां उतार उतारकर ब्रह्माजीके मन्दिरके एक कोनेमें ढेर लगा दिया। ब्राह्मण लोग भागते हुए फिर व्यंकटशास्त्रीके समीप गये। उसने कहा "हम उनसे क्या वाद-विवाद करें? जो कुछ वह कहता है सब सत्य कहता है, परन्तु इतना अवश्य है कि उसकी चलेगी तब, जब कोई राजा महाराजा उसका शिष्य बन जायगा।

एक दिन स्वामीजीने पण्डित नानूराम नामक एक प्रतिष्ठित व्यक्तिको कहा कि, "आप इस कंठीका क्या बखेड़ा गलेमें डाले हुए हैं? इस अवैदिक

चिन्हको उतार क्यों नहीं डालते ?" उसने उत्तर दिया कि "यदि आप लोगोंमें अब्राह्मण संन्यासी न बने तो मैं भी कण्ठी बाँधना छोड़ दूँगा"। स्वामीजीने कहा, "हम क्या करें ? यहाँ तो आकाश ही बदला पड़ा है। यदि मुझसे हो तो मैं स्पष्ट कहता हूँ कि विद्वान् ब्राह्मणके बिना अन्य किसी को भी संन्यास लेनेका अधिकार नहीं है"।

ब्रह्माजीके मन्दिरके महन्त मानपुरीजी थे। वे बड़े सज्जन पुरुष थे। पहले पहल, एक बार जब मूर्ति-भोगके अनन्तर स्वामीजीको उन्होंने दूध दिया तो स्वामीजीने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि पत्थर-पूजाका मैं दूध नहीं पीता; उस समय मानपुरीजी रुष्ट हो गये और स्वामीजीको दूध देना बंद कर दिया, परन्तु पीछेसे प्रसन्न होकर उनके सहायक बन गये। स्वामीजीके साथ उनका सौहार्द भी हो गया। स्वामीजी विनोद में कभी कभी उन्हें कह दिया करते थे "पुरीजी ! आपको तो यह ढाई मनकी मूर्त्ति पारसपत्थर मिल गया है। इससे जितनी सुवर्ण सिद्धि करो वह साधु-संन्यासियोंको लड्डू आदिसे समार्चन करनेमें समर्पण कर दिया करो। भाँड धूर्त्त लोगोंके लिये कुत्सित व्यय न किया करो।" महन्त मानपुरीजी सुदृढ़-अंग और बलवान थे। वे स्वामीजीकी सहायताके लिये बद्धपरिकर रहते थे।

एक दिनका वर्णन है कि, बहुतसे ब्राह्मणोंने ऐक्य करके स्वामीजीको शास्त्रार्थ करनेके लिये गौ-घाटपर आह्वान किया वे तो सदाही सन्नद्ध रहते थे। समाहूत होनेपर तुरन्त वहां पहुंच गये। शास्त्रार्थ थोड़ी देर ही चला था कि पण्डितोंके पैर उखड़ गये। निरुत्तर होकर लगे दायें बायें झाकने। इतनेमें कई लठैत बीचमें आ कूदे, और स्वामीजीको अवाच्य बकने लगे। वे लोग उस समय ऊधम मचानाही चाहते थे कि मानपुरीजी भी वहाँ जा पहुंचे। उन्होंने डाटडपट कर उन लोगोंको वहाँसे खदेर दिया। उसी समय सैकड़ों मनुष्योंने कण्ठियाँ उतारकर पुष्करार्पण कर दीं।

स्वामीजीने वहाँ रामानुजियोंको भी शास्त्रार्थके लिये पत्र लिखा, परन्तु उन्हें

शास्त्रार्थका साहस न हुआ। स्वामीजी महाराज इस सम्प्रदायके भ्रममूलक विचारोंका खण्डन करते हुए कहते थे "तप्ततनूः स्वर्गं गच्छति" यह श्लोकही ठीक नहीं। और यदि इसे मान भी लिया जाय तो इसका अच्छा अर्थ यह है कि शम-दम, जप-तप, स्वाध्याय आदि तपस्यासे तप्त तनवाला स्वर्गको जाता है। तप्तका अर्थ 'जलाना' करना भूल है।

एक पण्डा स्वामीजीको कहने लगा कि मैं संन्यासियोंका पुरोहित हूं। आगे कई संन्यासियोंने मुझे श्लोक बनादिये हैं, आप भी बना दीजिए। स्वामीजीने उसे हँसकर कहा कि अरे तू हमारा भी पुरोहित बनता है। उन्होंने श्लोक तो न बनाकर दिया, परन्तु उपदेश करके उसके कण्ठसे कण्ठी उतरवा दी।

उन्हीं दिनोंमें एक द्रविड़ संन्यासी चन्द्रघाटपर आकर ठहरा था। वह पुराणोंकी कथा कराकर ब्रह्मभोज कराया करता था। उसके साथ शास्त्रार्थ करनेके लिये, कोई दोसौ ब्राह्मण, स्वामीजीको वहाँ ले गये। परन्तु द्रविड़ संन्यासी सम्मुख नहीं हुए।

शिवदयाल नामक एक पुजारी ब्रह्माकी पूजा किया करता था। स्वामीजीने उसे कहा कि शिवदयालजी! क्या आपका देव आपसे वार्त्तालाप भी किया करता है? जब वह नक्कारा बजाता तो महाराज उससे कहते कि चमड़ा कूटनेसे क्या लाभ है? झाँझ बजानेसे भी उसे रोकते थे। शिवदयालने प्रार्थना की कि मुझे ईश्वरका नाम बताइये। स्वामीजीने उसे ईश्वरका नाम "सच्चिदानन्द" बताया, उसने स्वामीजीसे उपदेश लेकर कण्ठी उतार दी, मूर्ति-पूजन छोड़ दिया और घाटोंपर अन्य पण्डोंकी भाँति माँगने जाना भी त्याग दिया। डाक-घरमें नौकरी करके निर्वाह करने लगा।

एक दिन; एक वृद्धा देवी ब्रह्माजीके मन्दिरमें मूर्ति-दर्शन करके लौटते समय स्वामीजीके दर्शनार्थ भी पधारी। स्वामीजीने पूछा "माता कहांसे आ रही हो?" उसने कहा ब्रह्माजीके दर्शन करके आई हूं। स्वामीजी बोले "क्या ब्रह्माजीने आपको कोई उपदेश भी दिया है?' वृद्धाने कहा "हां, दिया है।' तब

स्वामीजी तुरन्त अपने आसनसे उठ खड़े हुए और उसी वृद्धा देवीको साथ लेकर ब्रह्माजीकी प्रतिमाके समीप जा उपस्थित हुए और उस वृद्धाको बोले "माता ! अब मेरे सम्मुख इस मूर्तिको कहो कि बोले।' उस वृद्धाने हँसकर कहा—स्वामीजी ! यह मूर्ति तो क्या आपके सामने सभी चुप हो जाते हैं। जो बोलता है आपकी पीठ पीछे ही बोलता है।'

एक दिन एक सेठने स्वामीजीसे आकर पूछा "महाराज ! मैं मन्दिर बनवाना चाहता हूं। इसमें आप क्या सम्मति देते हैं ?" महाराजने गम्भीर भावसे उत्तर दिया "सेठजी ! किसी अन्य धर्म्म-कार्यमें धनव्यय करो, जिससे अपना और दूसरोंका कल्याण हो। मन्दिर बनाना तो सन्ततिके लिए अविद्याका एक गहरा गढ़ा खोदकर छोड़जाना है।" स्वामीजीका उपदेश सुनकर उस सेठने मन्दिर बनानेका विचार छोड़ दिया।

स्वामीजी प्रायः कहा करते थे कि अनेक स्तोत्र जो आचार्योंके नामसे प्रचलित हैं वास्तवमें पण्डितोंने बनाकर उनके नामसे विख्यात किये हैं। भागवत भी व्यासकृत नहीं, किन्तु बोपदेवका बनाया हुआ है। वे पण्डेपुरोहितोंको कहा करते थे कि सत्यके प्रचारसे इसलिए न हिचकिचाओ कि आजीविका जाती रहेगी। खीर पूड़ी आदि प्रारब्धजन्य भोग तुम्हें सत्यप्रचारसे भी पुष्कल प्राप्त होते रहेंगे। यहाँ रंगाचार्यके एक शिष्यने भी स्वामीजीसे गीताके एक श्लोकपर कुछ वार्त्तालाप किया था, परन्तु वह अत्यन्त हठीला था।

एक जनके पूछनेपर स्वामीजीने कहा कि "शिव कल्याणकारी परमेश्वरका नाम है, उसे मैं मानता हूं, परन्तु पार्वतीके पतिमें मैं विश्वास नहीं रखता।"

स्वामीजीके सन्तोष, क्षमा, शान्ति और सरलताका सभी सन्त लोग यश गाते थे। उनकी विद्वत्ताका लोहा सारी पण्डित-मण्डलीने मान लिया था। उनके विजय-नादकी गम्भीर ध्वनिसे पुष्करसे लेकर मरुभूमिके दूर दूरके प्रदेश गुंजायमान होगये थे। अनेक सज्जनोंने स्वामीजीको अपने अपने नगरोंमें पधारनेके लिए निमन्त्रण भी दिये। जोधपुरके एक वकील महाशय भी आये और अपने

नगरमें पधारनेके लिए आग्रहपूर्वक प्रार्थना करने लगे। स्वामीजी स्वयं भी मारवाड़की यात्राके इच्छुक थे। परन्तु अचरौलके ठाकुरके भेजे हुए जोशी रामस्वरूप, स्वामीजीको अचरौल लिवा ले जानेके लिए वहाँ बहुत दिनोंसे डेरा डाले बैठे थे। उनके अत्याग्रहसे स्वामीजीने अपनी यात्राका पथ-परिवर्तन कर लिया।

पुष्करसे तीन कोस पूर्वकी ओर मार्कंडेयकी एक गुफा है। पुष्करनिवासके दिनोंमें स्वामीजी वहाँसे विभूति मँगाकर रमाया करते थे। उनके कंठमें रुद्राक्ष की माला थी। उसके बीच बीचमें एक एक दाना श्वेत काँचका भी था। स्वामीजी उन दिनोंमें उपनिषदोंका अनुशीलन किया करते थे। इस प्रकार २२ दिन पुष्करमें निवास करके श्रीस्वामीजीने अजमेरकी ओर प्रस्थान किया।

चौथा सर्ग।

द्वितीय ज्येष्ठ वदी प्रथमा १९२३ को स्वामीजी अजमेरमें पहुंचे और बंसीलालजी के उद्यानमें उतरे। उस समय स्वामीजीके साथ पाँच मनुष्य थे; जिनमें से एक ९० वर्षका वृद्ध ब्रह्मचारी संस्कृत का विद्वान् था। उनके आतिथ्यका प्रबंध सेठ कृष्णचन्द्रजी करते थे।

स्वामीजीने आते ही सारे नगरमें विज्ञापन लगवा दिये कि मूर्ति-पूजन आदि विषयोंपर किसीको शंका हो तो आये, समाधान किया जायगा कुछ लोग इधर उधरकी बातें तो बनाते रहे, परन्तु सम्मुख कोई न हुआ। पंडितोंने प्रश्न लिखकर स्वामीजीके समीप भेजे कि, संन्यासी को तीन दिनसे अधिक किसी ग्राममें ठहरना उचित नहीं है। बग्घी आदि यानपर आरोहण करना नहीं चाहिए। स्वामीजीने उत्तरमें लिख भेजा कि उपकारके लिए, संन्यासीको, एक स्थान में अधिक काल ठहरनेमें कोई दोष नहीं है। शुभ वृत्तिमें, यदि यानारोहण करना पड़े तो वह भी निर्दोष है। महाराजने उनके पत्रमें बहुतसी अशु-

ख्रियाँ भी प्रदर्शित कीं। मन्दिरको वे अड्डा कहा करते थे। बहुत मनुष्योंने उनसे भागवतकी भूलोंके विषयमें पूछा, तो उन्होंने तीन चार पन्ने अपने हाथ से लिखकर लोगोंको दिये। वहाँ उन्होंने शैव सम्प्रदायका भी बहुत खंडन किया।

अजमेरमें स्वामीजीका पादरी राबिन्सन, ग्रे और शूल्ब्रेडके साथ जीव, ईश्वर, सृष्टि-क्रम और वेद विषयपर, तीन दिनतक सम्वाद होता रहा। स्वामीजी बड़ी योग्यतासे उत्तर देते रहे। चार दिन, ईसाका ईश्वर होना, मरकर जी उठना, फिर आकाशपर आरोहण करना इत्यादि बातोंपर स्वामीजीने प्रश्न किये। इनका पादरियोंसे कोई उत्तर न बन आया। इसपर लड़कोंने ताली पीट दी। परन्तु स्वामीजीने उनको ऐसा करनेसे रोक दिया। उस शास्त्रार्थमें पादरियोंने एक वेद-मन्त्रका नाम लेकर कुछ पाठ पढ़ा। परन्तु स्वामीजीने जब उसका पता पूछा तो वे कुछ न बता सके। अगले दिन सम्वादके लिए पादरी नहीं आये। कहते हैं कि बादमें किसी आक्षेपके कारण चिढ़कर पादरी शूलब्रेडने स्वामीजीसे कहा कि ऐसी बातोंसे आप कभी कारावासमें चले जायँगे। स्वामीजीने बड़ी गम्भीरतासे मुस्कराते हुए कहा, 'सत्यके लिये कारावास कोई लज्जाजनक वार्त्ता नहीं है। धर्म-पथपर आरूढ़ होकर, मैं ऐसी बातोंसे सर्वथा निर्भय हो गया हूं। प्रतिपक्षी लोग, यदि अपने प्रभावसे ऐसा कष्ट दिलायँगे तो जहां कष्ट सहते हुए मेरे चित्तमें शोककी कोई तरङ्ग भी न उत्पन्न होगी वहां मैं अपने प्रतिपक्षियोंकी अकल्याण-कामना भी कभी नहीं करूंगा। पादरीजी! मैं लोगोंके डरानेसे सत्यको नहीं छोड़ सकता। ईसाको भी लोगोंने फाँसीपर लटका ही तो दिया था।'

बड़े पादरी राबिन्सनके निमन्त्रणपर, स्वामीजी उनसे मिलने गये। शिष्टाचारके अनन्तर पादरजीने पूछा कि, ब्रह्माजीने जो अपनी पुत्रीसे व्यभिचार किया था उसका आप क्या समाधान करते हैं? स्वामीजीने तुरन्त उत्तर दिया कि एक नामके अनेक मनुष्य हुआ करते हैं। इसमें कोई प्रमाण नहीं कि यह वही ब्रह्मा थे। महर्षि ब्रह्मा तो अत्यन्त पवित्र थे। स्वामीजीके कथनपर पादरी अति प्रसन्न हुए और उनको अपने हाथसे लिखकर एक पत्र दिया कि स्वामी दयानन्द

सरस्वती वेदोंका एक विख्यात विद्वान् हैं। मैंने अपने सम्पूर्ण जीवनमें इन ऐसा संस्कृतका पण्डित दूसरा नहीं देखा। ऐसे महापुरुष संसारमें बहुत थोड़े होते हैं। इनसे जो भी मिलेगा लाभही उठायगा, जो सज्जन इनसे मिले इनका संमान करे।

मेजर ए, जी, डेविडसन महाशयसे मिलनेके लिए भी स्वामीजी गये थे। वार्त्तालापके क्रममें स्वामीजीने कहा; 'राजा प्रजाके लिए पितावत् होता है और प्रजा राजाके निकट पुत्रतुल्य होती है। यदि कोई पुत्र विपरीत मार्गपर चले तो पिताका कर्तव्य है कि उसे सन्मार्गपर लाये। आपभी एक प्रकारके राजा हैं। देशमें अन्धकार फैल रहाहै। आपके शासनमें मत-मतान्तरोंके लोग भोली प्रजा-को नोच-नोचकर खा रहे हैं। इससे भारतीय प्रजामें अगणित दुःखोंकी सृष्टि हो गई हैं। आपका धर्म है कि इसका कोई प्रबन्ध करके प्रजाका रक्षण करें।' कमिश्नर महाशयने उत्तर दिया 'यह विषय धर्मसे सम्बन्ध रखता है। शासक लोग इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकते। यदि किसी अन्य प्रकारकी सहायता आपको चाहिये तो वह दी जा सकती है।' इसके पश्चात् आप सहायक कमि-श्नर, स्पेटन महाशयसे भी मिले।

उन दिनों, कर्नलब्रुक महाशय गवर्नर जनरलके एजण्ट थे। वे गेरुए कपड़ोंवालोंसे बहुत चिढ़ा करते थे। एक दिनका वर्णन है कि वे लाला बंशी-लालके उद्यानमें आ गये। स्वामीजी उस समय कुरसीपर बैठे थे। समीप उप-स्थित लोगोंने दूरसे कर्नलब्रुकको आते देख, स्वामीजीको कुरसी हटा लेनेके लिए कहा; परन्तु स्वामीजीने उलटा कुरसी और भी आगे बढ़ा ली। कर्नल महाशय भीतर प्रवेश कर आये। उस समय लोग और भी अधिक घबराने लगे, परन्तु स्वामीजीने उन्हें कहाकि डरो नहीं, शान्त रहो। जब वे समीप आये तो स्वामीजी कुरसीसे उठकर टहलने लग गये। समीप आते ही श्रीकर्नल म-हाशय टोपी उतारकर स्वामीजीकी ओर बढ़े। स्वामीजी भी सन्मुख हुए और दोनोंने हाथ मिलाकर परस्पर सम्मानप्रदर्शन किया। फिर दोनों आमने सामने कुरसियोंपर बैठकर शिष्टाचारके वार्त्तालापमें प्रवृत्त हुए। तत्पश्चात् श्रीस्वामी-

जीने कहा कि आप धर्मकी स्थापना करते हो अथवा उत्थापन ? कर्नल महाशयने उत्तर दिया कि धर्मकी स्थापनाको तो हम भी अच्छा समझते हैं, परन्तु जिसमें लाभ होता है वही किया जाता है। स्वामीजीने कहा कि मैं तो यही कहूंगा कि आप लोग लाभका काम नहीं करते, किन्तु हानिका करते हैं। उन्होंने पूछा, भला कैसे ? स्वामीजीने उत्तर दिया कि यह तो आप भी मानते होंगे कि एक गायके जीवनसे कितना बड़ा लाभ होता है और उसे मारकर खाजानेसे कितनी भारी हानि है। एजण्ट महाशयने स्वीकार किया कि गोवधसे हानि अवश्य होती है। तब स्वामीजीने कहा कि फिर आप गोवध क्यों करते हैं ? एजण्ट महाशयने कहा, 'आपकी यह बात हम मानते हैं। आप कल हमारे बंगलेपर आइयेगा। उस समय फिर वार्तालाप करेंगे।' अगले दिन श्रीमान् कर्नल ब्रुकके यहांसे स्वामीजीके लिए गाड़ी आगई। स्वामीजी जोशी रामस्वरूप सहित गाड़ीमें बैठ बंगलेपर पहुंच गये। कोई पौन घण्टाभर गोरक्षा विषय पर वार्तालाप होता रहा। जब कर्नल महाशयने गो-रक्षासे लाभ और वधसे हानि स्वीकार करली तो स्वामीजीने कहा कि आप यत्न करके गोवध बन्द करा दीजिए। इसपर उन्होंने उत्तर दिया कि स्वामीजी महाराज ! गोवध बन्द कराना मेरे अधिकारमें नहीं है। मैं आपको चिट्ठी देता हूं, आप लाट महाशयको मिलें। अन्य भी जिस कर्मचारीको आप मेरी चिट्ठी दिखायेंगे वह आपको अवश्य सम्मान पूर्वक मिलेगा। वह चिट्ठी लेकर स्वामीजी स्व-स्थानको चले आये।

श्रीमान् कर्नलब्रुकने स्वामीजीसे जयपुरका समाचार सुनकर एक पत्र महाराजा रामसिंहजीको भी लिखा था कि शोक आपने एक अपूर्व पण्डितके साथ सम्भाषण न किया। उस पत्रको पढ़कर महाराजाजीको बड़ा पश्चात्ताप हुआ और अचरौलके ठाकुरजीके द्वारा स्वामीजीके दर्शन प्राप्त करनेका प्रयत्न करने लगे।

एक दिन सांवले रङ्गके दो युवक तपस्वी, नाग-पर्वतके जङ्गलसे, स्वामीजीके मिलापार्थ वहां आये। स्वामीजीने उन्हें बड़े आदरसत्कारसे बिठलाया। वे संस्कृतके बिना किसी दूसरी भाषामें बातचीत नहीं करते थे। कुछ कालतक

योग-सम्बन्धी चर्चा होती रही। चलते समय वे कहने लगे "स्वामीजी ! हम तो अब तृप्त हैं, पूर्ण शान्त हैं।" स्वामीजीने कुछ हँसकर कहा, 'नहीं, महात्माजी ! अभी अहंकार जीतना शेष है।" उन्होंने कहा, 'हमने अहंकार सर्वथा जीत लिया है।' तपस्वी अभी भीतरसे निकलकर बाहर गये ही थे कि स्वामीजीके संकेतसे, एक ब्रह्मचारीने उनसे कलह करना आरम्भ कर दिया। वह झगड़ा इतना बढ़ा कि दोनों तपस्वी और ब्रह्मचारी, आपसमें गुत्थमगुत्था हो गये और एक दूसरेको पटकते हुए ऊपर नीचे होने लगे। कलहका कलकल नाद सुनकर भीतर बैठे हुए सब मनुष्य स्वामीजीसहित बाहर आगये और उन्हें पृथक् पृथक् कर दिया। फिर स्वामीजी महाराजने उन तपस्वियोंको भीतर ले जाकर समझाया कि आप हमारा कहना नहीं मानते थे, परन्तु अब परीक्षासे सिद्ध होगया कि आपमें अहङ्कारकी कला अभी मन्द नहीं हुई। मुनियोंको और विशेषतः अभ्यासियोंको अभिमान कदापि नहीं करना चाहिये। क्योंकि—

कलश पूर्ण छलके नहीं घोषण ऊना करे,
गर्व करें न ज्ञानी जन अज्ञानी दम्भ करे।
गरजे बहुत बरसे नहीं ओछेमें अहंकार,
बजे घना थोथा चना कह गये ज्ञानी सार।

उन दोनों तपस्वियोंने महाराजसे क्षमा-याचना की और 'नमोनारायण' कहकर चले गये। वे तपस्वी स्वामीजीके दर्शनोंको दो बार आये।

उन दिनों अजमेरमें रामस्नेहियोंके सबसे बड़े महन्त आये हुए थे। स्वामीजीने उन्हें शास्त्रार्थ करनेके लिये आहूत किया। उन्होंने उत्तर दिया कि, हमारा आपसे शास्त्रार्थ नहीं होसकता, क्योंकि हम किसीके स्थानपर नहीं जाते और यदि कोई हमारे स्थानपर आये, तो हम अपनी गद्दीसे उतरकर उसका अभ्युत्थान आदि आदर-सत्कार नहीं करते। जब स्वामीजीको यह बात ज्ञात हुई तो उन्होंने कहला भेजा कि मुझे आव भगतकी कोई आवश्यकता नहीं, आप सुखपूर्वक अचल आसनसे गद्दीपर बैठे रहिए, परन्तु शास्त्रार्थ कीजिये। जब

महन्तने देखा कि वह मानादिका कोई ध्यान न करके, यहां ही आना चाहते हैं तो उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया कि, भाई हम तो राम राम रटते हैं और भोजन आदि पाकर सुखसे समय विताते है। हमें शास्त्रार्थ आदि कुछ नहीं आता। इसपर स्वामीजीने संस्कृतमें एक पत्र लिखकर उस महन्तके पास भेजा। उसमें रामस्नेही मतपर प्रश्न थे। "इसका कल उत्तर देंगे" यह कहकर महन्त-जीने वह प्रश्न-पत्र रख लिया, परन्तु अगले दिन, प्रातःकालही वहांसे अपना अस्त्र वस्त्र समेटकर भाग गये।

पण्डित हरिश्चन्द्रके गुरु-भाई देहलीनिवासी अजमेरमें आये। स्वामीजीसे उपनिषदों और मनुस्मृतिपर सम्वाद करते रहे और सन्तोषपाकर अति प्रसन्न हुए।

धन्नालाल नामक एक जैन श्रावक, अपने मतकी एक पुस्तक लेकर स्वामी-जीके निकट आया। उसने कुछ प्रश्न भी किये। स्वामीजीने उनका यथायोग्य उत्तर देकर, उसके हाथसे पुस्तक ले ली और अपने पास रख ली। साथही कहा कि फिर यहां आइएगा, आपका समाधान भली भांति कर दिया जायगा। वह उस समय तो चलागया, परन्तु घर जाकर उसके हृदयमें न जाने क्या विचार उत्पन्न हुआ, स्वामीजीके समीप उस पुस्तकके रह जानेसे न जाने किन गुप्त भेदोंके प्रकट हो जानेका भय उसे प्रतीत होने लगा, उसने कमिश्नरको प्रार्थ-नापत्र देकर अपनी पुस्तक, स्वामीजीसे मंगा ली।

एक दिन बहुतसी देवियां स्वामीजीके समीप आईं। स्वामीजीने पूछा, "बहिनो! कहाँसे आई हो?"

उन्होंने उत्तर दिया, "महाराज, साधुओंके पाससे होकर यहां आई हैं।"

"स्वामीजी बोले, "साधुओंके पास क्यों गई थीं?"

"आप कहें तो आपके पास आ जाया करें।"

"हमारे पास आनेका क्या प्रयोजन है?"

"महाराज हम उपदेश लेना चाहती हैं।"

"यदि यही प्रयोजन है तो हम स्त्रियोंको उपदेश नहीं दिया करते। अपने

पतियोंको हमारे पास भेज देना। वे यहांसे उपदेश सुनकर आपको भी सुना देंगे।"

यह सुनकर वे चली गईं और फिर कभी नहीं आईं।

यहां भी बहुतसे लोगोंने कण्ठियां उतार दीं। सावरके ठाकुरजी स्वामीजीके उपदेश सुनने आये और प्रभावित होकर गये।

जयपुराधीश महाराजा रामसिंहने, लाट महोदयके मिलापार्थ आगरे जाना था। उन्होंने सोचा कि मथुरामें उतरनेपर, यदि रङ्गाचार्यसे शास्त्रार्थ हो गया तो बड़ी कठिनाई होगी। वे यह भी जानते थे कि स्वामी दयानन्दजीको छोड़कर, उसको निश्चितरूपसे परास्त करनेवाला, दूसरा कोई भी नहीं। इस लिये, उन्होंने अचरौलके ठाकुरद्वारा, स्वामीजीकी सेवामें जयपुर पधारनेके लिये, अजमेरमें फिर निवेदन किया।

स्वामीजीको दो एक भक्त कृष्णगढ़ ले गये और शुभसागरके तीरपर उनका उतारा कराया। यहांके सुयोग्य पण्डित कृष्णवल्लभ जोशी और महेशदास ओसवाल स्वामीजीसे अति प्रेम करते थे। महेशदासने स्वामीजीका आतिथ्य भी किया कृष्णगढ़के राजा वल्लभ-कुलसेवक थे, जब उन्होंने सुना कि एक स्वामी भागवतपर तीव्र आलोचना करता है, तो अनेक पण्डितोंके साथ, ठाकुर गोपालसिंहजीको विघ्न-बाधा करनेके लिये भेजा। मनुष्योंके अन्तरंगको जाननेवाली दृष्टिसे स्वामीजीने उनके गुप्तभावोंको लख लिया। स्वामीजी, शौच, स्नानादिसे निवृत्त होकर, तनपर विभूति रमा काष्ठके आसनपर आ बैठे। महाराजने उस मण्डली से वहां आनेका कारण पूछा। उस समय एक ब्राह्मणने कुछ पत्रे उथल पुथलकर स्वामीजीके आगे रक्खे। महाराजने कहा, "तुम स्वयं पढ़ो।" तब पण्डितने वे पत्रे पढ़े। उनका तात्पर्य यह था कि वल्लभमत ही सर्वोत्तम है। यह सुनकर स्वामीजीने उसका बहुत ही खण्डन किया। इसका उत्तर तो उनसे कुछ न बन पड़ा, परन्तु हल्ला गुल्ला करने पर उतारु हो गये। उनके इस गड़बड़ाध्यायको देख, स्वामीजी महाराज अपने काष्ठासनपर खड़े होकर, गम्भीर-गर्जनापूर्वक बोले, "मुझे अकेला समझकर आगे हाथ न बढ़ाना। अकेला तो मैं

अज्ञय हूं, परन्तु तुम सबकी हेकड़ी तोड़नेके लिये पर्याप्त हूं। यदि शास्त्रार्थ करना हो तो कटिबद्ध हूँ, परन्तु यदि 'शस्त्रार्थ' ही करना चाहते हो तो भी पीछे नहीं हटूँगा, तुम्हारा मान-मर्दन करनेको सुसज्जित हूँ।"

इतनेमें श्रीमाली वंशके ब्राह्मण, तीस चालीसकी संख्यामें स्वामीजीकी सहायताके लिये आ पहुंचे, और उसी समय कलह-प्रिय लोग वहांसे भाग गये।

रव शृगाल-समूहका यथा सुन सिंह-सुत वीर,
हस्ति-यूथको देखकर होव नहीं अधीर।
तथा साहस सुसत्त्वयुत डरे न पुरुष प्रधान,
क्षुद्र मनुज मिलकर करें चाहे विरोध महान।

पाँचवाँ सर्ग।

कृष्णगढ़से चलकर, स्वामीजी महाराज दूदू पधारे और राजमन्दिरमें ठहरे। यहां तीन दिन उपदेश हुए फिर एक रात बगरूमें ठहरकर जयपुर चले गये। अचरौलके ठाकुरजीने श्रीस्वामीजीके पधारनेका समाचार महाराजाको दे दिया। उन्होंने व्यास बक्षीरामको स्वामीजीकी सेवामें भेजकर निवेदन किया कि कृपया राजमन्दिरमें पधारकर कृतार्थ कीजिए। स्वामीजीने व्यासजीको कहा कि आप भली भांति जानते हैं कि राजमन्दिरमें जानेकी मुझे कुछभी आकाँक्षा नहीं है। यदि महाराजाजी कुछ वार्त्तालाप करना चाहते हैं तो किसी समय वे यहीं आ जायँ। व्यासजीने यही बात महाराजाजीसे जाकर निवेदन कर दी। तत्पश्चात् महाराजाजीने ठाकुर रणजीतसिंहजी को कहा कि आप किसी प्रकार श्रीस्वामीजीको यहां लाकर मुझे दर्शन करायें। ठाकुर श्री रणजीतसिंहजीने अन्य अनेक प्रतिष्ठित पुरुषोंको साथ ले, श्रीस्वामीजीकी सेवामें उपस्थित हो, राजमन्दिरमें पधारनेके लिये बड़ी अनुनय विनय की। अत्याग्रह पर स्वामीजीने स्वीकार कर लिया, और वे वहांसे आकर मौजमन्दिरमें विराजमान हुए।

उस समय पण्डित लोग भी बड़े समारोहसे वहां एकत्रित हुए थे। कारण-वश महाराजा रामसिंह अन्तःपुरमें गए हुए थे, इस लिए चेलेंने आकर कहा कि इस समय महाराजाजीका आना न हो सकेगा। यह सुन, सब उठकर चले आये उसके पश्चात् महाराजा रामसिंहने बहुत प्रयत्न किया कि श्रीस्वामीजी राजमन्दिरमें पधारें, परन्तु स्वामीजी सर्वथा अस्वीकार करते रहे। इस बार स्वामीजी वहां आश्विन मासके आधतक ठहरे। जब वहांसे आगरे जाने लगे तो ठाकुर रणजीतसिंहजी तथा उनके कार्यकर्त्ता रामदयालजीको रुलाई आ गई। उनको अश्रु मोचन करते देख स्वामीजीने कहा कि हमने जो उपदेश आपको दिया है वह हँसानेवाला है, न कि रुलानेवाला। फिर प्रतिष्ठित पुरुषोंने अतिशय सम्मानसे स्वामीजीको विदा किया।

कार्तिक वदी नवमी सम्वत् १९२३ को श्रीस्वामीजी आगरेमें पधारे। वहां बड़े समारोहके साथ एक भारी दरबार होनेवाला था। दूर दूरसे राजे महाराजे बुलाए गये थे। उस समय वहां एकअद्भुत सजधज और ठाठ बाट था। स्वामीजी महाराजने भी धर्मोपदेशके लिये ऐसे समयको उपयोगी समझा। मौखिक उपदेशोंके अतिरिक्त, सात आठ पृष्ठकी एक छोटीसी पुस्तक भागवतखण्डनपर लिखी। इसकी कई सहस्र प्रतियां छपवाकर, वहां वितीर्ण करादीं और कई सहस्र हरिद्वारपर बांटनेके लिये, मथुरा जाते हुए, साथ ले गये।

पांच विद्यार्थियोंसहित स्वामीजी अपने गुरुके चरण-शरणमें गये और नम्रीभूत होकर गुरुराजको नमस्कार किया। एक सुवर्णमुद्रा और एक मलमलका थान भेंट किया। भागवत-खण्डनकी पुस्तकका परिचय भी कराया। गुरुदेव अपने कृपापात्र, सुयोग्य और विजयी शिष्यको मिलकर अति प्रसन्न हुए। कृपा-हाथ सिरपर फेरकर भूरि २ आशीर्वाद प्रदान करने लगे। उनका हृदय हर्षोत्कर्षके पूरसे भर गया और उन्हें यह जानकर पूर्णसन्तोष हुआ कि उनके लगाये हुए पेड़पर मनोवांछित फल आया है; उनका उद्देश्य भली भाँति सिद्ध हो रहा है।

स्वामीजी महाराज कई दिनतक गुरु-सेवामें रहकर संदेहास्पद विषयोंको पूछते रहे, शास्त्रीय तत्त्वोंको समझते रहे, और फिर हरिद्वारका कुम्भमेला समीप आया जान; वहाँ जानेके लिये उन्होंने गुरु देवसे अनुमतिकी प्रार्थना की। गुरु-महाराजका आदेश उपलब्धकर विनीत नमस्कार पूर्वक, वे गुरु-चरणोंसे विदा हुए। आदर्श-गुरु और आदर्श-शिष्यका यह अन्तिम ही मिलाप था।

मथुरासे चलकर श्री स्वामीजी मेरठ में आये और एक देवीके मन्दिर में आसन किया। उस समय उनके साथ एक ब्रह्मचारी भी था। स्वामीजी दोशाला ओढ़ते थे, पांवमें जुराब रखते थे, और उनके गलेमें स्फटिककी एक माला भी होती थी। गङ्गाराम नामक एक प्रतिष्ठित व्यक्तिसे उनका साक्षात् हो गया। स्वामीजीने उसे कहा कि गो-रक्षा और वैदिक शिक्षाका प्रचार इस समय बड़ा आवश्यक कार्य है। उन्होंने यह भी कहा कि इस शुभ कार्यमें सुयोग देनेके लिए, आगरा दरबारमें सम्मिलित हुए, राजाओंने हमें अभिवचन दिया है। गङ्गारामजीने कहा यदि राजा लोग सहायतार्थ अग्रसर हुए, तो हम लोग अति प्रसन्नतासे सम्मिलित हो जायेंगे।

गङ्गारामजीने एक दिन अभ्रक भस्म की चर्चा चलाई। स्वामीजीने कृष्ण अभ्रकके भस्मकी एक पुड़िया उसे दी। उसने सारी भस्म भी देखनी चाही। स्वामीजीने वह भी उसे दिखा दी। गङ्गारामने कहा, "स्वामीजी! अभ्रक तो बड़ा वाजीकरण औषध है। इसका सेवन करके सबको वशीभूत करलेनेवाले कामदेवसे आप कैसे बचगये हैं?" स्वामीजीने उत्तर दिया, "काम-वासना जीतनेका यह विधान है कि एकान्त स्थानमें रहे, नाच आदि कभी न देखे। अनुचित स्वरूपका देखना, अनुचित शब्दका सुनना और अनुचित वस्तुओंका स्मरण करना परित्याग कर देवे। स्त्रियोंकी ओर न निहारे, नियमपूर्वक जीवन व्यतीत करे। इन साधनोंसे वासना मन्द हो जाती है। मनुष्य जितना वास-नाकी तृप्तिका यत्न करेगा वह शान्त न होकर उतनी ही बढ़ती चली जायगी। इस लिए विषय वासनाका चिन्तन भी न करे। जितेन्द्रिय बननेके अभिलाषी

को, रातदिन प्रणवका जप करना चाहिये। रातको यदि जप करते हुए आलस्य बहुत बढ़ जाय तो दो घण्टा भर गाढ़ निद्रा लेकर उठ बैठे और पूर्ववत् प्रणवपवित्रका जप करना आरम्भ कर दे। बहुत सोनेसे स्वप्न अधिक आने लग जाते हैं, ये जितेन्द्रिय जनके लिये अनिष्ट हैं। प्रातःकाल मालकंगनीके पाँच दाने खा लिया करे। इस प्रकार जप आदि साधनों से काम-वासना जीत ली जाती है।

विषयका विषधर जब डसे ओम् जड़ीको चबा,
है नाग-दमन हि ओषधी ढूंढन दूर न जा।
उपशम होवे वासना मनके मिटें विकार,
यहि विधिसे यह लीजिये नाम अमोल अपार।

स्वामीजी यहां कई दिन निवास करनेके पश्चात् हरिद्वारको चल पड़े।

इतने चिरसे खण्डनके क्षेत्रमें उतरकर महाराजने मूर्तियोंका खण्डन किया; वैष्णव शैव और शाक्त आदि सम्प्रदायोंको अमूलक प्रमाणित किया; वामआदि कु-पथोंकी पोल खोली, कण्ठी, तिलक, छाप, मालाका निराकरण किया; अवतारवाद और पुराण-उपपुराण वेदविरुद्ध सिद्ध किये; गङ्गादि नदियोंके स्नान और एकादशी आदि व्रतोंके माहात्म्यको अलीक ठहराया; और वेद तथा आर्ष ग्रन्थोंको प्रामाणिक बताया।

छठा सर्ग।

हरिद्वारका कुम्भ-मेला, समस्त आर्यावर्तमें एक अद्भुत और अतुल मेला होता है। साधु-सन्त, जपी-तपस्वी, और चारोंवर्णोंके उत्तम, मध्यम तथा निकृष्ट कोटिके गृहस्थ लाखोंकी संख्यामें, दूर दूरसे यहां एकत्रित होते हैं। संन्यासियों तथा गुसाइयोंके मठ, उदासियों और निर्मलोंके अखाड़े, साधु-सन्तोंसे

भर जाते हैं। वैरागी लोग सहस्रोंकी संख्यामें वहां रहते हैं। अन्य छोटे छोटे सम्प्रदायोंके लोग भी अपनी अपनी टोलियाँ बनाकर वहां निवास करते हैं। मण्डलेश्वर साधु-महात्मा मण्डलियों सहित विविक्त प्रदेशोंमें पर्ण कुटियां डालकर, कथा-वार्ता करते और शिष्योंसे परस्पर वाद-वितण्डा कराते हुए, अति गौरव-सूचक ढंगसे कालयापन करते हैं। परन्तु विरक्त सन्त इस कोलाहल-आकुल स्थानसे अति दूर, एकान्त और निर्जन भू-भागमें रहकर आत्माकार वृत्तिमें निमग्न संन्यासधर्मका एक ज्वलन्त उदाहरण दिखाई पड़ते हैं। राजे महाराजे सेठ साहूकार वहां आकर, अपनी उदारताका द्वार खोल देते हैं। जप-तप, भजन-पाठ, पूजन-आराधन, ज्ञान-ध्यान, और दान-पुण्य करते हुए सहस्रों नर नारी, उस समय उस स्थानके वायुमण्डलको बदल देते हैं। सर्वत्र एक अपूर्व शोभा छा जाती है।

स्वामी दयानन्द महाराजने ऐसे समयको अपने उद्देश्यकी उद्घोषणाके लिये बहुत अनुकूल समझा। इस लिये कुम्भ संक्रांतिके एक मास पूर्व, चैत्र संवत् १९२४ के आरम्भमें तदनुसार फाल्गुन सुदी ७ सं० १९२३ को वे हरिद्वार पधारे। वहां भीमगोडेके ऊपर, सप्तस्रोतपर एक बाड़ा बांध, कुछ पर्णकुटियां निर्माण कर, वहां, शंकरानन्दजी आदि पाँच छः जनोंके साथ रहने लगे। महाराजने सत्यके प्रचारके स्थानपर एक "पाखण्ड खण्डिनी" नामक पताका स्थापित कर दी और प्रतिदिन सत्यका उपदेश करना आरम्भ कर दिया। जिस दिन, साम्प्रदायिक धर्मकी राजधानीमें पौराणिक धर्मके केन्द्रमें, एक निर्भय आत्मत्यागी महात्माने सत्यका नाद बजाया वह दिन धर्मके इतिहासमें सदा स्मरणीय रहेगा। पौराणिक धर्मके उस गढ़में उन्होंने वैदिक धर्मकी घोषणा की। साम्प्रदायिक सघन वनपर समालोचनाके कठोर कुठाराघात किये। पौराणिक कथा और माहात्म्यकी कोमल, ललित, लताओंपर तीव्र खण्डनका प्रखर खड्गप्रहार किया। स्वामीजी महाराजके आश्रमपर झूलते हुए, निराले झंडेको देखकर लोग शत शत संख्यामें भीतर चले जाते और उनमेंसे बहुतेरे स्वामीजीके कथनोंको स्वीकार

कर लेते थे। उस सारे महा-मेलेमें, जहां सुनो श्रीमद्दयानन्दजीके प्रबल प्रचारकी ही चर्चा सुनाई देती थी। आजतक लोगोंने एक संन्यासीके मुखसे मूर्ति-पूजनका खण्डन, श्राद्धोंका निराकरण, अवतारोंका अमूलकपन, पुराणों तथा उपपुराणोंका काल्पनिक होना और पर्व-स्नान माहात्म्यका मिथ्यात्व नहीं सुना था। इस लिए कई लोग इस नवीन दृश्यको अति विस्मयसे देखते थे। कई एक इसका दोष कलिकालके माथे मढ़ते थे। और फिर कितने ही पण्डित, संन्यासीको 'नास्तिक' कहकर अपने शिष्यों सेवकों और यजमानोंका मुंह मूंदनेकी चेष्टा करते थे। पण्डितों और साधुओंने स्वामीजीके विरुद्ध व्याख्यान देना भी आरम्भ कर दिया। उनके प्रति कुवाच्य कहनेमें भी उन्होंने कोई त्रुटि उठा न रक्खी। परन्तु वहां तो इतना भारी भूकम्प हो रहा था कि देवमालारूपी गिरिमाला उसके धक्केसे, बार बार हिल हिल जाती थी। बहुतसे ब्राह्मण और साधु स्वामीजीकी कुटीपर शास्त्रार्थ करने जाते और दो एक प्रश्नोत्तरमें ही निरुत्तर हो जाते थे।

एक दिन सन्त अमीरसिंह निर्मलेने चित्सुखीकी एक पंक्ति स्वामीजीसे पूछी स्वामीजीने उसे उत्तर देते हुए कहा कि आपके लिये मैं इसका अर्थ कर देता हूं, परन्तु यह अनार्ष ग्रन्थ है इसे प्रमाण-कोटीमें नहीं मानना चाहिए।

स्वामी महानन्दजी संस्कृत-पठित थे। उन्होंने अपने जीवनमें पहिली ही बार वेदोंके दर्शन श्रीस्वामीजीके पास किये। कनखल पाठशालाके प्रसिद्ध पंडित वस्तीरामजीने स्वामीजीसे व्याकरणपर सम्वाद किया। अन्य भी अनेक विद्वान् और वादीजन श्रीसंगतिमें जाते रहे। जो सन्तमहन्त, अपनी गद्दीके गौरवसे कहीं आते जाते नहीं थे वे अपने शिष्योंको भेज स्वामीजीकी बातें सुनते थे। कुछ एक राजे महाराजे भी संन्यासीराजके दर्शनोंको पधारे थे।

काशीके सुप्रसिद्ध पण्डित, स्वामी विशुद्धानन्दजीने एक दिन "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः, ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत" इस मंत्रका अर्थ यह किया कि ब्राह्मण ब्रह्माके मुखसे, क्षत्रिय भुजाओंसे, वैश्य

ऊरुसे, और शूद्र पैरोंसे उत्पन्न हुए हैं। स्वामीजीने विशुद्धानन्दजीके अर्थों पर कटाक्ष करते हुए श्रोताओंको सदर्थ सुनाया कि चतुर्वर्ण-युक्त, मनुष्य समाजमें ब्राह्मण मुख हैं, अर्थात् मुख-सदृश हैं, क्षत्रिय भुजा हैं, वैश्य ऊरु हैं और शूद्र पाँव हैं।

उन्हीं दिनोंमें, गुसाइयों और स्वामी विशुद्धानन्द में परस्पर खटपट हो गई, जिससे गुसाइयोंने स्वामी विशुद्धानन्दपर अभियोग चला दिया। गुसाई स्वामीजीके समीपजा सहायतार्थ-प्रार्थी हुए। स्वामीजीने उन्हें स्पष्ट कह दिया कि इस विषयमें तुम दोनों हमारे लिए समान हो। इस लिए हम किसी एक की सहायता नहीं कर सकते।

उस महा-मेलेपर स्वामीजीने बहुतसे व्याख्यान दिये। अनेक शास्त्रार्थ किये बीसियों वादियोंको जीता। सैकड़ों जिज्ञासुओंको समझाया और भागवत-खंडनकी सैंकड़ों पुस्तकें बाँटी, परन्तु अन्तको उनके निर्मल चित्तचन्द्रमें उदासीनताकी एक रेखा उभर आई। स्वामी दयानन्दजी ने अकाल-पीड़ित प्राणियोंके करुणक्रन्दनको अपने कानों सुना था। अवध आदि प्रांतोंमें भ्रमण करके वहाँ दीनदुर्बल दुःखियोंकी हृदय-विदारक दशाको अपनी आँखों देखा था। विंध्याचल आदि प्रदेशोंकी यात्रा करते हुए कोल, भील, और संथाल आदि भारत-माताके पुत्रोंको अमानुष अवस्थामें अवलोकन किया था। उन्होंने क्षत्रियोंकी तेजोहीन क्षीण देहोंको, उनके ऐतिहासिक स्थानोंमें जाकर दृष्टिगोचर किया था। वैश्योंकी अवस्था भी उनसे छिपी न थी। सत्य धर्मके सूर्यको साम्प्रदायिक राहुने ग्रस लिया है, यह वे जानते ही थे। ईसाई धर्मकी बढ़ती हुई बाढ़, जिस प्रकार अबोध ग्रामीण प्रजाको प्लावित किये जारही है, यह उन्हें विदित हो ही गया था। मिथ्या संस्कारोंका विषम विषैला कीड़ा, जातीय जीवनकी जड़ोंमें किस प्रकार घुसा जाता है, यह उन्हें ज्ञात हो चुका था। वे यह भी जानते थे कि पश्चिमी विचार, पुरातन आर्यसभ्यताको, आर्य संस्कारोंको, आर्य धर्म-कर्मको, और रीति-नीतिको, किस प्रकार घुनके सदृश खोखला किए जारहे

हैं। इसी कारण उनके अन्तःकरणमें ऊष्मा बढ़ गई थी, हृदय-स्रोतसे भूतदयाका प्रबल प्रवाह प्रवाहित होगया था। मस्तिष्क-तन्तुजालमें एक विचित्र संचालन उत्पन्न हो आया था, और कायामें क्रियात्मक जीवनकी एक अद्भुत उत्तेजनाका प्रादुर्भाव हुआ था। किसी भी महान् कार्यका एकाकी सिद्ध करना सुगम नहीं। इस लिए सहायतार्थ स्वामीजीने पहले आर्यजातिके सिरको हिलाया ब्राह्मणोंको जगानेमें वे यत्नशील हुए। उन्होंने पण्डितों-पुरोहितों को बहुतेरा उकसाया, भड़काया, उत्तेजित किया, प्रोत्साहन दिया, परन्तु ऋषि-मुनियोंके वंशजोंके, पुरातन आर्यसन्तानोंके अंग, इतने शिथिल होगये थे; उनके मस्तक-मज्जातन्तु इतने मन्द पड़ गये थे कि उनमें गति उत्पन्न होनेमें ही न आई। उनके चित्त, काल-चक्रकी विचित्र पेचीली चालसे सचेत न हो सके। आगरा, ग्वालियर, जयपुर, पुष्कर और अजमेर आदि स्थानोंमें भ्रमण करते हुए उन्हें प्रत्यक्ष होगया था कि ये पण्डित-पुरोहित जन, अपने पुरातन पुरुषोंके पौरुषको खोचुके हैं। ये तो अब इतने असमर्थ होगये हैं कि परोपकारके लिए एक साधारणसी सामयिक स्वार्थशृङ्खलाको तोड़नेका भी साहस नहीं करते। विरोधके घनघोर घटाटोपसहित निराश और हताशकी महातमोमयी अमावस्याकी रात्रिमें उन्हें अति दूरपर, आशाका एक टिमटिमाता हुआ दीपक दिखाई दिया, और वह हरिद्वारके द्वादशवर्षीय कुम्भपर साधु-संन्यासियोंका सम्मिलन था। स्वामीजीके हृदय-कमलमें आशाकी ऐसी सुगन्धका उद्भव होना स्वाभाविक था कि साधु-संन्यासी लोग, घर-बारत्यागी हैं, विरक्त हैं, भिक्षामात्रोपजीवी होनेसे स्वार्थ-कीचड़से पार पागये हैं, ब्रह्मचिन्तनके कारण आत्मज्ञानी और समदृष्टि हैं, लोभ-मोहके बन्धन तोड़ बैठे हैं। यदि ये जाग्रत होजायँ, सत्यके सहायक बन जायँ, भूतदयाके प्रभावसे प्रभावित होजायं, परहित कामनासे कटिबद्ध होकर कार्य-क्षेत्रमें उतर आयँ तो आर्यसन्तानके सिरपरसे दुःखदरिद्रके दिन दूर होते देर न लगेगी। इसके भाग्यकापूर्ण चन्द्रमा, उन्नतिके विशाल, विमल, नील नभमें फिरसे चमकने लग जाएगा। आर्यधर्मका प्रचार, आर्यावर्तमें ही क्यों,

देश-देशान्तरोंमें भी हो जायगा। सर्वत्र ही आर्यग्रन्थोंका पठन-पाठन प्रवृत्त हो जायगा, परन्तु सारा बल लगानेपर भी, वहाँ महा-मेलेमें एक भी सत्यका सहायक साधु-संन्यासी न मिला, हिमालयके चरणोंमें उन्होंने एक भी ऐसा यति न देखा जो बन्धुप्रेमसे प्रेरित हुआ हो, जो पर-पीड़ाके लिए अनुकम्पा भाव रखता हो। एक ब्रह्मज्ञानी कर्मवीर भी जागतिक हितकी जोत जगाकर सब ठौर चांदना कर देता है, परन्तु वहां सैंकड़ों ब्रह्मज्ञानका अभिमान करने वालोंमें किंचित भी क्रिया-धर्म और पराक्रम न पाया। गङ्गाके निर्मल नीरके तीरपर एकभी भगवद्भक्ति और प्रजा-प्रेमकी इकट्ठी माला जपता हुआ न मिला। वेष था, नाम था, आकृति थी, रङ्ग था, परन्तु उस सारे मेलेमें वह आत्मा नहीं था जो अनुभव करता—जो, सत्यपरायण होकर स्वामीजीका संगी-साथी बनजाता, उस समय सचमुच, महाराजने अपने आपको अकेला अनुभव किया।

जिसमें जातीय हित नहीं पर सुधार उपकार,
धर्म-उत्तेजनारहित जो सो नर देह असार।
जीना परहित-शून्यका ऐसा जगमें जान,
धौंकनी ज्यों लुहारकी ले सांस नहीं प्राण।
लिए सत्यके जो जिए सत्यता करें प्रचार,
पर-हित में भी रत रहे उसपै जाइए वार।

उन्होंने सोचा कि परोपकार एक महायज्ञ है। इसीको पूर्ण करनेके लिये मैं दीक्षित हुआ हूं। परन्तु यह सर्वोपरि यज्ञ तबतक सिद्ध न होगा जबतक इसकी पूर्णाहुतिमें सर्वस्व स्वाहा न किया जायगा। स्वामीजीने सारे उपकरण वहीं त्याग दिये, और महाभाष्यकी एक पुस्तक, एक स्वर्णमुद्रा और मलमल का एक थान श्री गुरुदेवकी सेवामें मथुरा भेज दिया। कैलासपर्वतजीने पुस्तकं आदि त्यागते देखकर स्वामीजीसे पूछा कि यह क्या करने लगे हो? स्वामीजीने उत्तर दिया कि जबतक आवश्यकतायें अल्प न की जायें, पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं होती और प्रयोजनभी सिद्ध नहीं होसकता। मैं सब पन्थाइयोंके विरुद्ध
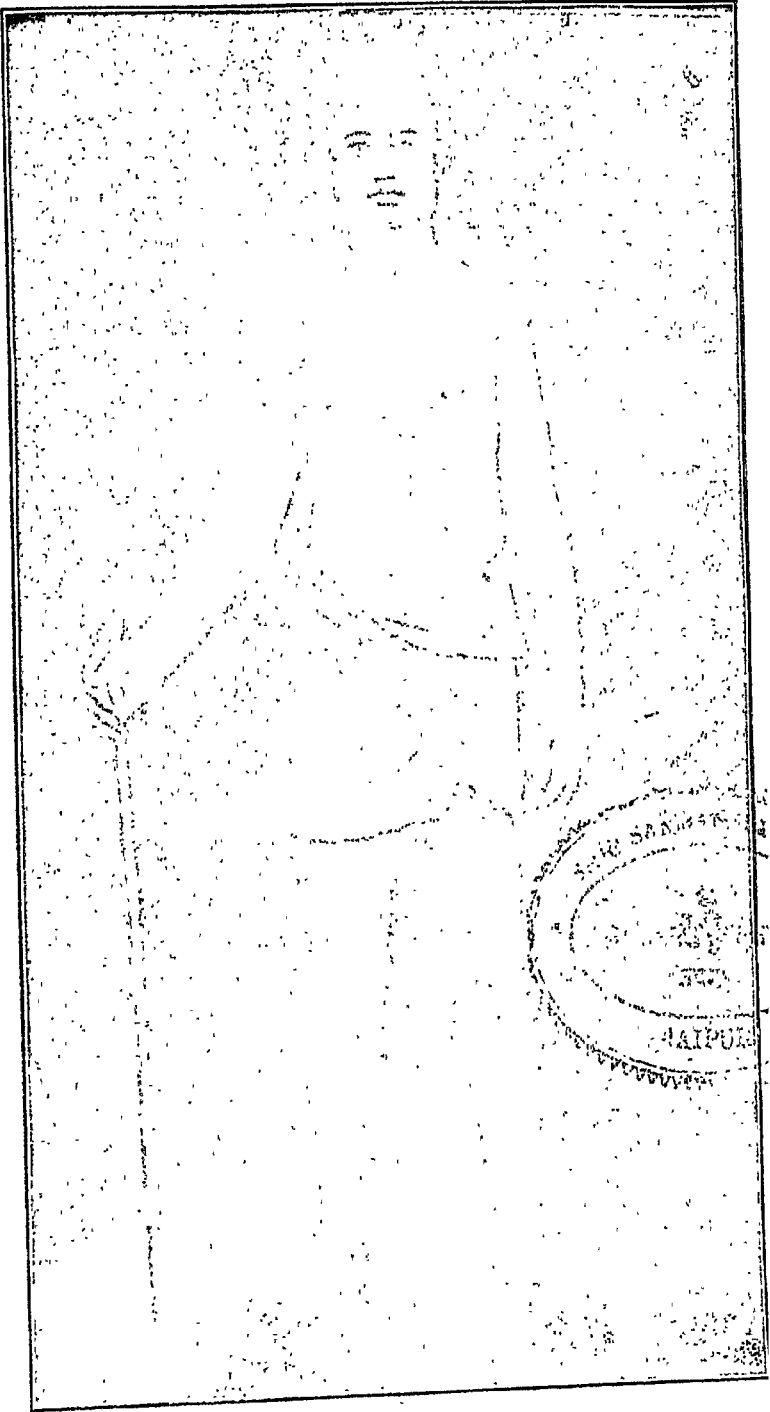
सर्वत्यागी दयानन्दार्य ।

(हरिद्वार कुम्भ मेलेकी समाप्तिपर सर्वस्वत्याग)

स्पष्ट स्पष्ट कहना चाहता हूं। इसके लिये निर्द्वन्द्व होना परमावश्यक है।

स्वामीजी पुस्तकें आदि सब त्यागकर सारे तनपर राख रमा, एक कौपीन-मात्रधारी, मौनावलम्बी होगये। व्याख्यान देना और वादविवाद करना तो दूर, वाणीका व्यापारभी बन्द करके, केवल अपनी कुटीमें ही रहने लगे। जो केसरी अपने गम्भीरनादसे सारे मठोंको हिला रहा था, अखिल अखाड़ोंको कँपा रहा था, जिसकी गर्जनासे सब सम्प्रदायी थर्राते थे, वही स्वदेशवासियोंकी अकर्मण्यताके कारण मौन धारण करके चुप हो गया। वाणीका सर्वव्यापार निरोधकर, अपनी कुटीहीमें काल काटने लगा।

परन्तु जिस महात्माने "मौनात्सत्यं विशिष्यते" अर्थात् "चुप्पी साधनेसे सत्य बोलना बढ़िया है" यह पाठ पढ़ा हो, वह भला कबतक मौन रह सकता है ? हरिद्वारमें ही एक दिन किसी मनुष्यने स्वामीजीके कुटी-द्वारपर आकर यह वाक्य उच्चारण किया "निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्" वेदसे भागवत् उत्तम है। असत्यका संमान और सत्यका हनन स्वामीजीसे कैसे सहन हो सकता था ? उन्होंने यह वाक्य सुनते ही मौन-व्रत छोड़कर भागवतका खण्डन करना आरम्भ कर दिया।

स्वामीजीके कुटी-स्थानसे ठीक उत्तरको, सप्तस्रोतसे ऊपरकी ओर, हिमालयकी अनेक ऊंची चोटियां दिखाई देती हैं। ये वास्तवमें परोपकार, परहित और तपकी मूर्तियां बनी हुई हैं। ये ही हैं, जो सागरसे उत्थित आकाशविहारी अर्णवको, तिब्बतमें जाकर बरसनेसे रोक, भारतको लौटा देती हैं; आकाश-सागरके असंख्य धक्के सहन कर लेती हैं; परन्तु उसे सीमाका उल्लंघन नहीं करने देतीं; जो वेगवान् तरङ्ग उनके सिरके ऊपरसे उछलकर पार जाना चाहते हैं, उन्हें ये घनीभूत हिम बनाकर अपने ऊपर बैठा लेती हैं; हिमके लाखों मन बोझसे दिनों दिन जर्जरीभूत होरही हैं, परन्तु भारत भूमिकी रक्षामें सदा तत्पर हैं। इन्हींके तपोबलसे वर्षा है; इन्हींके प्रतापसे गङ्गा आदि नदियोंकी सृष्टि है, लाखों एकड़ भूमि सिंचन होती है और करोड़ों प्राणी पालन पाते हैं।

यदि ये न होतीं, तो सारा आर्यावर्त मरुस्थल बन जाता। स्वामीजीके अति समीप कलकल ध्वनि करता हुआ गङ्गाजीका प्रवाह वह रहा था, जो शीतमें, ग्रीष्ममें, वर्षामें, रातमें, दिनमें निरन्तर वहा करता है। यह कुम्भ-मेलेकी महा-पूजासे न ही प्रसन्न और इसके अङ्ग भङ्ग करके नहर निकलनेसे न कुछ उदास होता है। यद्यपि गङ्गाजल स्वच्छ है, शीतल है, कोमल है, पतला है, परन्तु इसके विश्राम रहित अश्रान्त कर्मयोगने, पर्वत मालाओंके वक्षस्थलोंको घोल घोलकर अपना मार्ग बनाया है। गतिमें बाधक चट्टानोंको चूरचूर करके बालूमें बदल दिया है। निरन्तरगतिसे, निरन्तर कर्मसे क्या क्या नूतन परिणाम निकलते चले जाते हैं इसका ज्वलन्त उदाहरण, गङ्गाजीका प्रवाह, स्वामीजीके सम्मुख उपस्थित था।

प्रकृतिके पुस्तकालयमें स्वाध्याय करनेवाले, श्री स्वामीजीने प्रण कर लिया कि ईश्वर-कृपासे जितना ज्ञान मुझे प्राप्त हुआ है धर्म-प्रचार और लोकहित करते हुए मैं सफल बनाऊँगा। देववाणीमें वार्त्तालाप करता हुआ कुछ कालके लिए गङ्गाके किनारे किनारे भ्रमण करूंगा। क्रियात्मक जीवनके ज्योतिस्तम्भ, कर्म-योगके उच्च आदर्श, भगवान दयानन्द, सप्तस्रोतसे उठकर हृषीकेश चलेगये फिर पांच छः दिनके अनन्तर वहांसे लौटकर हरिद्वार, कनखल होते हुए लण्ढोरामें आ विराजे। यहां वे तीन दिनसे निराहार थे। भूखने जब बहुत बाधित किया तो उन्होंने गङ्गा-तीरके समीपवर्त्ती खेतके स्वामीसे बैंगन मांगे, और उससे तीन बैंगन लेकर क्षुधा-वेदनाको शान्त किया। वहांसे चलकर शुक्रताल और परीक्षि-तगढ़ होते हुए वे गढ़मुक्तेश्वरमें पहुंचे। यहां पन्द्रह दिन निवास किया। दिनोंमें, स्वामीजी एक मांझीकी कुटीके समीप, रातदिन रेतमें पड़े रहते थे जो कोई पास आता उसे संस्कृतहीमें उपदेश देते थे। वहां पण्डितोंसे कुछ वार्त्तालाप हुआ था। वहां भी आप तीन दिन तक निराहार पड़े रहे चौथे दिन जब मांझीकी रोटी आई तो उसने विचारा कि यह परमहंस त दिनसे यहीं पड़ा है। न तो उसके पास कोई अन्न लाया है और न ही यह

मांगने गया है। निरन्नपेट है। उसने स्वामीजीके पास जाकर अपनी रोटीमेंसे आधी तोड़कर आदरसे उन्हें दी, जिसे स्वामीजीने ग्रहण कर लिया।

इसके पश्चात् मीराँपुर, चासी आदि स्थानोंमें होते हुए कर्णवास आये। यहाँ एक दिन गङ्गाके पुलिनपर आसन लगाये बैठे थे कि दो विद्यार्थी एक दो सज्जनोंके साथ वहां आ निकले। उन्होंने देखा कि एक परमहंस बालूपर विराजमान हैं। समीप जाकर वे उनके तनपर गङ्गा-रज लगाने लगे। स्वामीजीने विद्यार्थियोंको अष्टाध्यायी, उपनिषद् और मनुस्मृति अध्ययन करनेका उपदेश दिया। फिर क्रमशः विचरते हुए ज्येष्ठ १९२४ में फरुखाबाद पहुंचे और विश्रान्त-घाटपर ठहरे। एक दिन बहुतसे सज्जन स्वामीजीके दर्शनार्थ गये उस समय स्वामीजी ध्यानावस्थित थे, इस लिये वे लोग चुपचाप बैठ रहे। जब उन्होंने समाधि खोली तो पण्डित मणिलालने पूछा "महाराज, गङ्गा और सूर्य क्या वस्तु हैं?" स्वामीजीने कहा कि ये जड़ पदार्थ हैं।

फ़रुखाबादमें दो तीन दिन निवास करके स्वामीजी फिर विचरते हुए चासी आये। यहांपर पण्डित नन्दरामने लोगोंको शङ्ख चक्र आदिसे दीक्षा देकर वैरागी बनानेका बड़ा कोलाहल मचा रक्खा था। इसका वर्णन यहांके छत्रसिंह नामक जाटने स्वामीजीसे कर्णवासमें भी किया था, और यह भी निवेदन किया था कि कभी चासीमें पधारकर उपदेश दीजियेगा। छत्रसिंहने सबको कह दिया कि स्वामी दयानन्दजी इस समय सर्वोत्तम पण्डित हैं। यदि वे कह दें कि वैरागी धर्म ग्रहण कर लो तो मुझे स्वीकार है। कोई बीस पचीस सुपठित ब्राह्मण और जाट मिलकर पं० नन्दरामको साथ लिये स्वामीजीकी सेवामें उपस्थित हुए। नन्दरामको जब, स्वामीजीका पूरा परिचय प्राप्त हुआ तो वह वहाँसे, आतेही चुपका खिसककर परली धाराकी ओर चला गया। जब बुलानेके लिये वहां मनुष्य भेजा गया तो वहाँसे भागकर अहारमें जा पहुंचा। चाहे नन्दरामने शास्त्रार्थ न किया, परन्तु भागनेसेही उसकी पूरी पोल खुल गई। सारे जाट, वैरागी मतसे बच गये। यहां महाराज १५ दिनतक उपदेश देकर लोगोंको कृतार्थ करते रहे।

चासीसे चलकर, श्रीमहाराज थारपुर गये और फिर रामघाटमें आकर एक पर्ण-कुटीमें निवास करने लगे। रामघाटमें टीकाराम नामका एक ब्राह्मण रहता था। वह वास्तवमें कर्णवासका निवासी था। आषाढ़ सुदी ५ सं० १६२४ का वर्णन है कि टीकाराम बिना 'नमो नारायण' कहे स्वामीजीके कुटियाके पाससे चला गया। उसे क्या मालूम था कि इस कुटीमें विराजमान, महात्मा एकदिन अपने धर्मगुरु बनेंगे। जब वनखण्डीमें उसने केशवदेव ब्रह्मचारीसे स्वामीजीके गुण सुने तो ब्रह्मचारीजीको साथ लेकर श्रीस्वामीजीकी सेवामें उपस्थित हुआ और 'नमोनारायण' निवेदन करके बैठ गया। स्वामीजीने पूछा, "कौन होते हो?" उसने कहा, "ब्राह्मण हूं।"

"क्या सन्ध्यादि पढ़ा है?"

'नहीं महाराज, परन्तु गायत्री कण्ठाग्र है'।

'अच्छा सुनाओ'।

'किसीके सम्मुख गायत्रीका पाठकरना, गुरुने विवर्जित किया है।'

'भद्र! संन्यासी, ब्राह्मणोंका भी गुरु होता है, इस लिये हमारे सामने पढ़ते हुए कोई संकोच न करो।'

ब्रह्मचारीनेभी टीकारामको गायत्री सुनानेके लिये प्रेरित किया। उसके मुखसे गायत्रीका शुद्धोच्चारण सुनकर स्वामीजी बड़े प्रसन्न हुए, और उन्होंने प्रोत्साहित करके सन्ध्यादि कर्मों में उसकी रुचि उत्पन्न कर दी। स्वामीजीने उसे सन्ध्याका सारा पाठ अपने कर कमलोंसे लिखकर दिया।

टीकारामने सिद्धान्तकौमुदीपर कुछ वार्त्तालाप किया, परन्तु स्वामीजीकी विद्याको अथाह देखकर शान्त हो गया। प्रतिदिनके सत्सङ्ग और प्रश्नोत्तरोंसे उसके सारे सन्देह मिट गये। श्री उपदेशोंसे वह इतना प्रभावित हुआ कि उसने विष्णु सहस्रनाम, गङ्गालहरी आदि सभी स्तोत्र, एक रुद्रीको छोड़कर गङ्गा-अर्पण कर किये। अपने ठाकुरोंकोभी उसी महानदमें स्थापित कर दिया। अन्य भी अनेक पण्डित स्वामी-सेवामें आते रहे और उनके कथनोंको सुनकर स्वीकार

करते रहे। स्वामीजीके विद्याबलकी सभी ब्राह्मण प्रशंसा करते थे। प्रति सायं चार बजे सैकड़ों मनुष्य सत्सङ्ग करने आते थे। गुसाईं शम्भुगिरिजी आते हुए तुलसीदल ले आते और स्वामीजीको समर्पण करके विनोदमें कहते कि स्वामीजी महाराज, हमारे तो आपही शालीग्राम हो। उन दिनों स्वामीजीके मसूड़ोंमें पीड़ा हुआ करती थी, इस लिये वे तम्बाकू मला करते थे।

सातवाँ सर्ग ।

श्री पण्डित टीकारामजी स्वामीजीसे उपदेश लेकर अपने पुराने पूजा-पाठ के कामोंसे विरक्त हो गये। नवीन विचारोंकी उत्तेजना भी कुछ कम न थी। वे सीधे कर्णवास आये और ठाकुर गोपालसिंह, जयरामसिंह आदि यजमानोंको एकत्रित करके कहने लगे कि रामघाटमें एक स्वामी ठहरे हुए हैं। वे अद्वितीय विद्वान् और महात्मा जन हैं। उनके सत्संगसे मुझे विश्वास हो गया है कि कण्ठी, तिलक आदि चिन्ह पन्थाइयोंके मनघड़न्त हैं, अशास्त्रीय हैं। वेद-शास्त्रमें प्रतिमा-पूजनका विधान नहीं हैं। पुराण, तीर्थ, व्रत, माहात्म्य ये सब कल्पित हैं। तीनों वर्णों के लिए एकही गायत्री है। भाई! मेरा निश्चय परिवर्तित हो गया है, इस लिए मैं अब आपके मन्दिरकी पूजा नहीं करूँगा। अच्छा तो यही है कि आपभी गुरु महाराजके दर्शनोंसे अपने भ्रम नाश करके यज्ञोपवीत धारण करलें; मूर्ति-पूजा आदि अमूलक कार्यों का परित्याग कर दें।

अपने पुरोहितकी नूतन वार्ताको सुनकर सारे ठाकुर एक वार तो आश्चर्य निमग्न हो गये; परन्तु तुरन्तही, एक ऐसे महापुरुषके दर्शनोंकी लालसासे लालायित होकर ठाकुर धर्मसिंह और गोपालसिंहजीने टीकारामजीको भेजकर स्वामीजीको कर्णवासमें लिवा लानेका प्रस्ताव किया। उधर प्रस्ताव अभी होने ही पाया था कि स्वामीजी स्वयं कर्णवासमें आ विराजे। उन्होंने नागाबाबाकी मढ़ी

के आगे बसेंदू वृक्षके तले आसन लगाया। अगले दिन टीकाराम रामघाटसे लौट आये, और उन्होंने स्वामीजीके पधारनेका समाचार ठाकुरोंको दिया। फिर सब मिलकर श्रीदर्शनोंको गये। ठाकुर गोपालसिंहजीने नीचे विछानेके लिये घास लाकर दी।

ठाकुर धर्मसिंह कुछ संस्कृत भी जानते थे उन्होंनें स्वामीजीके समीप जाकर संस्कृतमें अपना नाम, गोत्र आदि उच्चारण करके उनको नमस्कार किया। प्रत्युत्तरमें आशीर्वाद देकर स्वामीजीने उनको बड़े प्रेमसे समझाना आरम्भ किया। प्रश्न करके स्वामीजीने जान लिया कि ये क्षत्रिय हैं, और कुलकी रीतिके कारण अभीतक यज्ञोपवीत विहीन हैं। स्वामीजीने सशोक कहा कि यहांके पण्डित-पुरोहितोंनें लोगोंमें भ्रष्टाचार फैलाया हुआ है। भला, इससे बढ़कर अनाचार और कुरीति और क्या होगी कि क्षत्रियोंके पुत्रोंके डाढ़ी मूंछ मुंहपर निकलने लगी हैं, परन्तु अभीतक यज्ञोपवीत नहीं हुआ! इन्हीं अधर्माचरणोंके कारण यह देश दिनोंदिन अधोगतिको प्राप्त हो रहा है। इस प्रकार स्वामीजीने युवकोंको उपनयनके लिये बड़ा उत्तेजित किया।

एक दिन एक पण्डितने स्वामीजीको निमन्त्रित किया और ठाकुरोंको भोग लगाकर उन्हे देने लगा। स्वामीजीने यह कहकर कि हम उच्छिष्ट नहीं खाया करते, उसे ग्रहण नहीं किया।

कर्णवाससे प्रस्थान कर श्रीस्वामीजी महाराज अनूपशहरमें सुशोभित हुए। पहले तो एक सप्ताहतक बांसोंके टालके निकट एक कुटियामें निवास किया। उस समय स्वामीजी कुछ रुग्ण हो गये थे। इस लिए टालके अधिपति लाला गौरीशङ्करजीने तुलसीके पत्ते काली मिर्चोंके साथ घोलकर पिलाये और सोंठ डालकर मूंगकी दालका पथ्य दिया। इससे स्वामीजी स्वस्थ हो गये। बूंदीके राजाके गुरु रामदास वैरागी वहीं रहते थे। वे बड़े सज्जन पुरुष थे और मूर्त्ति-पूजन नहीं करते थे। स्वामीजी उनसे बड़े प्रसन्न थे। एक दक्षिणी स्वामी भी यहां रहा करता था। वह सूर्यपुरीको स्वामीजीके पास प्रश्न पूछनेके लिये बार

बार भेजा करता था। एक दिन सूर्यपुरीने उनसे एक ऐसा प्रश्न पूछा जो उसकी अपनी समझकी पहुंचसे परे था। महाराजने कहा कि यदि कोई विचारवान् जिज्ञासु होता तो हम उसे इसका तात्पर्य समझा देते, परन्तु आप तो सीखे हुए प्रश्न पूछते हो। आपकी स्थूल बुद्धि इसके सूक्ष्म अर्थको ग्रहण नहीं कर सकती। बालूमें मिश्रित चीनीके कण चिऊँटी निकाल सकती है, परन्तु हाथी की सूंड़की पकड़में वे नहीं आ सकते।

स्वामीजी टालसे उठकर नगरकी दूसरी ओर निवास करनेके विचारसे जब चलने लगे तो रामदासजीने कहा, "भगवन्, नगरमें आजकल भागवत की कथा बड़ी धूमधामसे हो रही है और आप भागवतका तीव्र खण्डन करते हैं। कहीं ऐसा न हो कि नगरमें मांगी मधुकड़ी भी न मिले।" स्वामीजीने मुस्कराकर कहा, "इसकी कोई चिन्ता नहीं। हमारा प्रारब्ध हमारे साथ है।"

१० भाद्रपद १६२४ को स्वामीजी अनूपशहरके निकट लालाबाबूकी कोठी में एक सप्ताहपर्यन्त रहे। इसके पश्चात् नर्मदेश्वरके मन्दिरके समीप सतीकी मढ़ीमें निवास किया। सतीकी मड़ीसे कोई दस बारह पैरके अन्तरपर नवल-जङ्ग नामक महामल्लका अखाड़ा था। कहा जाता है कि उसकी जन्म-भूमि पञ्जाब थी। वह सारस्वत ब्राह्मण था; और किसी कारणसे वहां जाकर रहने लगा था। वह बारह मासोंमें ही, जब चाहे तैरकर गङ्गापार कर जाता था। बड़ा सदाचारी और सुशील था। उसकी एक ब्रह्मचारिणी बहिन भी थी। वह भी ऐसी शक्तिमती थी कि वर्षाऋतुमें एक हाथमें तलवार लेकर तैरती हुई गङ्गाको पार करजाया करती थी !! नवलजङ्ग श्रीस्वामी-चरणोंका प्रिय भक्त बन गया था। वह प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर स्नानादि करके गङ्गाकी शुद्ध मिट्टी लाता और अदि प्रीतिसे चन्दनकी भांति रगड़कर स्वामीजीके सम्पूर्ण शरीरपर रमा देता। श्रीस्वामीजी अपने कार्य कदाचित् ही किसीसे कराते थे, परन्तु भक्तकी भावनाके वशीभूत होकर उन्हें इस सेवाका सौभाग्य नवलजङ्गको देना ही पड़ा था।

एक दिन ऐसा हुआ कि अकस्मात् छः सात वामी हाथमें मदिराकी बोतल लिये, मुखसे ऊटपटांग बकते, स्वामीजीके आसनकी ओर आये। वे यह भी कह रहे थे कि आज हम दयानन्दको वारुणी-स्नान कराकर ही छोडेंगे। समीप आते ही उन्होंने चिल्लाकर पुकारा "अरे दयानन्द, निकल बाहर, तुझे शुद्ध करें, वीर बनायें। अब हम तुझे यह बताकर ही जायंगे कि शाक्तधर्म्मखण्डनका फल कितना मीठा है।" स्वामीजीने जब देखा कि वे दुष्ट जन मद्यमें-मत्त—दौड़ाते, बड़बड़ करते हुए—सीधे मढ़ीकी ओर चले आ रहे हैं तो उन्होंने पुकारकर कहा "नवलजङ्ग, भाई ये मदिरामें मतवाले वामी कोलाहल कर रहे हैं। आगे आकर इनका मद उतारना।" स्वामीजीके वचन सुनकर भक्त नवलजङ्ग उन मदान्ध, पामर वामियोंपर ऐसे दोड़ा, जैसे मदोन्मत्त हाथियोंपर शार्दूल दौड़ता है। नवलजङ्गको आते देख वे वामी तुरन्त पिछले पाँव भाग गये और फिर कभी नहीं आये। उसके पश्चात् नवलजङ्ग बड़ी सावधानीसे स्वामीरक्षणमें तत्पर रहता था।

एक मथुरा निवासी पण्डित वहाँ भागवतकी कथा करने आया। उसका साक्षात् होनेपर स्वामीजीने उससे एक पद पूछा। उसका वह उत्तर तो न देसका, परन्तु कुपित होकर लगा स्वामीजीको कोसने! स्वामीजी तो उसकी बाल-बुद्धि-पर हंसते ही रहे, परन्तु लोगोंने उस कथक्कड़को लज्जित करके शान्तकर दिया।

पण्डित अम्बादत्तजीसे स्वामीजीका बड़ा मनोरंजक शास्त्रार्थ हुआ। उस दिन पण्डितोंका समारोह स्वामी-स्थानपर उमड़ आया था। वार्त्तालापमें जब स्वामीजीने युक्ति और प्रमाणोंकी झड़ी लगा दी तो जहां अन्य पण्डित आश्चर्य-सागरमें डूब गए वहां अम्बादत्तजीका हृदय उखड़ गया। मनमें किंकर्त्तव्य-विमूढ़ता छा गई। सांस फूल गया और लगे हांपने। स्वामीजीने धैर्य्य और आश्वा-सन देकर कहा कि घबड़ाइये नहीं। आप वृद्ध भी हैं और सम्भवतया आपको अधिक बोलनेका अभ्यास भी न हो।

जब अम्बादत्तजीका श्वास प्रश्वास ठिकाने आया और हृदयका धड़कना भी बन्द हो गया तो फिर महादेवकी पूजाका प्रकरण चलाया गया। स्वामीजी

ने इस पर समालोचना की कि जब महादेव अपनी ही रक्षा करनेमें समर्थ नहीं तो उसकी पूजासे मनुष्योंको क्या लाभ होगा ? तुम यह भी कहा करते हो कि महादेव कैलाशपर निवास करते हैं और विष्णु वैकुण्ठमें; इससे भी यही परिणाम निकलता है कि वे दोनों देव यहाँ मन्दिरोंमें नहीं हैं। जब वे यहाँ हैं ही नहीं तो फिर पूजा किसकी सिद्ध करना चाहते हो ? अन्तमें अम्बादत्तजी स्वामीजीके साथ सहमत हो गये ।

इस शास्त्रार्थका लोगोंपर बड़ा प्रभाव पड़ा, जिससे भगवान्‌वल्लभ वैद्य और पंडित रविशंकर आदि सज्जनोंने अपने शालिग्राम गङ्गामें प्रवाहित कर दिये; कंठियां तोड़ डालीं ।

उसी नगरमें, 'बुद्धा' नामक, संस्कृतका एक धुरन्धर विद्वान् वास करता था। वह भी स्वामीजीसे वाद करनेके लिए आया और बड़ी देरतक धाराप्रवाह संस्कृत बोलता हुआ शास्त्रार्थ करता रहा। अन्तमें स्वामी-सिंहके सन्मुख स्व-सामर्थ्यको अति तुच्छ समझ कर नम्रशिर होगया । उसने स्वामीजीके कथनोंको स्वीकार कर लिया। वह प्रबल बुद्धिका धनी स्वामी-प्रेमियोंमें प्रथम समझा जाने लगा। स्वामीजी भी उसपर अति प्रसन्न थे, और वत्सलतासे उसे 'बुद्धि सागर' नामसे पुकारा करते थे।

अनूपशहरमें स्वामीजीने रामलीलाका भी खण्डन किया। वे कहा करते थे कि श्रीराम जैसे महाराजों और जानकी ऐसी देवियोंके स्वांग बनाकर गली बाजा-रोंमें घुमाते फिरना एक अपमान जनक और लज्जास्पद कर्म है। इस कथनका लोगोंपर बड़ा प्रभाव पड़ा और आगामी वर्ष वहां उन्होंने रामलीला नहीं की।

राजा जयकृष्णजी स्वामीजीके दर्शनोंसे, पहले पहल, अनूपशहरमें ही कृतार्थ हुए। एकरात स्वामीजीकी सेवामें रहकर फिर चले आये।

उन दिनों सय्यद मुहम्मद वहांके तहसीलदार थे। वे अरबी फारसीके एक अच्छे विद्वान् थे। नित्यप्रति स्वामीजीके समीप आया करते थे। स्वामी-जीके सत्संगके प्रभावसे, उनके कथनके माधुर्यसे; और विद्याबलसे मोहित

होकर वे, एक प्रकारसे स्वामीजीके भक्तोंमें ही सम्मिलित हो गये थे।

स्वामिजीके उपदेशोंसे अनेक लोग बहुत चिढ़ गये थे। उनको नानाविध विघ्न-बाधाओं और विविध वेदनाओंसे पीड़ित करनेमें भी आगा पीछा नहीं देखते थे। शत्रु बनकर, मित्र बनकर जैसे भी हो; कभी कभी उस कल्पतरुको समूलोच्छेदन करनेपर तुल जाते थे।

एक दिन एक ब्राह्मण स्वामीजीके समीप आया। विनयपूर्वक नमस्कार करके उसने स्वामीजीके सामने पान निवेदन किया। महाराजने सहज स्वभावसे वह पान मुखमें रखलिया, परन्तु उसका रस लेते ही वे जान गये कि यह विष-युक्त है! पर उन्होंने उस नराधमको कहा सुना कुछ नहीं, परन्तु वस्ती और न्योली कर्म करनेके लिये आप गङ्गापार चले गये। देरतक क्रिया करके फिर आसनपर आ विराजे। जैसे रुईमें लपेटी हुई आग छिप नहीं सकती, ऐसे ही पाप भी छिप नहीं रहता। स्वामीजीको विष देनेका भेद किसी प्रकार तहसीलदार महाशयको भी ज्ञात हो गया। स्वामी-चरणोंमें श्रद्धा होनेके कारण, अति कोपाविष्ट होकर उसने तुरन्त उस पापिष्ठ पामरको पकड़ मंगवाया और वन्दीगृहमें डाल दिया। तत्पश्चात् स्वामीजीके दर्शनार्थ चला। मार्गमें प्रसन्नता से उसके हृदयमें ये विचार उत्पन्न होते थे कि आज मैंने स्वामीजीके शत्रुको दण्ड देकर उनका बदला लिया है, इसलिये सम्मुख जाने पर वे प्रफुल्ल वदनसे आशीर्वाद देंगे। परन्तु निकट जानेपर जब स्वामीजीने उसे देखकर दृष्टि हटा ली और बोलना तक बन्द कर दिया तो उसकी आश्चर्यकी कोई सीमा न रही। बड़ी प्रार्थनासे तहसीलदार महाशयने स्वामीजीसे उनकी अप्रसन्नताका कारण पूछा। स्वामीजीने कहा, मैंने सुना है कि मेरे लिये आज आपने एक मनुष्यको आबद्ध किया है; परन्तु मैं मनुष्योंको बंधवाने नहीं आया हूं; किन्तु छुड़वाने आया हूं, यदि दुष्ट अपनी दुष्टताको नहीं छोड़ते तो हम क्यों स्व-श्रेष्ठताका परित्याग करें?" ये शब्द सुनकर तहसीलदारके रोमांच हो आये। उसने आजतक क्षमाका ऐसा धनी; प्रशांत पुरुष, दूसरा न देखा था। वह महाराजको कर

जोड़ नमस्कार करके चला गया उसने जातेही उस ब्राह्मणको स्वतन्त्र कर दिया।

स्वामीजी महाराज आधा माससे अधिक कालतक सतीकी मढ़ीमें रहे और फिर वहांसे रामघाटको प्रस्थान कर गये।

आठवां सर्ग।

मार्गशीर्ष सम्वत् १९२४ में स्वामीजी रामघाटमें आकर गङ्गाके बालूपर आसीन हो गये। बैठे बैठे जब सायंकाल हो गया तो क्षेमकरण नामक एक ब्रह्मचारी अपने मित्रसहित उधर आ निकला और पद्मासनस्थित एक संन्यासीको अवलोकनकर सोचने लगा कि सम्भव है ये सवेरेसे निराहार बैठे हों। उस समय उसने "ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनः" यह पद गान किया। इसे सुन स्वामीजीने मुस्कुराकर हूँ कहा। फिर उनके निवेदनसे स्वमीजी वनखण्डी महादेवमें चले गये, और वहां रामचन्द्रजीने उनका आतिथ्य किया। अनेक पण्डित वहां आये, परन्तु स्वामीजीसे शास्त्रार्थ करनेका किसीको भी साहस न हुआ।

स्वामी कृष्णानन्द नामक एक संन्यासी स्वामीजीसे थोड़े अन्तरपर ठहरा हुआ था। वहुतसे ब्राह्मण मिलकर उसके पास गये और कहा कि दयानन्दजी यहां आये हुए हैं। वे भागवत आदि सब पुराणोंका खण्डन करते हैं। देवता और देव-मूर्तियोंके विरुद्धबोलते हैं। इस लिये, आप चलिये और शास्त्रार्थ करके उन्हें परास्त कीजिये; परन्तु वह समुद्यत न हुआ। स्वामीजीने भी उसे आहूत किया, परन्तु निष्फल। अन्तमें, लोगोंके अत्यन्त विवश करनेपर आज कल करते हुए, वह तीसरे दिन स्वामीजीके समीप आकर इस बातपर अड़ गया कि पहले कोई मध्यस्थ नियत करो। स्वामीजीने कहा कि शास्त्रही मध्यस्थ हैं। बड़ी कठिनतासे कृष्णानन्दजीने इस बातको स्वीकार किया। वादका

विषय वेदान्त था। कृष्णानन्दजीने कहा कि जगत् ऐसा ही मिथ्या है जैसे रज्जुका सर्प। स्वामीजीने उत्तर दिया कि सच्चे सर्पका ज्ञान मनुष्यके अन्तःकरणमें विद्यमान होता है। केवल भयके कारण रज्जुको तदाकार देखकर सर्प मान लेता है। परन्तु ज्योंही सच्चे सर्पके लक्षणोंको रज्जुके साथ मिलाने लगता है उसी समय भय निवृत्त हो जाता है। अब आप बतावें कि सच्चे सर्पकी तरह वह सत्य जगत् कौनसा है, जिसकी सदृशताकी भ्रांति इस जगत्में हो रही है?

इतनेमें, एक वैरागीने स्वामीजीको कु-वचन कहना आरम्भ कर दिया। टीकारामजीने इसे डांट डपट करठण्डा कर दिया। तीन दिनतक, प्रतिसायं कृष्णानन्दजी और स्वामीजीका शास्त्रार्थ होता रहा। एक दिन शास्त्रार्थके समय किसीने कृष्णानन्दजीसे कहा, "महाराज, महादेवपर जल चढ़ा आऊं?" स्वामीजीने बीचमें कह दिया कि यहाँ तो पत्थर है, महादेव नहीं। इससे चिढ़कर कृष्णानन्दजीने साकारवादका अवलम्बन किया और इसीपर शास्त्रार्थ चलाया। स्वामीजीका तो यह मन-चाहता विषय था। उन्होंने धाराप्रवाह संस्कृत बोलते हुए निराकार सिद्धान्तपर वेदों और उपनिषदों के प्रमाणोंकी एक लड़ी परोदी; और कृष्णानन्दजीको उनका अर्थ माननेके लिये बाधित किया। कृष्णानन्द कोई प्रमाण न दे सका। केवल गीताका यह श्लोक "यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत" लोगोंकी ओर मुंह करके पढ़ने लगा। स्वामीजीने गर्जकर कहा कि आप वाद मेरे साथ करते हैं, इसलिये मुझे ही अभिमुख कीजिये। परन्तु उसके तो विचार ही उखड़ गये थे, वह चौकड़ीही भूल चुका था। मुखमें झाग आ गये। गलेमें घीघी बँध गई। चेहरा फीका पड़ गया। किसी प्रकार लाज रह जाय इससे उसने तर्क-शास्त्रकी शरण लेकर स्वामीजीको कहा कि अच्छा, लक्षणका लक्षण बताइए। स्वामीजीने उत्तर दिया कि जैसे कारणका कारण नहीं वैसे ही लक्षणका लक्षण भी नहीं है। लोगोंने अपनी हँसीसे कृष्णानन्दजीकी हार प्रकाशित कर दी और वह घबड़ाकर वहाँसे चलता बना।

क्षेमकरणजीके पास नाना देवताओंकी मूर्तियां थीं। वह बहुतसा समय

उन्हींके पूजनार्चनमें बिताया करता था। परन्तु स्वामीजीके सत्संगसे, उसे यह सब, पाखण्ड मालूम होने लगा। वह रुद्राक्षकी मालायें भी रक्खा करता था। उनके धारण करनेसे स्वामीजी बर्जा करते थे। परन्तु वह उन्हें त्यागनेसे झिझकता था। स्वामीजीका भक्त जानकर एक दिन कृष्णानन्दने उसे चिढ़ाया। इससे उसने वह सारा पाखण्ड परित्याग कर दिया।

यहाँ पण्डित बालमुकुन्दजी आदि अनेक ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य श्री स्वामीजीके पास आते और अपने संशय निवारण कराते थे। प्रायः सभी लोग स्वामीजीके उपदेशोंकी सत्यताको तो स्वीकार कर लेते, परन्तु आजीविकावश, वेद-विरुद्ध कर्म्मोंको त्यागनेका साहस नहीं करते थे। इसपर भी बीसियों वीर ऐसे निकल आये थे, जो निर्भय होकर मूर्त्तियोंको जलार्पण करनेमें किंचित् भी संकोच न करते थे। नन्दकिशोर ब्रह्मचारी आदि अनेक विवेकियोंने, आस्था उठ जानेपर मूर्त्तियोंको जलमें विसर्जन कर दिया।

स्वामीजी यहाँ लोगोंको सन्ध्योपासना और पञ्चमहायज्ञोंके करनेका बलपूर्वक उपदेश देते रहे। उन्होंने सहस्रों वर्षोंकी आयुका होना वेदविरुद्ध बताया। रामघाटके स्वामी-भक्तोंमें भैरवनाथजी भी बड़े श्रद्धालु थे। वे विशुद्धानन्द आदि सभी पण्डितोंसे स्वामीजीकी विद्या कहीं अधिक मानते थे। भोजनके अनन्तर स्वामीजी तुलसीके पत्ते चबाया करते थे और कहा करते थे कि इससे मुख शुद्ध हो जाता है। घरके आँगनमें तुलसीका पेड़ हो तो घरका पवन भी पवित्र रहता है।

रामघाटके लोगोंको कृतार्थ करके स्वामीजी विचरते विचरते बेलौन आये और खेराके स्थानपर पीपलके नीचे आसन लगाया। लोगोंने स्वामीजीके आसनके ऊपरके स्थानको सिरकियोंसे आच्छादित कर दिया।

श्रीकृष्ण नामक पण्डेने श्रीरामजी तथा श्रीकृष्णजीके विषयमें पूछा। इस पर स्वामीजीने कहा कि वे अवतार नहीं थे, किन्तु प्रतापी राजे थे। साथही कहा कि रास-लीलासे तो कृष्णजीका गौरव घट जाता है।

जो भी कोई श्रीसंगतिमें आता उसे नित्यकर्म करने के लिए बल देते। पूछनेपर जो यह कहता कि मुझे गायत्री-पाठ नहीं आता तो उसे स्वयं सिखाने लगजाते। पण्डित इन्द्रमणि नामक एक सम्भ्रान्त व्यक्ति वहाँ रहते थे। उन्होंने गायत्रीकी अनेक प्रतियां लिखकर स्वामीजीके निकट रख दीं। स्वामीजी उन्हें लोगोंमें बाँटते थे। उनके नीचे सहस्रका अङ्क होता था, जिसका तात्पर्य यह था कि सहस्र बार इसका जप करना चाहिए। स्वामीजीने वहां कोई पचास मनुष्योंको गायत्रीपाठ सिखाया होगा। वहाँके अनेक सज्जन महाराजके प्रेमी बन गये थे।

एक जनने पूछा, स्वामीजी, आप देहपर गङ्गाकी मिट्टी क्यों लगाते हैं? उन्होंने उत्तर दिया कि ऐसा करनेसे शरीरपर मच्छर-काटनेका प्रभाव नहीं होता।

एक सज्जनने समीप आकर कहा, "स्वामीजी, दण्डवत्"।

स्वामीजीने हँसकर कहा, "दण्डवत् तुमही होओ।"

यहाँ महराज केवल तीन चार दिन ही रहे।

बेलौनसे प्रस्थान कर स्वामीजी कर्णवास पधारे। उनके आते ही पण्डितोंने शास्त्रार्थ करनेका कोलाहल मचाया और पण्डित अम्बादत्त, अनूपशहर निवासी को इस कार्यमें कुशल समझकर बुला भेजा। वह तो पहले ही, अनूपशहरमें स्वामी-वचनोंके सामने सिर झुकाचुका था। इसलिये कर्णवासमें थोड़ेसे वार्त्ता-लापके पश्चात् ही स्वामीजीके कथनोंको 'सत्य है' कहकर नम्रीभूत हो गया। स्वामीजीकी इस विजयसे ठाकुरोंके उत्साह चौगुने बढ़ गए; और वे यज्ञोपवीत परिग्रहण करनेका दृढ़ संकल्प करके स्वामीजीसे पूछने लगे कि यज्ञोपवीत ग्रहण करनेके समय क्या क्या कर्म कर्त्तव्य है? महाराजने उन्हें सम्पूर्ण विधि बता दी। उसके अनुसार बड़ी आयु वालोंको प्रायश्चित्त कराना निश्चित हुआ। अनूपशहर, दानपुर, अहमदगढ़, रामघाट, जहांगीराबाद और कर्णवासके पण्डित गायत्रीजपके लिये निमन्त्रित होकर अनुष्ठान करने लगे। यह गायत्रीपुरश्चरण आधे शुक्ल पक्षमें समाप्त हो गया और स्वामीजीकी कुटियापर एक बृहद् हवन

हुआ। उसमें होता, उद्गाता, और ऋत्विज् कर्णवासके ही पण्डित थे। इसके अनन्तर, श्री स्वामीजीने टीकारामके छोटे भाईको और गोपालसिंह, भूपसिंहजी, आदि दस बारह क्षत्रिय युवकोंको यज्ञोपवीत देकर दीक्षित किया और श्रीमुखसे गायत्रीका उपदेश दिया। यज्ञकी समाप्तिपर सब उपस्थित जनोंमें यज्ञशेष बाँटा गया, जप और यज्ञके कर्त्ताओं को भी सामर्थ्यानुसार दक्षिणा द्वारा सन्तुष्ट किया गया। ठाकुरोंके इस यज्ञकी चर्चा कर्णवासके आसपास सर्वत्र फैल गई। इस शुभ कर्मका सभी यश गाते थे। उसका लोगोंपर इतना प्रभाव पड़ा कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य टोलियां बनाकर जाह्नवीके तटपर श्रीमद्द-यानन्दजीके पास आते और उनके शुभ कर-कमलसे जनेऊ ग्रहण करते। ठाकु-रोंमें यह कार्य नूतन था, और कर्णवासके ठाकुरोंकी प्रतिष्ठा भी बहुत थी। इस लिये, राजपूतोंमें इसका प्रभाव बड़ी उत्तेजनाके साथ फैलता चला गया। कोई दो दो सौ कोसके राजपूतोंने आकर स्वामीजीके हाथसे उपवीत लिये। जो राजपूत गंगास्नान करने आते थे, वे साथ ही यह भी एक माहात्म्य समझते थे कि स्वामी दयानन्दजीसे दीक्षा लेकर गायत्रीका उपदेश ग्रहण किया जाय। चालीस चालीस, पचास, पचास राजपूत पंक्ति बांधकर गंगाके किनारे खड़े हो जाते और स्वामी दयानन्दजी महाराज, उन्हें यज्ञोपवीत देकर पतितपावनी, त्रिलोकतारिणी, भगवती गायत्रीका उपदेश देते। गंगा-तीरपर विचरते हुए भगवान् दयानन्दने इस प्रकार सावित्री के उपदेश से सहस्रों मनुष्यों का कल्याण किया।

कर्णवासमें तो इस यज्ञका विलक्षण प्रभाव पड़ गया था। प्रायः सभी छोटे वड़े स्वामीजीसे दीक्षित हो रहे थे। घरोंमें, गलियोंमें, बाजारोंमें, हाटोंपर, घाटोंपर जिधर जाओ नर-नारी यही कथा कहते थे----दयानन्दहीके गीत गाते थे।

वहां एक ६० वर्षकी वृद्धा, बालविधवा हंसा ठकुरानी रहा करती थी। यह देवी ठाकुर गोपालसिंहकी ताई थी। यद्यपि वह पांच छः ग्रामोंकी स्वामिनी थी, परन्तु उसका भोजन था जौकी रोटी और मूङ्गकी दाल। और वह इसे बनाती

भी अपने हाथसे ही थी। ठाकुरोंके परिवारोंमें उसका बड़ा आदर था। छोटी बड़ी सभी बहू बेटियां उसको मानती थीं और मां कहकर पुकारा करती थीं। जब सब ठाकुर एक एक करके श्री स्वामीजीके शिष्य हो गये तो उस देवीने भी स्वामी-दर्शनोंकी लालसा प्रकट की। ठाकुर गोपाल सिंहके पूछने पर स्वामीजीने उसको आनेकी आज्ञा देदी। वह वृद्धा स्वामीजीके समीप आई। उसने अतिशय श्रद्धासे भूमिके साथ सिर लगाकर स्वामीजीको नमस्कार किया। हाथ जोड़कर स्वकल्याणका, जन्म-सुधारका पथ पूछा। महाराजने उसे ठाकुर पूजा छोड़ देनेको कहा और गायत्री मन्त्रका उपदेश किया। साथ ही ओम् पवित्रका जप करते रहनेकी शिक्षा दी। चिरकालपश्चात्, यह प्रथम समय था जब दयालु दयानन्दजीद्वारा एक स्त्रीको गायत्रीजप करनेका अधिकार उपलब्ध हुआ। हंसा देवी, इस प्रकार श्री उपदेशसे निहाल होकर स्वगृहको लौट आई और अन्तिम दिनतक स्वामी-वचन-परायण रही।

पण्डित हीरावल्लभ भी एक बड़ा विद्वान् था। ऋग्वेद और यजुर्वेद उसे कण्ठाग्र थे। दर्शनोंमें वह निपुण था। व्याकरणमें तो वह प्रसिद्ध पण्डित माना ही जाता था। एक दिन अन्य अनेक पण्डितों सहित वह अनूपशहरसे स्वामीजीके साथ शास्त्रार्थ करनेके लिये कर्णवासमें आया। वह पौषका मास था। जिस समय हीरावल्लभजी स्वामीजीके समीप आये उस समय वहां कोई दो सहस्र मनुष्योंकी भीड़भाड़ हो गई थी। उन्होंने आते ही सभा स्थलके मध्यमें एक छोटेसे सुन्दर सिंहासनपर गोमती चक्र, बालमुकुन्द, और शालिग्राम आदि मूर्तियां स्थापित करके ऊँचे स्वरसे प्रतिज्ञा की कि अब मैं यहाँसे तब उठूंगा, जब स्वामीजीके हाथसे इन्हें भोग लगवा लूंगा। पहला दिन तो अविराम संस्कृत भाषणमेंही बीता। अगले दिन फिर शास्त्र-संग्राम प्रारम्भ होगया। हीरावल्लभको, उसके साथी भी पर्याप्त सहायता देते थे, परन्तु वह प्रत्येक दिवस उदासीन ही लौटा करता था। यह वाद लगातार छः दिन तक चलता रहा। एक दिन तो नौ घण्टोंतक विराम-विश्राम रहित वाद होता रहा। 'सर्वाणीनि

सर्वनामानि' इस सूत्रपर भी वाद चला, परन्तु स्वामीजीके महाभाष्यके प्रमाणोंको सुनकर हीरावल्लभ पराभूत होगया। उसमें आगे बोलनेका साहस न रहा। सारी सभाके समक्ष उसने कहा "स्वामीजी जो कुछ कहते हैं वह सब सत्य है, प्रामाणिक है। इनकी विद्या अगाध है। इनका शास्त्रानुशीलन अपार है।" और उसने उसी समय, मूर्तियोंको सिंहासनपरसे उठाकर गङ्गामें फेंक दिया और उनके स्थान सिंहासनपर वेद स्थापित कर दिये।

स्वामीजीने हीरावल्लभजीके सारग्राही होनेकी प्रभूत प्रशंसा की। हीरावल्लभके परास्त होनेसे प्रतिमा-पूजनसे अनेक सज्जनोंकी आस्था उठ गई। उन्होंने भी पण्डित प्रवरका अनुकरण करते हुए अपने शालिग्राम जलतलमें लीनकर दिये।

वहां कृष्णवल्लभसे भी वार्त्तालाप हुआ। स्वामीजी महाराजने उसे अङ्गद नामके एक पण्डितकी भूलें प्रदर्शित कीं। नन्दकिशोर पुजारीको महाराजने कहा कि मन्दिरमें जाकर टन टन पूं पूं करनेसे कोई लाभ नहीं। पुजारीने कहा कि महाराज हम तो इसी पूजा-पाठके प्रतापसे सात सहस्रके स्वामी बन गये हैं। इसपर स्वामीजीने उपदेश दिया कि जो कुछ तुम्हें मिल रहा है वह तुम्हारा प्रारब्ध है; पूर्वार्जित भोग है। वह जितना नियत है पाखण्ड परित्याग करनेपर भी उतना मिलकर ही रहेगा।

यहांसे स्वामीजीने एक विद्यार्थीको प्रेरित करके मथुरामें स्वामी विरजानन्दजीके पास अध्ययनार्थ भिजवाया।

दारोगा अल्फ़खाँने कुरानके सम्बन्धमें कुछ बातचीत की, परन्तु स्वामीजीके उत्तर सुनकर वे फिर न बोले। धर्मपुरके नवीन अधिपति मुसलमानने स्वामीजी से पूछा कि क्या मैं भी किसी प्रकार शुद्ध हो सकता हूं? स्वामीजीने उत्तर दिया कि हाँ, वेदानुकूल आचार व्यवहार करनेसे आप अवश्य शुद्ध हो सकते हैं।

नववाँ सर्ग ।

माघ वदी १५ सम्वत् १९२४ को सूर्यग्रहण था। इस लिये सहस्रों नर-नारी स्नानार्थ कर्णवास आ रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था कि आज जन-सागरमें ज्वार-भाटा आ रहा है। स्वामीजी महाराज भी उस सुसमयको अनुकूल समझकर अपने भोलेभाले भारतवासी भाइयोंको विवेकदान देने लगे। उनके चरित्र-चन्द्रकी चटकीली चाँदनी पहले ही दूर दूरतक छिटक रही थी; इस लिये मनुष्योंके झुण्डके झुण्ड दर्शनोंको आते, प्रश्न पूछते, संशय निवारण कराते, और उपदेश सुनकर धन्य धन्य करने लग जाते थे। उस महामेलेमें लोगोंके लिये कोई चित्ताकर्षक वस्तु थी तो आनन्दकन्द श्रीदयानन्द; कोई दर्शनीय सुन्दर आकृति थी तो दयानन्दकी मनोमोहिनी मधुरिमामयी मूर्ति; कोई श्रोतव्य वचन थे तो श्रीदयानन्दजी महाराजके सारगर्भित रसीले सत्योपदेश। सारांश यह कि सारा मेला उन्हींकी ओर झुका पड़ा था।

महाराज बसेन्डूके निचे बैठे हुए धर्म्म-कर्म और आचार-विचारका उपदेश करते थे। साथ ही वे इन आठ गप्पोंका भी खंडन करते थे।

१-प्रथम गप्प अठारह पुराण व्यासकृत हैं।

२-मूर्त्ति-पूजन।

३-शैव, शाक्त और रामानुजादि वैष्णव सम्प्रदाय।

४-तंत्र ग्रन्थ, वाममार्ग आदि।

५-मदिरा, भाँग इत्यादि मादक वस्तुयें।

६-व्यभिचार।

७-चोरी करना।

८-छल, कपट, अभिमान; झूठ इत्यादि।

इन आठों गप्पोंका मनुष्योंको परित्याग करना चाहिगे। इस मेलेमें भी

सैकड़ों मनुष्योंने स्वामीजीसे गायत्रीका उपदेश लिया।

डिबाई निवासी शिवदयालजी सूर्य-ग्रहणके अवसरपर वहां आये हुए थे। उन्होंने स्वामीजीसे पूछा कि ग्रहण लगा हो तो भोजन किस समय करना चाहिये। महाराजने उत्तर दिया कि जब भूख लगे खालेना चाहिये।

शिवदयालने यज्ञोपवीतके विषयमें पूछा कि इसका किसको अधिकार है? इसके न धारण करनेसे क्या दोष हैं और धारण करनेमें क्या गुण हैं? स्वामीजीने कहा कि ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्यके बालकोंको जनेऊ लेनेका अधिकार है। जिसने यज्ञोपवीत धारण नहीं किया वह वैदिक कर्म करनेका अधिकारी नहीं हो सकता। यह सूत्र आर्योंका धार्मिक चिन्ह है और कर्तव्य चिन्ह है।

शिवदयालजीने संस्कारोंके लाभ पूछे, जिसपर स्वामीजीने वर्णन किया कि संस्कारोंसे जाति प्रबल हो जाती है; जैसे एकीकरणसे सूत्रके तारोंमें बल आ जाता है, जैसे वस्त्रोंको धोनेसे उनमें श्वेतता तथा दृढ़ताका आविर्भाव हो आता है और जैसे औषधियोंको पुट और भावना देनेसे उनका प्रभाव बढ़ जाता है, ऐसे ही संस्कार मनुष्यके जन्मको प्रबल बनानेमें कारण हैं।

स्वामीजी संस्कृतहीमें उत्तर देते थे, परन्तु जो लोग संस्कृत नहीं जानते थे उनको टीकारामजी भाषानुवाद करके समझा दिया करते थे।

उस समय लाला इन्द्रमणिजीने स्वामीजीको कहा कि आप अवधूत होकर इतने खण्डन-मण्डनके झगड़ेमें क्यों फँस गये हैं? उन्होंने उत्तरमें कहा कि मेरे लिये यह कार्य झगड़ा नहीं है, किन्तु ऋषि-ऋणका उतारना है। स्वार्थी लोग इस समय ऋषि-सन्तानको कुमार्गपर चलाकर, उसे कुरीतियोंके नुकीले कांटोंपर घसीटकर छलनी बना रहे हैं। मुझसे आर्यसन्तानकी यह दीन-दुर्दशा देखी नहीं जाती। मैंने प्रणकर लिया है कि इसे सन्मार्गपर लानेका प्राणपणसे प्रयत्न करूंगा।

कर्णवासमें एकदिन बुलन्दशहरके कलेक्टर महाशय पधारे। स्वामीजीकी कीर्ति उन्होंने पहले ही सुन रक्खी थी, परन्तु कर्णवासमें आकर जब उन्होंने स्वामीयश सुना और साथही उन्हें यह भी पता लगा कि वह परमहंस महात्मा

यहीं टिके हुए हैं तो मिलापार्थ स्वामीकुटीपर जापहुंचे। उस समय महाराज कुटियाके भीतर ज्ञान-ध्यानमें परायण थे। कुटीसे दूरीपर खड़े होकर कलेक्टर महाशयने एक मनुष्यको स्वामीजीकी सेवामें भेजा और दर्शनोंकी इच्छा प्रकट की। स्वामीजीने उत्तरमें कहा कि मुझे इस समय अवकाश नहीं। कलेक्टरने फिर पुछवाया कि आपको अवकाश किस समय होगा? उत्तरमें स्वामीजीने पूछा कि कलेक्टर महाशयको किस समय अवकाश होगा? कलेक्टर महाशयने इसका उत्तर भिजवाया कि मुझे चार घण्टे पश्चात् अवकाशही अवकाश है। यह वाक्य सुनतेही स्वामीजी कुटीसे बाहर निकल आये शिष्टाचारके पश्चात् वेद-मन्त्रों और मनुस्मृतिके श्लोकोंसे कलेक्टर महाशयको राज्यधर्मका उपदेश देते हुए बोले, "जिसके सिरपर एक परिवारके भरण-पोषणका भार होता है उसे बड़ी दौड़धूप करनी पड़ती है, रातों जागना पड़ता है और शिर खुजलानेका भी अवकाश नहीं मिलता; परन्तु आपके कथनसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि सहस्रों मनुष्योंका बोझ आपके कन्धोंपर है, दीन दुखियोंके संकट निवारण करना आपका कर्तव्य है और तिसपर भी आपको चार घंटोंके पश्चात् अवकाशही अवकाश है।" स्वामीजीके स्पष्ट कथनको कलेक्टर महाशयने स्वीकार किया और वे प्रसन्नतापूर्वक वहांसे विदा होकर चले आये।

स्वामीजीका तेज आगन्तुकको कुछ ऐसा प्रभावित कर लेता था कि उनके समीप आनेपर अहङ्कारमें ऐंठे हुए बड़े बड़े अभिमानियोंका गर्व भी गल जाता था। रतीराम एक बड़ा प्रसिद्ध पहलवान था वह अपने बलपर अति घमण्ड किया करता था। एकदिन, वह अभिमानमदमें मस्त, झूमता झामता स्वामीजीके आसनके पास आ निकला। महाराजको देखकर उसने तिरस्कारपूर्वक कहा, "अरे यह बाबा तो बड़ा हृष्ट-पुष्ट है।" यही वाक्य दुहराते दुहराते जब वह स्वामीजीके बहुत निकट आ पहुंचा तो महाराजने उसपर एक दृष्टि डाली। उनके नेत्रस्रोतसे उस समय कुछ ऐसी मोहिनी शक्ति स्रावित हुई कि रतीराम दौड़कर श्रीचरणोंमें आ गिरा और पद-पद्म रज बारबार भालपर रमानेलगा।

इस दृश्यको देखकर सभी दर्शक श्रद्धामय हो गये।

बहुतसे पण्डित लोग जब स्वस्थानसे स्वामीजीके पास आते तो अपने मन में युक्तियों और प्रमाणोंकी मालायें पिरो लाया करते थे—उत्तर प्रत्युत्तर सब सोच विचार कर आते थे। परन्तु स्वामीजीके सम्मुख आते ही सब सट्टी पट्टी भूल जाते थे।

एक दिनका वृत्तान्त है कि अहमदगढ़के पण्डित कमलनयन और अलीगढ़के पण्डित सुखदेव, अपने साथी पन्द्रह पण्डितों सहित स्वामीजीके पास आये। उन्होंने पूछनेके लिए कुछ अति कठिन प्रश्न चुने हुए थे। विद्यामें भी वे कुछ साधारण न थे। जिस समय, वे स्वामीजीके आसनपर पहुंचे उस समय महाराज गङ्गा पर गये हुए थे। स्वल्पकालके प्रतीक्षाके अनन्तर ही स्वामीजी आते दिखाई दिये। उनके समीप आनेपर सबने अभ्युत्थानपूर्वक विनीत नमस्कार किया। महाराज तृणासन पर बैठकर कुछ काल तक अचलभावसे ध्यानावस्थित रहे। फिर आंखें खोलकर सबकी ओर देख उपदेश करने लगे। महाराजके विशाल भाल, मोहन मुखमण्डल, दिव्य, तेजोमयी मूर्ति और बचन-माधुर्यका पण्डित-मण्डलीपर ऐसा प्रभाव पड़ा-वे ऐसे विमोहित हुए-कि स्वामीजीके यह कहनेपर भी कि आप कोई प्रश्न करना चाहते हैं तो कीजिये, उन्हें कुछ भी पूछनेका साहस न हुआ। स्वामीजीके बचनोंको सत्य सत्य कहते हुए कु-रीतियोंका खण्डन सुनते रहे। दिन बहुत चढ़ आया था, इसलिए वे गंगापर स्नानार्थ चले गये।

वे मार्गमें एक दूसरेसे कहने लगे कि घरसे चलते समय तो प्रश्नोंके बहुतेरे बांधनू बाँधकर चले थे, परन्तु स्वामीजीका कुछ प्रभाव ही ऐसा है कि उनके सामने आकर एक भी बात न सूझी। भाई यह स्वामी तो सचमुच कोई सिद्ध पुरुष है।

स्वामीजीकी ज्ञानदृष्टि कभी कभी आंखोंसे ओझल बातका भी पता दे दिया करती थी। इससे स्वामी-भक्त आश्चर्यमय हो जाया करते थे।

एक दिन, नन्दकिशोर उपाध्याय स्वामीजीके समीप आते समय एक खेतसे

ग्वासकी कुछ फलियां तोड़ ले गये और वहां पहुंचकर स्वामीजीकी भेंट कीं। स्वामीजीने कहा तुम चोरी कर्मसे यह फलियां लाये हो, इस लिए हम ग्रहण नहीं करते। उसने कहा स्वामीजी! आप यह क्या कह रहे हैं! मैंने किसीकी चोरी नहीं की। स्वामीजीने हंसकर कहा अच्छा बताओ, जिस खेतसे यह लाये हो, क्या लेते समय तुमने उसके स्वामीसे पूछ लिया था? नन्दकिशोरका सिर नीचा होगया और वह मन ही मन स्वामीजीके ज्ञान और व्रतकी प्रशंसा करने लगा।

स्वामीजी बड़े तपस्वी थे। उन्होंने भूख-प्यास, शीत-उष्ण आदि सब द्वन्द्व जीते हुए थे। पौष माघका शीत पड़ता था, घास-तृणपर हिम दिखाई देने लग जाता था, खेतोंपर कुहरा चमकने लगता था, जोहड़ोंका जल जम जाता था, पर कोपीनमात्रधारी परमहंसजी कभी कभी गङ्गाकी अत्यन्त शीतल रेतीहीमें पद्मासन लगाये सारी सारी रात बिता देते थे। महाराजको इस दशामें देख कभी कोई भक्त उनके तनपर कम्बल भी डाल जाता तो भी उसे नहीं ओढ़ते थे। यदि वह अपने आप खिसककर न उतर जाय तो ध्यानादिसे निवृत्त होनेपर उसे स्वयं उतार देते थे।

माघ मासका वर्णन है कि एक दिन, प्रातःकाल अत्यन्त शीतल पछवा पवन बड़े वेगसे वह रहा था। स्वामीजी महाराज स्नान-ध्यानसे निवृत होकर कुटिया से बाहर बद्धपद्मासन बैठे थे। और दर्शनको आए हुये ठाकुर लोग श्रीमुख-वचन श्रवण कर रहे थे। यद्यपि उन सम्पन्न लोगोंने रूई और ऊनके वस्त्र पहर रक्खे थे, परन्तु अतिशीतपातसे उनके अंग ठिठुर रहे थे। तन काँपते थे, नाकसे, आँखोंसे पानी बह रहा था। हाथ-पांव शून्य हुए जाते थे। परन्तु श्रीमद्दयानन्द थे कि निश्चल भावसे उपदेश-कार्यमें संलग्न थे। बाणोंकी भांति आरपार करने वाला वायु शरीरको स्पर्श कर रहा था। पर वे अटल थे-अकम्प थे। सारे भक्त अपने भक्ति-भाजनकी इस सहनशीलताको अवलोकन कर आश्चर्य निमग्न थे। उस समय ठाकुर गोपालसिंहजीने हाथ जोड़ कर पूछा, "भगवन्! घोर शीतपातके कारण हम सबके शरीर सिकुड़ रहे हैं दांतोंसे दांत बज रहे है, परन्तु महाराजपर इस

महाशीलका किंचित् भी प्रभाव दिखाई नहीं देता, इसका क्या कारण है ?' स्वामीजीने मुस्कराकर कहा, कि "ब्रह्मचर्य और योगाभ्यास ही इसका कारण है।" उसने कहा, "तो हम कैसे जानें ?" उस समय स्वामीजीने अपने हाथोंके अंगूठे घुटनोंपर रखकर, ऐसे बलसे दबाये कि तत्कालही उनके भालपर, ओसके कणोंकी तरह प्रस्वेदके बिन्दु चमकने लगे; तनपर रमाई हुई सारी मिट्टी भीग गई; बगलोंमेंसे पसीना टपटप करके टपक पड़ा। शीतकालके भरे यौवनमें, इतनी ठण्डी पवनके तीव्र प्रवाहमें, शरीरका इस प्रकार पसीना पसीना होजाना दर्शकोंके लिये एक कल्पनातीत दृश्यथा सभी लोग मुक्तकण्ठसे स्वामीजीके योगबलकी प्रशंसाकर उठे।

स्वामीजीसे एक जनने पूछा कि आप गङ्गाको क्या मानते हैं ? महाराजने कहा कि जो कुछ दीखती है। उसने कहा आपको क्या दीखती है ? स्वामाजीने उत्तर दिया, जो आपको दीखती है परन्तु कहना सत्य ही सत्य। वह बोला मुझे तो जल दीखता है। स्वामीजीने कहा, सो मैं भी यही मानता हूं।

कर्णवाससे प्रस्थान कर स्वामीजी ग्रामानुग्राम विचरने लगे। एक रात, स्वामीजी गङ्गाके दूसरे किनारे आसन लगाये समाधिस्थ थे। अधिक रात हो जानेके कारण गङ्गाके गरगरानेके अतिरिक्त कोई दूसरा शब्द सुनाई न पड़ता था। कभी कभी बीचमें कूलपातकी 'धड़ाम' ध्वनि अवश्य सुनाई देती थी। शुक्लपक्षका चन्द्रमा विस्तीर्ण विमल व्योमकी शोभा बढ़ा रहा था। उसकी शुभ्र ज्योत्स्नामें मानों भूमि अपने वनों-उपवनोंसहित स्नान कर रही थी। ऐसा प्रतीत होता था मानों रुपहरे सागरने उमड़कर आज भूम्याकाशको एकाकार कर दिया है। रेतीपर चांदनी और भी चमक उठी थी। उसके साथ नीलमकी लम्बायमान रेखाके सदृश गङ्गा-धारा अपूर्व सौन्दर्य दिखा रही थी। ऐसे समयमें, बदायूंके कलेक्टर अपने किसी युरोपीय मित्रसहित आखेटके लिये गङ्गातीरपर फिर रहे थे। अचानक उनकी दृष्टि उस स्थानपर जा पड़ी, जहां स्वामी दयानन्द योगारूढ़ आसीन थे। वे साथीसहित समीप जा पहुंचे। चांदीकी विशाल शिलापर जैसे तप्त स्वर्णकी प्रतिमा विराजमान हो उसी प्रकार दीप्तिमान् स्वामी-देह

को, उन्होंने बालूपर विराजते देखा। बड़ी देरतक विस्मयोत्फुल्ल लोचनोंसे संन्यासीके सुन्दररूपको, समाधिस्थ निमग्नताको, तपश्चर्याको, वे अवलोकन करते रहे। अन्तमें जब महामुनिने नेत्र उन्मीलन किये तो शिष्टाचार-प्रदर्शनमें प्रवृत्त हुए। चलते समय कलेक्टर महाशयने विनयपूर्वक कहा, "हमें बड़ा आश्चर्य है कि इतना शीत पड़ रहा है, नदीका किनारा है, रात्रिका समय है और आप हिमसमान शीतल रेतीपर लङ्गोट मात्र लगाये मग्न बैठे हैं! क्या आपको पाला नहीं लगता!" स्वामीजी उत्तर देनेही लगे थे कि कलेक्टर महाशयका साथी बीचमें बोल उठा, "हृष्ट-पुष्ट मनुष्य है, खानेको अच्छे माल मिलते होंगे; इसे पाला क्या करे?" स्वामीजीने हँसकर कहा, कि "हम दाल चपातीके खानेवाले क्या माल खायेंगे? बहुत बल लगाया तो कुछ दूध पी लिया। परन्तु आप मांस अण्डे आदि पौष्टिक पदार्थ खाते हैं और समय पड़नेपर मदिरापानमें भी कोई अड़चन न होती होगी, इस लिए यदि माल खाकर शीत सहा जाता है तो कपड़े उतारकर आइए और थोड़ी देर मेरे साथ बैठिये। इसपर वह लज्जित हो गया और विषय बदलकर कहने लगा "अच्छा तो बताइए आपको शीत क्यों नहीं लगता?" उत्तरमें महाराजने कहा, "इसका सहजसे समझमें आने योग्य एक कारण तो अभ्यास है। आपका मुख सदा नग्न रहता है; इसलिए आपको उसे ढाँपनेकी आवश्यकता इस समय भी प्रतीत नहीं होती। कलेक्टर महाशयने संकेत करके साथीको बहुत बोलनेसे रोक दिया और वे स्वामीजीको नमस्कार करके चले गये। कहते हैं कलेक्टरका वह साथी कोई पादरी था, जो कारणवश उनके साथ आया था।

दसवाँ सर्ग।

स्वामीजी महाराज सैकड़ों राजपूतोंको जनेऊ धारण कराते हुए, सहस्रों मनुष्योंको उपदेश देकर सन्मार्गपर लाते हुए, फरुखाबादतक गये और फिर वहाँसे लौटकर विचरते हुए चासीमें आ गये।

चासी अहारसे कोई ढाई मीलके अन्तरपर है। गङ्गाका तीर है, वनस्थान है; अति एकान्त, शान्त और रमणीक प्रदेश है। वहाँ स्वामीजी एक कुटियामें टिके। उनके पास ग्रामीण लोग बहुत आने लगे। वे महाराजका अति सम्मान करते थे। इससे, वहाँ रहनेवाला एक वैरागी बहुत चिढ़ गया। वह रातदिन इसी उधेड़ धुनमें रहने लगा कि किस प्रकार दयानन्दको यहाँसे चलता किया जाय। स्वामीजीका नियम था कि जो पहले भोजन ला देता वे उसेही खालेते वैरागीने उसी नियमसे लाभ उठाना चाहा। वह सबसे पहले एक दो जले भुने टिक्कड़ स्वामीजीके आगे रख देता और वे वीतराग वही खा जाते। परन्तु कुछ कालके अनन्तर वही वैरागी महाराजका अनुरागी हो गया। उसके पीछे एक जाट महराजको नियमसे भोजन लाकर दिया करता था।

ठाकुर महावीरसिंहजी चाँदोख निवासी स्वामीजीके श्रद्धालु भक्त थे। वे आठ दिवसतक चासी वनमें स्वामीजीकी सेवामें रहे। उन्हें आठ दिनतक श्रीसंगतिमें रहकर जो लाभ और जो आनन्द प्राप्त हुआ उसका अनुभव उन्होंने अपने जीवनमें अन्यत्र कहीं नहीं किया।

जहांगीराबाद-निवासी, ओङ्कारदास बहुरा गङ्गा-स्नानार्थ चासीमें गया। उस समय श्रीस्वामीजी वहीं विराजमान थे। वह जब दर्शनार्थ स्वामीजीके समीप गया तो उनके पवित्र स्वरूपसे ऐसा प्रभावित हुआ कि उसके हृदयमें स्वामी-श्रद्धाका स्रोत स्रावित हो आया। उसने कुछ भोज्य पदार्थ स्वामीजीके समर्पित किया, जिसे महाराजने ग्रहणकर लिया। एकदिन तो सत्संगमें अपने आत्माकी पिपासाको शान्त करूँ, इस संकल्पसे उसने स्वामीजीकी कुटीके निकट डेरा डाल दिया। ओंकारदास व्यायाम करनेवाला था। पुष्ट, सुगठित और बलवान् था। सायंकाल होनेपर उसके हृदयमें इस भावका प्रादुर्भाव हुआ कि चलो पाँव दाबकर स्वामीजीकी सेवा करें। इससे स्वामीजीके बलका भी ज्ञान प्राप्त हो जायगा। ओंकारदासने प्रार्थनाकी कि सेवकको पाँव दबानेकी सेवा प्रदान कीजिये। स्वामीजीने उत्तर दिया कि हमारे पाँव दबे दबाये हैं। परन्तु अत्या-

ग्रहसे वह चरण-सेवा करने लग ही गया। उसने जब महाराजकी पिण्डलियों पर हाथ लगाया तो वे उसे लोहेके दण्डके सदृश कड़ी प्रतीत हुईं। उनमें हाथ न धसता था; कहीं बल न पड़ता था; सम्पूर्ण बल लगानेपर भी मांस हाथोंमें न आता था। ओङ्कारदास थोड़ी ही देरमें एड़ीसे चोटी तक पसीनेसे तर हो कर हाँपता हुआ पाँव दबानेसे पीछे हट गया। उसने स्वामीजी ऐसा बलिष्ठ व्यक्ति अपने सारे जन्ममें नहीं देखा था।

पण्डित गङ्गाप्रसादजी भी स्वामीजीके एक श्रद्धालु अनुयायी थे। जिस प्रकार प्रशंसित परमहंस जाटोंको, राजपूतोंको, वणियोंको यज्ञोपवीत देते थे उनका अनुकरण करके गङ्गाप्रसादजी उसी प्रकार गाँवगाँवमें विचरण करते हुए जनेऊ धारण कराते थे। उनके इस कार्यसे स्वामीजी बहुत प्रसन्न थे। एकदिन, गङ्गाप्रसादजीने स्वामी-चरणोंमें उपस्थित होकर निवेदन किया कि महाराज ! मैंने बहुत बड़ी जन-संख्याको जनेऊ धारण कराये हैं। स्वामीजीने उसके इस कार्यकी आशीर्वाद सहित स्तुति करते हुए कहा कि यज्ञोपवीत देते ही जाते हो कि किसीका उतारते भी हो ? उसने विनय की—"भगवन् ! कभी जनेऊ उतारा भी जाता है ?" स्वामीजीने कहा हाँ, जो जन धर्म-कर्महीन हो जाँय उनके उपवीत उतार लेने चाहिएँ।

पण्डित गङ्गाप्रसादका गुरु प्रायः स्वामीजीके निकट आया जाया करता था। एक दिन वह स्वामीजीकी कुटियापर अपने वस्त्र रख, गङ्गा-तीरपर स्नानार्थ जाने लगा। स्वामीजीकी दृष्टि उसकी भुजामें धारण किये हुए अनन्तपर जा पड़ी। महाराजने विस्मयाकारमें पूछा कि आपके भुजामें क्या है ? वह बोला महाराज, यह 'अनन्त' है। स्वामीजी झट उसके पास चले गये और उङ्गलियोंसे नापकर कहने लगे कि यह तो इतने अंगुलका है; अनन्त कहाँ है ? उसने लज्जाके मारे वह अनन्त तुरन्त उतारकर गङ्गामें बहा दिया।

स्वामीजी नवीन वेदान्तियोंके वचनमात्रके ब्रह्मवादसे घोर घृणा करते थे। वे कहा करते थे कि आलस्य-निमग्न साधु-पण्डितोंने, धर्म-कर्म और लोकहित

करनेसे बचनेके लिये मायावादका ढकोसला बना रक्खा है । ये लोग ब्रह्मसत्ताका अनुभव तो करते ही नहीं, उलटे "अहं ब्रह्म जगन्मिथ्या" कहकर रात-दिन मिथ्या वचन बोलनेके भागी बनते हैं ।

खन्दोई गाँवकानिवासी छत्रसिंह जाट, जो स्वामीजीका प्रेमी तो था परन्तु वैसे था पक्का नवीन मायावादी, एक दिन स्वामीजीके पास आया । नमस्कारादि करके वेदान्त विषयपर वार्त्तालाप करने लगा । वार्त्तालापक्रममें छत्रसिंहने कहा, "स्वामीजी ! आप चाहे जो कहें, परन्तु यह दृश्यमान जगत् आकशपुष्पसमान मिथ्या है, स्वप्न-सृष्टिके तुल्य भ्रममात्र है; वन्ध्या-पुत्रसमान कल्पित है, शश-शृङ्गवत् असत्य है, वास्तवमें यह है ही नहीं ।"

स्वामीजीने हाथको थोड़ासा आगे बढ़ाकर छत्रसिंहके मुखपर एक हलकासा थप्पड़ लगाया । चपत खातेही वह चौंक उठा और कपोल मलता हुआ कहने लगा, "महाराज ! सिद्धान्तभेद होनेपरही, विचार न मिलनेपर ही आप ऐसे ज्ञानी जनोंको आवेशमें आकर थप्पड़ मार देना शोभा नहीं देता ।" स्वामीजी-ने मन्द मुस्कानसहित कहा "चौधरीजी" जब आपके निश्चयानुसार ब्रह्मही एक वस्तु है, दूसरी कोई भी नहीं, और जो कुछ दिखाई पड़ता है वह सब मिथ्या है, तो वह आपसे भिन्न दूसरा कौन है जिसने आपके थप्पड़ लगाया है ? आप को मिथ्याकी प्रतीति कैसे होगई ?"

छत्रसिंहने यह सुनकर स्वामीजीके चरण पकड़ लिए और कहा, "महाराज ! आपने मेरी आँखें खोल दीं, वास्तवमें हम लोग अनुभव शून्य हैं । केवल बौड़ाहे मनुष्यकी भाँति वेदान्तवादकी बड़ बड़ करने लग जाते हैं ।"

एक धुनिया विनयपूर्वक नित्यप्रति, स्वामीजीकी सत्सङ्ग-गङ्गामें स्नान करके अपने अन्तरङ्गको निर्मल बनाया करता था । स्वामीजीने उसपर अपार दया कर के उसे 'ओम्' पवित्रका जप करना सिखाया । एक दिन भक्त धुनिएने श्रीसेवा में प्रार्थनाकी कि स्वामीजी ! जपके अतिरिक्त मुझे और क्या कर्म करना चाहिए जिससे मेरा कल्याण हो ? स्वामीजीने कहा, "सदाचार पूर्वक जीवन बिताओ ।

जितनी रुई किसीसे लो तूमकर उतनी ही उसे पीछे लौटा दो। यही सद्व्यवहार तुम्हारे लिए एक उत्तम कल्याणकारी कर्म है।"

चासीसे स्वामीजी, बीच-बीचमें कभी कभी कर्णवासादि स्थानोंमें भी हो आया करते थे, परन्तु निवास वहीं रखते थे। महाराज रात्रिका अधिक भाग ध्यानहीमें व्यतीत करते थे। यह स्थान उनके इतना अनुकूल प्रतीत हुआ कि यहां वे चार पाँच मासपर्यन्त टिके रहे।

चासीसे उठकर श्रीमहाराज अनूपशहर पधारे, वहां उन्होंने नर्मदेश्वर के समीप सतीकी मढ़ीमें आसन लगाया। प्रत्येक समय वीसियों पण्डितों और अनेक श्रोताजनोंकी वहां भीड़ लगी रहती थी। स्वामीजी पुराणादि आठ गप्पोंका बड़े बलसे खण्डन करते थे, परन्तु शास्त्रार्थका, अब कोई प्रतिपक्षी नामतक न लेता था। यहां भी लोगोंने अपनी देवमूर्तियां जल-मग्न कर दीं।

ठाकुर गिरवरसिंह चाँदोख-निवासी यहां स्वामीजीकी सेवामें आये। उस समय, उनके पास नर्मदाके मंगवाये हुए गोल पिण्ड भी थे। वे उनका प्रतिदिन पूजन किया करते थे। ठाकुर महाशयने स्वामीजीसे पूछा कि क्या शिव-पूजा अच्छी है? स्वामीजीने उत्तर दिया कि इससे तो चिउँटियोंकी पूजा करना अच्छा है; क्योंकि जो नैवेद्य उसपर चढ़ाया जाता है उसे वह वटिया तो नहीं खा सकती परन्तु चिउँटियोंपर चढ़ाओगे तो वे अवश्य खा जायँगी।

ठाकुर महाशयने फिर ईश्वर-सिद्धिपर प्रश्न किया। इसका उत्तर देते हुए महाराजने कहा कि कारणके बिना कार्य नहीं होता; इस जगत्में जो गति है इसका कोई कारण अवश्य होना चाहिए और वह कारण ईश्वर है, तीनों गुणोंकी साम्यावस्थामें विषमताजनक वस्तु प्रकृतिसे भिन्न ही होनी चाहिए, सो वह परमात्मा ही है, सृष्टिमें जो नियम दीख पड़ता है उसको नियन्ता सर्वज्ञ परमेश्वरके बिना अन्य कोई भी नहीं हो सकता। ठाकुर महाशय अन्तमें स्वामीजीके अनुगामी हो गये। महाराजने उन्हें कहा कि जबतक आप जनेऊ धारण न कर सकें तबतक यह प्रार्थना किया करो। स्वामीजीने उन्हें यह प्रार्थना लिखवा

दीः—"हे परमेश्वर, हे सर्वजगत्पितः, हे नित्य शुद्ध बुद्ध-मुक्तस्वभाव, हे सर्व-सुहृद, हे सर्वान्तर्यामिन्, हे धर्मार्थ-काम-मोक्षप्रद, भवत्कृपया धर्मे मे सदा प्रीतिर्भवेत्, नाधर्म्मे कदाचित्। अधर्म्मे बुद्धीन्द्रियाणां च प्रवृत्तिर्न भवेत्।"

स्वामीजीने यह जप भी लिखाया।—'ओम् नमः परमेश्वराय, सच्चिदानन्दस्वरूपाय सर्वगुरवे नमः।"

श्री स्वामीजीमें दयाका भाव बहुत था। दुःखितको देख वे कृपा-पूरसे प्लावित हो जाया करते थे, और उसके दुःखको दूर करनेके लिए भरसक यत्न करते थे। बरौलीके राव कर्णसिंह वैष्णव मतकी दीक्षा लेकर कुछ ऐसे हठीले पक्षपाती हो गये थे कि अपने अधीन सबको वैष्णव बनाना चाहते थे। उनको इतना रंग चढ़ा था कि नौकर-चाकरोंकेभी माथेपर तिलक और गलेमें कण्ठियां पड़ गई थीं। यहां तक कि गाय, भैंस और घोड़ेतकके माथेपर तिलक विराजता था!

एक दिन, राव महाशयने अपने पुरोहितको पकड़कर, बलात्कार से चक्राङ्कित कर दिया। वह किसी प्रकार वहांसे छुटकारा पाकर भागता हुआ स्वामीजीके समीप आया और रोदन करके अपने घाव दिखाने लगा। स्वामीजीने उसे आश्वासन दिया और उसके घावपर अपने हाथसे औषध आदिक उपचार किया। जबतक उसके घाव पुरा न गये, तबतक महाराजने उसे अपने पास ही रक्खा।

स्वामीजीकी दृष्टि सम थी। वे आर्य्योंमें छूआछूतके बखेड़ेको अति घृणा की दृष्टिसे देखते थे और शुद्ध शूद्रोंका बनाया हुआ भोजन पा लेनेमें कोई भी दोष नहीं मानते थे; किन्तु वे कहा करते थे कि पाक-क्रियाका विधान ही शूद्रोंके लिये है।

एक उमेदा नाई अनूपशहरमें रहता था। उसके भी हृदय-मन्दिरमें स्वामीजीका महत्व बस गया। एक दिन वह भक्तिभावनासे थालमें भोजन परसकर स्वामीजीकी सेवामें लाया। स्वामीजीने भक्तके भोजनको लेकर भोग लगाना

आरम्भ कर दिया। उस समय, वहां कोई बीस पचीस ब्राह्मण विद्यमान थे। वे कह उठे "छि छि छिः ! स्वामीजी क्या करते हो ? यह रोटी तो नाईकी है !" महाराजने हंसते हुए कहा "नहीं, यह रोटी तो गेहूंकी है, इसलिये मैं इसे अवश्य खाऊँगा।

स्वामीजीके स्वरमें विधाताने अपूर्व माधुर्य भरा था। उनके कोमल कण्ठसे निःसृत नाद कोकिल-कूजनकाभी तिरस्कार करता था। एक दिन सत्संगियोंने नम्र-निवेदन किया कि हम श्रीमुखसे साम-गान सुननेके इच्छुक हैं। स्वामी-जीने 'बहुत अच्छा' कहकर सामका आलाप आरम्भ कर दिया। वह गान क्या था आनन्दकी वर्षा थी, आत्मामें सुधाका संचार था। उनके स्वरके मिठाससे, नादकी मोहिनी शक्तिसे और अश्रुतपूर्व सङ्गीतसे लोग धीरे धीरे ऐसे प्रभावित हुए कि सारी सभा, देश और कालके भावको भूलकर, सङ्गीत रस-सागरमें हिलोंड़े लेने लग गई। किसीका कुछ पता न रहा कि मैं कहाँ वैठा हूं। सवकी चित्त-वृत्तियां मूर्छित हो गईं। ऐसा प्रतीत होनेलगा, मानों नर्मदेश्वरका मन्दिर, सतीकी मढ़ी, नवलजङ्गका अखारा, ये सव स्वामी-स्वरका अनुकरण कर रहे हैं; उत्ताल-तरङ्गसंकुल गङ्गाभी अपने कुलों सहित गा रही है। कोई आध घड़ीसे अधिक कालतक लोग संगीत-रस-आस्वादन करते रहे। स्वामीजीके गाना वन्द करनेके उपरान्त भी, कई पलोंतक वही समय वन्धा रहा। लोग वैसे ही मौन, निस्तब्ध बने रहे। तत्पश्चात् उन्हें ऐसा प्रतीत होता था कि मानों अमृतसे सिञ्चित किये गये हैं, सुखकी नींद सोकर अभी उठे हैं। एक भक्तने पूछा कि महाराज, पुराकालमें जैसी उत्तम, मनोवाञ्छित, सुपात्र सन्तान हुआ करती थी वैसी अब क्यों नहीं होती ? स्वामीजीने उत्तर दिया कि, प्राचीन कालमें आर्य-जन वैदिक संस्कार किया करते थे, वैदिक आचारयुक्त होते थे इसलिये उनकी सन्तानमें ओज होता था, तेज होता था, और शूरवीरता होती थी। परन्तु इस युगमें लोग इन्द्रियाराम और विषयानन्दहीको प्रधानता दिये हुए हैं, वैदिक संस्कारोंका त्यागकर बैठे हैं। लोगोंके गृहोंमें कुरीतियोंकी भरमार है, इसीलिये

उनकी सन्तान भी निस्तेज, दीन, दुखिया उत्पन्न होती है।

अनूपशहरमें सुखानन्दजीने श्राद्धोंपर बिचार किया। जिसमें स्वामीजीने श्राद्धोंका बलपूर्वक खण्डन करके यह सिद्धकर दिखाया कि श्राद्ध जीवित पितरोंका ही होना चाहिये।

अनूपशहरसे चलकर महाराज फाल्गुन मासमें कर्णवास पधारे। इस बार भी एक महायज्ञ किया गया। दश दिनतक गायत्रीका जप होता रहा और फिर बारह भद्र जनोंने यज्ञोपवीत धारण किये। अबकी बार महाराज वहां दस पन्द्रह दिन ही ठहरे।

गढ़ियामें स्वामीजीने चक्राङ्कितोंसे बातचीत करके उन्हें परास्त किया। अनेक पण्डितोंसहित गुसाईं बलदेव गिरिजी स्वामीजीके दर्शनोंको गये। उनकी भव्यमूर्ति के दर्शन और वार्त्तालापसे वे ऐसे बिमोहित हुए कि प्रतिदिन स्वामी-सेवामें उपस्थित होने लगे। उन्होंने एक मासतक स्वामीजीका भावनापूर्वक आदरातिथ्य किया।

स्वामीजीको यहां ठहरे एक मास हो चुका था कि एक दिन ओडेसरका ठाकुर चार साथियों सहित वहां आया। उनमेंसे दोके हाथोंमें खड्ग थे। यह ठाकुर आते ही स्वामीजीके बराबर बैठ गया। गुसाईंजी उपस्थित थे। उन्होंने उसे ऐसा करनेसे वर्जा कि गृहस्थोंको संन्यासियोंके समीप समान आसनपर बैठना उचित नहीं है; पर वह कड़ा वैष्णव था। उसने गुसाईंजीकी एक न सुनी और वहीं अकड़ा बैठा रहा। स्वामीजीने महाभारतका एक श्लोक पढ़कर उसे समझाया पर उसने इधर ध्यानही न दिया! अन्तमें, यह सोचकर कि ऐसे मूढ़से क्या माथा पच्ची करें स्वामीजी कुटियाके भीतर चले गये। उष्ण काल था, इसलिये गुसाईंजी नंगा सिर किये बैठे थे। ठाकुर महाशयका कोप-वज्र उन्हीं पर बरसने लगा। आपने अपने साथियोंको आज्ञा दी कि यह नंगेसिरवाला क्या कह रहा है? इसे पकड़कर सीधा करो। गुसाईंजी भी सामर्थ्यवान् थे। ज्योंही ठाकुरके मनुष्य उन्हें पकड़नेके लिये आगे बढ़े उन्होंने एकके हाथ और दूसरेके पाँवको पकड़ कर दूर फेंक दिया। शेषकी गत उनके शिष्योंने बना दी।

गुसाईंजीको कोई भय था तो यह कि कहीं उनकी इस कोप-क्रीड़ासे स्वामीजी अप्रसन्न न हों। परन्तु स्वामीजीने उनके साहसकी भूरि भूरि प्रशंसा करके उन्हें प्रोत्साहन दिया।

दैवयोगसे गढ़ियामें कैलासपर्वतजी आनिकले। सायंसमय वे गंगा-तीरपर अपना नित्यकर्म कर रहे थे कि उन्हें सिरपर एक संन्यासी खड़ा दिखाई दिया। पूछा "कौन है?" उत्तर मिला "मैं दयानन्द सरस्वती हूं।" यह सुनतेही कैलासपर्वतजीने स्वामीजीको समीप बैठा लिया और हरिद्वारके त्यागके पीछेका वृत्तान्त पूछने लगे। सब वृत्तान्त सुनाते हुए महाराजने कहा "कैलास पर्वतजी! मैं आपसे सहायता लेने आया हूं।" उन्होंने कहा "सहायता किस प्रकारकी? स्वामीजीने कहा "रामानुज वल्लभ आदि साम्प्रदायिक मतोंने पुरातन धर्म-कर्म, रीति-नीतिको नष्ट भ्रष्ट कर दिया है। सो आप इनके खण्डनमें मेरे सहायक बनें।" कैलासजीने कहा 'आपका विचार उत्तम है। इन मतोंका खण्डन अत्यावश्यक है। मैं आपको प्रत्येक प्रकारकी सहायता देनेको भी समुद्यत हूं, परन्तु आप प्रथम मेरी दो बातें स्वीकार कर लीजिए। एक तो मूर्ति-पूजाका खण्डन करना परित्याग कर दीजिए। मन्दिर सर्वत्र बने हुए हैं और इनसे अज्ञानी लोगोंको लाभ भी बड़ा है। सैकड़ोंकी आजीविका लगी हुई है। दूसरे आप पुराणोंका खण्डन भी छोड़ दीजिए। यह न कहिये कि ये व्यास कृत नहीं हैं और स्वार्थी लोगोंके निर्माण किए हुए हैं।'

स्वामीजीने कहा, 'महात्मन्! इन सम्प्रदायोंका आधार-आश्रय यही मूर्ति-पूजा और पुराण हैं। इन्हीं दोकी आड़में मतवाले अपने अपने मतोंका प्रचार करते हैं। इसी टट्टीकी ओटमें मत-मृगया हो रही है। जबतक इनका खण्डन न होगा आर्ष ग्रन्थोंका आदर न हो सकेगा। श्रुतिस्मृति-प्रतिपादित धर्मको लोग नहीं समझ सकेंगे। कृपया आप बद्धपरिकर होकर जयपुराधीश आदि राजाओंको वैदिक धर्मपर लाइए। आप संन्यासी हैं निर्भयतासे लोगोंमें सत्यका प्रचार कीजिए।

कैलासपर्वतजी विद्वान् तो थे ही, पर साथ ही वयोवृद्ध भी थे। इससे स्वामीजी उनका समादर करते थे। उनके समीप निवास भी कर लिया करते थे। साम्प्रदायिक संग्राममें सम्मिलित होनेकी संधि करनेके लिए, कैलासपर्वतजीने जो दो बातें उपस्थितकी थीं उन्हींका घोर प्रतिवाद करते करते सारी रात बीत गई और सवेरा हो गया। स्वामीजी एक वृद्ध संन्यासीसे निराश होकर स्वस्थानको जानेके लिए प्रस्तुत हुए। कैलासपर्वतजीने कहा 'दयानन्दजी अभी न जाइये। भिक्षा पाकर मध्याह्नोत्तर कालमें चले जाइयेगा। इतनी क्या शीघ्रता है?' परन्तु स्वामीजी यह कहते हुए वहांसे चल पड़े, कि 'मैं आपके पास कोई भिक्षाका भूखा न आया था। मैं आया था कि आप सत्यमें मेरी सहायता करेंगे। सो आपने नहीं की। ऐसी अवस्थामें ईश्वर ही सहायता करेगा।'

कैलासपर्वतजी स्वामीजीके सत्याग्रहसे अतिशय प्रसन्न थे। वे कहा करते थे "दयानन्द जैसा धैर्यका धनी, सुदृढ़-संकल्प संन्यासी न हमने कहीं देखा और न ही सुना है। यह अप्रतिम पुरुष है।"

गुसाईं वलदेव गिरिका मठ सोरोंहीमें था। वे नित्य निवेदन करते थे कि स्वामीजी! सोरों चलिए। वहाँ अत्युपकार होगा। सोरोंमें कुछ भक्तजन भी स्वामीजीकी सेवामें उपस्थित होकर वहां पधारनेके लिए प्रार्थी हुए। उन सबके आग्रहसे स्वामीजी सोरों पधारे। गङ्गाके तीरपर गुसाईंजीके मन्दिरमें ठहरे। अगले दिन गुसाईंजीने उन्हें अम्बागढ़के स्थानमें जा टिकाया।

सोरोंमें स्नान-माहात्म्यका बड़ाभारी मेला था। कोई दस सहस्र तो ब्राह्मण ही वहां एकत्रित हुए होंगे। वहां वहुतसे चक्राङ्कित पण्डित स्वामीजीके समीप वाद करनेके लिये आये, परन्तु आधी घड़ी भी कोई सामने न ठहर सका। वैष्णवोंका मुखिया हरगोविन्द था और स्वामीजीका सहायक रामनारायण तिवाड़ी था। चक्राङ्कित हुल्लड़ वहुत मचाते थे, जिससे विवश होकर रामनारायण और गुसाईंजी उन लोगोंको झिड़कना भर्त्सना भी करते थे। जैसे समुद्रके उत्ताल तरङ्ग प्रबल चट्टानसे टक्कर खाकर हत-प्रतिहत होकर उपशम हो जाते

हैं—पीछे हट जाते हैं—ऐसेही पौराणिक पण्डित और साम्प्रदायिक वादीगण बड़े आवेशमें स्वामीजीके निकट आते और युक्तिप्रमाणोंसे प्रतिहत होकर, प्रत्याघात खाकर शान्त हो जाते अथवा लौट जाते थे।

कुछ एक उपद्रवी लोगोंने परस्पर मिल, स्वामीजीको विष देकर मार डालने अथवा जलमग्न करनेका षड्यन्त्र रचा। एक रात वे मिलकर आये। उस समय; स्वामीजीके समीपवर्ती स्थानमें एक और साधु सुखसे सो रहा था। उन्होंने उसीको, दयानन्द समझकर खटिया सहित उठा लिया और ले जाकर गङ्गाकी धारामें फेंक दिया! जब उसने डूबते हुए चिल्लाकर बचानेकी याचना की तो उन धूर्तोंको ज्ञात हुआ कि यह दयानन्द नहीं है। उस पर वह साधु जलमेंसे निकाल लिया गया।

श्री स्वामीजी, एक दिन, उपदेश दे रहे थे और बीसियों मनुष्य दत्तचित्त होकर श्रवण कर रहे थे। उस समय वहां एक हट्टा कट्टा, डण्डपेल पहलवानसा जाट आ गया। एक मोटा सोटा कन्धेपर रक्खे सभा सरोवरको चीरता फाड़ता सीधा स्वामीजीकी ओर बढ़ा। उसका चेहरा मारे क्रोधके तमतमा रहा था। आंखें रक्तवर्ण थीं, भौंवें तन रही थीं और माथेपर त्योरी पड़ी हुई थी। होठोंको चबाता और दांतोंको पीसता हुआ वह बोलाः—"अरे, साधु, तू ठाकुर पूजाका खण्डन करता है, और श्रीगङ्गामैयाकी निन्दा करता है, देवताओंके विरुद्ध बोलता है! झटपट बता, तेरे किस अंगपर यह सोटा मारकर तेरी समाप्ति कर दूं?" ये बचन सुनकर, एक बारतो सारी सभा विचलित हो गई। परन्तु श्री स्वामीजी महाराजकी गम्भीरतामें रत्तीभर भी न्यूनता न आई उन्होंने प्रशान्त भावसे मुस्कराते हुए कहा, कि "भद्र! यदि तेरे विचारमें मेरा धर्म-प्रचार करना कोई अपराध है तो इस अपराधका प्रेरक मेरा मस्तिष्क ही है। यही मुझे खण्डनकी बातें सुझाता है। सो यदि तू अपराधीको दण्ड देना चाहता है तो मेरे सिरपर सोटा मार; इसीको दण्डित कर।" इन वाक्योंके साथही, स्वामीजीने अपने नेत्रोंकी ज्योति उसकी आंखोंमें डालकर उसे देखा। जैसे, बिजली कौंध कर रह

जाती है, धधकता हुआ अङ्गारा जल धारा-पातसे शान्त हो जाता है, वैसेही-तत्काल वह बलिष्ठ व्यक्ति ठण्डा होगया, श्रीचरणोंमें गिर पड़ा, अवरित अश्रु-मोचन करता हुआ अपना अपराध क्षमा करानेकी याचना करने लगा। स्वामीजीने उसे आश्वासनदिया और कहा, "तुमने कोई अपराध नहीं किया। मुझे मारते तो भी कोई बात थी, अब योंही क्यों रो रहे हो ? जाओ ईश्वर तुम्हें सत्य मार्ग प्रदान करें।"

इस दृश्यको देख लोग स्वामीजीकी सहनशीलताकी अत्यन्त प्रशंसा करते हुए आपसमें कहते थे कि सोरोंमें बहुतेरे साधुसन्त आये; परन्तु ऐसा शान्त, ऐसा निर्भय, ऐसा क्षमावान् कभी कोई न आया होगा।

स्वामीजी विचरते हुए सरदोलमें आ विराजे। उनके उपदेशों से वहां ठाकुर हलाससिंह तथा अन्य सज्जन पक्के आर्य-धर्मावलम्बी बन गये।

गढ़ीमें वैरागी लोग स्वामीजीका बड़ा विरोध करते थे, इसका कारण यह था कि जिस समृद्ध ठाकुरके स्थानपर स्वामीजी ठहरे हुए थे उसने कण्ठी तोड़ डाली थी, मूर्तिपूजा छोड़ दी थी। वह कई ग्रामोंका भूमिहार था। इस लिये वैरागियोंको अपनी आजीविकाके जाते रहनेका भय था। स्वामीजी तो वैरागियोंसे सदा ही सावधान रहते थे। उन्होंने सुन रक्खा था कि कानपुरसे चार कोसके अन्तरपर वैरागियोंका एक डेरा है वहां विरजानन्द नामक एक साधु जा निकला। वैरागियोंने उसे दयानन्द समझकर पकड़ लिया और गङ्गामें धकेल दिया। वह था तैरनेवाला इसलिए हाथ पैर मार कहीं किनारे जाही लगा।

उदासी साधु मायाराम गढ़ीमें स्वामीजीकी निन्दा सुन उनके पास आकर कहने लगा कि दयानन्दजी ! आप इस खण्डन मण्डनके झमेलेमें क्यों पड़ गये ? हमारी तरह आनन्दसे खा पीकर सुखमें रहा करो। क्यों वैर बढ़ाते हो ? स्वामीजीने उत्तर दिया कि हम तो ब्रह्मानन्दमें रहते हैं, और जो आनन्द वेद-प्रचारमें आता है वह तो तुलनातीत है।

ग्यारहवां सर्ग ।

ज्येष्ठ वदि १२ सम्वत् १९२५ को स्वामीजी कर्णवासमें अपनी पुरातन कुटियामें ही आकर ठहरे। उसी मासमें गङ्गा-स्नानका मेला था। सहस्रों नरनारी एकत्रित हुए। उस समय राव कर्णसिंह भी स्नानार्थ आए। राव महाशय जबसे वैष्णव सम्प्रदायके अनुयायी, रङ्गाचार्यके चेले बने थे तबहीसे, वे अति पक्षपाती हो गये थे। कर्णवासमें उनकी सुसराल भी थी। वे स्वामीजी की कुटियाके थोड़े अन्तरपर ही उतरे थे। रात्रिके समय उनके उतारेपर रास होने लगा। कुछ पण्डित लोग स्वामीजीको भी बुलाने आये। परन्तु स्वामीजीने कहा कि हम ऐसे निन्दनीय कार्यमें कदापि सम्मिलित नहीं हो सकते। तुम लोग जो अपने पुरुषाओंके स्वांग बनाकर देखते हो यह अति लज्जास्पद, शोककी वार्त्ता है। स्वांग भरना मनुस्मृतिमें दोष वर्णन किया है।

अगले दिन पण्डित लोगोंने स्वामीजीके कथनको, अपनी टीका-टिप्पणी सहित, दुहराकर राव महाशयको बहुत भड़काया। वे भी उत्तेजित होकर पण्डितों और अपने नौकरोंको साथ ले स्वामीजीकी कुटियापर चढ़ आये। सायं समय था। महाराज उपदेश कर रहे थे। श्रोतागण एकाग्रचित्त उपदेशामृत-पान करनेमें निमग्न थे। ऐसे समयमें खट खट करती हुई राव महाशयकी सेना आ पहुंची। स्वामीजी महाराजने 'आइए, बैठिये' इत्यादि शब्दोंसे उनका सत्कार किया, परन्तु राव महाशय अपनी ग्रीवाकी ऐंठन किंचित् भी न्यून न करके बोले "कहां बैठें ?" स्वामीजी भी उनके अहङ्कारके पारेकी चढ़ी मात्राको ताड़ गये। इसलिये उत्तरमें बोले, "जहां इच्छा हो बैठ जाइए।" राव महाशय बोले "जहां तुम बैठे हो वहीं बैठेंगे। स्वामीजीने सीतलपाटी हटा ली और कहा, 'आइए, यहीं बैठिए।"

"आप हमारे यहां रासमें क्यों नहीं आये ? संन्यासी होकर ऐसा करना

अत्यन्त बुरा कर्म है। हमारे स्थानपर जब रास-लीला होती है तो सभी पण्डित संन्यासी सम्मिलित होते हैं।"

"आपके सम्मुख आपके पूज्य पुरुषाओंके रूप भरकर मलिन मनुष्य आते हैं, नाचते हैं और आप लोग बैठे बैठे देखा करते हैं! उस समय आप लोगों-को लज्जा नहीं आती? आश्चर्य है? आप कैसे क्षत्रिय हैं? किसी साधारण पुरुषके माता-पिता, परिजनका स्वरूप भरकर कोई नचावे तो उसे कितना बुरा लगता है? परन्तु आप कुलीन लोग अपने मान्य महापुरुषोंके स्वाँग बनाकर नचाते हैं और प्रसन्न होते हैं!"

'हम तुमसे बातचीत करने आये हैं। हमने सुना है कि तुम अवतारोंकी और गंगाजीकी निन्दा करते हो। स्मरण रक्खो, यदि मेरे सामने निन्दा की तो मैं बुरी तरह बर्त्ताव करूंगा।'

मैं निन्दा नहीं करता हूं, किन्तु जो वस्तु जैसी है उसे वैसीही कहता हूं। गंगा भी जैसी और जितनी है उसे वैसी और उतनीही वर्णन करता हूं। सत्य के कथन करनेमें सर्वथा निर्भय हूं।

तो फिर गंगा कितनी है?

स्वामीजी अपना कमण्डल उठाकर बोले, मेरे लिए तो इतना जल उपयुक्त है, सो यह इतनी ही है?

राव कर्णसिंह बोलाः—'गङ्गा गंगेति' इत्यादि श्लोकोंमें नाम, कीर्त्तन, दर्शन स्पर्शनसे पाप-नाश कहा है।

ये श्लोक साधारण लोगोंके कपोलकल्पित हैं। माहात्म्य सब गप्प हैं। पाप-नाश और मोक्ष-प्राप्ति वेदानुकूल आचरणसे होगी, अन्यथा नहीं।

स्वामीजीने पूछा 'राव महाशय, आपके भालपर यह रेखासी क्या है! राव महाशय ने उत्तरमें कहा 'यह श्री है। जो इस श्रीको धारण नहीं करता वह चाण्डाल है।' 'आप कबसे वैष्णव हुए हैं? कुछ बरसों से। क्या आपके पिता भी वैष्णव सम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे?

नहीं, वे नहीं हुए।

तब तो आपहीके कथनानुसार आपके पिता और कुछ वर्षोंके पूर्व आप भी चाण्डाल सिद्ध हो गये।

इस बातपर रावमहाशयको क्रोध आ गया और वे तलवार पर हाथ रखकर बोले, 'मुंह सम्भालकर बोलो।' उनके साथी दस बारह जन भी शस्त्र-सन्नद्ध थे, इसलिये टीकाराम भयभीत हो गये। परन्तु स्वामीजीने उसे कहा, डरते क्यों हो? कोई चिन्ताकी बात नहीं। हमने जो कुछ कहा है सत्य कहा है।'

उधर राव महाशय छड़ीसे छेड़े हुए नागकी भांति कोपावेशमें वल खा रहे थे। उनकी आँखोंमें लहू उतर आया। चेहरा क्रोधानलसे लाल हो गया, उसने स्वामीजी पर कुवचन-वर्षाकी झड़ीसी लगा दी। परन्तु स्वामीजी हँसते हुए कहने लगे; रावमहाशय! यदि शास्त्रार्थ करना अभीष्ट है तो वृन्दावनसे रङ्गाचार्यजीको मंगाइये। उसमें जो हार जाय वह दूसरेके सिद्धान्तको स्वीकार करेगा; यह प्रतिज्ञा हो जानी चाहिये।" राव महाशयने कोपसे कड़क कर कहा कि तुम रङ्गाचार्यसे क्या वादविवाद कर सकते हो? तुम्हारे जैसे जन तो उनकी जूतियाँ झाड़ते हैं। इत्यादि बातोंके साथ रावमहाशय गाली भी प्रदान करते जाते थे और बायें हाथसे थामे हुए खड्ग कोशकी मुट्ठीपर वारवार दहिना हाथ रखते थे। इसपर स्वामीजीने हंसते हुए कहा कि "रावमहाशय! खड्गको वार-वार क्यों संचालन करते हो? शास्त्रार्थ करना हो तो अपने गुरुजीको यहां ले आइए, हम कटिबद्ध हैं। परन्तु यदि आपको शस्त्रार्थ करनेकाचाव है तो संन्यासी से क्यों टकराते हो? जयपुर जोधपुरसे जा भिड़ो।"

फिर क्या था, राव महाशय आपेसे बाहर हो गये। उनकी आँखोंसे चिङ्गारियाँ छूटने लगीं। हाथोंकी मुट्ठियाँ ऐंठ गईं। होठ फड़क उठे। भीषण रूप धारण करके, वे उचितानुचितका कोई विचार किये विना मुखसे खरीखोटी बातें सुनाते, खड्गहस्त, स्वामीजीकी ओर लपके। स्वामीजीने 'अरे धूर्त' कहते हुए उन्हें हाथसे ढकेल दिया। इससे रावमहाशय एकवार तो लुढ़क गये, परन्तु

[illegible]राव कर्णसिंहका स्वामीजी पर तलवारका वार और स्वामीजीका तलवारके दो टुकड़े कर रावको फटकारना।

फिर सम्भलकर चौगुने कोपावेशमें, महाराजपर तलवारका वार करनेके लिये आगे बढ़े! वे तलवार चलाना ही चाहते थे कि महाराजने झपटकर उसे उनके हाथसे छीन लिया और भूमिके साथ टेक देकर दबावसे उसके दो टुकड़े कर डाले। स्वामजीने रावमहाशयका हाथ पकड़कर कहा, "क्या तुम यह चाहते हो कि मैं भी आततायीपर प्रहार कर बदला लूं?" रावमहाशयका मुख पीला पड़ गया, तनपर मूर्च्छासी आगयी। उस समय स्वामीजीने कहा, "मैं संन्यासी हूं, तुम्हारे किसी भी अत्याचारसे चिढ़कर तुम्हारा अनिष्ट चिन्तन नहीं करूंगा। जाओ ईश्वर तुम्हें सुमति प्रदान करें!" महाराजने तलवारके दोनों खण्ड दूर फेंककर रावमहाशयको विदा कर दिया।

जिस समय यह घोर घटना घटित हुई स्वामीजीके समीप कोई पचास मनुष्य बैठे थे। वे सब, राव कर्णसिंहजीके कु-कर्मकी निन्दा करते हुए स्वामीजीको सम्मति देने लगे कि राजकर्मचारियोंको सूचना देकर इसका पूरा परिणाम निकलवाना चाहिये। स्वामीजीने कहा, हम अभियोग कदापि न चलायँगे। हमारा धर्म तो संतोष करना है। यदि वह अपने क्षत्रियत्वका पालन नहीं कर सका तो हम अपने ब्राह्मणत्वसे क्यों गिरें? जो धर्मका हनन करता है अन्तको उसका अपना हनन हो जाता है। इसपर स्वामीजीने मनुका यह श्लोक सुना कर लोगोंको शान्त किया:—

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्ध धर्मो न हन्तव्यो मानो धर्मो हतोऽवधीत्॥

वहां अनेक पण्डितों और स्वामी विशुद्धानन्द, कृष्णानन्द आदि संन्यासियोंसे धर्म-मीमांसा होती रही और कार्तिकतक महाराजने वहीं निवास किया।

स्वामीजी सोरोंमें पधारकर अम्बागढ़में विराजमान हुए। श्रद्धालुगण और वादीगण प्रत्येक समय आते रहते थे। पण्डित अङ्गद उस समय न्याय और व्याकरण में तुलनातीत विद्वान् समझा जाता था। कोई भी विद्वान् उसके साथ शास्त्रार्थकरनेका साहस न करता था। वह पहले पहल विरजानन्दजीसे कौमुदी पढ़ता रहा था।

रामनारायण पण्डित जो स्वामीके विचारोंको, उनके पिछले आगमनमें मान चुका था, अङ्गद शास्त्रीके पास गया और कहने लगा कि स्वामी दयानन्दजीके तेजसे सभी पण्डित अभिभूत हो रहे हैं। अब आप चलिये और उनसे शास्त्रार्थ कीजिये।

साम्प्रदायिक धर्मकी नौकाको गङ्गामें निमज्जित होता देख अङ्गदजी स्वामीजीके निकट आकर मूर्ति-पूजा सिद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए। स्वामीजीने शास्त्रीय प्रमाणोंकी प्रबलतासे उसके पक्षका खण्डन करके भागवतादिकी भी तीव्र आलोचना की। स्वामीजीने भागवतकी कवितापर भी ऐसे आक्षेप किये कि जिन्हें अंगदजीने भी अंगीकार कर लिया। शास्त्रीजीने कुछ देर तक तो अपने पक्षके पोषणमें बहुतेरे हाथ-पैर मारे, परन्तु अन्तमें स्वामीजीकी शुद्ध सरल, धाराप्रवाह संस्कृत वक्तृतासे, ओजस्विनी कथनशैलीसे, अकाट्य युक्तियोंसे, प्रभूत-पुष्ट-प्रमाणोंसे, समयोचित तात्कालिक उत्तर-प्रत्युत्तर प्रदानसे और अप्रतिम प्रतिभा-प्रभासे वे ऐसे चकित हुए, ऐसे विमोहित हुए कि मुक्त-कण्ठसे कह उठे, "स्वामीजी महाराज! आप जो कुछ कह रहे हैं वह सब सत्य है। अब पुराण-पोल अधिक सुननेकी आवश्यकता नहीं रही।' शास्त्रीजीने तत्काल अपनी कण्ठी तोड़ दी, शालिग्राम गंगागत कर दिये और आगेके लिये भागवत-कथा कहनेका परित्याग कर दिया। उनके सम्बन्धियोंने भी उनका अनुगमन करते हुए अपनी मूर्तियां जलमग्न कर दीं। उस समय गुसाईं बलदेव गिरिजीको भी आवेश आ गया। उन्होंने भी अपनी प्रतिमायें गंगाके बहावमें बिदा कर दीं।

अङ्गदशास्त्रीजी उस समय पण्डित-मण्डलमें संस्कृत विद्याका सूर्य माने जाते थे। उनकी सर्वत्र धाक थी। बड़े बड़े धुरन्धर विद्वान् भी, उनके समक्ष आते हुए, दूरहीसे पक्ष-परिवर्तन करके निकल जाते थे। जब वही विद्यादिग्गज परास्त हो गये, उन्होंने हार मान ली तो स्वामीजी महाराजकी विजय-वैजयन्ती अनिवार्य रूपसे फहराने लगी, उनकी निर्दोष कीर्ति-चन्द्रिका सर्वत्र विस्तृत हो गई, सुगुण सुमनोंकी सुगन्धि वायुवेगसे दसों दिशाओंमें संचरित होगई।

रङ्गाचार्य प्रत्येक वर्ष सोरों आदि स्थानोंमें आया करता था। लोगोंको

दीक्षा देता था, चक्राङ्कित करता था। परन्तु अङ्गदजीके पराजयका उसपर इतना प्रभाव पड़ा कि उसके सैकड़ों शिष्योंने कण्ठियाँ तोड़ डालीं, प्रतिमायें बहा दीं, पर, जैसे, केसरीकी गुहाके समीप जानेसे हस्ती भयभीत होता है ऐसे रंगाचार्य भी श्री दयानन्दजीके आतङ्कसे कम्पित था। इसलिए उस ओर आनेका उसने नामतक न लिया।

सोरोंमें इतना धर्म्म-प्रचार हुआ कि ब्राह्मणादि कुलोंके सैकड़ों लोग कण्ठियाँ त्यागकर, मूर्तियाँ छोड़कर भागवत-कथाके स्थान महाभारत और मनुस्मृति सुनने लग गये।

चौबे रामदयाल वैद्य स्वामीजीके दर्शनार्थ वहां आये। उस समय महाराज संध्या और गायत्रीका वर्णन कर रहे थे। और तो और ब्राह्मण कुलोंकी यह अवस्था थी कि सहस्रों ब्राह्मणवंशीय यज्ञोपवीत-विहीन, सन्ध्या-गायत्रीसे शून्य थे। वैद्यजी स्वामीजीके मनोहर भाषणसे प्रसन्न हुए। स्वामीजीने उन्हें सन्ध्या लिखकर बाँटनेकी प्रेरणा की।

स्वामीजीके कथनोंके प्रभावसे गङ्गाके आसपासके सहस्रों लोग नित्यकर्मोंमें परायण हो गये।

बदरिया-निवासी अङ्गदशास्त्री, जिन्होंने स्वामीजीके समीप अपना पराजय स्वीकारकर सब पाखण्ड-जाल तोड़ डाला था, एक अच्छे कवि भी थे। कैलास-पर्वतजीकी प्रेरणासे उन्होंने वराह-स्तुतिके सौ श्लोक रचे थे। जब वे स्वामीजीके शिष्य बन गये तो उन्होंने स्वामीजीके कार्यके अनुकूल बहुतसे श्लोक निर्माण किये।

पंडित जगन्नाथ बाँसबरेलीवालेने स्वामीजीके निकट आनेका तो साहस न किया, परन्तु "इतिहासपुराणानि धर्म्मशास्त्राणि श्रावयेत्" यह मनु वाक्य लिख भेजे। स्वामीने उत्तरमें लिखा कि यहां पुराणसे तात्पर्य पुरातनसे है, न कि भागवत आदिसे।

वैद्य रामदयालजीने स्वामीजीसे कहा कि ग्वालियर राज्यका रहनेवाला एक ब्राह्मण हमें कचुरामें मिला था। वह कहता था कि मेरे पास कालीदासरचित

संजीवनी नामक एक पुस्तक है। उसमें कालीदासने अपने समयमें महाभारतके ग्यारह सहस्र श्लोकों और दस पुराणोंकी विद्यमानता प्रकट की है।

बंग प्रान्तान्तर्गत, मकसूदाबाद परगणेके, शक्तिपुर नामक ग्रामके निवासी बोपदेव और जयदेव दो भाइयोंने भागवत पुराणकी रचना कीथी। श्रीधर तिलकभी इसे बोपदेवनिर्मित बताता है। स्वामीजीने उस पुस्तकको लेनेकी रुचि प्रकट की; परन्तु रामदयालजी, यत्न करनेपर भी उसे न ले सके।

पीलीभीत-निवासी एक पंडित अङ्गद भी सोरोंमें आया था। वह भूतलपर अपने समान किसीको न समझता था। जब वह स्वामीजीके साथ शास्त्रार्थ करने के लिए उत्सुक हुआ तो महाराजने अपने शिष्य बदरियाके अङ्गदशास्त्रीको आज्ञा दी। पीलीभीतका पंडित स्वामीजीके शिष्यहीसे परास्त होकर पलायनकर गया।

स्वामीजी महाराजको यदि कभी लहर आ जाती तो झूठेके घरतक पहुंच जाते और अन्तमें उसके पैर निकालकर ही पीछे हटते। चिद्धनानन्द नामक एक संन्यासी मूर्तिपूजा सिद्ध करनेके लिये सोरोंमें आ गये। स्वामीजीने उनको शास्त्रार्थ-सम्बन्धी निमन्त्रण-पत्रमें लिखा कि सत्यासत्यका निर्णय करनेके लिये कहो तो मैं आपके स्थानपर आनेके लिये उद्यत हूं, नहीं तो आप मेरे आसनपर पधारिये। परन्तु उन तिलोंमें तेल न था। वह दूरहीसे बातें बनाता रहा। न आप सामने आया और न स्वामीजीको ही आहूत किया। एक दिन चार घड़ी दिन रहे वह गङ्गाकी ओर निकला। पता लगनेपर श्री स्वामीजी भी उसके पीछे हो लिये। अन्तमें पौनकोसके अन्तरपर उसे पकड़ ही लिया। वहीं दोनों बैठ गये। श्री स्वामीजीने कहा कि चिद्धनानन्दजी! आप प्रतिमापूजन सिद्ध करते हो, भला उसकी पुष्टिमें कोई मन्त्र प्रमाण तो दो। जो दशा सूर्य्य-तेजसे अभि-भूत ग्रह-नक्षत्रोंकी होती है, उस समय, चिद्धनानन्दजीकी भी ठीक वही हुई। सिंहके पंजेमें पड़ा हुआ हिरन अब निकले तो किस प्रकार? वह तो उसी चिन्ता में चूर हो गया। मौन साधकर उसने कुछ भी उत्तर न दिया। जब ऐसे ही बैठे हुए एक घण्टा बीत गया तो स्वामीजीने कहा, 'असत्यने आपके मुखपर

मुहर लगा दी है। यदि आपका पक्ष यथार्थ है तो फिर मुंह मूंदे क्यों बैठे हो पर बोलता कौन ? वहाँ तो वह दशा हो रही थी जो रामके बाणको परशुरामजीकी हुई थी। अन्त पर्यन्त उस साधुने अपनी चुप्पी न खोली। स्वामीजी अपने डेरेपर आ विराजे।

कैलासपर्वतजीको भी शास्त्रार्थ करनेके लिये उत्तेजना दी गई। परन्तु दो कारणोंसे स्वामीजीके अभिमुख न हुए। एक तो वे स्वामीजीको भलीभांति परिचित थे। दूसरे स्वामीजीके कार्य्योंके साथ गुप्त सहानुभूति रखते थे। उनको वराहके मन्दिरसे बड़ी भारी आय थी। राजा प्रतिष्ठाका भी कोई पार न था। इस कारण यही नहीं कि प्रकट रूपसे अनुमोदन न करके वे स्वामीजीके कार्योंके सहायक ही न बनते थे, प्रत्युत लोक-मनोरञ्जनके लिये उन्होंने स्वामीजीके विरुद्ध एक पुस्तक भी प्रकाशित की थी। कैलासपर्वतजी भीरु भी बहुत थे। चटपट लोगोंके डराने और बहकानेमें आ जाते थे।

एक दिन, बलदेव गिरिके विरोधियोंने उन्हें जा बहकाया कि, वह मूर्त्तियाँ आदि गङ्गामें फेंककर दयानन्दका अनुयायी हो गया है। समय पानेपर आपको अवश्य पीट डालेगा। यदि हमें एक सहस्र रुपया दो तो हम बलदेव गिरिको पहले ही पीटकर ठीक कर दें ? कैलासजी सहमत हो गये। बलदेव गिरिके पास और स्वामीजीके स्थानपर आना जाना छोड़ बैठे। भेद ज्ञात होनेपर बलदेव गिरिजी स्वयं उनके निकट गये और समझाया कि आपको धूर्त्त लोग योंही बहकाते हैं। आप और हममें कोई वैर-विरोध तो है ही नहीं, तो फिर मैं आपको क्यों मारूँगा ? और स्मरण रखिये कि यदि अपने धूर्त्तोंको मुझपर आक्रमण करनेके लिये भेजा तो उनके पिटने अथवा मेरे मार खानेपर भी आप पकड़े जाओगे—बचे नहीं रहोगे।

कैलासजीकी मति सन्मार्गपर आ गई और जिस वाटिकामें स्वामीजी उतरे हुए थे वहां पूर्ववत् आने जाने लग गये। स्वामीजी उनकी स्वार्थपरता, उनकी लोकलाज और भीरुतापर तो प्रसन्न न थे, परन्तु उन्हें विद्वान् और वृद्ध जान-

कर, उनका आदर-सत्कारही किया करते थे। कभी कभी उपहासरसमें भी उन्हें पुकार लिया करते थे। एक दिन कुटियाके भीतर कैलासपर्वतजीने प्रवेश किया तो स्वामीजीने हँसते हुए कहा, "अहो! इतना बड़ा कैलासपर्वत इस छोटीसी कुटिमें कैसे आ गया?"

एक दिन, गङ्गा-तीरपर एक साधु कमण्डलु आदि प्रक्षालन करके वस्त्र धोनेमें प्रवृत्त था। वह था एक घुटा हुआ मायावादी। दैवयोगसे भ्रमण करते हुए स्वामीजी भी वहीं जा पहुंचे। उसने स्वामीजीको सम्बोधन करके कहा--"इतने त्यागी परमहंस—अवधूत—होकर आप खण्डनमण्डनरूप प्रवृत्तिके जटिल जालमें क्यों उलझ रहे हो? निर्लेप होकर क्यों नहीं विचरते?" महाराज मुस्कराकर बोले, "हम तो यह सब कुछ करते हुए भी निर्लेप हैं। अब रही प्रवृत्तिकी बात, सो शास्त्रीय प्रवृत्ति प्रजा-प्रेमसे प्रेरित होकर सबहीको करना उचित है।"

साधुजीने कहा, "प्रजा-प्रेमका नया बखेड़ा क्यों डालते हो? आत्मासे प्रेम करो, जिसके लिये कि श्रुति पुकार रही है उस समय उसने मैत्रैयी और याज्ञवल्क्यके सम्वादके वाक्य भी बोले। तब स्वामीजीने पूछा, महात्मन्! आप किससे प्रेम करते हैं?" साधु बोला, "आत्मासे" स्वामीजीने पूछा, "वह प्रेममय आत्मा कहाँ है?" साधुने कहा, "वह राजासे लेकर रङ्कपर्यन्त और हस्तीसे लेकर कीटतक सर्वत्र ऊँच-नीचमें परिपूर्ण है।" स्वामीजी बोले, "जो आत्मा सबमें रमा हुआ है क्या आप सचमुच उससे प्रेम करते हैं?" साधुने उत्तर दिया "तो क्या हमने मिथ्या वचन बोला है?" तत्पश्चात् स्वामीजीने गम्भीरता पूर्वक कहा, "नहीं, आप उस महान् आत्मासे प्रेम नहीं करते। आपको अपनी भिक्षाकी चिन्ता है, अपने वस्त्र उज्वल बनानेका ध्यान है, अपने भरण-पोषणका विचार है। क्या आपने कभी उन बन्धुओंका भी चिन्तन किया है, जो आपके देशमें, लाखोंकी संख्यामें भूखकी चितापर पड़े हुए रातदिन बारहों महीने, भीतर-ही-भीतर जलकर राख हो रहे हैं? सहस्रों मनुष्य आपके देशमें ऐसे हैं, जिन्हें आजीवन उदर भरकर खानेको अन्न नहीं जुड़ता। उनके तनपर

सड़े गले मैले-कुचैले चिथड़े लिपट रहे हैं। लाखों निर्धन, दीन ग्रामीण और भैंसोंकी भांति, गन्दे कीचड़ और कूड़ेके ढेरोंसे घिरे हुए, सड़े गले झोप-ड़ोंमें लोटते हुए जीवनके दिन काट रहे हैं। ऐसे कितने ही दीन दुखिया भार-तवासी हैं, जिनकी सार-सम्भार कोई भूले भटके भी नहीं लेता। बहुतेरे कु-समयमें राजमार्गमें पड़े पड़े पांव पीटकर मर जाते हैं, परन्तु उनकी बात तक पूछनेवाला कोई नहीं मिलता! महात्मन्! यदि आत्मासे, और विराट् आत्मासे प्रेम करना है तो अपने अंगोंकी भांति सबको अपनाना होगा। अपनी क्षुधा-निवृत्तिकी तरह उनकी भी चिन्ता करनी पड़ेगी। सच्चा परमात्म-प्रेमी किसीसे घृणा नहीं करता। वह ऊंच-नीचकी भेदभावनाको त्याग देता है। उतने ही पुरुषार्थसे दूसरोंके दुःख निवारण करता है, कष्ट-क्लेश काटता है; जित-नेसे वह अपने करता है। ऐसे ज्ञानी जन ही वास्तवमें आत्म-प्रेमी कहलानेके अधिकारी हैं।" वह साधु यह सुनकर स्वामीजीके चरणोंमें गिर पड़ा, अपने अपराधको क्षमा कराने लगा।

बारहवाँ सर्ग।

कासगंजके बहुतसे भद्रजन स्वामीजीको अपने नगरमें लिवा लेजानेके लिये आये। स्वामीजीने कहा कि अभी तो मैं गंगाके तीरपर प्रचार कर रहा हूं, इससे दूर जाना नहीं चाहता, परन्तु यदि पाठशाला स्थापित करनेका कोई प्रबन्ध हो तो जा भी सकता हूं। कासगंजके सभ्योंने स्वनगरमें आकर इस बात पर पूर्ण रीतिसे बिचार किया और पाठशालाकी योजना करनेके लिये समुद्यत हो गये। तत्पश्चात्, पण्डित सुखानन्दजी आदि, एक सौके लगभग, भद्रजन सोरोंमें स्वामीजीकी सेवामें उपस्थित हुए, और अपना प्रयत्न निवेदन करके स्वामीजीको बलदेव गिरिजीकी बग्घीमें ले आये। नगरके समीप पहुंचकर गाड़ी ठहरा ली

गई। जब नगरवासी बड़ी भारी संख्यामें स्वामीजीके स्वागतके लिये वहां पहुंच गये तो महाराजका नगरमें शुभागमन अतिसमारोहके साथ कराया गया। परम हंसराजको आगे करके नगरनिवासी बड़े भक्ति-भावसे पीछे धीरे धीरे चलतेथे। सोरोंद्वारसे प्रवेश करके बाजारमेंसे होते हुए नगरकी दूसरी ओरसे निकल पंडित मुकुन्दरामके उद्यानमें जा पहुंचे। वहीं स्वामीजीका निवास कराया गया। उस नगरके सज्जनोंने परस्पर मिलकर चन्दा किया और स्वामीजीके हाथसे पाठशाला स्थापित करादी। यहां स्वामीजी ज्येष्ठ १६२५ में पधारे थे। वहांसे चले जाने पर भी सोरों और कर्णवास आदि स्थानोंसे कभी कभी आकर पाठशालाको देख जाया करते थे।

कासगंजवासियोंने कुंवार वदी १३ सम्वत् १६२५ को स्वामी विरजानन्दजी महाराजके देहान्त हो जानेका, जब समाचार सुना तो वे इसकी सूचना देनेके लिये स्वामी दयानन्दजीको ढूंढने लगे। सोरोंमें उनको पता न लगा। ज्ञात होनेपर पण्डित चैनसिंहजी आदि तीन भद्र पुरुष शाहवाजपुरमें पहुंचे। नमस्कार के अनन्तर उन्होंने श्री स्वामीजीको महात्मा विरजानन्दजीकी मृत्युका समाचार सुनाया। बज्रपातसे मूर्छित लताके कोमल पुष्पोंकी भांति स्वामीजीका मुखमण्डल तत्काल कुम्हला गया। कुछ देरतक सन्नसे चुप रहकर कहने लगे, "आज व्याकरणका सूर्य अस्त होगया।" जिस महापुरुषने स्वाभाविक स्नेह-रससे सने हुए अपने सगे सम्बन्धियोंको, इष्टमित्रोंको और सम्पत्तिशाली घर-बारको त्यागते हुए कुछ भी चिन्ता नहीं की थी, ज्ञान-गुरुका मरण-समाचार सुनकर, उस दिन, उसके भी चित्त-चन्द्रमापर शोक-राहुकी छाया पड़ गई। वास्तवमें आदर्श गुरु, शिष्यका सम्बन्ध एक अलौकिक सम्बन्ध है।

उन दिनोंमें, स्वामीजीकी सचमुच वही अवस्था थी, जो एक आनवानवाले महावीर सैनिककी संग्राम स्थलमें हुआ करती है। भेद केवल इतना ही था कि महाराज सब मत मतान्तरोंसे अकेले संग्राम कर रहे थे। उनको धरा-धामसे उठा देनेके लिये, स्थान-स्थानपर क्षुद्र जन नाना भांतिके षड्यन्त्र रचते थे, परन्तु

वे अपनी धारणापर अटल थे। शाहबाजपुरमें दो बैरागी बाबे ठाकुर गङ्गासिंह-जीके पास जाकर कहने लगे कि हम इस गप्पाष्टक दयानन्दको तलवारके घाट उतारना चाहते हैं, इसलिए आप हमें अपना खड्ग दीजिये। ठाकुर महाशय उन साधु-वेष विडम्बकोंकी वार्त्ता सुनकर कहने लगे कि मैंने उन महात्माजीके श्री मुखवाक्य श्रवण किये हैं। वे एक उत्तम सन्त हैं। यदि तुमने फिर ऐसे शब्द कहे तो तुम्हारी दुर्गति की जायगी। जाओ, मेरे स्थानसे निकलकर दूर होजाओ। इसके अनन्तर वह ठाकुर महाशय दो चार मनुष्य साथले, शस्त्रसन्नद्ध हो स्वामीजीके निकट आया, उसने वैरागियोंकी सारी दुष्ट लीला कह सुनाई। स्वामीजीने कहा कि उनका क्या सामर्थ्य है कि मेरा बध कर सकें। परन्तु ठाकुर महाशयके चित्तमें चिन्ता वैसीही बनी रही, इस लिए, वह रातभर स्वामीजीके आसनपर पहरा देता हुआ जागता रहा।

सं० १६२५ आश्विन सुदी ११ से १५ तक ककोड़ेमें मेला था। उस मेले पर प्रचार करनेके लिए श्री स्वामीजीभी पधारे। महाराजको ढूंढते हुए भक्त बलदेव गिरिजीभी अन्य सज्जनोंसहित वहां आ गये। स्वामीजीके निवासार्थ सोरोंके लोगोंने एक पर्णकुटिया बना दी थी, परन्तु बलदेव गिरिजीको महाराजका उसमें निवास शोभाजनक न प्रतीत हुआ। उन्होंने आतेही एक कनात लगवा दी और उसमें उचित स्थानपर गद्दी लगाकर उसपर महाराजको बिठाया। सारे मेलेमें महाराजके प्रचारकी धूम थी। सैकड़ों वैष्णव आते रहे और शान्त तथा मौन होकर लौट जाते रहे। पादरियों और मौलवियोंने भी प्रश्न किये परन्तु स्वामीजीके प्रखर तर्कआतपको वे देर तक सहार न सके।

पण्डित उमादत्तजीने, कई पण्डितोंसहित आकर मूर्तिपूजनपर वाद चलाया परन्तु अल्प समयमें ही वे लड़खड़ा गये। जब कहीं पांव न टिका तो कहने लगे कि देखो, एकलव्यने द्रोणाचार्यकी मूर्ति बनाकर पूजा की थी। स्वामीजीने कहा कि एक अज्ञानी भीलका कर्म प्रमाण नहीं हो सकता; किसी सभ्य मनुष्यका प्रमाण दो। तब उसने दुर्योधनका उदाहरण दिया, जिसपर स्वामीजीने कहा

और निस्पृहाकी सर्वत्र प्रशंसा होती थी।

महाराजसे बड़े बड़े ठाकुरोंने, सम्पन्न और समर्थ लोगोंने यज्ञोपवीत धारण किये थे। वे लोग श्री गुरु-चरणोंमें अत्यन्त श्रद्धा, अतिशय भक्ति-भावना रखते थे। समय पड़नेपर तन, धन और प्राणतक न्योछावर कर देनेके लिये समुद्यत थे। परन्तु महाराज ऐसे वीतराग थे ऐसे समदृष्टि थे ऐसे साम्यवादी थे कि उनकी एक-रसवर्षिणी कृपापर पक्षपातका कटाक्ष कभी किसी विरोधीने भी नहीं किया। जो सवेरे कुवचन बाणोंसे वेधता गया था, सायंकाल फिर आजानेपर, उसके साथ भी मन्दमुसकानसहित वैसेही मीठी बातें करने लग जाते; जैसे कि अपने अन्य भक्तों और प्रेमियोंके साथ करते थे। उनके हृदय-स्फटिकमें कोई रङ्ग नहीं रहता था। उनके अन्तरंग-गंगमें राग-द्वेशकी कोई रेखा स्थिरता नहीं पकड़ सकती थी। उनके समीप ऊंचनीच-सधन-निर्धन, अपने पराये सब समान आदर पाते थे।

शिष्य-समूह-सरोवरमें भी, कमलपत्रकी भांति ममताके लेपसे निर्लेप रहने वाले भगवान दयानन्दजीने गंगासमीपवासी सहस्रों जनोंको जनेऊ देकर द्विज बनाया, सन्ध्या सिखाई, गायत्रीका जप बताया और लाखों जनोंको सदुपदेशसे सन्मार्ग दिखाया। ढाई वर्षतक भगवती भागीरथीके साथ २ विचरते हुए, स्वामीजी महाराज श्रोताओंकी भीतरी प्यास शान्त करनेसे ज्ञानमें स्नान कराकर पापमल धोनेसे तरणतारिणी गंगा बने रहे।

स्वामीजी महाराज परिभ्रमण करते हुए मार्गशीर्ष संवत् १९२५ वि० को कायमगंज पधारकर हरिशङ्कर पाण्डेयके शिवालयमें उतरे। 'कोई योग्य परमहंस पधारे हैं' यह सुनकर पण्डित गङ्गाप्रसादजी आदि सज्जन दर्शनार्थ आये। महाराजको स्नानके लिये कहा गया तो कहने लगे कि इस समय स्नान तो करना है, परन्तु एक-कौपीनमात्रधारी होनेसे यहां नहीं कर सकते। तब भक्त लोग स्वामीजीको लाला गिरिधारीलालजीके एकान्त स्थानमें लेगये। उन्होंने वहीं स्नान कियो और भोजन भी पाया।

उस स्थानके पांच भद्र पुरुषोंने स्वामीजीसे संध्या लिखकर कण्ठ कर ली।

कायमगंजमें कोई विशेष शास्त्रार्थ नहीं हुआ, परन्तु फिर भी पौराणिक लोग आकर अपनी शङ्का निवारण कराते रहे। मुर्शिदाबादके दस पंद्रह मुसलमानोंने आकरकुछ पूछा। उसका उचित उत्तर पाकर वे मौन हो गये।

कई ईसाई सज्जन स्वामीजीके डेरेपर आये और इधर उधर ऊँचे स्थानों पर बैठ गये। स्वामीजीके भक्तोंने इसे बुरा मनाया, परन्तु महाराजने कहा कि एकके केवल ऊँचे स्थानपर बैठ जानेसे दूसरा नीचा नहीं हो जाता। यदि उसीमें ऊंचाई हो तो पक्षी भी तो सबसे ऊँचे स्थानपर बैठते हैं। पादरियोंके पूछनेपर, स्वामीजीने कहा कि पाप-क्षमा नहीं किया जाता।

भागवत शिवालय और शिव-पूजनका भी स्वामीजीने खण्डन किया। एकने कहा कि सत्यनारायणकी कथा के लिये हम लोग एक रुपये की मनौती मानते हैं तो कार्य सिद्ध होजाता है। इसे आप कैसे मिथ्या कहेंगे! महाराजने कहा कि हम पांच रुपये मनौतीमें दिखाते हैं कि लखपति हो जायँ, तो क्या होजायँगे?

यहाँ तिलकका भी युक्तियुक्त खण्डन किया गया।

भोग-विलासके जीवनको स्वामीजीने अति-दुःखदायक वर्णन करके उसके अनिष्टके परिणामोंके उदाहरणमें एक दुर्बल मनुष्यकी ओर संकेत किया और संयमके जीवनके दृष्टान्तमें एक पुष्ट व्यक्तिको दिखाकर कहा कि यह गृहस्थ नियमसे रहता है, इसीलिये हृष्ट पुष्ट और बलिष्ठ है।

स्वामीजीने लोगोंको संध्या-गायत्री, हवन-यज्ञका बहुत उपदेश दिया, जिस से लोग इन कर्मोंके करनेमें प्रवृत्त भी हो गए। भक्तजन आधी आधी राततक सत्संगमें बैठे उपदेश श्रवण किया करते थे।

कायमगंजमें श्रीमहाराजकी रसोई बनानेके लिये एक पहाड़ी ब्राह्मण नियत था। लोग उत्तम पदार्थ उस रसोइएको दे आते थे, कि स्वामीजी को खिला देना, परन्तु वे तो सादा और नियमित भोजन पातेथे, वह सामग्री लोगोंको बांट दी जाती थी। महाराज बहुत थोड़ी नींद लिया करते थे।

तेरहवां सर्ग ।

कायमगंजसे प्रस्थान कर, श्री स्वामीजी शमसाबाद होते हुए सम्वत् १६२५ के पौष मासके आरम्भमें फरुखाबाद पधारे, और लाला जगन्नाथके विश्रान्त घाटपर ठहरे। महाराजके वहां पहुंचनेही उनकी कीर्ति, वायु-वेगसे सारे नगरमें फैल गई। प्रत्येक श्रेणीके सहस्रों नागर नित्य श्रीसत्संगमें आते, प्रश्न पूछते, भ्रम मिटाते और संध्या-गायत्री सीखते थे। लोक-हितकी वातोंका भी स्वामीजी उपदेश दिया करते थे। पण्डित विश्वम्भरदासजी एक दार्शनिक विद्वान् थे। वे स्वामीजीके उपदेशोंसे मोहित होकर उनके अनुगामी बन गये।

स्वामीजीके समझानेकी शैली अत्युत्तम थी। वे वातोंके चक्रमें डाल कर वादीके ही मुखसे उसकी भूल स्वीकार करा लेते थे।

पण्डित गङ्गारामशास्त्रीने प्रसिद्ध करदिया कि मैं स्वामीजीसे शास्त्रार्थ करके उन्हें परास्त करूंगा। उसने परीक्षा के लिये अपने पुत्र और एक विद्यार्थीको स्वामीजीके निकट भेजा। जब वे दोनों आये तो स्वामीजी महाशय दुर्गाप्रसादजीके पुरोहितको मनुस्मृति पढ़ा रहे थे। आगन्तुक युवकोंमेंसे एकने कहाकि अहङ्कारी चाण्डाल होता है। जब स्वामीजी अध्ययन करा चुके तो उस विद्यार्थीसे पूछने लगे कि तूने क्या कहा था? उसने वही शब्द फिर दुहरा दिये। स्वामीजीने कहा कि भद्र! तू तो अभी यह भी नहीं जानता कि अहङ्कार क्या वस्तु है; परन्तु यह तो बताओ कि क्या तुमने ऐसा शब्द कहते हुए अहङ्कार नहीं किया? युवकने कहा, महानुभावोंको तो कदापि नहीं करना चाहिये। फिर स्वामीजीने कहा कि तुमने अभी शास्त्रानुशीलन नहीं किया। तुम्हारा ज्ञान अति संकुचित है, इसलिये तुम महापुरुषोंकी गति मति नहीं जान सकते महात्माजन मिथ्याभिमान कदापि नहीं करते, परन्तु सच्चा अहङ्कार उनमें अवश्यमेव होता है! अच्छा मैं तुमसे पूछता हूं कि श्री रामचन्द्र और श्रीकृष्णच-

न्द्रजी महापुरुष थे कि नहीं? इसपर युवक निरुत्तर होकर अपने साथीसहित वहांसे चला गया। इसके पश्चात् गङ्गारामने भी स्वामीजीके सन्मुख आनेका साहस न किया।

स्वामीजीने गङ्गारामको गीताका एक श्लोक लिखकर भेजा और कहा कि तुम गीताकी कथा कहते हो। यदि इसका ठीक ठीक अर्थ कर दो तो हम इतनेही में अपनी हार मान लेंगे। परन्तु उस कथक्कर से कुछभी न बन पड़ा।

एक दिन कायमगञ्ज-निवासी पण्डित बलदेवप्रसाद और चौबे परमानन्दजी स्वामीजीके निकट गये। बलदेवप्रसादजीने हाथ जोड़कर पूछाकि यदि, राजादि क्षत्रिय लोग हिंस्र जीवोंका बध करदें तो इस कर्ममें पाप क्यों नहीं माना जाता? स्वामीजीने उत्तर दिया कि हिंस्र जीवोंके मारनेमें पाप इस लिये नहीं है कि उनके वधसे किसीको कोई हानि नहीं होती। बलदेवप्रसादने फिर पूछा कि आपके विचारमें पाप क्या है? स्वामीजीने उत्तर दिया कि इस विषयमें मैं पाप हानिको मानता हूं। तदनन्तर यह प्रश्न उठाया गया कि तब तो निकम्मे और वृद्ध मनुष्यके वधमें पाप न होना चाहिये। इसपर महाराजने कहा कि अति वयोवृद्ध और निकम्मे जनके मारनेमें कृतघ्नताका महादोष है और गाय आदि अत्यन्त उपयोगी पशुओंके हननमें भी कृतघ्नता रूप पाप होता है।

लाला जगन्नाथजीने पूछा कि महाराज! मनुष्यका कर्तव्य क्या समझा जाय? स्वामीजीने उत्तर दिया कि आदर्श-प्राप्तिके लिए कर्तव्य कर्म किया जाता है। मनुष्यके आगे आदर्श-प्राप्ति 'परमात्माकी प्राप्ति' करना है, इस लिए इसका कर्तव्य है कि जैसे दयालु ईश्वर सबपर दया करता है, यह भी सबपर दया करे, ईश्वर सत्य स्वरूप है, मनुष्य भी सत्यवादी बने, इस प्रकार ईश्वरके गुणोंको अपनेमें धारण करनेका अभ्यास करे और अन्तमें परमेश्वरको उपलब्ध करे।

फरुखाबादमें कुछ लोग ऐसे हैं जिन्हें वहांके रहनेवाले 'साधु' कहते हैं। वे सभी काम-धन्धा करके निर्वाह करते हैं, और घर-बारी होते हैं। उनके

हाथका बना हुआ भोजन ब्राह्मण-वैश्यादि नहीं खाते। एक दिन ऐसा हुआ कि एक साधु कढ़ी और भात थालमें परसकर बड़ी प्रीतिसे स्वामीजीके लिए लाया। महाराजने उस अन्नको प्रसन्नतासे ग्रहण कर लिया। परन्तु इसपर ब्राह्मणलोग असंतोष प्रकट करते हुए कहने लगे "स्वामीजी! आप तो साधुका भोजन पाकर भ्रष्ट हो गये। आपको ऐसा करना कदापि उचित न था।

स्वामीजीने हंसते हुए कहा "अन्न दो प्रकारसे दूषित होता है, एक तो तब जब दूसरेको दुःख देकर प्राप्त किया जाय, और दूसरे जब कोई मलीन वस्तु उसपर अथवा उसमें पड़ जाय। इन लोगोंका अन्न परिश्रमके पैसेका है और पवित्र है। इस लिए इसके ग्रहण करनेमें दोषका लेश भी नहीं है।"

फरुखाबादमें भी स्वामीजीने लोगोंको यज्ञोपवीत धारण कराए। एक पण्डितने कहा कि शुक्र अस्त हो रहा है, इस लिए, ऐसे समयमें यज्ञोपवीत धारण करानेका निषेध है। स्वामीजीने कहा, "जिनका शुक्र अस्त हो गया हो वे न करायें, परन्तु हमारा तो अस्त नहीं हुआ। इस लिये हम अवश्य करायँगे।

लाला जगन्नाथजीके यज्ञोपवीतपर ग्यारह पण्डित, प्रतिदिन एक सहस्र गायत्रीजप करनेके लिये नियत हुए। यजमानको भी एक सहस्र गायत्री जपनेका आदेश था। यजमानसे उपवास भी कराए गए यह जपादि कर्म और बृहद् हवन सब स्वामीजीके निरीक्षणमें, उन्हींके डेरेके स्थानमें ग्यारह दिनतक होता रहा। यज्ञोपवीत नगरमें होना था। इसलिए स्वामीजीने गायत्री मंत्र एक यजुर्वेदी ब्राह्मणको लिखकर कह दिया कि इसका उपदेश दे देना। परन्तु अति विनय करनेपर भी आप नगरमें न गये। लाला जगन्नाथको जनेऊ यद्यपि एक पण्डितने धारण कराया, परन्तु उन्होंने अपना गुरु श्रीस्वामीजीको ही माना।

श्री भीष्म गङ्गा नदीके पुत्र थे, इसका स्वामीजीने खण्डन किया। संध्या दो कालहीमें करनी चाहिये, इसकी पुष्टिमें उन्होंने महाभारतसे श्रीकृष्णजीकी द्वारकासे हस्तिनापुरकी यात्राका प्रसंग निकालकर दिखाया।

एक दिन तीसरे प्रहर चार पांच मुसलमान स्वामीके निकट आकर पूछने

लगे कि आपके विचारमें परमेश्वरने श्रीमुहम्मदको हमारे लिए भेजा है कि नहीं ? स्वामीजीने उत्तर देते समय उन्हें तीन बार कहा कि 'हमारे कथनसे अप्रसन्न न हूजियेगा'। हम तो मुहम्मदजीको अच्छा नहीं समझते हैं। आप लोगोंने भी अच्छा नहीं किया, जो उसके अनुयायी बन गये। जब चोटीके बाल कटवा डाले थे तो इतनी लम्बी दाढ़ी रखनेसे क्या लाभ ?

फरुखाबादमें स्वामीजीने नामधारी ब्राह्मणोंका खण्डन करते हुये कहा "गुण-कर्मानुसार ही ब्राह्मण होता है।" इसपर नगरवासी ब्राह्मण अति क्षुब्ध और कुपित हो अपने बचावकी चेष्टा करने लगे। उन्होंने मेरठसे हरिगोपालशास्त्रीको बुलाकर शास्त्रार्थके लिए सुसज्जित किया। शास्त्रार्थके लिए स्वामीजीका द्वार तो सदा खुला ही रहता था। इसलिये पौराणिक लोगोंका एक बड़ा दल वहां पहुंच गया। पण्डित पीताम्बरदासजी मध्यस्थ नियत हुए। पूर्वपक्ष स्थापन करते हुए हरिगोपालजीने कहा, स्वामीजी ! मूर्ति-पूजा तो सब ग्रन्थोंमें मिलती है' तो फिर आप उसका खण्डन कैसे करते हैं ?

स्वामीजीने उनसे पूछा "बताइये किस आर्ष ग्रन्थमें मूर्ति-पूजनका विधान है ?" इसपर शास्त्रीजीने 'देवताभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव च' यह मनुवाक्य कहा और इसका अर्थ करते हुए देवता शब्दसे प्रतिमा-पूजन बताया।

उत्तरमें हरिगोपालजीके पक्षका खण्डन करते हुए स्वामीजीने व्युत्पत्तिसे, युक्तियोंसे और प्रकरणक्रमसे यह सिद्ध कर दिया कि, यहां मनु महाराजका देवार्चनसे तात्पर्य अग्निहोत्र और विद्वानोंका आतिथ्य-सत्कार है। शास्त्रीजी इसके पश्चात् थोड़े समय तक तो इधर उधरकी बातें बनाकर सिर-पड़ा संकट टालते रहे, परन्तु अन्तमें भाग जानेके बिना उन्हें बचावका कोई अन्य मार्ग दिखाई न दिया।

हरिगोपालजी स्वामीजीके पाससे तो अपनासा मुंह लेकर चले आये, परन्तु कुछ नगरवासी ब्राह्मणोंको साथ मिलाकर दूसरे प्रकारकी प्रवंचनाकी चोटें चलाने लगे। उन्होंने काशीमें पहुंचकर मूर्ति-पूजनकी पुष्टिमें वहांके पण्डितोंकी

हस्ताक्षरयुक्त व्यवस्था प्राप्त की। फिर फर्रुखाबादमें आकर स्वामीजीके डेरेके निकट एक विस्तृत खुले स्थलमें झंडा गाड़ दिया और लोगोंको वह व्यवस्थापत्र सुनाने लगे। वहाँ सहस्रों मनुष्य एकत्रित हो गये और अत्यन्त कोलाहल मचने लगा। स्वामीजीके समीप भी मनुष्यपर मनुष्य भेजा जाता था कि खुले स्थानमें आओ और शास्त्रार्थ करो। परन्तु स्वामीजी उनके कपट कौशलको भलीभांति जानते थे, इसलिये उन्होंने निरे ऊधम मचानेवालोंके मण्डलमें जाना उचित न समझा, और बारबार यही कहला भेजते रहे कि नीचे खड़े गड़बड़ क्यों कर रहे हो? शास्त्रार्थ करना चाहते हो तो ऊपर हमारे यहां क्यों नहीं चले आते? इसके उत्तरमें हरिगोपाल कहते थे कि "मैं स्वामी दयानन्दके निवासस्थानपर नहीं जाऊंगा। उसने विश्रान्तको कील रक्खा है। इसलिये वहाँ जानेसे हार अवश्य हो जायेगी।'

इस हल्लेगुल्लेका समाचार कलेक्टर महाशयको भी मिल गया। उन्होंने कोतवालको वहां तत्काल पहुंचनेकी आज्ञा की। आज्ञापाते ही कोतवाल महाशय सीधे स्वामीजीके स्थानपर पहुंचे और स्वामीजीको बाहर बुलवाया। महाराज भीतर बैठे थे। वे बाहर नहीं आये। अन्तमें लाला जगन्नाथने कोतवालको कहा कि त्यागी संन्यासीको आप चपरासी द्वारा बाहर बुलाते हैं यह उचित नहीं। उन्हें क्या पड़ी है कि दौड़ते हुए आपके पास चले आयँ?

तत्पश्चात् कोतवाल स्वामीजीके आसनके समीप चला गया और कहने लगा "बाबाजी! यह क्या बखेड़ा हो रहा है?" स्वामीजीने उत्तर दिया "हम तो अपने स्थानपर बैठे हुए हैं, न किसीको कोई कटुवचन कहते हैं और न किसीसे झगड़ते हैं, यहां तक कि लोग कु-वचन भी कहते हैं तोभी मौन और शान्त रहते हैं। आप राज कर्मचारी हैं। आपका कर्तव्य है कि उनसे जाकर पूछें, जो सचमुच बखेड़ा कर रहे हैं।" कोतवालने वास्तविक वार्त्ताको समझकर स्वामी-जीके स्थानपर दो सिपाहियोंका पहरा नियतकर दिया कि वे किसी क्षुद्राशय, उपद्रवी मनुष्यको वहां न जाने दें।

तदनन्तर कोतवाल महाशयने पण्डित हरिगोपालको आहूत किया। कोत-

वालका नाम सुनते ही उसके प्राण कांप गये। परन्तु करता क्या। सामने आना ही पड़ा। कोतवालने उसे ऐसा डांटा कि वह मारे डरके नगरही छोड़कर चला गया।

हरिगोपालके किये हुए लोगमालके दो तीन दिन पश्चात्, उसका साथी ज्वालाप्रसाद मदिरामें चूर, एक कुर्सी लिये स्वामीजीके स्थानपर आया, वहां कुर्सी रखकर उसपर बैठगया और लगा अनाप शनाप बकने। उपस्थित जनोंने उसे ऐसा करनेसे बहुतेरारोका, परन्तु वह गाली प्रदानसे न रुका। मणिलाल आदि स्वामीजीके सेवक अपने आवेशको न थाम सके। स्वामीजी यह कहते ही रहे कि "यह उन्मत्त है, इसे कुछ न कहो' परन्तु उन्होंने उस उद्दण्ड मनुष्यको पकड़कर बहुत पीटा और उसकी कुर्सी वहीं जला दी।

अगले दिन लाला जगन्नाथ स्वामीजीके पास आये। वृत्तान्त ज्ञात होनेपर कहने लगे, "स्वामीजी! यदि वह दुष्ट राजद्वारमें जाकर आपके सेवकोंपर मार-पीटका अभियोग चलावे और आपको वहां साक्षी देनेके लिए बुलावें तब आप क्या कहेंगे?" स्वामीजीने कहा, "कोई मिथ्या कथन थोड़े ही करेंगे। जो कुछ हुआ है वह सब कह देंगे।

उसी ज्वालाप्रसादका सम्बन्धी ठाकुरदास भी बीस पचीस मनुष्य लेकर स्वामीजीको मारने आया; परन्तु महाराजके सामर्थ्यसे और पकड़े जानेके भयसे पीछे भाग गया। दुष्ट जनोंके आक्रमणका वृत्तान्त सुनकर लाला जगन्नाथजी, कुछ मनुष्यों सहित तुरन्त विश्रान्तमें पहुंच गये, परन्तु उनके आनेसे पूर्व ही उपद्रवी लोग वहांसे चले गये थे।

उस समय लाला जगन्नाथने श्री-चरणोंमें विनती की, "क्षुद्र लोग आपके अमूल्य जीवनको लेनेके लिये वार वार आक्रमण करने लगे हैं, इसलिये आप हमारे भीतरके स्थानमें चलकर रहना स्वीकार कीजिए।" स्वामीजीने कहा, "महाशयजी! यहां तो इस प्रकार मेरी आप रक्षा करलेंगे, परन्तु अन्यत्र कौन करेगा? मेरी रक्षा तो सर्वत्र परमात्मदेव ही करते हैं। इसी लिये मैं सर्वथा निर्भय हूं।"

विश्रान्तिस्थानमें एक दिन सहस्रों मनुष्य महाराजका उपदेश सुननेके लिये एकत्रित हो रहे थे। उस समय एक पण्डितने खड़े होकर मूर्ति-पूजनपर प्रश्न करना आरम्भ कर दिया। महाराज भी उसे सन्तोषजनक उत्तर देने लगे। बीचमें कालीके उपासक, मद्यमें मत्त, एक ब्राह्मणने उठकर कुवचन बोलते हुए महाराजपर जूता फेंका, जूता स्वामीजीतक न पहुँचकर बीचमेंही गिर पड़ा। परन्तु इससे सत्संगमें बैठे हुए सत्यनामिये साधुओंकी आँखोंमें लहू उतर आया। उन्होंने तुरन्तही उस नराधमको पकड़ लिया और लगे पीटने। उसको पिटते देख स्वामीजीको अति अनुकम्पा आ गई। महाराजने साधुओंको समझाया, "इसकी चेष्टासे हमें कोई दुःख नहीं हुआ; और यदि जूता लग भी जाता तो भी कौनसा रामवाण था? इसने जो कुछ किया है अज्ञान और सुराके वशीभूत होकर किया है। इसलिए इसपर दया करो, इसे छोड़ दो।' तब साधुओंने उसे छोड़ दिया। ये सत्य-नामी साधु स्वामीजीके बड़े प्रेमी थे; उनकी सहायतामें सदा तत्पर रहते थे।

उन दिनोंमें वहाँके सम्पत्तिशाली लोग प्रायः हाथमें दो चार ऐसे उद्दण्ड लठैत रखते थे, जो समय पड़नेपर काम आयें। ऐसे मनुष्योंसे प्रायः मारपीट का काम लिया जाता था। बहुतसे उपद्रवियोंने एक प्रसिद्ध महावली गुण्डेको स्वामीको पीटनेके लिए समुद्यत किया। उसने पुष्कल द्रव्य लेकर उनको वचन दिया कि मैं लाठियोंसे दयानन्दकी ऐसी गत वनाऊंगा कि यदि किसी प्रकार वह जीता भी बच गया तो शास्त्रार्थ करनेके योग्य तो कदापि न रहेगा।

एक दिन वह उद्दण्ड व्यक्ति समय ताक-कर स्वामी-स्थानमें प्रविष्ट हुआ। स्वामीजीने भी देखा कि सामनेसे एक हट्टा कट्टा बलवान् व्यक्ति, एक मोटा लट्ठ उठाये झूमता हुआ सीधा चला आता है। समीप आकर उस उद्दण्ड मनुष्यने कहा कि बाबा! क्या तुम मूर्तिको ईश्वर नहीं मानते हो? स्वामीजीने गम्भीरतासे उत्तर दिया कि भद्र! तुम जानते हो कि ईश्वरका स्वरूप क्या है? वह बोला कि हाँ मैं जानता हूं। स्वामीजीने कहा कि फिर बताइये तो। वह बोला

कि ईश्वर सच्चिदानन्द, सर्वशक्तिमान् है; भक्त-वत्सल दयालु देव है और सर्वत्र परिपूर्ण है। तब स्वामीजीने किंचित् हंसकर कहा, कि ईश्वरके जो गुण तुमने कथन किये हैं वे सब सत्य हैं। तुम्हारी इस समझकी मैं प्रशंसा करता हूं। परन्तु अब तुमही इन वर्णित ईश्वरीय गुणोंको मंदिरकी मूर्तियोंके गुणोंके साथ मिलाओ। यदि वे मिल गए तो मैं तुम्हारा साथी बन जाऊंगा, और यदि न मिले तो तुम्हें भी वही मानना चाहिए, जिसकी साक्षी तुम्हारा आत्मा देता है।

समझानेके इस ढंगसे उसका चित्त पिघल गया और वह लट्ठको फेंककर श्रीचरण-शरणमें गिर पड़ा। उस दिनसे उसकी काया पलट गई। वह सारे बुरे कर्मोंको त्यागकर धीरे धीरे साधु-स्वभाव और सदाचारी बन गया।

पण्डित हरिगोपालके परास्त हो जानेसे कुछ पौराणिक भक्त लज्जितसे थे, इसलिए लाला प्रेमदास आदिने हलधर ओझाको कानपुरसे मंगवाया। उसके आनेपर प्रसिद्ध किया गया कि कोई पण लगाए तो शास्त्रार्थ हो सकता है। यह बात लाला जगन्नाथ तक भी पहुंच गई। उन्होंने झटपट ढाई सहस्र रुपये एक ब्राह्मणके हाथ लाला देवीदासके पास भिजवाकर कहलवाया कि इतने ही रुपये आप अपने पाससे डालकर किसी सेठके पास रख दीजिए। शास्त्रार्थमें यदि स्वामीजी विजयी हुए तो रुपये मैं लेलूंगा, और यदि हलधरकी विजय हुई तो आप ले लीजिएगा। देवीदासने रुपये पीछे लौटा दिये कि पण्डित हलधर मैथिल कानपुरमें आये हुए थे। हमने उन्हें यहाँ इसलिए बुलाया है कि स्वामीजीके स्थानपर ले जाकर बात चीत करायँगे।

ज्येष्ठ सुदी १० सम्वत् १९२६ को रातके ९ बजे लाला देवीदासजी आदि सेठों और अनेक पण्डितोंके साथ हलधर ओझा स्वामीजीके स्थानपर आये। लाला जगन्नाथने आगे जाकर उनके आगमनका समाचार स्वामीजीको दिया। अतिथियोंके आनेपर महाराजने उनको यथायोग्य सत्कार से उचित स्थानपर बैठाया। शास्त्रार्थका विषय मूर्ति-पूजन था, परन्तु हलधर थे पक्के तांत्रिक, इसलिए उन्होंने आरम्भमें ही सुरापान पर बातचीत चलादी। मदिरापान करना

चाहिए इस पक्षकी स्थापनामें उन्होंने "सौत्रामण्यां सुरां पिबेत्" यज्ञोंमें मदिरा-पान करे, यह प्रमाण उपस्थित किया।

स्वामीजीने हलधरके पक्षमें दोष प्रदर्शित करते हुए कहा कि वहां यज्ञमें मदिरा-पानका विधान नहीं है किन्तु सोमलताके रससे तात्पर्य है।

फिर हलधरने स्वामीजीसे संन्यासीके लक्षण पूछे, उन्होंने संन्यासीके लक्षण बताते हुए हलधरको कहा कि आप ब्राह्मणके लक्षण बताइये। इसका उत्तर तो उसने कुछ न दिया, परन्तु गड़बड़ करने लग गया। इसपर महाराजने उसे कहा कि प्रकरणसे बाहर न जाइये, विषयपरही बोलिए।

हलधर बचना तो चाहताही था, इसलिए वह तुरन्त कह उठा कि आप बारबार प्रकरण शब्दका उच्चारण करते हैं, भला यह तो बताइए कि यह शब्द बनता कैसे है? महाराजने कहा प्र पूर्वक 'कृ' धातुसे 'ल्युट्' करनेपर प्रकरण शब्द सिद्ध होता है। तब हलधर बोला—"कृ धातु समर्थ है वा असमर्थ?" स्वामीजीने कहा, "वह समर्थ है।" फिर उसने पूछा—'अच्छा तो यह बताइए, 'समर्थ' किसे कहते हैं?' इसपर स्वामीजीने यहां भाष्यका एक वाक्य बोलकर कहा, 'अपेक्षा करनेवालेको असमर्थ कहते हैं।' उसने कहा कि यह वाक्य आपकी संस्कृत है, महाभाष्यका नहीं। स्वामीजीकी आज्ञासे पण्डित ब्रजकिशोरजी-ने महाभाष्य निकालकर दूसरे अध्यायके प्रथमाह्निकमें वह वाक्य दिखा दिया। उसपर उसने कहा कि मैं इसे प्रमाण नहीं मानता, क्योंकि मैं भी महाभाष्यके कर्त्तासे कुछ न्यून विद्वान् नहीं हूं, मेरी विद्या भी उसके समान ही है। तब स्वामीजीने कहा, 'तुम महाभाष्यके कर्त्ताके सामने तुच्छ हो।'

इस प्रकार रातके एक बजेतक वाद होता रहा। अन्तमें उठते समय यह निश्चित हुआ कि 'समर्थः पदविधिः' सूत्र यदि सर्वत्र लगे तो स्वामीजीकी जय समझी जाय, और यदि यह सूत्र एक स्थानपर लगे तो हलधरकी।

दूसरे दिन लाला जगन्नाथ और लाला मणिलालजी स्वामीजीके समीप आकर विनय करने लगे कि रातको जाते समय सारे पण्डित कह रहे थे कि

हलधरका पक्ष सत्य था, स्वामीजी व्यर्थही हठ करते हैं, सो यदि वह सूत्र सर्वत्र न लगता हो तो यथा तथा करके वादविवादका बखेड़ा टाल दिया जाय स्वामीजी अपने प्रेमियोंको स्वपक्षका परिचय देते हुए कहने लगे कि यदि आप उसे न लावें तो तुम्हें गोहत्याका पाप लगेगा और यदि वह न आया तो वह भी गोहत्याके पापका भागी बनेगा।

दूसरी रात फिर सभा लगी। महाराज भी आकर चटाईपर विराजमान हुए। प्रथम रात्रिमें जो प्रतिज्ञा हुई थी उसकी महाराजने उद्घोषणा की। और तो सबने उसका समर्थन किया, परन्तु हलधरजी मौन बैठे रहे। कुछ लोग उपद्रव भी करना चाहते थे, परन्तु उनको कह दिया गया कि यदि किसीने कुछ भी गड़बड़ की तो उसे तुरन्त यहाँसे निकाल दिया जायगा। इससे शांति स्थापित हो गई।

श्री महाराजने हलधरको हँसते हुए कहा कि, हलधर! हम तो संन्यासी हैं यदि हार गये तो कोई बात नहीं। परन्तु आप घरबारी गृहस्थ हैं; पराजय होने-पर आपकी बड़ी भारी हानि होगी। किन्तु हलधर यही कहता था कि मैं हारूं-गा क्यों? मेरा तो पक्ष सर्वथा सत्य है।

रात चाँदनी थी इस लिये पहले दीपकका प्रबन्ध नहीं किया गया था। महाराजने ब्रजकिशोरजीको पुकारकर कहा कि दीपक और महाभाष्यकी पुस्तक ले आइए। वे तत्काल दोनों वस्तुयें लेकर श्रीसेवामें उपस्थित हो गये। महा-राजने महाभाष्य खोलकर उस सूत्रको सर्वत्र लगाकर दिखाया। यह देखकर हलधर चुप हो गया।

कुछ पण्डित बीचमें दूसरी बात छेड़ना चाहते थे, परन्तु स्वामीजीने बल-पूर्वक कहा कि प्रथम इसका निर्णय कीजिए कि जय किसकी हुई। एक बार तो सारे पण्डित शून्यसे हो गये। परन्तु लाला जगन्नाथके यह कहनेपर कि आप सत्य सत्य कहनेसे क्यों झिझकते हैं, सबने एक वाक्य होकर कह दियाकि गत दिनके निश्चयानुसार आज हलधरजीकी प्रतिज्ञा अशुद्ध सिद्ध हो गई।

पण्डितोंके व्यवस्था-वचन हलधरके कानोंपर वज्रसमान गिरे। उसका हृदय चूर चूर हो गया। मान-मर्दित और घमण्ड खण्ड खण्ड होकर उसकी गौरव-गरिमा मिट्टीमें मिल गई। उसमें इस पराजयजन्य धक्केको यहांतक अनुभव किया कि मूर्छा खाकर गिरने लगा। परन्तु लोगोंने उसे थाम लिया और वे वहांसे उठाकर ले गये। उस दिन वहां जन-संघट्ट भी अत्यधिक था। स्वामीजीकी विजयसे सारा जन-समूह चकित हो गया। उनके पाण्डित्यका गौरव सबपर छागया। उनकी धारा-प्रवाह संस्कृत, चमत्कारिणी बुद्धि, तात्कालिक उपज और अकाट्य युक्तियां सबको प्रभावित किये हुए थीं। उस समय प्रत्येक पुरुषकी हृदयतन्त्रीके तार, सुर मिलाकर, परमहंस श्रीदयानन्दके जयकारकी झंकार कर रहे थे।

मूर्छित हलधरको उठा ले जानेके पश्चात् प्रेमपूर्वक ज्ञान-चर्चा करते हुए सवेरा हो गया। तब समागत सज्जन स्वामीजीको नमस्कार कर श्रीसत्संगसे विदा हुए और स्नानादि करके अपने घरोंको चले गये।

उस समय वेश्याओंका रखना, समृद्ध लोगोंमें बड़ाईका एक अंग समझा जाता था। इसमें लोक-लाज और जाति-विरादरीका किञ्चित् भी भय न होता था। मान्य और धनी लोग खुल्लम खुल्ला वेश्यायें लिये डोलते थे और कोई किन्तु परन्तुतक न करता था। स्वामी दयानन्दजी महाराजने इस सर्वनाशी कु-व्यसनका घोर खण्डन आरम्भ कर दिया। महाराजके दृष्टान्तोंसे, युक्तियोंसे और समझानेकी शैलीसे युवक और परिपक्व आयुके जन इतने प्रभावित हो जाते थे कि वरसोंके व्यसनी भी इस कर्म्मको त्यागने लग गये; इस नीचताके कीचसे निकलकर पार पा गये। लोगोंमें इस दुर्व्यसनके लिये घृणाका भाव उत्पन्न हो गया। सर्वत्र प्रसिद्ध हो गया कि वेश्याओंके विकट जालमें फँसनेसे बचानेके लिये उनके दाँव-पेचसे निकालनेके लिये महात्मा दयानन्दजीके उपदेश मोहिनी मन्त्र हैं।

सेठ पन्नालालजी स्वामीजीके एक श्रद्धालु भक्त थे। उनको एक प्रतिष्ठित पुरुषने कहा कि यदि आप मेरे लड़केको स्वामीजीसे सुधरवा दें तो मैं आपका बड़ा भारी उपकार मानूंगा। इससे मेरे वंशको बचा दोगे।

वह युवक बहुत बिगड़ा हुआ था। अपने घरकी भूमिहारीकी कुछ भी सार-सम्भाल न किया करता था। प्रतिदिन वाराङ्गनाओंके साथ उद्यान-विहारके लिए जाता और रातदिन उन्हींके यहां पड़ा रहता था।

पन्नालालजीने उस युवककी दशाका श्रीगुरु-चरणोंमें वर्णन करके उसके सुधारनेकी विनय की। महाराजने कहा कि यदि आप उसे एक बार मेरे निकट ले आयें तो मैं उसका पाप-कर्म छुड़ा दूंगा। पन्नालालजीने घर जाकर दो सुशील युवकोंको बुलाया और कहा कि किसी प्रकार उस कु-व्यसनी युवकको समझा बुझाकर स्वामीजीके पास ले चलो। वे सुशील कुमार पहले भी उसके अच्छे परिचित थे। इसलिये, दो तीन दिनहींके मेल मिलापसे परस्पर प्रेमबद्ध हो गये। समय पानेपर वे युवक उस कु-व्यसन-ग्रस्त युवकको स्वामीजीके दर्शन करनेकी वार वार प्रेरणा करते थे। और कहते थे कि स्वामीजी बड़े त्यागी परमहंस हैं, न किसीसे कुछ लेते हैं, और न झगरते हैं, अति शान्त स्वरूप हैं। उनके वचनोंमें बड़ा माधुर्य है। उनकी युक्तियोंमें बड़ा रस है। ऐसा साधु संन्यासी हमारे नगरमें पहले कभी नहीं आया।

जैसे चम्पाके पुष्पोंके संसर्गसे तेलमें भी सुगन्धिका संचार हो जाता है ऐसे ही उस व्यसनी युवकका हृदय, उन सुशील कुमारोंके सत्संगसे, स्वामी-श्रद्धाकी सुगन्धिसे सुवासित हो गया। एक दिन तीनों युवक स्वामीजीकी सेवामें उप-स्थित हुए और विनीततासे नमस्कार करके बैठ गये।

महाराज अपने प्रेम-भरे नेत्रोंकी पवित्र ज्योतिसे युवकोंके मुखमण्डलको उज्वल करते हुए उपदेश देने लगे, "सौम्य युवको! वैसे तो व्यसन सभी बुरे हैं, परन्तु वेश्या सबसे अधिक नाशकारिणी है। इस व्यसनसे सुरापानकी बान सह-जमें पड़ जाती है। सभ्य वेष, सभ्य भाषा, सभ्याचार आदि सभी गुण नष्ट हो जाते हैं। कुलाचारपर कठोर कुठाराघात हो जाता है। रातदिन राग-रङ्गमें मग्न रहनेसे व्यवहार बुद्धिका अभाव होने लगता है। ऐसा व्यसनी धर्म-कर्मसे सदा दूर भागता है। वाराङ्गना अपने वशीभूत जनके मनको कृत्रिम प्रेमसे,

बनावटी बातोंसे और हावभावसे सदा उत्तेजित रखती है, जिससे व्यसनी लोग अल्पकालहीमें निस्तेज और जीर्ण-शीर्ण-शरीर हो जाते हैं। वेश्याका प्रेम स्वार्थपूर्ण होता है। जब स्वार्थसिद्धि नहीं होती तो वह बाततक नहीं पूछती।"

'वेश्यासक्तके परिपारमें आचारकी शुद्धि नहीं रहती। उसका वंश नष्ट हो जाता है। यदि वंश नष्ट न भी हो, तो भी उसकी सन्तानका सदाचारी होना महा कठिन है।'

महाराजने फिर कहा, युवको! भला यह तो बताओ कि वेश्यासक्तिसे यदि लड़की उत्पन्न हो तो वह लड़की किसकी हुई?" युवकोंने कहा, "उस वेश्यासक्त पुरुषकी।" तब स्वामीजीने पूछा कि "वह युवती होकर क्या काम करेगी?" युवक बोला, 'और क्या करेगी? वेश्या बनकर बाजारमें बैठेगी।" तब स्वामीजीने मर्मस्पर्शी शब्दोंमें कहा कि, "देखिए, संसारमें कोई भी भला मनुष्य नहीं चाहता कि उसकी पुत्री वेश्या बनकर बाजारमें बैठे, परन्तु वेश्याके अनुरक्त जन ही ऐसे हैं जो अपनी बेटियोंको वेश्या बनाते हैं, चकलेमें बैठाते हैं, और द्वार-द्वारपर नचाते हैं। तुमही सोचो कि क्या यह बहुत बुरी बात नहीं है?"

यह उपदेश सुनकर कु-व्यसनी युवकके रोंगटे खड़े होगये। उसका अन्तः-करण पाप-कर्मसे काँप उठा। उसके सारे शरीरमें सनसनी छा गई, और उसने भी अपने साथियोंसहित यह कहा कि स्वामीजी! आपका कथन सत्य है। वा-स्तवमें वेश्या-प्रेम एक घृणित नीच कर्म है। उस व्यसनी युवकने स्वामीजीके चरण छूकर वहीं यह प्रण किया कि आजसे मैं वेश्याओंके समीप नहीं जाऊंगा, और जो रक्खी हुई हैं उनका अब परित्याग करता हूं।

भगवान् दयानन्दने उसे साधुवाद सहित आशीर्वाद दिया और कहा कि सौम्य! ईश्वरकृपासे तेरा जीवन पवित्र हो—तेरी इस समयकी बुद्धि सदा बनी रहे।

उस-युवकने फिर श्रीपदपद्मको स्पर्श करके अपने नये जीवनदाताको नम-स्कार किया, और साथियोंसहित अपने घरको चला आया। पीछेसे वह युवक

स्वामीजीका एक भावनावान् शिष्य बन गया और उनके स्थानीय तथा प्रान्तीय कार्योंमें बड़ी सहायता देता रहा।

एक दिन स्वामीजीके व्याख्यानमें बहुतसी वेश्यायें भी यह देखने गई थीं कि वह कौन ऐसा मनुष्य है, जो हमारे पिंजड़ेमेंसे पखेरुओंको निकाल, हमारी आजीविकाका सत्यानाश कर रहा है।

स्वामीजीके विषयमें यह प्रसिद्ध था कि वे पूर्ण योगी हैं और सम्पूर्ण आध्यात्मिक तत्त्वोंको जानते हैं। सारी रात समाधिमें लीन रहते हैं।

एक दिन गढ़ीके नवावने पूछा कि क्या महाराज! कोई ऐसी विद्या भी है जिससे दूर स्थानके समाचारका ज्ञान हो सके? स्वामीजीने उत्तरमें कहा कि योगीजन ऐसी गुप्त बातोंके जाननेकी इच्छा नहीं करते। उनका मुख्योद्देश्य तो सब वस्तुओंसे गुप्त ब्रह्म-सत्ताको जानना है। इस उत्तरसे नवाब महाशयको अति सन्तोप प्राप्त हुआ।

फरुखाबादमें लाला वंशीलालजी एक प्रतिष्ठित पुरुष थे। उन्होंने एक शिवालय बनवाया था और उसमें शिव प्रतिमा स्थापित करनेको ही थे कि स्वामीजी के उपदेश सुनकर उनका निश्चय बदल गया। मूर्ति-पूजन उन्हें वेदविरुद्ध कर्म दिखाई देने लगा। उधर श्रीस्वामीजी पाठशालाकी स्थापना करनेका यत्न कर रहे थे। वंशीलालजीने स्वामीसे विनय करके वहीं, शिवालयके स्थानपर, पाठशाला स्थापित करा दी।

उस पाठशाला में पचासके लगभग विद्यार्थी प्रविष्ट हुए। सभी अष्टाध्यायी पढ़ने लगे। स्वामीजीने महाशय दुर्गाप्रसादजीको धर्म्म-कर्म्मका पवित्र जीवन प्रदान किया था, इसलिए वे गुरु महाराजके कार्यमें पूरे सहायक थे। विद्यार्थियोंके भोजन और वस्त्रोंकी व्यवस्था वे ही करते थे। पण्डित ब्रजकिशोर अध्यापक नियत किए गए। उनके ३०) तीस रुपए मासिक वेतनका भार लाला पन्नालालजीने अपने ऊपर ले लिया। स्वामीजीने वहीं जर्मनीसे वेद मंगाये थे।

एक दिन स्वामीजी गङ्गामें पांव फैलाये पड़े थे। कुछ लड़कोंने उन्हें देख

कर परस्पर कहा कि देखो यह कितना मोटा मनुष्य हैं। वे गीले रेतके गोले बना बनाकर स्वामीजीपर मारने लगे। महाराज बहुत देरतक तो उन अबोध बालकोंके क्रीड़ास्थल बने रहे, परन्तु जब वालूकण आँखोंमें पड़ने लगे तो उस स्थानसे उठकर चले गये।

एक दिनका वर्णन है कि स्वामीजीके बलकी चर्चा सुनकर बहुतसे मल्ल उन्हें देखने आये उस समय स्वामीजी स्नान करके आ ही रहे थे। महाराजने अपने दहिने हाथसे कौपीनको पकड़कर बलपूर्वक निचोड़ डाला, और फिर उन मल्लोंको कहा कि यदि आपमेंसे किसीको अपने बलका अभिमान हो तो वह इस कौपीनमेंसे पानीकी एक और बूंद निकालकर दिखाये। उन सबने एक एक करके बल लगाया। वे दोनों हाथोंसे दबा-दबाकर थक गये, परन्तु पानी की एक बूंद भी न निकाल सके।

महाराजमें क्षमा अपार थी। दूसरा कोई उनका कितनाही अपकार करता, उनको कितनाही कटुवचन कहता, पर वे सब भुला देते थे। ऐसी बातोंकी गाँठ उनके चित्तमें कभी नहीं पड़ती थी।

स्वामीजी एक दिन प्रातःकाल घूमने जा रहे थे। मार्गमें एक मनुष्यने उन्हें बहुतही कु-बचन कहे। उसने यह भी कहा कि तू ईसाइयोंका नौकर है। हमें कृस्टान बनाना चाहता है। महाराज उसकी अज्ञानलीलापर मुस्करातेही रहे और घूमकर अपने आसनपर आ विराजे।

वही गाली देनेवाला मनुष्य यह सोचकर कि अब दयानन्दको उसके स्थानपर जाकर चिढ़ायें; महाराजके समीप आया। स्वामीजीने उसका 'आइये, बैठिये' इत्यादि शब्दोंसे स्वागत किया और मधुर वचनोंसे उसके वहाँ आनेका कारण पूछा। वह मनुष्य, यद्यपि हृदय, पाषाण समान कठोर रखता था, स्वामीजीको सताने आया था; परन्तु उनके कृपाभावसे वीतराग स्वभावसे, सुजनताके बर्ता-वसे उसका मन मोम हो गया; पश्चात्तापके उद्वेगसे उसका जी भर आया। श्री-चरणोंको अपने अनर्गल अश्रुओंसे सिंचन करके क्षमाकी याचना करने लगा।

स्वामीजीने उसे ढाढस बँधाया और कहा, शब्द आकाशमें उत्पन्न होकर वहीं लय होजाता है, इसलिये तुम्हारे वे वचन भी नष्ट होगये हैं। वे मेरे पास नहीं हैं। उन्होंने मुझे स्पर्श नहीं किया। इसी कारण उनसे मुझे यत्किंचित् भी दुःख नहीं हुआ।"

स्वामीजीके आनेसे पूर्व, वहांके युवक एक बड़ी संख्यामें ईसाई होने लगे थे। परन्तु जब स्वामीजीने आकर ईसाई धर्मके भी दोष प्रदर्शित किये तो वे युवक प्रभावित हो गये। उन्होंने पादरियोंको कह दिया कि अब हमको आपके धर्ममें कोई ऐसी विशेषता नहीं दिखाई देती जिसके लिये हम अपने पुरातन धर्मका परित्याग करें। इस प्रकार आर्यजातिके युवकोंके ईसाई होनेसे बच जानेसे—जातिके अङ्गोंके न टूटनेसे—विचारवान् लोग स्वामीजीकी स्थान-स्थान-पर प्रशंसा करते थे। परन्तु कुछ ऐसे स्वार्थ-सिन्धु भी विद्यमान थे, जिनका धर्म-कर्म पेटपूजासे परे न था! उन्होंने अपनी यह नीति बना रक्खी थी कि जैसे भी हो आदर्श-संस्कारक दयानन्दको लोगोंकी दृष्टिमें गिराया जाय। वे सर्वत्र कहते फिरते थे कि यह ईसाई है, ईसाइयोंका नौकर है। संन्यासीका वेष धारण करके लोगोंको किरानी बनानेका यत्न कर रहा है!

अनेक भद्र पुरुष स्वामीजीके दर्शनोंसे इस कारण भी वञ्चित रहे कि वे उन पेटू-पुरोहितोंकी कोरी कपट-लीलाको नहीं समझ सके।

एक सरवरिया धुरन्धर पण्डित, उन्हीं दिनोंमें फरुखाबादमें आया था। उसको वहाँ एक पण्डितने कहा कि बहुत लोग दयानन्दको ईसाइयोंका मनुष्य कहते हैं। चलो, किसी समय उसके पास चलें और इस बातका पूरा पता लगायें। वे दोनों, रातके दो बजे स्वामीजीके समीप पहुंचे। महाराज उस समय आसन लगाये बैठे थे। शिष्टाचारके पश्चात् सरयूपारी पण्डितने स्वामीजीसे अनेक श्रौत, स्मार्त और दार्शनिक प्रश्न पूछे। उनका उत्तर पाकर वह परम तृप्त हो गया। चलते समय श्रीचरणस्पर्श करके कहने लगा, "भगवन्! हमने सुना तो यह था कि आप कपटवेषी, प्रच्छन्न ईसाई हैं, परन्तु दर्शनोंसे पता लगा कि

आप एक धर्मावतार हैं।" अगले दिन उस ब्राह्मणवर्यने सर्वसाधारणको कहना आरम्भ कर दिया, "श्रीदयानन्दजी ऐसा दूसरा पण्डित भारतभरमें नहीं है। उन्होंने मुझे ऐसे शास्त्रीय रहस्य बताये हैं कि जो मैंने पहले कभी नही सुने थे। उनका कथन सर्वांशमें सत्य है।"

चौदहवां सर्ग।

फर्रुखाबादसे प्रस्थानकर श्री स्वामीजी श्री श्रृङ्गी रामपुरमें दो दिन ठहरे, और फिर वहांसे जलालाबाद पधारे। वहां पहिले तो आप एक उजड़े उद्यानमें ठहरे, परन्तु जब गयाप्रसाद शुक्लको पता लगा तो वे बड़ी विनयसे उन्हें सरन-दास उदासीकी कुटियामें ले गये। बिछौनेके लिए बहुत कहा गया परन्तु महा-राजने स्वीकार न किया। सोते समय ईंटोंका ही सिरहाना बनाकर सो गये।

आषाढ़ वदी सं० १९२६के अन्तमें स्वामीजी कन्नौज आ गये। वहां हरिश्चन्द्र नामका एक प्रसिद्ध पंडित था। वह स्वामीजीके साथ महाभाष्य आदि व्याकरण ग्रन्थोंके विषयोंपर वार्त्तालाप करने लगा। स्वामीजी प्रमाणमें ग्रन्थोंके स्थलोंके पते इस प्रकार देते कि सुननेवाले पंडित उनकी स्मृतिकी प्रशंसा करने लग जाते थे।

महाराजने हरिश्चन्द्रको पञ्चयज्ञोंके करनेका भी उपदेश किया। हरिश्चन्द्रने कहा कि मूर्ति-पूजा करना सदाचार है। स्वामीजीने इसका खण्डन करके बताया कि पञ्चमहायज्ञोंका करना ही सदाचार है प्रतिमा-पूजनको वे लोग सदाचार कहने लग गये हैं कि जिनसे बलिवैश्वदेव नहीं होता।

उपहास-रसमें स्वामीजीने हरिश्चन्द्रको यह भी कहा कि आपका नाम अच्छा नहीं है। देखिये हरिके दो अर्थ होते हैं—एक बानर और दूसरा चोर। यहांके लोग नाम तक रखना नहीं जानते।

एक दूसरे ब्राह्मणका नाम गयादीन था। स्वामीजीने उसे भी कहा कि

आपका नाम भी भूंडा और भद्दासा है। भला जिसका दीन (धर्म) चला गया उसका शेष रहा ही क्या ? उस समय महाराजने आर्य नाम रखनेकी रीतिका एक अत्युत्तम उपदेश दिया।

रामप्रसादजीके पूछनेपर महाराजने कहा कि कायस्थ वैश्य हैं। अपनेको चित्रगुप्तका वंशीय बताते हैं। और गुप्त शब्द वैश्य लोगोंके लिये ही उपयुक्त होता है। परन्तु आज कल ये लोग अधिकांश मांसमदिराका सेवन करने लग गये हैं। इसे छोड़ दें तो फिर उत्तरोत्तर उन्नत हो सकते हैं।

कन्नौजमें भी एक तुच्छ प्रकृतिका मनुष्य श्रीचरणोंका अनिष्ट-चिन्तन करता रहा, उनके हनन करनेकी डींग मारता रहा, परन्तु उसे कभी उनके पास तक जानेका साहस न हुआ।

वर्षाऋतुके आरम्भमें श्रीस्वामीजी महाराज कानपुरमें सुशोभित हुए। भैरवके मन्दिरके निकट गंगाके तटपर दरगाहीलालकी विश्रान्तमें ठहरे। उनका आतिथ्य प्रायः पण्डित हृदयनारायणजी करते थे।

स्वामीजीने इस नगरमें आते ही उपदेश देना आरम्भ कर दिया, और स्थान-स्थानपर विज्ञापन लगवा लोगोंको सत्यकी खोजके लिए उत्तेजित किया। यह विज्ञापन संस्कृत भाषामें था। उसमें महाराजने चार वेद, चार उपवेद, छः अङ्ग, श्वेताश्वतर और कैवल्यसहित दशोपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, कात्यायनादि सूत्र, योगभाष्य, वाकोवाक्य, मनुस्मृति और महाभारत ये ग्रन्थ प्रमाण रूपसे स्वीकार किये। इनमें भी जो वेदसे भिन्न ग्रन्थ हैं, यदि उनमें कोई वेदविरुद्ध बात पाई जाय तो वह भी अप्रमाण माननी चाहिए, यह प्रकाशित कर दिया।

महाराजने उस विज्ञापनमें पुराण आदि आठ गप्पोंका खण्डन और निम्न-लिखित आठ सत्योंका मण्डन किया:—

१—उपर्युक्त ऋग्वेदसे महाभारत पर्यन्त परमेश्वर और ऋषि-प्रणीत ग्रन्थ सत्य हैं।

२—ब्रह्मचर्याश्रममें गुरु-सेवापूर्वक अपने धर्म अनुष्ठान निभाते हुए वेदाध्ययन करना चाहिये।

३—वेदोक्त वर्णाश्रमका धर्म और सन्ध्या वन्दन, अग्निहोत्र आदि कर्म करने उचित हैं।

४—जैसा धर्मशास्त्रमें ऋतुकाल आदिके नियमोंसे गृहस्थ-धर्म लिखा है उसके अनुसार चलना। पञ्चमहायज्ञों और श्रौत, स्मार्त कर्मोंका करना कर्तव्य है।

५—शम, दम, तपश्चरणका धारण, यम आदिसे समाधि पर्यन्त उपासनाका करना और सत्संगपूर्वक वानप्रस्थाश्रमका अनुष्ठान करना विधिविहित है।

६—विचार, विवेक, वैराग्य, परा विद्याका अभ्यास करना और संन्यास ग्रहण करके सकल कर्मोंके फलकी वांछाको छोड़ देना उचित है।

७—जन्म-मरण, हर्ष-शोक; काम, क्रोध, लोभ, मोह और संग-दोष ये सब अनर्थकारी हैं, इसलिये इन्हें त्यागना शुभ है।

८—अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष, अभिनिवेश रूप क्लेशोंसे और तमो-रजस्-सत्त्व गुणोंसे निवृत्ति पाकर पंचमहाभूतोंसे अतीत मोक्षरूप स्वाराज्यको प्राप्त करना परम लक्ष्य है।

स्वामीजीके उपदेशोंसे, उनके विज्ञापनमें लिखे हुए आठ गप्पोंके खण्डनसे नया पुराना सारा कानपुर एक प्रकार चलायमान हो गया। श्रद्धालु लोगोंमें उत्साहसे, नये सुधारसे आवेश था, और विरोधीजन ईर्ष्याद्वेषके आवेशमें आपे से बाहर हो रहे थे। उस समय विरोधियोंके शिरोमणि ब्रह्मानन्द सरस्वती बने हुए थे। वह स्थान स्थानपर इस बातका प्रचार करते फिरते थे कि दयानन्दके पास नहीं जाना चाहिये। उसका तो मुख देखना भी पातक है। वह नास्तिक है; देव-निन्दक है, कृस्टान है, और धर्म भ्रष्ट करने आया है। उसे भैरवघाटसे निकाल देना चाहिये। ब्रह्मानन्द कुछ पण्डितोंको साथ लेकर एक दिन स्वामी-जीके पास गया भी, परन्तु गालीप्रदान करके चला आया।

ब्रह्मानन्द तो अपनी प्रकृतिके कारण ही स्वामीजीके विरुद्ध उधार खाये बैठा था, परन्तु दो बड़े प्रतिष्ठित व्यक्ति, प्रयागनारायण और गुरुप्रसाद, भी स्वामीजीके प्रतिपक्षमें खड़े होगये। इसका कारण यह था कि इन दोनोंने कैलास

और बैकुण्ठ नामके दो मन्दिर बनवाये थे। जब वे दोनों महाशय स्वामीजीको मिले तो उन्होंने उपदेश किया, कि आपने लाखों रुपये लगाकर मन्दिर खड़े किये हैं, परन्तु यह तो बताइए इससे लाभ क्या हुआ है? अनधिकारियोंको खिला पिलाकर, ईंट पत्थरोंमें व्यय करके आपने इतना रुपया यों ही खो दिया है। क्या ही अच्छा होता यदि वह द्रव्य जाति और देशके भलेमें लगता, मनुष्य-मात्रके हितकर कार्यमें व्यय होता। तीस तीस वर्षकी बड़ी लड़कियां, बिना व्याही कनौजियोंके घरोंमें बैठी हैं। यदि उनके व्याह करा देते अथवा बालक बालिकाओंकी कोई पाठशाला स्थापित करके जनहितका परिचय देते तो भी अच्छा था। देशमें शिल्पका अभाव है। उस द्रव्यसे, आप यदि, एक शिल्प-शाला स्थापित करके स्वदेशवासियोंमें कला-कौशलका प्रचार करते तो कितना भारी लोक-हित होता।"

उन महाशयोंको ऐसी खरी खरी, स्पष्ट बातोंके सुननेका स्वभाव न था, इस लिये वे स्वामीजीसे कुछ रुष्ट होकर वहांसे चले आये और ब्रह्मानन्द आदिके साथ मिलकर स्वामीजीसे शास्त्रार्थ करनेके लिये हलधर ओझाको समुद्यत करने लगे। अन्तको श्रावण वदी ८ सं० १९२६ को लक्ष्मण शास्त्री और हलधर ओझा शास्त्रार्थके लिये समुद्यत हो गये। सारे नगरमें प्रसिद्ध हो गया कि आज एक बड़ा भारी शास्त्रार्थ होगा। भैरवघाटपर दरियां बिछ गई। नगरके सेठ साहुकार सब आकर एकत्रित होने लगे। ठीक शास्त्रार्थके समय वहां बीस पचीस सहस्र मनुष्योंकी भीड़ लग गई। इस शास्त्रार्थमें अनेक उच्च-पदाधिकारी-कर्मचारी भी आये। सहायक कलेक्टर, महाशय थेन भी वहां विद्यमान थे। वे संस्कृत भाषाके भी ज्ञाता थे, इसलिये, सर्वसम्मतिसे श्रीमान् थेनको ही मध्यस्थ नियत किया गया।

लोग तो दिनके एक बजेसे पहले आगये थे, परन्तु शास्त्रार्थ नियमानुसार दिनके दो बजे आरम्भ किया गया। प्रारम्भ करते समय हलधरने कहा, "स्वामीजी! आपने विज्ञापनमें जो 'गप्पम्' लिखा है वह व्याकरण की रीतिसे अ-

शुद्ध है ॥" इसपर स्वामीजीने कहा, आप इस समय मूर्ति-पूजन आदिमेंसे किसी विषयपर वाद चलाएं। शुद्धाशुद्धपर वाद करते रहना विद्यार्थियोंकाकाम है। इन सहस्रों मनुष्योंका समय इस शुष्क वादमें क्यों गंवाना चाहते हो? इस बातको पूछनाही हो तो कल मेरे पास आजाइएगा। प्रमाणसहित उत्तर दे दूंगा।

फिर हलधरने पूछा, "आप महाभारतको मानते हैं या नहीं?" स्वामीजीने उत्तर दिया, "हाँ, मानता हूं" ओझाने एक श्लोक पढ़कर कहा "इसका यह अर्थ है कि एकलव्य भीलने द्रोणाचार्यकी मूर्ति सामने रखकर धनुर्विद्या सीखी थी।" इसपर स्वामीजीने कहा, "मैं यह कह रहा हूं कि वेद-शास्त्रमें कहीं प्रतिमा पूजनकी आज्ञा दिखाओ। आपने जो प्रमाण दिया है उसमें प्रतिमा-पूजनकी आज्ञा नहीं है। केवल यही लिखा है कि एक भीलने ऐसा किया था। उसको ऐसा करनेकी किसीने शिक्षा नहीं दी थी, और न ही वह आप भी कोई ऋषि मुनि था, जिससे उसका कर्म प्रमाण माना जाय। जैसे अङ्गरेज़ लोग चांद-मारी करते हैं वैसे ही वह भी लक्ष्यवेधका अभ्यास करता था। कोई पूजन कर-नेके लिये द्रोणकी प्रतिमा उसने भी नहीं रक्खी थी। यदि कहो कि द्रोणकी प्रतिमा पास रखनेसे वह धनुर्विद्यामें निपुण हो गया था तो यह भी मिथ्या है। धनुर्विद्यामें प्रवीण होनेका कारण मूर्ति नहीं थी, किन्तु उसकानिरन्तर अभ्यास था।"

यह उत्तर सुन ओझा थोड़ी देर तो चुप रहा; परन्तु फिर उसने दूसरे ढँगसे पूछा कि यदि वेदमें मूर्ति-पूजाका विधान नहीं है तो निषेध कहाँ है? इसपर महाराज बोले, "जब कोई स्वामी अपने सेवकको कहता है कि तुम पश्चिमको जाओ, तो अन्य तीन दिशाओंका निषेध अपने आप समझ लिया जाता है।"

उस समय महाराजने शास्त्रोंके प्रमाणसे यह सिद्ध कर दिया कि वेद आदि धर्म्म-ग्रन्थ ईश्वरके स्वरूपको, निराकार सर्वत्र परिपूर्ण और अमूर्त माननेकी आज्ञा करतेहैं। स्वामीजीने ओझाको बलपूर्वक कहा कि आप अपने पक्षमें वेदका एक तो प्रमाण दीजिए। परन्तु वह न दे सका।

विषयको टालनेकी इच्छासे लक्ष्मण शास्त्रीने कहा कि स्वामीजी! शास्त्रमें

कहा है कि गुरु, देवता, राजा और कोढ़ी मनुष्यकी छायाको लाँघना नहीं चाहिए। पर ग्रन्थोंमें लिखा है कि देवताकी छाया नहीं होती, इस लिए यहां देवताकी छायासे तात्पर्य मूर्तिकी छायासे है ।

लक्ष्मणशास्त्रीके उत्तरमें स्वामीजीने कहा, जो आपने कहा कि देवताओं की छाया नहीं होती यह सत्य नहीं है । पूर्वकालमें जब यजमान यज्ञ करते थे तो देवजन वहाँ आजाया करते थे । देवों और दैत्योंकी लड़ाइयाँ भी हुआ करती थीं । उनमें देव मारे भी जाया करते थे । उनके खान पान आदि व्यवहारोंका भी वर्णन लिखा मिलता है । यदि देवोंकी देह न हो तो पूर्वोक्त क्रियायें कैसे हो सकती हैं ? और जहाँ देह होती है वहां छाया भी अवश्यहोती है । इस लिए धर्म्मशास्त्रमें देवताकी छायाका उल्लङ्घन न करनेकी आज्ञाका तात्पर्य यह है कि यज्ञादि कर्मोंमें उन्हें लांघकर अवज्ञा नहीं करनी चाहिए ।"

ओझा महाशय बीचमें बोल उठे यदि जड़ वस्तुओंमें देवत्व नहीं है तो हवनके समय अग्निहीमें आहुति क्यों देते हैं ? और जलादि भी तो तत्त्व हैं, उनमें सामग्री आदि क्यों नहीं डाली जाती ? इसका उत्तर श्रीस्वामीजीने यह दिया, कि "पांचों तत्त्वोंमें केवल अग्निही एक ऐसा तत्त्व है, जिसमें डाली हुई आहुति भस्म हो जाती है । इसी लिए, इसमें हवन करते हैं और वेदकी भी यही आज्ञा है । परन्तु आप यह तो बतायें कि अग्निहोत्ररूप देव-पूजनके साथ पत्थर-पूजाका क्या सम्बन्ध है ? मूर्तिको किसी भी शास्त्रमें देव नहीं कहा गया है ।"

फिर लक्ष्मणशास्त्रीने कहा कि ईश्वर सर्वव्यापक होनेसे मूर्तिमें भी विद्यमान है तो फिर मूर्ति-पूजनमें आप क्यों दोष मानते हैं ? उत्तरमें स्वामीजीने कहा, "जब ईश्वर सर्वव्यापक है तो मूर्तिमें क्या विशेषता है जो उसकी पूजा की जाय ? और चेतनको छोड़कर जड़-पूजनमें कोई महत्त्व भी नहीं है ।" यह सुनकर, स्वामीजीके सारे प्रतिपक्षी अवाक् होगये । किसीको आगे कुछ न फुरा । उस समय थेन महाशयने हलधरसे कुछ प्रश्न किए, और फिर थोड़ी देर स्वामीजीसे वार्तालाप करके उनको नमस्कार की और फिर वे उठकर चलेगये ।

मध्यस्थके उठनेपर सारी सभामें भूकम्पसा आगया, कोलाहल मच गया, और उस गड़बड़में विरोधियोंने महाराजपर ईंटें भी बरसाईं ! उसी समय प्रयागनारायण तिवारीने एक रुपयेके पैसे हलधरके सिरपरसे न्योछावर कर लुटा दिये और कहा कि उन्हींकी विजय हुई है ! फिर क्या था । 'गङ्गाकी जय' और 'हलधर की जय' के नाद गूंजने लगे । पौराणिक लोग विजय मनाते बड़े समारोहसे नगरमें आये और उन्होंने 'शोलातूर' समाचारपत्रमें भी अपनी जय-घोषणा कर दी। कुछ आर्य पुरुष 'शोलातूर' समाचारपत्र लेकर श्री स्वामीजीके समीप गये और उन्होंने पौराणिकोंकी मिथ्या जय-घोषणाका लेख पढ़कर सुनाया । स्वामीजीने कहा, "शास्त्रार्थ तो सत्यासत्यके निर्णयके लिये किया जाता है । उसमें यदि वे लोग अपनी जीत समझते हैं तो उन्हें प्रसन्न हो लेने दो । मुझे इसका कुछ भी हर्ष शोक नहीं है ।"

परन्तु स्वामीजीके भक्तोंका मन कब मानता था कि यों ही मिथ्या समाचार फैल जाय और वे मौन बैठे रहें । वे सहायक कलेक्टर महाशय थेनके पास गए और उन्हें सारा वृत्तान्त आद्योपान्त सुना दिया । उन्होंने उसी समय निम्नलिखित व्यवस्था लिखकर उन्हें दे दी:—

"महाशयो ! मेरी सम्मतिमें शास्त्रार्थके समय स्वामी दयानन्द सरस्वती संन्यासीकी विजय हुई। उनकी युक्तियाँ वेदानुकूल थीं । यदि आप चाहें तो मैं अपनी व्यवस्थाकी पुष्टिमें कुछ दिनोंमें प्रमाण भी दे दूंगा ।।

कानपुर } आपका
थेन ।

स्वामीजीके प्रेमियोंने, श्रीमान् थेन महाशयकी व्यवस्थासहित, शास्त्रार्थका पूर्ण वृत्तान्त विज्ञापनोंद्वारा सारे नगरवासियोंको विदित कर दिया ।

समाचारपत्रोंमें भी छपवा दिया, जिससे सर्वसाधारणको सचाईका ज्ञान हो गया; स्वामीजीकी विजयका पता लग गया, और प्रतिपक्षियोंका कोरा कपट-कौशल दीखने लगा ।

मध्यस्थ महाशयके निर्णयसे, लोगोंके हृदयोंपर स्वामीजीके पक्षकी सत्यताका सिक्का बैठ गया। वे ऐसे प्रभावित हुए कि अपनी प्रतिमाओंको धड़ाधड़ जल-तलालीन करने लगे। कहते हैं कि उस समय कानपुरकी यह अवस्था थी कि यदि एक घरमें चार मनुष्य थे तो उनमेंसे, दो तो अवश्य ही स्वामीजीके अनुगामी हो गये थे।

श्री स्वामीजी नसवार लिया करते थे। एक मनुष्यने पूछा कि क्या इसमें कोई दोष नहीं है? उन्होंने उत्तर दिया कि यदि परोपकार करते हुए शरीरके दोषनिवारणार्थ इसे ग्रहण करना पड़े तो इसमें कोई दोष नहीं।

एक दिन, श्रीयुत गङ्गासहायजीने स्वामीजीके पास जाकर पूछा कि प्रतिमा पूजनमें क्या दोष है? स्वामीजीने उत्तर दिया, "वेदोंकी आज्ञापर चलना धर्म्म है। वेदोंमें प्रतिमा-पूजनकी आज्ञा नहीं है। इसलिए उनके पूजनमें आज्ञाभंग करनेका दोष है। पुराणोंमें जो मूर्तियोंका पूजन लिखा है वह सब गप्प है और असार है। जो यह कहते हैं कि अपनी भावनाका फल होता है उनका कथन भी सत्य नहीं है। तुम बैठे चक्रवर्ती राजा बननेकी भावना करते रहो तो इतनेसे सार्वभौम राजा नहीं बन सकोगे। भावना भी सच्ची होनी चाहिए।

एक महाशय रुद्राक्षकी माला धारण किये स्वामीजीके निकट आया। महाराजने उसे हंसकर कहा कि यह क्या गुठलीसी गलेमें डाले डोलते हो? ऐसी बातोंसे मुक्ति न होगी। मोक्षकी अभिलाषा है तो ब्रह्मज्ञान प्राप्त कीजिए।

उपहासमें महाराजने एक मनुष्यको कहा कि बिल्वपत्र शिव-प्रतिमापर चढ़ाने जाते हो तो वह तो इन्हें नहीं खायगी, परन्तु यदि ऊंटके आगे डाल दो तो उसकी भूख इनसे अवश्य मिट जायगी।

एक मनुष्यने स्वामीजीसे लोटा माँगा। महाराजने पूछा क्या करोगे? वह बोला कि शिवपर जल चढ़ाऊंगा। स्वामीजीने पूछा—तुम अपने लोटेसे क्यों नहीं चढ़ाते? उसने उत्तर दिया, मेरे पास इस समय लोटा नहीं है। स्वामीजीने कहा कि लोटा नहीं तो मुख तो है। कुल्ले भर भर उसपर फेंकते जाओ।

महाराजने एक दिन विनोदमें कहा कि पण्डित लोग भोले भाले मनुष्योंको आधे आधे मन्त्र बताकर उनके गुरु बन बैठते हैं। परन्तु हम तो पृष्ठोंके पृष्ठ बता रहे हैं। क्या हम गुरु नहीं बन सकते ?

भैरवका मन्दिर स्वामीजीके निवास स्थानके अति निकट था। उसके विषय में लोग अनेक प्रकारकी गप्पें उड़ाते थे। वे कहते थे कि यह भैरव जो चाहता है कर देता है। इसने कई मनुष्योंको अपनी शक्तिका चमत्कार दिखाया है। एक दिन इसने कई पहिरेवालोंको पटक दिया था। स्वामीजीकोभी यह कपोल कल्पित कथायें सुनाई गई। महाराजने हंसकर कहा, "मैं रातदिन भैरवके सिरपर बैठा उसका और उसके साथी देवताओंका खण्डन करता रहता हूं। यदि इसमें कोई सत्ता है तो मुझे तो उठाकर फेंकदे।"

एक दिन स्वामीजी गङ्गामें लेटे पड़े थे। एक बड़ा भारी मगर उनके अति निकट आ निकला। भक्त प्यारेलालजी स्वामीजीको संकटके समीप देख भागते हुए समीप आये और पुकारने लगे, "स्वामीजी ! झटपट पानीसे बाहर निकल जाइए; एक बड़ा भारी मगर निकल आया है।' महाराज यह सुनकर भी गम्भीरतासे ज्यों के त्यों पड़े रहे और बोले, 'जब हम इसे कुछ नहीं कहते तो यह भी हमें कुछ न कहेगा।

गङ्गामन्दिरके पुजारियोंको लोग गङ्गा-पुत्र कहते हैं। एक गङ्गा-पुत्र स्वामीजीके समीपही रहता था। उसके प्रातःकालके नैत्यिक कर्मोंमें यह भी एक कर्म था कि वह स्वामीजीसे थोड़ीदूर खड़ा होकर, नित्य नियमपूर्वक उन्हें गालियाँ सुनाया करता था। उसका यह पामरपनका पाठ बीसियों दिनोंतक निरन्तर होता रहा; परन्तु महाराजने उसे कभी कुछ भी तो नहीं कहा।

श्री स्वामीजीके पास नित्य अनेक भक्तजन आया करते थे। उनमेंसे कोई लड्डू भेंट कर जाता, कोई पेड़े चढ़ा जाता, और कोई बादाम मिश्री आदि भोज्य पदार्थ अर्पण कर जाता था। स्वामीजी महाराज ऐसे सम्पूर्ण पदार्थ अपने सत्संगियोंमें प्रसादरूपमें, वितरण कर दिया करते। एक दिन सायंकाल को

कुछ लड्डू पेड़े आदि पड़े रह गये। महाराज यह सोचही रहे थे कि ये उत्तम भोज्य पदार्थ किसे दें कि इतनेमें उन्होंने देखा कि वही गालीप्रदान करनेवाला गङ्गा-पुत्र सामनेसे जारहा है। उन्होंने उसे आदरसे अपने समीप बुलाकर प्रेमपूर्वक, वे सकल पदार्थ उसे दे दिये, और साथ ही कहा कि सायं समय नित्यही हमारे पास आया करो; हम तुम्हें पुष्कल खाद्य वस्तुयें दिया करेंगे।

जब छः सात दिनतक वह गङ्गा-पुत्र स्वामीजीसे मिष्ट मोदक पाता रहा और महाराजने उसकी गन्दी गालियोंकी एक बार भी बात न चलाई तो पश्चात्तापके उत्पन्न हो आनेसे उसका चित्त उसे भीतर-ही-भीतर कचोटने लगा। अन्तमें वह महाराजके चरणोंमें आ पड़ा और आँसू भरकर कहने लगा 'भगवन्! यदि मेरी कठोरताका कोई पार नहीं तो आपकी सहनशीलता भी असीम है। आपकी सुजनताने मेरी दुर्जनताको सर्वथा जीत लिया है। श्री-चरणोंमें मेरे पिछले सारे अपराध क्षमा किये जाँय।' महाराजने उसे आश्वासन और आशीर्वाद देकर कहा, "हमने आपके वचनोंको स्मृतिमें स्थान नहीं दिया है। आप भी अब उन गई-बीती बातोंको स्मरण न कीजिए।"

महाराज एक आदर्श संन्यासी थे। कानपुरमें उनके प्रेमियोंकी पंक्तिमें धनी लोग भी सम्मिलित हो गये थे। उनके भक्त उनके लिए सुखकी यथेष्ट सामग्री उपस्थित करनेको समुद्यत थे। परन्तु द्वन्द्वातीत भगवान् वहीं भैरव-घाटपर बिछौनेके बिना ही ऊंचे नीचे भूतलभागको शय्या बनाकर, मोटी २ ईंटोंको सिरहाने रक्खे सुखसे सो जाते थे। जलके लिए एक कलसा और एक कौपीन एक प्रेमी अत्याग्रहसे उनके स्थानपर रख गया था।

उस समय भक्तोंमें शिरोमणि हृदयनारायणजी थे। ये अपने भाइयोंसहित अपने भक्तिभाजनकी सेवा-सुश्रूषामें तत्पर रहते। महाराजके कानपुर वासमें सेवा करनेका अधिक सौभाग्य हृदयनारायणजीको ही प्राप्त हुआ था। जैसे सूर्यदेवकी किरण चन्द्रमाको प्रकाश प्रदान कर उसे चमका देती है, वैसे ही गुरुदेवके शुभ सत्संगसे हृदयनारायणजीका हृदय भी उज्वल हो गया था।

संस्कृत भाषाका अध्ययन विशेष न करनेपर भी वे देववाणीमें बोलने तक लग गये थे। हृदयनारायणजीसे श्री स्वामीजी विपुल प्रेम भी करते थे। परन्तु जब उन्होंने पूछा कि भगवन्! सुना है अब आप इस स्थानसे जाना चाहते हैं; किस दिन प्रस्थान कीजियेगा? तो महाराजने उत्तर दिया कि मैं नहीं बता सकता। लोगोंने पत्रव्यवहारका पता माँगा तो भी किसीको कुछ नहीं बताया जिस दिन स्वामीजीको प्रस्थान करना था रसोइएने पूछा कि भगवन्, भोजन बनाऊँ, तो महाराजने उसे न कर दी। वे लोटा और नई कौपीन वहीं छोड़-कर चुपचाप चले गये। अधिक दिन चढ़नेपर प्रेमी जन श्रीदर्शनोंको आये तो स्वामीजी आसनपर न थे। भक्तजन, इस विचारसे कि सम्भव है श्रीमहाराज दूरतक भ्रमण करने निकल गये हों और देरसे आयँ, दर्शनोंकी लालसासे वहीं बैठ गये। जब प्रतीक्षा करते करते सायंकाल हो गया और श्री स्वामीजी न लौटे तो भक्तोंने समझ लिया कि जिनकी मोहिनी मूर्तिको, तीन मासतक, अपने मनोमन्दिरमें अति ममताके साथ हम पूजते रहे हैं वे इतने वीतराग हैं, इतने निर्मम हैं कि चुपचाप प्रस्थान कर गये हैं। अन्तमें बड़े उदास भावसे वे सब अपने अपने घरोंको लौट आये।

कानपुरसे चलकर श्री स्वामीजी शिवराजपुर, फतेपुर और मिर्जापुर आदि स्थानोंमें उपदेश देते हुए प्रयाग पधारे। वहां एक शिवसहाय नामका ब्राह्मण रहता था। उसने वाल्मीकी रामायणपर टीका रची थी। स्वामीजीने पहले वह टीका मंगाई। उसे देखनेके पश्चात् उसके रचयिताको अपने पास बुलवाया और उसकी रची हुई टीकामें अनेक दोष प्रदर्शित किये। शिवसहाय था बड़ा अभि-मानी। अपने दोषोंको स्वीकार करना तो दूर रहा, वह उलटा शास्त्रार्थपर उतर आया। थोड़े ही समयमें, वादीगज-केसरी दयानन्दने शिवसहायके घमण्ड घटा-टोपको अपने पाण्डित्यकी प्रबल पवनसे छिन्न भिन्न कर दिया। वह ब्राह्मण, बादमें इतना लज्जित और स्वामीजीसे इतना भयभीत हुआ कि स्थान छोड़कर काशीकी ओर भाग निकला! स्वामीजी भी उनके पीछे पीछे हो लिये।

काशी काण्ड ।

पहला सर्ग ।

आश्विन वदी १ सं० १६२६ को श्री स्वामीजी रामनगर पहुंचे । पहली रातको; राजवाटिकाके समीप, मिट्टीके एक ढेलेको सिरके नीचे रख रेतीहीमें सो रहे, सवेरे नित्य कर्मोंसे निवृत्त हो जब एक स्थानपर विराजमान हुए तो दर्शकोंका आना जाना आरम्भ हो गया। महाराजको ज्ञात था कि शिवसहाय काशीनरेशके पास आकर छिपा बैठा है। इसलिए उन्होंने उसकी टीकाका खण्डन करना आरम्भ कर दिया; यहाँ तक, वे राजा महाशयके द्वारपर जाकर खड़े हो गये। जो भीतर जाता उसे कहते कि शिवसहाय भीतर छिपा हुआ है उसे बाहर निकालो। वह इन बातोंसे इतना लज्जित और अपमानित हुआ कि वहाँसे घर भाग गया। गङ्गाके तटपर राजाजीकी हस्तिशाला थी। स्वामीजी उसीके एक स्थानमें टिक गए।

मूर्ति-पूजनका खण्डन रातदिन होता रहता था। लोगोंको सन्ध्या आदि कर्म करनेकी प्रेरणा होती रहती। महाराजकी विद्याकी शुभ्र ज्योत्स्ना काशी-वासी पण्डितोंके मन्दिरों और पाठशालाओंमें भी अपनी छटा दिखाने लगी। वहां भी उनकी विद्वत्ताकी, उनके तर्ककी, उनकी खण्डन-शैलीकी चर्चा चलती रहती। एक धुरन्धर विद्वान्, पण्डित ज्योतिःस्वरूप काशीमें वास करते थे। वह उदासीन साधु थे। श्री अविनाशीलाल खत्री और श्रीहरवंशलाल, ये दो प्रतिष्ठित सज्जन एक दिन, ज्योतिःस्वरूपजीके पास जाकर कहने लगे कि हमने सुना है दयानन्द नामके एक संन्यासी रामनगरमें आए हैं वे पुराण और मूर्ति-पूजन आदिका अति खण्डन करते हैं। आप हमारे साथ, उनके पास चलिए। हम सत्य जाननेके उत्सुक हैं।

पण्डित ज्योतिःस्वरूपजी प्रसन्नता-पूर्वक अपने प्रेमियोंके साथ स्वामीजीके

समीप आये और यथाविधि नमस्कार करके बैठ गए। वे तीनों दो घण्टेतक श्री-कथनोंको श्रवण करते रहे। ज्योतिःस्वरूपजी स्वामीजीके निर्मल विचारोंसे, अनुपम ज्ञानसे और कुशाग्र बुद्धिसे बहुत प्रभावित हुए। उनके हृदय-सरोवर में उसी समय, स्वामीजीके लिए अनुरागकी लहरें उठने लगीं। उनके दोनों साथियोंने कहा कि महाराजके कथनपर आप भी कुछ किन्तु परन्तु कीजिए। पर उन्होंने कहा कि श्री स्वामीजी जो कुछ कहते हैं वह सब सत्य शास्त्रानुकूल है, फिर मैं क्या कहूं ?

महात्मा ज्योतिःस्वरूपजी चौदह दिनपर्यन्त निरन्तर स्वामीजीकी संगतिमें आते रहे और उनके विचारोंके अनुकूल हो गए।

पण्डित ज्वाहरदासजी भी, स्वामीजीके मिलापार्थ रामनगरमें आया करते थे और उनके हितेच्छुक बन गये थे।

महाराजा ईश्वरीनारायणसिंहजीको भी पता लग गया कि एक अतुल प्रतिभाका धनी संन्यासी यहाँ ठहरा हुआ है और प्रतिमा पूजन आदिको वेद-विरुद्ध बताता है। उन्होंने स्वामीजीके भोजनका पूर्ण प्रवन्ध करनेकी आज्ञा कर दी और स्वामीजीको लिवा लानेके लिए एक चौबेको भेजा। महाराजने कहा कि मुझे महाराजाके समीप जानेकी कोई आवश्यकता नहीं, परन्तु यदि उन्हें कुछ पूछना है तो वे, जब चाहें आ सकते हैं।

श्री स्वामीजी राम-लीलाका खण्डन करते थे। एक दिन, महाराज निर-ञ्जनानन्दजीके पास गौ-घाटपर बैठे थे। वहाँ काशीनरेशभी आ निकले। शिष्टा-चारके पश्चात् महाराजाने, निरञ्जनानन्दजीसे पूछा कि स्वामी दयानन्दजी कहते हैं, वेदमें मूर्तिपूजन और रामलीला नहीं है; इसमें आपकी क्या सम्मति है ? उन्होंने उत्तर दिया कि वेदमें तो नहीं, परन्तु लोकाचार चला आता है। इस लिए इसे चलायेही रखना चाहिए। इस उत्तरसे महाराजा अति असन्तुष्ट हुए।

महाराजाके दूसरे भाई वैरागी थे, इस कारण वैरागियोंका वहां बड़ा बल था। एक दिन, साठके लगभग वैरागी इकट्ठे होकर स्वामीजीपर चढ़ आये

और बहुत देर तक गालियां देते रहे। महाराजने उनके इस अज्ञान-काण्डपर ध्यान तक भी न दिया।

यह बात, महाराजा श्री ईश्वरीनारायणसिंहजीको भी विदित हो गई। उन्होंने वैरागियोंको कहला भेजा कि स्वामीजीसे शास्त्रार्थ तो जिसका जी चाहे करे, परन्तु गाली देना अच्छा नहीं है। वे हमारे यहां ठहरे हुए हैं, उनका अपमान करना हमारा ही अपमान है।

महाराजने स्वामीजीको रामलीला देखनेके लिये भी आहूत किया। परन्तु स्वामीजी वहां नहीं गये और बोले कि ऐसी लीलायें देखना संन्यासियोंका काम नहीं है।

रामनगरमें निवास करके स्वामीजीने काशीके पण्डितोंके विद्याबलका शास्त्र-सामर्थ्यका और गति-मतिका पूर्ण परिमाण जान लिया। उनकी कोटियोंके दुर्गों के भेदोंको समझ लिया। पौराणिक महादुर्गके दो धुरन्धर विद्वान् वीर—पण्डित ज्योतिःस्वरूप और ज्वाहरदासजी—अपने पोषक बना लिये, और फिर एक अस्त्र-शस्त्रसम्पन्न सेनापतिकी भांति, शास्त्रसन्नद्ध होकर काशी जानेके लिये उद्यत हो गये। रामनगरसे जब स्वामीजी चलने लगे तो महाराजा ईश्वरीनारायण-सिंहने उन्हें कहला भेजा कि यहांसे हमारी नौकामें बैठकर जाइए और काशी-जीमें जाकर हमारे ही उद्यानमें निवास कीजियेगा। परन्तु महाराज उनकी दोनों बातोंको अस्वीकार कर वहांसे चल पड़े।

भारत भूमिमें काशी नगरी चिरकालसे अपनी महत्त्वमालाको अम्लान लिये चली आती है। आर्यों के इतिहासमें यह सदा विद्यापीठ ही बनी रही है। श्रौत, स्मार्त और दार्शनिक ग्रन्थोंको रहस्यों सहित जैसा इस स्थानमें अध्ययन कराया जाता रहा है वैसे उत्तम अध्ययनका सौभाग्य किसी दूसरे स्थानको कदाचित् ही मिला होगा। संस्कृत भाषा और संस्कृत साहित्यको सजीव रखनेसे काशी भूखण्डने अपनी कीर्तिको अखण्ड रूपसे स्थापित कर दिया है। यह भूप्रदेश आर्य धर्मका, आर्य विद्याका, आर्य आचारका और आर्य सभ्यताका पूर्वसमयोंमें

जैसा आदर्श था वैसा ही, पौराणिक कालमें पौराणिक धर्मकाभी प्रमाणरूप वन गया है। अब भी भारतके प्रत्येक भागसे सहस्रों विद्यार्थी यहां आकर विद्याध्ययन करते हैं। बीसियों विद्वान् साधारणसी वृत्ति लेकर विद्याध्ययन कराते हैं। सैकड़ों कोसोंसे आकर जिस त्याग भावसे, जिस सादा रहन सहनसे, जितने सहस्र विद्यार्थी, इस गये बीते समयमें भी भारतके इस एक नगरमें विद्यालाभ कर रहे हैं उसका दृष्टान्त दूसरे देशोंकी अति सम्पतिसम्पन्न जातियोंमें भी मिलना दुर्लभ है।

स्वामी दयानन्दजीका काशीमें आनेका यह प्रयोजन था कि यहांके पण्डित समूहमें उत्तेजना उत्पन्न करके उनमें आन्दोलनका भाव उत्पन्न करें। उन्हें जाग्रत अवस्थामें लायें, जिससे काशीवासी पण्डितगण अपने महत्वको, अपने सामर्थ्यको, अपने कर्तव्य कर्मको और निरन्तर चले आनेवाले अपने विमल यशको जान जायँ अपने चित्त-दर्पणपरसे पौराणिक परदेको उठाकर वैदिक धर्मके सच्चे स्वरूपका दर्शन कर सकें, आर्य जातिकी वास्तविक दशाको अच्छी तरह देख सकें।

स्वामीजी महाराजके दिव्य नेत्रोंसे यह भेद छिपा नहीं रह सकता था कि भारत भरमें जो देवमालाके एकसे गीत गाये जाते और एक स्वर होकर पौराणिक माहात्म्य मनाये जाते हैं। इसका अधिकांश कारण काशी है। विद्यार्थीजन वर्षों के काशीवाससे पौराणिक कल्पनाओंमें ऐसे घुट जाते हैं कि ये सैकड़ोंकी संख्यामें, प्रतिवर्ष पुराण-प्रचारक बनकर निकलते हैं। यदि काशीमें सुधार और नया संस्कार आजाय तो देश देशान्तरोंसे आये हुए विद्यार्थी विद्योत्तीर्ण होकर अपने अपने प्रान्तोंको एक भाषा एक धर्म, एक आचार-विचार, एक रीति-नीति और एकताके सूत्रमें पिरोकर एक सुन्दर माला बनानेके एक अत्युत्तम साधन वन सकते हैं।

कार्तिक वदी २ सं० १९२६को श्रीस्वामीजी काशी नगरमें सुशोभित हुए। राजा माधोसिंहके आनन्दोद्यानमें आसन किया। उनके शुभागमनका समाचार तार-समाचारकी भांति सारी काशी नगरीमें तुरन्त फैल गया। पण्डित श्रीज्वाहरदासजी और ज्योतिःस्वरूपजीको ज्योंही समाचार प्राप्त हुआ वे तत्काल महारा-

जके स्थानपर मिलने आये। अन्य पण्डित लोगभी मण्डलियाँ बनाकर आने और प्रश्न पूछकर अपने भ्रम निवारण कराने लगे। महाराजके समीप दिनभर विद्यार्थियोंकी, पण्डितोंकी, वादविवाद-प्रिय विद्वानों और जिज्ञासु जनोंकी भारी भीड़ लगी रहती थी। लोग चिढ़ाने और खिजानेकी भी चेष्टा करते थे। व्यर्थ वादमें समय बिताते थे; कुटिल कटाक्षोंकी व्यंगवर्षा भी करते थे। परन्तु आचार्य्य दयानन्दजी सबको गम्भीरतासे उत्तर देते थे। और दुर्वादियों तकका भी मुंह बंद करके छोड़ते थे। चिढ़ने और खिजनेकी उनकी प्रकृतिही में कोई स्थान न था। उकताना और थकना मानो वे जानते ही न थे। वे अकेले परन्तु अपने अलौकिक साहससे आठ आठ घण्टे तक लगातार वादी-दिग्गजोंके साथ जूझते रहते थे, श्रोताओंको उपदेश देते चले जाते थे।

उदासीन साधु मायारामजीने स्वामीजीसे पूछा कि शङ्कर तो वेदान्त भाष्य में ब्रह्म-सूत्र अद्वैतपर लगाते हैं और रामानुज आदि अपने भाष्योंमें जीव ब्रह्म का भेद वर्णन करते हैं; इनमेंसे किसका पक्ष सत्य समझा जाय ?

स्वामीजीने उत्तरमें कहा कि दोनोंका ही पक्ष ठीक नहीं। ईश्वर सर्वव्यापक है इसलिए अभेद ठीक है और जीव एकदेशीय है, इसलिए भेद सत्य है। जो एक एक पक्षको पकड़कर खींचातानीकर रहे हैं, उनका निश्चय मिथ्यामूलक है।

स्वामीजीके समीप ही दुर्गा-मन्दिर था। मन्दिरमें आनेजानेवाले लोग स्वामीजीके उपदेशोंको भी सुना करते थे। स्वामीजीके कथनका इतना प्रभाव पड़ा कि, मन्दिरमें जानेवालोंकी संख्या और मन्दिरकी आय दिनों दिन घटने लगी। एक दिन पुजारियोंने स्वामीजीसे आकर प्रार्थना की कि महाराज ! आपके यहाँ रहनेसे तो हमारी आजीविका मारी जायगी, इसलिये, अब कृपा करके आसन किसी दूसरे स्थानपर लगा लीजिये। स्वामीजी उनके ऐसे कथनपर हँस पड़े।

दूसरा सर्ग ।

महाराजने काशी-नरेशको कहला भेजा, "आपका कर्त्तव्य है कि मूर्तिपूजा आदि विषयोंपर शास्त्रार्थ कराकर सत्यासत्यका निर्णय करायें ।" इधर महाराजा स्वयंभी पुराण-खण्डनके अखण्ड पाठसे घबरा उठे थे । इस लिए, उन्होंने पण्डितोंको बुलाकर शास्त्र-समरके लिए सुसज्जित होनेकी प्रेरणा की । पण्डितोंने महाराजासे निवेदन किया कि स्वामी दयानन्द वेदोंके प्रमाण पूछा करता है, इसलिए वेदोंके प्रमाण आदि एकत्रित करनेके लिये पन्द्रह दिनका अवकाश मिलना चाहिए । पण्डितोंको मुँह माँगा अवकाश मिल गया और वे शास्त्रार्थमें सफलता प्राप्त करनेके ढँग सोचने लगे । स्वामीजीका विद्या-बल जाँचनेके लिए विद्यार्थी और पण्डित भी आते थे । और अनेक प्रकारसे प्रश्न करते करते अन्तमें हार जाते थे, परन्तु वे उस अथाह ज्ञान-गङ्गाकी थाह नहीं पा सकते थे । कहते हैं कि एक दिन, राजारामशास्त्री भी गेरुए वस्त्र धारण करके स्वामीजीके पाण्डित्यको परीक्षा लेने आये; परन्तु आगे वह पानी न था, जिसकी पैंदीतक वे पहुंच सकते ।

पण्डित मण्डलीने कुछ बातें जाननेके लिए शालिग्राम राजशास्त्री आदि चार पण्डितोंको स्वामीजीके निकट भेजा । उन्होंने आकर नमस्कार आदिके अनन्तर कुछ प्रश्न किये, परन्तु उस समय उनको उत्तर देना उचित न समझा गया । अतः वे लौट गये । नगरके कोतवाल महाशय स्वामीजीका बड़ा आदर करते थे उनके आग्रह करनेपर स्वामीजीने पण्डितोंको उत्तर देना मान लिया ।

उन शास्त्रियोंने फिर आकर पूछा कि आप कितने ग्रन्थ प्रामाणिक मानते हैं ? स्वामीजीने उत्तरमें चार वेद, चार उपवेद, छः वेदाङ्ग, छः उपाङ्ग और मनुस्मृति ये २१ ग्रन्थ लिख दिये । उन्होंने फिर पूछा कि यही ग्रन्थ प्रामाणिक हैं इसमें क्या प्रमाण है ? मनुस्मृतिमें कितने श्लोक मानते हो ?

स्वामीजीने कहा कि इन प्रश्नोंका उत्तर शास्त्रार्थके समय दिया जायगा तत्पश्चात् पण्डित लोग वहाँसे चले गये।

महाराजा ईश्वरीनारायणसिंहने पण्डितोंकी दान-दक्षिणाका सारा बोझा अपने ऊपर लिया और शास्त्रार्थकी तिथि कार्तिक सुदी द्वादशी सम्वत् १९२६ नियत कर दी। इसकी सूचना कलेक्टर महाशयको भी दी गई। इसपर उन्होंने कहा कि शास्त्रार्थ यदि आदित्यवारको होता तो हम भी सम्मिलित होसकते थे। परन्तु, वहाँ तो सोच समझकर, इसीलिए मङ्गलवार नियत हुआ था कि राजकर्मचारियोंको उपस्थितमें गोलमाल करना कठिन होजायगा। शास्त्रार्थ किस स्थानपर हो इसका निश्चय करनेके लिए कोतवाल रघुनाथसहाय स्वामीजीके समीप आये। पूछनेपर उन्होंने उसे कहा कि विवश करके हमें कोई चाहे कहीं ले जाय परन्तु मैं संन्यासी हूं, अपनी इच्छासे किसीके स्थानपर जाकर उत्तर प्रत्युत्तर नहीं करूंगा। मैं शास्त्रार्थके लिए किसीके भी स्थानपर नहीं आया करता। यहां भी, जिसका जी चाहे मेरे ही आसनके पास आकर प्रश्न पूछे।

स्वामीजीका उत्तर सुनकर, काशीराजने भी आनन्द उद्यानमें अपने दलबल सहित जाना स्वीकार कर लिया।

स्वामी दयानन्दके साथ काशीके सारे पण्डितोंका शास्त्रार्थ होगा, इस समाचारकी सारे नगरमें धूम मच गई। घाटोंपर, अन्नसत्रोंमें, पाठशालाओंमें, मन्दिरोंमें, गृहस्थोंके घरोंमें, गली-कूचेमें, बाजार और कचहरीमें जहां जाओ इसी नूतन विषयपर बात होती सुनाई देती थीं। महात्मा ज्वाहरदासजीने स्वामीजीको कहा, "काशीमें तो अनेक पण्डित हैं, आप किसे किसे जीतेंगे? सबको कैसे परास्त करेंगे?" उन्होंने उत्तर दिया, "काशीके सकल विद्वन्मण्डलमें दक्षिणी बालशास्त्री ही ऐसा है, जो कुछ कालतक हमारे साथ वार्त्तालाप कर सकेगा; शेष तो सब काकभाषामें—नवीन न्यायादिमें—ही निपुण हैं। वेदार्थमें उनकी गति नहीं है।"

कार्तिक सुदी द्वादशी, मङ्गलवारके दिन, प्रातःकालहीसे सारे काशी नगरमें

एक विचित्र हलचल मच गई। काशी नरेशके यहांसे पालकियाँ, चँवर, छत्र इत्यादि पण्डितोंके निवास-स्थानोंपर पहुंचाये जा रहे थे। विश्वनाथ और दुर्गा आदिके मन्दिरोंमें विजयके लिये प्रार्थनायें हो रही थी। पण्डित लोग परस्पर मिलकर स्वामीजीको जीतनेके लिये न्यायकी पंक्तियाँ, व्याकरणकी फक्किकायें, वेदान्तकी कोटियां, चातुर्यकी अनेक चालें और प्रवंचनाकी चोटें चलानेके ढँग सोच रहे थे, श्रुति, स्मृति आदिके प्रमाण एकत्रित करनेमें लगे हुए थे।

श्री काशीधाममें जहां प्रवर पण्डित निवास करते हैं वहां परले सिरेके दुर्दण्ड उपद्रवियोंकी भी कुछ न्यूनता नहीं। उस समय, ऐसे लोग भी स्वामी-चरणोंको पीड़ा देनेके लिए, अपने षड्यन्त्रका ताना बाना तन रहे थे।

पूर्वोक्त दृश्यको देखकर भक्त बलदेवका हृदय थरथरा उठा। उसने अति शीघ्रतासे स्वामीजीके निकट पहुंचकर निवेदन किया, "महाराज! आज आपके स्थानपर सहस्रों मनुष्योंका जमघटा लगेगा। उसमें केवल हुल्लड़ मचानेके लिए भी कुछ उद्दण्ड जन आयँगे। यदि फरुखाबाद होता तो ऐसे समयमें श्रीचरणोंके समीप भी बीस पच्चीस सेवक बैठ जाते। परन्तु यहाँ तो उपद्रव होनेकी बड़ी भारी आशङ्का है।"

महाराजने मुस्कराकर कहा, "बलदेव! कुछ भी चिन्ता न कीजिए। योगी-जनोंका यह दृढ़ विश्वास है कि अविद्याकी तमोराशिको सत्यका सूर्य, अकेलाही तुरन्त जीत लेता है। बलदेव! जो मनुष्य पक्षपातका परित्याग करके केवल लोकहितके लिए, ईश्वरकी आज्ञानुसार सत्योपदेश करता है उसे भय कहाँ है? सत्पुरुष किसीसे भयभीत होकर सत्यको नहीं छुपाया करते। जीवन जाय तो जाय, परन्तु वे अन्तरात्माके आदेश—सत्य—को नहीं छोड़ते। बलदेव! चिन्ता किस बातकी है? एक मैं—आत्मा—हूं, एक परमात्मा है और एक ही धर्म्म है। दूसरा है कौन, जिससे डरें और काँपें? उन सबको आ जाने दो। जो कुछ होगा उसी समय देख लिया जायगा।"

महाराजने इस प्रकार बलदेवको धैर्य्य प्रदान किया। फिर क्षौर कराकर

स्नान किया। तत्पश्चात्, वे भोजन पाकर चटाई पर बैठ गये।

उधर पण्डितोंको सवेरेसे सुसज्जित होते दिनका तीसरा प्रहर आगया। उस दिन पाठशालाओंमें अनध्याय किया गया था। इसलिए, नए और पुराने सभी विद्यार्थी, लम्बी लम्बी पंक्तियां बाँधकर अपने अपने गुरुओंके निवास स्थानोंके आगे उपस्थित हो गये और जय-ध्वनिसे ऊंची अट्टालिकाओंको प्रतिध्वनित करने लगे। नियत समयपर, शकुन मना और मङ्गलोपचार कर सभी पंडितगण अपनी अपनी पालकियोंमें आरूढ़ हो गये। उनके सिरोंपर छत्र और चँवर झूलने लगे। गुरुजनकी आज्ञासे विद्यार्थीगण जय-नादसे मन्दिर मालाओंको और बाजारके दोनों ओरकी दुकानोंको निनादित करते पालकियोंके आगे आगे चलने लगे। पंडितोंकी चढ़ाईको देखकर सारा नगर चलायमान हो गया। आनन्दउद्यानकी ओर उस दिन मानो जन-सागर उमड़ पड़ा। नाना भाँतिके साम्प्रदायिक चिन्होंसे सुसज्जित, साधु-संन्यासी भी टोलियाँ बनाकर उसी ओर चलने लगे। ऐसा प्रतीत होता था कि सब सम्प्रदायोंकी समुचित शक्ति अकेले दयानन्दपर चढ़ आई है। सारा पौराणिक बल, एकाकी परमहंसपर एक बार ही टूट पड़ा है।

काशी-नरेशसहित सैकड़ों विद्वान् अद्वितीय दयानन्दसे शास्त्रार्थ करनेपर उतारु हुए। उस पण्डित-सैन्यके प्रसिद्ध महारथी, स्वामी विशुद्धानन्दजी, बालशास्त्री, शिवसहाय, माधवाचार्य, वामनाचार्य्य, ताराचरण, जयनारायण तर्कवाचस्पति, राधामोहन तर्कवागीश और अम्बिकादत्तजी आदि सत्ताईस अट्ठाईस विद्वान् थे। ये लोग अपनी अपनी सेना-पंक्तिका संचालन करते बढ़ते चले आ रहे थे। परन्तु कोतवाल महाशय इन सबके पहिले ही श्री स्वामीजीके पास पहुंच गये। उन्होंने एक कोठरीके द्वारके निकट आसन बिछाकर उसपर स्वामीजीको बैठा दिया और उनके सामने एक आसन प्रतिपक्षी पण्डितके लिये लगा दिया। काशी-नरेशके लिये भी एक अलग आसन स्थापित किया गया। कोतवाल महाशयका, इस प्रकार केवल तीनही आसन लगानेका तात्पर्य यह था कि स्वामीजीके समीप एक समयमें केवल एक ही पण्डित बैठे, जिससे कोई कोलाहल न होने पाये।

कोतवाल महाशय अभी आसन-व्यवस्था कर ही चुके थे कि इतनेमें उमड़ा हुआ पण्डित-पूर आ पहुँचा, और लगा सारे स्थानको प्लावित करने। उन्होंने आते ही भीतर आनेके सभी मार्ग रोक लिये। वे स्वामीजीके सहायक पण्डित ज्वाहरदासजी तथा पण्डित ज्योतिःस्वरूपजी आदिको भी नहीं आने देते थे। स्वामीजीको एक भक्तने पत्र लिखकर सूचित किया कि हमें जान बूझकर भीतर आनेसे रोका जाता है। स्वामीजीने तब कोतवाल महाशयको कहकर अपने सहायक परमहंसोंको भीतर बुला लिया और पण्डित ज्वाहरदासजी तथा पं० ज्योतिः स्वरूपजीको अपने निकट बैठाया।

पंडित ज्योतिःस्वरूपजी एक प्रतिष्ठित और धुरन्धर विद्वान् थे। उनकी विद्याका लोहा सारे पंडित मानते थे। उन्होंने स्वामीजीके समीप बैठते समय यह कह भी दिया, "पंडित लोग पहले हमसे तो शास्त्रार्थ कर लें। यदि फिर भी उनमें कुछ शक्ति शेष रह जाय तो पीछेसे भले ही स्वामीजीसे प्रश्नोत्तर करनेको समुद्यत हों।

ज्योतिःस्वरूपजी काशीवासी पंडितोंकी नस नस और नाड़ी नाड़ीको जानते थे। वे यह भी जानते थे कि कौन कितने पानीमें है। इस लिये, उन्हें स्वामीजीके निकट बैठा देखकर पंडितोंका माथा ठनक गया। उनको अपने भेदों और चालोंके प्रकट हो जानेका खटका हो गया। वे यह सोच ही रहे थे कि ज्योतिः स्वरूपजीके पँजेसे कैसे छूटें कि उसी समय महाराजा ईश्वरीनारायणसिंह आ पहुँचे। महाराजाको आते देख सारे पंडितोंने उठकर उनको आशीर्वाद दिया और वे उनके साथ ही आगे बढ़ आये, यहाँतक कि उन्होंने स्वामीजीको घेर लिया।

यदि वे लोग इस पहिले नियमको तोड़नेपर ही सन्तोष करते तो भी कोई बात न थी, परन्तु उनकी आँखोंमें तो ज्योतिःस्वरूपजीका वहाँ बैठना काँटेकी भाँति रड़क रहा था। उन्होंने आशीर्वाद देते समय महाराजासे कह दिया, "एक तो दयानन्द स्वयं सिंहके सदृश है, उसका परास्त करना दुष्कर है, दूसरे व्याघ्र समान ज्योतिःस्वरूप उसके साथ बैठ गया है। उसकी उपस्थितिमें तो किसी भी चालसे जय-लाभ करना सम्भव नहीं।"

महाराजाने मर्मको समझ लिया और बैठते ही श्री ज्वाहरदास तथा श्री ज्योतिः-स्वरूपजीको कहा कि यह स्थान पंडितोंके लिये नियत है। आप इससे कुछ पीछे हटकर बैठें। इतनेसे भी प्रति पक्षियोंकी सन्तुष्टि नहीं हुई। उसके संकेतसे, महाराजाने ज्योतिःस्वरूपजीको पकड़वाकर वहाँसे बाहर कर दिया।

स्वामीजीने अपने सहायकोंको अपमानित होते देखकर इस अन्यायका घोर विरोध किया और उनकी इस धींगाधींगीपर घृणा प्रकट की। परन्तु, वे तो सभी एक ही रंगमें रंगे हुए थे। इस लिए फल कुछ भी न निकला। कोलवालने भी उपालम्भ रूपसे कहा कि हमारा किया नियम तोड़ दिया गया है, और इतने पंडित अकेले स्वामीजीको घेरकर बैठ गये हैं, यह सब अनुचित है। परन्तु उस समय तो उचितानुचितकी चर्चा कोई भी न सुनता था।

श्रीस्वामीजीने महाराजाको कहा कि अपने सरस्वती-भंडारसे पुस्तकें मंगा लीजिये। महाराजाके भाईने कहा कि पुस्तकें क्या करनी हैं? योंही शास्त्रार्थ होगा। स्वामीजीने फिर कहा कि क्या वेद मंगा लिए हैं? इसपर महाराजाने कहा कि वेदकी पुस्तकोंकी कोई आवश्यकता नहीं, वे तो हमारे पंडितोंके कंठाग्र हैं।

तत्पश्चात् कोतवाल श्रीरघुनाथसहायजीने सबको सुनाकर कहा, "शास्त्रार्थका यह नियम निश्चित हो गया है कि श्रीस्वामीजीके साथ एक समयमें एक ही पंडित शास्त्रार्थ करेगा। इस बीचमें दूसरा कोई भी न बोले।"

सबसे प्रथम पंडित ताराचरणजी नैयायिक स्वामीजीके सम्मुख हुए। स्वामीजीने उनसे पूछा, कि "क्या आप वेदोंको मानते हैं?" ताराचरणजीने कहा, "जो भी वर्णाश्रम-धर्ममें हैं वे सभी वेदको प्रामाणिक मानते हैं।" तब स्वामीजीने कहाः—'वेदमें पाषाण आदिकी मूर्त्तियोंके पूजनेका यदि विधान है तो उसका प्रमाण दीजिए, नहीं तो अप्रमाणता स्वीकार कीजिए।

ताराचरणः—'वेदमें मूर्त्ति-पूजनका प्रमाण है अथवा नहीं है, यह उसे कहा जाय, जो एक वेदको ही प्रमाण मानता हो।'

स्वामीजीः—'अन्य ग्रन्थ प्रमाण हैं अथवा अप्रमाण इसपर फिर विचार

किया जायगा। इस समय मुख्य प्रमाण तो वेद ही है। वेदोक्त कर्म्म ही मुख्य कर्म हैं, दूसरे ग्रन्थोंके बताये कर्म गौण हैं। वे वेदानुकूल होनेहीसे माने जा सकते हैं। इस लिए यदि वेदमें प्रतिमा-पूजन की आज्ञा नहीं है तो उसका पूजन नहीं करना चाहिए।'

ताराचरणजीः—'तो फिर आप मनुस्मृतिको वेद-मूलक कैसे मानते हैं?"

स्वामीजीः—'सामवेदके ब्राह्मणने कहा है कि जो कुछ मनुने वर्णन किया है वह औषधियोंका भी औषध है।'

विशुद्धानन्दजीने कहा, "रचनाकी अनुपपत्ति—असिद्धि होनेसे अनुमान-द्वारा वर्णित प्रधान, जगत् का कारण नहीं है; व्यासके इस सूत्रको वेदमूलक सिद्ध कीजिए।'

स्वामीजीः—'उपस्थित वादके भीतर यह प्रश्न नहीं आता।'

विशुद्धानन्दजीः—'प्रकरणसे बाहर है तो क्या हुआ? यदि, तुम्हें इसका समाधान आता है तो कह दो।'

स्वामीजीः—'इसका पूर्वापर पाठ देखकर समाधान किया जा सकता है।'

विशुद्धानन्दजीः—'यदि सब कुछ स्मरण नहीं था तो काशीमें शास्त्रार्थ करने आये ही क्यों थे?'

स्वामीजीः—'क्या आपको सब कुछ कण्ठाग्र है?'

विशुद्धानन्दजीः—हाँ हमें सब कुछ स्मरण है।

स्वामीजीः—तब बताइये धर्म्मके कितने लक्षण हैं?

विशुद्धानन्दजीः—जो वेदमें कहे फलसहित कर्म हैं वही धर्म्म हैं।

स्वामीजीः—यह तो आपका वाक्य है। कोई शास्त्रीय प्रमाण दीजिए।

विशुद्धानन्दजीः—धर्म्मका लक्षण प्रेरणा कहा गया है।

स्वामीजीः—यह तो ठीक है कि प्रेरणा धर्म्मका लक्षण है, परन्तु प्रेरणा कहते हैं श्रुति-स्मृतिकी आज्ञाको। सो श्रुति-स्मृतिकी प्रेरणामें धर्म्मके लक्षण कितने हैं, यह बताइये?

विशुद्धानन्दजीः—धर्म्मका एक ही लक्षण है।

स्वामीजीः—शास्त्रमें तो धर्म्मके दस लक्षण कहे हैं। तब आप एक कैसे कहते हैं?

विशुद्धानन्दजीः—धर्म्मके दस लक्षण किस ग्रन्थमें हैं?

उस समय स्वामीजीने मनु-स्मृतिमें वर्णित धृति आदि धर्म्मके दस लक्षणोंवाला श्लोक पढ़कर सुनाया। इसपर विशुद्धानन्दजी तो अवाक् हो गये; परन्तु बालशास्त्री कहने लगे, हमने सम्पूर्ण धर्म्मशास्त्रका अध्ययन किया है। इस विषयमें कुछ पूछना हो तो हमसे पूछिए।

स्वामीजीने कहा, बहुत अच्छा, आप अधर्म के लक्षण बताइए।

बालशास्त्री को इसका उत्तर कुछ भी न सूझा, इस लिए वे मौन हो गये।

अपने मुखिया सेनापतियोंके पाँव उखड़ते देख सारे पण्डित एक बार ही चिल्लाकर पूछने लगे, बताओ वेदमें प्रतिमा शब्द है अथवा नहीं।

स्वामीजीने शान्त भावसे उत्तर दिया, वेदमें प्रतिमा शब्द तो है।

फिर उन लोगोंने क्रमसे पूछा यदि वेदमें प्रतिमा शब्द है तो किस प्रकरणमें? और आप इसका खण्डन क्यों करते हैं?

स्वामीजीने उत्तरमें कहा प्रतिमा शब्द यजुर्वेदके ३२ वें अध्यायके तीसरे मन्त्रमें है। यह सामवेदके ब्राह्मणमें भी विद्यमान है। परन्तु पाषाण आदिकी प्रतिमाके पूजनका विधान कहीं भी नहीं है, इस लिए मैं इसका खण्डन करता हूं।

उनके पूछनेपर स्वामीजीने उन प्रकरणोंका विस्तारपूर्वक वर्णन कर दिया, जिसमें प्रतिमा शब्द आया है। इसपर उच्छृङ्खल पण्डित चुप हो गये।

इतने कालमें बालशास्त्रीजीको विश्राम मिल गया और वे फिर प्रश्न करने लगे। परन्तु दो तीन प्रश्न करके फिर मौनी बन गये। इसके पश्चात् विशुद्धानन्दजीने स्वामीजीसे पूछा, "वेद कैसे उत्पन्न हुए हैं?"

स्वामीजीः—वेदोंका प्रकाश ईश्वरने किया है।

विशुद्धानन्दजीः—वेदोंका प्रकाश किस ईश्वरसे हुआ है? न्यायवर्णित

ईश्वरसे, या योग-कथित ईश्वरसे अथवा वेदान्त-प्रतिपादित ईश्वरसे ?

स्वामीजीः—क्या आपके निश्चयमें अनेक ईश्वर हैं ?

विशुद्धानन्दजीः—ईश्वर तो एक ही है, परन्तु वेदोंके प्रकाशक ईश्वरका क्या लक्षण है, यह बताइए।

स्वामीजीः—उसका लक्षण है सच्चिदानन्द।

विशुद्धानन्दजीः—ईश्वर और वेदमें क्या सम्बन्ध है ?

स्वामीजीः—वेद और ईश्वरमें कार्य-कारणभाव सम्बन्ध है।

विशुद्धानन्दजीः—जैसे मनमें और सूर्य आदिमें ब्रह्मबुद्धि करके 'प्रतीक' उपासना करनी कही है वैसे ही शालिग्राम आदिमें ईश्वरभावना करके पूजनेमें क्या हानि है ?

स्वामीजीः—शास्त्रमें मन आदिमें ब्रह्मोपासना करनेका तो विधान है, परन्तु पाषाणादिमें उपासना करनेका वचन किसी भी शास्त्रमें नहीं मिलता।

यह उत्तर सुनकर विशुद्धानन्दजीको तो अपनी वाणीको विराम देना पड़ा परन्तु माधवाचार्यने पूछा, "उद्बुध्यस्वाग्ने" इस मन्त्रमें जो 'पूर्त' शब्द पड़ा है उसका आप क्या अर्थ करते हैं ? और मूर्ति-पूजन अर्थ क्यों नहीं करते ?

स्वामीजीः—यहां 'पूर्त' शब्दसे कूआं, तड़ाग, वापी और उद्यान आदि लोक-हितकर कार्योंका ग्रहण किया जाता है। 'पूर्त' शब्द 'पूर्ति'का वाचक है। इससे मूर्ति-पूजाका ग्रहण कदापि नहीं हो सकता। विशेष जानना चाहते हो तो इस मन्त्रका निरुक्त और ब्राह्मण देख लीजिये।

मूर्ति-पूजनके पक्षमें माधवाचार्य निरुत्तर हो गये और किञ्चित् विश्राम लेकर फिर पूछने लगे, "पुराण शब्द वेदोंमें आया है कि नहीं ?"

स्वामीजीः—पुराण शब्द तो वेदके अनेक स्थलोंमें विद्यमान है, परन्तु वह है पुरातन कालका वाची सनातन अर्थका बोधक। उससे ब्रह्मवैवर्त और भागवतादि पुराण ग्रन्थोंका ग्रहण नहीं हो सकता।

विशुद्धानन्दजीः—बृहदारण्यक उपनिषद्में 'पुराण' शब्द आया है, वह

आपको प्रमाण है कि नहीं ? यदि प्रमाण है तो बताओ, वहां 'पुराण' शब्द किसका विशेषण है ?

स्वामीजीः—बृहदारण्यकका 'पुराण' शब्द मुझे प्रमाण है, परन्तु वह किसका विशेषण है यह, पुस्तक दिखाइए, बतादूंगा !

तब, जो पुस्तक लाकर स्वामीजीको दिखाने लगे वह बृहदारण्यक नहीं थी, किन्तु गृह्यसूत्रका एक ग्रन्थ था ! माधवाचार्यने उस ग्रन्थका पन्ना पकड़कर कहा, 'इसमें पुराण शब्द किसका विशेषण है ?'

स्वामीजीः—पाठ तो पढ़िये।

माधवाचार्यजीने 'ब्राह्मणानीतिहासपुराणानीति' यह पढ़कर सुनाया।

स्वामीजीः—यहां 'पुराण' शब्द 'ब्राह्मण' शब्दका विशेषण है। इसका तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण पुरातन अर्थात् सनातन हैं।

बालशास्त्रीजीः—क्या कोई ब्राह्मण नूतन भी हैं ?

स्वामीजीः—ब्राह्मण नवीन तो नहीं हैं, परन्तु किसीको सन्देह करनेका अवकाश ही न मिले, इस लिए यह विशेषण रक्खा गया है।

विशुद्धानन्दजीः—इस पाठमें ब्राह्मण और पुराण इन दो शब्दोंके बीच इतिहास शब्द व्यवधान रूप पड़ा है, इसलिये 'पुराण' शब्द विशेषण नहीं हो सकता।

स्वामीजीः—यह कोई भी नियम नहीं है कि व्यवधान हो पर विशेषण न हो सके। देखिए, भगवद्गीताके 'अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे' इस श्लोकमें विशेषण कितना दूर पड़ा है।

विशुद्धानन्दजीः—"इतिहासपुराणानि" इस पाठमें यदि 'इतिहास' शब्दका 'पुराण' शब्द विशेषण नहीं है तो क्या इससे यहां नवीन इतिहास ग्रहण करोगे ?

स्वामीजीः—'इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः' छान्दोग्यके इस पाठमें 'पुराण' शब्द 'इतिहास' शब्दका विशेषण है।

इसपर वामनाचार्य आदि अनेक पण्डित कहने लगे कि यह पाठ उपनिषद्में

नहीं है। स्वामीजीने उनको बलपूर्वक कहा मैं लिख देता हूं और आप भी लिख दीजिये कि यदि ऐसा पाठ उपनिषद्में निकल आए तो आपकी हार समझी जाय और यदि न निकले तो आपकी जय।

यह सुनकर सबके मुख बन्द हो गए और कितनी ही देरतक सारे सभा-स्थलमें एक सन्नाटा सा छाया रहा। जब देर तक किसीने कोई प्रश्न न किया तो विद्यावारिधि दयानन्दने सब पण्डितोंको ललकार कर कहा, आपमेंसे जो व्याकरण जानते हैं वे बतायें कि व्याकरण में कहीं 'कल्म' संज्ञा की गई है अथवा नहीं ?

बालशास्त्रीजी:—संज्ञा तो नहीं की है, किन्तु एक स्थलमें एक भाष्यकारने उपहास अवश्य किया है।

स्वामीजी:—आप अपने कथनकी पुष्टिमें कोई प्रमाण उपस्थित करें और बतायें कि भाष्यकारने कहां उपहास किया है।

यह कथन सुनकर बालशास्त्री चुप हो गए और दूसरे पण्डितोंकी भी मौन मुद्रा किंचिन्मात्र भंग न हुई।

चार घण्टों तक निरन्तर शास्त्र-समरमें पौराणिक दलका प्रत्येक अगुआ आगे बढ़कर स्वामीजीसे युद्ध करता रहा और अन्तमें महाराजकी अकाट्य युक्तियोंके तीक्ष्ण तीरोंसे, उनके प्रबल प्रमाणोंके परमास्त्रोंसे हत-प्रतिहत होकर—परास्त होकर—पीछे लौट आता रहा। इतनी बड़ी संख्यामें, ऐसी बड़ी सभामें इतना बड़ा उद्योग करनेपर भी इतने बड़े विद्वानोंका, इस प्रकार ऐसा पराजय इस नगरीमें पहले कदाचित् ही हुआ होगा।

सारे महारथी सकल सामर्थ्यसे भी जब सफल न हुए तो काशीके महा-मल्लोंने कूटनीति और दाँव-पेच चलानेकी सोची। उस समय सूर्य अस्त हो गया था। धीरे धीरे अंधकार गाढ़तर होता चला जा रहा था। ऐसे समयमें, माधवाचार्यने वेदके नामसे दो पत्रे निकालकर पण्डितोंके मध्यमें रख दिये और कहा यहाँपर लिखा है कि, यज्ञकी समाप्तिपर यजमान दसवें दिन पुराणोंका

पाठ श्रवण करे। अब स्वामीजी! बताइए कि यहां पुराण किसका विशेषण है?

स्वामीजीः—आप पाठ पढ़कर तो सुनाइए।

विशुद्धानन्दजीने पन्ने पकड़कर स्वामीजीकी ओर किए और कहा आप ही पढ़ लीजिए।

स्वामीजीने पन्ने विशुद्धानन्दजीको लौटा दिए और कहा कि आपही पढ़कर सुनाइए; विशुद्धानन्दजीने फिर उन्हें स्वामीजीके हाथमें दे दिया और कहा कि मैं चश्मेके बिना नहीं पढ़ सकता, इसलिए आपहीको पढ़ना होगा।

स्वामीजीने वे पन्ने हाथमें ले लिए परन्तु अंधेरेके कारण अक्षर स्पष्ट नहीं दिखाई देते थे, इसलिए दीपक मंगाया गया। उन पत्रोंपर वेदका कोई नाम न था! मण्डल अध्याय और मन्त्र आदिका भी कोई पता न लगता था। इसलिए स्वामीजी 'दशमेऽहनि किंचित्पुराणमाचक्षीत' इस पाठके पूर्वापरको, ग्रन्थके नाम और प्रकरणको सोचने लगे। स्वामीजीको विचारते हुए कुछ बहुत पल न होने पाए थे कि श्री विशुद्धानन्दजी यह कहकर उठ खड़े हुए कि अब सन्ध्याका समय होगया है; इन्हें अधिक कष्ट भी नहीं देना चाहिए। परन्तु स्वामीजी उनका हाथ पकड़कर बल देते थे कि बैठ जाइये। निर्णय किये बिना, बीचहीमें उठ खड़े होना आप ऐसे विद्वानोंको कदापि उचित नहीं। परन्तु विशुद्धानन्दजीने बैठना स्वीकार न किया और उपहासमें स्वामीजीकी पीठपर हाथ फेरकर कहने लगे कि अब बैठिये, जो कुछ होना था सो तो हो चुका।

विशुद्धानन्दजीके सङ्केतसे महाराजा ईश्वरीनारायणसिंहजी भी उठ खड़े हुए और अपनी जय प्रख्यात करनेके लिये करतालिका बजाने लगे। महाराजाके अनुकरणमें सारे पण्डित तालियां पीटते और जयजयनाद करते हुए एकाएक उठ खड़े हुए। पचास साठ सहस्र मनुष्योंके सभा-सागरमें बड़ा भारी क्षोभ उत्पन्न हो गया। सर्वत्र गड़बड़ मच गई। उस समय, अविवेकी मनुष्योंने स्वामीजी महाराजपर ईंटें मारी, पत्थर और कङ्कर फेंके, गोबर और जूते उछाले, अन्य अनेकविध अवहेलना और अपमान किया, परन्तु महाराजके प्रशान्त चित्त-

दर्पणपर उदासीनताकी यत्किञ्चित् भी छाया न आई।

कोतवाल महाशयने उद्दण्डजनोंको वहाँसे खदेड़ दिया और महाराजाको कहा कि ताली पीटनेका कार्य आपने अनुचित किया है। उन्होंने उत्तर दिया कि प्रतिमा-पूजन करना हमारा तुम्हारा परस्परका धर्म्म है। उसकी रक्षाके लिए शत्रु से जैसे भी जय लाभ हो करनी चाहिए।

पक्षपाती लोगों और अबोध जन-समुदायने अपनी बड़ी भारी जीत समझी। उन लोगोंने सारे नगरको जयकारसे गुँजा दिया। परन्तु फिर भी ऐसे बीसियों विचारवान् मनुष्य वहाँ उपस्थित थे कि जिन्होंने पण्डितोंकी चालको ताड़ लिया और स्वामीजीके साथ जो अनीति, अन्याय और धोखा किया गया था, उसपर घृणा प्रकट की।

पण्डित ईश्वरसिंह नामके एक निर्मले सन्त काशीमें वास करते थे। वे वेदान्तके निष्ठावान् विद्वान् थे। उन्होंने उस दिन आनन्दोद्यानसे लौटता हुआ जन-समुदाय देखा। उसमें विद्यार्थी, पण्डित और साधारण लोग स्वामी महाराजको अनेक कु-वचन बोलते हुए जा रहे थे। ईश्वरसिंहजीने वहाँ यह भी सुना कि स्वामीजीपर लोगोंने आज ईंटें, पत्थर, गोबर और जूते फेंके हैं, उन्हें अगणित अपशब्द कहे हैं। उसके चित्तमें, उसी समय यह सङ्कल्प उत्पन्न हुआ कि चलो इसी समय चलकर दयानन्दजीकी दशा देखें। यदि इस महा निरादरसे, घोर अपमानसे, विपरीत नीतिसे, निष्ठुर अन्याय से उनका चित्त विचलित न हुआ तो समझेंगे कि वह सच्चा ब्रह्मज्ञानी और एक पहुंचा हुआ महात्मा है।

जिस समय ईश्वरसिंहजी आनन्दोद्यानमें पहुंचे तो महाराज चान्दकी चाँदनीमें टहल रहे थे। ईश्वरसिंहजीको आते देखकर भगवान्ने मुस्कराते हुए, बड़े आदरसे उनका स्वागत किया। दोनों मिलकर बड़ी राततक आत्मा और परमात्मा-सम्बन्धी विषयोंपर बातचीत करते रहे। इतनी लम्बी बातचीतमें, ईश्वरसिंहजीको स्वामीजीके चन्द्रसमान चमकते हुए मुखमण्डलपर उदासीनताका एक भी धब्बा दिखाई न दिया। उनको मुस्कराहटकी चन्द्रछटामें उन्होंने किं-

चिन्मात्र भी न्यूनता न पाई। उनके हृदयगत साहस और उत्साहकी ज्वाला-माला-संकुल ज्वलन्त अग्निसे एक बार भी तो लम्बी साँसका धुआँ न निकला। ध्यानपूर्वक देखनेपर भी उनके विमल चिदाकाशमें, निराशा बदलीकी एक भी टुकड़ी न दीख पड़ी। उन्होंने लोगोंके अन्याय और अत्याचारकी कुछ भी तो चर्चा न चलाई।

पण्डित ईश्वरसिंहजीने महाप्रभु दयानन्दके चरण छूकर कहा, "महाराज! आजतक मैं आपको वेद-शास्त्रका ज्ञाता, एक पण्डित मात्र समझता रहा हूं। परन्तु आज पण्डितोंके घृणित उत्पातसे, अपमानसे, और विरोधकी घोर आँधी से आपके हृदय-सागरमें राग-द्वेषकी एक भी लहर उठते न देख, मुझे पूर्ण विश्वास होगया है कि आप वीतराग महात्मा और सिद्ध पुरुष हैं।" तत्पश्चात् सन्त ईश्वरसिंहजी महाराजसे विदा होकर अपने स्थानको चले आये।

अगले दिन स्वामीजीने एक विज्ञापनमें "दशमेऽहनि किंचित्पुराणमाचक्षीत" इस वाक्यका विस्तारसहित अर्थ छपा दिया और पण्डितोंको सत्यासत्यके निर्णय के लिए आह्वान किया। परन्तु उनके सामने दुबारा आनेका साहस किसीमें भी न था। काशी-शास्त्रार्थ विस्तार सहित पुस्तकाकार मुद्रित कराकर वितरण किया गया। समाचार पत्रोंमें भी टीका टिप्पणीसहित छपा। प्रसिद्ध पण्डित सत्यव्रत सामश्रमी भी शास्त्रार्थकेसमयवहाँ विद्यमान थे। उन्होंने अपने मासिकपत्र "प्रत्नकमरनन्दिनी" के मार्गशीर्ष वा पौष सं० १९२६ के अङ्कमें काशी में स्वामीजीका विजय-समाचार प्रकाशित किया।

'रुहेलखण्ड समाचारपत्र'ने अपने कार्तिक सं० १९२६ के अङ्कमें लिखा "स्वामी दयानन्दजी मूर्ति-पूजाके विरुद्ध हैं। उनका शास्त्रार्थ कानपुरके पण्डितोंसे भी हुआ था, और अब उन्होंने काशीके पण्डितोंको भी जीत लिया है।"

'ज्ञान-प्रदायिनी' पत्रिका लाहौरसे निकलती थी। उसके चैत्र सम्वत् १९२६ के अङ्कमें काशी-शास्त्रार्थके सम्बन्धमें प्रकाशित किया गया कि "इसमें सन्देह नहीं कि पण्डित लोग मूर्ति-पूजाकी आज्ञा वेदोंमें नहीं दिखा सके।"

'हिन्दू पेट्रियट' के पौष सुदी १५ सं० १९२६ के अङ्कमें काशी-शास्त्रार्थके विषयमें यह प्रकाशित हुआ कि "कुछ काल हुआ रामनगरके महाराजाने एक सभा बुलाई। इसमें काशीके बड़े बड़े पण्डित आहूत किए गये। वहाँ स्वामी दयानन्द और पण्डितोंके बीच एक लम्बा वाद होता रहा। पण्डित लोग यद्यपि अपने शास्त्र-ज्ञानका अति गर्व करते थे, परन्तु हुई उनकी बड़ी भारी हार।"

स्वामीजी महाराज शास्त्रार्थके पश्चात् भी सत्योपदेश देते रहे और अनेक सज्जन उनके सत्संगसे लाभ उठाते रहे। यद्यपि काशीमें घोषणा हो गई थी कि दयानन्दके पास कोई न जाय और जो जायगा वह पातकी हो जायगा, परन्तु जिज्ञासुओंने जाना न छोड़ा। वाद-विवादके करनेवाले पण्डित भी आतेही रहे।

यहाँ एक रामस्वामी मिश्र महामहोपाध्याय निवास करता था। वह युवा अवस्थाके प्रभावसे स्वामी दयानन्दके लिए बहुत ऊंच नीच वचन बोला करता था। उसे गर्व था कि यदि मैं एक वार भी स्वामी दयानन्दसे बातचीत करूं तो उनसे प्रतिमा-पूजन आदिका खण्डन छुड़वाकर उन्हें सीधा कर दूं। वह महाराजके पास आता इस लिए नहीं था कि उनका मुख देख लेनेसे पातक लग जायगा।

यह सोचकर कि अंधेरेमें दयानन्दका मुख देखे विना भी उसे सीधा किया जा सकता है, वह एक दिन रातके समय स्वामीजीके पास आया और कहने लगा, तेरे जैसे पतित पुरुषके साथ मैं देववाणीमें बोलना पाप समझता हूं। इस लिए देश-भाषामें बातचीत होगी, परन्तु पहिले तुम्हें मेरी एक शर्त माननी पड़ेगी।

स्वामीजीने हंसकर, कहा, आप मुझे संस्कृत भाषा बोलनेसे तो रोकते हैं, परन्तु संस्कृत भाषाके शब्द तो बोलने देंगे? अच्छा, यही सही, अब आप अपनी शर्त कहिए।

उसने कहा, मैं अपने साथ एक छुरी लेता आया हूं। वह दोनोंके बीच रक्खी जायगी। जो शास्त्रार्थमें हार जायगा उसकी इससे नाक काट दी जायगी।

स्वामीजीने हंसते हुए कहा, पण्डितजी ! एक शर्त मेरी भी मान लीजिए। वह यह है कि एक चाकू भी पास रख लिया जाय। जो हममेंसे हार जाय उस से उसकी जीभ काट ली जाय; क्योंकि नाक तो इन बातोंमें निर्दोष है। वाद-विवादमें जो कुछ अनर्थ होता है वह जीभद्वारा ही होता है।

कोई आध घड़ीतक स्वामीजीने उसके साथ वार्त्तालाप किया। इससे वह इतना प्रभावित हुआ कि सरलता और सभ्यतासे वर्ताव करने लग गया।

काशीमें स्वामीजी मुसलमानी मतकी भी त्रुटियाँ दिखाया करते थे। इस से कुछ मुसलमान बहुत रुष्ट हो गये थे। एक दिन सायंकाल, महाराज गङ्गा-तटपर आसन लगाये बैठे थे। उसी समय, दैवयोगसे मुसलमानोंकी एक मण्डली भी वहां आ निकली। उस टोलीमें बहुतसे मनुष्योंने स्वामीजीको पहिचानकर कहा कि यह वही बाबा है जो कुछ दिन हुए हमारे मतके विरुद्ध व्याख्यान दे रहा था। उनमेंसे दो मनुष्य बहुत अधिक आवेशमें आकर आगे बढ़े और स्वामीजीको उठाकर गङ्गामें फेंकनेका यत्न करने लगे ! उन दोनों व्यक्तियोंने दोनों हाथोंसे स्वामीजीकी दोनों भुजायें, कन्धोंके पाससे दृढ़तापूर्वक पकड़ लीं। वे उन्हें झुलाकर गङ्गाधारामें फैंका ही चाहते थे कि स्वामीजीने अपनी दोनों भुजायें सिकोड़कर अपने शरीरके साथ लगा लीं और वे बलपूर्वक आगेको उछलकर दोनों मनुष्योंसहित पानीमें कूद पड़े ! उन दोनों व्यक्तियोंके हाथ कुछ कालतक तो शिकञ्जेमें कसे रहे, परन्तु नदीमें डुबकी लगाते समय, महाराजने उनपर दया दिखाकर उन्हें मुक्तकर दिया। वे दोनों मनुष्य बड़ी कठिनतासे पानीसे बाहर निकले और अपने साथियोंके साथ, हाथमें मिट्टीके ढेले आदि लिये, बड़ी देरतक नदी-तटपर खड़े देखते रहे कि वह बाबा सिर निकाले तो उसे मारें ! स्वामीजी भी उनकी इच्छाको जानते थे। इसलिये, वे प्राणोंको रोक पानीकी पेंदीपर पद्मासन लगाकर बैठे रहे। अँधेरा हो जानेपर उस मण्डलीने मनमें समझ लिया कि वह बाबा डूब गया है। इस लिये वे चले गये और स्वामीजी भी जलसे निकल अपने आसनपर आ विराजे।

एक दिन एक मनुष्यने भक्तिभाव प्रदर्शित करते हुए स्वामीजीको भोजन लाकर दिया। स्वामीजी उस समय भोजन पा चुके थे, इस लिये उन्होंने वह स्वीकार न किया। तब उस कपटी भक्तने कहा कि यदि भोजन ग्रहण नहीं करते तो यह पान तो ले लीजिये। महाराज उसके हाथसे पानका बीड़ा ले उसे खोलकर देखने लगे तो वह वञ्चक झटपट वहांसे हिरणकी भांति भाग गया! इस पानकी जांच राज्य-औषधालयमें कराई गई। वह उस पानमें हलाहल विष मिश्रित करके लाया था।

बनारसके बहुतसे गुण्डे स्वामीजीके वधके लिये षडयन्त्र रच रहे थे। उनकी इस दुर्भावनाका पता, घुणाक्षर न्यायसे, बाबा श्री ज्वाहरदासजीको भी लग गया। वे दौड़े हुए स्वामीजीके पास आये और समाचार सुनाकर बड़ी चिन्ता प्रकाशित करने लगे। स्वामीजीने उन्हें कहा, "आप घबरायें नहीं, यह कोई नई बात नहीं है। मेरे साथ तो ऐसी बातें बहुत बीत चुकी हैं। जिन दिनों मैं घरमें रहता था, उन दिनों, हमारे एक परोसी भूमिहारने हमारे एक खेतपर अपना अधिकार कर लिया! पिताजीने जब परोसीकी इस धींगाधींगीकी बात मुझे सुनाई तो मैं आवेशसे हाथमें तलवार लेकर उनपर जा टूटा। यद्यपि वे कई मनुष्य थे, परन्तु मेरे साहसके आगे उनके पांव उखड़ गये और वे भाग निकले। अब भी, यदि यहांके गुण्डे इकट्ठे दस पन्द्रह भी मुझपर आक्रमण करेंगे तो उनको शान्त करनेके लिये मैं अकेला ही पर्याप्त हूं।"

महाराजका हुङ्कारनाद ऐसा ऊँचा और तीव्र होता था कि पास-बैठोंको कानोंमें उङ्गलियां दे लेनी पड़ती थीं। एक दिन महाराज गम्भीर मुद्रामें हंस और हस्तीकी चाल चलते भ्रमण करने जा रहे थे। उसी समय एक हट्टाकट्टा डण्डपेल, महामल्ल समान बलवान् मनुष्य उनके पीछे हो लिया। उसके हाथमें एक सुदृढ़ लट्ठ भी था। जब महाराजने पीछे पलटकर दृष्टि फिराई तो वह मनुष्य उन्हें घातक स्वभावका जान पड़ा। श्री महाराजने, वहां ठहरकर हुङ्कारनाद ऐसा गुंजाया कि वह उद्दण्ड मनुष्य भयभीत होकर, चीत्कार करता

हुआ पिछले पांव भाग गया।

ज्वाहरदासजीके साथ श्री स्वामीजीका बहुत वार्त्तालाप हुआ करता था। वे मित्रोंकी भांति परस्पर मिला करते थे। उनके वार्त्ताविनोदमें कभी कभी उपहास-रस भी मिश्रित हो जाता था।

एक दिनका वर्णन है कि स्वामीजी ज्वाहरदासके डेरेपर जा पहुंचे। ज्वाहरदासजीके यहाँ उस समय भांगका रगड़ा लग रहा था। महाराजको आते देख उन्होंने कुण्डी सोटेको इधर उधर छिपानेकी बहुतेरी चेष्टा की, पर वे तो बहुत पास पहुंच चुके थे। महाराजने हँसते हुए कहा, "अच्छा, यह शिवकी बूटी है। क्या आप भी शिव बनना चाहते हैं, शिव बननेमें लगता भी क्या है? भाँग पीकर उसके मदमें झूमते हुए 'शिवोऽहम्'का जाप और 'अहं ब्रह्मास्मि'का पाठ करने लग गये। बस, शिव बने बनाये हैं।"

स्वामीजीने बाबा ज्वाहरदासको यह भी कहा, "आप भी उपदेश करने लग जाइए।" इसका उत्तर उन्होंने उपहास रसमें यह दिया; "आपका तो कोई ठौर ठिकाना है नहीं, इसलिये देश-देशान्तरमें चक्कर लगाते फिरते हो। मैं डेरेवाला हूं। मुझसे उपदेशका काम नहीं हो सकता।"

यह सुनकर स्वामीजीने कहा, "महात्मन्! यह स्थान और डेरा पहले भी आपके पास नहीं था और अन्तमें भी नहीं रहेगा। बीचमें योंही ममता बाँधे बैठे हो। इसे छोड़ो और लोकहितके कार्यमें लग जाओ।"

बाबा ज्वाहरदासजी प्रतिदिन स्वामीजीके समीप आया करते और उपनिषदों तथा वेदान्तपर वार्तालाप किया करते थे।

कठोर प्रकृतिके मनुष्य भी प्रश्न पूछने आते और परुष-व्यवहार करते थे, परन्तु महाराज प्रशान्त स्वभावसे कोमल और मीठे शब्दोंमें उत्तर देते चले जाते थे। वे कटु अथवा परुष भाषण कदापि नहीं करते थे। उनके वचनमें व्यक्तिगत कटाक्षोंका नाम तक न होता था। उनका खण्डन साधारण और समुच्चय रूपसे हुआ करता था। उनकी वाणीमें कोई अद्भुत आकर्षण था,

कोई अनिर्वचनीय प्रभाव था और कोई अलौकिक रसस्वाद था, जिससे उनके वचन सुनकर दुर्जन, सज्जन बन जाता, पाषाण समान कठोर मनुष्य मोम हो जाता, प्रकोपसे संतप्त जन शान्ति लाभ करलेता और अति विरोधी भी वैर-बुद्धि छोड़कर श्री चरणोंकी सेवा तक करने लग जाया करता था।

अपने सदुपदेशोंसे काशीवासी धर्माभिलाषियोंको निहाल करके स्वामीजी प्रयागके कुम्भमेलेपर प्रचार करनेके लिये वहाँसे चलपड़े। यह मेला मकरसंक्रान्तिको था।

तीसरा सर्ग।

माघ वदी ५ सं० १९२६ को श्री महाराज प्रयागमें पधारे और गङ्गाके तीरपर ही टिक गये। वहाँ आपने बड़ी धूमधामसे प्रचारका कार्य आरम्भ कर दिया। महाराजके व्याख्यानोंमें सैकड़ों साधु सन्त भी आते थे। साधु वेदान्तपर—निष्क्रिय वादपर—वादविवाद किया करते थे। एक दिन, एक साधुने स्वामीजीसे प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्गपर शास्त्रार्थ किया। उसको पराभूत करनेके अनन्तर स्वामीजीने अपने व्याख्यानमें कथन किया, "क्रियात्मक जीवन ही शुभ जीवन है। सारा दृश्यमान जगत अपनी नित्यक्रियामें निरन्तर प्रवृत्त है। हमारे शरीर भी इस विशाल सृष्टिके अंशमात्र हैं। जब विराट् देहमें निरन्तर गति है, क्रिया है और प्रवृत्ति है तो हम जो उसके एक अंशरूप हैं उनमें निवृत्ति और निष्क्रियताका होना असम्भव है। आर्य धर्म्ममें वेदविहित कर्मोंका करना और निषिद्ध कर्मोंका त्यागना ही निवृत्ति मार्ग है। जो इस मर्मको मनमें धारण किए बिना निवृत्तिका राग अलापते हैं, उन्हें अभी वैदिक धर्मका बोध नहीं हुआ है। जो लोग सत्योपदेश, प्रजा-प्रेम और लोक-हितके कार्योंको छोड़कर अपने को परम निष्क्रिय मानते हैं, उनसे भी देहका भरण-पोषण नहीं छूट सकता। मधूकड़ी मांगनेके लिए वे भी दो दो कोस तक जाते हैं। यों ही तीर्थोंपर घूमते

फिरते हैं। सच तो यह है कि सत्य और पर-कल्याणके लिए अपने सुखोंका त्यागना—जीवन तकको लगा देना—ही सर्वोत्तम त्याग है।"

महाराजने यह भी कहा, परोपकार के बिना नर-जीवन मृग-जीवनसे उच्च नहीं है। सैकड़ों साम्प्रदायिक साधु लोग इस मेले पर आये हुए हैं। ये गृहस्थोंका नित्य आठ आनेका पदार्थ खाकर जङ्गलमें पड़े रहते हैं। सोचिए तो सही, इनमें और मृगोंमें भेद ही क्या है। मृग भी तो इसी प्रकार किसानोंके खेत नोचकर वनोंमें घुस जाया करते हैं। इस जीवनका लाभ ही क्या है? यह तो पशु-पक्षियोंको सहजहीसे उपलब्ध है।"

महाराज उन दिनों अवधूत वृत्तिमें रहा करते थे। माघका घोर शीत पड़ता था, परन्तु उनके तनपर कौपीनसे भिन्न कोई भी वस्त्र न था और न ही वे किसीका दिया हुआ वस्त्र ओढ़ते ही थे। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि शीत उनके समीप एक शब्दसे बढ़कर कुछ भी न था। लोग उनकी इस तपस्याको देखकर 'अहो आश्चर्य!' कहने लग जाते थे।

सारे मेलेमें स्वामीजीके प्रचारकी बड़ी धूम थी। सैकड़ों लोग अपनी देव मूर्तियोंपरसे विश्वास हटा बैठे थे।

स्वामीजीमें दयाका भाव अतीव प्रबल था। दीन-दुःखियोंको देखकर उनका हृदय तुरन्त द्रवीभूत हो जाता था। परोपकारकी यह वृत्ति, वास्तवमें धर्म-कर्म से रहित और दुःख-दारिद्र्यसे पीड़ित मनुष्योंकोही देखकर उन्होंने धारणकी थी।

महाराज एक दिन गङ्गा-तटपर बैठे हुए प्रकृतिका स्वाभाविक सौन्दर्य निहार रहे थे। उस समय उनके सामने एक स्त्री मरा हुआ बच्चा हाथोंपर उठाए गङ्गामें प्रविष्ट हुई। कुछ गहरे जलमें जाकर उसने बच्चेके शरीर पर लपेटा हुआ कपड़ा उतार लिया और बालकके निर्जीव कलेवरको 'हाय हाय' के आर्त्तनादके साथ पानीमें प्रवाहित कर दिया।

स्वामीजी महाराज, उस समय अपने हृदयको थाम न सके। जब उन्होंने देखा कि वह स्त्री बच्चेके कलेवरपर लपेटे हुए कपड़ेको धोकर वायुमें सुखाती

और रोती हुई घरको जा रही है, उन्होंने खेद-सागरमें निमग्न होकर मन ही मन कहा कि भारत देश इतना निर्धन, इतना कङ्गाल है कि माता अपने कलेजेके टुकड़ेको तो नदीमें बहा चली है, परन्तु उससे वस्त्र इसलिए नहीं बहाया गया कि उसका मिलना कठिन है! इसके विना उसका निर्वाह न हो सकेगा। इससे बढ़कर देशकी दरिद्रताका दृष्टान्त मिलना दुर्लभ है। उस समय वहाँ महाराजने प्रण किया कि कुछ कालतक, मैं इन्हीं लोगोंकी भाषामें प्रचार करके इनके दुःख दूर करनेके साधन उपस्थित करूंगा।

प्रयागके कुम्भ मेलेपर प्रचार करनेके उपरान्त श्री महाराज मिर्जापुर चले गये। वहां आप रामरत्न लड्डाके उद्यानमें उतरे। मूर्ति-पूजन और कुरीतियोंका बड़े बलसे खण्डन होने लगा।

मिर्जापुरमें बालकृष्णदास नामक एक वैरागी महन्त रहता था। वह महाभारतके संशोधनमें लगा हुआ था। वास्तवमें तो वह महाभारत के चौबीस सहस्र श्लोक रखना चाहता था, परन्तु उस समय उसने जो पुस्तक छपवाई थी उसमें तीस सहस्र ही श्लोक थे। उसने भगवद्गीताको भी प्रक्षिप्त समझकर निकाल दिया था।

सुगन्धिलाल नामक एक धनिक व्यक्ति गीताका बड़ा भक्त था। वह वैरागी बावाकी इस अनधिकार चेष्टासे बहुत ही चिढ़ गया। उसने बावाजीके इस अनर्थकी दुहाई, स्वामी दयानन्दजीके आगे आकर दी। महाराजने कहा, "उसका गीताको प्रक्षिप्त कहना सत्य नहीं है। इसपर जब उसका जी चाहे शास्त्रार्थकर ले।" छोटूराम नामका एक व्यक्ति स्वामीजीसे उपनिषद् पढ़ने आया करता था। उसने महाभारतकी वह पुस्तक भी स्वामीजीको लाकर दिखा दी। महाराजने सबके सामने उस पुस्तकको दोषपूर्ण सिद्ध कर दिया। छोटूरामने बावाजीको भी स्वामीजीकी सम्मति सुना दी। इससे बावाजी रुष्ट तो बहुत हुए, परन्तु शास्त्रार्थसे यह कहकर टलते रहे कि हम दूसरेके स्थान पर नहीं जाया करते। स्वामीजीने उन्हें बहुतेरा कहलाया कि यह स्थान भी हमारा नहीं है। यहां नहीं

आ सकते तो पासके उद्यानमें आजाइए अथवा गङ्गाके पुलिनपर बैठकर विचार कर लीजिये, परन्तु बावाजीने एक न मानी। वह इतना भयभीत हुआ कि जिस मार्गपर स्वामीजी आया जाया करते थे, उसने उधर आना ही छोड़ दिया।

स्वामीजीके धर्म-प्रचारसे बहुतसे मतवादी विरोध करने लग गये थे। जैसे भी बन पड़े उन्हें दुःख देनेमें आगा पीछा कुछ भी न देखते थे।

उन्हीं दिनोंमें एक ओझा, मन्त्र-शास्त्री मिर्जापुरमें आकर ठहरा हुआ था। उसने प्रसिद्ध कर दिया कि मेरे पास ऐसे सिद्ध मन्त्र यन्त्र हैं कि यदि कोई उनका पुरश्चरण कराये तो इक्कीसवें दिन, निश्चयरूपसे दयानन्दका देहपात हो सकता है। लोग उसके मारण, मोहन और उच्चाटन आदिके कोरे ढोंगमें विश्वास भी करते थे। एक सेठने ओझाजीको कह दिया कि जो भी व्यय हो मुझसे लेते जाइए और स्वामी दयानन्दपर विधिपूर्वक मन्त्र-प्रयोग चलाइए। अतः वह मन्त्र-शास्त्री स्वामीजीपर मन्त्र-प्रयोग चलानेकी क्रियायें करने लगा।

ओझाके मन्त्र-प्रयोगका समाचार लोगोंने श्रीस्वामीजीको भी दे दिया। परन्तु वे ऐसी भ्रममूलक लीलाओंसे भला, कब चलायमान होने लगे थे! मन्त्र-प्रयोग करते अभी तीन चार ही दिन होने पाये थे कि दैवयोगसे मन्त्र प्रयोग बैठाने वाले सेठके गलेपर एक फोड़ा निकल आया। वह दिनोंदिन भयङ्कर रूप धारण करता चला गया। यहाँ तक कि उसे खाँने, पीने थूकने और बोलने-चालनेमें भी अतिकष्ट होने लगा। एक दिन ओझा उसके पास गया और कहने लगा कि प्रयोग-समाप्तिका दिन समीप आ गया है। बलिदानकी सामग्री प्रस्तुत करा दीजिए। समाप्तिपर जब विधिसे इधर बलि दी जायगी तो उसी समय, उधर दयानन्दका सिर धड़से कटकर भूमिपर गिर पड़ेगा!

उस सेठने बड़ी कठिनतासे बोलकर कहा कि मन्त्र-शास्त्रीजी! दयानन्दका सिर तो गिरते ही गिरेगा, परन्तु मेरा तो अभी गिराही चाहता है। पीड़ाके मारे मेरे तो प्राण निकले जाते हैं। कृपा करके आप अपना पुरश्चरण बन्दकर दीजिये। इस प्रकार वह मन्त्र-प्रयोग बीचमें ही अधूरा छोड़ दिया गया।

मिर्जापुरमें एक छोटूगिर नामका गुसाईं निवास करता था। वह प्रचण्ड प्रकृतिका, एक उद्दण्ड मनुष्य था। एक दिन, वह और जगन्नाथ मालवीय, सैकड़ों मनुष्योंको साथ लिये स्वामीजीके स्थानपर चढ़ आये। छोटूगिर आते ही स्वामीजीके पांवपर पाँव रखकर बैठ गया और मुखसे ऊटपटाँग बातें बकने लगा। महाराजने पूछा कि यह मनुष्य कौन है? जगन्नाथने उत्तरमें कहा कि काशीके विश्वनाथके समान ही यहां बूढे महादेव हैं; उनका यह पुजारी है। स्वामीजीने यद्यपि उनके कलह-प्रिय अन्तःकरण और द्वेष-दूषित दृष्टिको अपने दिव्य नेत्रोंसे पहिले ही देख लिया था, परन्तु गुसाईंकी चेष्टासे उन्हें पूरा प्रमाण मिलगया कि उनके आनेका प्रयोजन केवल लड़ाई लड़नाही है। तब उन्होंने और भी बलपूर्वक, विश्वनाथ आदि मन्दिरों तथा मूर्त्तियोंका खण्डन आरम्भकर दिया।

स्वामीजी हुलास लिया करते थे। इसलिए हुलासकी एक डिबिया और चबानेका कुछ तम्बाकू उनके पास पड़ा था। छोटूगिर उन वस्तुओंको उलटने पलटने लगा। महाराजने उसे कहा कि यदि तुम नसवार सूंघना चाहते हो तो ले लो। परन्तु वह तो छेड़ना ही चाहता था।

स्वामीजीके समीप एक दोनेमें बतासे रक्खे थे। गुसाईंने उनपर भी हाथ डाला। महाराजने उसे कहा कि यदि आप खाना चाहते हैं तो बीचमेंसे मुट्ठी भरकर ले लीजिए और प्रसन्नतासे खाइए, परन्तु एक एक करके खानेसे जूठे मत कीजिए। छोटूगिर तो आयाही लड़ने झगड़नेके लिए था उसने स्वामीजीके कथनपर कुछ ध्यान न दिया और एक एक बतासा उठाकर खाता रहा। स्वामीजीने उसे ऐसा करनेसे रोका, परन्तु वह तो कलह उत्पन्न करनेके ये सब बहाने बना रहा था। स्वामीजीको झिड़ककर बोला कि बच्चा हमारी जूठनसे घृणा करते हो! हम तुम्हारे गुरु हैं। किंचित् ठहर जाओ, आज तुम्हें खण्डन का सारा स्वाद चखा देते हैं।

स्वामीजी उसकी ऐसी गीदड़ भड़कियोंसे भयभीत होनेवाले नहीं थे। वे किसी भी अत्याचारीका डर और दबाव नहीं माना करते थे। उन्होंने देखा कि

यह गुसाईं सिर चढ़ा जाता है तब उन्होंने उसे डाँटकर कहा, "तुम मुझे डराना चाहते हो। मैं यदि डरनेवाला होता तो देशान्तरोंमें घूमकर प्रचार कैसे कर सकता?" उस समय स्वामीजीने सिंह नादसे अपने सेवकको कहा, "बाहरके किवाड़ बंद कर दो। मैं अकेला ही इन सबको सीधा करके छोड़ूंगा।"

उस समय महाराजका वदन तेजोमय होगया; उनकी आँखें उद्दीप्त दीपक की भाँति चमकने लगीं। उस दिव्य आकृतिको देखकर छोटूगिरका हृदय काँप उठा। उसकी सारी हेकड़ी टूट गई और वह भलमनसीसे पीछे हटकर बैठगया।

जगन्नाथने हाथ जोड़कर स्वामीजीसे विनय की, "हम कैसे जानें कि प्रतिमा-पूजन अच्छा नहीं है?" स्वामीजीने उत्तर दिया, "मूर्त्ति पूजनके लिए वेदमें कोई आज्ञा नहीं है। और ईश्वर सर्वत्र है, उसे कोई वशमें नहीं कर सकता। तुम मूर्तियोंको ईश्वर मानते हो और फिर अपने हाथसे ताला लगा कर उन्हें मन्दिरमें बन्द कर देते हो। तुम्हीं सोचो कि इनमें ईश्वरीय शक्ति कहाँ है? वे न वर दे सकती हैं और न शाप। जड़रूप हैं। यदि कल्याण चाहते हो तो हृदयमें परमात्माका पूजन किया करो।"

अन्तमें जगन्नाथने नमस्कार करके कहा कि "हमें लोगोंने बहका रक्खा था कि आप राम, कृष्ण आदिके विरुद्ध बोलते हैं। परन्तु यह तो आज ही ज्ञात हुआ है कि आप केवल मूर्तियोंका खण्डन करते हैं।" तत्पश्चात् वे लोग चलेगये।

छोटूगिरका सारा घमण्ड स्वामीजीके पास तो खण्ड खण्ड होगया था, परन्तु घरमें जाकर वह फिर स्वामीजीका अनिष्ट चिन्तन करने लगा। एक रात उसने दो वलिष्ठ मनुष्य स्वामीजीको सतानेके लिए भेजे। जब वे स्वामीजीके निवासस्थानपर पहुंचे तो उस समय महाराज पण्डित रामप्रसादजीको कुछ शास्त्रीय रहस्य समझा रहे थे। वह उजड्ड गुण्डे बार बार हँसने और छेड़छाड़ करने लगे। एक दो वार तो महाराजने उन्हें कोमल शब्दोंमें समझाया, परन्तु जब देखा कि ये टलनेहीमें नहीं आते तो स्वामीजी प्रबल हुङ्कार-गर्जना की। जैसे मिथिलामें श्रीरामके धनुष टङ्कारसे सारी सभा कम्पित हो गई थी और

दिशामूढ़ बन गई थी, उसी प्रकार स्वामीजीके हुङ्कारसे वे दोनों पामर पुरुष काँप उठे और मूर्छा खाकर भूमिपर गिर पड़े ! उस समय रामप्रसादजीको भी अपने दोनों कानोंमें उङ्गलियां डाल लेनी पड़ीं।

महाराज और रामप्रसादजीने उन उद्दण्डोंको जलके छींटे देकर सचेत किया। जब वे उठकर बैठे तो पसीना पसीना हो रहे थे और उनका मूत्र पुरीष भी निकल चुका था।

स्वामीजीने कहा कि संन्यासी लोग किसीको मारा पीटा नहीं करते, इस लिए डरो नहीं। कपड़े सम्भालकर निर्भयतासे चले जाओ।

एक दिन, कुछ पण्डितोंने स्वामीजीको एक पत्र लिख भेजा। उस पत्रमें, उन्होंने उसी दिन शास्त्रार्थ करनेकी इच्छा प्रगट की और साथ ही स्वामीजीको धमकी दी कि यदि वादके समय तुमने मूर्ख आदि कोई शब्द कहा तो तुम्हें तत्काल दण्ड दिया जायगा।

महाराजने उनके पत्रको अशुद्धियोंसे पूर्ण पाया और कहा, कि धर्म्म-चर्चा करनेका तो बालक को भी अधिकार है, परन्तु गोविन्द भागवत-पाठी ऐसे मिथ्याभिमानियोंका तो गर्व तोड़कर, उन्हें मूर्ख सिद्ध करना ही पड़ता है।

पत्र भेजनेके दो घण्टेके पश्चात् पण्डित लोग स्वामीजीके पास आगये और शिष्टाचार आदिके अनन्तर गोविन्द भट्टने 'भागवत' विषयमें बातचीत की, परन्तु उसे थोड़ी ही देरमें चुप हो जाना पड़ा। फिर देर तक प्रतिमा-पूजनपर शास्त्रार्थ होता रहा। स्वामीजीने वेदके प्रमाणोंसे सिद्ध कर दिया कि ईश्वर अवतार धारण नहीं करता और उसकी कोई प्रतिमा नहीं। पण्डित पराभूत होकर शान्तिसे चले गये।

यहां पण्डित गजाधरसे वार्त्तालाप करते समय महाराजने मनुस्मृतिमें आये 'चक्री' शब्दका अर्थ कुलाल किया। इसपर गजाधरने कहा कि इसका अर्थ तेली है और कुल्लूकने भी तेली ही अर्थ किया है; स्वामीजीने हँसकर कहा कि कुल्लूक तो उल्लूक है, उसकी बात जाने दो। आप यह तो सोचो कि तेलीके

पास चक्र नहीं होता, वह कोल्हूसे काम करता है। चक्र कुम्हारहीके पास होता है, इसलिए उसीका नाम चक्री है।

एक मनुष्यने स्वामीजीसे पूछा, जीवात्मा परमेश्वर हो जाता है कि नहीं? महाराजने उसे कहा कि यह अति सूक्ष्म प्रश्न है, तुम्हारी बुद्धि इसे ग्रहण नहीं कर सकती।

मिर्जापुरमें स्वामीजीके उपदेशोंसे अनेक मनुष्य सुधर गये। निराकार परमेश्वरका आराधन और चिन्तन करने लग गये। बीसियों मनुष्योंने मूर्ति-पूजन त्याग दिया। सन्ध्योपासन आदि नित्य कर्म धारण कर लिये।

चौथा सर्ग।

जेठ सम्वत् १९२७ के आरम्भमें स्वामीजी मिर्जापुरसे प्रस्थानकर गंगाके किनारे विचरते हुए बनारस जा पहुंचे, और दुर्गाकुण्डके निकट लाला माधोदासके उद्यानमें ठहरे।

काशीमें जाकर स्वामीजीने "अद्वैत मत खण्डन" नामक एक छोटीसी पुस्तक प्रकाशित कराई। उस पुस्तकने मायावादके माननेवालोंमें बड़ी हलचल उत्पन्न करदी। इस विषयपर भी अनेक भद्रजन स्वामीजीसे शास्त्रचर्चा करते रहे।

काशीसे स्वामीजी एकबार मिर्जापुर गये और वहाँ जेठ मासमें एक पाठ-शाला स्थापित करके पुनः काशी लौट आये।

महाराजा ईश्वरीनारायणसिंहजीने एक दिन स्वामीजीके पास अपना मनुष्य भेजकर, उनके दर्शनोंकी इच्छा प्रकट की। स्वामीजीने इस विषयपर बाबा ज्वाह-रदाससे सम्मति ली कि महाराजाके पास जाना चाहिए वा नहीं। ज्वाहरदास-जीने कहा कि शास्त्रार्थमें आपके साथ जो अनीति और अनुचित व्यवहार हुआ है, महाराजा अब आपका सम्मान करके, उसका प्रायश्चित्त करना चाहते हैं।

उन्हें पश्चात्ताप भी हुआ है। परन्तु अच्छा तो यही है कि वे आपके स्थानपर आकर क्षमा मांगें।

एक दिन महाराजाके मनुष्य गाड़ी लेकर स्वामीजीको लेने आ गये। स्वामीजी यह सोचकर कि हमारी ओरसे उनके मनमें कोई उद्वेग न बना रहे, गाड़ीमें आरूढ़ हो गये। स्वामीजीके दर्शनोंके लिए कमक्षा देवीका स्थान नियत किया गया था। जब महाराजाने स्वामीजीको आते देखा तो उठ खड़े हुए और आगे जाकर स्वागत किया। स्वामीजीको सम्मानपूर्वक भीतर लाकर एक सुवर्ण-सिंहासनपर बैठाया। उनके गलेमें अपने हाथोंसे एक पुष्पमाला पहराई और सादर नमस्कार करके आप भी पासके एक रजत-सिंहासनपर बैठ गये।

इसके अनन्तर महाराजाने हाथ जोड़कर स्वामीजीसे विनय की कि हमारे कुलमें मूर्ति-पूजन परम्परासे चला आता है। मैं भी बाल्यकालसे श्रद्धापूर्वक कुल-धर्मका पालन करता हूं। इसलिए चिरकालके धर्मानुरागसेही शास्त्रार्थमें आपकी अवज्ञा होगई थी। आप संन्यासी हैं इसलिए क्षमा कर दीजिए। स्वामीजीने गम्भीर भावसे कहा कि हमारे मनमें इन बातोंका लेश मात्र भी संस्कार नहीं है।

अन्य भी अनेक बातें होती रहीं और अन्तमें जब स्वामीजी चलने लगे तो महाराजाने बहुत सी रजत-मुद्रायें और कुछ मुरब्बे आदि भोज्य पदार्थ स्वामीजीकी भेंट किये और बड़े आदरसे गाड़ीमें बैठाकर उनको विदा किया। इस बार स्वामीजी कोई ढाई मास काशीमें ठहरे।

काशीसे चलकर श्रीमहाराज पर्यटन करते हुए कासगञ्जमें जा सुशोभित हुए। वहाँ महाराजने अपनी सबसे पहिली स्थापित की हुई वैदिक पाठशाला-का निरीक्षण किया। स्वामीजीकी पाठशालाओंमें निम्न लिखित नियमोंका पालन कराया जाता था।

१—विद्यार्थियोंको सन्ध्या सिखाकर पाठशालामें प्रविष्ट किया जाय और इसीसे उसकी बुद्धिकी भी परीक्षा कर ली जाय।

२—अष्टाध्यायी, महाभाष्य, मनुस्मृति और वेद पढ़ाये जायँ।

३—यदि विद्यार्थी सूर्योदयसे पहले उठकर सन्ध्या न करले तो उसे उस दिन सायंकालकी सन्ध्या कर लेनेके पूर्व भोजन न दिया जाय और उसकी देख रेख भी की जाय कि वह कहीं पासकी वस्तीमें जाकर भोजन न खा आवे।

४—विद्यार्थियोंको नगरमें जानेकी आज्ञा नहीं; परन्तु न्योतेमें जा सकते हैं।

५—इस पाठशालाके द्रव्यसे, बाहरहीसे आये हुए विद्यार्थियोंको भोजन मिले।

६—अध्ययनमें परिश्रम करनेवाले विद्यार्थीके भोजनका विशेष प्रबन्ध कर दिया जाय।

स्वामीजी महाराज अपने विद्यार्थियों तथा साथ रहनेवाले पण्डितों और सेवकोंको भी छोटे २ पापोंसे बचनेके लिए शिक्षा दिया करते थे। उन दिनों पण्डित रामप्रसाद स्वामीजीके साथ ही रहा करता था। कासगञ्जमें एक दिन स्वामीजी स्नानके लिए एक समीपके उद्यानमें जा रहे थे। उस समय रामप्रसाद स्नानके उपकरण उठाये महाराजके पीछे २ चला आता था। एक पका हुआ आम पेड़से गिरकर मार्गमें पड़ा था। महाराज तो उसे लाँघ गए, परन्तु पीछे आते रामप्रसादका मुख लालायित हो गया। उसने झुककर वह फल उठा लिया। स्वामीजीने उसकी इस क्रियाको देखकर उसे कहा, "रामप्रसाद! यह उद्यान तुम्हारा घरका नहीं है। इसलिए पराया फल उठाकर तुमने एक प्रकारकी चोरी की है।" अपने स्थानपर आकर स्वामीजीने उसपर एक रुपया दण्ड भी लगा दिया।

एक दिन स्वामीजी बाजारमें चले जा रहे थे। उस समय सामनेसे एक बलिष्ट साँड़ आ निकला। वह साँड़ मारा करता था और मनुष्योंके पीछे भी दौड़ता था। सब लोग मारे डरके चबूतरोंपर चढ़ गए और स्वामीजीको भी ऐसा ही करनेके लिए पुकार-पुकारकर कहने लगे। परन्तु स्वामीजी एक पांव भी इधर उधर न हुए। सीधे साँड़की ओर चलते गए। जब उसके बहुत निकट पहुंच गये तो साँड़ आपही मार्ग छोड़कर एक ओरसे निकल गया। स्वामीजीके इस धैर्य्य और निर्भयतापर सारा बाजार आश्चर्य-चकित होगया। चैनसुखने कहा, "स्वामीजी! यदि साँड़ सींग चलाता तो आप क्या करते?"

महाराजने हंसकर कहा "और क्या करते? सींग पकड़कर उसेपरे धकेल देते।"

स्वामीजी महराजने यहाँ चिरकाल तक निवास किया। उनके सत्संगसे अनेक सज्जनोंने लाभ उठाया। परंतु चैनसुखजीने श्री सेवा और सत्संगका सबसे अधिक लाहा लूटा। वह ऐसा निहाल हुआ कि स्वामीजीकी संगतिके प्रभावसे संस्कृत भाषामें बातचीत तक करनेके योग्य हो गया।

कासगञ्ज पाठशालाका जब पूरा प्रबन्ध हो गया तो एक दिन स्वामीजी चुपचाप वहाँसे प्रस्थान कर गए और ग्रामानुग्राम विचरते हुए रामघाटमें आ विराजे।

छलेसरमें सबसे बड़े भूमिहार ठाकुर मुकुन्दसिंहजी थे। वे बड़े विचारवान् सज्जन थे। छलेसरके इधर उधर चौहान राजपूतोंके कोई साठके लगभग गाँव हैं। उन सबमें मुकुन्दसिंहजी सम्मानित नेता थे। छोटे बड़े सभी उनकी बात मानते थे। नाती गोती सभी अपने झगड़े रगड़े उनसे निपटाते थे। उनके पास राजपूतोंकी सदा भीड़ लगी रहती थी।

ठाकुर मुकुन्दसिंहजीने सम्वत् १९२५ में कर्णवासमें श्री-स्वामीजीके दर्शन किए थे। यद्यपि, उस समय उन्हें दो घण्टे ही श्री-सेवामें बैठनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था और वे बहुत थोड़ा उपदेश सुन सके थे, परन्तु उतनेहीसे उनके विवेक नेत्र खुल गये थे, उन्हें सत्यका प्रकाश प्राप्त हो गया था।

मुकुन्दसिंहजीके हृदयमें स्वामीजीके लिए अगाध अनुराग और गाढ़ भक्ति उत्पन्न हो गई थी। उन्होंने छलेसरमें जाकर अपनी भूमिहारीके कोई बीस स्थानोंसे मूर्तियाँ उठवाकर पास बहती कालिन्दी नदीके तलालीन कर दी थीं। वे अपने विचारोंका प्रचार भी करने लग गये थे। उनके भाई मुन्नासिंहजी भी स्वामीजीके अनुरागी हो गये थे। उनकी प्रबल कामना थी कि स्वामीजीको छलेसरमें लाकर उनकी सेवा करें। उन्होंने जब सुना कि श्रीगुरु देव राम घाटमें विराजमान हैं तो उन्हें अतीव प्रसन्नता प्राप्त हुई। ठाकुर मुकुन्दसिंहजीने कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी सम्वत् १९२७ को रामघाटमें जाकर स्वामीजी

से छलेसर पधारनेके लिये, बड़े भक्तिभावसे प्रार्थना की। भगवान्‌ने अपने अनन्य भक्तकी विनती स्वीकार कर ली और मार्गशीर्ष मासमें वहां पहुंचनेका वचन दे दिया। ठाकुर मुकुन्दसिंहजीने छलेसर लौटकर जब स्वामीजीके शुभागमनका सु-समाचार अपने भाई और इष्ट मित्रोंको सुनाया तो सभीके मन आनन्दमें हिलोड़े लेने लगे।

चार मार्गशीर्षको स्वामीजीको छलेसर पधारना था। उस दिन सवेरेहीसे सारे नगरमें प्रसन्नताका सागर उमड़ आया था। सभी गांव-वासियोंके मुख-कमल एक पवित्र प्रमोदसे प्रफुल्लित हो रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था कि आज इस गांवमें कोई पवित्रता और धर्म्मका अवतार आ रहा है।

स्वामीजीके स्वागतके लिये कोई ढाई सौ मनुष्य नंगे पांव डेढ़ कोसतक आगे गये और कालिन्दी-तीरपर महाराजके दर्शन करके सबने चरण छूकर नम्रीभूत नमस्कार किया। ठाकुर मुकुन्दसिंहजीने महाराजके गलेमें पुष्पोंकी माला पहराई और अपने दहिने हाथसे सिरपर छत्र करके पालकीमें बैठनेकी विनती की। स्वामीजी सब भक्तोंके मुख-मण्डलको अपने मधुर वचनामृतसे सींचते हुए बोले कि आप सबके साथ हम भी पैदल ही चलेंगे।

उस दिन सारे गाँवमें एक महोत्सव मनाया जा रहा था। बूढे बच्चे, और युवा, सभी नर-नारी अपने घरोंके आगे खड़े होकर, छत्तोंपर चढ़कर महाराजके शुभागमनकी बाट जोह रहे थे। जब महाराज गांवमें पधारे तो जैसे चांदको देखकर चकोर प्रसन्न होता है ऐसेही सबके चित्त प्रसन्ताके पूरसे भरपूर हो गये। स्वामीजीकी स्वागत-यात्रा, छलेसर वासियोंको कृतार्थ करती हुई गांवमेंसे घूमकर, बाहर पश्चिमकी ओर एक उद्यानमें जाकर ठहर गई। उसी उद्यानमें स्वामीजीका निवास नियत किया गया था। पहला मकान साधारणसा था। इसलिये मुकुन्दसिंहजीने थोड़ेही दिनोंमें स्वामीजीके लिए एक नया सुन्दर निवास स्थान बनवा दिया। उसके आगे अनुमानसे बीस गज़ लम्बा और बीस गज चौड़ा चबूतरा निर्माण हुआ। उस चबूतरेपर प्रति चौथे पहर एक सुन्दर

और स्वच्छ जाजम बिछ जाती। फिर एक उत्तम चौकीलगाकर उसपर कालीन डाला जाता और उसपर बैठकर महाराज लोगोंको उपदेश देते थे।

ठाकुर श्री मुकुन्दसिंहजी तथा श्री मुन्नासिंहजीने यद्यपि पहले यज्ञोपवीत लिया हुआ था परन्तु स्वामीजीकी अतुल भक्तिके कारण, अपनी बिरादरीके अनेक राजपूतों सहित, उन्होंने स्वामीजीके हाथसे दुबारा जनेऊ धारण किया और उन्हें विधिपूर्वक गुरु बनाया। बहुत लोगोंने उस समय कण्ठियाँ उतार दीं, जिससे विरोधियोंने यह समाचार फैलाना आरम्भ कर दिया कि स्वामीजी जनेऊ उतरवाते हैं। परन्तु थोड़े ही दिनोंमें लोगोंको सचाईका ज्ञान होगया।

सैकड़ों राजपूत नित्य दूर दूरसे स्वामीजीका उपदेश सुनने आते और मुकुन्दसिंहजी उन समागत भाइयोंका बड़े भावसे आतिथ्य किया करते थे। वहां स्वामीजीके साथ धर्म्म-चर्चा करनेके लिये कई मौलवी और काजी भी आते थे। महाराज संस्कृतहीमें उत्तरदेते थे। परन्तु पण्डित लोग अनुवाद करके उन्हें समझा देते थे, जिससे उन्हें पूरा सन्तोष हो जाता था।

स्वामीजीके पधारनेकेकुछ दिन पश्चात्, वहां भी वैदिक पाठशाला स्थापित होगई। उस पाठशालामें बीस विद्यार्थी प्रविष्ट हुए। ब्राह्मण बालक तो भोजन भी वहाँसे पाते थे, परन्तु क्षत्रियोंके पुत्रोंका अपना प्रबंध था।

ठाकुर मुकुन्दसिंहजी तथा मुन्नासिंहजी, जबतक, सवेरे स्वामीजीको शुभ दर्शन न पा लेते तब तक जलपान भी न करते थे। जब ये स्वामीजीके पास जाते तो बड़ी दूर उतारकर आगे आते और स्वामीजीके चरणोंकोछूकर नमस्कार किया करते। वहाँसे, लौटते समय भी विधिपूर्वक नमस्कार करके लौटते और महाराजकी ओर पीठ नहीं करते थे।

श्री भगवान् अपने भक्तोंके घरोंके सुधारका भी यत्न किया करते थे। उनके प्रेमी मुकुन्दसिंहजी अपने पुत्र चन्दनसिंहसे कुछ रुष्ट रहते थे। जब श्री स्वामीजीको इस बातका पता लगा तो उन्होंने मुकुन्दसिंहजीको कहा, "पिताको विशेष कोमल होना चाहिये। छोटे यदि छोटापन करें तो बड़ोंको भी अपना

बड़प्पन त्याग देना उचित नहीं। सन्तानके साथ वैमनस्य रखना सांसारिक सुखको किरकिरा कर देना है—फीका बना देना है। परस्परकी ऐंचातानीसे अन्तमें स्नेह-सूत्र छीज जाया करता है। आपको उचित है कि अपने पुत्रके लिए वात्सल्य भाव प्रकाशित करें।"

इस प्रकार उपदेश देकर महाराजने चन्दनसिंहको मुकुन्दसिंहजीकी गोदमें बैठा दिया और पिता-पुत्रका मनमुटाव मिटाकर मेल करा दिया।

स्वामीजी महाराजके लिए उत्तम भोज्य पदार्थोंका थाल, प्रतिदिन नियत समयपर, ठाकुरोंके यहाँसे आ जाया करता था। एक दिन स्वामीजी चबूतरे-पर बैठे थे और उनके भोजनके आनेमें कुछ देर थी। उस समय एक कृषक मक्काकी मोटी मोटी रोटियाँ लिये अपने खेतको जा रहा था। मार्गमें मुनिरा-जको बैठे देख उसके हृदयमें भक्तिभाव उमड़ आया। उसने आकर महाराज को नमस्कार किया और विनती की कि भगवन्! आज मेरा अन्न ग्रहण करके इस तुच्छ किसानको भवसागरसे पार उतारिये। स्वामीजीने अति प्रसन्नतासे, वहीं बैठे अपने हाथोंपर उससे मक्काकी एक मोटी रोटी ले ली, और वे, अतीव रुचिसे उसका भोग लगाकर तृप्त होगये।

महाराजके इस अनुग्रहसे उस कृषकका हृदय गद्गद होगया, तनपर रोमाँच हो आया, उसकी आँखें अनुराग-रसके पानी-पूरसे परिपूर्ण हो गईं।

छलेसरमें धर्म्म-प्रचार करते हुए महाराजने वहाँकी चौहान बिरादरीको पूर्ण प्रभावित कर दिया। सैकड़ों राजपूतोंने उनसे गायत्री गुरु मंत्र ग्रहण किया और सहस्रों मनुष्य आपके अनुयायी हो गये। महाराज यहाँ एक माससे अधिक ठहरे। जिस दिन महाराजने प्रस्थान करना था, दैवयोगसे उस दिन आकाशमें बादल घिरे हुए थे और कुछ बूंदाबांदी भी हो रही थी। ठाकुरोंने अनुरागवश बहुत ही विनय की कि भगवन्! आजका दिन और ठहर जाइए। परन्तु स्वामीजी दृढ़-संकल्प थे। "जिस दयानन्दने अपने बन्धुओंकी मोह-मम-ताकी सुदृढ़-शृंखलाको तोड़कर खण्ड खण्ड कर दिया है आज वह तुम्हारे

स्नेहके तारसे कैसे बंध सकता है?" यह कहते हुए वे वहाँसे चल पड़े। भक्त लोग महाराजको बहुत दूरतक पहुंचाने गए। पीछे लौटते समय ठाकुर मुकुन्द सिंहजी और मुन्नासिंहजीने महाराजके चरणोंकी रज अपने भालपर रमाई। वे नेत्रोंसे, अविरल अश्रु धारा मोचन करने लगे। उनका कण्ठ रुक गया और वे भगवान्‌की विरहवेदनासे व्यथित दिखाई देने लगे।

महाराज अपने प्रेमियोंको व्याकुल देखकर स्नेह-रससे सने हुए शब्दोंमें सम्बोधन करके बोले, "इतने अधीर क्यों होते हो? अभी तो कई वार छलेसर में आना होगा। संन्यासी पवनकी भाँति अप्रतिबंध-विहारी होते हैं। उनसे इतनी ममता बाँधना दुःख ही उठाना है। जब तुम मेरे कथनोंपर चलोगे, अपने चरित्रको उच्च बनाओगे और परोपकार कार्यमें रत रहोगे तो मैं आपसे दूर नहीं हूं। आपके समीप ही हूं।

इस प्रकार भक्तजनोंको ढाढ़स बँधाकर महाराज आगे चल पड़े और विचरते हुए सोरों जा पहुंचे। वहाँ चार मास निवास करनेके अनन्तर भ्रमण करते हुए फरुखाबादमें आ विराजमान हुए।

फरुखाबादमें स्वामीजीने पाठशालाका निरीक्षण किया। पाठशालाका एक कर्मचारी विद्यार्थियोंको मारा पीटा करता था; वह पक्षपाती भी था। महाराज उसे निकाल देना चाहते थे, परन्तु प्रबन्धकर्त्ता सेठ पन्नालालजी ऐसा करनेके लिए उनके साथ सहमत न थे। स्वामीजीको अन्तमें पाठशालाका प्रबन्ध परिवर्तन करना पड़ा। उन्होंने मिर्जापुरसे पण्डित युगलकिशोरजीको बुलाकर मुख्याध्यापक बनाया और प्रबन्धका कार्य्य श्री निर्भयरामजीको सौंप दिया।

फरुखाबादकी पाठशालाके प्रबन्धसे निश्चिन्त होकर स्वामीजी कर्णवास आदि स्थानोंमें पर्यटन करते हुए भाद्रपद सुदी चौदस सम्वत् १९२८ को अनूपशहर में पधारे। जब लाला बाबूकी कोठीमें उतरने लगे तो महाराजने उस स्थानके नौकरको कहा कि यहाँ गोरा लोग आदि सभी आकर ठहरते हैं इस लिए इसको भीतरसे धो डालो। उसने जब भीतरके सारे भागको वराण्डेसहित धो

डाला तब महाराजने भीतर आसन लगाया।

एक दिन कुछ लोग सूर्यको अर्घ्य दे रहे थे। स्वामीजीने उनसे कहा "अरे भोले भाइयो! जलमें जल क्यों देते हो? यदि किसी पेड़को पानी दो तो कुछ लाभ भी होसकता है।"

इस वार स्वामीजीने यहाँ अवतारवादका बलपूर्वक खण्डन किया। अनूपशहरसे चलकर स्वामीजी कार्तिक मास सम्वत् १९२८ को कर्णवासमें सुशोभित हुए। यहां ठाकुरोंके कई लड़के यज्ञोपवीत लेनेको समुद्यत थे। इसलिए स्वामीजीकी आज्ञासे कोई बारह पण्डित जप करनेपर बैठाए गए। सात दिनतक बृहद् हवन होता रहा। फिर महाराजने पन्द्रह मनुष्योंको जनेऊ धारण कराया। उस समय स्वामीजीने कुमारोंको ब्रह्मचर्य अवस्थातक विवाह न करनेका उपदेश दिया; और जो विवाहित थे उनको आदेश किया कि नियमसे गृहस्थ धर्म्मका पालन करना। अपनी पत्नीके विना दूसरी स्त्रीको स्वप्नमें भी ध्यानमें न लाना।

ठाकुर कैथलसिंह, रातको भी स्वामीजीकी सेवामें उन्हींके स्थानमें रहते थे। उन्हीं दिनोंमें बरौलीके राव कर्णसिंह शरत्पूर्णिमाका स्नान करनेके लिए, बहुत दिन पहले ही वहाँ आ गये थे। इस वार उनके साथ नाचरङ्गकी सामग्री लिये वेश्यायें भी थीं! राव महाशयका उतारा स्वामीजीके आसनसे कोई डेढ़ सौ पगके अन्तरपर एक बारहदरीमें था। वे स्वामीजीसे पहले ही चिढ़े हुए थे। इस वार भी महाराजको सतानेके उपाय सोचनेसे पराङ्मुख न थे। वे वैरागियों को स्वामीजीपर आक्रमण करनेके लिए उत्तेजित करते रहते थे।

कर्णवासमें मौजबाबा नामक एक अत्युत्तम महात्मा रहते थे। किसी कारण से उनके दोनों नेत्रोंकी ज्योति जाती रही थी। वे बड़े मस्त सन्त थे। शिशुवत् दिगम्बर विचरते। जब गङ्गा स्नान करने लगते तो स्त्रियां भी उन्हें मलमलकर नहलाने लग जातीं और वे 'छोड़ो माँ' कहते हुए भूमिपर गिर जाते। उनकी वासनायें शान्त थीं। भेद-भावना उनमें नहीं थी। वे प्रायः मौन रहते और पक्के घाटपर निवास करते थे। सभी लोग मौजबाबाको योगी मानते थे।

स्वामीजी महाराज और मौजबावा, दोनों गङ्गाके पावन पुलिनपर बैठे घण्टों वार्त्तालाप करते रहते ! उस समय वे किसी भी दूसरे मनुष्यको अपने पास नहीं आने देते थे।

एक दिन मौजबावाको पता लगा कि राव कर्णसिंहके भड़कानेसे कुछ वैरागी रात्रि-समय, स्वामीजीपर अत्याचार करना चाहते हैं। वे तत्काल वैरागियोंके डेरेपर पहुंचे। वैरागी उनके भक्त थे। इस लिए, जिस समय बावाजीने उन्हें समझाया तो वे सर्वथा शान्त हो गये और फिर कभी राव महाशयके उकसानेमें नहीं आये।

जब राव महाशयको वैरागियोंपर उत्तेजनाकी चाल चलनेसे भी सफलता न हुई तो वे विवेक-विचारसे इतने शून्य हो गये कि एक रात उन्होंने अपने तीन नौकरोंको लपलपाती तलवारें लेकर स्वामीजीके वधके लिए भेज दिया! कोई, आधी रातका समय होगा। सर्वत्र सन्नाटा छा रहा था। केवल गङ्गाकी सायें सायें ध्वनि ही सुनाई देती थी। यदि पवनका कोई झोंका आता तो पेड़ों के पत्र भी मर्मर शब्द करने लगते थे। स्वामीजी, उस समय तुर्य्यावस्थामें ध्यानारूढ़ थे। थोड़ी दूरीपर कैथलसिंह गाढ़ी निद्रामें पड़ा खर्राटे ले रहा था। ऐसे समयमें कर्णसिंहके तीन बलिष्ठ नौकर, हाथमें नङ्गी तलवारें लिये चुपचाप चले आते थे। हाथीके कितनेही लम्बे दाँत हों, भालूके कितनेही तीक्ष्ण नख हों, परन्तु केसरीकी कन्दराके निकट जानेके लिए तो परम साहसही होना चाहिए।

कर्णसिंहके नौकरोंके पास खड्ग तो तीक्ष्ण थे, परन्तु एक परोपकारी वीतरागको मारनेका साहस न था। उनका तन थरथर काँपता था, पांव धूजते थे और हृदयकी धड़कन बढ़ती जाती थी। उनकी आंखोंके सामने अन्धेरा छा रहा था। यह स्थान गङ्गाके कूलपर होनेके कारण कुछ ऊँचा नीचा अवश्य था और वहां छोटी छोटी झाड़ियाँ भी थीं। परन्तु उन लोगोंको तो मारे भयके, वह स्थान सीधी खड़ी घाटियाँ और सघन वन प्रतीत होने लगा। वे देरतक उस स्थानमें उलझे रहे। अन्तमें उनके पांव फूलने लगे। उनसे आगे न बढ़ा

गया। इस लिए, लौटकर राव महाशयके पास ही जा पहुंचे। राव महाशयने उन्हें धमकाकर फिर भेजा। उस समय स्वामीजी भी समाधिसे उतर आये थे और जो डाँटडपट कर्णसिंहने अपने नौकरों को की थी वह उन्होंने भी सुन ली थी। दूसरी बार भी वे नौकर लौट गये और राव महाशयको अपनी अशक्ति बताने लगे। पर राव कब मानते थे! उन्होंने नौकरोंको बहुत ही झिड़कियाँ और गालियां देकर तीसरी बार फिर, स्वामीजीपर आक्रमण करनेके लिए भेजा। वे भी ज्यों त्यों करके गिरते पड़ते स्वामीजीकी कुटीके पास आ पहुंचे। आततायियोंको अति समीप आते देख महाराजने उठकर बलपूर्वक 'हुंकार किया, और भूमिपर एक लात भी मारी। स्वामीजीका 'हुंकार' उनके लिए, सिंह-नादके समान हो गया। वे मारे डरके मूर्छित होकर गिर पड़े, उनके हाथों से तलवारें गिर पड़ीं! बड़ी देरके पश्चात् वे सम्भलकर वहाँसे भाग गये।

महाराजकी गम्भीर गर्जनासे कैथलसिंहकी भी आँख खुल गई। वह काँ-पता हुआ स्वामीजीसे बोला, "वे दुष्टजन कहीं फिर न आ जायँ, इसलिये चलिए किसी ऊंचे नीचे स्थानमें छिपकर रात बिता लें।"

स्वामीजीने "नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।" यह श्लोक पढ़ कर उसे कहा, "कैथलसिंह! संन्यासीजन अपनी रक्षानिमित्त गढ़ और गुहाका आश्रय नहीं ढूंढ़ा करते; हमारा रक्षक तो केवल एक भक्त-वत्सल भगवान् ही है। तुम्हें घबराना नहीं चाहिए। हम चाहें तो उनके ही शस्त्रोंको छीनकर उन्हें सीधा कर सकते हैं।"

कैथलसिंह उसी समय दौड़ा हुआ नगरमें गया। उसने ठाकुर कृष्णसिंह आदिको जगाकर इस घटनाका समाचार कह सुनाया। स्वामीजीके प्रेमी ठाकुर लोग, राव कर्णसिंहके अत्याचारसे अति कुपित हुए और उनके उतारेके आगे आकर उसे डाँटने लगे। कृष्णसिंहजीने कर्णसिंहको ललकारकर कहा कि यदि तुझमें कुछ भी क्षत्रियत्व है तो एकबार हमारे सामने बाहर आ। परन्तु राव महाशय इतने भयभीत हुए कि उन्होंने अपने मकानके द्वार बन्द कर लिये!

उन दिनों राजघाटपर पञ्जाबी सेनाकी एक मण्डली रहती थी। अगले दिन किसी प्रकार उन लोगोंको भी रावमहाशयके अत्याचारका समाचार मिल गया। निराकार ईश्वरको माननेवाले सन्त पर आक्रमण हुआ है, इस समाचारने उन वीरोंकी नाड़ियोंमें रक्तके वेगको बहुत बढ़ा दिया। पच्चीस पञ्जाबी वीर शस्त्र बाँधे स्वामीजीके पास आ गरजे और हाथ जोड़कर कहने लगे कि सन्तजी महाराज! आप हमें एकबार आज्ञा दीजिये और फिर देखिए कि हम उन साधु-सन्तोंके द्वेषियोंको कैसा स्वाद चखाते हैं! इस कार्यमें चाहे हमारी नौकरी भी चली जाय, परन्तु उनको तो भगाकर ही लौटेंगे।

श्री स्वामीजीने अति प्रेम-भरे शब्दोंसे उन वीर सैनिकोंको शान्त किया और सत्संगमें बैठाकर एक अत्युत्तम धर्मोपदेश सुनाया।

रावमहाशयको उनके सम्बन्धियोंने समझाया कि यहाँके ठाकुर अब आपके विरोधी हो गये हैं, इसलिये अब आपका यहाँसे चले जाना ही अच्छा है। वे भयभीत तो पहिले ही थे, वहाँसे तुरन्त भाग गए। कहते हैं कि घर जाकर वे रुग्ण हो गए और उनकी दशा उन्मत्तकीसी हो गई! उनका पचास सहस्रका एक मुकद्दमा प्रयागमें चल रहा था, उसमें भी उनकी हार हो गई।

महाराजके श्री उपदेशोंसे अनेक पतितोंका परित्राण हुआ; अबोध जनोंको विवेकके नेत्र प्राप्त हुए। लोगोंने दूर दूरसे आकर उनसे गुरुमन्त्र ग्रहण किया।

स्वामीजीका स्वभाव अति शान्त था। वे कुपित कभी नहीं होते थे। दुर्वचन अथवा अपशब्द तो उनके मुखसे निकलता ही न था। उनकी मधुर्वर्षिणी वाणीमें अश्लीलताका लेश भी नहीं होता था। उनपर लोगोंने क्या रातको और क्या दिनको अनेकबार हाथ चलाए, परन्तु उन्होंने कभी किसीको ताड़ना नहीं की। समर्थ होते भी अत्याचार सहन करते रहे। महाराज खाँसने, खखारने और हुङ्कार आदिसे जो कभी अधम जनोंको कम्पित कर दिया करते थे वह केवल विभीषिका ही दिखाते थे। उनके चित्तमें किसीको सतानेका भाव किञ्चित् भी नहीं होता था।

लोग लट्ठसे, तलवारसे, ईंट-पत्थर और विष तकसे उनके प्राण लेनेके लिए तुले रहते। चालीस चालीस और पचास पचास मनुष्य मिलकर उनको मारने आते। स्थान-स्थानपर उनके विरोधी विद्यमान थे। उनका चिन्ह-चक्र तक मिटा देनेके लिए अनेक स्थानोंमें षडयन्त्र रचे जाते थे। परन्तु दयानन्द थे कि विरोधसे व्याप्त वायुमण्डलमें अकेले, कौपीनमात्रधारी गङ्गाके किनारे गाँव गाँवमें चक्कर लगाकर प्रचार करते थे। वस्तीसे बाहर वनोंमें रहते थे, निर्जन स्थानोंमें रातें काटते थे और बालूपर ही सो रहते थे।

उनमें आश्चर्य जनक साहस, असीम उत्साह, परम निर्भयता और अलौकिक धैर्य था।

पांचवाँ सर्ग।

कर्णवाससे प्रस्थान करके स्वामीजी भ्रमण करते हुए मार्गशीर्ष सम्वत् १६२८ को फरुखावाद पहुंचे। यहाँ महाराजने तीन मास निवास किया। फाल्गुन वदी सम्वत् १६२८को स्वामीजी फरुखाबादसे प्रस्थानकर प्रयाग मिर्जापुर आदि स्थानोंमें विचरते हुए बनारसमें पधारे और लाला माधोदासजीके उद्यानमें ठहरे। प्रतिदिन धर्म-प्रचार होता रहा। फिर चैत्र सुदी रामनवमी सम्वत् १६२६ को महाराजने पूर्वकी यात्रा आरम्भ की।

महाराज भ्रमण करते हुए डुमराऊं पधारे और नागजी उदासीके स्थानमें ठहरे। नागजी अतीव सज्जन और स्वामीजीके अनुयायी थे। उन्होंने अति भक्ति भावसे स्वामीजीका आतिथ्य किया। १६ एप्रिलतक वहाँ ठहरकर स्वामीजी २० एप्रिलको नागजीके साथ आरामें आये। उस समय उनके साथ एक ब्रह्मचारी भी था। स्वामीजीने आरामें हरवंशराय नामक एक भद्र व्यक्तिके यहां आसन किया। हरवंशरायजीने बड़ी श्रद्धासे स्वामीजीकी सेवाशुश्रूषाकी और प्रस्थानके

समय, कलकत्ता आदिके व्ययके लिये, अत्याग्रहसे एक सौ रुपया भेंट किया। महाराजने वह रुपया अपने ब्रह्मचारीको रखनेके लिए दे दिया।

आश्विन १९२९ में महाराज पटनेमें आये और डिपटी सावनमल आदि सज्जनोंने उनका स्वागत करके महाराजा भूपसिंहके ऐश बागमें डेरा कराया।

उन दिनों पटनेमें पण्डित रामजीवन भट्ट प्रसिद्ध थे। वे पचास साठ मनुष्य साथ लेकर स्वामीजीसे शास्त्रार्थ करने आये, परन्तु दो एक बातोंमें ही निरुत्तर होकर चले गये।

एक छोटेलाल नामक व्यक्तिने स्वामीजीके पास आकर पूछा; "जीव मरकर कहां जाता है ?" स्वामीजीने यजुर्वेदके अनुसार उत्तर दिया, "जीव देह छोड़ने के अनन्तर वायुरूप होकर आकाशमें रहता है। फिर जलमें जाता है। उसके पश्चात् क्रमशः औषधियोंमें, अन्नमें और पुरुषमें होकर गर्भमें स्थान करता है और फिर समयपर जन्मता है" उस समय स्वामीजीने स्वर्गनरकके मिथ्या विश्वासका खूब खण्डन किया।

गुरुप्रसाद नामक एक सम्भ्रान्त व्यक्ति पटनामें निवास करते थे। वे अनेक सज्जनोंसहित स्वामीजीके दर्शनार्थ गये और नमस्कार करके पूछने लगे, भगवन् ! संसाराश्रम त्यागना उचित है अथवा नहीं ?" स्वामीजीके पूछनेपर गुरुप्रसादजीने कहा,-संसाराश्रमसे मेरा आशय पुत्र, स्त्री, परिवार, गृह इत्यादिसे है।' स्वामीजीने उत्तरमें वर्णन किया, "संसारमें तो खाना-पीना-सोना -जागना, श्वास-प्रश्वास लेना और विद्याभ्यास करना आदि सभी कर्म आजाते हैं और इसका त्याग करना असम्भव है।"

गुरुप्रसादजीको स्वामीजीके उत्तरसे पूर्ण सन्तोष हो गया।

स्वामीजीने विज्ञापनों द्वारा नगरमें घोषणा कर दी कि मूर्ति-पूजन और अवतार-वाद आदि विषयोंपर चाहे जो आकर शास्त्रार्थ कर ले। हम उसके भ्रम-निवारणार्थ सर्वदा सर्वथा समुद्यत हैं। परन्तु किसी भी पण्डितको उनके सामने आनेका साहस न हुआ।

एक दिन एक मैथिल पण्डित स्वामीजीके पास आया और बड़ी देर तक संस्कृतमें बातचीत करता रहा। प्रसंगवश स्वामीजीने भागवतका खण्डन आरम्भ कर दिया। इसपर उस पण्डितने कहा कि स्वामीजी! आप कुछ भी कहें, परन्तु भागवतके अठारह सहस्र श्लोक हैं; ऐसे और श्लोक रचनेकी सामर्थ्य आजतक किसी भी दूसरे विद्वान्में तो नहीं हुई।

महाराजने हंसकर कहा कि जैसे कल्पित कथाके अठारह सहस्र श्लोक भागवतमें हैं वैसे ही कल्पित श्लोक हम अड़तीस सहस्र रच सकते हैं। नमूनेकी रीतिसे जूते और खड़ाओंके प्रश्नोत्तरही पहिले लिखिए। स्वामीजीने अभी उसे दस श्लोक ही लिखाए थे कि वह उन श्लोकोंके वचन-माधुर्य पर और पद-विन्यासके लालित्य पर ऐसा लट्टू हुआ कि उसने महाराजके चरण पकड़ लिये! वह ब्राह्मण स्वामीजीकी रचना शक्तिकी भूरि-भूरि प्रशंसा करता हुआ वहाँसे चला गया।

महाराजके निकटवासी भक्त इस बातका विश्वास करते थे कि स्वामीजी चाहें तो उनके मनोरथों और उनके संकल्पोंको जान सकते हैं। एक दिन, वहां स्वामीजीके रसोइएका चाचा आया और रसोइएको कहने लगा कि स्वामीजीके भोजन कर चुकने पर ही तुम भोजन पाते होगे। इस प्रकार तो रसोई जूठी हो जाती है। इसलिए, तुम लकीर निकाल लिया करो और उस लकीरसे बाहर ही उन्हें भोजन दिया करो।

स्वामीजी महाराज उस समय स्नान करने गये हुए थे। जब स्नान करके आये तो चौकेके बाहर ही बैठ गये और कहने लगे कि हमें भोजन यहीं दो। रसोइएने विनयकी कि भगवन्! आगे तो आप चौकेमें बैठकर भोजन पाया करते थे। आज क्या कारण है कि आप चौकेसे बाहर बैठ गये हैं? स्वामीजीने कहा कि तुम्हें और तुम्हारे चचाको तो बिरादरीसे बाहर निकाले जानेका भय है, मैं कहीं भी भोजन पा लूं, मुझे किसीका डर नहीं। उस रसोइएको बड़ा आश्चर्य हुआ कि महाराजने मेरे मनकी बातको कैसे जान लिया!

राजनाथ तिवाड़ी नामक एक युवक पटनेके नार्मल स्कूलमें पढ़ता था। वह मुजफ्फरपुर जिलेके अन्तर्गत जोरानपुर ग्रामका रहनेवाला था। लोगोंसे स्वामीजीके वैदिक ज्ञानकी प्रशंसा सुनकर उसके मनमें भी वेदाध्ययनका विचार उत्पन्न हो आया। उसने एक दिन श्रीचरणोंमें आकर निवेदन किया कि यह सेवक रसोई आदि बनाकर आपकी सेवा करता हुआ आपसे विद्याग्रहण करना चाहता है। स्वामीजीका पहला पाचक भोज्य वस्तुयें चुरा लिया करता था। इसलिए स्वामीजीने उसे निकाल कर राजनाथ की आग्रहपूर्ण प्रार्थना पर उसे रख लिया।

अगले दिन भोजनादिके अनन्तर, राजनाथने नार्मल स्कूलसे अपना नाम कटा लिया; पर डिपटी सोहनलालजीके पास बैठे बैठे उसे रात हो गई। सोहनलालजीके मकानसे स्वामीजीके उतारेका स्थान कोई दो कोसकी दूरीपर था। वे नित्य नियमसे स्वामीजीके लिए दूध भेजा करते थे। उस दिन उन्होंने राजनाथहीको दूध लेते जानेके लिए कहा। उस समय अंधकार छा गया था। कुछ वर्षा हो जानेके कारण कीचड़ भी हो रहा था। स्वामीजीके स्थानपर जानेसे राजनाथ कतराने लगा। सोहनलालजीने कहा कि तू अभी इतने अंधेरेसे डरता है, परन्तु स्वामीजी तो वनोंमें वास करते हैं। उनके पास तेरा निर्वाह कैसे हो सकेगा? सोहनलालजीके प्रोत्साहनसे राजनाथने मिश्री कमरके साथ बांध ली, और एक हाथमें दूधका लोटा और दूसरेमें बांसकी लकड़ी लेकर वह चल पड़ा। थोड़ी दूर जाकर उसने देखा कि एक भयङ्कर सर्प जलसे निकलकर मार्गमें पड़ा है। राजनाथ डरकर पीछेको हटने लगा तो उधर भी उसे पथपर एक भीषण नाग दिखाई दिया। वह कुछ देर तो किंकर्त्तव्यविमूढ़तामें निमग्न खड़ा रहा, परन्तु अन्तमें स्वामीजीकी ओर जानेका निश्चय करके सर्पपरसे छलांग मारकर पार हो गया! जब वह स्वामीजीके पास पहुंचा तो एड़ीसे चोटी तक पसीनेसे भीग रहा था। महाराजने मुस्कराकर कहा, "क्या तुम मार्गमें डर गये थे? क्या तुम सर्प देखकर भयभीत हो गये थे?" राजनाथको इस बातपर अतीव आश्चर्य

हुआ कि मार्गमें घटित घटनाओंका ज्ञान, गुरुजीको, मेरे पहुंचनेसे पहले ही कैसे हो गया है। उस दिनसे उसके हृदयमें स्वामीजीके लिए अनन्य श्रद्धा उत्पन्न हो गई।

पण्डित रामावतार तिवाड़ी उस समय पटना कालेजमें पढ़ाते थे। उन्होंने स्वामीजीसे भट्टोजीदीक्षितके एक श्लोकपर थोड़ी देरतक बातचीत की, परन्तु लोगोंने उनको यह कहकर रोक दिया कि तुम स्वामीजीके साथ शास्त्रार्थ करनेके योग्य ही नहीं हो।

आश्विन सुदी १ सं० १६२६ को सायंकाल स्वामीजी मुङ्गेरको प्रस्थान करने लगे। तो श्रीयुत सोहनलालजी आदि सज्जनोंने उन्हें बड़े सम्मानसे रेलवे स्टेशन तक पहुंचाया और गाड़ीमें बैठाकर घरको लौटे।

सायंकाल ८ बजे पटनेसे चलकर, गाड़ी रातके बारह बजे जमालपुर जंकशन पर पहुंची। उस समय मुङ्गेरको जानेवाली गाड़ीके छूटनेमें एक घण्टा शेष था। स्वामीजी पटनेकी गाड़ीसे उतरकर वहीं स्टेशनके आङ्गनमें टहलने लग गये। उस समय वहां एक अङ्गरेज इंजिनियर पत्नीसहित खड़ा था। उस इंजिनियरकी पत्नीने कौपीनमात्रधारी एक परमहंसको अपने सामने घूमता देखकर बुरा मनाया। इञ्जिनियर महाशयने तुरन्त जाकर स्टेशन मास्टरको कहा, "यह कौन नंगा टहल रहा है? इसे इधर उधर घूमनेसे बंद कर दो।" स्टेशन-मास्टरने महाराजको अति विनीत भावसे कहा, "भगवन्! दूसरी ओर चलकर कुर्सीपर आराम कीजिये। मुंगेरकी गाड़ीके जानेमें अभी बड़ी देर है।"

स्वामीजी पहले ही सब कुछ समझ गये थे। इस लिये उन्होंने स्टेशनमास्टरको कहा, जिस महाशयने मुझे हटा देनेके लिए आपको यहाँ भेजा है उसे जाकर कह दीजिए कि हम उस युगके मनुष्य हैं, जिस युगमें बाबा आदम और माता हव्वा, अदन उद्यानमें, नग्न घूमनेमें किंचित् भी लज्जा न करते थे। महाराजने टहलना पहलेकी भांति जारीही रक्खा। इंजिनियरने स्टेशनमास्टरको पुनः बुलाकर अपना आदेश दुहराया। इसपर स्टेशनमास्टरने कहा कि महा-

शय ! वह कोई भिखमँगा तो है ही नहीं, जिसे मैं आंगनसे निकाल दूं। वह तो हम और आप ऐसोंको कुछ भी न समझने वाला एक स्व-तन्त्र संन्यासी है। इंजिनियरने तब महाराजका श्री नाम पूछा। इसपर स्टेशन-मास्टरने कहा कि इनका नाम दयानन्द सरस्वती है। इंजिनियर महाशय यह कहता हुआ कि क्या ये प्रसिद्ध सुधारक दयानन्द सरस्वती हैं, तत्काल उठ खड़ा हुआ और स्वामीजीके समीप जाकर उसने विनीतभावसे नमस्कार किया, और कहा, "चिरकालसे मेरे चित्तमें आपके दर्शनोंकी अभिलाषा थी। यह मेरा सौभाग्योदय है कि यहाँ आपके दर्शन होगये हैं।"

जबतक मुङ्गेरकी गाड़ी खड़ी रही, इंजिनियर महाशय महाराजसे वार्त्तालाप करते रहे और गाड़ीके चलनेपर नमस्कार करके चले गये।

प्रातःकाल चार बजे स्वामीजीने मुंगेर पहुंच, एक कबीर पन्थीकी पुष्पवाटिकामें डेरा लगाया। वह स्थान अति रमणीय और स्वच्छ था। उसके पास ही अभंग तरंगा गङ्गा भी लहरें मार रही थी।

महाराजको मुंगेर आये तीन दिन हुए थे कि भोजनके समय, एक मौन मुनि उनके पास आकर बैठ गया। स्वामीजीने उसे भोजनके लिये पूछा तो उस समय तो वह बोल पड़ा, परन्तु भोजनानन्तर फिर चुप्पी साध बैठा। स्वामीजीने उसे उपदेश दिया कि इस प्रकारका मौन मूढ़ जन तो भले ही करें, परन्तु ज्ञानियोंको सत्यके कथनमें ही कल्याण मानना चाहिये। उनके उपदेशको सुनकर उसने मौन छोड़ दिया, और मूर्त्ति-पूजा तथा पुराणोंका मिथ्या मूलक होना मान लिया।

चौका-बर्तनके कार्य्यके लिये स्वामीजीके पास, वहां एक कहार भी रहता था। उसने एक दिन, एक टालवालेको जाकर कहा कि समीपकी वाटिकामें एक महात्मा ठहरे हुए हैं, उनकी रसोईके लिये कुछ लकड़ियां दीजिए। टाल वालेने उसे झिड़क दिया और एक भी लकड़ी न दी। जब वह लौटकर वाटिकामें पहुंचा तो स्वामीजीने तत्काल राजनाथको कहा कि इस धृष्टको ताड़ना करो कि यह क्यों लकड़ियां मांगने गया था।

जब राजनाथ उसे ताड़ने लगा तो वह कहार बड़ा विस्मित हुआ कि बिना बताये महाराजको कैसे ज्ञात होगया कि मैं टालपर लकड़ियां मांगने गया था।

कुछ दिनोंके पश्चात् वहांके प्रतिष्ठित लोग स्वमीजीके पास आने और सेवा शुश्रूषा करने लगे। नगरके अनेक सुप्रतिष्ठित पण्डित भी धर्म्म-चर्चा करते रहे।

मुंगेरसे चलकर श्री स्वामीजी भागलपुर पधारे। वहां युधिष्ठिरनाथ महोदयके मन्दिरमें उतारा किया। इस नगरके पण्डितोंमें स्वामीजीके आनेसे हलचल मच गई। एक पण्डित स्वामीजीके आनेसे पहिलेतो लोगोंके सामने बड़ी बड़ी डींगें मारता था, परन्तु उनके पधारनेपर नगरही छोड़कर चला गया।

वहांका एक वैश्य स्वामीजीके लिये भोजनकी सामग्री भेजा करता था, परन्तु स्वामीजीको पता लगा कि उसकी भावना यह है कि मेरा आतिथ्य करनेसे उसे सन्तानकी प्राप्ति हो। महाराजने उसी समयसे उसके स्वार्थके अन्नका ग्रहण करना छोड़ दिया।

एक दिन स्वामीजीके पास कुछ मौलवी और पादरी आकर धर्म्म-चर्चा करने लगे। उनपर महाराजके कथनका इतना प्रभाव पड़ा कि, एक बङ्गाली ब्राह्मण, जो कुछ कालसे ईसाई होगया था, फूट-फूटकर रोने लगा। उसने यह भी कहा, "यदि ऐसे उपदेश पहले प्राप्त होते तो हम लोग अपने पुरातन धर्मका परित्याग क्यों करते!"

महाराजको एक दिन नन्दन ओझा मिला। उन्होंने उसे गायत्री मन्त्रका आराधन करना बताकर कृतार्थ किया। इसके अगले दिन महाराजने बङ्गीय सज्जनोंकी एक बड़ी उपस्थितिमें संस्कृत भाषामें एक अत्युत्तम व्याख्यान दिया, इस व्याख्यानसे लोग बहुत प्रभावित हुए। उस दिन किसी पर्वके कारण गङ्गाके उस पार एक भारी मेला था। उसमें लोग अपनी लड़कियां भी पुरोहितोंको दान कर रहे थे! स्वामीजी सायंसमय घूमने गये तो बड़ी रात हो जानेपर भी लौट कर न आये। नन्दन महाशय स्वामीजीका भोजन मन्दिरमें पहुंचाकर

अपने घर चला गया। जब सवेरे स्वामीजीके दर्शनोंको आया तो क्या देखता है कि वह भोजन वैसाका वैसा रक्खा पड़ा है। उसने स्वामीजीसे विनयकी, 'भगवन्! आपने रातको भोजन क्यों नहीं पाया?" स्वामीजीने कहा, "महाशय! इस देशमें इतना अधर्म्म और अज्ञान फैल रहा है कि गत दिनके मेले पर लोग अपनी लड़कियां तक पण्डोंको दान कर रहे थे। देशकी इस अधोगतिको देखकर मेरा हृदय अतीव व्यथित हुआ। इसी शोक और चिन्तामें निमग्न बैठे, एक तो गङ्गापरहीसे मैं बड़ी रात बीते यहां आया और दूसरे यहां आकर भी, वही मानस वेदना व्याकुल करती रही। इसी लिए भूख और भोजनका ध्यानतक नहीं आया।' महाराजका यह कथन सुनकर नन्दन महाशय भी अति दुःखित हुए और उनके नेत्रोंसे अटूट अश्रु धारा वह निकली।

स्वामीजीके प्रचारका धीरे धीरे इतना प्रभाव हो गया कि लोगोंने आप ही शामियाने आदिके लगानेका प्रवन्ध कर दिया। व्याख्यानोंमें सहस्रों जन आने लगे। व्याख्यानके समय वहां एक प्रकारका बाजारसा लग जाता था। बग्घीपर बग्घी आती थी।

महाराजा वर्द्धमानने स्वामीजीके पास चार नैयायिक पण्डित भेजे। वे देर तक तर्क शास्त्रपर बातचीत करते रहे। जब वे लोग जाने लगे तो उन्होंने कहा कि "हम आपके दर्शन महाराजाको भी करायँगे।"

सायंकालके चार बजे स्वामीजीके पास मौलवी और पादरी लोग धर्मचर्चा करने आया करते थे। उसी समय, महाराजा वर्द्धमान वहाँ आ गये और वार्त्ता-लाप सुनकर चले गये। महाराजाने पण्डितोंको भेजकर स्वामीजीको अपने स्थानपर बुलाया और उसी कोठीमें निवास करनेकी विनती की। परन्तु उस कोठीमें गड़बड़ अधिक थी, इसलिए महाराजने वहाँ निवास करना स्वीकार न किया। इसके पश्चात् भी महाराजा श्रीसेवामें उपस्थित होते रहे।

स्वामीजी एक मास पर्यन्त भागलपुरमें निवास कर फिर कलकत्तेकी ओर प्रस्थान कर गये।

छठा सर्ग।

महाराज पौष सं० १९२९ के लगभग कलकत्तेमें पहुंचे। उनको यहां बुलाने-का उद्योग श्रीयुत चन्द्रशेखर सेन बैरिस्टरने किया था। स्वामीजीके उतारे के लिये सेन महाशय पहले देवेन्द्रनाथजी ठाकुरके पास गये, परन्तु जब उन्होंने स्थान देनेमें सङ्कोच प्रकट किया तो फिर उन्होंने श्रीयुत सुरेन्द्र मोहनको कहा। सुरेन्द्रमोहन स्थान देनेमें कुछ हिचकते थे सही, परन्तु जब, सेन महाशय स्वामीजीको रेलके स्टेशनसे उनके मकानपर ही ले आए तो सुरेन्द्रमोहनने प्रसन्नतासे स्वामीजीकी आव भगत की और उनको अपने प्रमोद्-काननमें उतारा।

स्वामीजीके पधारनेका समाचार सारे नगरमें फैल गया। अनेक जिज्ञासुजन सत्संगमें आने लगे। पण्डित हेमचन्द्र चक्रवर्ती बड़े पक्के ब्राह्मसमाजी थे। उन्होंने एक दिन स्वामीजीसे पूछा कि आप जाति भेद स्वीकार करते हैं अथवा नहीं? उत्तरमें महाराजने कहा कि मनुष्य जाति, पशु जाति और पक्षी जाति आदि भेद तो प्रसिद्ध ही हैं, परन्तु यदि आपका आशय चार वर्णोंसे है तो वर्ण जन्म भेदसे नहीं हैं, वे तो गुण-कर्मके भेदसे हैं। महाराजने वर्णोंके कर्मों की व्याख्या करके उन्हें ऐसी रीतिसे समझाया कि वे अतीव सन्तुष्ट हो गए।

चक्रवर्ती महाशयके पुनः पूछनेपर स्वामीजीने कहा कि ईश्वर निराकार है। उसका लक्षण सच्चिदानन्द है। उसकी उपलब्धि चिरकालतक योगाभ्यास करने से होती है चक्रवर्त्ती महाशयने स्वामीजीसे योग-साधनकी विधि पूछी। इसके उत्तरमें स्वामीजीने उनको उपदेश दिया कि अभ्यासीको चाहिए कि तीन घड़ी रात रहते उठ बैठे। उस समय मुंह हाथ धोकर पद्मासनसे बैठ जावे और दत्त चित्त होकर गायत्रीका ध्यान करे।

स्वामीजीने हेमचन्द्रजीको अष्टाङ्ग योगकी विधि और गायत्री मन्त्र अर्थ सहित लिख दिया। आसन भी लगाकर बताया।

उनके पूछनेपर स्वामीजीने अच्छे प्रकार सिद्ध कर दिखाया कि सांख्यके कर्त्ता कपिल भगवान् परम आस्तिक थे।

उन दिनों श्रीयुत केशवचन्द्र सेन यज्ञोपवीत धारण करने वाले ब्राह्मसमाजियोंकी निन्दा किया करते थे, इसलिए हेमचन्द्रजीने इस विषयमें स्वामीजीसे प्रश्न किया। स्वामीजीने कहा कि शुभ गुणयुक्त मनुष्यको यज्ञोपवीत धारण करना उचित है। आप भी विद्वान् हैं, ब्राह्मण वंशीय हैं, इस लिए यज्ञोपवीत अवश्य ही धारण कीजिए। चक्रवर्त्ती महाशयने फिर जनेऊ पहन लिया और अन्य अनेक सज्जनोंने भी उनका अनुकरण करते हुए, दुबारा यज्ञोपवीत धारण कर लिए।

पण्डित हेमचन्द्रजी स्वामीजीके अनुयायी बन गये और उनसे उपनिषद् अध्ययन करने लगे। वे स्वामीजीके साथ रहकर चिरकालतक पढ़ते रहे। कई मासके पश्चात् फरुखाबादमें उनका पाठ समाप्त हुआ।

जिस समय स्वामीजी कलकत्ते गये उस समय श्री केशवचन्द्रसेन वहाँ नहीं थे। वे जब आये तो महाराजके मिलापार्थ प्रमोद-काननमें गये और दर्शनकरके देरतक वार्तालाप करते रहे। महाराजने उनका नाम आदि कुछ भी न पूछा। केशवचन्द्रसेनजीने वार्त्तालापमें स्वामीजीसे कहा, "क्या आप कभी केशवचन्द्रसेन को भी मिले हैं?" स्वामीजीने उत्तर दिया, "हाँ, मिला हूं।" उन्होंने कहा "वह तो कलकत्तेमें नहीं था, आप उसे कब मिले थे?" स्वामीजीने हँसकर कहा, "अभी मिला हूं और आप ही केशवचन्द्रसेन हैं।" सेन महाशयने कहा, "यह आपने कैसे जान लिया कि मैं ही केशवचन्द्रसेन हूं?" स्वामीजीने उत्तर दिया, "जैसी बात आपने की है ऐसी किसी दूसरेकी नहीं होसकती।" स्वामीजीकी ऊहा-शक्तिसे वे अति प्रसन्न हुए और उसी समयसे उनके हृदयमें महाराजके प्रति प्रेम और आदरका भाव उत्पन्न हो गया।

एक दिन केशवचन्द्रसेनजीने स्वामीजीसे पूछा, "इस समय हमारे सामने बाइबल, कुरान और वेद इन पुस्तकोंके आधारपर तीन बड़े धर्म्म हैं। सभी

अपनेको सच्चा कहते हैं। हमें कैसे ज्ञात हो कि इनमेंसे वास्तवमें कौनसा सच्चा है?"

स्वामीजीने उत्तरमें बाइबल और कुरानमें दोष दिखाकर कहा "पक्षपात और इतिहासादि दोषोंसे विवर्जित केवल वेद ही है! वह केवल उपदेश ही करता है, इस लिए वैदिक धर्म्म ही सच्चा धर्म्म है।"

स्वामीजीकी युक्तियाँ सुन और उनकी अपरिमित प्रतिभाका परिचय पाकर एकबार केशवचन्द्रसेनने कहा, "शोक है कि वेदोंका अद्वितीय विद्वान् अंगरेजी नहीं जानता, अन्यथा इङ्गलेण्ड जाते समय वह मेरा इच्छानुकूल साथी होता।" स्वामीजीने भी हंसकर कहा, "शोक है कि ब्राह्म समाजका नेता संस्कृत नहीं जानता और लोगोंको उस भाषामें उपदेश देता है, जिसे वे समझते ही नहीं।"

श्रीकेशवचन्द्र सेनजीने अङ्गरेजीमें एक ग्रन्थ बनाया था। उसके आरम्भमें उन्होंने एक ऐसा श्लोक रक्खा था जिससे ईश्वरके हाथ पांव आदि सिद्ध होते थे स्वामीजीने केशवजीको कहा कि ईश्वर तो व्यापक है। उसके ऐसे वर्णन अच्छे नहीं हैं। उन्होंने स्वामीजीका कथन स्वीकार कर लिया।

एक दिन, केशवचन्द्रजीने स्वामीजीको कहा कि आप संस्कृत ही में बात-चीत करते हैं। जो लोग संस्कृत नहीं जानते उनको पण्डित लोग कुछ और ही समझा देते हैं। इसलिये आप देश भाषामें व्याख्यान आदि देनेका यत्न करें। स्वामीजीने उनकी सम्मतिको मान लिया।

केशवचन्द्रसेनजीने स्वामीजीसे यह भी निवेदन किया कि अब आप सभा आदिमें जाते हैं इसलिये वस्त्र धारण कर लें तो अच्छा है। महाराजने इस प्रस्तावको भी अनुमोदित किया।

श्री केशवचन्द्रसेन प्रतिदिन सायंसमय श्री-सत्संगमें सम्मिलित होते थे। उन्होंने, एक बार महाराजके साथ पुनर्जन्म और अद्वैतवादपर प्रश्नोत्तर किये, जिनका उन्हें सन्तोष जनक उत्तर मिल गया।

स्वामीजीने एक सभ्यके पूछनेपर कहा कि हवन मूर्ति-पूजा नहीं है किन्तु वायुमण्डलको शुद्ध बनाये रखनेकी रीति है।

महाराजने एक समय यह भी कहाथा कि धर्ममें तन्त्रोंको प्रमाण मानना अयुक्त है। प्रमाणमें महाभारत तक ही ग्रन्थोंको लेना चाहिए।

हेमचन्द्रको विजय करनेपर स्वामीजीकी कीर्तिने नगरको प्रभावित कर लिया। महाराजके निवास स्थानके आगे गाड़ियोंका ताँता लगा रहता था। सत्संगमें सहस्रों मनुष्य आते थे। शत शत मनुष्य प्रश्नोत्तर करके तृप्ति लाभ करते थे।

श्री केशवचन्द्र सेनजीने अपने आवासपर स्वामीजीका व्याख्यान कराना निश्चित किया। अङ्गरेजी और बङ्गलामें विज्ञापन बाँटे गये। नियत समयपर सहस्रों नर-नारी एकत्रित हो गए। उस समय कलकत्तेके गण्य-मान्य-सज्जन, प्रायः सभी, वहाँ उपस्थित थे। यद्यपि व्याख्यान संस्कृत भाषामें था परन्तु महाराजकी कथन शैली इतनी सरल थी कि उनका कथन सर्वसाधारणकी समझमें आ जाता था। महाराजके तर्कसे, युक्तियोंसे, दृष्टान्तोंसे और प्रमाणोंसे सभी श्रोताजन प्रसन्न हो गये। पश्चिमी ज्ञानमें पारङ्गत लोग परमहंसके वैज्ञानिक बलको जानकर आश्चर्य करने लगे।

कलकत्ता नगर, उस समय, एक तो हास-विलासमें वहा चला जाता था, दूसरे वह पश्चिमका अन्धाधुन्ध अनुकरण कर रहा था। वहाँके लोग तो यह स्वप्नमें भी स्वीकार करनेको समुद्यत न थे कि कोई पूर्वीय दर्शनका पण्डित उनको सन्तुष्ट कर सकता है। परन्तु श्री स्वामीजीके उपदेशोंसे उन्हें आपही आप अपनी कल्पनायें मिथ्यामूलक दीखने लगीं। भारतके प्राचीन ज्ञानकी गौरव-गरिमा उनपर गहरा प्रभाव कर गई। महाराजके व्याख्यानमें श्रोताओंके सहस्र सहस्र शिर झूमते थे। शत शत मुख 'धन्य धन्य' उच्चारण करते थे। बार बार तालियोंका नाद सभा स्थानको निनादित करता था।

व्याख्यानकी समाप्तिपर महाराजकी भूरि भूरि प्रशंसा की गई। लोग एक अत्युत्तम प्रभाव लेकर घरोंको गये।

उपर्युक्त व्याख्यान, कलकत्ता नगरमें महाराजका पहला व्याख्यान था। यह पौष सुदी ११ सम्वत् १९२९ को हुआ था।

उन्हीं दिनोंमें कलकत्ता ब्रह्म-समाजका वार्षिकोत्सव आ गया। ब्राह्म लोग स्वामीजीसे उपदेश देनेके लिये विनती करने लगे। श्रीदेवेन्द्रनाथजीने अपना ज्येष्ठ पुत्र द्विजेन्द्रनाथ, स्वामीजोकी सेवामें भेज महोत्सवमें पधारनेकी प्रार्थना की। जिस समय स्वामीजी द्विजेन्द्रनाथके साथ गाड़ीमें बैठकर उत्सव मण्डपमें पधारे तो ब्राह्म समाजके मुख्य सभासदोंने उनका भक्ति-भावसे स्वागत किया। वहाँ स्वामीजीका एक प्रभावशाली उपदेश भी हुआ। बहुतसे भद्र लोग धर्म्मालोचना भी करते रहे।

महात्मा देवेन्द्रनाथने महर्षि दयानन्दजीकी अति सम्मानसे सेवा-शुश्रूषा की। भोजन भी वहीं कराया। जब सायंकाल, श्री स्वामीजी अपने उतारेपर आनेके लिये प्रस्तुत हुए तो श्री देवेन्द्रनाथजीने निवेदन किया कि अब आप हमारे ही आवासमें आकर निवास करें। परन्तु स्वामीजीने कहा कि यह एकान्तस्थान नहीं है, इसलिये मैं प्रमोद-काननमें ही रहूंगा।

फाल्गुन वदी १० सं० १९२६ को स्वामीजीका, ईश्वर और धर्म्म विषयपर गौरीचरणदत्तके मकानपर व्याख्यान हुआ। महेशचरण न्यायरत्नने उसका अनुवाद सुनाते समय बीचमें बहुत उलट पलट करदी। इससे कालेजोंके विद्यार्थियोंने उसे बहुत लज्जित किया।

स्वामीजी महाराज एक दिन, प्रमोद-काननमें बैठे सत्संगियोंको समझा रहे थे। उसी समय किसी मनुष्यने आकर कहा कि राजा सुरेन्द्रमोहनजी आये हैं और आपको बुलाते हैं। स्वामीजीने कहा कि मैं एक व्यक्तिके लिए बहुतोंके लाभकी हानि नहीं कर सकता। यदि राजा महाशय मिलना चाहते हैं तो यहीं आ जायं। राजा महाशय वहां तो न आये, परन्तु रुष्ट होकर चले गये।

फाल्गुन वदी ४ सम्वत् १९२६ को स्वामीजीका व्याख्यान दिनके ३ बजे अँगरेज बोरनियो कम्पनी के भवन में हुआ। श्रोताओं की संख्या बहुत ही अधिक थी।

फाल्गुन सुदी ११ को स्वामीजीका व्याख्यान ब्रहान गोरके स्कूलमें हुआ।

जब महाराज व्याख्यानके स्थानमें पधारे तो उस समय उन्होंने एक रेशमी वस्त्र धारण किया हुआ था। व्याख्यान साढ़े तीन बजे आरम्भ हुआ। महाराजने पहले जगत्पिता परमात्माकी स्तुति-प्रार्थना अति गम्भीर भावसे की। तत्पश्चात् वेदके प्रमाणों और युक्तियोंसे ईश्वरकी निराकारता और एकत्व सिद्ध किया। जन्मसे वर्ण माननेमें बहुत दोष दिखाये। महाराज तीन घण्टोंसे अधिक काल-तक भाषण करते रहे।

कलकत्तेमें उन्होंने दो तीन व्याख्यान और भी दिये। महाराजके सभी व्याख्यानोंको छपा देनेका भार केशवचन्द्र सेनजीने अपने ऊपर ले लिया था, परन्तु न जाने किस कारणसे वे छप न सके।

प्रसन्नकुमार ठाकुरने मूलाजोड़में एक संस्कृत कालेज स्थापित किया था। स्वामीजीने वहाँ जाकर प्रस्ताव किया कि केवल इसका नामही संस्कृत न हो, प्रत्युत इसमें संस्कृत की शिक्षा भी होनी चाहिये।

कलकत्तेमें एक मनमथ महाशय निवास करते थे। वे स्वामीजीकी सौम्य मूर्त्ति, विशाल भाल, साधु स्वभाव और तेजोमय मुखमण्डलसे अतीव प्रभावित हो गये। वे महाराजकी सेवामेंही बहुतसा समय बिताते। कभी कभी रात्रि-निवास भी वहीं कर लेते।

महाराजके पास दो एक बार ईश्वरचन्द्र विद्यासागर भी आये।

एक दिन स्वामीजी अपने स्थानपर विराजमान थे। उनके पास अनेक जिज्ञासु सन्देह मिटा रहे थे। उस समय एक मुसलमान सज्जन वहाँ आगया। वह सत्संगमें तो आना चाहता था, परन्तु मकानके भीतर प्रवेश करनेमें झिझ-कता था। स्वामीजीने उसे आदरसे कहा, 'बिना सङ्कोच भीतर चले आइए और समीप आकर बैठिये। मैं ऐसे तुच्छ भेद-भाव अच्छे नहीं समझता।' उस सज्जनको स्वामीजीके सत्संगमें अति प्रसन्नता प्राप्त हुई।

स्वामीजी बहुत रात रहते उठते और ध्यानारूढ़ हो जाते थे।" फिर शौचा-दिके लिए बाहर, दूर जाते। स्नान कुएंपर करते। फिर नित्य कर्मोंसे निवृत्त

होकर ग्यारह बजेतक सत्संग लगाते। तदनन्तर भोजन करके किंचित् विश्राम करते। इसके उपरान्त फिर उपदेश-कार्यमें लग जाते। रातके आठ बजेतक सत्संग लगा रहता। इस प्रकार महाराज कलकत्ता-निवासियोंको तीन मास-पर्यन्त कृतार्थ करते रहे।

वृन्दावन नामक सम्भ्रान्त व्यक्ति स्वामीजीको हुगली ले गए, और उन्हें अपने उद्यानमें ठहराया। वृन्दावन महाशय एक बहुत बड़े भूमिहार थे। उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। स्वामीजीका निवास उनके स्थानमें सुनकर सहस्रों जन सत्संगमें सम्मिलित होने लगे।

यहां पण्डित ताराचरण भी लोगोंकी प्रेरणासे शास्त्रार्थके लिये आये। शास्त्रार्थ आरम्भ होनेके पहले स्वामीजीने इस बातपर बल दिया कि शास्त्रार्थ लेखबद्ध हो और पीछे छपा दिया जाय। ताराचरणजीने भी इस बातको स्वीकार कर लिया। वाद थोड़ी देर ही होने पाया था कि ताराचरणजी पराजित हो गये और हाथ बाँधकर कहने लगे, भगवन्! यह शास्त्रार्थ मैंने लोगोंके अनुरोधसे किया है। आप जो कुछ कहते हैं वह सब सत्य है। हम लोगोंकी यह धृष्टता है कि आपके सदुपदेशोंको स्वीकार न करके समाजकी प्रेरणासे और उदर पूर्त्तिके निमित्त उलटे विरोध करने लग जाते हैं।' महाराजने पण्डित ताराचरण की सत्यवादिता की प्रशंसा की और विपुल प्रेम से उनका हस्त आलिंगन किया।

लोग स्वामीजीके सुन्दर मुखकमलको देखते तृप्त न होते थे। उनके विकसित व विशाल नेत्र कृपा-रसपूर्ण रहते थे। उनमें कोइ अपूर्व आकर्षण था; कोई मोहिनी शक्ति थी। उनकी नाक उन्नत और अत्यन्त सुन्दर थी। दोनों भौंयें अतीव सुहावनी थीं और उनके ऊपर अर्द्धचन्द्राकार भाल बहुत भला प्रतीत होता था। उनका शरीर अतीव सुगठित और सुडौल था। उनके कँधे और पार्श्व परिपुष्ट थे। उनकी दोनों भुजायें हाथीकी सूँड़की भाँति लम्बायमान, घुटनोंको स्पर्श करती थीं। उनके हाथकी हथेलियां, लम्बायमान अँगुलियोंस-

हित, तप्त ताम्रकी तरह दीखती थीं। अरुणवर्ण नख शोभा बढ़ा रहे थे। उनका वक्षस्थल विस्तृत और पुष्ट था। उनकी जङ्घायें कदलीस्तम्भकी भांति सुगठित थीं। उनका प्रत्येक अङ्ग-प्रत्यंग उनके मनोहर रूपके अनुरूप था। ऐसा प्रतीत होता था कि विधाताने उनकी तेजस्विनी और प्रभावपूर्ण अप्रतिम प्रतिमा रची है।

हुगलीसे चलकर वैशाखवदी ५ सम्वत् १९३० को श्रीस्वामीजी भागलपुर में पधारे और एक मास पर्यन्त नगरवासियोंको उपदेश द्वारा कृतार्थ करते रहे। इसके पश्चात् ज्येष्ठ वदी ६ सम्वत् १९३० को महराजने पटना नगरको शोभा प्रदान की। वहां एक सप्ताह तक प्रचार हुआ और फिर जेठ सुदी ४ सं० १९३० को स्वामीजी छपरामें सुशोभित हुए। छपरामें शिवगुलाम शाह बहादुरने स्वामीजीके निवासादिका पूरा पूरा प्रबन्ध कर दिया।

यहांके पौराणिक पण्डित स्वामीजीके विरुद्ध खड़े होगये और प्रसिद्ध पण्डित जगन्नाथसे सहायताकी याचना करने लगे। उसने कहा, "मैं शास्त्रार्थकरने के लिए तो उद्यत हूं, परन्तु उस नास्तिकका यदि मुख देख लिया तो मुझे प्रायश्चित्त करना पड़ेगा।" जब यह समाचार श्री स्वामीजीको मिला तो उन्होंने हंसकर कहा, "यदि उसके यहां आनेमें यही रुकावट है तो मेरे मुखके आगे पड़दा डाल दीजिए। परन्तु उसे यहां लाइए अवश्य ही।"

लोगोंकी बड़ी प्रेरणासे जगन्नाथ आया और पड़देकी ओटमें बैठकर शास्त्रार्थ करने लगा। थोड़े ही चिरमें उसके पांव उखड़ गये और वह पराजित होकर चला गया।

सर्वसाधारणको स्वामीजीके उपदेशोंसे बड़ा लाभ हुआ। छपरासे चलकर महाराज विचरते हुए श्रावण सुदी १५ सम्वत् १९३० को मिर्जापुरमें पधारे। अध्यापकोंकी गड़बड़से उस समय वहांकी वैदिक पाठशाला टूट चुकी थी। उसको दुबारा चलाना उन्होंने उचित न समझा।

मिर्जापुरमें स्वामीजीने महात्मा ज्वाहरदासको काशीसे बुलाया और वहां

पाठशाला खोलनेका उनसे परामर्श किया। ज्वाहरदासजी काशीमें पाठशालाकी स्थापनामें सहमत होगये और उसके लिए द्रव्य एकत्रित करनेके निमित्त चक्कर लगाने लगे।

सातवाँ सर्ग।

मिर्जापुरसे प्रस्थान करके स्वामीजी कुछ दिन प्रयागमें ठहरे और फिर कानपुरमें आकर उन्होंने टूका घाटपर डेरा किया। उस समय पण्डित हेमचन्द्रजीभी स्वामीजीके साथ थे और उनसे पढ़ते थे। कानपुरवासियोंको अपने उपदेशोंसे लाभ पहुंचाकर महाराज फरुखाबाद जानेके लिए प्रस्तुत हुए। मार्गशीर्ष वदी १५ सं० १६३० को स्वामीजी फरुखाबाद पहुंचे और पाठशालाही में ठहरे। नगरवासी महाराजका शुभागमन सुनकर सहस्रोंकी संख्यामें सत्संगमें जाने लगे।

इस बार, महाराजका मिलाप, संयुक्त प्रान्तके छोटे लाट मेयोर महोदय से और उसी प्रान्तके शिक्षा-विभागके डायरेक्टर कमसन् महाशयसे हुआ। महाराजके हृदयमें गो-रक्षाका गहरा भाव था। इस लिए वार्त्तालापमें, उन्होंने लाट महोदयको कहा, "अब आप स्वदेशयात्रा करने वाले हैं। वहां जाकर आप भारतसचिवकी सभामें सम्मिलित होंगे। उस समय भारतके हितका ध्यान अवश्य रखिएगा। गोवध बन्द कराने का यत्न कीजिएगा।"

लाट महोदयने स्वामीजीके कथनको दत्तचित्त होकर सुना और वचन दिया कि मैं आपके कथनानुसार अवश्यमेव यत्न करूंगा।

श्रीहेमचन्द्रजी यहां भी स्वामीजीके साथ थे। महाराजने उन्हें वे लोग भी दिखाये जो पहली बार मारने आये थे और इस समय भक्तिभावसे सेवाकर रहे थे।

एक दिवस हेमचन्द्रजीने नमस्कार पूर्वक पूछा, 'भगवन्! बड़े बड़े धुरन्धर

पण्डित आपके साथ शास्त्रार्थ करने आते हैं, क्या वह सभी भूलपर हैं?" स्वामीजीने हँसकर कहा, 'सत्यासत्य का विवेक तो बहुतसे विद्वानों को प्राप्त है, परन्तु आजीविकाके प्रलोभनमें पड़कर सन्मार्गपर आरूढ़ नहीं होते।"

हेमचन्द्रजीके हृदयमें स्वामीजीके लिये गाढ़ श्रद्धा थी। वे महाराजको योगीराज मानते थे। उन्होंने अनेक बार रातके बारह बजे एक बजे उठ उठकर महाराजको देखा तो वह प्रत्येक समय पद्मासन लगाये, योगारूढ़ ही बैठे मिले। महाराज प्रातःकाल समाधिसे उतरा करते थे।

स्वामीजी फरुखाबादसे चलकर पौष वदी ६ सं० १९३० को कासगञ्जमें आये। महाराज विद्यार्थियोंकी रक्षाका बड़ा ध्यान रक्खा करते थे। जहां विद्यार्थी शयन करते थे वहां वायुकी पूरी रुकावट न थी। इससे उनको बड़ा कष्ट होता था। स्वामीजीने सुखचैनको वहां दिवार खड़ी करानेको कहा, परन्तु मजूरोंके न मिलनेसे दिवार न बन सकी। स्वामीजीने कहा कि यदि दिवार नहीं बनती तो फूसका छप्पर बनाकर आगे खड़ा कर दो। इससे वायुका रुकाव हो जायगा। परन्तु सुखचैन आदि सभ्योंने छप्पर बनानेमें भी अपनी अकुशलता प्रकट की। उस समय स्वामीजी आप छप्पर बनाने लग गये जिससे पास खड़े सज्जनोंको भी उसकी विधि ज्ञात हो गई।

स्वामीजी विद्यार्थियोंको उपदेश दिया करते थे। उन्हें मालकंगनीका सेवन करनेकी प्रेरणा करते थे। उनका परस्पर वाद कराते थे। उनको व्यायामकी शिक्षा देने और समय समयपर उनकी परीक्षा भी लिया करते थे।

स्वामीजी शपथ करनेके बहुत विरुद्ध थे। एक बार, उनकी अनुपस्थितिमें सब अध्यापकोंने आपसमें परामर्श करके विद्यार्थियोंको कहा कि तुम सबको सत्यप्रचार और आर्ष ग्रन्थोंहीके पढ़ने पढ़ानेके लिये शपथ करनी चाहिए।

रामप्रसादको छोड़कर शेष सब विद्यार्थियोंने वेद उठाकर सौगन्ध खाई और कहा कि हम जीवन भर आर्ष ग्रन्थ ही पढ़ें पढ़ायेंगे। रामप्रसाद सौगन्ध न खानेके अपराधमें पाठशालासे निकाल दिया गया। इस बारकी यात्रामें, जब

स्वामीजीको यह समाचार मिला तो उन्होंने सबकी भर्त्सना की और कहा कि कितना ही यत्न क्यों न किया जाय तुम लोग पोप-लीला करनेसे नहीं टलते, हमारी आज्ञाके बिना तुमने ऐसा क्यों किया ?

इस प्रकार अध्यापकोंको डाँट-डपटकर उन्होंने रामप्रसादको पाठशालामें सम्मिलित करा दिया।

पौष सुदी १ सम्वत् १९३० को महाराज कासगञ्जसे प्रस्थान कर छलेसर आकर विराजमान हुए। इस बार भी स्वामीजीके उपदेशोंमें सहस्रों मनुष्य आते रहे। अनेक मलिन और पतित मनुष्योंका कल्याण हुआ। स्वामीजीने अपनी पाठशालाका भी निरीक्षण और संशोधन किया।

राजा जयकृष्णदासजी यहाँ भी श्री दर्शनोंको आये और कृतकृत्य होकर लौट गये।

स्वामीजी महाराज पौष सुदी ६ सं० १९३० को अलीगढ़में आये और राजा जयकृष्णजीके अतिथि बने। महाराजका शुभागमन सुनकर सहस्रों नगरनिवासी तथा आसपासके गाँवके लोग उपदेश सुनने आने लगे। सारे नगरमें स्वामीजीके प्रचारका प्रभाव था। आर्य, मुसलमान, ईसाई और युरोपीय, सभी सत्संगमें आते थे। व्याख्यानके पश्चात् शङ्का-समाधान होता था। उसमें रातके दस बज जाया करते थे। स्वामीजीके इस अनथक-पनकी सभी प्रशंसा करते थे।

एक दिन, एक पण्डित मन्दिरके चबूतरेके ऊँचे स्थानपर बैठकर स्वामीजीसे शास्त्रार्थ करने लगा। लोगोंने उसके ऊँचे स्थानपर बैठनेको बुरा समझा। कई भद्र पुरुषोंने उसे समझाया कि सभ्य पुरुषोंकी तरह बैठकर वार्त्तालाप करो, परन्तु वह ऐसा हठीला था कि वहीं डटा रहा। महाराजने उस समय लोगोंसे कहा कि कोई हानि नहीं, पण्डितजी वहीं बैठे रहें। केवल ऊंचे आसनसे किसीको महत्व प्राप्त नहीं होता। यदि ऊंचा आसन बड़ाईका कारण हो तो पण्डितजीसे भी ऊंचा वृक्षपर वह कव्वा बैठा है।

एक समय, महाराज व्याख्यान-स्थानपर ही विराजमान थे, वहां एक अंगड़

साधु आ निकला। वह बार बार लोगोंसे पूछता कि दयानन्द कौन है? लोगोंने जब संकेतसे बता दिया तो स्वामीजीके पास जाकर उसने महाराजको अगणित गालियाँ दीं; परन्तु स्वामीजी महाराज उसकी अज्ञान-लीलापर हंसते ही रहे।"

उन्हीं दिनोंमें, बेसवाँ-निवासी ठाकुर गुरुप्रसादके नामसे एक यजुर्वेद भाष्य निकला था। जब अलीगढ़में ठाकुर महाशय श्री स्वामीजीको मिले तो उन्होंने भाष्यके विषयमें महाराजकी सम्मति पूछी। स्वामीजीने उनको कहा कि भाष्य बहुत ही अशुद्ध और वेदाशयसे विरुद्ध है। ऐसा भाष्य रच कर आपने एक भारी भूल की है।

ठाकुर महाशय स्वामीजीकी सम्मति सुनकर बड़े रुष्ट हुए और तुरन्त वहाँ से चले गये।

एक दिनका वर्णन है कि ठाकुर ऊधोसिंह, छावली-निवासी, अपने पिता और ठाकुर भूपालसिंहजीके साथ, स्वामीजीके दर्शन करनेके लिये अलीगढ़में आये। उस दिन ऊधोसिंहजीके वस्त्र नये ढंगके थे और सबके सब विलायती कपड़ेके बने थे। ऊधोसिंहजी कुछकाल छलेसरकी पाठशालामें भी अध्ययन करते रहे थे, इसलिये महाराज उन्हें भली भाँति जानते थे। स्वामीजीने अति प्यारसे कहा, ऊधव! देखो तुम्हारे पिता कैसे मोटे सादे और अपने देशके कपड़ेके बने वस्त्र पहरते हैं। उनका जाति बिरादरीमें कितना अधिक सम्मान है। क्या तुम; इस विदेशी कपड़ेसे बने नये वेषसे विभूषित होकर अपने पितासे अधिक सत्कृत हो गये हो? ऊधव! अपने ही देशके वस्तुवेषको अपनानेमें शोभा है।"

स्वामीजीका यह उपदेश ऊधोसिंहजीके हृदयमें घर कर गया। उन्होंने अपने डेरेपर जाकर वे वस्त्र उतार दिये। और पुराने ढंगके स्वदेशी वस्त्र धारण कर लिये।

एकदिन ठाकुर मुकुन्दसिंहजीकी प्रार्थनासे महाराजने साम गान सुनाया। उसे सुनकर ऊधोसिंहजी आदि सभी सज्जन अत्यन्त आनन्दित हुए। सब यही कहते थे कि ऐसा मधुर स्वर और अद्भुत गान, हमने पहले कभी नहीं सुना।

स्वामीजीको उन दिनों बहुत ही पत्र आया करते थे। आर्य भाषाके पत्रोंका

उत्तर तो एक पण्डित लिखा करता था, पर उर्दू के पत्रोंका उत्तर ऊधोसिंहजी ही जबतक वे वहां रहे, लिखा करते थे। स्वामीजीके सकल कार्य नियमवद्ध थे। पत्र-व्यवहारका भी समय नियत था। एक दिन महाराज पत्र लिखवा रहे थे कि सर सय्यद अहमद खां, उन्हें मिलने आ गये। उनके साथ अन्य भी चार पांच सज्जन थे। श्रीमान अहमदखांजीने खिड़कीमेंसे झांककर देखा तो स्वामीजीको कार्यमें निमग्न पाया। इसलिये वे वहीं बराण्डेमें ठहर गये। ऊधोसिंहजीने सय्यद महाशयको खड़े देख लिया और उनके आनेका समाचार स्वामीजीको भी बता दिया। महाराजने ऊधोसिंहजीको आज्ञा की "जाइये उनको स्वागत पूर्वक भीतर लिवा लाइये।"

जब सय्यदजी भीतर पधारे तो शिष्टाचारके अनन्तर स्वामीजीने कहा, "यहां कुर्सीकी बैठक नहीं है, इसलिए आपको फर्शपर बैठनेसे कष्ट ही होगा।" सय्यद महाशयने विनीततासे निवेदन किया, "आप ऐसे सन्तोंके पास आकर फर्शपर बैठने हीमें आराम और शोभा है।"

जब सय्यद महाशयजी सुखपूर्वक बैठ गये तो स्वामीजीने कहा, "क्षमा-कीजिएगा। मैं पहले अपने नियत कामसे निपट लूं, फिर आपके साथ निश्चिन्ततासे वार्त्तालाप करूंगा।"

जितनी देर स्वामीजी कार्य्यमें लीन रहे सय्यद महाशय भी चुपचाप बैठे रहे। कार्य्यानन्तर वे स्वामीजीके साथ देरतक बातचीत करके अति प्रभावको लिये वहांसे उठ गये।

सर सय्यद अहमदखाँ स्वामीजीकी सेवामें प्रायःनित्य आया करते थे। उनका स्वामीजीके साथ अनुराग भी हो गया था। महाराज भी उन्हें अति सम्मान देते थे। एक दिन सय्यद महाशय, कई प्रतिष्ठित मुसलमान और अंगरेज सज्जनोंसहित स्वामीजीकी सेवामें उपस्थित हुए। वार्त्तालापके प्रसंगमें उन्होंने स्वामीजीसे कहा, "आपकी अन्य बातें तो युक्तियुक्त प्रतीत होती हैं, परन्तु यह बात कि थोड़ेसे हवनसे वायुका सुधारहो जाता है, हमें युक्तिसंगत जान नहीं पड़ती।"

स्वामीजीने हवनके अनेक लाभ बताकर उनसे पूछा कि सय्यद महाशय! आपके यहां कितने मनुष्योंका भोजन बनता होगा? उन्होंने उत्तर दिया कि कोई पचास साठका। स्वामीजीने पुनः पूछा कि आपके यहां कितनेसेर दाल पकती होगी? उन्होंने कहा कि कोई छः सात सेर। स्वामीजीने फिर पूछा कि इतनी दालमें कितनी एक हींगका छौंक दिया जाता होगा? सय्यद महाशयने कहा कि माशा भरसे कम तो हींग न होती होगी। तत्पश्चात् स्वामीजीने प्रश्नकिया, क्या इतनी थोड़ीसी हींगकी सुगंधि सारी दालको सुवासित बना देती है? सय्यदजीने उत्तर दिया कि हां अवश्य सुगंधित बना देती है। तब स्वामीजीने कहा कि थोड़ीसी हींगकी तरह थोड़ासा किया हुआ अग्निहोत्र भी वायुको सुगन्धित कर देता है।

सय्यद महाशय स्वामीजीके उत्तरसे बहुतही प्रसन्न हुए और उनकी स्तुति करते हुए घरको लौटे।

स्वामीजीके व्याख्यानमें अलीगढ़के उच्च-पदाधिकारी राजकर्मचारी भी आया करते थे और अत्युत्साहपूर्वक उपदेश सुनते थे। महाराजके उपदेशोंमें दसदस सहस्र जन उपस्थित होते थे। परन्तु महाराजके स्वरको यह शोभा प्राप्त थी कि आदिमसे अन्तिम मनुष्यतक, सभीको एक रस सुनाई पड़ता था। उनके शब्दोंमें इतनी सरलता और इतनी मधुरता थी कि सर्वसाधारणउनको सुगमतासे समझजाते थे।

महाराज अपने कथनमें अद्भुत रस भरते थे। जब कभी वीरताका वर्णन करने लगते तो श्रोताओंके हृदय उछलने लग जाते, भुजायें फड़क उठतीं और ऊष्मा के आवेशसे रक्तका वेग बढ़ जाता।

महाराज जब अपने उपदेशमें देशकी दुर्दशाके चित्रको चित्रण करते थे तो लोग करुणा-सागरमें डूबने लगजाते थे। उनकी आंखोंमें आँसुओंकी धारायें बहने लगती थीं। जब वे शान्तिरस बरसाते थे तो सारी सभा निस्तब्ध नीरव और शान्त होकर सुनती थी। ऐसा प्रतीत होने लगता कि हृदय-भूमिपर, कोई आनन्दकी बदली मन्द मन्द बूंदें बरसा रही है।

उनके व्याख्यानोंमें हास्य रस भी पर्याप्त होता था। घड़ी, आध घड़ीमें कोई ऐसा वाक्य, ऐसा दृष्टान्त अथवा चुटकला वे अवश्य कहते थे, जिसे सुनकर लोग हंसते हुए लोटपोट हो जाते। हंसीके मारे पेटमें बल पड़ने लगते।

महाराजके व्याख्यानको सुनकर सभी कहा करते थे कि ऐसा भावपूर्ण व्याख्याता, प्रभाव-उत्पादक उपदेष्टा और सारदर्शक वक्ता कदापि दृष्टिगोचर नहीं हुआ।

आठवाँ सर्ग।

माघ शुक्ल ५ सम्वत् १९३० को स्वामीजी अलीगढ़से हाथरसमें पधारे। ठाकुर मुकुन्दसिंहजी भी उनके साथ थे। राजा जयकृष्णदासजीने उनके शुभागमनसे पहले ही पहुंचकर सब प्रबन्ध कर रक्खा था। हाथरसमें स्वामीजीने एक उद्यानमें निवास किया। वहां उन्होंने मृतक श्राद्धके विरुद्ध एक प्रभावशाली व्याख्यान दिया, जिससे पौराणिक दलमें खलबली मच गई।

पांच छः दिनतक हाथरस-वासियोंको निहाल करके, स्वामीजी राजा टीकमसिंहकी प्रार्थनासे मुरसान में सुशोभित हुए। हाथरससे मुरसान लिवा ले जानेके लिए राजा महाशयने अपनी फिटन भेजी थी।

राजा टीकमसिंहको धार्मिक जीवन प्रदान करनेके पश्चात् स्वामीजी मथुरा-वृन्दावन जानेके लिए समुद्यत हुए। उनके वहां जानेके अनेक प्रबल कारण भी थे। रंगाचार्य उस समय मूर्त्ति-पूजाके सब प्रचारकोंमें शिरोमणि था। प्रतिवर्ष सहस्रों मनुष्योंको कण्ठियाँ धारण कराकर वैष्णव बनाता था। संस्कृतका पण्डित भी था। वैष्णव सम्प्रदायमें उसकी महती मानता थी। महाराज चाहते थे कि उस युगके सब से बड़े प्रतिमा-पूजा प्रचारक को उस के गढ़-ही में जाकर जीतें।

एक बार महाराजने अपने सहपाठी पण्डित गंगादत्तको रुपए भेजकर लिखा कि आप फरुखाबादमें आकर अध्यापन कार्य कीजिये। उसने उत्तरमें स्वामीजी से निवेदन किया कि वहाँ आनेमें मुझे आर्थिक लाभ तो अधिक है, परन्तु जबतक आप मथुरा वृन्दावनमें पधारकर रंगाचार्यको न जीत लें, आपके समीप आनेमें लोग मेरी निन्दा करेंगे, जातिके जन विरोधी बन जायँगे। इस लिए आप पहिले यहाँ आइए और मूर्ति-पूजाका खण्डन कीजिए; फिर उत्साहित होकर मैं आपकी आज्ञा पालनमें तत्पर हो जाऊँगा। गंगादत्तके पत्रोत्तरमें स्वामीजीने लिख दिया कि हम मथुरामें अवश्यमेव आयेंगे।

अपने वचन और सङ्कल्पका पालन करनेके निमित्त स्वामीजीने वृन्दावन जानेके लिए ब्रह्मोत्सवका समय चुना। इस अवसरपर सहस्रों यात्री आया करते हैं। यह मेला चैत्र वदी द्वितीयासे आरम्भ हुआ करता है। महाराजके वृन्दावन जानेके पहले ही, राजा जयकृष्णदासजीने पण्डित देवीप्रसाद डिपटी कलेक्टरके नाम पत्र लिखकर पण्डित बलदेवजीको मथुरा भेज दिया। पण्डित बलदेवजी पण्डित देवीप्रसादजीसे पत्र लेकर, वृन्दावनमें बख्शी महबूब मसीह सुपरेण्टेण्डेण्ट चुंगीको मिले। उसके पश्चात् मथुरानिवासी राजा उदितनारायणसे सहायताके लिये कहा। राजा महाशय बड़े सज्जन पुरुष थे, स्वामीजीकी सहायताके लिए तुरन्त उद्यत होगये और जिस दिन महाराजने मथुरा पधारना था उस दिन अपनी गाड़ी लेकर रेलवे स्टेशनपर पहुंच गये। जब स्वामीजी गाड़ी से उतरे तो राजा महाशय उनको स्वागतपूर्वक अपने मकानपर ले आये।

स्वामीजीने राजा महाशयको कहा कि आजकल वृन्दावनमें ब्रह्मोत्सवका मेला भर रहा है, इस लिए इस समय वहाँ जाकर प्रचार करना चाहिए। राजा महाशयने भी स्वामीजीके कथनका अनुमोदन किया। पण्डित लोग कहीं कोई उपद्रव न कर बैठें, इस लिए, उन्होंने चार मनुष्य स्वामीजीकी रक्षाके लिए, पहरेपर नियत कर दिये। फाल्गुन शुक्ला एकादशी सम्वत् १९३० को महाराज वृन्दावनमें आये और बख्शी महबूब मसीहके प्रबन्धसे मलूकदासके राधा-उद्या-

नमें विराजमान हुए; यह उद्यान रंगाचार्यके निवासके ठीक पछवाड़ेमें पड़ता था।

स्वामीजीकी आज्ञासे श्रीमान् महबूब मसीहजीने आर्य्यभाषा और उर्दूमें विज्ञापन छपाकर नगरमें जहाँ तहाँ सर्वत्र लगवा दिये। इसमें प्रकाशित किया कि मूर्त्ति-पूजन और अवतारवाद सिद्ध करनेका जिसे भी साहस हो वह शास्त्रार्थ कर ले। एक लिखित पत्र, बलदेवजीके हाथ रङ्गाचार्य्यजीको भेजकर कहा कि आप मूर्त्ति-पूजा, कण्ठी और तिलक वेदसे सिद्ध किया करते हैं। अब वह अवसर है कि शास्त्रार्थ करके अपनी सत्यता प्रमाणित कीजिये।

रङ्गाचार्यने उस समय तो यह कहकर अपना छुटकारा कराया कि ये मेलेके दिन हैं, हमें सर्वथा अवकाश नहीं है, मेला समाप्त होनेपर अवश्य ही शास्त्रार्थ किया जायगा। परन्तु उत्सव समाप्तिपर उसे आहूत किया गया तो वह रोगी होनेका बहाना बना बैठा? बुद्धिमान लोगोंको पूर्ण विश्वास होगया कि रङ्गाचार्य्य स्वामीजीके सामने आनेसे डरता है। उसे अपनी पोलके खुल जानेका पूरा भय है।

स्वामीजीके उपदेशोंसे प्रभावित होकर दो एक सज्जनोंने अपने शालिग्राम यमुना-जलमें विसर्जन कर दिये।

रङ्गाचार्यके चेले चाँटे अपने गुरुकी गति देखकर स्वामीजीसे बहुत चिढ़े और उनको मार डालनेकी विधि सोचने लगे। उन लोगोंकी षड्यन्त्र-रचनाका समाचार पाकर पण्डित बलदेवजी आदि भक्तोंने भगवान्से विनयकी, "आप बाहर घूमने न जाया करें।" स्वामीजीने हंसकर कहा, "आज तो आप मुझे बाहर जानेसे रोकते हैं कल कहोगे कि कुटीके भीतर ही बैठे रहो। सो आपके कथनानुसार मुझसे नहीं चला जाता।"

बहुत दिनोंतक, श्रीस्वामीजी वृन्दावनमें धर्म्म-मेघ बनकर बरसते रहे। अनेक गृहस्थों और संन्यासियोंको विवेक प्रदान करके फिर चैत्र वदी ११ को मथुरामें आकर पुरुषोत्तमदासजीके उद्यानमें ठहरे।

स्वामीजी महाराजके आगमनसे पहले मथुराकी पण्डित-मण्डली शास्त्रार्थ

करनेकी गप्पें तो हांकती थी, परन्तु उनके सन्मुख कोई न हुआ। एक दिन कुछ मनुष्योंकी उत्तेजनासे चार पांच सौ पण्डे मोटे २ लट्ठ लिये स्वामीजीके निवास-स्थानके उद्यान-द्वारपर आ पहुंचे। द्वारपर ठाकुर कृष्णसिंहजी आदि, कर्णवासके कई राजपूत पहरा दे रहे थे। पण्डोंके समूहको आते देखकर उन्होंने द्वार बंद कर दिया और खिड़की खुली रक्खी। थोड़ी देरतक तो पण्डे धींगामस्ती करते रहे, परन्तु बांके राजपूतोंके हाथमें भी डण्डे देखकर वाहर मार्गपर ही खड़े हो गये। वे लोग वहां बड़ी देरतक भूमिपर लट्ठ और लातें मार मार कर स्वामी-जीको अगणित अवाच्य बोलते रहे। स्वामीजी मकानकी छतपरसे अबोध जनों-की बालक्रीड़ाको अवलोकन करके हंसते थे। स्वामीजीके सेवकोंने पण्डोंको ठण्डा करनेकी उनसे आज्ञा मांगी। परन्तु महाराजने उनको कहा, "पण्डा लोगोंकी धर्म्मान्धितापर आप लोगोंको कोप कदापि नहीं करना चाहिये। हमारे यहां आनेका इनको इतना तो लाभ हो गया कि इन आलस्यके मारोंमें उत्ते-जना आ गई है। ये इतनी संख्यामें इकट्ठे हो कर आये हैं, यह लाभ भी कुछ न्यून नहीं है।' यह सुनकर महाराजके सब सेवक शान्त हो गये।

मांगीलाल नामका एक मुनीम महाराजका बड़ा कट्टर द्वेषी बन गया। वह उनकी धवल कीर्तिपर, उनके शुभ नामपर लांछन लगानेके उपाय सोचने लगा। एक दिन, श्रीमहाराज लक्ष्मीदास सेठके मकानपर व्याख्यान दे रहे थे। उस समय एक कसाई और एक शराबवालेने पुकारकर कहा, "स्वामीजी! आपकी ओर बहुत दिनोंका लेखा हो गया है। दाम देकर चुका क्यों नहीं देते हो?' उनके इस कथनको सुनकर लोगोंकी आँखोंमें लहू उतर आया, परन्तु स्वामी-जीने उनको शान्त कर दिया। जब व्याख्यान समाप्त हो चुका तो महाराजने दोनों मनुष्योंको अपने पास बुलाकर, अपने एक एक हाथमें उनकी ग्रीवायें पकड़ लीं और कहा 'सच कहो, ऐसा कहनेके लिये तुम्हें किसने कहा?' उन्हों-ने हाथ जोड़कर कहा, "महाराज हमें मांगीलाल मुनीमने कहा था कि सभामें जाकर तुम यह वाक्य कह देना, मैं तुम्हें पीछे पुरस्कार दूंगा। यदि हमें यह

पता होता कि आप बुरा मनायेंगे तो हम ये शब्द कदापि न कहते।" महाराजने उन मनुष्योंको मुक्तकर दिया, परन्तु मुनीमकी निन्दा स्थान-स्थानपर होने लगी।

कहते हैं कि कुछ एक दुष्ट जनोंने, एक दुराचारिणी स्त्रीको भी समझा बुझाकर एक दिन व्याख्यान स्थानपर भेज दिया। मार्गमें तो वह बहुत कुछ बड़बड़ाती रही, परन्तु सभामें आकर, जब उसने महाराजके परम पुनीत, प्रशान्त और तेजस्वी मुखमण्डलको देखा, तो उसके मनकी सारी मलिनता एकाएक दब गई। उसके हृदयमें मुनिराजके लिये श्रद्धा और भक्तिभाव उत्पन्न हो आया। "मैंने मनमें इस महात्माको कलङ्कित करनेकी कल्पना की है यह मुझसे घोरतम पातक हुआ है," यह सोच २ कर वह अत्यन्त व्याकुल और व्यथित हुई। महाराजके निकट जाकर गिड़गिड़ाती हुई, भूमिपर सिर रखकर क्षमा मांगने लगी। उसने अधम मनुष्योंके बहकाकर भेजनेकी वार्त्ता सुनाते समय रो रोकर अपना अञ्चल भी भिगो दिया।

श्री स्वामीजीने उसे ढाढस बँधाया और कहा, 'देवी! जाओ। ईश्वर करे कि तुम्हारी इस समयकी सुमति स्थिर बनी रहे।'

मथुरामें अस्सी वर्षके वृद्ध पाण्डेय मदनदत्तजी निवास करते थे। वे चालीस वर्षपर्य्यन्त केवल दुग्धाहारी रहे थे। पक्के वैष्णव भक्त बजते थे। सारे नगरमें उनका आदर था।

एक दिन, मदनदत्तजी शास्त्रार्थ करनेके लिए स्वामीजीके समीप आये। उस समय उनके साथ उनका पोता भी था। कुछ शिष्टाचारकी बातोंके पश्चात् महाराजने मदनदत्तके पोतेसे व्याकरणका एक सूत्र पूछा और फिर उसे अष्टाध्यायी पढ़नेकी शिक्षा दी। महाराजकी हित-कामनासे मदनदत्त इतने मोहित हुए कि प्रतिमा-पूजनसे उनका विश्वास उठ गया। वे पन्थाई लोगोंका खण्डन करने लग गये।

पाण्डेय मदनदत्तके परिवर्तनसे सर्व-साधारणपर गहरा प्रभाव पड़ा। सभी कहने लगे कि स्वामीजीके पास कोई मोहनमंत्र है, जिसके प्रभावसे वे शास्त्रार्थ

किये बिना ही, कड़े विरोधियोंको भी अपने अनुकूल बना लेते हैं।'

राजा टीकमसिंहजी अपनी गाड़ी लेकर स्वामीजीके पास मथुरामें आए और महाराजको वहांसे चैत्र सुदी द्वितीया सम्वत् १९३१ को मुरसान ले गये। महाराजने कई दिनोंतक मुरसानके लोगोंको धर्म्मामृत पान कराया और फिर वे आषाढ़ मासमें काशी चले गये। इसबार श्री स्वामीजी गुसाई रामप्रसाद के उद्यानमें विराजित हुए।

उन दिनों भगवान् आर्य्यभाषामें बात चीत किया करते थे। ज्वाहरदास-जीने कहा कि आपको संस्कृत ही में बोलते रहना चाहिये; परन्तु महाराजने उनको समझा दिया कि लोक-भाषामें उपदेश देनेसे अधिकांश मनुष्योंका अधिक हित होता है।

राजा माधोदासजीके उद्यानसे उनके घर, प्रतिदिन पुष्पोंकी एक टोकरी जाया करती थी। एक दिन महाराजने माधोदासजीको कहा, ये पुष्प कहां जाया करते हैं?' उन्होंने कहा, 'ठाकुर पूजाके लिए घर भेजे जाते हैं।' स्वामीजीने कहा, 'इनको यहीं बेलबूटोंके साथ लगा रहनेसे, अधिक कालतक पवन सुगन्धित होता रहता है। मुरझाकर पंखड़ियोंके यहीं गिरनेसे खेतमें खाद पड़ जाता है। पुष्पाञ्जलि बनाकर घरमें रखनेसे भी लाभ है, परन्तु प्रतिमापर चढ़ाने से वे तुरन्त मसले जाते हैं। लाभ तो कहां, उलटे पानी में पड़े सड़कर सड़ाँद छोड़ने लगते हैं।

यहाँ भी श्रीमान् सैय्यद अहमद खांजी स्वामीजीको मिलते रहे। उन्होंने महाराजके दो तीन व्याख्यान अपनी कोठीपर भी कराये। कई उच्च राजकर्म-चारियोंको साथ लाकर दर्शन कराते रहे।

स्वामीजीके इस बार काशी पधारनेसे छः मास पूर्व महात्मा ज्वाहरदास-जीने पौष वदी द्वितीया सम्वत् १९३० को पाठशाला स्थापित कर दी थी। उस के लिए केदार मन्दिरके निकट किरायेपर स्थान लिया गया था। इस पाठ-शालामें पण्डित शिवकुमारजी आदि अनेक विद्वान् पढ़ाते थे।

महाराजने एक दिन पाठशालाका परीक्षण और निरीक्षण किया तो उस समय पण्डित शिवकुमारजीको भी मिले। उनको सुयोग्य जानकर महाराजने कहा कि, आप यदि लोगोंको धर्म्मोपदेश किया करें तो अच्छा है। शिवकुमारजीने निवेदन किया कि यदि पचास रुपये मासिक वेतन मिलने लग जाय तो मैं उपदेशकका काम करनेको उद्यत हूं। परन्तु स्वामीजीने उन्हें वेद-ज्ञानसे शून्य जानकर इतना वेतन देना उचित न समझा।

स्वामीजीने इस पाठशालाको उन्नत करनेके लिए बहुत यत्न किये। उसकी सहायताके लिये लोगोंको प्रेरित किया। समाचार पत्रोंमें पाठविधिका व्योरा छपवाकर उसके उद्देशका भी वर्णन किया। परन्तु यह पाठशाला भी अन्तको प्रबन्धकी त्रुटिसे माघ १९३१ को टूट गई।

काशीमें स्वामीजी दो मासतक धर्म्मोपदेश देते रहे। फिर वहांसे प्रस्थान करके मिर्जापुर आदि स्थानोंमें विचरते प्रयागमें आ गये। यहाँ उन्होंने अपना डेरा अलोपीके उद्यानमें किया। फिर एक विज्ञापनद्वारा सर्वसाधारणको विदित कर दिया गया कि जिस किसीको धर्म्मके विषयमें कुछ जाननेकी इच्छा हो वह नियत समयपर, अलोपी देवीके उद्यानमें प्रसन्नतापूर्वक आ जाय।

स्वामीजीके शुभागमनका सु-समाचार पाकर सहस्रों गृहस्थ और सैकड़ों विद्यार्थी आने लगे। कालेजके प्रोफेसर भी आते थे। स्वामीजीने अध्यापक मोक्षमूलरके वेदभाष्यको भ्रममूलक सिद्ध किया। ईसाई धर्म्मकी भी तीव्र आलोचना की।

एक दिन, पण्डित काशीनाथ शास्त्रीने स्वामीजीको अवज्ञापूर्वक कहा, "आपने किस प्रयोजनके लिए देशभरमें कोलाहल मचा रक्खा है?"

महाराज शान्तिपूर्वक बोले, "पन्थाई पण्डितोंने लोगोंको धोखेके जालमें फँसा रक्खा है। जड़ पूजनसे मनुष्योंकी बुद्धिमें जड़ता आ गई है। देशवासियोंमें सत्यासत्यके जाननेका विवेक अति मन्द हो गया है। इन सबके सुधारहीके लिये मैं कोलाहल कर रहा हूं।" स्वामीजीके उत्तरको सुनकर काशीनाथ शान्त हो गया।

मौलवी लोग भी स्वामीजीकी सेवामें आकर अपनी शङ्काओंका समाधान कराते थे।

पण्डित ठाकुरप्रसादजी, बड़े भक्ति भावसे महाराजका भोजन उनके आसनपर पहुंचाया करते थे। एक दिन, मध्याह्नके समय बड़ी कड़ी धूपमें वे नङ्गे पांव भोजनका थाल उठाये स्वामीजीके पास पहुंचे। महाराजने अति दयासे ठाकुरप्रसादजीको कहा, "ऐसी धूपमें आप विना छाते और नङ्गे पांव क्यों भोजन लाये हैं?" ठाकुरप्रसादजीने विनय की, "भगवन्! जूता पहरे कच्चा भोजन उठाना अच्छा नहीं है।" स्वामीजीने कहा, "मैं इस छूआछूतके व्यर्थके बखेड़ेको नहीं मानता। धर्मशास्त्रमें इसका कहीं भी वर्णन नहीं है। आप भी इस झगड़ेमें न पड़ें।

अनेक भद्र पुरुषोंने स्वामीजीसे योगके साधन सीखे और उनको बड़ा भारी लाभ हुआ।

पण्डित ठाकुरप्रसादजीके हृदयमें स्वामीजीकी योगमुद्रा देखनेकी उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई। एक दिन स्वामीजीके सेवकोंको पूछकर, वे उस कुटियाके द्वारपर जा खड़े हुए, जिसके भीतर श्री स्वामीजी ध्यानावस्थित थे। यद्यपि द्वार बन्द थे परन्तु किवाड़ोंके छिद्रोंमेंसे महाराजकी आकृति स्पष्ट दीख पड़ती थी। ठाकुर प्रसादजी बहुत देर तक महाराजके दर्शन करते रहे। उन्होंने यह भी देखा कि महाराजका आसन धीरे धीरे भूमिसे ऊपर उठकर अधरमें अवस्थित हो गया। उस समय उनकी मुद्राकी अद्भुत छवि थी! उनके मुखमण्डलपर एक प्रकाशमय चक्र बना हुआ था।

महाराजकी मानसिक शक्तियोंके प्रमाण पाकर उनके प्रेमी जन अत्यन्त विस्मित हो जाया करते थे। एक दिन राय बहादुर पण्डित सुन्दरलालजी मित्रोंसहित स्वामीजीके समीप गये। महाराज उससमय ध्यानावस्थित थे, इसलिए वे सब चुपचाप बैठे रहे। कोई आध घण्टेके पश्चात् स्वामीजी भीतरसे बाहर आये। उन सब सज्जनोंने झुककर नमस्कार किया। उस समय स्वामीजी आप-ही-आप

हंस रहे थे। पण्डित सुन्दर लालजीने पूछा, "आप किस बातसे हंस रहे हैं ?" उन्होंने कहा, "एक मनुष्य मेरी ओर चला आता है। कुछ देर ठहर जाइए, उसके आनेपर आपको एक कौतुक दिखाई देगा।

इस बातके आध घड़ी पश्चात् एक ब्राह्मण मिष्टान्न लिये आ पहुंचा। उसने स्वामीजीको 'नमो नारायण' करके मिठाई भेंटकी और कहा, "इसमेंसे कुछ एक भोग लगाइए।" स्वामीजीने उसे कहा, "लो थोड़ीसी मिठाई तुम भी खाओ," परन्तु उसने न ली। तब महाराजने उसे डांटकर कहा, "लेते क्यों नहीं हो ?" वह कांप तो गया परन्तु मिष्टान्न लेनेसे झिझकता ही रहा। उस समय स्वामीजीने कहा, 'यह मनुष्य हमारे लिए विष-मिश्रित मिष्टान्न लाया है।'

पण्डित सुन्दरलालजी उसके लिये पोलीस बुलवाने लगे, परन्तु महाराजने कहा, 'देखो यह अपने पापके कारण कितना काँप रहा है! इसे पर्याप्त दण्ड मिल गया है, इसलिए पोलीस न बुलाइए।' भगवान्‌ने उस ब्राह्मणको शिक्षा दी और छोड़ दिया। राय बहादुर महाशयने उस मिठाईमेंसे कुछ अंश उठाकर वहींपर एक कुत्तेके आगे फैंका। वह कुत्ता मिठाई खाते ही छटपटाकर मर गया।

किसीका यदि हित होता हो तो स्वामीजी उसकी सहायताके लिये उद्यत हो जाते थे। वैसे तो किसीके मकानपर कदाचित् ही जाते थे, परन्तु यदि किसी मनुष्यका कोई शुभ कार्य सिद्ध होता हो तो उन्हें जानेमें किञ्चित भी सङ्कोच नहीं होता था।

प्रयागमें एक लाला वंशीधरजी निवास करते थे। वे रामायणकी मुद्रित पुस्तकें विद्यार्थियोंको दान किया करते थे। परन्तु इसपर उन्होंने जो पण्डित नियुक्त किये थे वे अपने जान पहचानके विद्यार्थियोंहीमें पुस्तकें बांटते थे। अपरिचितोंको बार बार मांगनेपर भी पुस्तक नहीं मिलती थी। एक दिन एक विद्यार्थी महाराजके पास आकर रो पड़ा और बोला, "भगवन्! मैं अति निर्धन हूं। मुझे रामायण की पुस्तक पाठके लिये चाहिये। मैं अनेक बार लाला महाशयके स्थानपर भटकता फिरा हूं, परन्तु पण्डितोंके कारण मुझे पुस्तक नहीं

मिल सकी।" यह सुनकर स्वामीजी महाराज तत्काल उठ खड़े हुए और विद्यार्थीको साथ लिये वंसीधरजीके मकानपर गये। उस विद्यार्थीको पुस्तक दिलाकर उन्होंने दानी महाशयको उपदेश दिया कि इस कार्यपर ऐसे मनुष्य नियुक्त करो जो निर्धन, निस्सहाय और असमर्थ विद्यार्थियोंको पुस्तकें दान करें। लाला महाशयने महाराजको नम्रीभूत नमस्कार करके निवेदन किया कि आगेको आपकी शिक्षापर पूर्ण ध्यान दिया जायगा।

भगवान् नियत कार्य्योंको करके ही विश्राम लिया करते थे। वे नियत कार्य्यके समय शारीरिक सुख-दुःखपर कुछ भी ध्यान नहीं देते थे। एक दिन स्वामीजीके व्याख्यानकी घोषणा हो चुकी थी, परन्तु उस दिन उन्हें प्रबल ज्वर आ गया। प्रेमी जनोंने बहुतेरा कहा कि आज व्याख्यान न दीजिए। परन्तु महाराज ये शब्द कहते हुए व्याख्यानस्थानकी ओर चल पड़े कि ज्वर अपना काम करता है, और मैं अपना काम किये चला जाऊँगा।

महाराज कर्म-धर्म्मको अति प्रधानता देते थे। परहितार्थ क्रियात्मक जीवन ही सर्वोत्तम जीवन मानते थे। प्रयागमें, गङ्गा-तटपर एक महात्मा रहते थे। वे वयोवृद्ध थे। जब कभी स्वामीजी उन्हें मिलते तो वे बच्चा कहकर सम्बोधन करते थे। एक दिन उस वृद्ध सन्तने स्वामीजीको कहा। "बच्चा! यदि आप पहलेके ही निवृत्ति-मार्गपर स्थिर रहते, परोपकारके झगड़ेमें न पड़ते तो आपकी इसी जन्ममें मुक्तिहो जाती। अब तो आपको एक और जन्म धारण करना पड़ेगा।"

स्वामीजीने कहा, "महात्मन्। अब मुझे अपनी मुक्तिका कुछ भी ध्यान नहीं है। जिन लाखों मनुष्योंकी मुक्तिकी चिन्ता मेरे चित्त को चलायमानकर रही है, उनकी मुक्ति हो जाय, मुझे भले ही कई जन्म क्यों न धारण करने पड़ें। दुःखोंके त्राससे, दीन दशासे और दुर्बल अवस्थासे परम पिताके पुत्रोंको मुक्ति दिलाते, मैं आप ही आप मुक्त हो जाऊँगा।

———

नववाँ सर्ग ।
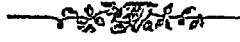
जिस समय महाराज प्रयागमें धर्म्म-गङ्गा बहा रहे थे। उस समय उनके पास मुम्बई-वासियोंके निमन्त्रण-पत्र लगातार आते थे। वहाँके जन भगवान् के दर्शनोंके लिए प्रबल उत्कण्ठा प्रगट कर रहे थे। उपदेश सुननेके लिए अतीव उत्सुक हो रहे थे।

महाराजने उनकी प्रार्थनाओंको स्वीकारकर लिया। बलदेवसिंह कान्यकुब्ज ब्राह्मणको बुलाकर सेवाके लिए साथ लिया और जबलपुरमें जाकर तीन चार दिवस तक प्रचार करते रहे। इसके अनन्तर महाराज नासिकमें पधारे। वहाँ भी आपने लोगोंके भ्रम निवारण किये और फिर वे प्रस्थान करके आश्विन सुदी १२ सं० १९३१ को मुम्बई पहुंच गये।

मुम्बई नगरमें स्वामीजीके आगमनसे पहले ही उनकी प्रसिद्धि हो चुकी थी। सुशिक्षित समाज तो उस युगके आदर्श संस्कारकके नाम और कामसे परिचित था ही, परन्तु सेवकलालजीने काशी-शास्त्रार्थ छपाकर वहां इतना बाँटा कि इससे सर्वसाधारणको भी महाराजके गुणोंका ज्ञान होगया।

जिस समय महाराज मुम्बई के रेलवे-स्टेशनपर पहुंचे तो उनके स्वागतके लिए अनेक भद्र पुरुष वहाँ उपस्थित थे। बड़े आदरसे उन्होंने महाराजको प्रतिग्रहण किया और गाड़ीमें बैठाकर, वालुकेश्वर जाकर उत्तम आवासमें उतारा।

अगले दिन गुजराती, मराठी और अंग्रेजी आदिमें विज्ञापन वितरण करके प्रकाशित कर दिया गया कि जिसको सत्यासत्यका निर्णय करनेकी इच्छा हो वह महाराजके पास आकर विचार करले।

स्वामीजीका आसन तो गोसाईयोंके अखाड़ेमें वालुकेश्वरपर था, परन्तु उनके व्याख्यानोंका प्रबंध कोटके मैदानमें मण्डप बना कर किया गया था।

महाराज एक दिन व्याख्यान देते और दूसरे दिन केवल शङ्का-समाधान

करते थे। उनके सत्संगोंमें सहस्रों मनुष्य आते थे। सारे नगरमें एक विचित्र धर्म्मान्दोलन हो रहा था।

बहुतसे सहायकोंने स्वामीजीको यह सम्मति दी कि केवल वल्लभमतका ही खण्डन किया जाय; दूसरे सम्प्रदायोंको न छेड़ा जाय। परन्तु स्वामीजी समदृष्टि थे। वे पन्थोंकी पोल खोलनेमें, किसी एकका पक्षपात नहीं करते थे। उनका तर्क-आतप सब पन्थोंके कीचड़को एकसा शोषण करने लगा। मतवादियोंमें इससे बड़ी भारी व्याकुलता उत्पन्न होगई।

महाराजने वैष्णवोंके तन-मन-धन अर्पणका घोर खण्डन किया; मुम्बईमें एक जीवनजी गोसाईं रहता था। वह वैष्णव-मत-खण्डनसे बहुत कुपित हुआ, उसने एक दिन स्वामीजीके सेवक बलदेवसिंहको गुप्त रूपसे बुलाकर कहा, यदि तुम विषादि देकर दयानन्दकी 'इति श्री' कर दो तो, हम तुम्हें एक सहस्र रुपया देंगे।' जीवनजीने एक सहस्र रुपया देनेके लिये उसे एक पत्र भी लिखकर दे दिया, और पांच रुपये तथा पांच सेर मिठाई, उसी समय उसकी भेंट की।

ज्योंही बलदेवसिंह लौटकर डेरेपर आया तो मानस चक्षुओंसे दूसरोंके प्रच्छन्न कर्म्मोंको भी जान लेनेवाले, श्री दयानन्दजीने उससे पूछा, "क्या तुम आज गोकुलियोंके यहाँ गये थे?' बलदेवने कहा, 'हाँ, मैं गया था।' स्वामीजीने फिर पूछा, सच बताना, वहां क्या ठहराकर आये हो?' उसने सारी वार्त्ता महाराजके आगे आद्योपान्त वर्णन कर दी।

स्वामीजीने उसे कहा, 'देखो, जिसे परमेश्वर न मारे उसे मारनेके लिये कोई भी समर्थ नहीं हो सकता। बनारसमें मुझे हलाहल विष दिया गया। राव कर्णसिंहने पानमें विष दिलाया; अन्य भी अनेक स्थानोंमें मुझपर विषके विषम प्रयोग किये गये, परन्तु मेरा प्राणान्त न हुआ। स्मरण रखिये अब भी मैं मारा नहीं जाऊंगा।

बलदेवसिंह महाराजके चरणोंको पकड़कर क्षमा मांगने लगा। उसने प्रण किया कि मैं फिर कभी गोसाइयोंके पास नहीं जाऊंगा, उनके दांवपेचमें नहीं फंसूंगा।

सेवकलालजी प्रायः स्वामीजीके स्थानपर ही सोया करते थे। एक दिन रातके समय दो बलिष्ठ मनुष्य, स्वामीजीके वधके लिये चुपचाप मकानमें घुस आये। सेवकलालजी थे तो जागते, परन्तु भयके मारे मौन-मूर्ति बन गये। उनसे बोला तक न गया। महाराजने जब उन पामरोंको देखा तो बल पूर्वक पूछा, "तुम कौन हो ?" महाराजका यह पूछना क्या था, मानो उनपर वज्रपात था। वे तुरन्त वहाँसे भाग गये।

जीवनजीने चार बलवान् मनुष्योंको, लोभ लालचके पञ्जेमें फंसाकर, स्वामीजीको मारनेके लिये सुसज्जित कर लिया। महाराज प्रतिदिन समुद्रतट-पर भ्रमण करने जाया करते थे। उसी ओर वे हत्यारे भी जाने लग गये। एक दिन महाराजने उनको ताड़ लिया और खड़े होकर उनसे पूछा, "क्या तुम मेरा हनन करना चाहते हो ?" महाराजके मुखकी दीप्तिको देखकर उनकी आँखें चौंधिया गईं। पवनसे कम्पित पीपलके पत्तेकी भांति वे थरथर कांपने लगे। उस दिन वे इतने भयभीत हुए कि उन्होंने फिर महाराजके पीछे जानेका नाम-तक न लिया। जीवनजी भी अपने दुष्कर्म्मोंसे इतने कम्पित हुए कि वहांसे भागकर मद्रास चले गये।

व्याख्यान और शङ्का-समाधानके समय बहुतसे लोग हल्लागुल्ला भी करने लग जाते थे। कभी कभी ईंट-पत्थरकी वृष्टि भी हो जाया करती थी। इस लिये बाबा बिशनदासजी आदि बलवान् सेवक जन, महाराजकी रक्षा करनेके लिये सदा सावधान रहते थे।

वालुकेश्वरके निम्न प्रदेशपर एक पर्णकुटी निर्माण करके एक वैरागी बाबा वास करता था। वह जटाजूट था। बड़ा हृष्ट-पुष्ट, सुगठित और बलवान् था उसका नाम था बलदेव। वह स्वामीजीके भाषण सुनने आया करता था। महा-राजके कथनोंसे वह इतना प्रभावित हुआ कि उसने अपनी प्रतिमायें उठाकर, पासके एक तड़ागमें फेंक दीं। जटायें मुण्डवा डालीं। अपनी कुटिया छोड़कर श्रीचरण-शरण हीमें रहने लगा। बलदेव महाराजका अनन्य भावसे भक्त बन

गया। रातके समय, दिनके समय, भ्रमण करते समय, व्याख्यानमें और शङ्का-समाधान आदिमें, वह सदा अपने प्रभुके साथ रहता। बड़ी चौकसीसे रक्षा करता यदि कोई उद्दण्ड अथवा अक्खड़ मनुष्य स्वामीजीको मैली आँखसे देखता, उनकी शोभाके विरुद्ध अपशब्द कह बैठता तो बलदेव उसका सिरतक तोड़नेको समुद्यत हो जाता। भक्त बलदेव भगवान्‌पर सर्वथा न्योछावर हो रहा था।

पण्डित कृष्णराम इच्छाराम गुजरात-निवासीने महाराजकी सेवामें आकर निवेदन किया, "भगवन्! मैं आपके पास लेख आदिका कार्य करके अध्ययन करना चाहता हूं।" स्वामीजीने उसे सुयोग्य समझकर रख लिया और कहा, "हमारे पास दो लेखक थे। हमने उनको निकाल दिया है। अब आप उनके स्थानपर, संस्कार-विधिके लिखनेका कार्य कीजिये।" कृष्णराम इच्छारामजीने पूछा; "भगवन्! पहले लेखकोंका क्या अपराध था?" महाराजने कहा, "यहां माड़वाड़ी सेठ नथमल पोद्दार हमारे पक्के सहायक और सच्चे सेवक हैं। उन्होंने एक दुकानवालेको कह रक्खा है कि स्वामीजीका कोई भी सेवक जो कुछ आकर मांगे, वह उसे दे देना और दाम हमारे नाम लिखते जाना। कई दिनों तक रसोईकी सामग्री वहांसे आती रही। एक दिन मैंने आप पड़तालकी कि आजतक रसोईमें कितने रुपयेकी सामग्री आ चुकी है। जांच करनेपर पता लगा कि जितनी सामग्री आवश्यक है उससे सातगुणा अधिक रसोईके नामसे आई है और उसे बेचकर कर्मचारी पैसे खरे करते रहे हैं। उनके इस दुष्कर्मसे दुःखित होकर मैंने उनको निकाल दिया है।"

महाराजने फिर कहा, "ब्राह्मण लोग दानका अन्न खाते हैं, मिथ्या माहात्म्योंको सुनाकर आजीविका चलाते हैं, इसलिए इनके मन शुद्ध नहीं रहे। इन्हें अधम कार्योंसे घृणा नहीं होती। यही कारण है कि ये दिनोंदिन निस्तेज होते चले जा रहे हैं।" महाराजने यह भी कहा, "मेरे साथ ऐसा ही वर्ताव फरुखाबाद आदिकी पाठशालाओंके अध्यापकोंने किया। वे लोग ऊपरसे मेरे शिष्य बन गये। भक्तिभावसे मेरे सम्मुख आते। अपनेको मेरा अनुयायी प्रकट

करते। मेरी पीठ पीछे, मेरे सिद्धान्तोंका खण्डन करने लग जाते। मुझे जब उनकी कोरी कपट लीला प्रतीत हुई तो मैंने पाठशालयें तोड़ दीं और उन पेटार्थी बगुले भक्तोंको बिदा कर दिया।

कृष्णराम इच्छारामजीको स्वामीजी समय समयपर पढ़ाया भी करते थे। उनके अन्तः करणमें वेदान्तके विचार गहरे धसे हुए थे। इसलिये महाराजने उनको कहा कि आप 'वेदान्त-ध्वान्त निवारण' लिखने लग जाइये। इससे आपके सारे विचार निश्चयरूपसे पलट जायँगे। महाराजकी युक्तियां प्रयुक्तियां लिखते लिखते सचमुच कृष्णराम इच्छारामके विचार परिवर्तित हो गये। उनका वेदान्तवादका गढ़ धुंएकी तरह उड़ गया।

मुम्बईमें स्वामीजीका मूर्ति-पूजा खण्डनपर एक प्रबल व्याख्यान हुआ। उसमें उन्होंने बतलाया, "मूर्ति जड़ है, इसे ईश्वर मानोगे तो ईश्वर भी जड़ सिद्ध होगा। अथवा ईश्वरके समान एक और ईश्वर मानो तो परमात्माका परमात्मापन नहीं रहता। यदि यह कहो कि प्रतिमामें ईश्वरांश आ जाता है तो ठीक नहीं। इससे ईश्वर अखण्ड नहीं सिद्ध हो सकता। भावनामें भगवान है यह कहो तो मैं कहता हूं कि काष्ट-खण्डमें इक्षुदण्डकी और लोष्टमें मिश्रीकी भावना करनेसे क्या मुख मीठा हो सकता है? मृगतृष्णामें मृग जलकी बहुतेरी भावना करता है, परन्तु उसकी प्यास नहीं बुझती। विश्वास, भावना और कल्पनाके साथ सत्यका होना भी अत्यावश्यक है, मूर्ति-पूजनसे जो हानियां हो रही हैं, महाराजने उनको भी मर्मस्पर्शी शब्दोंमें वर्णन किया। उस दिन भीड़का कोई ठिकाना न था। लोग अति प्रभावित हो रहे थे।

महाराजके प्रचारका प्रभाव नगरपर अत्युत्तम हुआ। सैकड़ों मनुष्य वल्लभ और गोकुलीय सम्प्रदायोंसे मुख मोड़ बैठे। पन्थोंकी मनमानी बातें माननेमें मनमें ग्लानि करने लगे। कुरीतियोंके प्रचारसे देशमें जो अनर्थ हो रहे थे उनसे लोगोंको घृणा होने लगी। उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि पन्थाई-पर्वतमालाओंमें भारी भूकम्प हो रहा है, और कोई नया युग आया चाहता है।

जिन लोगोंने स्वामीजीको मुम्बई आनेके लिये निमन्त्रण दिया था, उनमें बहुतसे ऐसे भी सज्जन थे जो स्वामीजीके सिद्धान्तोंसे सहानुभूति तो नहीं रखते थे, परन्तु कुछ पन्थोंको दबानेके लिये उनका उपयोग करना चाहते थे। जब उन लोगोंने देखा कि श्रीमद्दयानन्द किसीका भी पक्षपात नहीं करते, वे नये पुराने सभी सम्प्रदायोंका खण्डन करते हैं, तो ऐसे लोग धीरे धीरे खिसक गये। अब जो पीछे रह गये वे शुद्ध हृदयसे स्वामीजीके सच्चे सहायक थे, कट्टर अनुरागी थे। अनेक सज्जन श्री महाराजके व्याख्यान सुनकर उनके अनुयायी बन गये थे। उन सब सज्जनोंने यह सोचा कि श्री स्वामीजीके विचारोंका प्रचार करने और उनको स्थिर रखनेके लिये कोई सत्संग स्थापित करना चाहिये। इसलिए मार्गशीर्ष मास सम्वत् १९३१में बहुतसे सज्जन मिलकर महाराजके पास आये और बोले, "हम आपके उपदेशोंसे पूरा लाभ उठानेके लिये सत्संगकी स्थापना करना चाहते हैं। कृपया आप श्रीमुखसे उसका नामकरण कर दीजिये।"

प्रेमियोंके उत्साह भरे वचन सुनकर स्वामीजी अति प्रसन्न हुए और आँखें बन्द करके ध्यानमें लीन हो गये। जिस प्रकार निर्वात स्थानमें रक्खे हुए दीपककी शिखा अकम्प होती है, ऐसे ही कुछ समय तक वे अचल रहे और फिर नेत्रोन्मीलन करके बोले, "इस सत्संगका शुभ नाम 'आर्यसमाज' ही रखना उचित है।" भक्तोंने 'अत्युत्तम' कहकर महाराजके वचनका आदर किया। उसी समय पच्चीस सत्संगियोंके नाम लिखे गये, परन्तु कई कारणोंसे आर्य्यसमाजकी स्थापना न हो सकी।

मुम्बईमें महाराजने मौखिक उपदेशोंके अतिरिक्त लेखका भी बहुत कार्य किया। 'सत्यार्थप्रकाश' तो वहां जानेके दो मास पूर्वही लिखवाकर राजा जयकृष्णदासजीको छपवानेके लिए दे गये थे, परन्तु यहां उन्होंने वल्लभाचार्य-मत-खण्डन, स्वामी-नारायणमत-खण्डन और वेदान्त ध्वान्त-निवारण ये पुस्तकें मुद्रित कराकर प्रकाशित कीं। संस्कारविधि भी उस समय लिखी जा रही थी।

मुम्बईसे प्रस्थान कर श्री स्वामीजी सूरत पधारे। रेलवे स्टेशनपर बड़े स-

मारोहके साथ उनका स्वागत किया गया। पहिले तो महाराज, रायबहादुर जगजीवनदास खोशालदासके आवासमें ठहरे, परन्तु वह स्थान एकान्त न था, इस लिए सौदागर प्रेसके प्रवंधकर्त्ताकी कोठीमें चले गये। वह कोठी, कतारपुर गांवके मार्गपर, नगरसे कोसभरके अन्तरपर थी।

स्वामीजीके सहायकोंने पहला व्याख्यान कन्या-पाठशालामें कराया। व्याख्यानका विषय था 'स्वामी नारायण मत, रामानुज मत, वल्लभ मत, और ब्रह्मसमाज क्या है ?' महाराजने इन मतोंकी अति उत्तमतासे, युक्तियुक्त समालोचना की।

स्वामी नारायण मतका एक मनुष्य, व्याख्यानमें बड़े आवेशमें आ गया और उच्च स्वरसे बोला, "जो कुछ तुम कह रहे हो वह सब असत्य है।" स्वामीजीने उसे मीठे वचनोंसे समझाया, "घबराना नहीं चाहिए। जब तुम अपने धर्म्मको लोगोंके सम्मुख रखते हो तो उसकी सत्यताकी परीक्षा भी तो करने दो व्यापारी होते हुए जिस प्रकार अपने ग्राहकोंके साथ शान्तिसे व्यवहार करते हो, वैसे ही तुम्हें धर्म्मके ग्राहकोंके साथ भी वर्ताव करना उचित है।"

व्याख्यानकी समाप्तिपर स्वामीनारायणके अनुयायियोंको शङ्कासमाधानके लिए समय दिया गया, परन्तु प्रश्नोत्तर किसीने भी न किया। जिससमय महाराज व्याख्यान-स्थानसे जाने लगे तो वल्लभ और स्वामी नारायणके अनुयायियोंने वहुत ऊधम मचाया, अपशब्द कहे और ईंट पत्थर वरसाये !

महाराजका दूसरा व्याख्यान, रघुनाथपुरामें ठाकुरभाई चुन्नीलाल चकावाला की हवेलीमें होना नियत हुआ। नगरके प्रतिष्ठित जनसमुदायसहित, जब नियत समय पर, स्वामीजी वहाँ पहुंचे तो हवेलीका द्वार वंद था। पूछनेपर पता लगा कि वल्लभियोंने स्थानपतिपर दवाव डालकर द्वार वंद करा दिया है। लोग किसी दूसरे स्थानमें व्याख्यान करानेके लिए सोचने लगे, परन्तु स्वामीजीने घड़ी देख कर कहा, "समय हो गया है, इस लिए यहीं खुले स्थानमें व्याख्यान होना चाहिए" लोगोंने प्रार्थनाकी, "आप थोड़ी देर ठहर जाइए। हम आपके बैठनेके

लिए कुर्सी ले आयें।" महाराजने कहा, "मुझे अपने बैठनेकी तो कोई चिन्ता नहीं, परन्तु आप लोग जो बिना फर्शके बैठ गये हैं और धूलमें खड़े हैं इसका ध्यान अवश्य है।" यहाँ भी उनका व्याख्यान बड़ी धूमधामका हुआ।

स्वामीजीका तीसरा भाषण, कवि नर्मदाशङ्करजीके प्रबन्धसे उनके मकानके सामने हुआ। एक इच्छाशङ्कर नामक पण्डित व्याख्यान ही में खड़ा होगया और प्रतिमा-पूजनके पौराणिक प्रमाण बोलने लगा। महाराजने उसे दो एक बार ही उत्तर दिया था कि वह लड़खड़ा गया और लगा थरथर कांपने। उस समय साम्प्रदायिक लोग कोलाहल करते थे; ईंट, पत्थर और धूल फैंकते थे। सहायकोंने स्वामीजीको व्याख्यान बन्दकर देनेकी विनय की। परन्तु महाराजने कहा, "अपने भाइयोंके फैंके हुए ये ईंट-पत्थर मेरे लिए पुष्प-वर्षा है। व्याख्यान तो मैं समय ही पर समाप्त करूंगा" और उन्होंने ऐसा ही किया।

मोहनलालजी बावा नामके एक ब्रह्मचारी सूरतमें रहते थे। उनका नगरमें अति सम्मान था। वे वेदान्तके अच्छे पण्डित थे। मूर्ति-पूजाके बड़े कड़े विरोधी थे। जब उन्होंने सुना कि श्रीमद्दयानन्दजी सूरतमें पधारे हैं तो उन्हें अपार प्रसन्नता प्राप्त हुई। ब्रह्मचारीजी अपने शिष्यवर्गसहित स्वामीजीकी सेवामें आए और साष्टांग नमस्कार करके बोले "भगवन्! श्रीसन्तकी शोभा मैं चिरकालसे सुनता हूं। पूज्यपादके परिभ्रमण और उपदेशोंका वृत्तान्त समाचारपत्रोंमें पढ़ता रहता हूं। परन्तु मनमें महाराजके शुभ दर्शनोंकी अभिलाषा थी सो आज आपके शुभ दर्शन करके मैं स्वात्माको सौभाग्यशाली समझता हूं।' भक्ति-भावके भूरि भारसे नम्र, ब्रह्मचारी बहुत देरतक महर्षिके साथ ज्ञान-चर्चा करते रहे। महाराज भी उनको अत्यादरसे उत्तर देते थे। चलते समय ब्रह्मचारीजीने बड़ी विनीततासे श्रीसेवामें निवेदन किया, 'भगवन्! कल मेरे स्थानपर भोजन जीमनेकी कृपा कीजिये।'

स्वामीजी प्रायः किसीके घरपर भोजन पाने नहीं जाया करते थे, परन्तु उस निष्काम भक्तका निमन्त्रण उन्होंने स्वीकार कर लिया। ब्रह्मचारीजी सहर्ष अपने

स्थानको लौटे और अपने आश्रमसे राजपथतक उन्होंने सड़क बनवा दी। उसके दोनों ओर पुष्पोंके गमले रक्खे गये, कदली-स्तम्भ आरोपित किये गये और जहाँसे उनका स्थान आरम्भ होता था वहाँसे लेकर मुख्य स्थान तक मार्गमें स्वच्छ कपड़ा बिछा दिया।

जिस समय भगवान् उनके आश्रमपर पधारे तो ब्रह्मचारीजी अपने प्रतिष्ठित शिष्य समूह सहित स्वागतके लिये आगे आये। महाराजपर पुष्प-वर्षा करते हुए सबने 'श्रीमद्दयानन्द महाराजकी जय' का नाद बार बार गुंजाया। एक सुन्दर सजे हुए स्थानपर अत्युत्तम आसन लगा हुआ था। महर्षिको उसीपर बैठनेके लिए निवेदन किया। महाराजके विराजमान हो जानेपर, ब्रह्मचारीजीने समीप जाकर नमस्कार पूर्वक उनके कण्ठमें फूलोंका हार पहराया। तत्पश्चात् वे आप भी बैठ गये और शिष्योंसहित ईश्वर स्तुतिके भजन गाने लगे। ब्रह्मचारीजीको गानविद्याका अच्छा ज्ञान था। उनका कण्ठ कोमल और स्वर मृदु था। स्वामीजीके प्रेमसे, वे रसमें और भी निमग्न हो गये। उन्होंने सङ्गीतका एक समय बाँध दिया। फिर, उन्होंने महाराजको भोजन कराया। भोजनानन्तर कुछ विश्राम लेकर स्वामीजी अपने डेरेको चल पड़े। ब्रह्मचारीजी बड़ी दूरतक उनको छोड़ने आये।

एक दिन स्वामीजी भ्रमण करने जा रहे थे। स्कूलोंके अनेक युवक उनके साथ हो लिये। स्वामीजीने बालकोंको ब्रह्मचर्यकी शिक्षा दी। दूध, दही आदि पौष्टिक भोजन करना बताया। मादक वस्तुओंके सेवनमें दोष दिखाये और व्यायामकी शिक्षा देते हुए कहा, 'व्यायाम खानपानकी तरह नित्य करना चाहिये बलवान् युवक, सुखी और सुप्रसन्न रहते हैं। निर्बल मनुष्यका जीवन साररहित रोगोंका घर और नरकधाम बना रहता है।'

महाराजकी सरलता, कोमलता और सु-व्यवहारका नवयुवकों पर बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा।

स्वामीजीके स्थानपर एक दिन कतारपुरके ग्रामीण लोग आकर विनय

करने लगे, 'महाराज ! नगरवासी तो आपका उत्तमोत्तम पदार्थों से सत्कार करते हैं, परन्तु एक दिन हम किसानोंकी विनती भी स्वीकार कीजिये; हमारे गाँवमें पधारिये, हम आपको 'पोंक' * खिलाना चाहते हैं ।'

स्वामीजीने कहा,'हमारे समीप ऊंच-नीच, सधन-निर्धन सब एकसा सत्कार पाते हैं । मुझे आज तो अवकाश नहीं हैं । कल व्याख्यान नहीं होगा, इसलिए कल आपके गाँवमें पहुंच जाऊंगा ।'

अगले दिन ग्रामीण लोग रथादि लेकर महाराजको लेनेके लिए आ गये, परन्तु उन्होंने उसमें बैठना स्वीकार न किया । पैदल ही चल पड़े । गाँवके लोग भी उनके साथ साथ जाते थे, परन्तु महाराज इतना शीघ्र चलते थे कि वे लोग पीछे रह जाते थे, महाराज बार बार खड़े होकर उन्हें साथ मिलाते और फिर इकट्ठे होकर चलते थे ।

वे चलते चलते मार्गमें अपने साथियोंको उपदेश भी देते थे कि पुत्र पुत्रीका छोटी आयुमें विवाह करना बहुत बुरा है । सन्तानके परित्राणके लिए इस कुरीतिको अपनेमेंसे निकाल दो । जैसे कच्चे खेतको काट लेनेसे अन्न नष्ट होजाता है, कच्चे फल और ईखमें मिठास नहीं होती, ठीक उसी प्रकार छोटी आयुमें जो सन्तानका विवाह कर देते हैं उनका वंश भी बिगड़ जाता है । सन्तानमें सुख और उन्नतिका सदा अभाव ही बना रहता है । इस प्रान्तके कृषकोंमें यह कुरीति सब से अधिक है, इस लिये वे स्वामीजीके कथनसे बहुत प्रभावित हुए ।

जब महाराज गाँवके निकट पहुंचे तो उस गाँवके सभी छोटे बड़े स्त्री-पुरुष श्रीदर्शनोंके लिये बाहर आ गये । आमके पेड़के नीचे स्वच्छ वस्त्र बिछाकर महाराजको बिठाया गया । पाटीदारोंकी पंक्ति भी महाराजको चारों ओरसे घेरकर बैठ गई । कृषक जन 'पोंक' लाकर स्वामीजीको देते थे और महाराज उसे बच्चे, बूढों और युवकोंमें बांटते जाते थे । इस प्रकार प्रसाद-वितरण करनेके अनन्तर महाराजने भी 'पोंक' ग्रहण किये और उन किसानोंको एक बहुत अच्छा उपदेश दिया । ईश्वरका भजन और सत्संग करना बताया । दिनके

* गुर्जर देशमें खेतसे कच्ची गेहूं तोड़कर सेकलेना इसे "पोंक" कहते हैं । (प्रकाशक)

चौथे पहर जब महाराज सूरतको लौटने लगे तो ग्रामवासी लोगोंने विनयकी कि हम कृषिजीवी जन हैं। हमारी स्थिति साधारण है। हम इस योग्य तो नहीं थे, पर यह आपकी अपनी कृपा है, जिससे हमारा भक्ति-भाव स्वीकृत हुआ है।

स्वामीजीने उनको कहा, "तुम अपनेको तुच्छ क्यों मानते हो? तुम तो सच्चे वैश्य हो, परिश्रमी हो। तुम्हारी आजीविका-निर्दोष है। तुम्हारेही श्रमपूर्वक उपार्जन किये अन्नसे राजा और प्रजाका पालन पोषण होता है।"

वे लोग महाराजके उपदेशसे गद्गद् हो गये और उनको दूरतक पहुंचाकर पीछे लौटे।

एक दिन, व्याख्यानके समय एक सेठने स्वामीजीके चरणोंमें एक बहुमूल्य शाल रख दिया। स्वामीजीने उस भद्र मनुष्यको कहा, "मैं यह वस्त्र कदापि न लूंगा। इस प्रकार कथा-व्याख्यानोंपर चढ़ावा चढ़ाना अथवा लेना आर्ष रीतिके सर्वथा प्रतिकूल है।" उसने कहा, "मैं आपको यह वस्त्र कोई कथाके कारण नहीं दे रहा हूं। यह तो केवल आपके प्रति प्रेमका प्रकाश है।" स्वामीजीने तब उसे कहा, "ऐसे समयमें लेना इसी बातको प्रकट करता है कि मैं भी पेटू पुरोहितोंकी भांति, अपने पोथियोंके पाठ बेचता फिरता हूं।" इसपर वह सन्तुष्ट होगया।

सूरतमें महाराजको शिक्षा-विभागके अधिकारी डाक्टर बूलर मिले और देरतक संस्कृतमें वार्त्तालाप करते रहे।

जिन लोगोंने सूरतमें स्वामीजीको निमन्त्रित किया था वे यह समझे कि उनके भोजन आदिका प्रबन्ध मुम्बईके सेठोंकी ओरसे है। इस लिए द्रव्यकी सहायता किसीने भी न की। उधर रसोईके व्ययके लिए द्रव्य थोड़ा रहगया। अन्तमें महाराजने अपने कर्म्मचारियोंसहित निरी खिचड़ीपर ही निर्वाह किया, परन्तु किसीसे अर्थ याचना नहीं की।

दसवाँ सर्ग।

सूरतसे चलकर श्री महाराज भरुचमें सुशोभित हुए। वहां नर्मदाके किनारे भृगु-आश्रममें उन्होंने आसन लगाया। स्वामीजीके भाषण सायंकाल हुआ करते थे और सहस्रों मनुष्य उपदेश श्रवण करते थे।

माधवराव त्र्यम्बक नामक एक दक्षिणी वहाँ निवास करता था। उसके बहुतसे शिष्य थे। वह, एक दिन सदल बल, सभा-स्थानमें आया। प्रतिमा-पूजनपर शास्त्रार्थ करनेके लिए समुद्यत हुआ और कहने लगा कि आज संहिता से मूर्ति-पूजा सिद्ध करके ही जाऊँगा। डींङ्ग तो उसने इतनी लम्बी हाँक दी, पर था वह निरा औघड़नाथ! थोड़ेही शब्दोंमें उसके ढोलकी पोल दीखने लगी।

माधवने अंगुलीसे तर्जना करते हुए महाराजको कठोर शब्द कहना आरम्भकर दिये। माधव भगवान्‌को तर्जना कर रहा है, यह देखकर भक्त बलदेवकी आँखें रक्तवर्ण हो गईं। उसने दाँत पीसते हुए माधवको कहा, "भलमनसीसे अब भी टल जा, नहीं तो तेरी कपाल-क्रिया अभी किये देता हूं। यदि तूने महाराजकी ओर अब अंगुली उठाई तो तेरी हड्डी पसली एक कर दूंगा।"

भक्त बलदेवके धधकते कोपानलको देखकर माधवराव त्र्यम्बकके तोते उड़ गये। वह खड़ा खड़ा काँपने लगा। उस समय महाराजने कहा, "बलदेव! कोप किसपर? ये तो हमारे भाई हैं। इन्हींकी कल्याणकामना करते रात दिन बीतते हैं। बलदेव! शान्त हूजिए। मेरे मानापमानपर ध्यान न दीजिए। धर्म्मोपदेशकको तो भूमिके सदृश सहनशीलता सम्पादन करनी चाहिए।" गुरुदेवका बचन सुनकर बलदेव शान्त होगया। माधवने भी सोचा कि सहजसे पिण्ड छूट गया है, इस लिए वह, वहांसे भाग गया।

एक पारसी कैथलिक ईसाई हो गया था। उसने ब्राह्मणोंकी सहायतासे मूर्ति-पूजाकी सिद्धिपर व्याख्यान देनेके लिए विज्ञापन निकाले। व्याख्यानमें

पधारनेके लिए स्वामीजीको निमन्त्रित किया । नियत समयपर जब महाराज वहां गये तो लोगोंने प्रार्थना की कि आप ऊँचे आसनपर विराजिए । परन्तु वे यह कहकर सबके साथ बैठ गये कि इस समय मैं श्रोता हूं । मुझे श्रोताओंहीमें बैठना चाहिए ।

व्याख्यानमें उस वक्ताने महाराजके लिए बहुत अपमान-सूचक शब्द कहे। उस समय वहां कुछ पूर्वीय सैनिक भी उपस्थित थे । वे अपने क्रोधको वशमें न रख सके । वे व्याख्यानदाताको पीटा ही चाहते थे कि श्रीमहाराजने उनको रोक लिया और कहा, "अपमानकर्ताका अपमान करनेसे उसका सुधार नहीं होता, किन्तु सम्मान देनेसे वह सुधर जाता है । जैसे आगमें आग डालनेसे वह शान्त नहीं होती, ऐसेही द्वेषीकी द्वेष-बुद्धि, उसके साथ द्वेष करनेसे दूर नहीं हो सकती । अग्निको शान्त करनेका साधन जल है । इसी प्रकार द्वेषको मिटानेका साधन शान्ति धारण करना है ।" महाराजके उपदेशको सुनकर सैनिक शान्त होगये।

जेठालालजी वकील एक दिन स्वामीजीको कहने लगे, महाराज ! यदि आप शास्त्रोंद्वारा मूर्ति-पूजाका मण्डन करने लग जायँ तो हम आपको शङ्करका अवतार मानने लग जायँगे ।" स्वामीजीने उत्तरमें कहा, "मुझे विश्वनाथकी पदवीका लालच काशी-नरेशने भी दिया था, परन्तु मैं किसीकी सांसारिक वासानाके वशीभूत होकर सत्यका परित्याग कभी भी नहीं कर सकता ।"

इन वचनोंने जेठालालजीके अन्तःकरणपर गहरा प्रभाव डाला । वे सत्संगमें रुचिपूर्वक आने लगे । एक समय जेठालालजीने फिर कहा, "आपकी संस्कृत अति सुगम होती है । पण्डितों ऐसी जटिल भाषा मैंने आपसे नहीं सुनी । दूसरे, जब आप पण्डितोंसे शास्त्रार्थ करते हैं तब भी उनका मुख केवल युक्तियों और प्रमाणोंसे ही वंद कर देते हैं । पण्डित लोग तो एक एक शब्दपर ही सारा सारा दिन बिता देते हैं । वैसा आप भी क्यों नहीं करते ?"

महाराजने कहा, 'महाशयजी ! मैं सुगम संस्कृत इसलिये बोलता हूं कि सुननेवालोंको समझनेमें सुगमता हो । मेरा उद्देश्य जनताको समझाना है, न

कि अपना पाण्डित्य छाँटना। परन्तु यह भी निश्चय रखिये कि सुगम भाषामें बोलनेकी रीति किसी भाषाके अल्प ज्ञानसे नहीं प्राप्त हुआ करती। और फिर मेरे पास इतना समय कहाँ है कि एक एक शब्दके जोड़तोड़में घण्टों बिता दूं। एक एक शब्दपर अड़कर वे ही सारा दिन गंवाते हैं, जो कर्महीन और उद्देश्य शून्य हैं। मेरा समय जनताके निमित्त समर्पित है। उसे मैं पक्षियोंकी तरह चांय चांय और कांय कांयमें खो नहीं सकता।

भोजनके अनन्तर स्वामीजी अपने कर्मचारियोंको भी कुछ कालके लिए विश्राम करनेकी आज्ञा दे देते थे। एक दिन एक विद्यार्थी स्वामीजीकी ओर पांव करके सो गया। जब सारे कर्मचारी जाग उठे तो महाराजने उनको अपने पास बुलाकर उपदेश दिया कि प्रत्येक आर्यको आर्य्य-मर्यादाका पालन करना चाहिये। बिना बुलाये बोलना, बड़ोंकी बातोंमें आप-ही-आप बोलने लग जाना आर्य्य मर्यादाके विरुद्ध है। अपने माननीय व्यक्तियोंकी ओर पीठ करना और पांव करके सोना भी आर्य्य मर्यादाके प्रतिकूल है।

स्वामीजीके उपदेशको सुनकर अपराधी विद्यार्थीने उनके चरण पकड़ लिये और आगेके लिये मर्यादा-पालनका प्रण किया।

भरुचमें स्वामीजीने एक दिन एक विद्यार्थीको कूंएसे जल लानेको कहा। उसने कहा, "मैं ब्राह्मण हूं; मेरा काम पानी ढोना नहीं है।' उसी दिन सायं समय महाराजने सब कर्मचारियोंको एकत्रित करके कहा, 'जिसके निकट कोई रहता हो और जिससे विद्या ग्रहण करता हो उसके वचनको अवश्य मानना चाहिये। उसकी आज्ञा कदापि भङ्ग नहीं करनी चाहिये।"

फिर स्वामीजीने उनको कहा, 'गुरुसेवा किस प्रकार करनी चाहिये इसपर मैं आपको आप-बीती सुनाता हूं। जब मैं मथुरामें अध्ययन करता था तो अपनी स्मरण-शक्ति और विनयके कारण दण्डीजीकी अपार कृपाका पात्र बन गया था इसी लिये मेरे सहपाठी मुझसे ईर्ष्या करने लग गये। उनका और तो कुछ बस न चला, अन्तमें मुझे दण्डीजीकी दयासे वंचित करने लगे। उन्होंने एकता

करके गुरुजीको कहा कि 'महाराज! दयानन्द बड़ा अविनीत है। वह आपके पास तो अति नम्रतासे मीठी मीठी बातें बनाता है, परन्तु दूसरे विद्यार्थियोंके सामने आपकी नकलें करने लगता है। आंखें बन्द करके आपकी तरह लाठी लेकर चलता और हंसी उड़ाता है। उसकी इस कु-चेष्टाको देखकर हमें अति क्रोध आता है। परन्तु करें तो क्या, आप तो उसको परम विश्वासपात्र और विनीत मानते हैं।'

'मेरे सहपाठियोंकी यह चाल चल गई। दण्डीजीने कोपावेशमें मुझे बहुत कटु वचन कहे और लाठीसे इतना मारा कि मेरे घाव हो गया।' स्वामीजीने भुजा नंगी करके उस घावका चिन्ह भी उन्हें दिखाया। उस दिनसे, उनके किसी कर्म्मचारीने उनका वचन उल्लङ्घन नहीं किया।

एक दिन पण्डित कृष्णराम इच्छारामको ज्वर आ गया। ज्वर-पीड़ित वे एक कोठरीमें जाकर पड़ गये। जब स्वामीजीको पता लगा तो वे उनके पास जाकर उनका सिर दवाने लगे। पण्डितजीने कहा, "भगवन्! आप ऐसा न कीजिये। मैं आपसे सेवा कराना नहीं चाहता।' महाराजने कहा, "इसमें कोई दोष नहीं है। एक दूसरेकी सहायता और सेवा करना तो मनुष्यका धर्म्म ही है। वड़े यदि छोटोंकी सेवा न करें तो छोटोंमें सेवाका भाव आ ही नहीं सकता।'

भरुचसे चलकर श्री महाराज दिसम्बर मासमें अहमदाबाद पधारे। अनेक सज्जन उनके स्वागतके लिये रेलवे स्टेशनपर उपस्थित थे। एक भाटिया सेठने स्वामीजीको बड़े आदरसे अपनी गाड़ीमें बैठाया और आप भी साथ ही बैठ गया। जिस मार्गसे गाड़ी जा रही थी उसी मार्गपर सेठका निर्माण कराया हुआ एक मन्दिर था। उस मन्दिरपर उसने दो लाख रुपया व्यय किया था उस मन्दिरकी ओर संकेत करके सेठने उसके सौन्दर्यका वर्णन किया। महाराजने गाड़ीपर हाथ मारकर कहा, ऐसी अविद्या ही से आज हम लोगोंकी यह दुर्दशा हो रही है। यदि इतना ही द्रव्य आप पाठशालापर लगा देते तो वहांसे वेद-शास्त्रके ज्ञाता पण्डित तो निकलते।'

स्वामीजीको तापती नदीके किनारे पुलके पास माणिकेश्वर महादेवके मन्दिरमें विराजमान किया गया। उनके व्याख्यान प्रतिदिन ट्रेनिङ्ग कालेजमें हुआ करते थे। महाराजके उपदेशोंमें श्रोताओंकी तुलनातीत संख्या होती थी।

वैसे तो नगरके सभी प्रतिष्ठित स्वामीजीके सहायक थे, परन्तु रायबहादुर गोपालराव हरि देशमुख तो उनके अनुयायी ही समझे जाते थे।

अहमदाबादमें रायबहादुर बेचरदासजीके मकानपर गुजराती पण्डित मण्डलीके साथ शास्त्रार्थ हुआ। शास्त्रार्थ 'आ कृष्णेन रजसा' तथा 'या ते शिवा तनूः' इन दो मन्त्रोंपर था। थोड़ी देर तो पण्डित लोग वाद करते रहे, परन्तु अन्तमें स्वामीजीके अखण्डनीय प्रमाणों और अटूट युक्तियोंके आगे वे नतशिर हो गये

शास्त्रार्थके पश्चात्, उसी स्थानपर सारी सभाकी ओरसे स्वामीजीका सत्कार किया गया। महाराजको एक उत्तम सिंहासनपर बैठाकर पुष्प-माला पहराई गई और उनपर पुष्प-वर्षा की गई। तदनन्तर सारी सभाकी प्रार्थनापर भगवान्का, वहीं एक प्रभावशाली व्याख्यान हुआ।

एक समय, एक पण्डित स्वामीजीके निकट आकर बोला, "महाराज ! हम आपके कथनसे अपना धर्म क्यों छोड़ें ? श्रीकृष्णजीने भी कहा है कि 'श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः' अपना धर्म कुछ न्यून-गुणवाला भी हो तो भी अच्छा है।"

स्वामीजीने उनको कहा कि आप गीताके तात्पर्यहीको नहीं समझा। यहां धर्मसे तात्पर्य साम्प्रदायिक मतोंसे नहीं है किन्तु इस पदका अर्थ वर्णाश्रम धर्म है। वह पण्डित इस अर्थसे अतीव सन्तुष्ट हो गया।

इस प्रकार अहमदाबादवासियोंको कृतकृत्य करनेके अनन्तर श्रीमहाराजने राजकोटको प्रस्थान किया।

ट्रेनिङ्ग कालेज राजकोटके प्रिंसिपल श्री हरगोविन्ददासजीकी प्रार्थनापर पौष वदी ५ सम्वत् १६३१ को स्वामीजी अहमदाबादसे चलकर राजकोटमें पधारे। एक उत्तम धर्मशालामें उनका आसन सुशोभित हुआ। राजकोटमें एक राजकुमार महाविद्यालय भी है। उसमें दूर दूरके राजकुमार आकर विद्याध्ययन

किया करते हैं। जब महाराजके व्याख्यान होते थे तो महाविद्यालयसे राजकुमार भी सुनने आते थे।

स्वामीजीने यहाँ आर्यसमाजकी स्थापना भी कर दी। उस समय यद्यपि नियम उपनियम नहीं बनाये गये थे, परन्तु अधिकारी आदि सब नियत हो गये थे।

एक दिन उपर्युक्त महाविद्यालयके अध्यापक उन्हें महाविद्यालय दिखानेके लिए ले गये। निरीक्षणके अनन्तर वहाँके आचार्य महाशयने स्वामीजीसे प्रार्थनाकी कि राजकुमारोंको कुछ उपदेश दीजिये। महाराजने राजकुमारोंको सम्बोधन करके बहुत ही उपयुक्त उपदेश दिया।

उस भाषणके प्रभावको आचार्य महाशयने भी अनुभव किया।

आचार्य महाशयने वार्तालापमें स्वामीजीको कहा, "आप तो अहिंसा धर्मका उपदेश देते हैं और राजकुमार शिकार करते हैं। आपके धर्ममें इनको तो कोई स्थान नहीं है।"

स्वामीजीने उत्तर दिया, "हमारे पूर्वज ऋषि महर्षि बड़े ज्ञानी थे। मृगादि पशु खेतोंको, वाटिकाओंको, और उद्यान आदिको न नष्ट कर दें, इस लिए क्षत्रियोंके लिये उनके वधका विधान कर गये हैं। अतः, पररक्षार्थ क्षत्रियोंका यह कर्म उपकार ही है।"

जब स्वामीजी वहाँसे आने लगे तो आचार्यजीने उनको ऋग्वेदकी दो पुस्तकें भेंट की।

राजकोटमें महाराजने वेदोंके ईश्वरीय ज्ञान होनेपर एक व्याख्यान दिया। उसमें उन्होंने अनेक युक्तियाँ देते हुए कहा, "जिस परमात्मदेवने मनुष्योंकी आँखें आदि इन्द्रियोंके लिये सूर्यादि सहायक पदार्थ पैदा किये हैं, यह हो नहीं सकता कि उसने मनुष्यके मस्तिष्कको उज्वल और उन्नत करनेके लिये ज्ञान न दिया हो। वह ज्ञान सृष्टिके आदिहीमें होना चाहिए।"

श्री हरगोविन्ददासजीके साथ महाराज गुजराती भाषामें वार्तालाप किया करते थे। वे अति शुद्ध, सरल और सभ्य गुर्जर भाषा बोलते थे।

काठियावाड़ प्रान्तके अनेक भद्र मनुष्योंने महाराजके उपदेशोंसे धर्म-जीवन प्राप्त किया, शान्ति लाभ की और सत्यासत्यका परीक्षण करना आरम्भ कर दिया।

इस प्रकार अपने जन्म-प्रान्तमें विवेकका बीज बोकर, श्री स्वामीजी पौष सुदी एकादशी सम्वत् १९३१ को अहमदाबादकी ओर चल पड़े। पौषकी पूर्णमासीको श्री महाराजने अहमदाबादमें दुबारा पदार्पण किया। इस बार उन्होंने स्वामीनारायण मतका अति ही खण्डन किया।

महाराज बड़ोदामें जाना चाहते थे। परन्तु उन्हीं दिनोंमें मल्हारराव सिंहासनसे उतार दिये गये थे। वहाँ सेनाके गमनागमनसे गड़बड़ विद्यमान थी। उन्होंने वह समय, वहाँ जानेके लिये उपयुक्त न समझा और वे अहमदाबादसे बलसाड़में आ गये।

वहाँ महाराजका बड़े समारोहसे स्वागत हुआ और एक पारसीकी उत्तम कोठीमें उनको उतारा गया। अनेक विषयोंपर मनोरञ्जक व्याख्यान होते रहे। बलसाड़में उनके व्याख्यानोंमें अधिक संख्या मुसलमानों और पारसियोंकी होती थी।

कुछ एक धर्म-ध्वजी जनोंने यहाँ भी स्वामीजीका विरोध किया। उन दिनोंमें भावनगरके राज-गुरु भवानीशङ्करजी वहाँ आये हुए थे। वे लोग उनको प्रेरित करके शास्त्रार्थके लिये ले आये। स्वामीजी उस समय व्याख्यान दे रहे थे, इस लिये राज-गुरु भी बैठकर सुनने लगे। भाषण समाप्त हो जानेपर स्वामीजीने घोषणाकी कि जिस किसीको प्रश्न करना हो वह प्रसन्नतापूर्वक कर सकता है। कलह-प्रिय लोग राज-गुरुजीको शङ्का करनेके लिए वारवार प्रेरणा करने लगे। परन्तु उन्होंने उनको स्पष्ट कह दिया कि परमहंसजी वेद शास्त्रके अनुसार कह रहे हैं। मैं इनके साथ कदापि व्यर्थ वाद नहीं करूंगा। राजगुरुके कथनको सुनकर उन लोगोंके मुख मुरझा गये, परन्तु भद्र श्रोताओंके हर्षका पार न रहा।

कई दिनोंतक बलसाड़में निवास करके महाराज जब बसईको प्रस्थान करने

लगे तो अनेक प्रतिष्ठित पारसी और दूसरे सज्जन उनको रेलवे स्टेशनतक पहुंचाने आये। जिस समय महाराज गाड़ीमें आरूढ़ हुए तो उनके कण्ठमें पुष्पमाला पहराई गई और उनपर कुसुम-वर्षा बरसाई गई।

वसईमें पधारकर स्वामीजीने एक अत्युत्तम व्याख्यान दिया। यहां भी अनेक भद्र जनोंने अपने नाना प्रकारके संशय मिटाये।

वसईमें स्वामीजीके एक नौकरने उनकी घड़ी चुरा ली। कर्मचारियोंने अनुसन्धान करके अपराधीको पकड़ लिया और लाकर श्रीमहाराजकेपास उपस्थित किया।

वह नौकर स्वामीजीको देखकर रोता हुआ श्री चरणोंमें गिरपड़ा। कर्मचारी तो चाहते थे कि उसे राजदण्ड दिलाया जाय, परन्तु भगवान्‌ने ऐसा करना स्वीकार न किया। और कहा, "हमारा काम साँपको मारना है, न कि उसकी विम्बीको कूटना पीटना।' महाराजने अपराधीको चोरीके ऐसे दोष और फल समझाये, जिनसे काँपकर उसने प्रण किया कि मैं फिर कभी भी इस पाप-पङ्क में नहीं पड़ूंगा।

वसईमें धम्मोंपदेश देकर महाराज मुम्बई जानेके लिये प्रस्तुत हो गये।

संगठन काण्ड ।
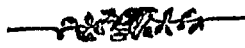
पहला सर्ग

दूसरी वार जब महाराज मुम्बईमें पधारे तो भक्तजन उनको बड़े समारोहसे लाये और वालुकेश्वरपर, लालजी दलालके बङ्गलेमें ठहराया। स्वामीजीके अनुयायी आर्यसमाजकी स्थापना करनेके लिए बड़े उत्सुक थे। उन्होंने माघ १६३१ में रावबहादुर दादूबा पाण्डुरङ्गकी प्रधानतामें एक साधारण सभा लगाकर आर्यसमाजके नियमों और उद्देश्योंपर विचार करनेके लिए एक उपसभा नियत की। उस सभाके कुछ सभासदोंने यह सम्मति दी कि कई कारणोंसे अभी आर्यसमाज स्थापित करना उचित नहीं है। इस लिये आर्यसमाजकी स्थापनाका प्रश्न, फिर कुछ दिनोंके लिये स्थगित हो गया।

महाराजने श्रीउपदेशोंसे लोगोंको फिर उत्तेजित किया, जिससे सबने मिलकर सर्वसम्मतिसे राजमान्य राजेश्री पानाचन्द्र आनन्दजी पारिखको नियमोपनियम निर्माण करनेके लिये चुना। पारिख महाशयने थोड़े ही दिनोंमें आर्यसमाजके नियम सङ्गठन करके सबके सामने उपस्थित कर दिये। उनको देखकर श्री महाराजने भी हार्दिक अनुमोदन किया।

महाराजके आदेशानुसार चैत्र सुदी ५ सम्वत् १६३२ वैक्रमी शनिवारको मुम्बई नगरके गिरगांव मुहल्लेमें, डाक्टर माणिकचन्द्रकी वाटिकामें, सायं समय आर्य्यसमाजकी शुभस्थापना हुई। वैदिक-धर्म्मप्रचारक सभाकी नींव रक्खी गई। सुधारका कल्पतरु आरोपित किया गया। आर्य जातिमें नूतन जीवन और जागृति उत्पन्न करनेका साधन उपस्थित हो गया। आर्य मान-मर्यादा, तथा आर्य गौरव-गरिमाकी रक्षाके निमित्त एक सैनिकसंघ संगठित हुआ। सर्वसाधारणको धर्म्मप्रदान करनेके लिये एक सत्सङ्ग-गङ्गाका स्रोत खुल गया और

दीनदुखियोंकी सहायताके लिये एक सेवकसमिति उपस्थित हो गई। उस समय आर्य्यसमाजके ये नियम निर्धारित हुए:—

१—सब मनुष्योंके हितार्थ आर्य-समाजका होना आवश्यक है।

२—इस समाजमें मुख्य स्वतःप्रमाण वेदोंहीको माना जायगा। साक्षीके लिये, वेदोंके ज्ञानके लिये और इतिहासके लिये शतपथादि ब्राह्मण, छः वेदाङ्ग चार उपवेद, छः दर्शन और ११२७ वेदोंकी व्याख्यानरूप शाखायें इन आर्ष ग्रन्थोंको भी वेदानुकूल होनेसे गौण प्रमाण माना जायगा।

३—इस समाजमें प्रतिदेशके मध्य एक प्रधान समाज होगा और दूसरे शाखा प्रतिशाखा समझे जायेंगे।

४—सब समाजोंकी व्यवस्था प्रधान जमाजके अनुकूल ही रहेगी।

५—प्रधान समाजमें सत्योपदेशके लिए संस्कृत और आर्यभाषामें नाना प्रकारके ग्रन्थ रहेंगे और एक साप्ताहिक पत्र 'आर्य प्रकाश' निकलेगा। ये सब, समाजमें प्रवृत्त किये जायँगे।

६—प्रत्येक समाजमें एक प्रधान पुरुष, दूसरा मन्त्री तथा अन्य पुरुष और स्त्री, सब सभासद होंगे।

७—प्रधान पुरुष इस समाजकी व्यवस्थाका यथावत् पालन करेगा और मन्त्री सबके पत्रोंके उत्तर तथा सबके नाम व्यवस्था लेख करेगा।

८—इस समाजमें सत्पुरुष, सदाचारी और परोपकारी सभासद बनाये जावेंगे।

९—प्रत्येक गृहस्थ सभासदको उचित है कि वह अपने गृह-कृत्यसे अवकाश पाकर, जैसे घरके कामोंमें पुरुषार्थ करता है, उससे अधिक पुरुषार्थ इस समाज की उन्नतिके लिये करे और विरक्त तो समाजोन्नतिहीमें नित्य तत्पर रहे।

१०—प्रत्येक सप्ताहमें एक दिन प्रधान, मन्त्री और सभासद समाजस्थानमें एकत्रित हों और सब कामोंसे इस कामको मुख्य जानें।

११—एकत्र होकर सर्वथा स्थिर चित्त हों, पक्षपात छोड़कर परस्पर प्रीतिसे प्रश्नोत्तर करें; फिर सामवेद गान, परमेश्वर, सत्यधर्म्म, सत्यनीति, सत्योपदेशके

विषयहीमें बाजे आदिसे गान, और इन्हीं विषयोंपर मन्त्रोंका अर्थ और व्याख्यान हो। फिर गान, फिर मन्त्रोंका अर्थ, फिर गान आदि।

१२—प्रत्येक सभासद् न्यायपूर्वक पुरुषार्थसे जितना धन प्राप्त करे उसमेंसे शतांश 'आर्य समाज' 'आर्य विद्यालय' और 'आर्य प्रकाश' पत्रके प्रचार और उन्नतिके लिये आर्यसमाजके कोषमें देवे।

१३—जो मनुष्य इन कार्यौंकी उन्नति और प्रचारके लिए जितना प्रयत्न करे उसका उतनाही अधिक सत्कार, उत्साह वृद्धिके लिए होना चाहिए।

१४—इस समाजमें वेदोक्त प्रकारसे अद्वैत परमेश्वरहीकी स्तुति, प्रार्थना और उपासना की जायगी। स्तुति—निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, अजन्मा, अनंत, निर्विकार, अनादि, अनुपम, दयालु, सर्वाधार और सच्चिदानन्द आदि विशेषणोंसे परमात्माका गुण-कीर्त्तन करना; प्रार्थना—सब श्रेष्ठ कार्य्योंमें उससे साहाय्य चाहना; उपासना—उसके आनन्दस्वरूपमें मग्न हो जाना। सो पूर्वोक्त लक्षणयुक्त परमात्माहीकी भक्ति करना चाहिए, उसको छोड़ अन्य किसीका आश्रय नहीं लेना चाहिए।

१५—इस समाजमें निषेकादि अन्त्येष्टिपर्य्यन्त संस्कार वेदोक्त किये जायँगे।

१६—आर्य विद्यालयमें वेदादि सनातन आर्ष ग्रन्थोंका पठन पाठन हुआ करेगा; और सब स्त्री पुरुषोंको वेदोक्त रीतिहीसे शिक्षा दी जायगी।

१७—इस समाजमें स्वदेशके हितार्थ दो प्रकारकी शुद्धिके लिए प्रयत्न किया जायगा—एक परमार्थ, दूसरे व्यवहार। इन दोनोंका शोधन तथा संसारकेहितकी उन्नति की जायगी।

१८—इस समाजमें न्याय पक्षपातसे रहित और प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे यथावत् परीक्षित सत्य धर्म, वेदोक्तही माना जायगा। इससे विपरीत कदापि नहीं।

१९—इस समाजकी ओरसे श्रेष्ठ विद्वान् लोग सदुपदेश करनेके लिए समयानुकूल सर्वत्र भेजे जाएँगे।

२०—स्त्री और पुरुष इन दोनोंके विद्याभ्यासके लिए यथासम्भव प्रत्येक

स्थानमें आर्य विद्यालय पृथक् पृथक् बनाए जायँगे। स्त्रियोंकी पाठशालामें अध्यापिका आदिका सब प्रबंध स्त्रियोंद्वारा ही किया जायगा, और पुरुषोंकी पाठशालामें पुरुषोंद्वारा, इससे विरुद्ध नहीं।

२१—इन पाठशालाओंकी व्यवस्था प्रधान आर्य समाजके अनुकूल पालन की जायगी।

२२—इस समाजमें प्रधानादि सब सभासदोंको परस्पर प्रीतिपूर्वक अभिमान, हठ, दुराग्रह और क्रोधादि दुर्गुणोंको छोड़कर उपकार और सुहृद्भावसे निर्वैर होकर स्वात्मवत् सबके साथ वर्त्तना होगा।

२३—विचारके समय सब व्यवहारमें जो न्याययुक्त, सर्व हितसाधक सत्य बात स्थिर हो वह सब सभासदोंपर प्रकाशित करके वही बात मानी जाय।

२४—जो मनुष्य इन नियमोंके अनुकूल आचरण करनेवाला, धर्म्मात्मा, सदाचारी हो उसको उत्तम सभासदोंमें प्रविष्ट करना; इसके विपरीतको साधारण समाजमें रखना और अत्यन्त प्रत्यक्ष दुष्टको समाजसे निकाल ही देना। परन्तु यह काम पक्षपातसे नहीं करना, किन्तु ये दोनों कार्य श्रेष्ठ सभासदोंके विचारहीसे किये जायं, अन्यथा नहीं।

२५—आर्यसमाज, आर्यविद्यालय, आर्यप्रकाश पत्र और आर्यसमाजका कोष इन चारोंकी रक्षा और उन्नति, प्रधानादि सब सभासद् तन-मन धनसे सदा कियाकरें।

२६—जबतक नौकरी करने और करानेवाला आर्यसमाजस्थ मिले तबतक औरकी नौकरी न करे और न किसी अन्यको नौकर रक्खे। वे दोनों परस्पर स्वामी-सेवक भावसे यथावत् वर्तें।

२७—जब विवाह, जन्म-मरण, अथवा अन्य कोई दान करनेका अवसर उपस्थित हो तब तब आर्यसमाजके निमित्त धन आदि दान किया करें। ऐसा धर्म का काम दूसरा कोई नहीं है, ऐसे समझकर इसको कभी न भूलें।

२८—इन नियमोंमेंसे यदि कोई नियम घटाया बढ़ाया जायगा तो सब श्रेष्ठ सभासदोंके विचारहीसे सबको विदित करके ऐसा करना होगा।

ऊपर कहे नियमोंके स्वीकार करनेके पश्चात् प्रधान, मन्त्री आदि अधिकारी चुने गये। कुछ कालतक तो समाजके अधिवेशन शनिवारको होते रहे, परन्तु कई एक सभासदोंको यह वार अनुकूल नहीं पड़ता था इसलिए, समयपरिवर्तन करके, सत्संगका दिवस आदित्यवार रक्खा गया।

मुम्बईमें आर्यसमाज स्थापित करके महाराज अहमदावाद चले गये और वहांसे लौटते हुए बड़ोदामें ठहरे। वहां उनका आसन विश्वामित्रीके किनारे महादेवके मन्दिरमें किया गया। महाराजके खान पानका सारा प्रबन्ध राज्यकी ओरसे था।

स्वामीजीका पहला व्याख्यान वेदाधिकारपर हुआ। इसमें दीवानादि सभी अधिकारी उपस्थित हुए। गोविन्द शास्त्री और आपा शास्त्री आदि गुजराती तथा दक्षिणी पण्डित भी आये। उपदेशमें प्रसंगवश, महाराजने वेदका एक मंत्र उच्चारण किया, उसी समय दक्षिणी पण्डित 'शिव! शिव!, कहते हुए वहांसे उठ खड़े हुए। जब उनसे उठनेका कारण पूछा गया तो उन्होंने कहा कि इस सभामें एक मुसलमान भूमिहार और राजगायक मौलाबक्स बैठे हुए हैं। कुछ शूद्रजन भी इधर उधर खड़े सुन रहे हैं। स्वामीजीने ऐसे अनधिकारियोंके सामने श्रुति का उच्चारण करके एक अनर्थ ढाया है। अधिकारी वर्गने समझा बुझाकर उन भूदेवोंको बिठा लिया।

स्वामीजीके आगमनसे बहुत पहले ही पण्डित लोग शास्त्रार्थ करनेके लिये सुसज्जित थे। इस लिए, व्याख्यानकी समाप्तिपर ही शास्त्र-समरका आरम्भ हो गया। महाराज ऐसी सुगम संस्कृत बोलते थे कि लोगोंकी समझमें सहजसे आ जाती थी। परन्तु पण्डितोंको यह बात अच्छी न लगी। वे बार बार जटिल भाषा बोलनेके लिए उपहासपूर्वक ललकारने लगे।

एक शास्त्रीने यह भी कहा, "महात्माजी! केवल 'भवति' 'पचति' मात्रसे काम न चलेगा। आज आपको दक्षिणी पण्डितोंसे पाला पड़ा है। कोई शास्त्रीय महत्व दिखाना होगा।"

प्रतिपक्षियोंकी प्रवल प्रेरणापर, अपनी प्रकृतिके प्रतिकूल होते हुए भी महाराजने अप्रसिद्ध-शब्द-पूर्ण, समास-बहुल, अनेकार्थ-बोधक, ऐसी जटिल संस्कृत बोलना आरम्भ किया कि प्रतिवादी देखताही रह गया। वह तो, महाराजकी धाराप्रवाह संस्कृतके सारे वाक्योंको समझ ही न सका, तो उत्तर क्या देता! उसे मूक-मूर्त्ति ही बनना पड़ा।

व्याकरणके 'भू' शब्दपर भी एक वैयाकरणने थोड़ी देर तक वार्त्तालाप किया। महाराजकी फक्किकाओंको वह भी न समझ सका।

ऐसे ही, अनेक शास्त्री एक एक करके, उस वाक-युद्धमें उतरते रहे और अन्तमें दयानन्द वागीशके वचनास्त्रोंसे अवाक् हो जाते रहे। कोई दो घण्टेके भीतर ही, शास्त्रीसमूह निर्वात सरोवरकी भांति प्रशान्त होगया। उस समय सारी सभा साधुवादके नादसे बार बार निनादित होने लगी। पण्डित कृष्णराम इच्छारामको, इतने दिनोंके पश्चात्, ज्ञात हुआ कि प्रत्येक पक्षमें उनके गुरुदेव का ज्ञान अगाध है। उसकी थाह कोई भी नहीं ले सकता।

एक दिन स्वामीजी बैठे हुए क्षौर करा रहे थे। उसी समय एक शास्त्री वहां आगया और कहने लगा, "संन्यासियोंका धर्म्म तो त्याग है। आप इस देह-विभूषामें क्यों लगे हुए हैं?"

स्वामीजीने हंसकर कहा, "यदि बाल बढ़ानेमें ही त्याग है, तब तो रीछ सबसे बड़ा त्यागी सिद्ध होगा! ऐसी बातोंमें त्याग और वैराग्य नहीं है। देह की रक्षाके लिए उसे सँवारना, सुधारना धर्म्मानुकूल है। जैसे प्रमादी पुरुष पुष्ट शरीरसे अधिक पापाचरण करते हैं, ऐसे ही परोपकारी जन परिपुष्ट और बलिष्ठ कायसे अधिक धर्म्म-कर्म करते हैं।"

एक दिन, एक पण्डितने भगवान्‌को कहा, हमने सुना है कि आप धन ले लेते हैं, परन्तु शास्त्रमें तो यह लिखा है कि 'न यतीनाँ काँचनं दद्यात्' यतियों को सुवर्ण न दिया जाय।"

महाराजने उत्तर दिया, "वहाँ तो केवल सुवर्ण देना वर्जित किया है तो

क्या आपकी मतिमें यतियोंको चाँदी, हीरा, मोती आदि देना चाहिए ? भाई ! यदि इसके भावको समझना चाहते हो तो वह अति सरल है। यतियोंको संग्रह नहीं करना चाहिए। परन्तु यदि परोपकारके लिए द्रव्य लेना भी पड़े तो कोई दोष नहीं है। जिन भगवद्भक्तोंने पर-हितार्थ अपनी कायाको भी अर्पण कर दिया है वे करोड़ों मन कांचन रखते हुए भी अकिञ्चन हैं। अब रही मेरी बात, मैं जब गङ्गापर पर्य्यटन करता था तो उन दिनोंमें केवल कौपीनधारी दिगम्बर था। उस समय मुझे कौड़ीतक छूनेकी आवश्यकता न थी। परन्तु अब मैंने जन-हितके कार्य्योंमें अधिक भाग लेना आरम्भकर दिया है। इस लिए, 'कूप मृत्तिका न्याय' से लोगोंसे धन लेकर उन्हींके हितकर कार्य्यमें लगा देता हूं। पर यदि आप यह मानते हैं कि द्रव्यका स्वभाव पापमय है—इसको छू लेनेसे संक्रामक व्याधिकी भांति पाप लगजाता है, तो आप भी तो धनवान् प्रतीत होते हैं। क्या ऐसी अवस्थामें आप अपनेको पापी मानते हैं ?"

महाराजके कथनके अनन्तर, शास्त्रीने उनके चरण-चुम्बन करके कहा, "आप वास्तवमें वीतराग हैं। यह मेरी धृष्टता थी जो मैंने आपके आगे ऐसा प्रश्न किया ?"

एक दिन, श्रीस्वामीजीने श्रीमान् माधवरावजीके कथनसे एक व्याख्यान राजधर्म्मपर दिया। उसमें उन्होंने आर्य्य राज्य-पद्धतिका चित्र चित्रण करके राष्ट्र—नीतिविशारदोंको भी आश्चर्यचकित कर दिया। किसी भी विद्यमान राज्यप्रबंधपर, किंचिदपि कटाक्ष किये बिना, महाराजने राजा और प्रजाके धर्म्मों और सम्बन्धोंका ऐसी योग्यतासे निरूपण किया कि व्याख्यान की समाप्तिपर माधवराव महोदयने भी उनकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की।

बड़ौदा राज्यके दीवानबहादुरने एक दिन महाराजको भोजनार्थ अपने गृह-पर निमन्त्रित किया। जब महाराज भोजन पाकर लौटने लगे तो एक सहस्र रजत मुद्रायें श्रीचरणोंमें भेंटकीं। महाराजने वह रुपया न लिया और कहा,"मैं कुरीतियों का खण्डन करता हूं। यदि यह रुपया ले लुंगा तो गोसाइयोंको अपनी पधरावनीके लिये एक दृष्टान्त मिल जायगा।'

नवसारीका एक भूमिहार, किसी अपराधके कारण, चिरकालसे कारावासमें पड़ा हुआ था। उसका निर्णय होनेमें ही न आता था। उसके सम्बन्धियोंने एक दिन, पण्डित कृष्णराम इच्छारामको कहा कि स्वामीजी के पास दीवान आदि सभी अधिकारी आते हैं। यदि उनको कहकर, महाराज हमारे बन्धुका निर्णय शीघ्र करादें तो हम उन्हें पचास साठ सहस्र तक रुपया देनेको समुद्यत है।

पण्डितजीने ऊपरकी सारी वार्त्ता गुरुचरणोंमें निवेदन कर दी। इसपर स्वामीजीने कहा कि राज्यकार्यमें हस्तक्षेप करना हमारा काम नहीं और फिर शुल्क लेकर तो महापाप है! हाँ यदि वह बद्ध पुरुष निरपराधी है तो समयानुसार छूट ही जायगा। वह भूमिहार, उसके पश्चात् थोड़े ही दिनोंमें मुक्त हो गया।

एक दिन, रावबहादुर शङ्कर पाण्डुरङ्ग राज्य-अनुवादक स्वामीजीके मिलापार्थ बड़ोदामें आये और विनीत नमस्कार करके वार्त्तालाप करने लगे। प्रसंग आ पड़नेपर रावबहादुरने अपने ऋग्वेद-भाष्यका नमूना महाराजके आगे रखकर कहा कि यदि आप मेरे साथ मिलकर मेरी पद्धतिपर वेदभाष्य करें तो बहुत ही अच्छा हो। स्वामीजीने उसके कुछ पृष्ठोंको पढ़कर कहा कि आप मोक्षमूलर और सायणके पीछे चलना चाहते हैं। मैं तो इन दोनों भाष्यकर्त्ताओंको आर्ष-शैलीसे अनभिज्ञ समझता हूं। आप मेरे साथ मिल जाइये अथवा मुझे अपने साथ मिला लीजिये, परन्तु यह सुनिश्चित है कि मैं अनार्ष कल्पनापर कार्य कदापि नहीं करूंगा।

रावमहाशय इस उत्तरसे निरास होकर चले गये।

उधर मुम्बई नगरमें पौराणिक पण्डितोंने बड़ा ऊधम मचा रक्खा था। वे आर्य-समाजियोंको शास्त्रार्थ करनेके लिये वार वार विवश कर रहे थे। इसलिये महाराज भी वहां शीघ्र ही आ गये और पण्डित-दलको आह्वान करने लगे। इन लोगोंने जब सुना कि दयानन्द मुम्बई आ गये हैं तो लगे इधर उधर मुंह छिपाने। मुम्बईमें, उस समय, कमलनयनाचार्य चोटीके पण्डित गिने जाते थे। लोगोंने अत्याग्रहसे उन्हें शास्त्रार्थ के लिये सुसज्जित किया। आषाढ़ वदी ३

सं० १९३२ को "फरामजी कावसजी इन्स्टिट्यूट" में शास्त्रार्थ होना निश्चित हुआ। लोग नियत समयसे बहुत पहले ही आने लगे। दिनके तीन बजे स्वामीजी भी उस स्थानपर पधारे। उनको अति सन्मानसे चौतरेके ऊपर कुर्सीपर बैठाया गया। महाराजके सामने कमलनयनजीके लिए कुर्सी रक्खी गई। उन दोनों कुर्सियोंके मध्यमें, कोई डेढ़सौ संस्कृत पुस्तकें प्रमाणके लिये रक्खी गई। चौतरेके नीचे समाचारपत्रोंके आठ सम्वाददाताओंके बैठनेका प्रबंध किया गया उस सभामें नगरके प्रायः समस्त सेठ, सज्जन, गण्य, मान्य और अधिकारी जन आये हुए थे। शास्त्रियोंका समूह भी पर्याप्त था। स्वामीजीके पहुंचनेके आध घण्टा पीछे, बीस पच्चीस शिष्यों सहित कमलनयनजी भी आ गये और स्वामीजीके सामने विराजमान हुए। उस समय, सभापति रावबहादुर बेचरदासजीको बनाया गया।

सभापति महाशयने अपनी वक्तृतामें सभाके उद्देश्य और नियम सबको सुना दिये। तदन्तर कमलनयनजी खड़े होकर बोले, "शास्त्रार्थ तब किया जायगा, जब यहां आये हुए समस्त पण्डित अपने अपने सम्प्रदाय का नाम बता दें।"

लोगोंने उनको बहुत समझाया कि लोगोंसे उनके सम्प्रदायका नामनिर्देश कराना सर्वथा असंगत है। इससे आपका कोई प्रयोजन भी सिद्ध नहीं होता, परन्तु आचार्य महाशय अपने हठसे राई और रत्तीभर भी इधर उधर न हुए।

महाराजने अति मधुर और मृदु शब्दोंमें कहा, "कमलनयनजी! आजका दिन मैं माङ्गलिक मानता हूं कि आप सत्यासत्यके निर्णयके लिये मेरे सामने पधारे हैं। इतना बड़ा जनसमुदाय सच-झूंठके जानने की जिज्ञासाहीसे यहां सम्मिलित हुआ है। अब, आप का परम कर्त्तव्य है कि प्रामाणिक ग्रन्थोंके प्रमाण देकर प्रतिमा-पूजन के पक्षका पोषण करें। यद्यपि, व्यवस्था देने के लिये पक्षपात रहित, सभापतिजी हैं परन्तु सर्वोपरि मध्यस्थ, चारों वेद हम दोनोंके बीच स्थापित हैं। अपने पक्षकी सिद्धिके लिये, इनमेंसे एक तो प्रमाण निकालिये।"

महाराजकी ओजस्विनी वाणीसे, तेजस्विनी आकृतिसे और असीम साहस-से पराभूत होकर, कमलनयनजी तो चौकड़ी ही चुक गये। वे बार बार इसी बातकी रट लगाने लगे कि 'शास्त्रार्थ तभी होगा, जब पण्डित लोग अपने सम्प्र-दायका नाम बतायँगे' और अन्तमें वे अतीव लज्जित होकर सभा से उठकर चले गये। उनके चले जानेसे सारी सभापर स्वामीजीके पक्षकी सचाई छा गई, उनके पाण्डित्यका सिक्का बैठ गया।

उसी सभामें एक सेठके पूछनेपर महाराजने कहा कि मूर्ति-पूजा बौद्ध और जैन लोगोंसे चली है; पुरातन नहीं है।

महाराजने मूर्ति-पूजाके विरुद्ध वहाँ, एक प्रभावशाली व्याख्यान भी दिया और जब वे डेरेको आने लगे तो उनके गलेमें फूलोंका एक अत्युत्तम हार पहराया गया।

पञ्जाब प्रान्तके होशियारपुर जिलेके अन्तर्गत हरयाना नामक एक नगर है। उस नगरकी एक कुलीन लड़की तरुणावस्थाहीमें वैराग्यवती हो गई थी। सब परिवार परिजनका परित्याग करके कषायाम्बरके वेषमें रहती थी। उसने अपने गुरुजनोंके समीप वेदान्तके कुछ ग्रन्थ अध्ययन किये थे। उसका नाम उस समय भगवती था। स्वामीजी जब मुम्बई प्रान्तमें विचर रहे थे, उन्हीं दिनोंमें राजा जयकृष्णदासजीके प्रबंधसे 'सत्यार्थप्रकाश' छपकर प्रकाशित हुआ था। किसी प्रकार, वह ग्रन्थ उस देवीको भी प्राप्त हो गया। उसके पाठसे उसके वेदान्तके विचारोंकी लड़ी एकाएक टूट गई।

विचारोंके परिवर्तनसे, उसके हृदयमें स्वामीजीके लिये गाढ़ भक्ति और उनके दर्शनोंकी तीव्र लालसा उत्पन्न हो गई। अन्तमें वह भाईको, साथ लेकर स्वामीजीके दर्शनोंके लिये मुम्बई पहुंची। स्वामीजी व्याख्यानके पश्चात् स्त्रियोंको अपने स्थानपर नहीं आने देते थे, परन्तु उन्होंने सुदूर देशसे दर्शनार्थ आई देवीको वस्त्रकी ओटमें बैठकर वार्त्तालाप करनेका अवसर प्रदान कर दिया। भगवान्‌के दर्शनोंको पाकर माई भगवती अपनेको निहाल हुई मानने लगी।

कुछ एक प्रश्नोत्तरके पश्चात् श्री स्वामीजीने उसे उपदेश दिया, "स्त्री जातिमें विद्याका बड़ा भारी अभाव है। उनको कर्त्तव्याकर्त्तव्यका कुछ भी बोध नहीं यदि आप पुण्योपार्जन करना चाहिती हो तो अपने प्रान्तमें जाकर, अपनी बहिनोंमें विद्याका प्रचार करो। जो कुछ जानती हो वही उन्हें सिखाने लग जाओ।

माई भगवती ही पहली पुण्यवती देवी थी, जिसको महाराजने उपदेश करके स्त्री-जातिके सुधारमें सन्नद्ध किया। उस देवीने मुम्बईसे आकर अपने नगरमें स्त्री-शिक्षा और स्त्री-सुधारका कार्य आरम्भ कर दिया।

मुम्बई नगरमें ही, श्री महाराजने 'संस्कार-विधि' और 'आर्य्याभिविनय' ये दो ग्रन्थ मुद्रित कराकर प्रकाशित किये। वेद-भाष्य करनेका उद्योग भी आरम्भ हो गया था।

श्रीयुत महादेव गोविन्द रानडे पूनेमें जज थे। उन्होंने स्वामीजीको पूने पधारनेके लिये आग्रहपूर्वक विनती की। उनकी प्रार्थनाको स्वीकार करके महाराजने आषाढ़ बदी १३ सं० १९३२ को पूना पुरीमें पदार्पण किया। यहाँ उनके पन्द्रह व्याख्यान बड़ी धूमधामसे हुए। इन व्याख्यानोंसे, लोग इतने प्रभावित हुये कि स्थान-स्थानपर श्री स्वामीजीकी ही चर्चा होती थी।

महाराजके व्याख्यानोंमें श्रीमान् महादेव गोविन्द रानडे भी निरन्तर आया करते थे। व्याख्यानोंके प्रबन्धमें भी उन्हींका अधिक हाथ था।

जब महाराजकी विदाईका दिन आया तो लोगोंने, स्वामीजीके सत्कारके लिये, नगर-कीर्त्तन करनेका प्रबन्ध किया। महाराजकी सवारीका सारा प्रबन्ध रानडेके ही घरपर हुआ था।

सायं समय, जब अन्तिम व्याख्यान समाप्त हुआ तो महाराजके गलेमें पुष्पमाला पहराई गई। एक पालकीमें वेद रक्खे गये और स्वामीजीको हाथीपर आरूढ़ किया गया। ऐसे भारी समारोहके साथ नगर-कीर्त्तन-यात्रा निकली उधर पूना नगरमें, कुछ उपद्रव-प्रिय लोगोंने गर्दभानन्द आचार्यकी सवारी निकाली। जैसे जैसे नगर-कीर्त्तन आगे बढ़ता था वे लोग भी कलह और कोला-

हलकी मात्रा बढ़ाते जाते थे; असंख्य अण्ड बण्ड बातें बकते थे। कई सभ्य पुरुष उन नर-पिशाचोंकी पैशाच लीलाको शत शतवार धिक्कारते थे; परन्तु वे टलनेवाली मूर्त्तियां न थीं। कुछ पानी पड़ जानेके कारण मार्गमें कीचड़ हो रहा था। उपद्रवियोंने, स्वामीजीपर कीचड़ उठाकर फेंकना आरम्भ कर दिया! ईंटें और पत्थर भी बरसाये !! उस समय रानडे महाशय भी साथ थे। स्वामीजीकी सम्मतिसे उन्होंने पोलिसको कह दिया कि किसीको कुछ भी न कहा जाय।

पामर पुरुष अपमान करते, अपशब्द कहते, महामलीन कीचड़ फेंकते, विविध प्रकार से अवहेलना कर रहे थे, परन्तु स्वामीजी थे कि हँसते थे। उनके मुखमण्डलकी रौनक लवलेश मात्र भी न घटी। उनको यत्किंचित् रोष भी नहीं आया।

रानडे महाशयपर भी कीचड़ पड़ा। जब वे घर गये तो उनके कपड़े कीचड़से लतपत देखकर लोगोंने कहा कि आपपर भी कीचड़ पड़ गया है! उन्होंने उत्तर दिया कि जब हमने एक पक्ष अवलम्बन कर लिया तो साथियोंके साथ मानापमानपर हमें भी तो ध्यान न देना ही उचित था। रानडे महोदयके मनमें महाराजके लिये बड़ा सन्मान था। वे उनको उस समयका तुलनातीत महापुरुष मानते थे।

एक दिन, पूनामें तीस चालीस पण्डित मिलकर स्वामीजीसे शास्त्रार्थ करने आये; परन्तु थोड़े समयमें ही परास्त होकर चले गये।

दो मासपर्य्यन्त महाराजने पूना नगरके अधिवासियोंको उपदेश दिये और फिर मुम्बई जानेका सङ्कल्प कर लिया।

भाद्रपद सुदी २ सम्वत् १९३२ को स्वामीजी पूनासे लौटकर मुम्बईमें शोभित हुए। अबकी वार श्रीयुत नवीनचन्द्र राय, प्रतापचन्द्र मोजमदार और डाक्टर भण्डारकर आदि ब्राह्मसमाजी सज्जन स्वामीजीके निकट वेद विषयपर वार्त्तालाप करने आये। इन लोगोंका पक्ष था कि वेदमें अग्नि आदि जड़ पदा-

र्थोंकी स्तुति है। स्वामीजीने उत्तरमें मन्त्रोंके अर्थसे और प्रमाणोंसे यह सिद्ध कर दिया कि जहां आपको जड़ पदार्थों की स्तुतिका भ्रम होता है, वहां वास्तवमें परमात्माका वर्णन है।

स्वामीजी अपने सब कर्मचारियोंको आज्ञा दे रक्खी थी कि ठीक समयपर भोजन कर लिया करो। समयपर भोजन पा लेनेसे आप स्वस्थ और सुखी रहोगे। शीघ्र निपट जानेसे रसोइएको भी आराम मिल जायगा।

स्वामीजीके स्वभावमें, कार्य्यकी नियमता और व्यवहारकी समानता समाई हुई थी। उनको इस बातका भी बड़ा ध्यान रहता था कि किसी छोटे बड़े कर्मचारीपर अन्याय, अनीति न होने पावे। भोजनमें भी वे इस बातको नहीं भुलाते थे। रसोईमें कभी कभी स्वयं आकर निरीक्षण किया करते थे कि कहीं किसीको नियत वस्तुसे थोड़ी तो नहीं मिलती।

रसोईमें आटा, दाल, भात, और घृतादि भोज्य पदार्थ तोलकर दिये जाते थे। उन्होंने सबको कह रक्खा था कि आवश्यकतासे अधिक पदार्थ न तो परसो और न ही लो; थालीमें जूठन छोड़ना बहुत बुरा है। इसमें एक तो खाद्य वस्तुका व्यर्थमें नाश होता है और दूसरे यदि किसीको दिया भी जाय तो विगाड़कर देना विवर्जित है। जूठा अन्न किसी मनुष्यको भी नहीं देना चाहिए।

मुम्बईमें स्वामीजीने नियम बनाया था कि नित्यके भोज्य पदार्थोंसे, घृतादि वस्तुयें प्रतिदिन थोड़ी थोड़ी निकालकर रख ली जायँ। उन बचाई हुई वस्तुओंसे आठवें दसवें दिन कर्मचारियोंको मिष्टान्न भोज्य दिया जाता था।

एक कर्मचारीने एक समय निवेदन किया, "आप रसोईमें तोलकर वस्तुयें देते हैं। कहीं ऐसा न हो कि आपको लोग कृपण समझने लग जायँ।"

महाराजने मुस्कराकर कहा, "लोग मुझे क्या समझते हैं अथवा क्या समझेंगे इसकी चिन्ता तो मुझे स्वप्नमें भी नहीं होती। पाकशालामें, परिमित पदार्थ इसलिए देता हूं कि अधिक न पकनेसे अन्नका नाश और निरादर नहीं होता। कर्मचारी जन यदि मिताहारी रहेंगे, तो उनको रोग भी न होगा और

वे काम भी अच्छा करेंगे। मिताहार और मितव्ययसे कोई कृश और कृपण नहीं हो सकता।" उन दिनों, स्वामीजी भी प्रायः सायंकाल भोजन नहीं किया करते थे। रातको केवल दूध ही लेते थे।

स्वामीजी प्रतिदिन, सवेरे तीन बजे उठते और कुल्ला आदि करके जलपान करते थे। शौच-स्नानादिसे निवृत्त होनेपर आसन लगाकर योगारूढ़ होजाते थे। विविध आसनों द्वाराही व्यायाम कर लेते थे। जिस समय, वे प्राणायामके कुम्भकमें अवस्थित होते थे तो उनकी मूर्ति तप्त स्वर्णकी भांति देदीप्यमान दिखाई दिया करती थी। उनके मुखकमलकी कान्ति अतीव उज्ज्वल होती थी।

सूर्योदयसे पूर्व ही, वे भ्रमणार्थ निकल जाया करते। महाराज इतने शीघ्र चलते थे कि कोई दूसरा उनके साथ जाता तो, उसे साथ दौड़ना पड़ता था। चलते समय सांस नाकद्वारा ही लेते थे। सुदूर एकान्त स्थानमें जाकर एक घण्टातक समाधिस्थ रहते। फिर आठ बजे आसनपर लौट आते। बाहरसे आते ही अपने पाँव और पादरक्षक झाड़ने लगते; परन्तु विद्यार्थी उन्हें यह कार्य्य प्रायः नहीं करने देते थे। वे आप दौड़कर झाड़ने लग जाते थे।

तदनन्तर श्रीमहाराज, शवासन होकर बीस पलतक विश्राम लेते। उस समय उनका शरीर निश्चेष्ट होजाता था। विश्रामके पश्चात् सेरभर दूध पान करते थे। उसी समय कर्मचारी उनके निकट आ उपस्थित होते थे। तत्काल लिखने आदिका कार्य आरम्भ हो जाता था और दिनके ग्यारह बजेतक निरन्तर होता रहता था।

महाराज भोजनके समय भी स्नान किया करते, इस लिए, कार्यसे उठकर स्नान करके भोजन पाते। वे दो तोलेसे अधिक घी और छोटे छोटे आठ फुलकोंसे अधिक अन्न नहीं खाते थे। वे ग्रासको अच्छे प्रकार चबाते और आहार करनेमें कोई आध घण्टा लगाते थे। उसी समय समाचारपत्र भी सुन लिया करते थे।

भोजनके पश्चात् आधी घड़ीतक बायें करवटके भार पड़कर आराम करते

और फिर उठकर सायंके चार बजेतक कार्यपरायण रहते। ठीक चार बजे मिलने जुलनेवाले आया करते थे। महाराज, उस समयसे रातके दस बजेतक लगातार प्रश्नोंके उत्तर देते और लोगोंके संशय मिटाते। ठीक दस बजे, श्रीमहाराज सादा पर स्वच्छ बिछौना बिछाकर शय्याशायी होजाते। निद्रा उनके इतने वशमें थी कि खाटपर पड़ते ही तुरन्त उनकी आँख लग जाती। दो तीन पलपर्यन्त भी उनकी निद्राकी प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती थी।

दूसरा सर्ग।

सुचिर कालतक, मुम्बई प्रान्तके अधिवासियोंको महाराज उपदेशामृत पिलाते और भवसागरसे पार उतराते रहे। फिर अन्तमें आगरा और अवधके प्रान्तों की यात्राके लिए प्रस्तुत हो गये।

ज्येष्ठ वदी १ सं० १९३३ को स्वामीजी पाँचवीं बार फरुखाबादमें आकर विराजमान हुए। उस समय फरुखाबादकी पाठशालामें अध्यापकोंने बड़ा गोलमाल कर रक्खा था। वे प्रच्छन्न रूपसे स्वामीजीके विरुद्ध चलते थे। इसलिए महाराजने वह पाठशाला तोड़ दी।

ज्येष्ठ सुदी १ सम्वत् १९३३ को फरुखबादसे प्रस्थान करके स्वामीजीने कायमगंज, काशी, जौनपुर और अयोध्या आदि नगरोंमें धर्म्म-प्रचार किया। लोगोंको सरल और सन्मार्ग दिखाया। तत्पश्चात् आश्विन सुदी नवमी सम्वत् १९३३ को श्री महाराज लखनऊ पधारे। हुसैनगंजमें सरदार विक्रमसिंह आहलूवालियाकी कोठीमें ठहरे। लखनऊके अधिवासी श्रीरामाधारजी स्वामीजीसे पहलेहीसे सु-परिचित थे। इस लिए उनकी सेवा-शुश्रूषासे वही अधिक लाभ उठाते थे। स्वामीजीने वहां एक बङ्गीय महाशयको सेवामें रखकर उससे अंगरेजी सीखना आरम्भ किया था। इससे कई लेखकोंने जो यह अनुमान किया

है कि वे यूरोप महादेशमें प्रचारार्थ जाना चाहते थे सो भ्रममूलक प्रतीत होता है। यदि यूरोप जानेका उनका सङ्कल्प होता तो वे अधिक कालतक अधिक समय लगाकर अङ्गरेजी पढ़ते, परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। महाराज ऐसे भी नहीं थे कि उनके सङ्कल्प, पानीकी रेखाकी भाँति इधर बनते और उधर मिटते रहते थे। वे सुदृढ़ सङ्कल्पके धनी थे। यदि वे यूरोप जाना चाहते तो एकचित्त होकर थोड़े ही समयमें सुसज्जित हो जाते। यह कल्पना बहुत ही ठीक है कि सङ्गठन-कार्यमें लग जानेसे उनका पत्रव्यवहार बहुत ही बढ़ गया था। प्रतिदिन अनेक रजिस्टर्ड पत्र आते थे। रुपया भी प्रायः आता जाता रहता था। पुस्तकोंको छपने भेजना, प्रूफ आदि मंगाना लौटाना ये कुछ ऐसे कार्य्य हैं कि उस समय अङ्गरेज़ी जाने बिना ठीक नहीं निभ सकते थे। इसी कारणसे वे अङ्गरेज़ी सीखने लगे थे।

आश्विन सुदी १२ सं० १९३३ को स्वामीजीका व्याख्यान 'ईश्वरकी निराकारता, पर हुआ। सुननेवालोंकी संख्या बहुत बड़ी थी। व्याख्यानको सुनकर लोग अत्यन्त प्रभावित हुये।

लखनऊमें लाला ब्रजलालजी एक सम्भ्रान्त व्यक्ति रहते थे। उन्होंने महाराजसे प्रश्नोत्तर करके अपने सकल संशय निवारण किये।

स्वामीजीने एक 'वाक्य-प्रबोध' नामक पुस्तक छपवाई थी। उसमें कुछ अशुद्धियाँ रह गई थीं। इसपर काशीके पण्डितोंने स्वामीजीकी योग्यतापर तीक्ष्ण आक्षेप किये। स्वामीजीके शिष्य, अशुद्धियोंको शुद्ध सिद्ध करने के लिये सु-सज्जित हो गये। परन्तु महाराजने उनको कहा, "मिथ्या पक्षको ग्रहण करके झगड़ना धार्मिक जनोंका काम नहीं है। सरलतासे अशुद्धियाँ मान लो और दूसरे संस्करणमें वह पुस्तक शुद्ध करके मुद्रित कराओ।"

एक दिन पण्डित प्रभुदयालने स्वामीजीसे पूछा, "मीमांसाके जिन सूत्रोंका अर्थ लोग पशु-वध करते हैं आप उनको कैसे लगाते हैं?"

उन्होंने उत्तर दिया, "मीमांसा में पशु-वध-विधायक सूत्र कोई भी नहीं

है। सूत्रोंका हिंसापरक अर्थ करना भाष्यकारोंकी भारी भूल है। उन सूत्रोंमें 'आलम्भन' शब्द आता है, जिसके दो अर्थ हैं—एक स्पर्श और दूसरा वध। यदि उन सूत्रोंके आलम्भन शब्दका अर्थ स्पर्श कर दिया जाय तो उनके अर्थों में कोई बाधा नहीं आती और सङ्गति भी लग जाती है।"

स्वामीजीने प्रभुदयालजीसे वार्त्तालाप करते हुए यह भी कहा, "मैंने वेदोंके एक एक मन्त्रको भली भांति विचार-दृष्टिसे जांच लिया है। उनमें ऐसा एक भी मन्त्र नहीं है, जो अयुक्त सिद्ध हो सके। जैसे सराफ रुपयोंको परखकर थैलीमें रख लेता है और फिर उनकी निर्दोषतामें निर्भ्रान्त हो जाता है, ऐसे ही एक एक वेदमन्त्रको युक्ति और प्रमाणकी कसौटीपर कसकर, उनकी सत्यतामें मैं निस्सन्देह हो गया हूं।"

एक व्यक्तिने स्वामीजीको कहा, "आप ग्रन्थोंके शब्दोंका अर्थ उलट देते हैं।" उन्होंने हँसकर कहा, 'मैं तो अर्थ नहीं उलटता, उलटनेवाले कोई और ही हैं। हां, उनके उलटे हुये अर्थोंको अवश्यमेव उलट देता हूं।"

लखनऊ-निवासी लोगोंको कृतार्थ करनेके अनन्तर, महाराज वहाँसे कार्तिक पूर्णिमा सम्वत् १९३३ को चलकर शाहजहांपुरमें पधारे। वहां पांच दिवसतक टिके। फिर मार्गशीर्ष वदी पञ्चमीको बांसबरेलीमें आ गये। वहां उन्होंने लाला लक्ष्मीनारायणकी कोठीमें निवास किया। बरेलीमें आपके उपदेश भी होते रहे।

मुरादाबाद निवासी, श्रीयुत इन्द्रमनजी स्वामीजीको कई स्थानोंमें मिल चुके थे। उनके उद्देश्यों और उपदेशोंसे मोहित होकर उनके अनुयायी भी बन गये थे। स्वामीजीको मुरादाबादमें पदार्पण करनेके लिये वे सदा अनुरोध पूर्वक विनति किया करते। उनकी अनुनय विनयसे महाराज बरेलीसे मुरादाबादमें आये। उनको स्वागत पूर्वक लाकर राजा जयकृष्णदासजी के बङ्गलेमें उतारा गया। उसी बङ्गलेके चबूतरेपर महाराज, प्रतिदिन सायं समय, सत्संग लगाते और उपदेश देते।

मुरादाबादमें लाला क्षेमकरणदास आदि कई सज्जनोंने श्रीमहाराजके कर-

कमलोंसे यज्ञोपवीत धारण किया। इसपर अनेक जन कहने लगे कि संन्यासियोंको जनेऊ धारण करानेका अधिकार नहीं है। एक यजमानने स्वामीजीसे ऐसा प्रश्न भी कर दिया। इसके उत्तरमें उन्होंने कहा कि संन्यासीसे यज्ञोपवीत लेना शास्त्रोक्त है।

पादरी पार्कर महाशय, प्रतिदिन सवेरे पन्द्रह दिवस तक महाराजसे धर्म्म-चर्चा करते रहे। यह धर्म्म-चर्चा नित्य तीन घण्टे तक राजा जयकृष्णदासके बङ्गलेपर ही होती थी।

उन्हीं दिनोंमें ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशनका अधिवेशन भी उसी बङ्गलेके एक कमरेमें हुआ करता था। वादके अन्तिम दिनका विषय था "सृष्टिकी उत्पत्ति कब हुई ?" पादरी महाशय कहते थे कि सृष्टिको उत्पन्न हुये पांच सहस्र वर्ष बीते हैं। स्वामीजी महाराज उठकर एक दूसरे कमरेमें गये और वहांसे एक बिलौरी पत्थर लाकर उपर्युक्त एसोसिएशनके सदस्योंसे पूछने लगे कि आप भूगर्भ-विद्यावेत्ता हैं। कृपया यह तो बताइये कि इस पत्थरको इस अवस्थामें आनेके लिये कितना समय लगा है ? उन्होंने उत्तर दिया कि कई लाख वर्षोंमें इसका यह स्वरूप बना है। तब महाराजने पादरी महाशयको कहा कि अब आप ही बताइये, जब सृष्टिको बने पांच सहस्रवर्ष हुये तो लाखों वर्षोंमें यह पत्थर कैसे बन गया ? इसपर पादरी महाशय बहुत कटे और लगे इधर उधरकी बातें बनाने।

इस धर्म्म-चर्चाका लोगोंपर गहरा प्रभाव पड़ा और उनको ईसाई धर्म्मके विविध वाद विद्या-विरुद्ध दीखने लगे।

एक दिन स्वामीजीके उपदेशमें वेंकटेश्वरदास नामक एक चक्रांकित वैष्णव आ निकला। वह 'आ कृष्णेन रजसा' इस मन्त्रको बोलकर बार बार कहता था कि दयानन्द ! इसका अर्थ बता। इन्द्रमनजीने उसे बहुत कहा कि व्याख्यानमें विघ्न-बाधा न करो। इसकी समाप्तिपर यथेष्ठ प्रश्न पूछ लीजियेगा। परन्तु वह महात्मा मौन साधनेवाली मूर्ति न थी। अन्तमें महाराजने उसको

उस मन्त्रका अर्थ ईश्वरपर घटाकर बताया। वह इससे और भी अधिक भड़क उठा और असंख्य अपशब्द सुनाने लगा।

महाराज बहुत देरतक तो उस मूढ़मतिकी मूर्खतापर मुस्कराते रहे, परन्तु जब देखा कि यह ग्रह टलनेहीमें नहीं आता तो उससे बोले कि यदि मेरा किया अर्थ ठीक नहीं तो अपना ही बताइये। वास्तवमें वह वैष्णव देवता था निरा भोजनभट्ट, इस लिये कुछ भी न बता सका। इसपर सारी सभाने उसे लज्जित किया।

मुरादाबादके कई समृद्धिशाली पुरुषोंने वाराङ्गनायें रक्खी हुई थीं। स्वामीजीके उपदेशको सुनकर उनमें से अनेक सुधर गये। उनके पारिवारिक जीवनमें सुखका संचार हो गया।

महाशय दयालसिंहजी एक समृद्ध पिताके एकलौते पुत्र थे। वे चण्डाल-चौकड़ीके चक्रमें आकर कुव्यसनोंका घर बन गए थे। कुसंगतिवश, उनमें मदिरापानकी बान बहुत बढ़ गई थी। रात दिन मद्यमें मत्त रहते थे। मित्रोंकी प्रेरणासे, वे भी एक दिन स्वामीजीके उपदेशमें जा पहुंचे। दैवयोगसे उस दिन स्वामीजी सुरापानके दोष दिखाकर उसका खण्डन कर रहे थे। उस समय उन्होंने सुरासेवी मनुष्योंकी दुर्दशाका चित्र ऐसे मर्मस्पर्शी शब्दोंमें खींचकर दिखाया कि दयालसिंहका हृदय थर्रा उठा। व्याख्यानकी समाप्तिपर महाशयजीने श्री चरणोंको छूकर प्रतिज्ञाकी, "आजसे, मैं सुरापानरूप पापपङ्कमें कदापि पदार्पण नहीं करूंगा।"

इस प्रणके पश्चात् उनको अतिसार लग गये। वे कई दिनों चारपाईपर पड़े रहे। प्राणान्तकारी कष्ट भी होने लगा ऐसे समयमें ममताकी मारी माताने आप सुरा देकर पुत्रको पानके लिए प्रेरणा की। परन्तु प्रतिज्ञाके पक्के दयालसिंहजीने अपना व्रत भंग नहीं किया। श्रीमान् वक्षीरामजीने एक दिन महाराजसे अति विनयपूर्वक योगके साधन पूछे। पहले तो महाराज बतानेसे सङ्कोच करते थे परन्तु उनके अत्याग्रह करनेपर कृपा की कि जो अभ्यास कभी मैं भी किया करता था वही आपको बताता हूं।

स्वामीजीने यह मन्त्राभ्यास बताया :—

"ओम् भूः ओम् भुवः ओम् स्वः ओम् महः ओम् जनः ओम् तपः ओम् सत्यम्। तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गोदेवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात्। ओं आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् स्वाहा"।

महाशय बक्षीरामजीने महाराजके आदेशानुसार इस पाठका आराधन किया और उनको बड़ी शान्ति लाभ हुई।

मुरादाबाद नगरमें धर्मप्रचार और आर्य्यसमाजकी स्थापनाके पश्चात् स्वामीजी कर्णवास आदि स्थानोंमें बिचरते हुए दिल्ली जानेका उद्योग करने लगे।

दिल्लीमें महाराणी विक्टोरियाके महोत्सवके उपलक्षमें एक बड़ी राजसभा होनेवाली थी। उसके लिए सभी राजे महाराजे और प्रतिष्ठित नागर राजनिमन्त्रणसे वहां एकत्र हो रहे थे। कहा जाता है कि महाराजा इन्दौरने ऐसे अवसरपर धर्म्म-प्रचार करनेके लिए स्वामीजीको निमंत्रित किया था। वे राजमण्डलमें भी उनके भाषण कराना चाहते थे।

स्वामीजी दिसम्बर मासके अन्तमें ठाकुर मुकुन्दसिंहजीके साथ अलीगढ़से दिल्लीको पधारे। वहां आकर उन्होंने नगरसे बाहर शेरमलके अनारबागमें डेरा लगाया। प्रचार और निवासादिके लिए उस उद्यानमें तम्बू लगा दिये गये। उद्यानके प्रवेश-द्वारपर एक पट्टेपर 'स्वामी दयानन्द सरस्वतीका निवास स्थान' लिखकर लटका दिया गया।

पण्डित भीमसेनजी, राजा जयकृष्णदासजी, छलेसरनिवासी ठाकुर मुकुन्दसिंहजी, ठाकुर भूपालसिंहजी और श्रीयुत इन्द्रमनजी आदि अनेक सज्जन स्वामीजीके पास ही ठहरे।

दिल्लीमें, विज्ञापन वितरण होनेपर स्वामीजीके सत्संगमें सहस्रों मनुष्योंकी भीड़ लगने लगी। सभी मतों और सभी जातियोंके लोग स्वामीजीके निकट आते थे। एक मुसलमान सज्जनने उनको कहा, "आप जो हिन्दुओंकी मूर्ति-पूजाका खण्डन करते हैं, यह बहुत अच्छा काम है और ठीक इसलामके अनुकूल है।"

स्वामीजीने उसे कहा, "मैं तो सब मतोंकी मूर्ति-पूजाका खण्डन करता हूं। पुराण-पन्थियोंकी प्रतिमायें परिमाणमें चार अंगुलसे एक हाथतककी होती हैं। इनको तो किसी प्रकार हटाया जा सकेगा। परन्तु मुसलमानोंकी मूर्तियां तो कब्र आदिके रूपमें तीन-खन मकानोंसे भी बड़ी हैं। उनको हटाना अति दुष्कर है" यह सुनकर वह सज्जन चुप हो गया।

एक श्रीकृष्णभक्त स्वामीजीके पास आया और उनके आगे मिट्टीकी डली रखकर बैठ गया। स्वामीजीने उससे पूछा, "यह मिट्टी कैसी है?" वह बोला, "बालकालमें श्रीकृष्णजीने मृत्तिका खाई थी इसलिए, मैं यह मिट्टी प्रसादरूप आपके निकट लाया हूं!" उन्होंने कहा, "भोले भाई! बच्चे मिट्टी खाया ही करते हैं। सो कृष्णजीने भी खाई होगी, परन्तु तरुण मनुष्य तो मिट्टी नहीं खाते।"

वैसे तो स्वामीजीके स्थानपर उच्च कोटिके अनेक मनुष्य आया करते थे; कश्मीर राज्यके मंत्री श्री सन्तरामजीने भी उनके दर्शनोंसे लाभ उठाया था, परन्तु स्वामीजी महाराज जो चाहते थे वह यह था कि राजों महाराजोंकी सभा करके सब आर्य्योंमें एक धर्म्म और एकताका तागा परो दिया जाय। पर अनेक कारणोंसे इसमें सफलता न हो सकी।

भारतीय भूपालोंसे आशाको सफल न होते देख, एक दिन महाराजने अपने स्थानपर, भारतके भिन्न भिन्न मतों और जातीय विभागोंके नेताओंकी एक सभा बुलाई। उनके निमन्त्रणपर पंजाबके प्रसिद्ध सुधारक कन्हैयालालजी अलखधारी, श्रीयुत नवीनचन्द्र राय, श्रीयुत हरिश्चन्द्र चिन्तामणि, सर सय्यद अहमद, श्री केशवचन्द्रसेन और श्री इन्द्रमनजी, ये छः सज्जन वहां पधारे; उनमें सातवें श्री महाराज सम्मिलित हुए और सब मिलकर भारतके हितके साधनोपाय सोचने लगे। यह बात सहजसे समझमें आसकती है कि आर्य्यावर्तकी उच्च आत्माओंने, उस सम्मेलनमें भारतप्रजाके सुधार और निस्तारके अनेक साधन सोचे होंगे। परन्तु प्रसंगसे सम्बन्ध रखनेवाली बात यह है कि इस अभूतपूर्व सभामें, स्वामीजीने यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि हम भारत
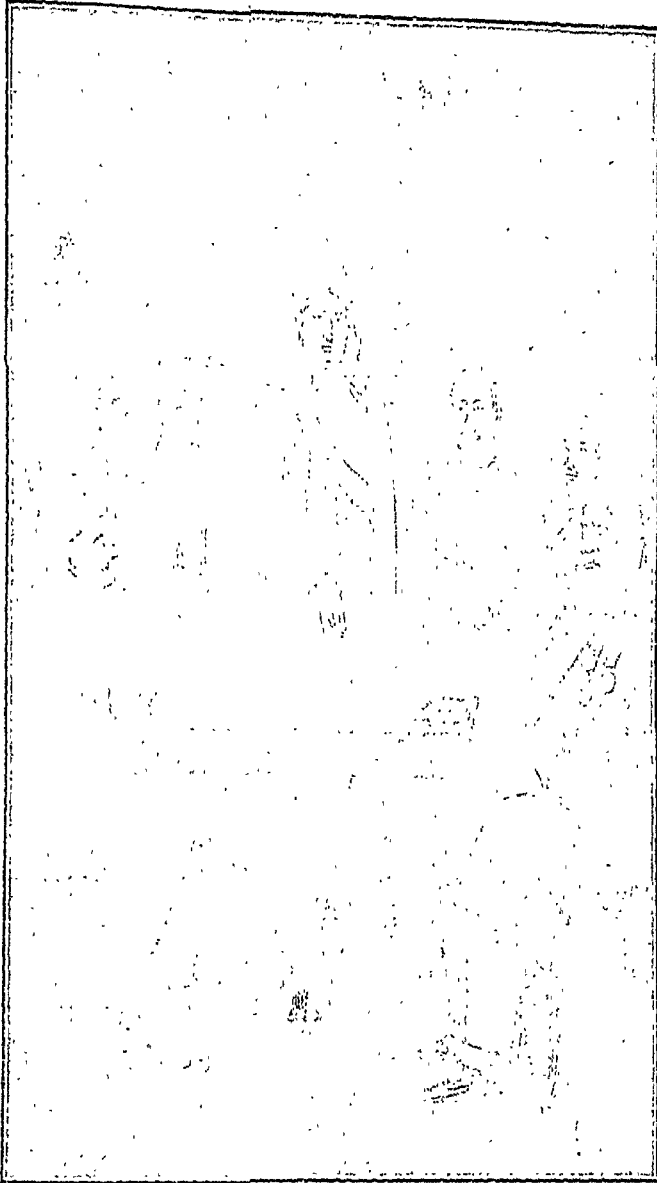
महाराणी विक्टोरियाके दिल्ली राज्याभिषेकके समय ऋषि दयानन्दका श्रीकेशवचन्द्र सेन,
सर सैय्यद अहमद, नवीनचन्द्र राय प्रभृति सुधारकोंके साथ देशोद्धार विषयपर वार्त्तालाप।

वासी सब, परस्पर एकमत होकर एक ही रीतिसे देशका सुधार करें तो आशा है, भारत देश सुधर जायगा।

उन्होंने श्री केशवचन्द्र सेन आदि सज्जनोंको यह भी कहा कि पृथक् पृथक् सभा स्थापन करनेके स्थान यदि हम मिलकर एकही धर्म्मका प्रचार करें तो बहुत ही अच्छा हो। परन्तु कई मौलिक मन्तव्योंमें मतभेद होनेके कारण वे सब एकताके सूत्रमें सम्बद्ध न हो सके।

स्वामीजीका एक सेवक राजों महाराजोंके डेरोंपर विज्ञापन बांटने जाया करता था। उसने स्वामीजीसे कहा, "महाराज! यदि आप ऊपरसे पौराणिक बनकर भारतके राजोंमें प्रचार करें तो आपको, अति अल्पकालहीमें, आशातीत सफलता प्राप्त हो जाय।" स्वामीजीने उसे भर्त्सना पूर्वक कहा, "मैं अमृतको विषमें मिश्रित करके देना नहीं चाहता। सचाईको छिपाना महापाप है। अन्त में सत्यहीकी जय हुआ करती है।"

दिल्लीमें श्री महाराजके दर्शनों और उपदेशोंसे पञ्जाबी सज्जन अतीव प्रसन्न हुए। उनके हृदयोंमें महाराजके लिए भक्तिभाव उत्पन्न हो आया। अपने प्रान्तवासियोंको भी, उस महापुरुषके दर्शनोंसे निहाल करानेके लिए एक दिन सरदार विक्रमसिंहजी आहलूवालिया, पण्डित मनफूलजी और श्रीयुत कन्हैयालालजी अलखधारी आदि सज्जनोंने श्री सेवामें जाकर प्रार्थनाकी कि भगवन्! पंजाबमें भी पधारकर उपदेश कीजिए। हमारे प्रान्तके लोग आपके उपदेश सुननेके लिए अतीव उत्कण्ठित हैं। श्री स्वामीजीने उनकी विनीत विनती को स्वीकार कर लिया और अनुकूल अवसरपर पधारनेका वचन दे दिया।

इसके पश्चात् श्री स्वामीजी दिल्लीसे प्रस्थानकर ६ जनवरी सन् १८७७ को भीमसेनसहित मेरठ पधारे और सूर्यकुण्डके निकट महताबसिंहजी की कोठीमें ठहरे। स्वामीजीके स्थानपर मिलने जुलनेवाले लोग बहुत आते थे। शङ्का समाधान भी होता रहता था।

उन दिनों स्वामीजी हुक्का पिया करते थे। एक दिन, एक पण्डितने उनसे

पूछा, "हुक्का पीना वेदमें कहां लिखा है ?" स्वामीजीने कहा, "वेदमें कहीं इस के पीनेका निषेध भी तो नहीं है ?" पण्डितने फिर कहा, कि आप संन्यासी होकर हुक्का पीते हैं। स्वामीजीने कहा, कि यदि आप हुक्केसे अप्रसन्न हैं तो लो मैं इसे परे फेंक देता हूं।

फाल्गुन वदी ७ सं० १९३३ को मेरठसे चलकर स्वामीजी सहारनपुर आ विराजे। उस समय उनके साथ पण्डित भीमसेनजी आदि कई विद्यार्थी थे। महाराजने अपना डेरा कन्हैयालालके शिवालयमें लगाया।

सहारनपुरमें चण्डीप्रसाद नामक एक सज्जनने स्वामीजीसे धार्म्मिक और सामाजिक अनेक प्रश्न पूछे, जिनका उन्हें सन्तोषजनक उत्तर मिल गया। उन्हीं प्रश्नोंमें चण्डीलालजीका एक यह भी प्रश्न था कि "भारतके लोग स्त्रियोंको इसलिए आवरणमें रखते हैं कि वे धर्म्मसे पतित न हो जायं। ईसाई लोग अपनी स्त्रियोंको पड़दा नहीं कराते और स्वच्छनन्दतासे भ्रमणके लिए ले जाते हैं। आर्या स्त्रियोंपर पड़दा होते भी वे आचारमें ईसाई स्त्रियोंसे अधिक गिर जाती हैं, इसका क्या कारण है ?" स्वामीजीने इसके उत्तरमें कहा "आर्योंमें पड़देकी रीति पुरातन नहीं है। यह मुसलमानोंके राज्यसे प्रचलित हुई है। नित्य नये उपद्रवोंसे अपनी बहू बेटियोंको बचाये रखनेके लिए, उस अत्याचारके युगमें, आर्य्योंने यह रीति चलाई थी। परन्तु अब मूढ़ लोग इसे धर्म्म मानने लगगये हैं।

स्वामीजीके प्रभावोत्पादक भाषण, चित्रगुप्तके मन्दिरमें होते थे। श्रोताओं-की संख्या इतनी होती थी कि कहीं तिल धरनेको स्थान न रहता था। जन संघट्टके मारे सांस घुटा जाता था। नगरके सभी प्रतिष्ठित सज्जन पञ्च और पुरोहित सुनने आते थे। महाराजके व्याख्यानोंमें इतनी चुपचाप होती थी कि कोई खांसतातक न था। सभी श्रोताजन भित्तिपर चित्रित चित्रसे बन जाते थे। स्वामीजी तीन तीन घण्टोंतक एकतार और एकरस बोलते चले जाते थे। उनके कथनमें इतना प्रभाव था कि लोगोंके मुखसे आप ही आप धन्य धन्य शब्द निकलने लगता था।

एक व्याख्यानमें स्वामीजीने 'कौन सुखी है और कौन दुःखी है' इसपर यह दृष्टान्त सुनायाः—

"किसी नगरमें एक धनाढ्य मनुष्य निवास करता था। उसपर अपराध-वश कोई अभियोग चल गया। राज द्वारमें उसके अभियोगके निर्णयके लिये जो तिथि नियत हुई थी, उसके कई दिन पहिले ही वह चिन्तासागरमें डूब गया। उसके सारे नौकर चाकर बड़ी प्रसन्नतासे खाते पीते और कामकाज करते थे।

अभियोगकी तिथि आनेपर उसको न्यायालयमें पहुंचानेके लिये एक पाल-की उपस्थित की गई। उसमें सुकोमल वस्त्र बिछा हुआ था और खसकी टट्टियां लगी हुई थीं। उसमें आरूढ़ होकर, वह धनी न्यायालयको गया, परन्तु उसके चित्तमें चिन्ताकी चिता प्रचण्ड हो रही थी। उसके मनमें सुखका नाम तक न था। उसके नौकर उस समय भी प्रसन्नतासे पालकी उठाये लिये जाते थे।" महाराजने इसका सार यह समझाया कि ऊपरके ठाठ बाट और ऋद्धि-समृ-द्धिमें सुख नहीं है। सुख तो मनकी सम अवस्थाओंमें रहता है।

सहारनपुरमें भी कुछ विरोधी लोग महाराजको कष्ट देनेका यत्न करते थे; इसीके कारण उनको डेरा भी उठाकर दूसरे स्थानमें ले जाना पड़ा।

तीसरा सर्ग।

जिस समय स्वामीजी सहारनपुर में धर्म्म-नाद गुंजा रहे थे उस समय, शाहजहांपुर से पांच कोसके अन्तरपर, चांदापुर ग्राममें ब्रह्ममेला मना-नेका उद्योग हो रहा था। इस मेलेकी नीव इस प्रकार पड़ी कि चांदापुर गांवमें पादरी लोग जाकर अपना प्रचार किया करते थे। वहांके भूमिहार कबीरपन्थी थे। उनको पादरी लोग कहते थे कि कबीरको छोड़कर क्राईस्टको मान लो; आपकी मुक्ति हो जायगी। कबीरपन्थी सन्त उनके साथ वादविवाद भी किया

करते थे। परन्तु श्रीयुत प्यारेलाल आदि प्रतिष्ठित भूमिहारोंने इस बखेड़ेको निपटानेके लिये पादरियोंकी सम्मतिसे एक मेला लगाया। उसमें मौलवी भी निमन्त्रित किये गये। पादरियों, मौलवियों और कबीरपन्थियोंमें ईश्वर आदि विषयोंपर वादविवाद होता रहा।

मेलेकी समाप्तिपर चाँदापुरके चारों ओर यह प्रसिद्ध होगया कि "मेलेमें कबीर-पन्थियोंकी भारी हार हुई है और मुसलमान जीत गये हैं।" श्री प्यारे-लालके भाई, श्री मुक्ताप्रसादजी लेनदेनके व्यवहारमें आसपासके गाँवमें जाया करते थे। मेलेके पश्चात्, वे जिस ग्राममें जाते वहांके मुसलमान उनको कहते, "अब तो आपने इसलामकी सचाई देख ली है, फिर इसलामको स्वीकार क्यों नहीं करते हो? आपके कबीर पन्थमें पड़ा ही क्या है।"

लोगोंकी नित्यकी छेड़छाड़ और चिढ़ानेसे श्रीमुक्ताप्रसादजीने मन ही मन स्थिर कर लिया कि अबके वर्ष किसी ऐसे विद्वान्‌को बुलायँगे, जो मुसलमानी मतको अच्छे प्रकार जानता हो और मौलवियोंको वादमें नीचा दिखाकर हमारे पिछले सारे धब्बेको धो जाय।

एक समीपस्थ ग्रामवासीने उनको बताया कि इस समय आर्योंमें मुसल-मानी मतके मर्मको जानने वाले इन्द्रमनजी मुरादाबादी हैं। उनके आनेपर आपकी निश्चय ही जीत होगी।

इस विषयपर, श्रीमुक्ताप्रसादजीने श्रीइन्द्रमनजीसे पत्र-व्यवहार किया। इन्द्रमनजीने उनको उत्तरमें लिखा, "मैं तो आ जाऊंगा, परन्तु इस समय भारतभरमें वेद-शास्त्रके अद्वितीय विद्वान् श्रीदयानन्दजी महाराज हैं। उनके सामने कोई भी मतवादी ठहरने नहीं पाता। यदि आप अपने विजयके निश्च-यको सर्वथा सुनिश्चित बनाना चाहते हैं तो उनको अवश्य बुलाइये।"

इन्द्रमनजीके पत्रसे पहले, इस छोटेसे गाँवके अधिवासियोंने, महाराजका नाम भी न सुना था; उन्होंने इन्द्रमनजीसे उनका पता पूछकर, सहारनपुरमें पत्रोंद्वारा उनसे प्रबल प्रार्थना की कि आप चाँदापुर पधारकर हमारी डगमगाती

नौकाके नाविक बनें। उन्होंने महाराजके मार्गव्ययका भी प्रबन्ध कर दिया।

श्रीस्वामीजी चाँदापुरवासियोंको प्रोत्साहनका पत्र भेजकर आप भी दो एक सेवकोंसहित उसी ओर चल पड़े। शेष सेवकोंको उन्होंने सहारनपुरहीमें रह-नेका आदेश दिया। स्वामीजी पालकीमें चाँदापुर पहुंचे। उस समय उनके साथ श्रीइन्द्रमनजी भी थे। स्वामीजीने गाँवमें रहना स्वीकार न किया। मेलेके स्थानपर ही एक स्वच्छ और उत्तम तम्बूमें उनका डेरा कराया गया। यह स्थान ग्रामसे कोई आधा कोस दूर गर्रा नदीके किनारे था। वहाँ उस समय कबीर-पन्थियोंका एक छोटासा आश्रम भी था मेलेका स्थान यद्यपि नदी तटपर था। फिर भी यात्रियोंके आरामके लिये सात कूंये नये खुदवाये गये थे।

१९ मार्चको मेला भरने लगा। मौलवी और पादरी अपने दल-बल-सहित बड़ी धूमधामसे उसी तिथिको वहाँ पहुंच गये। दर्शकोंकी संख्या भी पचास सहस्रसे ऊपर थी।

रातके समय, श्री इन्द्रमनजीने कुछ भीत ध्वनिमें स्वामीजीकी सेवामें आ-कर कहा, "महाराज! मौलवियोंकी मण्डली आ पहुंची है। मेलेमें दर्शक मुस-लमानोंकी संख्या भी बहुत बड़ी होगी। ये लोग झटपट भड़क उठते हैं, इस लिये आप वादके समय, अति कोमल शब्दोंहीसे काम लीजियेगा।"

स्वामीजीने उत्तर दिया, "असत्यका सम्भाषण और समर्थन करना मेरे लिये असम्भव है। सत्य मेरा बनाया हुआ नहीं है। वह सनातन है और ईश्वरका है। उस सत्यको यथावत् प्रगट करनेमें मैं किसीसे, किंचिन्मात्र भी भयभीत नहीं होता। आप भी न डरिये। मेरे होते कोई भी ऐसा माईका लाल नहीं जो आपका बाल भी बाँका कर सके।"

२० मार्चको सवेरे साढ़े सात बजे पण्डित, मौलवी और पादरी सभी सभा मण्डपमें आये और यथायोग्य कुर्सियोंपर बैठ गये। बातकी बातमें वह विशाल मण्डप दर्शकोंसे ठसाठस भर गया। उस समय, श्री मुक्ताप्रसादजीने अपने

भाई प्यारेलालजीकी ओरसे निम्नलिखित पांच प्रश्न सब धर्म्मावलम्बियोंके आगे रखकर उनका उत्तर माँगाः—

१, सृष्टिको ईश्वरने किस वस्तुसे, कब और क्यों रचा ? २, ईश्वर सर्व-व्यापक है अथवा नहीं ? ३, ईश्वर न्यायकारी और दयालु किस प्रकार है ? ४, वेद, बाइबल और कुरानके ईश्वर-वाक्य होनेमें क्या युक्ति है ? ५, मुक्ति क्या वस्तु है और किस प्रकार प्राप्त हो सकती है ?

मुक्ताप्रसादजी जब प्रश्न उपस्थित करके बैठ गये तो थोड़ी देर, इस बात-पर ही झगड़ा होता रहा कि पहले कौन बोले। अन्तमें पादरी स्काट महाशय उठे और प्रथम प्रश्नपर कहने लगे कि यद्यपि, यह निकम्मा प्रश्न है; मेरी सम्मतिमें इसपर बोलना समयही गँवाना है, तथापि इसका उत्तर देता हूं। पादरी महाशयके उत्तरका सार यह था कि ईश्वरने सृष्टिको नास्तिसे बनाया है। उसके बनानेके बरसोंका हमें ज्ञान नहीं। संसारके सुखके लिये सृष्टि रची गई है।

फिर पहले प्रश्नपर मौलवी महाशयने कहा कि ईश्वरने सृष्टिको अपने स्वरूपसे बनाया है। कब बनाया यह प्रश्न व्यर्थ है। हमें रोटी खानेसे प्रयोजन है, न कि यह कब पकी थी, इससे। सारी वस्तुयें ईश्वरने मनुष्यके लिये रची हैं और मनुष्यको अपनी स्तुति करनेके लिये निर्माण किया है।

अपने अपने कथनमें पादरी और मौलवी एक दूसरेको कटुवचन कहते रहे थे, इस लिये जब श्री स्वामीजी महाराजने बोलना आरम्भ किया तो सबको सम्बोधन करके बोले, "यह मेला सत्यकी जिज्ञासासे लगाया गया है। यह सबको निश्चय पूर्वक जानना चाहिये कि विजय सत्यकी ही हुआ करती है। परस्पर पादरीको अथवा मौलवीको मिथ्यावादी और झूठा कहने से जीत नहीं हो सकती। हम सबका यह कर्तव्य कर्म्म है कि परस्परके मेल-मिलापसे असत्यका खण्डन और सत्यका मण्डन करें। सत्यासत्यके निर्णयके लिये वैर विरोध छोड़कर सम्बाद करना विद्वानोंका धर्म्म है। कठोर और कटुवचन बोलना सभ्याचारके सर्वथा प्रतिकूल है।"

पहले प्रश्नके उत्तरमें महाराजने कहा, कि "सृष्टिको परमात्माने अव्यक्त प्रकृतिसे बनाया। वह परमाणुरूप प्रकृति जगत्का उपादान कारण है और आदि तथा अन्तसे रहित है। अभावसे किसी वस्तुका भाव नहीं हो सकता। जैसे गुण कारणके होते हैं वैसेही कार्य्यके भी हुआ करते हैं। इस लिए यदि जगत्का कारण नास्ति मानें तो कार्य्यको भी नास्तिरूप ही मानना पड़ेगा।"

महाराजने यह भी कहा, "यदि, यह माना जाय कि ईश्वरने सृष्टिको अपने स्वरूपसे रचा है तो जगत् भी ईश्वररूपही सिद्ध होगा। जैसे घड़ा मिट्टीसे पृथक् नहीं हो सकता, ऐसेही जगत् और ईश्वर भी एक ही ठहरेंगे। फिर तो चोर, हत्यारा और पापात्मा होनेका आरोप परमात्मापर ही हो जायगा। इस लिए जो लोग जगत्के कारण प्रकृतिको परमात्मासे पृथक् नहीं मानते उनका मत प्रमाण-प्रतिकूल और युक्तिशून्य है।

सृष्टि कब बनी, इसका उत्तर भी अन्यमतावलम्बियोंके पास नहीं है। हो भी कैसे ? जब कि किसी मतको चले अठारह सौ, किसीको तेरह सौ, किसीको सातसौ और किसीको पांच सौ वर्ष बीते हैं। इसका उत्तर तो हम आर्य्य लोग ही दे सकते हैं। क्योंकि हमराही धर्म्म सृष्टिके आदिमें प्रवृत्त हुआ है।

युगोंका व्योरा वर्णन करते हुए महाराजने कहा कि प्रत्येक शुभ कर्ममें आर्य पण्डित जो सङ्कल्पका पाठ उच्चारण करते हैं, उसमें सृष्टिके आदिसे आज तकके वर्षों, मासों, दिनों और तिथियोंकी गणना विद्यमान है। इस सङ्कल्पके साथ आर्य्यजन सृष्टिके जन्मके इतिहासको अनविच्छिन्न रूपसे ले आये हैं।"

सृष्टिके रचनेका प्रयोजन वर्णन करते हुए श्रीमहाराजने कहा, "जीव और जगत्का कारण, स्वरूपसे अनादि हैं और कार्य्य जगत् तथा जीवोंका कर्म्म प्रवाहसे अनादि हैं। जब सृष्टिका प्रलय होजाता है तो उस समय भी जीवोंके कुछ कर्म्म शेष रह जाते हैं। उन कर्म्मोंका फल-भोग प्रदान करनेके लिए न्यायकारी ईश्वर सृष्टिकी रचना करता है।

सृष्टिको रचनेकी शक्ति ईस्वर में स्वाभाविक है। उसने अपने सामर्थ्यसे

इस लिये सृष्टि निर्माण की है कि लोग धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्षको सिद्ध करके सुख उपलब्ध करें।"

जब महाराजने अपना कथन समाप्त किया तो उनके पक्षपर मौलवियों और पादरियोंने कुछ शङ्कायें कीं, जिनका उन्होंने उसी समय सन्तोषजनक समाधान कर दिया।

महाराजके उत्तर देते समय सारी सभामें सन्नाटा छा रहा था। सभी जन प्रभावित हो रहे थे। ये सब बातें उस सभाके लोगोंने पहले सुनी ही न थीं। उनको यह भी ज्ञान न था कि आर्य्य धर्म्ममें भी कोई ऐसा वीर हो सकता है, जो दूसरे मतवादियोंको जीतकर दिखाये। इस लिए, दर्शक लोग आश्चर्य्य मय हो जाते थे। आर्य दर्शकोंके हृदय तो प्रसन्नता देवीके क्रीड़ा-केतन बन रहे थे। उस समय, सर्वत्र श्रीस्वामीजीका ही यशोगान होता था।

दिनके ग्यारह बजे कार्य्यवाही समाप्त हुई। सभी मतोंके प्रतिनिधि अपने अपने तम्बुओंमें चले गये। फिर दोपहरके पश्चात् एक बजे सभा लगी और सबने मिलकर यह स्थिर किया कि समय बहुत अल्प है, अन्य विषयोंको छोड़ कर केवल मुक्तिपर ही विचार किया जाय। पर उस समय पादरियों और मौलवियोंमेंसे कोई भी पहले बोलना न चाहता था। उनको यह भ्रम हो गया था कि सवेरे हमारा पक्ष इसी लिए निर्बल सिद्ध हुआ कि हम पहले बोले थे।

जब कोई भी न उठा तो महाराजने उठकर कहा, "मुक्ति छूट जानेका नाम है। जितने भी दुःख हैं उनसे छूटकर सच्चिदानन्द परमात्माकी प्राप्तिसे सदानन्दमें रहना और फिर जन्म-मरणमें न गिरना मुक्ति है।"

"मुक्तिका पहला साधन सत्याचरण है, दूसरा वेद-विद्याका ठीक रीतिसे लाभ करना और सत्यका पालन करना है। तीसरा सत्पुरुषों और ज्ञानी जनोंका सत्संग करना। चौथा योगाभ्यासद्वारा अपनी इन्द्रियों और आत्माको असत्यसे निकालकर सत्यमें स्थापन करना। पांचवां ईश्वरकी स्तुति करना, उसकी कृपाका यश वर्णन करना और परमात्मकथाको मन लगाकर सुनना। और छठा साधन

प्रार्थना है। प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिए, हे जगदीश्वर कृपानिधे! हमारे पिता! मुझे असत्‌से निकालकर सत्‌में स्थिर करो। अविद्यान्धकार और अधर्म्माचरणसे पृथक् करके ज्ञान और धर्म्माचरणमें सदाके लिए स्थापन करो। जन्म-मरणरूप संसारसे मुक्त कर अपनी अपार दयासे मोक्ष प्रदान करो।"

"प्रार्थनाका फल यह है कि जब कोई जन अपने सच्चे मनसे, अपने आत्मासे, अपने प्राणसे, अपने सारे सामर्थ्यसे परमेश्वरका भजन करता है तब वह कृपामय परमात्मा उसको अपने आनन्दमें निमग्न कर देता है। जैसे छोटा बालक, घरकी छत्तपरसे अथवा नीचेसे, अपने मातापिताके पास जाना चाहता है तो उसके मां बाप, इस भयसे कि कहीं हमारे प्रिय पुत्रको इधर उधर गिर पड़नेसे कष्ट न हो अपने सहस्रों कामोंको छोड़, दौड़कर उसे गोदमें उठा लेते हैं, ऐसे ही परम कृपानिधि परमात्माकी ओर यदि कोई सच्चे आत्मभावसे चलता है तो वह भी अपने अनन्त-शक्तिमय हाथोंसे उस जीवको उठाकर सदाके लिये अपनी गोदमें रख लेता है। फिर उसको किसी प्रकारका कष्ट क्लेश नहीं होने देता और वह जीव सदा आनन्दहीमें रहता है। परमात्मा मातापिताकी भांति अनेक भक्तोंको सदा सुखसम्पन्न करनेकी ही कृपा करताहै।"

इस प्रकार, महाराजने नाना युक्तियोंसे अलंकृत भाषण किया। फिर कुछ परस्पर समालोचनाके अनन्तर सायंकालका कार्य समाप्त होगया।

यद्यपि स्वामीजीके कथनानन्तर दूसरे मतवादी भी बोले, परन्तु उनके कथनमें लोगोंको कुछ भी तो रस नहीं आता था। जैसे सूर्य्यके सामने दीपककी ज्योति मन्द पड़ जाती है, ठीक ऐसी ही अवस्था स्वामीजीके सम्मुख अन्य मताभिमानियोंकी हो गई।

२१ मार्चको पादरी महाशयतो सवेरे ही वहांसे चले गये। मण्डपमें किसीने यों ही झूठ मूठ घोषणा करदी कि मेला समाप्त हो गया है। स्वामीजीने बहुतेरा बल लगाया कि यह मेला न्यूनसे न्यून पांच दिवसतक तो होना चाहिए, परन्तु मौलवी और पादरी ताड़ गये थे, इसलिए मेला बिखर ही गया।

मेलेकी समाप्तिपर, बहुतसे पादरी सज्जन श्री स्वामीजीके पास मिलापार्थ पधारे। महाराजने उनका अत्यादरसे स्वागत किया और फिर कुर्सियोंपर बैठकर, विविध धार्मिक विषयोंपर, वार्त्ताविनोद करने लगे।

एक पादरीने मनोरञ्जनकी रीतिमें स्वामीजीसे कहा, "पण्डितजी! हम भी आर्य्य हैं।" स्वामीजीने मुस्कराकर उत्तर दिया "महाशय! आप सभ्य तो अवश्य हैं, परन्तु आर्य नहीं हैं।" कारण पूछनेपर उन्होंने कहा, "आर्य्य कहते हैं श्रेष्ठ धर्म्मात्माको। आपकी मान्य पुस्तक आपको श्रेष्ट धर्म्मात्मा नहीं बताती।

एक बार श्री ईसाके शिष्योंने उनसे पूछा था कि आप अन्धों और कोढ़ियों को चङ्गा कर देते हैं, परन्तु हम क्यों नहीं कर सकते? उत्तरमें ईसाने कहा कि तुममें राई जितना भी विश्वास नहीं है! जब गुरुके सामने ही शिष्योंमें राई जितना विश्वास न था तो आज आपमें कैसे हो सकता है?" महाराजके इस कथनको सुनकर पादरी महाशयने मूकभाव धारण कर लिया।

वार्त्तालापके प्रसंङ्गमें, स्वामीजीने उनको यह भी कहा, "हमने बाइबलका आद्योपान्त पाठ किया है। उसमें ईसाने कहीं भी नहीं कहा कि यदि मुझपर विश्वास लाओगे तो तुम्हारी मुक्ति होगी। यह केवल पादरियोंकीही कल्पनाहै।"

विदाईके समय, पादरियोंने उनके मिलापपर बड़ी प्रसन्नता प्रगट की और वे उनके विस्तृत ज्ञानका गुण गान करते हुए चले गये।

एक दिन स्वामीजीने श्री प्यारेलालजीसे भुने हुए चने मंगाए। उस समय श्री इन्द्रमनजीने कहा, "स्वामीजी! चनोंमें घुन हुआ करता है। चने भुननेपर भाड़में वह भी भुन जाता है।"

उन्होंने उत्तर दिया कि "गेहूंमें भी तो घुन हुआ करता है और दानोंके साथ ही चक्कीमें पिस जाता है, तो क्या आप आटा फेंकवा दिया करते हैं?" इसपर इन्द्रमनजी अवाक् होगये।

श्रीयुत प्यारेलालजीको निश्चय था कि स्वामीजी केवल सभाको जीतनेवाले

पण्डित ही हैं। योगविद्यामें इनकी गति नहीं है। वे हमारे कबीरपन्थियोंकी भाँति सन्त भी नहीं हैं। एक दिन, प्यारेलालजी श्री सेवामें गये और परीक्षार्थ प्रश्न किया कि अजपा जाप क्या है? स्वामीजीने कहा कि अजपा जाप तो सब में निरन्तर होता रहता है। उसको सुननेके लिए कुछ दिन साधन करना चाहिए। फिर प्यारेलालजीने कहा—हमारे मतमें लिखा है, सोते समय सांस शब्दरूप होकर अनहत नादमें मिल जाता है। महाराजने उत्तर दियो कि यह बात अनुभवविरुद्ध है इसलिए असत्य है। कालान्तरमें अधिक अभ्यास करने पर प्यारेलालजीको स्वामीजीके परम योगी होनेका पूर्ण विश्वास हो गया।

एक दिन, बक्षीरामजी मुरादाबादी और श्री इन्द्रमनजी स्वामीजीके निकट बैठे हुए बातें कर रहे थे। उस समय, श्री महाराजने उनको अपनी बीती कथा सुनाई, "जिन दिनोंमें मैं एकाकी घूमता था, उन दिनोंमें मेरा एक ऐसे स्थानपर जाना हुआ जहाँ सभी शाक्त बसते थे। उन्होंने मेरी बड़ी सेवा शुश्रूषा की। जब कई दिनके निवासके अनन्तर, मैं वहाँसे चलने लगा तो उन लोगोंने अत्याग्रहसे मुझे ठहरा लिया। मैं समझता रहा कि वे भक्तिभावसे मुझे ठहराते हैं। ऐसे ही बहुत दिन बीत जानेपर उनका पर्वदिन आ गया। उस दिन सारे शाक्त, देवीके मन्दिरमें एकत्र होकर गीत गाने लगे। उस दिन, उन्होंने मुझे भी कहा कि आज हमारे मन्दिरमें महोत्सव है, आप वहाँ अवश्य चलिये। मैंने बहुत समझाया कि देवीके दर्शनोंमें मेरा निश्चय नहीं, परन्तु वे एक न सुनते थे। पाँव पकड़कर कहने लगे कि यदि आज वर्षके दिन आप मन्दिरमें न पधारेंगे तो हमारा सारा उत्साह भङ्ग हो जायगा। आप मूर्तिको नमस्कार आदि कुछ भी न करना, परन्तु हमारे लिये चले तो चलिये।"

"वह मन्दिर, नगरसे बाहर एक उजाड़ स्थानमें था। उनके विवश करनेपर मुझे उस मन्दिरमें जाना पड़ा। उस समय वहाँ, आँगनमें होम हो रहा था। और लोग उत्सव मना रहे थे। मुझे वे दुर्गाकी मूर्ति दिखलानेके बहाने भीतर

ले गये। मैं सहज स्वभावसे दुर्गाकी प्रतिमाके सन्मुख जा खड़ा हुआ। मूर्तिके पास ही एक बलिष्ठ व्यक्ति नङ्गी तलवार लिये खड़ा था।

वहाँ, वे लोग मुझे कहने लगे कि 'महात्माजी! माताके आगे झुककर नमस्कार अवश्य कीजिये।' मैंने उनको स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि मुझसे ऐसी आशा करना दुराशा मात्र है। मेरे वचनोंसे पुजारी चिढ़ गया और पास आकर, मेरी ग्रीवाको पकड़कर मेरे सिरको नीचा करने लगा। उसके इस वर्तावसे मैं चकित हो गया, परन्तु ज्यों ही मैंने दृष्टि फिराई तो क्या देखता हूं कि वह खड्गधारी मेरे पास आ गया है और मेरी ग्रीवापर खड्ग बरसाना ही चाहता है!!

इस दृश्यको देखकर मैं तुरन्त सावधान हो गया। मैंने झपटकर उसके हाथसे खड्ग छीन लिया। पुजारी तो मेरे बायें हाथके एक ही धक्केसे मन्दिरकी दिवालसे जा टकराया। मैं तलवार लिये मन्दिरके आँगनमें आ गया। उस समय आँगनके सभी लोग कुल्हाड़ा, छुरी आदि शस्त्र लेकर मुझपर टूट पड़े। द्वारकी ओर देखा तो उसको ताला लगा हुआ था। अपने आपको बलिदानसे बचानेके लिये, मैं उछलकर दिवालपर चढ़ गया और परलेपार कूदकर भाग निकला। उस स्थानके समीप ही एक वन था। दिनभर तो मैं वहाँ छुपा बैठा रहा; परन्तु जब रातका राज्य विस्तृत हो गया तो रातोरात ग्रामान्तरमें जा पहुंचा। उस दिनसे मैंने शाक्त लोगोंका कभी भी विश्वास नहीं किया।"

उस समय महाराजने दोनों सज्जनोंको यह भी सुनाया, "एक बार गवर्नर जनरल महोदयसे भी मुझे मिलनेका अवसर मिला। मुझे मिलकर उन्होंने अति प्रसन्नता प्रकट की और मेरे विचारोंको बड़े सम्मानसे सुना। मेरी विपत्तियोंकी कहानी सुनकर उन्होंने आश्चर्य और खेद, दोनों प्रकाशित किये। चलते समय मुझे कहने लगे, "यदि आप चाहें तो आपकी रक्षाके निमित्त कुछ सैनिक नियत किये जाँय और भ्रमणमें कष्ट न हो, इस लिये रेलके प्रथम दर्जेका आपको पास मिल जाय।" मैंने इनकी सहानुभूति और उदारताका

धन्यवाद किया और कहा कि मैं आपकी इस सहायताको स्वीकार नहीं कर सकता। इसे स्वीकार करनेपर लोग, मुझे राजनौकर अथवा ईसाई धर्म्मका नौकर समझने लग जायेंगे। उन्होंने कहा, "क्या आप राजनौकरी को बुरा समझते हैं ?' इसपर मैंने उत्तर दिया कि मैं संन्यासी हूं और सच्ची सरकार—परमेश्वरका—नौकर होगया हूं। उसीपर भरोसा रखता हूं। इस लिये किसी मनुष्यकी नौकरी करना मैं अपने लिये अच्छा नहीं समझता। मुझसे फिर पूछा गया, "क्या आप वर्तमान सरकारको सच्ची नहीं मानते ?' मैंने कहा कि सच्चीसे मेरा तात्पर्य न परिवर्त्तन होनेवालीसे है, सो ऐसा एक ईश्वर ही है। उसका नियम अटल और न्याय निर्भ्रान्त है। मनुष्योंके न्याय और नियम तो समयानुसार बदलते ही रहते हैं। लाट महोदय मेरी बातोंसे बहुत ही प्रसन्न हुए।"

चाँदापुरसे स्वामीजी अतिसम्मानपूर्वक बिदा होकर शाहजहाँपुरसे रेल गाड़ीमें बैठ, सहारनपुर आये और राम-उद्यानमें ठहरे। उस उद्यानहीमें उनके चित्ताकर्षक भाषण होते थे।

चौथा सर्ग।

वैशाख वदी २ सं० १९३४ को सहारनपुरसे प्रस्थान कर श्री महाराजने लुध्याना नगरको शोभा प्रदानकी। पञ्चनदप्रक्षालित पवित्र प्रान्तमें, ऋषि मुनियोंके पुरातन निवासस्थानमें और वीर-सन्तति-सङ्कुल भूभागमें, श्री परमहँसजीका यह पहली ही बार पदार्पण था। लुध्यानामें, वे नगरसे पौन कोसके अन्तरपर लाला वंसीधरके उद्यानमें ठहरे। उस समय उनके साथ दस बारह कर्म्मचारी थे। स्वामीजी पण्डितोंसे वेदभाष्य लिखवाते थे।

वैशाख वदी द्वितीया सम्वत् १९३४ को महाराजका पहला उपदेश श्रीयुत जटमल खजानचीके आवासमें हुआ। व्याख्यानके आरम्भहीमें महाराजने घोषणा

कर दी कि यहाँ सात व्याख्यान होंगे। बीचमें कोई प्रश्नादि न करे। आठवें दिन केवल शङ्का-समाधानही होगा। उस दिन सभी स्वतंत्रतासे प्रश्न पूछ सकेंगे।

उनके सातों व्याख्यानोंमें सहस्रों मनुष्य आये और अतीव प्रभावित होकर गए। एक दिन, पादरी वेरी महाशय, अपने साथियों सहित स्वामीजीकी सेवा में आये। वार्त्तालापके प्रसंगमें उन्होंने कहा कि श्रीकृष्णजीके जो कर्म लोग वर्णन करते हैं उनसे उनका महात्मा होना बुद्धि नहीं मानती। स्वामीजीने उत्तर दिया कि श्रीकृष्णजीपर जो दोष लगाये जाते हैं वे सब मिथ्या और निर्मूल हैं; परन्तु बुद्धिके न माननेके विषयमें क्या कहा जाय? बुद्धि जब यह स्वीकार कर लेती है कि परमेश्वरकी आत्मा कबूतरके स्वरूपमें एक मनुष्यपर उतरी तो श्रीकृष्णकी लीला स्वीकार करनेमें उसे क्या कठिनाई है?

एक पादरी महाशयने पुनर्जन्मपर प्रश्न किये। इनका उत्तर देते समय स्वामीजीने उनसे पूछा, "खाना, पीना, सुनना, देखना आदि कर्म देहधारीमें होते हैं अथवा देहरहितमें?' पादरीने कहा, 'ये सारे कर्म देहधारीमेंही होते हैं।'

फिर महाराजने उनसे पूछा, 'एक देहको छोड़कर दूसरी देहको धारण करना ही पुनर्जन्म है?' पादरी महाशयने कहा, "हाँ, यही पुनर्जन्म है।' तब स्वामीजीने कहा, "आपने मान लिया कि खान पान आदि कर्म देहधारीमें होते हैं और एक देहको छोड़कर दूसरी देहको धारण करना पुनर्जन्म है। अब आपको मान लेना चाहिये कि मनुष्यदेह छोड़कर, जो लोग ईसाई धर्म्मके स्वर्गमें नाना भोगोंको भोगते हैं उनका वहाँ पुनर्जन्म होता है।" यह सुनकर ईसाई महाशय चुप्प हो गये।

रामशरण नामक एक ब्राह्मणवंशीय व्यक्ति ईसाई लड़कियोंके स्कूलमें नागरी पढ़ाता था। उसकी आर्थिक अवस्था अति दीन थी। वह पादरियोंका नौकर तो था ही, अन्तमें, उन्होंने उसे एक चकमा दिया कि वह ईसाई बननेके लिये समुद्यत हो गया।

मेल-मिलाप वालोंकी प्रेरणासे, एक दिन रामशरण भी श्री उपदेश सुनने

आया। व्याख्यानके पश्चात्, श्रीमहाराजने ईसाई धर्म्मकी भूलभरी बातोंको बताकर उसे इस प्रकार समझाया कि वह ईसाई बननेसे बच गया।

भूतप्रेतके भ्रमका खण्डन करते हुए एक दिन, महाराजने खेल दिखाया। जिस आवासमें वे रहते थे उसके तीन द्वार और दो ताक थे। उन्होंने उन दोनों ताकोंमें दीपक जलाकर आमने सामने रख दिये। फिर उनमेंसे एक दीपक बुझा दिया और दूसरेको बुझा देनेका आदेश किया। जिस समय दूसरा दीपक बुझाया गया तो तत्काल पहला दीपक अपने आप जल उठा। इस प्रकार एक दीपक के बुझानेपर दूसरेके अपने आप जल उठनेके खेलको लोग बड़ी देरतक देखते रहे। दर्शकोंको आश्चर्य भी होता था कि बीस पच्चीस हाथके अन्तरपर रखे हुए इन दीपकोंमें यह कैसा चमत्कार हो रहा है। खेल हो चुकनेके पश्चात् महाराजने कहा कि जो कुछ आपको दिखाया गया है वह विद्याकी बात है। भूत प्रेत कोई वस्तु नहीं है। उनका भ्रम न किया करो।

लुध्यानेमें श्रद्धाराम फिलौरी आदि कुछ पण्डित दूर दूर बैठे स्वामीजीके विरुद्ध अण्डवण्ड बोला करते, परन्तु उनके सामने आनेका साहस नहीं कर सके।

एक ब्राह्मण स्वामीजीके निकट आकर संस्कृतमें बात करने लगा। महाराजने, थोड़ी देरतक उससे संस्कृतमें बातचीत करनेके अनन्तर कहा, "अब तो आपको ज्ञात हो गया होगा कि मैं संस्कृत जानता हूं, अब भाषामें बातचीत कीजिये, जिससे पास बैठे, दूसरे सज्जन भी कुछ समझ सकें।"

एक पण्डितने अपने साथियोंको कहा, "ऐसे दुष्टका मुख देखना अधर्म है। चलो यहांसे उठ चलें।" इस बातको सुनकर स्वामीजीने कहा, "मेरा मुख देखनेसे यदि आपको घृणा है तो पीठ पीछे खड़े हो जाइए, परन्तु मेरे कथनको अवश्य सुनिये।

उन दिनों, श्रीमान् कार-स्टीफन महाशय वहां जज थे। वे स्वामीजीको मानते थे। उनके उपदेशोंमें भी आया करते थे और चरण छूकर उनको नमस्कार किया करते थे। उनकी विनीतिवश, श्री महाराज लुध्यानेसे प्रस्थान करने

के समय, श्री कन्हैयालालजीके साथ उनके बंगलेपर पधारे। कार-स्टीफन महाशयने बड़े आदरसे उनका स्वागत किया और विदाईके समय कुछ द्रव्य लिफाफेमें बन्द करके, श्रीचरणोंमें भक्तिभावसे भेंटस्वरूप रखकर नमस्कार किया।

लुध्याना-निवासियोंके हृदयोंमें धर्म्मांकुर उत्पन्न करनेके उपरान्त श्रीमहाराज वैशाख सुदी ६ सम्वत् १९३४ को वहांसे प्रस्थानकर लाहौरमें सुशोभित हुए। पण्डित मनफूलजी आदि सज्जनोंने रेलवे स्टेशनपर उनका स्वागत किया और उनको अति सन्मानसे लाकर श्रीमान् रत्नचन्द्रजी डाढ़ीवालाके उद्यानमें ठहराया। उस समय स्वामीजीके साथ इतने ग्रन्थ थे कि एक चौपहिया गाड़ीमें, केवल वे ही लादकर लाये गये।

स्वामीजीके पधारनेका समाचार पाकर लाहौरवासी भद्रजन सत्संगके लिए उनके उतारेपर आने लगे। उनके उपदेशोंका अत्युत्तम प्रभाव पड़ता था। महाराजका पहला व्याख्यान वैशाख सुदी १३ को बावलीसाहबमें बड़े समारोहसे कराया गया। सायंकालके ६ बजे वेद विषयपर व्याख्यान आरम्भ होना था, परन्तु सभास्थान नियत समयसे बहुतही पहले भरपूर होगया था। सहस्रों मनुष्योंकी भीड़ थी, दलोंके दल उमड़े चले आते थे। महाराजने अत्युत्तम रीतिसे विषयका वर्णन किया और श्रोताजन बड़े प्रभावित होकर घरोंको लौटे।

महाराजने, बावली साहबमें दूसरा व्याख्यान, वैसाख पूर्णमासी सम्वत् १९३४ को दिया। इसमें सुनने वालोंकी संख्या और भी अधिक थी। महाराजके वचन, बिजलीकी भांति, पंजाबियोंके अन्तःकरणोंमें संचार करते जाते थे। आवेशमें आकर लोग फड़क उठते थे। इस अदृष्टपूर्व महापुरुषके दर्शनोंसे उसके अश्रुतपूर्व उपदेशोंसे और अननुभूत उपदेशप्रभावोंसे लोग इतने मोहित हुए कि जहाँ सुनो श्री स्वामीजीके ही गुणकीर्त्तन हो रहे थे। समाचारपत्र भी उन्हींका अनुराग-राग अलापते थे। कई सज्जनोंने अपने ठाकुर रावी-धाराशायी कर दिये।

बावली साहबके उपदेशोंमें, प्रसंगानुसार उन्होंने आप बीती तीन बातें

सुनाई थीं। एक तो यह कि एक बार मैं गङ्गा-तीरपर विचरता हुआ एक निविड़ सघन वनमें जा निकला। वहां मुझे सामने आता एक सिंह दृष्टिगोचर हुआ। मैं सीधा चलता हुआ जब उसके पास पहुंचा तो वह सिंह मेरी ओर देख, मुंह फिराकर जङ्गलमें चला गया।

दूसरी घटना यह थी—एक बार मैं एक पर्णकुटीमें आसन रमाये बैठा था। उसके पास ही कुछ साधु रहते थे। वे अकारण ही मेरे द्वेषी बन गये। जब महाकाली निशा, आकाशकी निविड़ कालिमाके साथ एकाकार हो रही थी तो वे साधु मुझे मार मिटानेके लिए मेरी कुटियापर आये और वधकी विधि सोचने लगे। उनकी बातें मुझे सुनाई पड़ती थीं। थोड़ी देरतक परस्पर परामर्श करने अनन्तर, उन्होंने मेरी झोपड़ीमें आग लगा दी। जब घासफूसकी कुटीको आगकी लपटें लपेटकर भस्मीभूत करने लगीं तो मैं छप्परको उठाकर बाहर निकल आया।

तीसरी घटना यहहै—बनारसमें एक दिन, जब कि मैं व्याख्यान दे रहा था एक मनुष्यने मुझे पान लाकर दिया। ज्योंही मैंने उसे मुखमें रख उसका रस चूसा तो मुझे ज्ञात हो गया कि इसमें विष मिला हुआ है। मैंने उसी समय वमनद्वारा उसे निकाल दिया।

स्वामीजीको लाहौर बुलानेमें अधिक हाथ ब्राह्मसमाजियोंका था। उनके निवासादिका प्रबन्ध भी प्रायः वे ही करते थे। पर परमहंसजी अपने सिद्धान्तके इतने पक्के थे कि व्याख्यानके समय सहायकों तकके धर्म्म और रुचिका किंचिन्मात्र भी पक्षपात नहीं करते थे। न्यायानुकूल, सबको स्पष्ट सुना देतेथे।

महाराजके दो व्याख्यान ब्राह्मसमाजियोंने अपने धर्म्म-मन्दिरमें कराये। उन्होंने अपने प्रथम व्याख्यानमें यह सिद्ध किया कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है और दूसरेमें पुनर्जन्मके वादको बताया। ये दोनों ही व्याख्यान ब्राह्मसमाजके मन्तव्यके नितान्त विरुद्ध थे, इसलिए ब्राह्मसमाजियोंको बहुत बुरे लगे। वे लोग इतनी बातसे ही ऐसे अधीर हुए कि स्वामीजीका विरोध करनेपर उतर आये।

स्वामीजीने अपने भाषणोंमें पुराणोंकी निर्मूल कल्पनाओंकी तीव्र समालोचना की, जिससे पौराणिकोंमें बड़ी हलचल मच गई। बहुतसे पण्डित तो विघ्नविरोध करनेपर इतने तुल गये, कि जिस उद्यानमें महाराज निवास करते थे, वे उसके अधिपति श्री रत्नचन्द्रजीको भड़काने लगे कि आपने अपने उद्यानमें किस नास्तिकको उतार रक्खा है। वह सब देवताओंका खण्डन करता है। न जाने कोई क्रृष्टान है अथवा कोई और है। लोकापवादसे भीत, रत्नचन्द्रजीने स्वामीजीको उद्यान छोड़ देनेके लिये विवश किया। स्वामीजीके प्रेमी उनको डाक्टर रहीमखां की कोठी में ले आये। यह कोठी भक्त छज्जूके चौबारेके पास थी।

पण्डित मनफूलजी, स्वामीजीके सत्कार करनेवालोंमें, उस समय मुख्य माने जाते थे। ब्राह्मसमाजियोंने तो रुष्ट होकर स्वामीजीके व्ययके लिये द्रव्य देना बन्द कर ही दिया था, इसलिए, उनके आतिथ्यका प्रबन्ध पण्डित मनफूलजीको ही करनो पड़ता होगा। परन्तु महाराज किसीके भी अनुचित दबावमें नहीं आते थे। एक दिन, मनफूलजीने स्वामीजीसे कहा, "नगर के सारे लोग मूर्त्तिपूजाके खण्डनसे अप्रसन्न हैं। आप अब उसका खण्डन न किया करें। ऐसा करनेसे महाराजा जम्मूं और कश्मीर भी आपपर प्रसन्न हो जायँगे।" महाराजने तत्काल उत्तर दिया, "मैं महाराजा जम्मूं और कश्मीरको प्रसन्न करूं या ईश्वरीय ज्ञान वेदके आदेशानुसार चलूं ? चाहे जो हो, मैं वेदाज्ञाको भङ्ग नहीं करूंगा" यह सुनकर मनफूलजीने मनमुटाव उत्पन्न कर लिया। और उनके समीप आना जाना छोड़ दिया।

डाक्टर रहीमखां की कोठीमें स्वामीजी एक दिन व्याख्यान देते और दूसरे दिन शङ्का-समाधान करते थे। उनके सत्संगोंमें सहस्रों आर्य्य मुसलमान और ईसाई आते, उपदेश सुनते और संशय दूर कराते। एक दिन स्वामीजीके पास पादरी हूपर महाशय आये और पूछने लगे कि वेदमें जो अश्वमेध और गोमेध यज्ञका वर्णन है आप उसका क्या समाधान करते हैं ?

स्वामीजीने उत्तर दिया कि वेदोंमें पशु-बलिका वर्णन कहीं भी नहीं है। अश्वमेधका अर्थ न्यायपूर्वक प्रजापालन है, और गोमेधका अर्थ है अन्नका उपार्जन करना, इन्द्रियोंको पवित्र बनाना, भूमिको शुद्ध रखना और मृतकका दाहकर्म करना।

दूसरा प्रश्न पादरी महाशयने वैदिक वर्ण-व्यवस्थापर किया। इसके उत्तरमें स्वामीजीने कहा कि 'वेदोंमें वर्ण गुण-कर्मानुसार माना गया है' तब पादरी महाशय बोले कि यदि मेरे गुण-कर्म्म उत्तम हों तो क्या मैं भी ब्राह्मण कहला सकता हूं।

महाराजने कहा कि निस्सन्देह गुण-कर्म्म ब्राह्मण वर्णके होनेपर आप ब्राह्मण कहे जा सकते हैं।

डाक्टर रहीमखांकी कोठीमें एक दिन महाराज भाई दित्तसिंहको वेदान्त-वादका अधूरापन समझा रहे थे। उस समय, वहां पण्डित शिवनारायण अग्निहोत्री जी भी विद्यमानथे। वह आपही आप बीचमें बोलने लग गये। स्वामीजीने पण्डित महाशयको कहा, "आप योंही बीचमें हस्तक्षेप कर रहे है। आप यह तो बताइये कि भाईजीने क्या प्रश्न किया और मैंने उसका उत्तर क्या दिया है?' अग्निहोत्री महाशय प्रश्न और उत्तरको ठीक ठीक न बता सके। तब महाराजने उनको कहा, 'जिस बातकी समझ ही न हो उसमें हस्तक्षेप करना अच्छा नहीं।' उनकी इस शिक्षासे पण्डित महाशय रुष्ट हो गये।

एक दिन पण्डित शिवनारायणजीने स्वामीजीसे कहा कि आप वेदमें किस्से कहानी नहीं मानते, परन्तु सामवेदमें तो उल्लूकी कहानी विद्यमान है। स्वामीजीने उनको कहा—सामवेद में उल्लूकी कहानी नहीं है। परन्तु वे कब मानते थे। वे यही कहते रहे कि साममें उल्लूकी कहानी अवश्यमेव है। तब स्वामीजीने सामवेद उठाकर उनको दिया और कहा कि व्यर्थका झगड़ा क्यों करते हो? इसमेंसे वह कहानी निकालकर सबको दिखा दो। पण्डित महाशय पुस्तकके पृष्ठोंको उथल पुथल तो बहुत देरतक करते रहे, परन्तु कहानी

न निकाल सके। स्वामीजीने तो उन्हें कुछ न कहा, परन्तु लोगोंने उनको उस समय बहुत ही लज्जित किया।

स्वामीजीके प्रचारसे अनेक सज्जन उनके अनुयायी बन गये और आर्य समाजकी स्थापनाका उद्योग होने लगा। उस समय यह आवश्यक समझा गया कि समाजकी स्थापनाके पूर्व समाजके नियमोंका नूतन संस्कार किया जाय। इस लिए, महाराजने यहां, स्वयं आर्य्य समाजके नियमोंको संगठित किया। वह नियम ये हैं:—

१—सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्यासे जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसीकी उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सत्यविद्याओंका पुस्तक है। वेदका पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्य्योंका परम धर्म्म है।

४—सत्यके ग्रहण करने और असत्यके छोड़नेमें सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

५—सब काम धर्म्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्यका विचार करके करने चाहियें।

६—संसारका उपकार करना इस समाजका मुख्योद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सबसे प्रीतिपूर्वक धर्म्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये।

८—अविद्याका नाश और विद्याकी वृद्धि करनी चाहिये।

९—प्रत्येकको अपनी ही उन्नतिमें सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सबकी उन्नतिमें अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०—सब मनुष्योंको सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालनेमें परतंत्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियममें सब स्वतंत्र रहें।

नियम बनाते समय ब्राह्मसमाजियोंने स्वामीजीसे कहा, "यदि आप तीसरा नियम न रक्खें तो हम भी आपके समाजमें सम्मिलित हो सकते हैं।" परन्तु महाराजने उनकी बातको स्वीकार नहीं किया।

रायबहादुर लाला मूलराजजी स्वामीजीके प्रेमियोंमेंसे एक थे। नियम-निर्माणके समय वे उपस्थित थे। संशोधनमें वे सम्मति भी देते थे। उन्होंने महाराजसे निवेदन किया, "आपने जो तीसरे नियममें 'वेद सत्य विद्याओंका पुस्तक है' यह वाक्य रक्खा है, यदि इसमें 'सत्य' शब्द निकाल कर 'वेद विद्याओंका पुस्तक है' ऐसा वाक्य बना दिया जाय तो यह नियम बहुत व्यापी हो जायगा। फिर इसको माननेमें किसीको कुछ भी हिचक न होगी।" महर्षि दयानन्द आचार्य्य थे। वे लोकमतके पीछे दौड़नेवालोंमेंसे न थे, किन्तु लोकमतके निर्माता थे। उन्होंने महाशय मूलराजकी सम्मतिको सर्वथा अस्वीकार किया।

संगठनका नवीन संस्कार होजानेपर आर्य्य समाजकी शुभ स्थापना की गई। उस समय महाशय मूलराजजी प्रधान और श्रीमान् साईदासजी मंत्री नियत हुए। समाजका पहला सत्संग डाक्टर रहीमखाँजीकी कोठीमें स्वामीजी के पास ही लगाया गया। इसपर महाराजने आशीर्वाद देते समय कहा—अब यह समाज अवश्य ही फूले फलेगा।

दूसरा सत्सङ्ग आषाढ़ वदी पंचमी सम्वत् १९३४ को सत्य सभाके स्थानपर लगाया गया। उसमें स्वामीजीने एक प्रभावशाली भाषण किया।

लाहौरमें स्वामीजीने, आर्य्यसमाजके नियमोंका नूतन संस्कार करके आर्य समाजकी नींव एक प्रबल चटानपर रख दी, आर्य्यसमाजके सिद्धान्तोंको परिमार्जित कर दिया, और उसके उद्देश्योंको एक अभेदनीय भित्तिपर चित्रित कर दिया। मुम्बईके नियमोंकी लड़ी जहाँ बड़ी लम्बी थी। वहाँ साथ ही अधूरी भी थी।

मुम्बईके नियमोंका निर्माण पारिख महाशयने किया था। वे महर्षिकी रचना न थे, इस लिये सिद्धान्त दृष्टिमें वे अनार्ष कल्पना थे। यह उनकी पहली त्रुटि थी। दूसरे, उनमें वेदको 'ईश्वरीय ज्ञान' कहीं भी नहीं कहा गया। तीसरे, उनमेंसे कोई भी नियम ईश्वरको सृष्टिका रचयिता नहीं बतलाता। चौथे; उनमें एक ऐसा नियम रक्खा गया है, जिसके आधारपर, श्रेष्ठ सभासदोंकी सम्मतिसे कोई भी नियम बदला जा सकता है—चाहे यह नियम ईश्वरकी उपासना और वेदोंकी प्रामाणिकतावाला ही क्यों न हो।

मुम्बईके नियमोंमें, यद्यपि स्त्रियोंको सभासद बननेका अधिकार है, परन्तु प्रधान और मन्त्रि-पदके साथ पुरुष शब्द लगाकर, धर्म्ममें समताके आदर्शको संकुचित कर दिया गया है। लाहौरके संस्कारमें नियमोंको सिद्धान्तका स्वरूप प्राप्त हो गया। वे सुस्पष्ट और निर्भ्रान्त बन गए। उनके परिवर्त्तनका किसीको भी अधिकार नहीं रहा। समुच्चयरूप होनेसे, वे स्त्री और पुरुष दोनोंके लिए समान हैं और प्रत्येक समाजको पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान करते हैं।

लाहौरके नूतन संस्कारमें उपनियमोंको पृथक् किया गया और उनको प्रायः स्वामीजीके भक्तोंने ही कार्त्तिक-सुदी १ सम्वत् १९३४ को बनाया और स्वीकार किया। महाराजने केवल अनुमति ही प्रदान की।

एक दिन स्वामीजीने कहा, "वैदिक धर्म्म-प्रचारका कार्य बहुत बड़ा है। हम जानते हैं कि वह हमारे इस सारे जीवनमें पूर्ण न हो सकेगा। परन्तु चाहे दूसरा जन्म धारण करना पड़े, मैं इस महत् कार्यको अवश्य पूर्ण करूँगा।"

एक दिन, महाराज आर्यसमाजके साप्ताहिक सत्संगमें उस समय पधारे, जब, प्रार्थना और उपासना हो रही थी। गुरुदेवको आते देख सारे सभासदोंने उनका अभ्युत्थानपूर्वक स्वागत किया। जब प्रार्थना समाप्त हो चुकी तो महाराजने उपदेश दिया, "उपासनाके समय उपासक जन ईश्वरके सत्संगमें निमग्न होते हैं, उस प्रभुसे महान् कोई भी वस्तु नहीं है, इस लिए, उपासना-कालमें चाहे कितना ही बड़ा मनुष्य क्यों न आये उठना नहीं चाहिए। ऐसे समयमें

किसी व्यक्तिके लिए अभ्युत्थान आदि आदर करना उपासना-धर्म्मका निरादर है।" सब सभासदोंने बड़े विनीत भावसे श्रीवचनोंको स्वीकार किया।

यद्यपि, आर्य-समाजमें संशोधन और परिवर्तन आदिके सारे अधिकार स्वामीजीके ही हाथमें थे, परन्तु वे इतने निरभिमान और निर्लेप थे कि जिस का दूसरा दृष्टान्त मिलना अति दुर्लभ है। आर्य्य-समाज लाहौरके साधारण अधिवेशनमें महाशय शारदाप्रसादजीने प्रस्ताव किया "आर्य्य-समाजके संस्थापकको पदवीसे विभूषित किया जाय।" सब सभासदोंने इस प्रस्तावका सुप्रसन्नतासे अनुमोदन किया। स्वामीजी महाराजने हँसकर कहा, "मैंने कोई नया पन्थ चलाकर गुरुगद्दीका मठ नहीं बनाया है। मैं तो लोगोंको मतवादियोंके मठोंसे स्वतंत्र करना चाहता हूं। ऐसी पदवियोंसे अन्तमें हानियाँ ही हुआ करती हैं।"

शारदाप्रसादजीने दूसरा प्रस्ताव किया, कि "महाराजको इस समाजका परम सहायक नियत किया जाय।" इसपर उन्होंने कहा, "यदि मुझे परम सहायक मानोगे तो उस परम पिता परमेश्वरको क्या कहोगे! परम सहायक तो वह जगदीश्वरही है। हाँ, यदि आप मेरा नाम लिखनाही चाहते हैं, तो सहायकोंकी पंक्तिमें लिख लीजिए।"

स्वामीजीके उपदेशोंको सुनकर लोगोंके हृदयोंमें संस्कृत भाषा सीखने के लिए बड़ा उत्साह उत्पन्न हो गया था। प्रायः सभी सभासद संस्कृत पढ़ने लग गये थे। स्वामीजीके पास भी बहुतसे लोग अध्ययन करने आयाकरते थे।

मुजफ्फरगढ़ निवासी महाशय गणपति राय उन दिनों लाहौरमें कानून पढ़ते थे। वे भी स्वामीजीके निकट संस्कृत सीखने आते थे। एकदिन महाराजने गणपतिरायजीसे पूछा, "आप विवाहित हैं या कुमार?" उन्होंने उत्तर दिया कि "अभी तक मेरा विवाह तो नहीं हुआ, परन्तु सगाई कभी की हो चुकी है।"

स्वामीजीने कहा, "गणपति, आप विवाह कदापि न कराइयेगा। आपकी आयुका तार तीस वर्षतक पहुंचनेके पहलेही टूट जायगा।" महाशय गणपति रायको पूर्ण विश्वास था कि उसके गुरुका ज्ञान अगम्य है। उन्होंने जो कुछ

कहा है वह अक्षरशः सत्य है। इस लिये उन्हों ने 'मैं विवाह नहीं करूंगा' इस प्रणकी पक्की गाँठ बान्धली।

कुछ कालके उपरान्त गणपतिके बन्धु-बाँधवोंने उसे विवाहके लिए अति-बाधित किया और समझाया कि साधु सन्तोंके वचन सदा सच्चे नहीं हुआ करते। भ्रम-भरी बातोंमें पड़कर विवाहसे विमुख हो जाना आपकी भारी भूल है। परिवार-परिजनकी परवशतामें पड़ गणपतिरायको, अन्तमें विवाह करनाही पड़ा। परन्तु स्वामीजीके वचनोंकी सत्यताका उसे पूरा निश्चय था। वह मुल-तान जिलेमें वकालतका काम करने लगा। वहां, एक दिन वह एकाएक रोग-ग्रस्त हो गया और थोड़े दिनोंमें ही, उसकी आयुके अट्ठाईसवें वर्ष, उसके प्राण पक्षी परलोककी ओर उड्डीयमान होने लगे। उस समय उसने अपने कुटुम्बि-यांको बताया कि गुरुदेवने जो बताया था वह आज सत्य हुआ चाहता है। फिर प्रियजनोंकी उपस्थितिमें, गणपतिरायजीने सदाके लिए नेत्र बन्दकर लिये।

एक दिन महाराजके पास एक जन आकर बोला, "महाराज आप तो यह कहते थे कि ध्यानमें तुमको प्रकाश दिखाई देगा। मुझे तो उलटा अन्धकार दिखाई देता है।" स्वामीजीने उसे कहा, "श्रद्धा-भक्तिसे अभ्यास करते जाइए, अन्तमें उसी अन्धकारमें ज्योती दीखने लग जायगी।"

प्रसङ्ग चलनेपर महाराजने सत्संगियोंको कहा, "योग-शास्त्रका सारा वर्णन सत्य है, परन्तु उसके बतानेका यह समय नहीं है।"

डाक्टर रहीमखाँकी कोठीपर एक दिन बहुतसे पण्डितोंने स्वामीजीसे कहा कि आप वेदोंका प्रचार करते हैं यह तो बहुत अच्छी बात है परन्तु यदि पुरा-णोंको भी साथ मिलाए रखते तो सोने में सुगन्धिका संयोग हो जाता।

महाराजने कहा कि मैं कई वर्षों तक यह सोचता रहा कि किसी प्रकार पुराणोंकी सङ्गति वेदोंके साथ मिलजाय, परन्तु जब मैंने देखा कि ये किसी प्रकार भी वेदोंसे मेल नहीं खाते और सर्वथा वेद विरुद्ध हैं तबसे मैंने पुराणोंकी प्रमाणताका परित्याग कर दिया।

एक भद्र पुरुषने स्वामीजीसे कहा कि आप जो मुक्तिसे पुनरावृत्ति मानते हैं, यह मन्तव्य कोई चिरकालके विचारका परिणाम प्रतीत नहीं होता।

उन्होंने उत्तर दिया कि आपका यह भारी भ्रम है। पुनरावृत्तिपर तो मैं कई मास तक विचार करता रहा हूं। अन्तमें मैंने यही परिणाम निकाला है कि सान्त कर्मका अनन्त फल नहीं हो सकता; इसलिए मुक्तिसे पुनरागमनही मानना समीचीन है।

पांचवाँ सर्ग।

महर्षिने पंजाब प्रान्तके मस्तिष्क, लाहौरको अपने प्रभावशाली उपदेशोंसे प्रभावित कर लिया, वेद-शास्त्रके महत्त्वपर मोहित बना दिया और अपने प्रेमके परम पुनीत तारमें पिरोकर उसे कार्य्यक्षेत्रमें उतार लिया। पंजाबियोंके सादा प्रेमसे, सरल स्वभावसे, श्रद्धा-भक्तिसे, कार्यतत्परतासे और धर्म्मावेशसे श्री महाराज अति प्रसन्न हुए।

लाहौरवासियोंमें आर्य्यत्वका सच्चा अभिमान उत्पन्न करनेके पश्चात्, श्री महाराज आषाढ़ वदी ६ सं० १९३४ को अमृतसरमें पधारे और सरदार दयालसिंह मजीठियाके प्रबन्धसे, रामबागमें, मियाँ मुहम्मद खाँकी कोठीमें ठहरे। उनके पधारनेसे अमृतसरके अधिवासियोंमें, धर्म्म-प्रेम उमड़ पड़ा। शत शत और सहस्र सहस्र पुरुष, श्रीदर्शनोंको आने लगे। महाराजने लोगोंके उत्साहको देखकर उसी दिन सायंकाल, व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया। श्री उपदेशोंको सब नरनारी श्रद्धापूर्वक सुनते थे।

यहाँ महाराजने प्रतिमापूजन, अवतारवाद और मृतकश्राद्ध आदि मिथ्यामूलक मन्तव्योंका घोर खण्डन किया, जिससे पण्डितोंमें हलचल मच गई। यजमान अपने पुरोहितों और पण्डितोंको शास्त्रार्थ करनेके लिए विवश

करने लगे। पण्डित लोग भी स्थान-स्थानपर सभा लगाते, स्वामीजीको नास्तिक और ईसाई कहते, अगणित गालियां देते, परन्तु शास्त्रार्थ करनेके लिए उनमें से कोई भी साहस नहीं करता था।

उन दिनों अमृतसरमें श्री रामदत्तजी सबसे बड़े विद्वान् गिने जाते थे। पण्डित-मण्डलने उनसे जाकर प्रार्थना की, "दयानन्द धराधामसे पौराणिक मत का, बिन्दु-विसर्ग तक मिटा देना चाहता है। इस समय हमारे मतकी नौका भँवरमें पड़ी डाँवाडोल हो रही है। इस लिए आप चलिए और शास्त्रार्थ करके उसे परास्त कीजिए। इस समय आपही हमारी लाज रखने वाले हैं।"

पंण्डित रामदत्तजीने उनको बहुत समझाया कि स्वामीजी वेदशास्त्रके धुरन्धर पण्डित हैं; उनसे मैं शास्त्रार्थ नहीं करसकता। परन्तु वे लोग उन्हें शास्त्रार्थ के लिए बहुत ही विवश करते थे। अन्तको पण्डितजी अमृतसर छोड़कर हरिद्वार चले गये।

एक दिन, एक पाठशालाके अध्यापक पण्डितने अपने छोटे छोटे विद्यार्थियोंको कहा, "आज कथामें हम सब चलेंगे। तुम अपनी अपनी झोलियोंमें ईंटोंके रोड़े भर लो। वहां जिस समय मैं संकेत करूं, तुम तत्काल, कथा कहनेवालेपर इन्हें फेंकने लग जाना। इसके बदलेमें कल तुमको लड्डू दिये जायँगे।"

वे अबोध बालक अपने अध्यापकके बहकानेमें आ गये, और झोलियोंमें ईंटोंके टुकड़े लिये व्याख्यानके स्थानपर आ पहुंचे। व्याख्यान रातके आठ बजे समाप्त हुआ करता था। थोड़ासा अन्धेरा होते ही, अध्यापकका संकेत पाकर वे अनजान लड़के स्वामीजीपर कंकड़ बरसाने लगे। एक बार तो सारी सभा चलायमान हो गई, परन्तु स्वामीजीने सभाको तुरन्त शान्त कर दिया।

पुलिसके कर्मचारियोंने, अपने चातुर्यसे उन उपद्रवी बालकोंमेंसे कुछ एक को पकड़ लिया और व्याख्यानकी समाप्तिपर महाराजके सामने उपस्थित किया। पोलिसके पञ्जेमें पड़े हुए वे बालक चिल्लाते और फूट फूटकर रोते थे। स्वामीजीने उनको ढाढस बंन्धाया और ईंट मारनेका कारण पूछा। तब वे हिचकियाँ
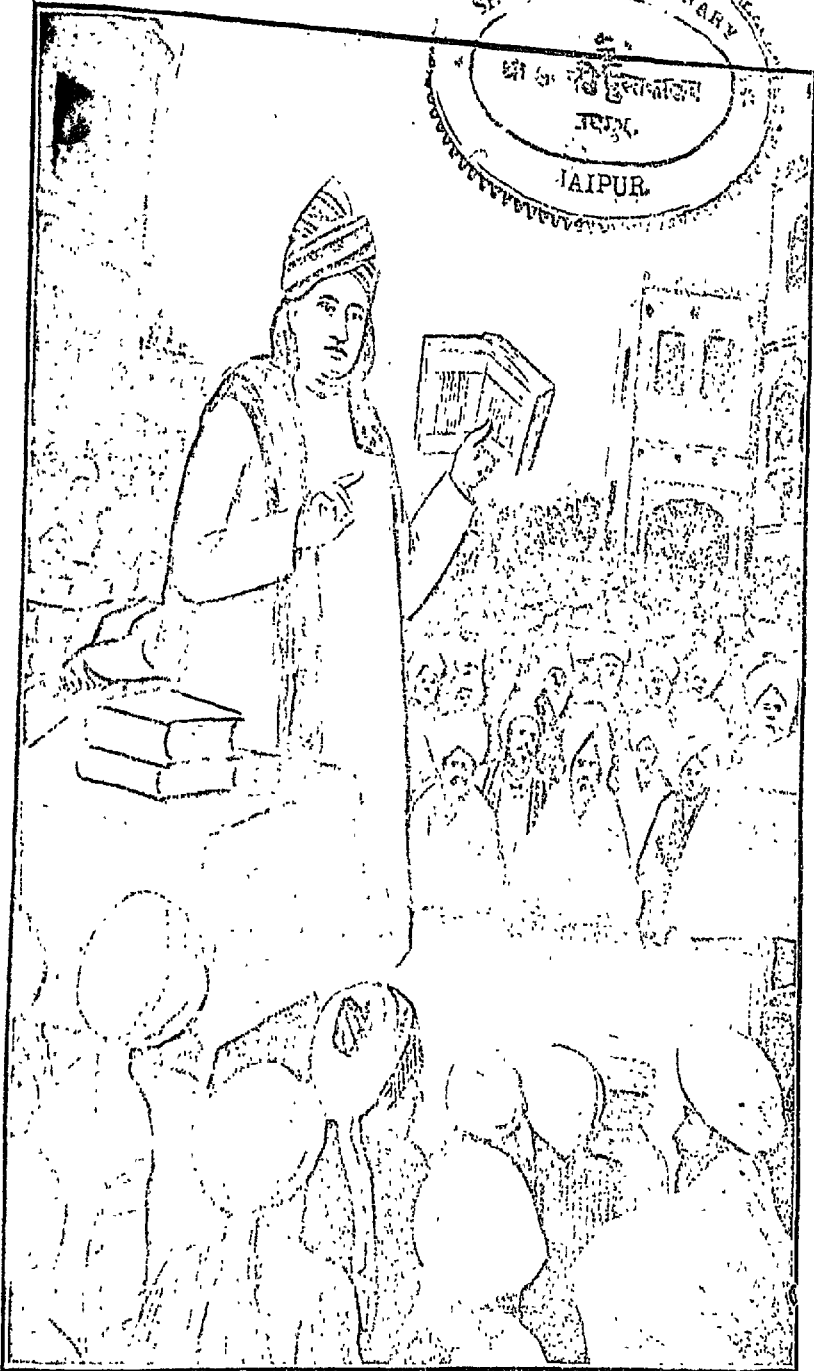
अमृतसरमें स्वामीजीके व्याख्यानोंमें पत्थरों की वर्षा और स्वामीजीका कहना कि "मेरे आक्षेपोंके उत्तर में प्रतिवादियों के पास यही पत्थर हैं, मेरे पर यह फूलोंकी वर्षा है।

लेते हुए बोले, "हमको पण्डितजीने लड्डुओंका लोभ देकर ऐसा करनेको कहा था।

श्रीस्वामीजीने करुणारसमें आकर तत्काल वहां मोदक मंगाए और उन बालकोंमें बाँटकर कहा, "तुम्हारा अध्यापक तो सम्भव है तुम्हें लड्डु न दे इस लिए मैं ही दिये देता हूं।" फिर महाराजने उन ना-समझ लड़कोंको छुड़ा दिया।

श्री स्वामीजीके उपदेशोंमें नगरके सभी सम्मानित मनुष्य आते। महाराज सिंहासनपर आरूढ़ होकर उपदेश दिया करते। अपने सामने एक कुर्सी रखवा देते कि उपदेशके अनन्तर यदि कोई प्रश्न पूछना चाहे तो उसपर बैठकर पूछे एक दिन, एक पण्डित उस कुर्सीके पास खड़ा होकर कहने लगा, "आपने हमको नीचा आसन दिया है। मुझे भी आपके समान ही कुर्सी मिलनी चाहिए।" स्वामीजीने हंसकर कहा, "मैं तो व्याख्यानके कारण ऊँचे आसनपर बैठता हूं, परन्तु आप यदि सामनेकी कुर्सीपर बैठना अपमान समझते हैं तो उसे मेज पर रखकर बैठ जाइए। आप विद्वान् होकर भी आसनपर बैठनेमें बड़ाई छोटाईकी कल्पना करते हैं, इसका मुझे बड़ा आश्चर्य है। क्या किसी चक्रवर्तीके मुकुटपर मक्खी, मच्छर बैठकर बड़े हो सकते हैं?"

एक दिन, एक पण्डितने कहा कि हम आपकी सभामें आकर क्या करें आप तो कहते हैं कि ब्राह्मणोंको एक श्लोक भी नहीं आता। इनको गोदान लेनेका अधिकार ही नहीं है। आप ही बतायें कि यदि हम लोग गोदान न लें तो खायें क्या, राख?

स्वामीजीने कहा कि हमने दान लेनेका अनधिकार अविद्वानोंको बताया है। यदि तुम विद्वान् नहीं हो तो दान मत लो, और राख क्यों खाओ? घास खाया करो।

कमिश्नर महाशयकी प्रार्थनापर, एक दिन स्वामीजी उनके बंगलेपर पधारे। वार्तालापमें कमिश्नर महाशयने कहा, "स्वामीजी! यह तो बताइये, हिन्दू धर्म्मको, सूतके तारके सदृश, कच्चा क्यों कहते हैं?"

स्वामीजीने उत्तर दिया, "यह कच्चा नहीं किन्तु लोहेसे भी पक्का है।

लोहा तो भले ही टूट जाय परन्तु यह कभी भी टूटनेका नहीं।" कमिश्नर महाशयने पूछा, "यह इतना दृढ़ क्योंकर है ?"

महाराजने कहा, "हिन्दू धर्म्म समुद्रके समान है। इसमें भी अनेक अच्छे और बुरे मतोंके तरङ्ग विद्यमान हैं। इस धर्म्ममें ऐसे भी लोग हैं जो अत्यन्त दयावान् हैं, सदाचारी हैं, परोपकार-परायण रहते हैं, और एक निराकार परमेश्वरको अपने मनोमन्दिरमें पूजते हैं। इनके विपरीत वे लोग भी हिन्दू धर्म्ममें पाये जाते हैं जो महाक्रूर, अनाचारी, वामी हैं। कोरे नास्तिक, अवतारोंके माननेवाले हैं। यहाँ योगी, ध्यानी, तपस्वी और आजीवन ब्रह्मचारी रहनेवाले भी विद्यमान हैं और ऐसे भी अनेक हैं, जिनका उद्देश्य आमोद-प्रमोद और संसारका सुख है। हिन्दू धर्म्ममें जहाँ छूआछूत करनेवाले सहस्रों हैं वहाँ सबके साथ खा लेने वाले भी सैकड़ों हैं। परमार्थदर्शी और तत्त्वज्ञानी लोग इस धर्म्म में उच्च पदके पाये जाते हैं। और ऐसे भी मिल जाते हैं जो ज्ञानके पीछे डण्डा लिये डोलते हैं।"

"उत्तम, मध्यम और निकृष्ट विचारों और आचारोंके सभी मत और उनको माननेवाले मनुष्य इस मार्गमें मिलते हैं। वे सभी हिन्दू हैं, कोई उन्हें हिन्दूपनसे निकाल नहीं सकता। इस लिये मैं कहता हूं कि हिन्दू धर्म निर्वल नहीं किन्तु परम सबल है।"

फिर कमिश्नर महाशयने पूछा कि, आप कैसे धर्म्मको फैलाना चाहते हैं ? स्वामीजीने कहा कि मैं केवल यह चाहता हूं कि लोग वेद पवित्रकी आज्ञाओंको माने। एक निराकार परमात्माकी उपासना करें, दुर्गुणोंको छोड़कर सद्गुणोंको ग्रहण करें।

महाराज अमृतसरमें ईसाई धर्म्मपर भी युक्तियुक्त समालोचना किया करते थे। उसकी असम्भव कथायें सुनाकर लोगोंको समझाते और आर्य्य धर्मके साथ उसे तर्क तुलापर तोलकर त्रुटिपूर्ण सिद्ध कर देते थे।

ईसाईयोंके स्कूलोंमें पढ़नेवाले चालीस आर्य्य युवक मनसे ईसाई बन चुके

थे। उन्होंने 'प्रार्थनासभा' नामसे एक अपनी सभा बना रक्खी थी। आदित्य-वारको वे वहाँ ईसाई रीतिसे प्रार्थना आदि किया करते थे।

स्वामीजीके उपदेशोंसे वे सारे युवक अत्यन्त प्रभावित हुए। उनके हृदयोंसे ईसाई मतका एक एक विचार कपूरकी भाँति उड़ गया और वे अपने पुरातन धर्म्मके महत्त्वको मानने लग गये।

पादरी क्लार्क महाशय एक दिन स्वामीजीके पास आकर कहने लगे, "आओ हम और आप मिलकर, एक दिन एक ही मेज़पर भोजन करें।"

स्वामीजीने कहा, ऐसा करनेसे लाभ ही क्या है?"

पादरी महाशय बोले, "इकट्ठे खानेसे परस्पर प्रीति बढ़ जायेगी।"

इसपर श्रीस्वामीजीने कहा' "शीया और सुन्नी मुसलमान एकही बर्तनमें खाते हैं। रूसी और अङ्गरेज, इसी तरह, आप और रोमन कैथोलिक ईसाई एक ही मेजपर जीमलेते हैं परन्तु यह सब जानते हैं कि परस्पर कितना वैर-विरोध है, एक दूसरेके साथ कितनी शत्रुता है!" यह सुनकर पादरी महाशय अवाक् हो गये।

सरदार दयालसिंहने वेदोंके ईश्वरीय ज्ञान होनेपर कुछ प्रश्न किये। परन्तु वे नियमका पालन नहीं करते थे। बहुत लम्बा व्याख्यान देने लग जाते और स्वामीजीके उत्तरपर कोई ध्यान नहीं देते थे। स्वामीजीने उनको समझाया कि यदि आप निर्णय ही करना चाहते हैं तो केशवचन्द्रजीको आमन्त्रित करके बातचीत करा लीजिये। सरदार महाशयने स्वामीजीकी शिक्षाको बहुत बुरा मनाया और रुष्ट होकर चले गये।

श्री बिहारीलालजी एक्स्ट्रा असिस्टेण्ट कमिश्नरने महाराजको कहा कि 'यदि आप मूर्त्ति-पूजनका खण्डन छोड़ दें तो सभी हिन्दू आपके अनुगामी बनजायँ'। उन्होंने कहा कि मैं इस लोककी बातोंके लिये सनातन सत्यका परित्याग नहीं कर सकता।

मनसुख नामका एक सज्जन अमृतसरमें निवास करता था। वह धर्म्म-

कर्मसे विमुख था और किसी भी साधु-सन्तकी नहीं सुनता था। स्वामीजीके उपदेशोंके सुननेसे उसके हृदयमें भी भक्तिभावकी शुभ-लता लहलहाने लगी। एक दिन वह मिश्रीका थाल लेकर श्रीचरणोंमें उपस्थित हुआ और नमस्कार पूर्वक उसे समर्पण कर, उसने दीक्षाकी याचना की। श्री स्वामीजीने महाशय मनसुख को अपार दयासे धर्म्म दीक्षा दे दी और गुरुमंत्र, गायत्री सिखाकर कृतकृत्य कर दिया।

स्वामीजीके निकट एक साधारण स्थितिका मनुष्य आया करता और अति श्रद्धासे सत्संगका लाभ उठाया करता था। एक दिन उसने हाथ जोड़कर विनय की "भगवन्! धनी लोग तो अन्नादिके दान और परोपकारसे संसार-सागर पार कर जायँगे, परन्तु मेरे ऐसे निर्धनका निस्तार कैसे होगा? मैं दान-पुण्य तो कुछ नहीं कर सकता।"

महाराजने कहा, "सौम्य! आप भी बड़े उपकारी और पुण्यात्मा बन सकते हैं। एक मनुष्य तो परोपकार और दान-पुण्य करनेसे पवित्र हो जाता है और दूसरा पर-अपकार और पापकर्म्म न करने से भी अपना मङ्गल साधित कर लेता है; सो आप अपने हृदयमें पर-अपकार और अनिष्ट चिन्तनका भाव कदापि न लाइये। इससे आप बड़े धर्मात्मा बन जायेंगे। अपकार न करना भी संसार का उपकार है।"

एक दिन स्वामीजी महाराज अपने निवास स्थानके एक कमरेमें बैठे पण्डितोंसे वेद-भाष्य लिखवा रहे थे। बीचमें एकाएक उठ खड़े हुए और कर्मचारियोंको कहने लगे कि पुस्तकादि सभी उपकरण, झटपट, इस कमरेसे बाहर निकालदो।

कर्म्मचारियोंने उनकी आज्ञाका पालन तो किया, परन्तु वह मन ही मन यह कहते रहे कि स्वामीजीने यह कष्ट व्यर्थ ही दिया है। जब सारे उपकरण दूसरे कमरेमें पहुंच गए तो प्रथम कमरेकी छत धड़ामसे भूमिपर गिर पड़ी। उस समय कर्मचारियोंको महाराजकी आज्ञाकी उपयुक्तताका निश्चय, अति विस्मय के साथ हुआ।

श्री स्वामीजी एक समय उपदेश दे रहे थे। उस समय एक ओरसे घोर आँधी, धूलिराशिसे भूतलाकाशको एकाकार करती, उमड़ी चली आती दिखाई दी। पवन भी प्रचण्ड रूप धारण करने लगा। झंझावातके उत्पातसे जैसे मान-सरोवर क्षुभित हो, ऐसे ही वह सत्संग-सरोवर चलायमान हो गया। उठनेके लिये लोग दायें बायें झांकने लगे।

उस समय महाराजने मेजपर करतल-प्रहारकर उच्च स्वरसे कहा कि धैर्य्य रखिए, हिलिये नहीं, यहाँ आँधी नहीं आयगी। महाराजके कथनसे लोग शान्त हो गये और सचमुच आँधी भी वहाँ नहीं आई।

महाराजके उपदेशोंसे अमृतसरमें आर्य्यसमाज स्थापित हो गया। अनेक सज्जनोंने ज्ञान-चक्षु लाभ किये, उन्होंने परोपकारका पवित्र पथ प्राप्त किया और उनमें लोग-हितकी बुद्धि जाग्रत हो गई।

स्वामीजी अमृतसरके अधिवासियोंको उपदेशामृत पान कराकर गुरुदासपुर वासियोंकी विनय-अनुनयसे वहाँ जानेके लिए समुद्यत होगये। गुरुदासपुरमें स्वामीजीके प्रेमी भक्त डाक्टर विहारीलालजी थे। उन्होंने अपने भाईको गाड़ी-सहित अमृतसर भेजा कि स्वामीजीको लिवा लाओ। गुरुदासपुरसे अमृतसर तकके मार्गमें भी गाड़ियोंकी डाक लगा दी।

श्रावण सुदी ६ सं० १९३४ को स्वामीजी अमृतसरसे गुरुदासपुर पधारे। नगरके सभी प्रतिष्ठित सज्जन, छोटे बड़े, राजकर्मचारी और सर्वसाधारण ना-गरिक लोग महाराजकी अगुवाईके लिए पौन कोसतक आगे गये। जब वे समीप आ पहुंचे तो लोगोंने गगनगामी नमस्ते-नाद गुंजाकर, नम्र नमस्कारपूर्वक उन-का स्वागत किया। महाराज भी गाड़ीसे उतर पड़े और कुशल-क्षेम तथा आ-शीर्वाद आदि शब्दोंसे लोगोंको आनन्दित करने लगे। शिष्टाचारके उपरान्त महाराज फिर गाड़ीमें आरूढ़ हो गये और सज्जन-समूह-सहित धीरे धीरे डाक्टर विहारीलालके मकानपर आकर ठहरे। उस समय सायंकालके पाँच बजे थे।

महाराजने कोई आध घड़ीतक विश्राम करके स्नानादि किया और तत्पश्चात् लोगोंको एक मधुर और मनोहर उपदेश सुनाया।

स्वामीजीके व्याख्यानोंमें सैकड़ों श्रोताजन आते थे। उच्च कर्म्मचारी भी सम्मिलित होते थे। डेरेपर भी रात दिन सत्संगकी गङ्गा बहती थी।

उन दिनों, गुरुदासपुरमें मियाँ हरिसिंह, एक्स्ट्रा असिस्टेण्ट कमिश्नर और मियाँ शेरसिंह सुपरिण्टेण्डेण्ट पोलीस थे। ये दोनों महाशय कट्टर प्रतिमापूजक थे। स्वामीजीके खण्डनके व्याख्यानोंसे वे बहुत रुष्ट हुए। गणेशगिरी नामक एक विरक्त महात्मा नगरसे बाहर एक उद्यानमें रहते थे। उन दोनोंने उनके पास जाकर कहा कि दयानन्दजी हमारी देवमूर्त्तियोंका खण्डन करते हैं। आप चलिए और शास्त्रार्थसे उनका मुख बन्द कीजिए।

महात्मा गणेशजीने उनको समझाया कि हम विरक्त हैं, तुम्हारे झगड़े बखेड़ेमें पड़ना नहीं चाहते। यदि अधिक सताओगे तो यह स्थान छोड़कर कहीं अन्यत्र चले जायंगे।

गणेशगिरिसे निराश होकर मियाँ हरिसिंह और शेरसिंहजीने पण्डित लक्ष्मीधर और दौलतरामको दीनानगरसे बुलाया। वे शास्त्रार्थके लिए स्वामीजीके पास आये। जिस समय वे महाराजके पास पहुंचे स्वामीजी शिवपुराणकी कथापर समालोचना कर रहे थे और बतला रहे थे कि इन पुस्तकोंमें ऐसी अश्लील लीलायें भरी पड़ीं हैं।

मियाँ हरिसिंह और शेरसिंह अपने पण्डितों सहित बीच बीचमें बारबार कहते थे कि यह जो कुछ कह रहा है सर्वथा झूंठ बकता है। डाक्टर महाशयने उनको बहुत समझाया कि ऐसे कठोर शब्द कहना आपको उचित नहीं है और व्याख्यानके बीचमें भी बोलना नहीं चाहिए। परन्तु उस समय वे लोग नियम, नीति और न्याय सब कुछ छोड़ बैठे थे।

महाराजने जब देखा कि ये लोग व्याख्यान आगे चलने ही नहीं देते तो भाषण बन्द कर दिया और कहा कि 'दोनों पण्डितोंमेंसे एक सामनेकी कुर्सीपर

आ बैठे। जिस विषयपर उसका जी चाहे प्रश्न करे।' इसपर मियाँ महाशयने कहा कि क्या कोई कंजरियोंका खेल है जो बीचमें आ जायं। हम तो यहींसे शास्त्रार्थ करेंगे और सभी बोलेंगे।

महाराजने 'दुर्जनतोष न्याय' से उन पण्डितोंको कहा कि अच्छा, आप मनमानी विधिसे ही शास्त्रार्थ कर लीजिए।

तब पण्डितोंने 'गणानां त्वा' इस मन्त्रको पढ़कर कहा कि इससे गणेशकी प्रतिमाका पूजन सिद्ध होता है। महाराजने उत्तर दिया कि अपना अर्थ किसी भाष्यमें दिखलाइए। उन्होंने महीधरभाष्य निकालकर आगे किया। महाराजने महीधरके अत्यन्त अश्लील अर्थोंको सुनाकर कहा कि इसमें न तो मूर्त्ति-पूजन है और न ही गणेशपूजन। फिर आपने इस मन्त्रका सच्चा अर्थ परमात्मापर लगाकर जनताको बताया। इससे लोगोंको पण्डितोंके पानीकी पेंदीका पूरा पता लग गया। परन्तु मियाँ महाशय आपेसे बाहर होगये। वे दुर्वचन-बाण बरसाते हुए बोले कि यदि कोई देशीय राजा होता तो कोई आपका सिर काट डालता। यहांपर भी मजिस्ट्रेट और पोलीस दोनों विद्यमान हैं। उनका भी कुछ ध्यान कीजिए।

डाक्टर बिहारीलालजी तो आवेशमें आ गये, परन्तु श्रीमहाराजके प्रशान्त और गम्भीर मुखमण्डपर कोपकी एक रेखा भी तो न आई। वे हाथीकी भाँति गम्भीरतासे शङ्कासमाधान करते रहे। उन्होंने मियां महाशयोंकी अनुचित क्रियापर कर्णपात तक नहीं किया।

उन दिनोंमें 'काक' महाशय वहां इञ्जिनियर थे। वे भी महाराजके व्याख्यानोंमें आया करते थे। एक दिन भाषणके प्रसङ्गमें स्वामीजीने कहा कि अंग्रेज लोगोंको इस देशमें आए हुए चिर हो गया। परन्तु इन लोगोंने अपने उच्चारणको अभी तक नहीं सुधारा। तकारके स्थान टकार ही बोलते हैं। इससे काक महाशय रुष्ट हो गये और चलते हुए बोले कि यदि तुम पश्चिममें पिशावरकी ओर जाओ तो तुम्हें स्वाद चखाया जाय।

श्रीस्वामीजीके उपदेशोंसे लोगोंने भादों वदी १ सं० १९३४ को गुरुदास-पुरमें आर्य्यसमाज स्थापित कर दिया। महाराजके पास आकर अनेक मौलवी और पण्डित प्रश्न पूछते थे और सन्तोषजनक उत्तर पाकर चले जाते थे।

भादों वदी २ सं० १९३४ को गुरुदासपुरसे चलकर महाराजने वटालेमें रायभागमलके उद्यानमें एक घण्टा विश्राम किया और फिर अमृतसरमें आ वि-राजे। भादों सुदी ६ सम्वत् १९३४ को अमृतसरसे प्रस्थान कर उसी दिन दो बजे जालन्धर आ पहुंचे और अपना डेरा सरदार विक्रमसिंहकी कोठीमें किया। स्वामीजीका पहला व्याख्यान कुंवर सुचेतसिंहके मकानपर 'सृष्टिकी उत्पत्ति' पर हुआ। परन्तु वह स्थान संकीर्ण था इसलिए जनताको सूचना दे दी गई कि कलसे व्याख्यान सरदार विक्रमसिंहके मकानपर हुआ करेंगे। जालन्धरमें महा-राजके विविध विषयोंपर कोई चौंतीस पैंतीस व्याख्यान हुए।

स्वामीजी अपने व्याख्यानोंमें प्रकरणानुसार मनोरञ्जक कहानियां भी सुना-या करते थे। चापलूसीपर, हाँमें हाँ मिलानेपर और सत्यवचनियापनपर महा-राज बैंगनका दृष्टान्त दिया करते थे कि एक राजाने बैंगन खानेकी इच्छा प्रक-टकी। पुरोहितने अनुमोदन करते कहा कि राजन्! बैंगन एक अत्युत्तम पदार्थ है। यह श्यामसुन्दर श्रीकृष्णकी तरह श्यामल है। इसके सिरपर मनोहर मुकुट विराज रहा है और इसका नाम भी बहुगुण है।

पुरोहितके प्रशंसा करनेपर राजा महाशय अति प्रसन्न हुए और प्रतिदिन दोनों काल, बैंगनका यथेष्ट भोग लगाने लगे। बैंगनोंके अधिक आहारसे उन की देहमें पित्त प्रकुपित हो गया और अर्श-रोगसे रक्त-स्राव होने लगा। जब राजा महाशयका स्वास्थ्य बिगड़ गया तो उसने पण्डितजीसे कहा कि बैंगन तो बहुत बुरे हैं। पुरोहितजीने कहा कि श्रीमन्तका कथन सर्वांशमें सत्य है। राजन्! इसका रङ्ग ही देखिए, विधाताने कैसा भूंड़ा, कोयले-सा काला-कलूटा रचा है। इसके सिरपर काँटोंका मुकुट है और सीधी शूल ठुक रही है।

लोग सुगम धर्म्मको अधिक स्वीकार करते हैं। सत्यासत्यका कोई ध्यान

नहीं रखते। हमारे बड़े बूढ़े ऐसा ही करते आये हैं। इसलिए हम भी इस टेर-को लिए चलेंगे, ऐसी बातोंपर स्वामीजी दिल्लीकी मिठाईका दृष्टान्त दिया करते थे कि एक वार बहुतसे गंवार दिल्लीमें आए। अच्छी अच्छी मिठाइयाँ देखकर उनके मुँहमें पानी भर आया। परन्तु पर्याप्त पैसे पास न होनेके कारण वे मिठाई मोल न लेसके। एक हलवाईने उन्हें सस्ती मिठाई देनेका वचन दिया और भीतर जाकर ऊँटके लेड़ों और बकरीकी मेंगनपर खाँड चढ़ा दी। फिर बाहर आकर उनसे कहने लगा कि लो तुम्हें सस्ती मिठाई देता हूं। ऐसी मिठाई यहाँसे नित्य ले जाया करो। उन गँवारोंने उसे दाम देकर अपनी झोलियाँ भर लीं और उस मिठाईका आनन्दपूर्वक भोग लगाया।

वे दिल्लीमें प्रतिदिन आकर वह मिठाई मोल ले लेते थे। एक दिन एक बुद्धिमान् मनुष्यने उनको समझाया कि तुम्हारी मिठाई अच्छी नहीं है और भीतरसे बकबकी सी है। गँवार बोले कि तुम हमें योंही बहकाते हो। यह तो दिल्लीकी मिठाई है। और बड़ी सस्ती है। फीकी है तो क्या हुआ ? हमारे बाप दादा इसीको खाते आये हैं। इसको छोड़कर हम दूसरी मिठाई कभी भी न लेंगे।

स्वामीजी एक राजाकी कथा सुनाया करते कि एक ठग एक राजाको मिला और कहने लगा कि मैं एक ऐसा वेष निर्माण कर सकता हूं, जो केवल उसी-को दृष्टिगोचर हो सकता है जो निर्दोष मातापिताकी सन्तान है। राजाने ऐसे वेषके लिये उत्कण्ठा प्रकट की। वह वञ्चक मनुष्य कुछ दिनोंके अनन्तर आकर राजा महाशयसे कहने लगा कि वह अद्भुत दिव्य-वेष बन गया है। भीतर पधारिये, श्रीमन्तको उससे विभूषित कर दिया जाय। राजा सुप्रसन्नतासे उसके साथ भीतर गया और वंचकने उसके बहुमूल्य-वस्त्र उतरवा लिये। फिर योंही इधर उधर हाथ फिराकर वह कहने लगा कि श्रीमन्तजी ! अब आपको दिव्य वेष पहरा दिया है। मुझे पारितोषिक दीजिये और स्वच्छंदतासे राज्य पाटका काम-काज करने लग जाइये।

अब वह राजा, यद्यपि अपनेको वस्त्रहीन देखता था परन्तु वंचकके वचनानुसार अपनी मा ही को दूषित समझता था। जो कोई उसे उसकी अवस्था सुझाता तो वह उसके माता पितामें भी चरित्र-दोषकी कल्पना कर लेता। इस प्रकार, विहंगम दशामें राजा महाशय न्यायालयमें आ पहुंचा।

बुद्धिमान् मंत्रीने, अपने मुग्ध महाराजासे कहा कि राजन्! आपका वेष तो विदेशी है, परन्तु यदि एक स्वदेशी कौपीन कसलो तो बहुत अच्छा हो। मंत्री महाशयके बहुत समझानेसे राजाने माना कि मैं वास्तव में ठगा गया हूं।

स्वामीजी इस दृष्टान्तसे यह शिक्षा निकाला करते थे कि जो लोग अपनी बुद्धिसे काम नहीं लेते और दूसरेके बहकानेमें फँस जाते हैं, जो अपने धर्म्म-कर्मको आप नहीं समझते, अपने देश तथा जातिकी दशाको आप नहीं निहारते, अपने धर्म्म-ग्रन्थों और इतिहासोंको आप नहीं पढ़ते, केवल पर-कथनपर ही निर्भर करते हैं, वे अन्तमें, उस मूर्ख राजाकी भांति, दीन हीन होकर दूसरोंकी दृष्टिमें उपहासकी वस्तु बन जाते हैं।

महाराजने वहाँ वेश्या-कुव्यसनका घोर खण्डन किया, तीर्थ-माहात्म्य और गङ्गा-स्नानके फलको भी अमूलक बताया। अमृतसरके दरबार साहबके विषयमें स्वामीजीने कहा कि दीपमालाके दिन सिख वहाँ सकेश स्नान करते हैं। हमारा जी तो वहाँ आचमन करनेको भी नहीं चाहता। इसपर सरदार विक्रमसिंहने कहा कि स्वामीजी! आज तो हमपर भी वर्षा हो गई।

स्वामीजीने उत्तर दिया कि व्याख्यानमें पक्षपात नहीं किया जा सकता। सत्य बातको कहना ही पड़ता है।

मुक्तिके विषयपर बोलते हुए महाराजने कहा, "जीव और ब्रह्मको एक मानना भारी भ्रम है। पिता-पुत्रका सम्बंध और परमानन्दकी प्राप्ति ही मुक्ति है। मोक्षसे जीव कल्पान्तरमें फिर जन्म धारण करता है। श्री कृष्ण आदि महापुरुष मोक्षसे ही आये थे। पापोंका नाश किसी तीर्थ आदि स्थानपर नहीं हो सकता। दुष्कर्म तो शुद्ध सङ्कल्प, तपस्या और फलभोगसे नष्ट होता है।

स्वामीजीके शुभागमनके समय वेद-ज्ञानके विषयमें पञ्जाबकी यह दशा थी कि महाशय रामनाथने स्वामीजीसे निवेदन किया कि महाराज! जब हम लोग अपने पुरोहितोंसे पूछते हैं कि अथर्ववेद क्या है? तो वे उत्तर देते हैं कि स्त्रियाँ जो गीत विवाहमें गाती हैं वही अथर्ववेद है। स्वामीजीने कहा कि अथर्ववेद ब्याहोंके गीत नहीं हैं। वह एक अत्युत्तम ग्रन्थ है। उस समय महाराजने उसे अथर्ववेदके दर्शन भी करा दिये।

मौलवी अहमद हसनने स्वामीजीके साथ पुनर्जन्म और चमत्कारपर विवाद किया। इसमें मौलवी महाशयको पूर्ण पराजय प्राप्त हुई। यह वाद कई समाचार-पत्रोंमें भी प्रकाशित हुआ था।

जालन्धर नगरमें अमृत-वर्षा करके श्री स्वामीजी आश्विनसुदी ११ सं० १९३४ दसहरेके एक दिन पीछे लाहौरमें पधारे। अब की, वे नवाब रज़ा अलीखाँके उद्यानमें ठहरे। इसी उद्यानमें, एक पादरी एक कुमारी-सहित स्वामीजीके मिलापार्थ आये। वार्त्तालापमें महाराजने कहा, "सम्पत्तिको बहुत ही बढ़ जाना अन्तमें अवनतिका साधन होजाया करता है। आर्य्य जातिके अधः पतनका यही कारण है। अति धनके कारण अब अँगरेजोंकी प्रकृति भी बदल रही है। जिन दिनों जङ्गलोंमें रहा करते थे तो प्रातः—काल, जब भ्रमणार्थ निकलते तो अंगरेज भी घूमते हुए, बहुधा मिलते थे। परन्तु आजकल ये लोग बहुत दिन चढ़े उठते हैं।"

जिन दिनों स्वामीजी अमृतसर आदिमें उपदेश दे रहे थे उन्हीं दिनोंमें एक साप्ताहिक सत्संगमें, श्री शारदाप्रसादजीने एक व्याख्यान दिया और उसमें कहा, "वेद, कुरान और बाईबल आदि सभी ग्रन्थ एक-से ईश्वरीय आदेश हैं।" आर्य्य पुरुषोंने इस कथनको अच्छा नहीं समझा और स्वामीजीके आनेपर उनसे व्यवस्था माँगी। स्वामीजीने शारदा महाशयको उपालम्भपूर्वक कहा, 'आर्य समाजके नियमोंके विरुद्ध आपको बोलना न चाहिये था। ऐसा करनेका अधिकार किसी भी सभासदको नहीं है।" महाराजने सब सभासदोंको अभि-

मुख करके कहा, "चाहे प्रधान भी क्यों न हो, यदि कोई आर्य समाजमें इस समाजके नियमोंके प्रतिकूल कथन करे तो प्रत्येक समासद्को अधिकार है, उसे रोके टोके और बैठा दे।" उस उपदेशका यह प्रभाव हुआ कि आर्य-समाजके सत्संग-स्थानकी दीवारोंके साथ यह लिखकर लगा दिया गया कि आर्य समाजके नियमोंके विरुद्ध बोलनेका किसीको भी अधिकार नहीं है।

एक दिनका वर्णन है कि एक लाट पादरी महाशय स्वामीजीसे मिलने आये। बातचीतमें उन्होंने कहा, "स्वामीजी महाशय! हमें तो 'हिरण्यगर्भः' इत्यादि मंत्रसे यह प्रतीत होता है कि प्राचीन कालके ऋषि-मुनिजन ईश्वरके विषयमें कुछ भी नहीं जानते थे।" स्वामीजीने राय मूलराजसे उस मंत्रका अँगरेजी अनुवाद सुना और फिर बिशप महाशयको कहा, "इस मंत्रका अंगरेजीमें अशुद्ध अनुवाद किया गया है। इसका याथातथ्य अर्थ यह है कि प्रकाशके धाम, जगत्के कर्त्ताधर्त्ता, स्वामी और सुखमय सनातन परमेश्वर की हम उपासना करते हैं।" फिर लाट पादरी महाशय बोले, "बाईबलका महत्त्व देखिये। इसकी शिक्षा सूर्यके उदयास्ततक फैल रही है।"

स्वामीजीने उत्तर दिया, "यह बाईबलका महत्त्व नहीं है, परन्तु आप लोगोंके परिश्रमका परिणाम है। आर्य लोग वेदानुसार ब्रह्मचर्य्यः विद्याप्राप्ति एक स्त्रीसे विवाह, दूरदेशकी यात्रा और स्वदेश-प्रेम आदि शुभ कर्मोंका परित्याग कर बैठे हैं। इसी लिए, इनकी यह अधोगति हो रही है। आप लोग इन वैदिक नियमोंके अनुसार चलते हैं इसी लिए इतनी उन्नतिके दिन देख रहे हैं। वास्तवमें आर्य्य जातिके प्रतापसे ही दूसरी जातियोंमें शिक्षा, सभ्यता और सदाचार विस्तृत हुआ है।"

आश्विन सुदी १४ सं० १९३४ आदित्यवारको आर्य्य समाजका साप्ताहिक सत्संग था। उसमें महर्षि भी सम्मिलित हुए। उसी दिन स्थानीय ब्राह्मसमाजका वार्षिकोत्सव था। साप्ताहिक सत्संग समाप्त हो जानेपर भगवान् दयानन्द

अपने दो ढाई सौ भक्तोंसहित ब्राह्म-समाजके उत्सवपर पधारे। ब्राह्म-समाजियों और सर्वसाधारणपर उनकी इस उदारताका अत्युत्तम प्रभाव पड़ा।

छठा सर्ग।

लाहौरमें स्वामीजीके प्रचार और आर्य समाजकी स्थापनासे पञ्जाबके सारे नगरोंमें धर्म्मान्दोलन होने लगा। धर्म्मके नूतन संस्कारकर्त्ताकी उज्ज्वल कीर्ति सर्वत्र फैल रही थी। प्रत्येक नगरमें ऐसे मनुष्योंकी पर्याप्त संख्या उत्पन्न हो गई थी जो धर्मके नूतन संस्कारके पक्षपाती थे, जिनके हृदयोंमें जातीय सुधारके उत्ताल तरल तरंग उठ रहे थे। ऐसे ही कुछ एक महानुभाव, महाशयोंने फीरोजपुर छावनीमें 'हिन्दू सभा' नामसे एक सत्संग स्थापित कर रक्खा था। इस सभाके दो एक सभ्य लाहौरमें श्रीस्वामीजीके उपदेश भी सुन गये थे। उन्होंने, अपने नगरमें जाकर, अपने भाइयोंके चित्तपटपर महाराजके परम पवित्र चरित्रका चित्र ऐसा चित्रण किया कि वे लोग श्रीदर्शनोंके लिये अति व्यग्र हो गये। उन्होंने श्रीसेवामें विनय पत्रोंका तार लगा दिया।

इस हिन्दू सभाके प्रधान श्रीमान् मथुरादास थे। उनके हृदयमें श्रीमहाराजके लिये इतना गहरा, इनता प्रबल और उच्च भक्ति-भाव उत्पन्न हुआ कि उन्होंने एक नूतन आवास, इसी लिये बनवाया कि उसमें महाराजका निवास कराया जायगा।

फीरोजपुर छावनीके सभ्योंने स्वामीजीको लिवा लानेके लिए अपने एक सभ्यको लाहौर भेज दिया। स्वामीजी कार्तिक वदी ४ सं० १९३४ को फीरोजपुरमें पधारे। जो आवास महाराजके निवासके निमित्त निर्माण किया गया था वह वस्तीमें था इस लिये स्वामीजी लाला बनवारीलालकी कोठीमें ठहरे। व्याख्यानोंके लिये श्री मथुरादासजीके आवासके सामने एक स्वच्छ

स्थानपर मण्डप बनाया गया और पुष्पादिसे सुसज्जित किया गया। वहीं महा-राजके उपदेश होने लगे।

स्वामीजीका पहला व्याख्यान 'सृष्टि उत्पत्ति' पर था। व्याख्यानके बीचही एक पण्डित कहने लगा कि हमको कुछ प्रश्न करने हैं इस लिए अवसर दिया जाय। महाराजने कहा कि व्याख्यानके पश्चात् पूछ लीजिएगा। उसने कहा कि तबतक तो मैं पूछने योग्य बातें भूल जाऊंगा। तब महाराजने कहा कि यदि भूल जानेका भय है तो लिखते जाइए। व्याख्यानकी समाप्तिपर आपका समा-धान कर दिया जायगा। परन्तु वह पण्डित ऐसा अधीर होगया कि उसे यह भी सुध बुध न रही कि मैं कह क्या रहा हूं ? उसकी जीभ तुतला गई और काया काँपने लगी। मुँहसे झाग फेंकता और अण्ड बण्ड बकता सभा-स्थानसे निकल गया।

पण्डित कृपाराम नामक एक सज्जन प्रश्न पूछनेके लिए आया और महा-राजको सिंहासनपर विराजमान देखकर कहने लगा, "आप तो ऊंचे आसनपर बैठे हैं, हम नीचे खड़े होकर आपके साथ शास्त्रार्थ क्यों करें ? हमें भी अपने ब-राबरकी कुर्सी दीजिए।"

महाराजने उसके लिए कुर्सी लानेकी आज्ञा देकर कहा, "कुर्सीके बिनाभी आप के बोलनेमें तो कोई बाधा नहीं पड़ती, परन्तु यदि मेरा ऊंचा बैठना आपको खटकता है तो ईर्ष्या न कीजिए। मैं भी नीचे स्थानपर बैठ जाता हूं।" इन्हीं बातोंमें कुर्सी आ गई। तब कृपाराम महाशयने पूछा, "खुदा महदूद है या ला महदूद ?" महाराजने कहा, "मैं अरबी नहीं जानता, आर्यभाषामें भाषण कीजि-ए। क्या आपका तात्पर्य एकदेशी अथवा सर्वव्यापकसे है ?" उसने कहा, "हाँ, इसीसे है।" तब उन्होंने कहा, "परमात्मा सर्वव्यापक है।"

कृपारामजीने अपनी जेबसे तत्काल घड़ी निकालकर मेजपर रख दी और कहा कि "यदि ईश्वर सर्वव्यापक है तो बताइए कि इस घड़ीमें कहाँ बैठा है।"

महाराजने उत्तर दिया कि "परमात्मा आकाशकी भांति परम सूक्ष्म और

सर्वव्यापक है। इस लिए चर्म-चक्षुओंसे अगोचर है।" फिर अपना सोटा उठा कर कहा, "आकाश सर्वव्यापक है, इस सोटेके भीतर बाहर भी रमा हुआ है। जैसे इस सोटेमें आकाश तो है पर दीखता नहीं, इसी प्रकार आपकी घड़ीमें ईश्वर है, परन्तु परम सूक्ष्म होनेसे इन्द्रियों द्वारा ग्रहण नहीं हो सकता।" यह सुनकर कृपाराम निरुत्तर होगये।

एक दिन फिरोजपुर छावनीके बड़े मन्दिरका पुजारी रघुनाथ, स्वामीजीके निकट गया। स्वामीजीने उससे कहा कि प्रश्न पीछे कीजियेगा, पहले यह तो बताइए कि पुजारी शब्दका अर्थ क्या है? रघुनाथ इसपर अवाक् बना रहा। तब श्री स्वामीजीने बताया कि पुजारी पदका अर्थ है पूजाका शत्रु! आप लोग पण्डित होकर ऐसे नाम क्यों रख लेते हैं?"

रघुनाथने महाराजसे कहा, "वेदके आधारपर सारे शास्त्र रचे गये हैं, इस लिए उनको भी तो वेदोंकी तरह प्रमाण मानना चाहिये।"

महाराजने उत्तर दिया कि "वेदके आश्रयसे तो अन्य ग्रन्थ बने हैं, परन्तु थैलोमें रक्खे रुपयोंको जैसे परीक्षक ही परख सकता है ऐसे ही दूसरे ग्रन्थोंकी सत्यताका निर्णय करना केवल विद्वानोंका ही काम है।"

स्वामीजीसे अनेक पण्डितों और मौलवियोंने प्रश्न पूछकर अपने सन्देह मिटाये, भ्रम दूर किये और आत्मिक प्रसाद उपलब्ध किया। महाराजके प्रताप से उस हिन्दू सभाने ही आर्य समाजका चोला धारण कर लिया। विधिपूर्वक आर्य समाजकी स्थापना हो गई।

भक्तस्वरूपसिंहजी एक भजन-पाठ करने वाले पुरुष थे, सत्संगरसके रसिक थे। एक दिन वे श्री महाराजसे बहुत देरतक योग-चर्चा करते रहे। भक्तजीने भगवान्से योग-मार्गके अनेक बहुमूल्य मोती उपलब्ध किये और अपनेको कृतार्थ बनाया।

फीरोजपुर-निवासियोंको धर्म्म-जीवन दान करनेके पश्चात् स्वामीजी कार्तिक वदी १५ सं० १९३४ की सायंको वहाँसे चलकर अगले दिन प्रातःकाल लाहौर-में आ विराजे।

कार्तिक सुदी १ सम्वत् १९३४ को लाहौर आर्य समाजकी अन्तरङ्ग सभा का अधिवेशन था। उसमें आर्यसमाजके नियम निर्मित, परिवर्त्तित और संशोधित होकर सभासदोंके सामने स्वीकृतिके लिये रक्खे गये थे; सभासद उनपर मतामत प्रकाशित कर रहे थे। दैवयोगसे उस समय उस सभामें स्वामीजी भी विराजमान थे। सभासदोंने उनसे विनयकी कि आप भी अपनी सम्मति प्रदान कीजिये। महाराजने कहा जब मैं आपकी अन्तरंग सभाका सभासद् ही नहीं हूं तो सम्मति कैसे दे सकता हूं। महाराजकी महामूल्य सम्मतिसे अलभ्य लाभ उपलब्ध करनेके लिये, सभासदोंने सर्वसम्मतिसे, उनको उसी समय सभासद् बना लिया।

लाहौरसे प्रस्थानकर श्री महाराज कार्त्तिक सुदी द्वितीया सम्वत् १९३४ को प्रातःकाल रावलपिण्डीमें पहुंचे। वहाँ उनको श्रीयुत गिरीशचन्द्र महाशयने स्वागतपूर्वक लाकर 'जामसनजी' पारसीकी कोठीमें उतारा। गिरीश महाशयने विज्ञापन आदि बाँटकर व्याख्यानोंका उचित प्रवन्ध कर दिया। यहाँ स्वामीजी बीस दिनपर्यन्त प्रति सायं उपदेश देते रहे। उनके व्याख्यान मूर्त्ति-पूजा खण्डन और अवतारवादके विरुद्ध भी बड़े धड़ल्लेके हुए। इससे पोठोहारके पौराणिक जगत् में भयङ्कर भूकम्प आ गया। अबोधजन विविध प्रकारके विघ्न-बाधा और विरोध करनेपर तुल गये। उस समय, उनसे तो कुछ न बन आया, परन्तु सेठ जामसनजीको भड़काने लगे।

स्वामीजीने जब देखा कि सर्वप्रियताके बनाये रखनेके लिये, सेठ महाशय कोठी छुड़वाना चाहते हैं तो वे प्रबंध करके सरदार सुजानसिंहके उद्यानकी बारहदरीमें जा विराजे। उस उद्यानमें भी वे प्रति सायंको सत्संग लगाते और सत्योपदेश देते थे।

स्वार्थ-सिन्धु और उदरार्थी लोगोंने सारे नगरमें यह बात फैला रक्खी थी कि दयानन्द अभ्यन्तरसे ईसाई है; लोगोंको भ्रमानेके लिए भगवे पहने फिरता है। इसका उद्देश्य लोगोंको धर्म्मसे भ्रष्ट करना और सनातन हिन्दू धर्म्मको नष्ट

करना है। कोई कोई यह भी कहते थे कि यह नास्तिक है; इसके पास जानेसे पातक चढ़ता है। इसका मुँह देखनेसे पाप लगता है। फिर भी, प्रेम प्रधान पोठोहार प्रान्तके मुख्य नगरमें, ऐसे सैकड़ों सत्संगी थे जो अति भावनासे, अपार प्रीतिसे, अतुल लग्नसे, असीम श्रद्धासे श्री उपदेशोंको श्रवण करने जाते थे। उस नगरमें महाराजकी कीर्ति-कथा कहनेवाले भक्त भी बीसियों थे ऐसेही सज्जनोंके उत्साहसे वहाँ समाजकी स्थापना भी हो गई।

एक दिन व्याख्यानके उपरान्त अनेक सज्जन श्रीसेवामें बैठ सत्संग कर रहे थे। प्रसङ्ग चलनेपर स्वामीजीने कहा, "आर्य लोगोंकी दशा अत्यन्त शोचनीय है। ये लोग अपनी रक्षा करना तो जानते ही नहीं। अन्य बातें तो जाने दो, जब कभी कोई ईसाई अथवा मुसलमान इनके धर्म्म पर आक्रमण करता है और ब्रह्माकी कथा सुनाता है तो यह मुँह ताकते रह जाते हैं। इनसे उत्तर तक नहीं बन पड़ता। ब्रह्माकी कहानी तो किसी प्रमाणिक पुस्तकमें नहीं है, परन्तु लूतकी कथा बाईबलमें विद्यमान है। यदि ये लोग दूसरोंके ग्रन्थ देखें तो ऐसी बातोंसे उनका मुख बन्द कर सकते हैं।"

अगले दिन ईसाई आपसमें सम्मति करके स्वामीजीके पास आये और उनमेंसे एकने कहा कि आपने कल जो लूत महाशयके विषयमें सुनाया था वह सब झूठ है। महाराजने उसे बहुतेरा समझाया कि संन्यासी जन असत्य भाषण नहीं करते परन्तु वह ईसाई अपना दुराग्रह किये ही जाता था। अन्तमें महाराजने बाईबलमेंसे वह कहानी निकालकर उसके आगे रख दी। इससे वह बहुत कटा और फीका पड़ गया।

वहाँके पौराणिक पण्डित अपने घरोंमें, मन्दिरोंमें, धर्म्मशालाओंमें और यजमानोंके मकानोंपर शास्त्रार्थ करनेके लिए भुजायें तो बहुत संवारते थे परन्तु उस महामल्लके सम्मुख होनेसे, भीतर ही भीतर, सभी जी चुराते थे। उन्हीं दिनोंमें वहां एक विद्वान् संन्यासी, सम्पतगिरिजी आये हुए थे। पण्डितोंने अपनी विपत्ति उनके सिरपर डालनी चाही। उन्होंने उनके पास जाकर अत्याग्रह किया

कि दयानन्दसे शास्त्रार्थ करनेके लिए आप हमारे साथ चलिए। उन देवताओं के टालनेके लिए गिरिजीने साथ चलना स्वीकार कर लिया, परन्तु जब पण्डित लोग उनके भरोसे दल बांधकर स्वामीजीपर चढ़ चले तो गिरिजीने, ठीक समय पर, किनारा कर लिया। जब गिरिजी, मक्खनमेंसे बालकी भाँति, उनमेंसे बाहर निकल गये, तो 'गले पड़ा ढोल' उन्हें आप ही बजाना पड़ा!

उस दिन सारे नगरमें धूम मच गई थी कि आज भूदेव-दल स्वामीजीसे शास्त्र समर करने जा रहा है। इस लिए दर्शकोंकी टोलियां भी सुजानसिंह जीके उद्यानमें पहुंचने लगीं।

ऐसे समयमें, एक प्रेमीने स्वामीजीसे कहा, "आज पण्डित लोग बड़ी धूम-धामसे शास्त्रार्थ करने आ रहे हैं।" जिस केसरीने ऐरावत हस्तीका मदमर्दन किया हो वह क्षुद्र पशुओंकी कोरी भबकियोंसे कब डरता है? जिस महात्माने काशी, बङ्ग और दक्षिणके महाविद्वानोंका मुख बन्द कर दिया हो वह भला रावलपिण्डीके पण्डितोंकी कब चिन्ता करने लगा था! महाराजने उसे उत्तर दिया "उन्हें आने तो दो, फिर देखना होता क्या है।"

पण्डित-दल आकर महाराजके पास बैठ गया। थोड़ी देर तक तो इधर उधरकी बातें होती रहीं। अन्तमें पण्डित ब्रजलालजीने एक श्लोक उच्चारण किया। स्वामीजीने उनसे पूछा कि यह श्लोक किस ग्रन्थका और किस समय का है? इसपर ब्रजलाल निरुत्तर हो गये।

हरिपुरके पण्डित हरिश्चन्द्रजीने एक महा अशुद्ध श्लोक बोला। इसपर स्वामीजीने उनको डाँटकर कहा कि यदि कोई सार-सर्मकी बात करना जानते हो तब तो वार्त्तालाप करो; नहीं तो योंही वितण्डावादमें मेरा समय क्यों बिगाड़ते हो? यह कोई अबोध बालकोंकी पाठशाला नहीं है कि जो भी मुँहमें आये कहते चले जाओ, शुद्धाशुद्धपर कुछ भी ध्यान न दो। ब्रजलालजीने भी हरिश्चन्द्रकी अशुद्धिको स्वीकार किया। इसपर वे सब शान्त होकर चले गये।

रावलपिण्डीमें स्वामीजीके पास महाराजा जम्मू तथा कश्मीरका निमन्त्रण

आया कि इस राज्यमें पधारकर शोभा प्रदान कीजिये। स्वामीजीने उत्तर में कहा, "महाराजा जम्मूने बहुतसे मन्दिर बनवाये हैं। वे हैं भी पक्के प्रतिमापूजक मैं यदि वहाँ जाऊँ तो खण्डन अवश्य करूंगा। इससे वे चिढ़ तो जायेंगे परन्तु मुझसे लाभ नहीं उठा सकेंगे, इस लिए अभी मैं वहाँ नहीं जाना चाहता। उस समय स्वामीजीने एक कहानी सुनाई कि "मारवाड़के एक राजाके यहाँ हम गये। वह पन्द्रह सेरतक मालारूपसे रुद्राक्षका बोझा उठाये फिरता था। सवेरे स्नान आदिसे निवृत्त होकर पाँचसेर मिट्टीकी छोटी छोटी गोलियाँ बनाता और एक ब्राह्मण उनपर जल चढ़ाता जाता था। हमने उसको कहा कि आप जब तक हमारा उपदेश न सुनेंगे हम आपका आतिथ्य स्वीकार नहीं करेंगे। तीस दिन तक हमने वहाँ निवास किया और प्रतिदिन उसे उपदेश देते रहे। अन्तमें उसके विचार-नेत्र निर्दोष हो गये और उसने वह अखिल दण्ड-पाखण्ड परित्याग कर दिया।"

एक दिन भ्रमण करते समय स्वामीजीको सम्पत्गिरिजी मिल गये। शिष्टाचारके अनन्तर महाराजने उनसे कहा कि कुछ उपदेश भी दिया करो। जब गिरिजी अपने डेरेपर गये तो लोगोंने उनसे पूछा कि आज दयानन्दजीसे क्या बातचीत हुई है? उन्होंने उत्तर दिया कि वह ब्राह्मणवंशीय एक विद्वान् संन्यासी है। हम दोनों कभी इकट्ठे पढ़ा करते थे। लोगोंने कहा, आप भी उनकी भाँति व्याख्यान क्यों नहीं देते? उन्होंने उत्तर दिया कि वह तो निधड़क हो गया है, परन्तु हमसे तो ऐसा हुआ नहीं जाता।

एक दिन सरदार विक्रमसिंहजीने* निवेदन किया कि सुनते हैं कि ब्रह्मचर्य्यसे मनुष्य महाबली बन जाता है, क्या यह सत्य है? स्वामीजीने उत्तर दिया कि ब्रह्मचर्य्य धारण करनेका जो महत्त्व शास्त्रोंने वर्णन किया है वह सर्वथा सत्य है।

तब सरदार महाशय बोले कि महाराज! आप भी तो ब्रह्मचारी हैं। हमें

* नोट—ऐसा कहा जाता है कि यह घटना जालन्धरकी है।

आपमें कोई विशेष बल तो प्रतीत नहीं होता। महाराजने इस बातका कोई उत्तर न दिया। सरदार महाशय बड़ी देरतक सत्संगमें बैठे रहे। चलते समय जब नमस्कार करके गाड़ीमें आरूढ़ हुए तो महाराजने उनकी गाड़ीको पीछेसे पकड़ लिया। विक्रमसिंहजीने घोड़ोंको बहुतेरे कोड़े लगाये परन्तु वे गाड़ीको न खींच सके। सरदार महाशयने जब पीछेकी ओर मुड़कर देखा तो महाराजने गाड़ीको छोड़ दिया और कहा कि ब्रह्मचर्य्यके बलका प्रमाण आपको मिल गया है। सरदार महाशय उनके इस सामर्थ्यपर अति विस्मित हुए।

रावलपिण्डीमें धर्म्म प्रचार करके श्रीस्वामीजी गुजरातको जाते हुए, मार्गमें झेलम ठहर गये और सेठ जामाजीके बङ्गलेमें उतरे। झेलममें महाराजने पहला व्याख्यान एक सराएमें दिया और दूसरा अपने उतारेपर। वहाँ स्थान पर्याप्त न था इस लिए पादरी महाशयोंकी प्रार्थनापर स्वामीजीने शेष सारे व्याख्यान स्कूलमें दिये।

दो चार दिनतक तो पादरी लोगोंने धर्म्म-चर्चा की, परन्तु बार बारकी पराजयसे बचनेके लिये उन्होंने वह क्रम तोड़ दिया। झेलमकी ईसाई-पाठ-शालाके मुख्याध्यापक महाशय शिवचरण घोष थे। वह बङ्गाली ईसाई थे। उन्होंने भी स्वामीजीसे धर्म्म-चर्चा की। परन्तु महाराजने बाईबलके वाक्य बोलकर उनकी ऐसी युक्तिसंगत समालोचना की कि घोष महाशय देखतेही रह गये। उनसे कोई उत्तर न बन पड़ा।

स्वामीजीके प्रभावशाली उपदेशोंसे झेलममें आर्य्य-समाज स्थापित होगया और सभासद बड़े उत्साहसे धर्म्म-कार्य्यमें लग गये। आर्यसमाजके पहले संगीत शास्त्री और प्रसिद्ध भजन-निर्माता, महता अमींचन्दजीने श्रीमहाराजके दर्शन पहले झेलममें ही किये। उसी समय उनके हृदयमें श्रीचरणोंकी भक्तिका अङ्कुर उग आया। अन्तको धीरे धीरे महताजी पक्के स्वामी-भक्त बन गये।

उन दिनों स्वामीजीके साथ वेद-भाष्य लिखनेके लिये तीन पण्डित थे। अँगरेजीके पत्रव्यवहारके लिए एक अँगरेजी जाननेवाला था। अन्यान्य कार्योंके

लिए चार पाँच सेवक थे। स्वामीजी निवास स्थानपर तो साधारण वेशमें ही रहते थे, परन्तु जब व्याख्यान देने जाते थे तो सिरपर एक रेशमी पीताम्बर नीचे एक पीली रेशमी धोती और ऊपर एक ऊनी चोगा पहन लेते थे। वे इस वेषमें पूर्ण तेजोधाम दिखाई देते थे; गौरवकी मोहिनी मूर्ति जान पड़ते थे। उनकी उज्ज्वल, गम्भीर, प्रभावशालिनी और दैवी आकृतिको देखकर लोगोंके अन्तःकरणमें आप ही आप श्रद्धा, भक्ति और प्रेम उमड़ आता था। महाराज रातका अधिक भाग ध्यानमें बिताया करते थे। भोजन उनका परिमित था। वे हुक्का पिया करते थे।

एक वृद्ध संन्यासी वरसोंसे तटनी-तटपर निवास करते थे। वे संस्कृतके अच्छे पण्डित थे लोगोंमें प्रसिद्ध था कि वे एक योगी महात्मा हैं। स्वामीजी और यह वयोवृद्ध महात्मा मिलकर, चिरकालतक वार्त्तालाप किया करते। इनका परस्पर प्रेम भी हो गया था।

गुजरातमें डाक्टर बिशनदासजी एक प्रसिद्ध वेदान्ती थे। वे सामाजिक सुधार भी चाहते थे। स्वामीजीको व्यापिनी कीर्त्तिसे वे भी प्रभावित थे। उन्होंने महाराजको पत्र लिखकर प्रार्थनाकी कि कृपया लाहौर लौटते समय गुजरात-वासियोंको भी कृतार्थ करते जाइएगा। डाक्टर महाशयकी विनतीपर स्वामीजी लगभग पौष सुदी ६ सं० १६३४ को झेलमसे गुजरात आये। एक दिन तो दमदमामें ठहरे, परन्तु आगामी दिन नगरसे बाहर फतेह-सरमें जा विराजे। स्वामीजीके प्रेमियोंने, वहाँके विद्यालयके मुख्याध्यापक, बुकैनयन महाशयकी आज्ञा लेकर शाखा पाठशालामें महाराजकी व्याख्यान-माला आरम्भ कराई। उनके उपदेश बड़े ही प्रभावजनक होते थे।

गुजरातमें नन्दलालजी और होशनाकरायजी, दो प्रधान पण्डित थे। होशनाकराय जम्मूमें पढ़ानेका काम करते थे। एक दिन उन्होंने स्वामीजीसे कहा, "मूर्त्ति-पूजाका विधान मनुस्मृतिमें विद्यमान है।" स्वामीजीने मनुस्मृतिकी पुस्तक उठाकर कहा, "लीजिए यह मनुस्मृति है; इसमें मूर्ति-पूजाका विधान

जिस स्थलमें है वह दीखाइए।" पण्डित महाशयने झेंपकर कहा, "यह आपकी मनुस्मृति है, इसमें न होगा, परन्तु हमारी मनुस्मृति में अवश्य है। कल आपको दिखा दूंगा।"

अगले दिन होशनाकरायजी श्री उपदेशमें तो आये, परन्तु सर्वसाधारणमें छिपकर बैठ गये। व्याख्यानकी समाप्तिपर श्री महाराजने कहा, "कल वाले पण्डित यदि आये हैं तो मनुस्मृतिमें प्रतिमा-पूजनका विधान दिखाकर अपनी प्रतिज्ञाका पालन करें।" होशनाकरायजी आपतो न उठे परन्तु दर्शकोंने आग्रहपूर्वक उनको खड़ा कर ही दिया। उस समय उनकी बगलमें एक पुस्तक भी थी। पण्डित महाशयने एक श्लोक बोलकर कहा, "यह मनुस्मृतिका श्लोक है। इसमें मूर्ति-पूजाका उपदेश विद्यमान है।"

स्वामीजीने कहा, मिथ्या क्यों बोलते हो ? यह श्लोक मनुस्मृतिका नहीं, किन्तु विष्णुपुराणका है। आपने बगलमें भी विष्णुपुराण ही दबा रक्खा है।" इसपर पण्डितजी मारे लज्जाके पानी पानी हो गये।

फिर एक दिन पण्डित होशनाकरायजीने स्वामीजीसे तर्क-शास्त्रपर वाद करनेकी इच्छा प्रकटकी। महाराज तो सदा तैयार ही रहते थे। उन्होंने स्वीकार कर लिया। इस वादका मध्यस्थ पण्डित नन्दलालजीको नियत किया गया। शास्त्रार्थ व्याप्ति-वादपर होने लगा। पण्डित महाशय नव्य न्यायकी रीतिसे व्याप्तिके लक्षण करते थे और स्वामीजी उनके लक्षणोंमें दोष दिखाकर महाभाष्यमें वर्णित लक्षण बताते थे। जब मध्यस्थ महाशयकी सम्मतिका समय आया तो उसने महाराजके पक्षकी पुष्टिमें अपना मत प्रकाशित किया। इसके उपरान्त होशनाकरायजी शान्त हो गये।

पण्डित नन्दलालजीने भी स्वामीजीसे प्रश्न पूछकर अपने सन्देह दूर किये। अन्तमें ऊपर कहे दोनों पण्डित स्वामीजीके अनुयायी बन गये।

विरोधी जन भी चुपके नहीं बैठे थे। वे व्याख्यानोंमें ईंट पत्थर फेंकते

रहते थे। एक दिन बहुत अधिक ईंट पत्थर बरसे। सारी सभा हिल गयी, परन्तु स्वामीजी स्थिरतासे उसी स्थानपर बैठे रहे।

विरोधियोंने बुकैनयन महाशयको कहना आरम्भ किया कि आप इनके व्याख्यान पाठशालामें न होने दें। एक दिन बुकैनयन महाशयने स्वामीजीके पास आकर कहा, "आप मृत देहका दाह-कर्म्म करना चाहते हैं, परन्तु वेदमें तो भूमिमें गाड़ना लिखा है।" प्रमाणमें उसने मोक्षमूलरका अनुवाद सुनाया कि हे भूमि ! तू अपनी भुजा पसार, जिसमें मृतककी देह रक्खी जाय।

स्वामीजीने मोक्षमूलरके अनुवादका भली भाँति खण्डन किया फिर उसी मंत्रसे जलाना सिद्ध कर दिया। उन्होंने कहा, "यहाँ यह वर्णन है कि भूमिको खोदकर वेदी बनाई जाय और फिर उसमें मृत देहको जलाया जाय।"

लोगोंने महाराज के कथनपर अति प्रसन्नताका प्रकाश किया, जिस से बुकैनयन महाशय कुछ लज्जित होकर चले गये। अगले दिन उन्होंने स्वामीजीको लिख भेजा कि पाठशालामें व्याख्यान देना बन्द कर दीजिये। इसपर महाराजके प्रेमियोंने पाठशालाके सामनेका स्थान ले लिया और वहीं महाराजके उपदेश होते रहे।

नवीन वेदान्तका खण्डन सुनकर महाशय बिशनदासजी भी बहुत रुष्ट हुए। पहले वे प्रतिदिन स्वामीजीको व्याख्यान-स्थानपर लिवा ले जाया करते थे; अब उन्होंने यह भी छोड़ दिया। परन्तु महाराजकी हृदय-भूमिपर ऐसी बातोंका कुछ भी प्रभाव न पड़ता था।

एक दिन, एक सिख साधु लोई ओढ़े स्वामीजीके पास आया। उस समय महाराज बैठे धूम्रपान कर रहे थे। उस साधुने प्रारब्धवादपर शास्त्र चर्चा चलाई। महाराजने युक्तियों और प्रमाणोंद्वारा उसको बताया कि "प्रारब्ध और पुरुषार्थ दोनोंही ठीक हैं। प्रारब्ध पूर्वके भोगका नाम है। इस जन्ममें जो शास्त्रीय कर्म किये जाते हैं वह पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ अवश्य ही करना चाहिये।

वह साधु महाराजकी बात नहीं मानता था और यही कहे चला जाता

था, "पुरुषार्थकी कोई आवश्यकता नहीं; जो होना होता है वह स्वयमेव होकर ही रहता है।"

स्वामीजीने सेवकको आदेश किया, "इस महात्माकी लोई उतारकर सड़कपर फेंक दो। देखें, पुरुषार्थके विना यह इसके पास कैसे आ जाती है।" जब वह सेवक उससे लोई लेने लगा तो वह साधु लोईसे इतना लिपट गया कि सेवक उसे बल लगाकर भी न उतार सका। फिर उस साधुने स्वामीजीसे कहा, पुरुषार्थ वादको तो आपने सिद्ध कर दिया, परन्तु हुक्का आप क्यों पीते हैं? इसको पराई जूठन पीना है।"

महाराजने कहा, "मैं धूम्रपान कफकी निवृत्तिके लिये करता हूं। धर्म्मशास्त्रमें कहीं इसका निषेध भी नहीं है। मैं अपना हुक्का न किसीको देता हूं और न ही किसी दूसरेका लेकर पीता हूं। इस लिए इसे जूठनका पीना नहीं कहा जा सकता।"

एक दिन बहुतसे मनुष्योंने मिलकर विचार किया कि स्वामीजी सबका मुख बन्द कर देते हैं। उनपर कोई ऐसा प्रश्न करो, जिससे एक वार तो उनको भी नीचा देखना पड़े। वहाँ सर्वसम्मतिसे निश्चय हुआ कि कल यह पूछा जाय कि आप ज्ञानी हैं अथवा अज्ञानी? यदि वे कहें कि मैं ज्ञानी हूं तो उनको कहा जाय कि महापुरुष अहङ्कार नहीं किया करते; और यदि वे अपनेको अज्ञानी कहें तो उनसे कहा जाय कि जब आप स्वयं अज्ञानी हैं तो हमें क्या समझायेंगे?

आगामी दिन जब यह प्रश्न स्वामीजीसे किया गया तो उन्होंने तत्काल उत्तर दिया कि "मैं कई विषयोंमें ज्ञानी हूं और कइयोंमें अज्ञानी। वेद, शास्त्रादि विषयोंमें पूर्ण ज्ञानी हूं और फारसी, अरबी और अँगरेजी आदि विषय में नहीं जानता, इस लिये उनमें अज्ञानी हूं।' यह उत्तर पाकर प्रश्नकर्त्ता लोग हक्के बक्के रह गये और एक दूसरेका मुंह ताकने लगे। उस दिन गुजरातवासियोंको निश्चय हो गया कि स्वामीजीको जीतना सर्वथा असम्भव है; उनकी तात्कालिक स्फुरणशक्ति आश्चर्य्यकारिणी है।

एक दिन दो उच्च राजकर्मचारी स्वामीजीसे मिलने आये। वार्त्तालापके प्रसङ्गमें वे कटाक्षपूर्वक बोले, "स्वामीजी! खण्डनमें क्या पड़ा है? इससे लोग बहुत भड़क उठते हैं। हम तो जिस कर्ममें अपनेको लाभ हो उसीको अच्छा समझते हैं। परहित-चिन्तन और परोपकार एक व्यर्थ ढकोसला है।"

स्वामीजीने गम्भीरतासे उत्तर दिया, "यदि, अपना भला करनाही उद्देश्य हो तो मनुष्यता क्या हुई? अपने भलेका भाव तो गधोंमें भी पाया जाता है। पशुमात्र अपने लिए जीता है। परोपकार और परहितसाधनका नाम ही तो मनुष्यत्व है वे सज्जन इस उत्तरसे शान्त होकर वहाँसे चले गये।

स्वामीजी महाराज परोपकारी और देश हितैषी जनोंसे अतीव प्रसन्न हुआ करते, उनको प्रोत्साहन देनेमें सदा समुद्यत रहते। भारतवासियोंकी हितकामनाका भाव उनके अन्तःकरणमें कितना प्रबल था, इसका प्रकाश निम्नलिखित पत्रसे होता है। पौषसुदी १५ सं० १९३४ को महाराजने गुजरातसे दानापुर आर्यसमाजके मंत्री महाशयको लिखा "जब मैं बङ्गदेशको आऊंगा तो आप सबके मिलापसे अवश्य प्रसन्नता लाभ करूंगा। आप सज्जनोंकी कामना और प्रयत्नसे देशवासियोंकी उन्नति अवलोकन कर मैं अति प्रसन्न हुआ हूं। यह देखकर कि आप अपने देशको उन्नत करनेका यत्न करते हैं, मुझे इतनी प्रसन्नता हुई है कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। कुछ सन्देह नहीं कि आप इसके फलोंका अपने जीवनमें आस्वादन कर लेंगे।

ईश्वर आपको स्वस्थ और हरा भरा रक्खे। आप सबको मेरा आशीर्वाद।"

गुजरात।　　　　　　　　　　　　　　　　दयानन्द सरस्वती।

गुजरात नगरमें धर्म्मका उपदेश देनेके अनन्तर स्वामीजी २ फर्वरीको वजीराबादमें सुशोभित हुए। इस नगरमें उनके आगमनके पूर्वही आर्यसमाज स्थापित था। सामाजिक सज्जनोंने उनको राजा फकीरुल्लाके उद्यानमें ठहराया। महाराजने वजीराबादमें एक सप्ताहपर्यन्त व्याख्यान दिये। उनके भाषणोंमें

सैकड़ों लोग बड़े उत्साहसे आते थे। विरोधियोंके विघ्न डालनेपर भी श्रोताओंकी संख्या नहीं घटती थी।

स्वामीजीका आगमन सुनकर वजीराबादके प्रसिद्ध पण्डित तो अपना बोरिया बदना बाँधकर नगरान्तरमें चले गये। परन्तु इस नगरमें एक वासुदेव नामक पण्डित आया हुआ था। वह अच्छा हृष्ट पुष्ट था और शाक्त पुजारियोंकी तरह लम्बायमान केश रखता था। नगरके उपद्रवी लोग सौ रुपयेका प्रलोभन देकर वासुदेवको स्वामीजीके सन्मुख ले आये। उस दिन वहाँ लोगोंकी भारी भीड़ लग गई। ऐसा प्रतीत होता था, मानों सारा नगर वहां आ गया है।

शास्त्रार्थके आरम्भमें, पण्डित वेद-मन्त्रके नामसे एक श्लोक पढ़कर कहा कि इसमें शालिग्राम और तुलसीका पूजन कहा है; स्वामीजीने वासुदेवको कहा कि यह वेद-मन्त्र नहीं है। आप झूठमूठसे वेदका नाम लेकर अनर्थ ढा रहे हैं। जब वासुदेव कोई उत्तर न देसका तो क्षुद्र प्रकृतिके लोग गोलमाल करने पर उतर आये। दो एक राजसत्ताधारी मनुष्य भी विद्यमान थे, परन्तु ऐसे समय में, वे चुपकेसे चल दिये। ज्यों ज्यों महाराज वासुदेवको वेदमेंसे वह मन्त्र दिखलानेके लिए बल देते थे त्यों त्यों गड़बड़ बढ़ती जाती थी। उसी समय एक छोकरेने सीटी बजाना आरम्भ कर दिया। आर्यसमाजके प्रधानने उस युवकको डाँटकर ऐसा करनेसे रोका। फिर क्या था, वासुदेव सहित पण्डित और कलहप्रिय लोग स्वामीजी तथा आर्यसमाजके प्रधान श्री लद्धारामजीपर टूट पड़े, ज्यों त्यों करके, स्वामीजी अपने पुस्तक-पन्नोंसहित अपने डेरेमें आ गये। परन्तु उपद्रवियोंने फिर भी पीछा न छोड़ा। उन्होंने ईंट पत्थर बरसाते सावन भादोंकी झड़ी लगा दी। महाराज द्वार बन्द करके भीतर बैठ गये और उन लोगोंकी धर्मान्धतापर हँसने लगे।

महाराजका एक कर्मचारी पीछे रह गया। उपद्रवियोंने उसे पकड़कर बहुतही पीटा। जब स्वामीजीको उसके पिटनेका समाचार मिला तो वे आप उसे छुड़ानेके लिए बाहर आये और सिंहकी भांति गर्जे। उनकी गम्भीर गर्जना

मात्रसे, कलहकारी लोग भाग गये। इसके पश्चात् तीन चार दिवसतक उपदेश देकर उन्होंने गुजराँवालाको प्रस्थान किया।

माघ सुदी पञ्चमी सम्वत् १९३४ को महाराज गुजराँवालामें पधारे। सरदार सन्तसिंहजी तथा धर्म्मसिंहजी आदि सज्जन, उनके स्वागतके लिए रेलवे स्टेशनपर गये और उनको अति सम्मानसे लाकर सरदार महासिंहके विशाल भवनमें उतारा।

प्रतिदिन सांझको महाराज व्याख्यान देते थे पञ्जाबमें वे सर्वत्र बहुधा आर्योद्देश्यरत्नमालाके विषयोंपरही व्याख्यान देते थे, क्रमशः एक एक विषय लेकर उसकी विस्तृत व्याख्या किया करते थे। बीचहीमें वेद-मन्त्र दर्शनोंके सूत्र और धर्म्म-ग्रन्थोंके श्लोक सुनाते थे। पाखण्ड खण्डन भी साथ ही साथ होता रहता था। समय समयपर युक्तियोंप्रयुक्तियोंका भी तार लगा देते और प्रकरणानुकूल मनोरञ्जक कहानियाँ तथा प्रहसन-रस बना देनेवाले चुटकुले भी कहते थे। गुजराँवालामें उन्होंने आर्योद्देश्यरत्नमालाके सारे विषय, अठारह दिनमें समाप्त कर दिये। उपदेशके पश्चात्, लोग उनके कथनपर तर्कनायें और शंकायें किया करते। उनका उत्तर वे अति कोमल शब्दोंमें तुरन्त दे देते। किसी भी उत्तरके लिए उन्हें सोचना नहीं पड़ता था।

सातवाँ सर्ग।

स्वामीजीके आगमनके पहले, पंजाबमें पादरियोंका बड़ा प्रभाव था। बहुतसे नवशिक्षित ईसाई-धर्म्मकी ओर झुक रहे थे। भोले भाले ग्रामीण भी, उनकी चिकनी चुपड़ी बातोंकी भूल भुलैयांमें फँस जाते थे। परन्तु स्वामीजीके पधारनेपर उनका सारा मोहनमन्त्र दूर होगया। आर्य लोग समझने लगे कि हमारा धर्म्म सर्वाङ्गसम्पूर्ण है। धर्म-शिक्षाके लिए, हमें भिखमंगा बनकर,

किसी दूसरेके द्वारपर भटकनेकी आवश्यकता नहीं। इस लिए पादरियोंकी ओरसे स्वामीजीका विरोध होना इसका एक स्वाभाविक परिणाम था। गुजरां-वालाके पादरियोंने स्वामीजीसे उनके सिद्धान्त पूछे। उन्होंने उत्तरमें आर्य्यो-द्देश्यरत्नमालाकी पुस्तक उनके पास भेज दी। तत्पश्चात् पादरी महाशयोंने नगरके पण्डितोंको स्वामीजीसे शास्त्रार्थ करनेके लिए उत्तेजित किया। परन्तु कई पण्डित तो उन दिनोंमें नगर ही छोड़ गये थे। एकआधने स्वामीजीके सम्मुख जाना, पातकका कारण बताकर छुटकारा करा लिया।

पण्डित विद्याधरजी गुजरांवालेमें चोटीके विद्वान् थे। उन्होंने एक पाठशा-ला भी चला रक्खी थी। ईसाई महाशयोंने उनको जाकर कहा, "दयानन्दजी आपके और हमारे दोनों मतोंके विरोधी हैं। इसलिए हमारे साथ मिलकर उनसे शास्त्रार्थ कीजिए।

श्री विद्याधरजीने उनको उत्तर दिया, "मैं ऐसा नहीं कर सकता। स्वामी-जीका और हमारा घरेलू मत-भेद है। इसपर हम आपसमें, अपनोंकी तरह जब चाहें बातचीत कर सकते हैं। आपके साथ मिलकर उनसे शास्त्रार्थ करना तो स्वजन-द्रोहरूप महापापका भागी बनना है।" पण्डित विद्याधरजी एक दिन महाराजके निकट आकर बड़ी देरतक वार्त्तालाप भी करते रहे।

जब पादरियोंको पण्डितोंसे निराशा होगई तो वे, आप धर्म्म-चर्चा करने के लिए उद्यत होगये। दोनों पक्षोंकी सम्मतिसे वादका समय दिनके चार बजे और स्थान ईसाईयोंकी पाठशालाका मकान, निश्चित हुआ। फाल्गुन वदी द्वितीया सम्वत् १९३४ को दिनके चार बजे स्वामीजी ईसाई पाठशालाके मका-नमें पहुंच गये। उस दिन नगरके प्रतिष्ठित जन और प्रायः सारे राजकर्मचारी वहाँ उपस्थित थे। मकान लोगोंसे खचाखच भरा हुआ था।

लिखित-वाद होनेका निश्चय हुआ था, इस लिए, पहले दिन ईसाईयोंने जीवके अनादित्वपर लेखबद्ध शङ्कायें कीं। स्वामीजीने भी उनको युक्तियुक्त

उत्तर दिया। इस प्रकार दो दिनतक इसी विषयपर वाद होता रहा। वाद प्रतिदिन रातके आठ बजे समाप्त किया जाता था।

वह स्थान बहुतही संकुचित था। जन-संख्याकी अधिकताके कारण लोगों का स्वांस रुका जाता था। इस कारण दूसरे दिन, वाद-समाप्तिके समय, श्री स्वामीजीने पादरियोंको कहा कि कल किसी विस्तृत स्थानमें वाद होना चाहिए। यहां लोगोंको अति कष्ट होता है। यह स्थान आपका है, इस लिए प्रबंधकर्त्ता कुछ पक्षपात भी करते हैं।

उस समय तो पादरी महाशयोंने कोई स्पष्ट उत्तर न दिया, परन्तु अगले दिन, विना स्वामीजीको वताये कुछ ईसाईयोंको घरोंसे बुलाकर दिनके बारह बजे अपनी पाठशालामें एकत्र हो गये। उसी समय, उन्होंने स्वामीजीको समाचार भेजा कि वादका समय होगया है, शीघ्र आ जाइए। स्वामीजीको पादरियोंसे ऐसी बातकी आशा न थी, इसलिए इस समाचारसे वे आश्चर्यचकित होगये। उनका वह समय वेद-भाष्य करनेका था। उस समय वे अन्य किसी विषयकी ओर ध्यान नहीं दिया करते थे।

महाराजने समाचारदाताको कहा कि पादरियोंको जाकर कहियेगा कि जब दोनों पक्षोंकी सम्मतिसे चार वजेका समय नियत हो चुका है और जनताको भी उसी समय का पता है तो आपने नियमविरुद्ध काम क्यों किया है? यदि आपको वारह वजे ही वाद करना था तो एक दिन पहले सम्मति लेते और जनताको विदित करते। आप ही आप समय-परिवर्तनका आपको अधिकार नहीं है। जब आपने धींगाधींगीसे नियम-न्यायका उल्लङ्घन किया है तो मेरे लिए आवश्यक नहीं कि वेद-भाष्य जैसे सर्वोत्तम कार्य्यको छोड़कर वहाँ आऊँ। कल मैंने किसी विशाल स्थानमें वाद करनेके लिये निवेदन किया था। यदि आप किसी ऐसे स्थानका प्रबंध नहीं कर सके तो भी चार बजेके लिए सुसज्जित रहिये। मैं निश्चित समयपर पहुंच जाऊँगा।

पादरी महाशय तो अपना पिण्ड छुड़ाना ही चाहते थे। इसलिए स्वामी-

जीका उत्तर पहुंचनेपर उन्होंने घोषणा की कि स्वामी दयानन्दजी नहीं आये, इसलिए सभा विसर्जन की जाती है। उस समय उनके मकानमें पाठशालाके बालकों और थोड़ेसे ईसाइयोंके बिना और कोई नहीं आया था।

उसी सायंको, ठीक चार बजे, स्वामीजीके प्रेमियोंने सरदार हरिसिंहजीको समाधिके पास वादका प्रबंध कर दिया। पादरी महाशयोंको वहाँ आकर वाद करनेके लिये बार बार आहूत किया गया, परन्तु वे अपने मकानसे बाहर नहीं निकले। जब उनके आनेकी कोई आशा न रही तो श्रीस्वामीजीने ईसाई धर्म्मपर ही व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया। उन्होंने बाईबलकी आयतोंपर आयतें पढ़कर उनपर ऐसी यौक्तिक टिप्पणियां चढ़ाई कि सुनने वाले आश्चर्य निमग्न हो गये। उनके सामने ईसाई धर्म्मका पूरा चित्र खिंच गया। सभी सज्जन स्वामीजीके विस्तृत ज्ञानकी प्रभूत प्रशंसा करने लगे।

जिस दिन ईसाइयोंकी पाठशालामें धर्म्म-चर्चा होने लगी थी, उस दिन वजीराबादके लोग भी सुनने आये। उनमें अधिकांश वे ही लोग थे जिन्होंने स्वामीजीपर ईंटें बरसाईं थीं। जब वे पाठशालाके भीतर जाने लगे तो ईसाइयोंने उन्हें भीतर आनेका टिकट नहीं दिया। वे निराश होकर शाठशालाके आँगनमें मँडलाने लगे। उसी समय वहाँ स्वामीजी आ पहुंचे। उन वजीराबाद-निवासियोंको पहचानकर, महाराजने पूछा, "आप यहाँ घूमते हैं? भीतर क्यों नहीं जाते?" वे बोले, "महाराज! ईसाई लोग हमें टिकट नहीं देते।"

महाराजने अति प्रेमसे उनको कहा, "आप बिना संकोच मेरे साथ चले आइये। आपको भीतर प्रवेश करा दूंगा।' वे लोग महाराजके दयालु स्वभावसे प्रभावित तो उसी समय हो गये, परन्तु जब भीतर जाकर उन्होंने आर्य्य-धर्मके रक्षककी युक्तियाँ सुनीं तो अपने पिछले कर्मपर पश्चात्ताप भी किया।

भलाई, मनुष्योंको कितना कोमल बना देती है, प्रेम और सहानुभूति आदि गुण मनुष्यको कैसे खींच लेते हैं इसका ज्वलन्त प्रमाण श्री स्वामीजीके जीवनमें मिलता है।

एक दिनका वर्णन है कि श्री स्वामीजी अपने आसनपर विराजमान थे। उस समय एक मनुष्य सजलनेत्र उनके निकट आया और पाँव पकड़कर कहने लगा—"भगवन्! वजीराबादके अधिवासियोंने, जो, श्री चरणोंकी अवज्ञा की है उसका मूलकारण मैं ही हूं। उस समय मैं अभिमान-मदमें मत्त और मदान्ध हो रहा था। मुझे यह ज्ञान न था कि आप ही सनातन धर्म्मके सच्चे रक्षक हैं। आपके वास्तविक गुणगणका ज्ञान मुझे तब हुआ, जब मैंने आपको ईसाइयोंके साथ धर्म्म-चर्चा करते देखा; उनका मुख बंद करने वाली आपकी युक्तियाँ सुनीं। इस समय अपने पातकके पश्चात्ताप और अनुतापसे मेरा आत्मा संतप्त होरहा है। अपनी दयालुतासे क्षमा प्रदान कर मुझे शान्त कीजिये।"

स्वामीजीने पहचान लिया कि यह पण्डित वासुदेव है। उन्होंने उसको आश्वासन देते हुए कहा, "उस समय आपने जो कुछ किया वह अपने पक्षके पोपणार्थ ही किया। मैंने, जब उसे, उस समय भी बुरा नहीं मनाया तो इस समय कौनसी वात है जिसको मैं क्षमा कर दूं? वासुदेव! किसी कर्णकटु वचन और घोर कठोर कर्मसे संन्यासियोंके अन्तःकरण कलुषित नहीं हुआ करते। निश्चय रखिये, किसी अवहेलना और अवज्ञासे हमारी भद्र-चिन्तन-भावना-में भेद नहीं आता। स्वस्थ और शान्त हूजिये। परमात्मा आपकी यह शुभ मति वनाये रक्खे।"

एक दिन स्वामीजी प्रातःकाल भ्रमण कर रहे थे। मार्गमें पादरी मैकी महाशयसे भेंट हो गई। नमस्कारादिके अनन्तर मैकी महाशयने कहा, "स्वामीजी आप ईसाई धर्म्मका वड़ा कड़ा खण्डन करते हैं।" उन्होंने उत्तर दिया, "मैं जो कुछ सुनाता हूं वह आपके ग्रन्थोंका पाठ होता है। यदि आपकी धर्म्म-पुस्तकोंको सुनाना खण्डन है तो ऐसा खण्डन आप भी करते हैं। मैं द्वेषबुद्धिसे कुछ नहीं कहता, और न ही अनुचित समालोचना करता हूं।"

एक दिन, कुछ मनुष्य, पश्चिमी दर्शनके पूर्ण पण्डित, एक वङ्गीय महाशयको स्वामीजीके पास ले आये। उनका आशय यह था कि उनको दार्श-

निक जटिल-जालमें उलझाया जाय। महाराजने उस वङ्गीय सज्जनके प्रश्नोंका ऐसा युक्ति-युक्त, उपयुक्त उत्तर दिया कि वह सर्वथा सन्तुष्ट हो गया। एक लम्बे दार्शनिक वार्त्तालापके अनन्तर, जब वे लोग उठकर चलने लगे तो स्वामीजीने पूछा, "क्या यह वङ्गीय महाशय कुछ दार्शनिकज्ञान सम्पन्न हैं?" उन सज्जनोंने इसका यह परिणाम निकाला कि स्वामीजी अपनेसे इतर जनोंको यों ही तृणतुल्य समझे बैठे हैं। नगरमें आकर उन्होंने उस वङ्गीय महाशयसे पूछा; "स्वामीजीका दार्शनिक ज्ञान कितना है?" उसने उत्तर दिया, "वे तो ज्ञानकी अगाध गङ्गा और विद्याके अथाह समुद्र हैं। मैं तो उनके समक्ष कुछ भी नहीं जानता।"

एक दिन, स्वामीजीने ब्रह्मचर्यका महत्त्व वर्णन करते हुए कहा, 'सरदार हरिसिंहजी जो इतने वीर हुए हैं इसका प्रबल कारण यही था कि वे पच्चीस वर्षतक ब्रह्मचारी रहे थे। यद्यपि मेरी आयु इस समय पचास वर्षसे ऊपर है परन्तु कोई भी बलिष्ट व्यक्ति सामने आये, मैं उसका हाथ पकड़ता हूं, वह छुड़ाकर दिखलाये। अथवा मैं भुजा अकड़ाता हूं, कोई उसे झुकाकर दिखाये। उस बड़ी सभामें अनेक महामल्ल भी उपस्थित थे, परन्तु आगे आनेका साहस किसीने भी न किया।

गुजराँवालामें अनेक सज्जनोंके भ्रम दूर करने, संशय मिटाने और आर्य्य समाजकी स्थापना करनेके पश्चात् महाराज फाल्गुन वदी १४ सं० १९३४ को लाहौर पधारे और नवाब निवाजिश अलीखाँकी कोठीमें ठहरे।

इस कोठीमें एक दिन महाराज व्याख्यान देते हुए मुसलमान मतकी समालोचना कर रहे थे। उस समय, नवाब महाशय उसी उद्यानमें आये हुए थे। व्याख्यान हो चुकनेपर, एक सज्जनने उनसे निवेदन किया, "आपको कोई आर्य्य, ईसाई और मुसलमान उतरनेके लिये मकान नहीं देता। नवाब महाशयका यह बड़ा भारी अनुग्रह है कि उन्होंने कोठी दे दी है। आप यहीं मुसलमान मतपर समालोचना करने लग गये हैं। आज तो नवाब महाशय भी सुन रहे थे। कहीं ऐसा न हो कि वे भी रुष्ट हो जायं।"

महाराजने उत्तर दिया, "मैं यहाँ वैदिक धर्म्मका प्रचार करने आया हूं। जहाँ भी रहूंगा उसीका उपदेश दूंगा। मेरे यहाँ आनेका प्रयोजन मुसलमान मत अथवा किसी अन्य पन्थका यश गाना नहीं है। जब नवाब महाशय व्याख्यान सुन रहे थे तो मैंने उन्हें देख लिया था। मैंने जान बूझकर उनको आर्य्य धर्मका महत्व सुनाया है। मुझे एक नारायणके बिना किसी नरनारी का डर नहीं है।"

मुलतान छावनीके प्रेमीजनोंने प्रार्थना पूर्वक महाराजको आमन्त्रित किया था। उनके आग्रहवश वे फाल्गुन सुदी ८ सं० १९३४ को मुलतान छावनीमें पहुंचे। स्वागतके लिये अनेक भद्र पुरुष रेलवे स्टेशनपर उपस्थित थे। उन्होंने स्वामीजीको सन्मानपूर्वक ले जाकर, वेगीके उद्यानमें ठहराया। उसी दिन, सायं समय उनके व्याख्यानोंका आरम्भ हो गया। उसके भाषणोंसे नगर और छावनीके लोग प्रभावित होने लगे।

धर्म्म-कार्योंमें विघ्न डालनेवालोंका भी वहाँ अभाव न था। ऐसे लोग गली गली और कूचे कूचेमें चक्कर लगाते कहते फिरते थे कि यह ईसाईयोंका नौकर है। उन्होंने इसे कह रक्खा है कि जब सारे भारतवासियोंको ईसाई बना दोगे तो तुम्हें एक लाख रुपया दिया जायगा।

गोसाइयोंने सबसे अधिक ऊधम मचाया। एक दिनका वर्णन है कि स्वामीजी व्याख्यान दे रहे थे, गोसाई लोग अपने सेवक-समूह-सहित वहाँ आ पहुंचे और लगे शंख और घड़ियाल बजाने! जयजयकारका भी उन्होंने तार बाँध दिया। महाराजने उनकी कलह-जनक कलुषित क्रीड़ापर कुछ भी ध्यान न दिया और गम्भीरतासे उपदेश देनेमें परायण रहे। अन्तमें पुलिसके कन्स्टेबलोंने उन्हें खदेड़ दिया। दूसरे दिन गोसाई-दल फिर चढ़ आया, और विघ्न बाधातक ही बस न करके, लड़ाई लड़नेपर उतर आया! स्वामीजीको उस दिन व्याख्यान बन्द कर देना पड़ा।

होलियोंके दिन थे, इस कारण क्षुद्र लोगोंको उपद्रव करनेका बहाना मिल

जाता था। इसलिए सेठ दिनशाह बहरामजीने, कुछ एक सज्जनोंकी सम्मतिसे, अपनी कोठीमें व्याख्यान कराने आरम्भ किये। वहाँ भी स्वामीजीने विविध विषयोंपर अत्युत्तम भाषण दिये। मुलतान छावनीके निवासियोंके प्रबन्धसे वहां, महाराजके कोई छत्तीस उपदेश हुए।

एक दिन स्वामीजीने ब्राह्मणोंके धर्म्म और कर्तव्योंका वर्णन किया और कलिकालमें उनकी अधोगतिके कारण अविद्यादि बताये। उन्होंने उस समय दृष्टान्त दिया कि एक सेठ अपने मिस्सरजीके साथ देशान्तरको जा रहा था। एक मुसलमान पठान भी उनका साथी बन गया। वह सेठ जब प्रातःकाल उठता तो ब्राह्मण देवको नमस्कार करता! नहानेके समय उससे जल मँगवाता। रसोईके समय भोजन बनवाता और चलते समय, अपना कम्बल और कोटतक उतारकर उसपर लाद देता!! पठानको इन बातोंपर बड़ा अचम्भा होता था।

एक दिन चलते चलते सेठ और 'मिस्सरजी' बहुत पीछे रह गये और पठान आगे ठहरकर उनकी प्रतीक्षा करने लगा। सेठजी तो ज्यों त्यों करके पठानको जा मिले परन्तु मिस्सरजी न पहुंच सके। सेठको अकेले आते देखकर पठानने पूछा "कहाँ गया है वह नर, पुरोहित, पाचक, कहार और खर?"

इससे उन्होंने शिक्षा निकाली कि सर्वप्रकारके ऊँच नीच कर्म करनेवाले अबोध जन 'ब्राह्मण' पदके अधिकारी नहीं हैं। विद्वान् जन ही ब्राह्मणत्वके योग्य होते हैं।

एक व्याख्यानमें महाराजने अन्य सर्व पन्थाई मन्त्रोंका खण्डन करके गायत्री मन्त्रकी प्रधानता बतलाई और कहा कि इसका प्रतिदिन जप करना चाहिए।

एक दिन स्वामीजीने स्वास्थ्य रक्षापर एक उपयुक्त भाषण दिया। उसकी समाप्तिपर एक पारसी सेठने उनसे कहा कि जब आप यह कहते हैं कि मनुष्य मात्र एक है तो हमारे साथ मिलकर आप खाना क्यों नहीं खाते? स्वामीजीने उत्तर दिया कि मुसलमानादि जातियोंके साथ आप लोग खान पानका व्यवहार करते हैं, नहीं तो दूसरी रुकावट नहीं है। यदि आप आर्य लोगोंसे अधिक

मेलजोल करने लग जायँ तो कालान्तरमें यह रुकावट हटाई जा सकती है।

एक थालमें भोजन पानेका जब विषय चला तो सेठने कहा कि इससे प्रेम बढ़ता है। स्वामीजीने कहा कि प्रेम यदि इकट्ठे होकर खानेसे बढ़ता हो तो यहां मुसलमान मिलकर खाते हैं। उनमें झगड़ा बखेड़ा नहीं होना चाहिये। जब तुर्कोंपर रूसने आक्रमण किया था तो इकट्ठे मिलकर खानेवाले अफगानों ने, माँगनेपर भी, तुर्कोंको सहायता नहीं दी थी।

फिर स्वामीजीने कहा कि मिलकर खानेसे कई संक्रामक रोग लग जाते हैं। चिकित्सा-शास्त्रके अनुसार भी एक दूसरेका जूठा खाना हानिकारक है।

मुलतानके वेदान्तियोंको समझाते समय स्वामीजीने कहा, "चार महावाक्य उपनिषद् वचन हैं। आप लोग एक टुकड़ा लेकर मनमाना अर्थ करने लग जाते हैं। यदि सारा प्रकरण लगाओ तो उनसे नवीन वेदान्त सिद्ध नहीं होता।"

एक दिन आर्य्य, मुसलमान और ईसाई सब मिलकर आये। उन्होंने, महाराजपर एक बार ही, नाना विषयोंके अनेक प्रश्न कर डाले। उन लोगोंकी ऐसी धारणा थी कि एक बार ही अनेक विषयोंके प्रश्न आ पड़नेपर स्वामीजी घबरा जायँगे, वे सबका उत्तर न दे सकेंगे। परन्तु स्वामीजीने उनके एक एक प्रश्नका उत्तर, ऐसी उत्तमतासे दिया कि वे अतीव आश्चर्यमग्न हो गये और उनके योग-बलका माहात्म्य मुक्तकण्ठसे वर्णन करने लगे।

एक दिन स्वामीजीने मांस-भक्षणको वेद-विरुद्ध बताया। इसपर महाशय कृष्ण नारायणने कहा, "इसके खानेमें कोई हानि तो नहीं है।" स्वामीजीने कहा, "परमात्माकी आज्ञाका न पालन करना यही एक बड़ी हानि है।"

तब कृष्ण नारायणने कहा, "मैं मांस खाता हूं। यदि इससे कोई हानि होती तो मैं उसका अनुभव कर लेता।'

स्वामीजीने उत्तर दिया, "आज्ञायें दो प्रकारकी होती हैं—एक शरीरके साथ सम्बन्ध रखनेवाली और दूसरी आत्माके साथ। शरीरके साथ सम्बन्ध रखनेवाली आज्ञाको भंग करनेसे रोग-शोक आदि दुःख होते हैं। आत्मासे

सम्बन्ध रखने वाली आज्ञाके लोपसे शारीरिक दुःख तो नहीं होते, परन्तु आत्मा उच्च पदको प्राप्त नहीं होता। मांस खाना आत्मासे सम्बन्ध रखनेवाली परमात्म-आज्ञाका भंग करना है; इसलिए मांस खानेवालेको योग-विद्या नहीं आती। उसे योगकी सिद्धियां भी नहीं होतीं।"

स्वामीजी अपने प्रेम-भरे पत्रोंद्वारा अपने प्रेमी जनोंको, समय समयपर, उत्साहित करते रहते थे। उनके कार्य्योंकी श्लाघा करते और अधिक अग्रसर होनेके लिए उत्तेजना भी देते थे। महाराजने चैत्र वदी १२ सं० १६३४ को मुलतानसे एक पत्र महाशय माधोलालजीको लिखा। उसका सारांश यह है—

'महाशय माधोलालजी आनन्दित रहो.... आर्य समाजके ठीक नियमोंको समझकर आपको वेदाज्ञानुसार सबके हितमें अवश्य लग जाना चाहिये—विशेषतासे अपने आर्यावर्त देशके सुधारनेमें अत्यन्त श्रद्धा, प्रेम और भक्ति होनी चाहिए। सबको अपने समान जानकर उनके क्लेशोंके काटने और सुखोंको बढ़ानेके लिए प्रयत्न और उपाय करना उचित है। सबका हित करना ही परम धर्म्म है। इसीके प्रचारकी वेदमें आज्ञा पाई जाती है।

महाराज अपने अनुयायियोंको, समयपर अथवा यथायोग्य कार्य्य न करनेपर, उपालम्भ भी दिया करते थे। उनके आलस्यपर भर्त्सना भी करते थे। स्वामीजीने चैत्र सुदी एकादशी सम्वत् १६३५ को मुलतानसे लाहौर आर्य्य समाजके मुखिया जनोंको लिखा किः—

"राम रक्खाके पत्र मिल सके तो आपको भेज देंगे। अथवा नवीन लिखाकर भेज दिये जायेंगे। परन्तु जैसे.. आजतक नहीं छपे ऐसी ही अवस्था इनकी हो तो परिश्रम करना व्यर्थ है। ऐसे न हो जैसे अन्तरङ्ग सभाके नियमोंका झमेला आजतक नहीं निपट सका।

इसके लिखनेका यही प्रयोजन है कि उचित समयपर ही कार्य करना चाहिए। समयपर कार्य करना सफलताका साधन है और बुद्धिमत्ताका चिह्न है।

यहाँ हम बहुत आनन्दमें हैं और आशा है कि आप भी आनन्दमें होंगे।'

मुलतान छावनी और नगरके अधिवासियोंको निहाल करनेके पश्चात् महाराज लाहौर पधारे। यहाँ प्रतिदिन उनके प्रभावोत्पादक उपदेश होने लगे।

महाराजका विचार था कि उनका वेद-भाष्य विद्यालयों और महाविद्यालयों में पढ़ाया जाय। लाहौरकी एक यात्रामें उन्होंने राय मूलराजको कहा कि पञ्जावके छोटे लाट महोदयके पास भेजनेके लिये एक आवेदन-पत्र प्रस्तुत कीजिए और उसमें बलपूर्वक लिखिये कि राजप्रबंधान्तर्गत पाठशालाओंमें मेरा भाष्य अवश्य पढ़ाया जाय। राय मूलराजजी यह कार्य शीघ्रतासे न कर सके। अन्तको, महाराज पञ्जावके लाट महोदय, सर रावर्ट अजर्टनको आप जा मिले। स्वामीजीने जब वेद-भाष्य पढ़ानेपर बल दिया तो लाट महाशयने अपने मार्गकी कठिनाइयां वताकर, वेद-भाष्यके प्रथम अङ्ककी कुछ प्रतियां लेकर, पण्डितोंको सम्मति जानने और उसके अनुकूल कार्य करनेका वचन दिया।

राज्यकी ओरसे स्वामीजीके भाष्यके प्रथम अङ्ककी कुछ प्रतियाँ मोल ली गई और स्वदेशी तथा विदेशी पण्डितोंके पास भेजकर उनके मत मँगाए गये। वे सम्मतियाँ प्रायः स्वामीजीके भाष्यके विरुद्ध थीं। जब वे राज्यकी ओरसे मुद्रित होकर प्रकाशित हुई तो स्वामीजीने उनका सन्तोषजनक उत्तर भी प्रकाशित कराया।

एक दिन भक्तोंके साथ वार्त्तालाप करते हुए, महाराजने प्रसंगवश कहा 'आप मुझे इस समय अच्छा हृष्ट पुष्ट समझते हो, परन्तु मैं तो गङ्गातीरवास की अपेक्षा अब कृश हो गया हूं। आप लोगोंकी हित-चिन्ताने मुझे दुर्वल वना दिया है।"

स्वामीजीका एक कर्मचारी, बाँके विहारीलाल बड़ी चिड़चिड़ी प्रकृतिका मनुष्य था। वे उससे अतिकोमलतासे काम लेते थे। उसके सड़ियलपनपर खिजते नहीं थे। एक दिन वह नौकरी छोड़कर जाने लगा तो महाराजने उसके वेतनके रुपयोंके स्थान उसको नोट निकालकर दिया। उसने आवेशमें आकर कहा कि आपने हस्ताक्षर तो किये ही नहीं। स्वामीजीने अपना नाम लिख दिया। उसने अधिक ऊँचे स्वरमें कहा कि मेरा नाम भी तो लिखना था; महा-

राजने लिख दिया कि बिहारीलालको दिया। वह अवज्ञापूर्वक बोला कि आपने बाँकेबिहारीलाल ठठेरा तो लिखाही नहीं। स्वामीजीने हँसकर कहा कि कुपित न हूजिये। यदि आप ठठेरा ही बना चाहते हैं तो लो यह भी लिखे देता हूं।

एक प्रेमी जनने पूछा, "भगवन्! इसका क्या कारण है कि जहाँ नाच होता है, राग-रंग होता है, हास-बिलास होता है, वहाँ तो सारी सारी रात बैठे बीत जाती है और नींद नहीं आती, परन्तु जहाँ सत्सङ्ग हो, धर्म्मोपदेश हो वहाँ लोग थोड़ी देरमें ही ऊंघने लग जाते हैं।"

स्वामीजीने कहा, "हरि-कथा तो एक सुकोमल शय्या है। यदि उसपर नींद न आये तो और कहाँ आये? नृत्य-गीतादि उत्तेजक भाव आत्माके लिए काँटोंका बिछौना है। उसपर निद्रा कैसे आ सकती है?"

लाहौरसे महाराज अमृतसरमें पधारे और सरदार भगवान्‌सिंहके मकानमें ठहरे। पण्डितोंने इस बार भी विरोध आरम्भ कर दिया। वे शास्त्रार्थ करनेके लिये उद्योग करने लगे। आर्य्य समाज अमृतसरकी ओरसे विज्ञापन द्वारा उनको शास्त्रार्थके लिये आहूत भी किया गया। शास्त्रार्थ करनेका स्थान सरदार भगवान्‌सिंहजीका मकान निश्चित हुआ।

उस दिन उस मकानमें कोई छः सात सहस्र मनुष्य एकत्र हो गये। नगरके सभी प्रतिष्ठित पुरुष भी उपस्थित हुए। आमने सामने दो चौकियाँ लगा दी गई, जिससे वादी और प्रतिवादीको प्रश्नोत्तर करनेमें सुगमता हो और दूसरा कोई बीचमें गड़बड़ भी न कर सके।

नियत समयपर स्वामीजी तो जाकर एक कुर्सीपर विराजमान हो गये। परन्तु प्रतिपक्षियोंके आनेका कोई पता तक न था। बड़ी देर तक प्रतीक्षा करनेपर एक व्यक्तिने आकर कहा कि पण्डित लोग बाहर खड़े हैं और भीतर आनेके लिये आज्ञा माँगते हैं। उत्तरमें कहा गया कि वे लोग बिना सङ्कोच, अति प्रसन्नतासे पधारें। उन्हींकी तो प्रतीक्षा करते, यह समय होनेको आया है।

थोड़ी देरमें पण्डित-दल जय-जय-नाद गुंजाता हुआ भीतर प्रविष्ट हुआ।

सात आठ पण्डित तिलक लगाये और बगलमें पुस्तकें दबाये, अकड़कर स्वामीजीके सम्मुख बैठ गये। इतनेमें ही उनके चेले चाँटोंने चारों ओरसे ईंट पत्थर फेंकने आरम्भ कर दिये। सभा-स्थानको धूलि-वर्षामें धूंआधार बना दिया। बड़ा भारी क्षोभ उत्पन्न हुआ। ऐसे समयमें जब पुलिसके कान्स्टेबल प्रबंध करनेके लिये आगे बढ़े तो पण्डित देवता, एक एक करके, चुपकेसे चम्पत हो गये। उस समय, भगवान् दयानन्दके भक्त अपने भक्ति-भाजनका निरादर होते देखकर, कोपावेशसे शान्त न रह सके। वे चाहते थे कि उद्दण्ड और दुष्ट जनोंको वहीं दण्डित किया जाय, परन्तु स्वामीजीने उनको शान्ति प्रदान करते हुए कहा, कि 'मत-मदिरासे उन्मत्त जनोंपर कोप नहीं करना चाहिए। हमारा काम एक वैद्यका है। उन्मत्त मनुष्यको वैद्य औषध देता है, न कि उसकी लीलापर उसे मारपीट करता है। निश्चय जानिये, आज जो लोग मुझपर ईंट, पत्थर और धूल बरसाते हैं वही लोग आपपर कभी पुष्पवर्षा करने लग जायँगे।

जब महाराज अपने डेरेपर पधारे तो एक भक्तने कहा, "महाराज ! आज दुष्ट लोगोंने आपपर बहुत राख धूल फेंकी और आपका घोर अपमान किया।' महाराजने कहा, "परोपकार और परहित करते समय अपना मानापमान और पराई निन्दाका परित्याग करना ही पड़ता है। इसके बिना सुधार नहीं हो सकता। मैंने आर्य्यसमाजका उद्यान लगाया है। इससे मेरी अवस्था एक मालीकी है। पौधोंमें खाद डालते समय, राख और मिट्टी मालीके सिर पर भी पड़ जाया करती है। मूझपर राख-धूल चाहे जितनी पड़े, मुझे इसका कुछ भी ध्यान नहीं। परन्तु वाटिका हरीभरी बनी रहे और निर्विघ्न फूले फले।

महाराजका एक व्याख्यान मलवइ बुङ्गेमें ब्रह्मचर्य्यपर हुआ। लोगोंपर उसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। इस बुङ्गेमें उनके और भी उत्तमोत्तम भाषण हुए। महाराजने एक भाषण ब्राह्मण-धर्म्मपर दिया। उसमें उन्होंने ब्राह्मणोंके अधःपतनके कारण ऐसे शब्दोंमें कहे और उनकी दुर्दशाका चित्र, कुछ इस प्रकार खींचकर दिखाया कि बीसियों ब्राह्मणोंकी आंखोंसे अनर्गल अश्रु-

धारा बह निकली। उनके, ब्रजशिलासदृश कठोर मन मोम होगये। उस दिन पण्डितोंने महाराजके अन्तरात्माको पहचाना। तत्पश्चात् सबने विरोध करना छोड़ दिया।

एक दिन, स्वामीजी व्याख्यान देने जा रहे थे। बाजारमें एक प्रसिद्ध पण्डितने एक थालमें मिश्री और रुपये रखकर उनको नमस्कारपूर्वक भेंट की और स्तुति करने लगा कि आप तो कलिकालमें साक्षात् विष्णुका अवतार हैं। स्वामीजीने उसको आशीर्वाद देकर कहा कि मैं तो अगले दस अवतारोंका खण्डन करता हूं और आप मुझे ग्यारहवाँ अवतार बना रहे हैं!

उस पण्डितकी दूकानपर एक ऊंचा सिंहासन बना हुआ था। महाराजने उससे पूछा कि यह क्या है? वह बोला भगवन्? कमा खानेकी चक्की है। कथा करनेका स्थान है। महाराजने कहा कि पण्डितजी! यदि चक्की ही चलानी है तो सत्यकी चक्की चलाओ। आजीविकाका कोई विचार न करो। वह पुष्कल प्राप्त हो जायगी।

कुछ भक्तजन रातके समय महाराजके डेरेपर ही सोजाया करते थे, इस प्रकार वे एक तो सत्संगका दुर्लभ लाभ उपलब्ध करते और दूसरे उनकी रक्षाका भी ध्यान रखते थे। एक दिनका वर्णन है कि एक भक्तने महाराजको सूचना दी कि आपने जो सिक्ख मतपर आक्षेप किये हैं उनसे चिढ़कर, कुछ निहङ्ग आपका वध करनेपर तुले बैठे हैं। रातको आपके पास बहुतसे महाशय सोते है इसलिए निहङ्गोंका दांव नहीं चलता। यह सुनकर महाराजने वहाँ, भक्तोंका सोना बन्द कर दिया और कहा कि हम अकेले ही रहेंगे। जिसकी आज्ञा का मैं पालन कर रहा हूं वही परमेश्वर मेरा रक्षक है।

स्वामीजीके एक व्याख्यानमें बहुत निर्मले आदि साधु आये और खड़े खड़े ही भाषण सुनने लगे। महाराजने उस समय कहा, सहस्रों भारतवासी पेटभर अन्न नहीं पाते, दाने दानेके लिए तरसते हैं। भूखके मारे बिल्ली-कुत्तोकी मृत्यु मरते जाते है। देशकी ऐसी शोचनीय दशामें धड़ाधड़ लोटेशाही और

तूम्बेशाही बननेकी क्या आवश्यकता है ? इस समय तो प्रत्येकको परिश्रम करके आजीविका चलानी चाहिए।"

पण्डित पोलोरामजीका महाराजसे बड़ा प्रेम था उन्होंने एक दिन हाथ जोड़कर विनय की, भगवन्! आर्य्य समाजमें केवल थोड़ेसे मनुष्य ही सम्मिलित हुए हैं। इतनी तुच्छ संख्या कोई महान् कार्य्य तो क्या ही कर सकेगी।

स्वामीजीने उत्तर दिया, 'आप तो बहुत हैं; सहस्रों मनुष्योंको अपना संगी बना सकते हैं, परन्तु टुक मेरी ओर तो देखिये। जब मैंने कार्य्यका आरम्भ किया तो एकाकी और निस्सहाय था। आज परमात्माकी यह कृपा है कि आप जैसे सहस्रों सज्जन सच्चे हृदयसे मेरे साथी हैं, आर्य-धर्म्मपर न्योछावर होनेको समुद्यत हैं। पोलोराम, शुभ सबका चाहो और परिणाम परमात्मापर छोड़ दो, निश्चय सफल हो जाओगे।"

महाराजने उनसे यह भी कहा, 'यदि बाल शास्त्री और विशुद्धानन्दजी मेरे साथी बन जाते तो हम तीनों सारे संसारको विजय करलेते। शोक! मेरे आत्मगत भावोंको जाने बिना उन्होंने मुझे भिन्न समझा, मेरा घोर विरोध किया। परन्तु मेरे हृदयमें जो मङ्गल-भावना है उसे ईश्वर ही जानता है।"

एक दिनका वर्णन है कि पण्डित पोलोरामको किसीने एक नवीन कुरती दान की। वे उसे लिये श्री चरणोंमें आये और कहने लगे कि भगवन्, यह कुरती आज ही मुझे एक दाताने दी है। मेरा भक्ति-भाव मुझे विवश करता है कि मैं इससे आपके चरण पोंछकर, फिर यह आपके किसी सेवकको दे दूं। स्वामीजी तो नहीं मानते थे परन्तु भक्त पोलोरामने प्रभु-पद-पद्म पकड़ लिये और कुरतीसे चरण रज झाड़कर, वह एक नौकर को प्रदान कर दी।

महाराजने अपार दयासे उनको उपदेश किया "गायत्रीका जप प्रतिदिन किया करो। यह कल्याणकारी मंत्र है। मेरे पास यही वस्तु है जो मैंने आपको दे दी है।"

एक दिन महाराजने उनको यह भी कहा, "जब शय्याशायी होने लगो

तो प्रणव पवित्रका जप किया करो। जब तक नींद न आये पाठ करते रहो, यहाँ तक कि उसी नाम-स्मरणमें ही सो जाओ। इससे उत्तमोत्तम लाभ होते हैं। वासनामय देह बदल जाती है।"

महाराजने तालुका काग गिराकर ध्यान करना भी बताया। स्वामीजीने उनको प्राणायाम करना सिखाकर कहा कि इससे चित्त स्थिर होता है, बुद्धिकी वृद्धि होती है, बल बढ़ता है, रोग नष्ट हो जाते हैं।

पोलोरामजीने, एक दिन, महाराजके ध्यानारूढ़ अवस्थामें दर्शन किये। उस समय वे अचल समाधिस्थ थे। उनके अङ्गोंमें क्रियाका कोई सूक्ष्म चिह्न भी दिखाई नहीं देता था।

महाराजकी मूर्त्ति मनोमोहिनी थी। उनकी व्यक्तिका अद्भुत प्रभाव था। वे, रेशमी वस्त्र पहने अथवा कौपीनधारी सब दशाओंमें प्रिय प्रतीत होते थे। उनका चलना, टहलना, उठना, बैठना आदि सब व्यापार प्यारा लगता था। वे सब क्रियाएँ करते मनको भाते थे। उनका कृपाकटाक्ष मनको मोह लेता था और उनकी प्रेम-भरी वाणी सबको तत्काल अपना लेती थी।

उनके मुखमण्डलपर तेज, प्रभाव, उदारता, गम्भीरता, धैर्य्य, अनुग्रह और आशीर्वाद निवास करते थे। उनके रसीले नेत्रोंमें प्रेम, कृपा, आकर्षण, रस और माधुर्य था। उनका बर्ताव अति मृदु, सुकोमल और चित्ताकर्षक था। उनकी प्रकृति कोमल थी, सरल थी और निष्कपट थी। वे कभी किसी व्यक्तिकी समालोचना तथा निन्दापर कर्णपात नहीं करते थे। वे अपने प्रतिपक्षियोंको भी रुष्ट नहीं होने देते थे। प्रश्नोत्तरमें उनके भावोंपर सदा ध्यान रखते थे। वार्त्तालापमें व्यवहारमें, कहने-सुननेमें और उपदेशमें वे इतने समदर्शी थे कि प्रत्येक छोटा बड़ा यही समझता था कि महाराज मुझे ही अभिमुख कर रहे हैं; मुझे ही समझाते हैं; उनका अधिक अनुग्रह, अधिक कृपा और अधिक प्रीति मुझपर ही है।

महाराज पूर्व्वकी यात्राके लिये समुद्यत थे इस लिए पञ्जाबी भक्त उनके

प्रस्थान-दिवसका दुःखसे अनुभव करते थे। एक प्रेमीने विनय की, 'भगवन्! आपने इस प्रान्तमें आर्य्यसमाजरूपी उद्यान तो स्थान-स्थानपर लगा दिये हैं परन्तु आपके चले जानेके पश्चात् इनकी रक्षा कौन करेगा?"

महाराजने उत्तर दिया कि "इस प्रान्तके लोग उत्साह और साहसवाले हैं, श्रद्धालु और वीर हैं, मुझे इनपर बड़ी आशा है। मैंने अपने सकल सामर्थ्यसे भूमिको स्वच्छ बनाकर उद्यान लगाया है। खाद भी इसमें पड़ गया है। जल भी सींचा जा चुका है। अब इसके मुरझाने और कुम्हलानेकी कुछ भी चिन्ता नहीं है। यह सब कुछ होते हुए भी, ऐसे सब कार्य भगवान्‌भरोसे ही किये जाते हैं। इस लिए, आर्य्य समाजका भी वही रक्षक है, जो चन्द्र और सूर्यको चलाता और उनकी रक्षा करता है।"

श्री स्वामीजी श्रावण वदी १ सं० १६३५ को अमृतसरसे प्रस्थान करके लुध्याने पहुंचे और वहाँ लाला वंशीधरके उद्यानमें ठहरे। इस बार भी उनके सत्संगमें सभी मतोंके लोग बड़े उत्साहसे आते और प्रश्नादि पूछते रहे। श्रावण वदी ८ को लुध्यानेसे चलकर वे अम्बाले पहुंचे और श्रावण वदी ११ सं० १६३५ को वहाँसे रुड़कीको पधार गये।

आठवाँ सर्ग।

स्वामीजी महाराज, छः सात दिन कम डेढ़ वर्षपर्यन्त पञ्जाबमें रहे और इस प्रान्तके कोई बारह तेरह नगरोंमें घूमे। परन्तु उनका अधिक समय तीन चार नगरोंमें ही व्यतीत हुआ। वे लाहौर आदि नगरोंमें रहते हुए, बीच बीच अमृतसर आदि स्थानोंमें भी भ्रमण कर आया करते थे। यद्यपि पञ्जाब प्रान्तको पूज्यपाद आनन्दकन्द श्री दयानन्दजीने थोड़े मासही दर्शन दिये और केवल बारह नगरोंको ही पदार्पणसे पुनीत किया परन्तु इस स्वल्प

समयमें ही उन्होंने इस प्रान्तके अधिवासियोंको इतना प्रभावित किया, उनको इतना जीवन दिया, उन्हें इतना कार्य्यपरायण बनाया और उनमें इतनी आत्मा और ऊष्मा भरी कि उसका दूसरा दृष्टान्त नहीं मिलता, उसकी तुलना नहीं की जा सकती।

श्रावण वदी १५ सं० १९३५ को महाराज रुड़की पधारे और देहलीनिवासी श्री सम्भूनाथजीके बंगलेमें ठहरे। उसी सायँको 'ईश्वरीय आदेश' पर उनका व्याख्यान हुआ। रुड़कीको महाविद्यालयके उपाध्याय और विद्यार्थी और शहरके लोग उस व्याख्यानमें आये और अतीव प्रसन्न हुए।

स्वामीजीके व्याख्यान प्रतिदिन होते थे। वे नियमके इतने पक्के थे कि वेद-भाष्यका गुरुतर कार्य-भार होते भी ठीक समय, व्याख्यान-स्थानपर पहुंच जाते। सभी लोग उनकी सुनियमतापर आश्चर्य करते।

श्रावण सुदी ६ सं० १९३५ को महाराजके व्याख्यानका समय सायंके पांच बजे था। श्री उमरावसिंहजी एक प्रतिष्ठित व्यक्तिको साथ लेकर सवा चार बजे श्रीसेवामें पहुंचे। महाराजने घड़ी देखकर कहा, "अभी सवा चार बजे हैं। मार्ग केवल पाव घण्टेका है इतना पहले जाकर क्या करेंगे ? मैं तो पांच मिनिट ही पहले पहुंचना चाहता हूं।"

स्वामीजीके समालोचनात्मक व्याख्यानोंसे कुछ एक मतवादी लोग भड़क उठे, परन्तु सामने आकर शास्त्र-चर्चा करनेका साहस किसीने न किया। प्रश्न पूछनेवाले सज्जन उनके स्थानपर भी जाकर संशय मिटाते थे।

अमेरिका-निवासी कर्नल अल्काटके पत्र स्वामीजीके पास पंजाबमेंही आ गये थे। परन्तु उनका उत्तर अभीतक नहीं दिया गया था। पण्डित उमराव सिंहजीने उन पत्रोंका अनुवाद रुड़कीकी जनताको सुनाया। इससे लोग बड़े प्रोत्साहित हुए।

रुड़कीमें स्वामीजीने उन पत्रोंके उत्तर लिखे और उमरावसिंहजीसे उनका

अँगरेजी अनुवाद कराकर बम्बई-निवासी चिन्तामणि द्वारा उन्हें अमेरिका भिजवा दिया ।

एक दिन अपने आसनपर बैठे महाराज सत्संगियोंको उपदेश दे रहे थे कि भारतवर्षका ऐसा अभाग्य है कि यहाँके अधिवासी अपने धर्म्मकी और अपने कर्त्तव्य कर्मकी कुछ भी चिन्ता नहीं करते । उस समय उस सत्संगमें एक पंजाबी मजहबी सिक्ख भी बैठा हुआ सुन रहा था । उसी समय एक मुसलमान डाकिया वहाँ आया । उसने उस मजहबी सिक्खको पहचानकर ताड़ना की कि तू इन लोगोंमें क्यों आकर बैठा है ? नीच ! तुझे ध्यान नहीं आया कि मैं कहां बैठने लगा हूं । उस डाकियेने उसे इतना डाँटा कि उसके आँसू निकल आये ।

महाराजने डाकियेको ऐसा करनेसे रोककर उस मजहबी सिक्खको बड़े प्रेमसे आश्वासन दिया और कहा कि बिना सङ्कोच नित्य सत्सङ्गमें आया करो। हमारी दृष्टिमें ईश्वरकी सृष्टिके सारे मनुष्य समान हैं । यहां तुमसे कोई घृणा न करेगा । श्री वचनोंसे उत्साहित होकर वह प्रतिदिन सत्संगमें आता और उपदेशामृत पान करता ।

उन दिनों कन्हैयालाल नामके इञ्जनीयर रुड़कीमें रहते थे । उन्होंने श्री-स्वामीजीको कहा, "मादक वस्तुओंके सेवनसे ध्यान अत्युत्तम लगता है; चित्त इधर उधर भटकना छोड़ देता है ।" स्वामीजीने उत्तर दिया, "यह तो ठीक है कि मादक वस्तुसे मत्त मनुष्यका मन एकही विचारमें गढ़ जाता है परन्तु इस से वस्तुके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान नहीं होता । यथार्थ ज्ञान तो एक दूसरेके साथ गुणोंकी तुलना करनेसे होता है । गुण गुणीका ज्ञान और सत्यासत्यका विवेक मादक वस्तुओंके प्रभावमें होना असम्भव है।" स्वामीजीके कथनका कन्हैयालाल जीने हार्दिक समर्थन किया ।

एक दिन एक युरोपीय कर्नल और कप्तान स्वामीजीके व्याख्यानमें आये । उस दिन स्वामीजी इञ्जीलकी समालोचना कर रहे थे । कर्नल महाशय आक्षेप

सुनकर उत्तेजित हो प्रश्न करने लगे। प्रश्नोत्तर-क्रममें, उनकी प्रकृतिमें उबाल तो अवश्य आया, परन्तु महाराजके उत्तर ऐसे युक्तिसङ्गत थे कि अन्तमें उनके लिए मौनी बने बिना दूसरा कोई मार्ग न रहा।

मौलवी मुहम्मद कासिमने बड़ा लम्बा चौड़ा पत्र-व्यवहार किया, परन्तु सरलतापूर्वक सम्बाद करनेके लिए सामने न आये।

भोटूसिंह नामका एक वेदान्ती सज्जन स्वामीजीके पास आकर कहने लगा कि आप परा विद्या नहीं जानते। यदि आपको परा-विद्या आती होती तो आप द्वैतवादका प्रचार कभी न करते। उस समय उसने अनेक उपनिषद्वाक्य बोल कर बताया कि यह जीवात्मा ही ब्रह्म है।

महाराजने कहा कि भोटूसिंह! क्या आप भी ब्रह्म हैं? उसने उत्तर दिया कि निस्सन्देह मैं ब्रह्म हूं। फिर स्वामीजीने उससे पूछा कि इस चराचर सृष्टिको किसने रचा है? भोटूसिंहने कहा कि ब्रह्मने।

तब स्वामीजीने पास ही मरी पड़ी मक्खीको उठाकर उसके आगे रक्खा और कहा कि यदि आप ईश्वर हैं तो इसमें जीवन तो डाल दीजिए, जिससे आपके ईश्वरत्वका पूरा परिचय प्राप्त हो जाय। इसपर भोटूसिंह मूक और लज्जित हो गया।

स्वामीजी नियत समयपर व्याख्यान आरम्भकर दिया करते थे। उपस्थितिकी प्रतीक्षा नहीं करते थे। मनुष्य थोड़े हों अथवा बहुत, वे समयके परिपालनमें नहीं चूकते थे। एक दिन, दैव-योगसे व्याख्यानके आरम्भके समय पण्डित बलदेवसहाय और उमरावसिंहजी, ये दो ही श्रोता उपस्थित थे। इन्होंने श्रीचरणोंमें बहुतेरी विनयकी कि भगवन् दस बारह पलपर्यन्त प्रतीक्षा कर लीजिए। लोग अभी आ जाते हैं। परन्तु स्वामीजीने नहीं माना। ठीक समयपर भाषण आरम्भ कर दिया। उस दिनसे लोग इतने समयपालक हो गये कि व्याख्यानके नियत समयसे बहुत पहले ही आकर बैठ जाते।

श्री स्वामीजी सदैव सुप्रसन्न रहते थे। जब जाओ उनका मुखमण्डल सदा

विकसित ही दिखाई देता था। उनकी भौंहोंमें खिचावट और उनके माथेपर बल कभी किसीने नहीं देखा। उनके दोनों होठोपर, मन्द मुस्कानी विद्युत् रेखा सदा अटखेलियाँ लेती रहती। कोई कितने ही कुवचन कहता उनकी चित्तवृत्ति स्वस्थानसे विचलित न होने पाती।

व्याख्यानके समय एक मनुष्यने पुकारकर कहा, "यह बाबा ऊपरसे वेद वेद-पुकारता है, भीतरसे हिन्दुओंपर कैंचीका काम कर रहा है। ईसाई, भेस वदलकर हिन्दुओंके कर्म्म-धर्म्मको नष्ट-भ्रष्ट करने आया है। यह पूरा कपट-वेषी पाखण्डी है। भोले भाले हिन्दू भाइयोंको भ्रमजालमें फँसानेके लिए संन्यासी वना फिरता है।" महाराज उसके बचनोंपर हंसतेही रहे। उन्होंने उसकी बाल-लीलाको कुछ भी बुरा नहीं मनाया।

जिस कोठीमें महाराज विराजमान थे उसीके एक कमरेमें रुड़की आर्य्य समाजकी अन्तरङ्ग सभा हो रही थी। सभासद् अभी सभाके कार्य्योंको यथावत् परिपालन करनेमें प्रवीण न हुए थे। इस लिए उन्होंने श्री स्वामीजीसे निवेदन किया कि सभामें पधारकर शुभ सम्मतिसे हमें कृतार्थ कीजिए। उन्होंने उत्तर दिया कि सभासद् वने बिना मैं सभामें सम्मति नहीं दे सकता। इसपर तत्काल उन्हें प्रतिष्ठित सभासद् बनाया गया। उस समय स्वामीजीने परमोपयोगिनी सम्मतिके साथ उपयुक्त उपदेश दिया, "सभामें हठ और दुराग्रह नहीं करना चाहिये। अपने पक्षकी पुष्टिमें चाहे जितनी युक्तियाँ दो, परन्तु प्रकृति और हृदयमें ऐंठन न आने दो। किसी बातको पकड़कर इतना नहीं खींचना चाहिए कि परस्परके भ्रातृ-भावका तार ही टूट जाय। बहुमतानुसार जो मत उत्तीर्ण हो जाय उसपर फिर हठ नहीं करना चाहिए। अन्तरङ्ग सभाके कार्योंको प्रकाशित करना उचित नहीं है। वह मनुष्य अतीव तुच्छ और ओछा होता है जो किसी गुप्त सम्मतिको गोपन नहीं कर सकता। ऐसा मनुष्य विश्वास पात्र भी नहीं रहता।"

रुड़कीमें एक वैद्य, थानासिंहजी निवास करते थे। उन्होंने स्वामीजीसे

प्रार्थना की कि महाराज ! जब आप योग-विद्याको इतना प्रबल मानते हैं तो हम आर्य्योंको उसकी शिक्षा क्यों नहीं देते ? महाराजने उत्तर दिया कि पहले दूसरी विद्याओंको उपलब्ध कर लीजिये, फिर इसकी भी बारी आ जायगी।

रुड़कीमें धर्म्मोपदेश देनेके अनन्तर महाराजने वहाँसे भादों वदी ८ सं० १९३५ को प्रस्थान किया और अगले दिन वे अलीगढ़ पहुंच गये। ठाकुर मुकुन्दसिंहजी तथा भूपालसिंहजी आदि सज्जन श्रीमान् मूलसीकी कोठीमें ठहरे हुए थे। उन्होंने महाराजको भी अपने पास ठहराया। यहां उनके दर्शन करनेके लिये बम्बईसे श्रीयुत हरिश्चन्द्र चिन्तामणि और श्यामजी कृष्णवर्मा आये। उनसे धर्म्मादि विषयोंपर बड़ी देरतक वार्त्तालाप होता रहा।"

अलीगढ़में स्वामीजीसे एक सज्जनने पूछा, "महाराज ! अन्य मतके लोगों के हाथका पका भोजन खाना अच्छा अथवा बुरा ?" उन्होंने उत्तर दिया कि "ऐसा करनेमें न तो कोई भलाई ही है और न कोई बुराई।"

स्वामीजी अलीगढ़से प्रस्थानकर भादों वदी १३ सं० १९३५ को मेरठमें सुशोभित हुए और लाला दामोदरदासकी कोठीमें ठहरे। उनके शुभागमनका समाचार सारे नगरमें कानोंकान फैल गया। धर्म्म-जिज्ञासु आने लगे। उसी दिन उसी कोठीके बराण्डेमें उनका पहला भाषण हुआ। अगले दिन, लोगोंकी प्रार्थनापर, दूसरा व्याख्यान राय गणेशीलालकी कोठीपर हुआ। इस कोठीमें कई दिनतक स्वामीजीके व्याख्यान होते रहे। महाराजने घोषणा कर दी थी कि "मेरे कथनपर जिसे, जो भी शंका हो, वह उसे व्याख्यानकी समाप्तिपर उपस्थित करे। नियत समयपर उत्तर अवश्य दिया जायगा।" वे एक दिन शंका-समाधानके लिए ही नियत कर देते थे।

श्रीमान् लाला रामसरनदासजीके विनीत आग्रहसे महाराज पाँच अगस्तको उनके मकानपर उपदेश दिया। वहाँ छः दिनतक व्याख्यानवर्षा होती रही। उन व्याख्यानोंमें पुराणोंपर अतिमनोरञ्जक समालोचना हुई।

सं० १९३५ आश्विन वदी ३ से ११ तक श्री छोटेलालजीकी कोठीपर स-

त्सँग लगते रहे। वहाँ महाराजने अच्छी तरहसे पाखण्ड-खण्डन किया और ऋग्वेदके कुछ सूक्त सुनाकर लोगोंको मोहित कर लिया।

मेरठकी धर्म्म सभाने स्वामीजीसे ये प्रश्न पूछे:—

१—चार धाम और सप्तपुरी आदि नगरों और ग्रामोंमें, जो उन्नत-शिखर मन्दिर हैं और उनमें जो देवमूर्तियां हैं उनका पूजन परम्परासे होता चला आता है। सुना है कि आपको इन बातोंमें सन्देह हो गया है। यदि सचमुच आपको सन्देह है तो उनकी निवृत्ति स्मृतियोंके प्रमाणोंसे कर लेना और यदि संशय न हो तो सूचना दीजिएगा।

२—गङ्गा-नदीके श्रेष्ठ और पूज्यतमा होनेमें प्रमाण दीजिये। यदि आप उसके ऐसा होनेमें सन्देह करते हैं तो वह सन्देह प्रकट कीजिए।

३—जितने अवतार हुए हैं उनको किसने अवतार बनाया और किसने अतुल सामर्थ्य दिया ?

स्वामीजीने इनका जो उत्तर दिया उसका क्रमपूर्वक सार यह है:—

१—मुझे पाषाणादिकी प्रतिमाओंके पूजनमें सन्देह नहीं है; मैं तो मूर्ति-पूजाको निश्चयरूपसे वेदविरुद्ध मानता हूं। किसी वेद-शास्त्रमें प्रतिमा-पूजन का विधान नहीं है। किसी भी ऋषि मुनिने मूर्तिका पूजन नहीं किया और नही ऐसा करनेके लिए किसीको उपदेश ही दिया। वेदमें कहा है कि 'न तस्य प्रतिमा अस्ति' पवित्र परमेश्वरकी प्रतिमा नहीं है। जो लोग जड़ पदार्थोंको परमेश्वर मानकर पूजते हैं उनके लिए कहा गया 'अन्धं तमः प्रविशन्ति'— अर्थात् वे अविद्यादि घोर दुःख-अन्धकारमें फँस जाते हैं। इस लिए वेद-आज्ञानु-सार एक परमेश्वरकी ही उपासना करनी चाहिए।

अब जड़-पूजनके भी विरुद्ध युक्तियाँ दी जाती हैं। आप यदि कहें कि हम मूर्तियोंको देव तो नहीं मानते, किन्तु देवकी भावना उनमें करते हैं, इस लिए फल मिल जायगा। तो हम पूछते हैं कि आपकी वह भावना सच्ची है अथवा झूठी ? यदि उसे सच्ची मानते हो तो यह बताओ कि सारा संसार जो सुखकी

भावना करता है, वह पूर्ण क्यों नहीं होती ? यदि प्रतिमामें देवभावसे स्वर्ग मिलता है तो पानीमें दूध और मिट्टीमें मिश्रीका भाव करनेसे भी कार्य-सिद्धि होनी चाहिए। यदि भावना झूठी करते हो तो मिथ्या व्यवहारवाले मनुष्यकी बात विश्वासके भी योग्य नहीं रहती। यदि ईश्वरको सर्वव्यापक मानकर मूर्तिमें पूजते हो तो वह परमात्मा पुष्पोंमें भी तो पाया जाता है। उनको तोड़कर मूर्तिपर क्यों चढ़ाते हो ? सर्वव्यापकको एक स्थानमें मानकर पूजना उसकी व्यापकताके साथ उपहास करना है।

यदि यह मानते हो कि मूर्ति-पूजा परमेश्वरके ज्ञानके लिए एक साधन है तो यह कथन भी अयुक्त है। गुणोंसे गुणीका ज्ञान होता है। मूर्तिमें तो ईश्वर का एक भी गुण नहीं है।

२—दूसरे प्रश्नके उत्तरमें महाराजने कहा कि "प्रथम तो आपका प्रश्न ही विचित्र है। आप मुझसे पूछते हैं कि गङ्गानदीके श्रेष्ठ और पूज्य होनेका प्रमाण दीजिए। इससे दो बातें निकलती हैं—प्रथम तो यह कि आपको गङ्गा के श्रेष्ठ और पूज्य होनेमें सन्देह है; दूसरे सन्देह नहीं है, तो आपको उसके श्रेष्ठ और पूज्य होनेमें कोई प्रमाण नहीं मिलता, इस लिए मुझसे प्रमाण पूछते हो।

मुझे तो इस बातका पूर्ण निश्चय है कि दूसरी सब नदियोंसे गङ्गाजल उत्तम है। साथ ही, मैं यह भी निश्चित मानता हूं कि गङ्गामें स्नान करने अथवा गङ्गा-जल पान करनेसे मुक्ति नहीं होती; इससे पाप नहीं धुलते।

श्री स्वामीजी महाराज श्रीकृष्णादि महापुरुषोंको निर्दोष मानते थे। सत्यार्थ-प्रकाशके ग्यारहवें समुल्लासमें उन्होंने लिखा है कि श्रीकृष्णजीका उत्तम वर्णन महाभारतमें मिलता है। महाभारतमें ऐसी कोई बात नहीं मिलती, जिससे पता लगे कि श्रीकृष्णने जन्मसे मरणपर्यन्त कोई भी पापाचरण किया था। पुराण कर्त्ताओंने ही उनपर मिथ्यारोप किये हैं। बारहवें समुल्लासमें उन्होंने लिखा है कि श्रीकृष्णादि महापुरुष धर्म्मात्मा और महात्मा जन थे।

३—धर्म्म-सभा, मेरठके तीसरे प्रश्नका उत्तर देते हुए महाराजने लिखा था कि जिनको आप परमेश्वरका अवतार कहते हैं वे ईश्वरावतार तो नहीं, किन्तु बड़े उत्तम पुरुष थे। वे परमेश्वरकी आज्ञामें चलनेवाले थे। वे सद्धर्म्म और न्याय आदि गुणोंसे अलंकृत और वेद-शास्त्रके पूर्ण विद्वान् थे। उन ऐसा उत्तम पुरुष न पहले हुआ और न अब है।

आप उन उत्तम पुरुषोंको ईश्वरावतार मानते हैं, यह आपकी भारी भ्रान्ति है। जो अजर, अमर और सर्वव्यापक है वह अवतार धारण नहीं कर सकता। जो सर्वत्र परिपूर्ण है उसे अवतार धारण करनेकी आवश्यकता ही क्या है? अवतार लेनेसे वह सर्वत्र परिपूर्ण नहीं रह सकता। यदि कहो कि दुष्टोंको दण्ड देनेके लिए परमेश्वर देह धारण करता है तो यह भी अयुक्त है। जो विना देहके सृष्टि उत्पत्ति, पालना और प्रलय करता है, क्षुद्र कार्य्यके लिए उसके काया-धारणकी कल्पना करना कितना तुच्छ और मिथ्या विचार है।

फिर महाराजने कहा, "जो आपने पूछा कि अवतारोंको कौन बनाता और सामर्थ्य देता है, उसका उत्तर यही है कि परमेश्वर ही सबका रचने वाला है। वही बल-भण्डार सबको सामर्थ्य प्रदान करता है। बड़े शोककी बात है कि आप लोग श्रीरामचन्द्रजी और श्रीकृष्णजी आदि उत्तम पुरुषोंको परमेश्वरका अवतार मानकर भी उनका घोर अपमान करते हो। उनकी मूर्त्तियोंको बाजार और गलीमें घुमाकर भीख मंगाते हो। उनके स्वाँग निकालकर तो, और भी अधिक निरादर प्रदर्शित करते हो। रामादि महापुरुषों और सीतादि सतियोंके जब आप स्वाँग निकालते हैं तो परमतवाले उन्हें देखकर हँसी उड़ाते हैं। अश्लील कटाक्ष और संकेत करते हैं। दुकानवालोंके लिए तो यह रास मनोरञ्जनका एक साधन है, परन्तु इससे आर्य्य जातिके महापुरुषकी, दूसरोंकी दृष्टिमें, बड़ी अवहेलना होती है।

माखन-चोर आदिके स्वाँग भी कुछ कम अपमान जनक नहीं। अपने देशके जो राजेमहाराजे लाखों मनुष्योंका शासन, पालन, रक्षण करते थे; जो महापु-

रुष आजीवन परमात्माकी आज्ञामें रहे; जो सत्यमें, धर्म्ममें और न्यायमें अद्वितीय थे; महाशोक है कि आप लोग उनके स्वाँग बनाकर पैसे पैसेके लिए हाथ पसारते हो और साथ ही अपनेको उन महात्माओंका भक्त प्रख्यात कर रहे हो। हा ! आप तो उनके स्वाँग भरते, लीला करते और उनको नाचते तथा मांगते देखते हो, परन्तु मेरा हृदय तो इस वर्णनसे ही विदीर्ण हो रहा है। इस समय शोक-सागर इतना उमड़ पड़ा है और जी इतना भर आया है कि कुछ अधिक वर्णन करना वाणीकी सामर्थ्यसे बाहर है। केवल इसीको पर्याप्त जानिए कि ईश्वरका अवतार नहीं होता। प्रमाणके लिए एक मन्त्र भी उपस्थित करता हूं:—

"सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूःस्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।"

मौलवी अबदुल्ला महाशयने धर्म्म-चर्चा करनेके लिए स्वामीजीसे पत्रव्यवहार किया। स्वामीजीने उनकी प्रार्थनाको तुरन्त स्वीकारकर लिया और लिखा भेजा कि 'धर्म्म-चर्चा लेखबद्ध ही होगी'। मौलवी महाशयने लेखबद्ध वाद करना स्वीकार न किया।

महाराजने अपने प्रभावशाली व्याख्यानोंमें अमूलक मतोंकी पोल खोलकर सर्व साधारणको दिखला दी। उनकी काल्पनिक कथाओंके अच्छे चित्र खींचे। असम्भव बातोंपर मनोगम टीका टिप्पणी चढ़ाई। इससे पौराणिक दलमें हलचल मच गई। खण्डनकी प्रबल पवनसे पौराणिक सागर झकझोरे खाने लगा। पण्डित लोग स्थान स्थानपर सभा करते और हस्ताक्षरहीन पत्र भेजकर महाराजको अपनी सभामें बुलाते। परन्तु स्वामीजी यही उत्तर देते कि किसी प्रामाणिक पुरुषके हस्ताक्षरयुक्त पत्र लाइए; मैं शास्त्रार्थके लिए जहां चाहो चला चलता हूं। बहुतेरे मनुष्य इधर उधर गये; दोनों ओरके प्रतिष्ठित पुरुषोंने मिल कर बड़े लम्बे चौड़े नियम भी बनाये, परन्तु परिणाम फिर भी वही रहा। स्वामीजीके पास इधरसे जो भी पत्र आया वह हस्ताक्षरशून्य ही आया। अन्त

में महाराजने सारा पत्र व्यवहार जनताको सुलाकर व्यर्थके समय नाशको बन्द कर दिया।

महाशय बैनीप्रसादजी श्रीसत्संगमें प्रतिदिन जाया करते थे। उन्होंने एक दिन पूछा, "भगवन्! गङ्गा-माहात्म्य, तिलक आदिका लगाना सब योंही प्रवृत्त हो गया है अथवा इसका कोई कारण भी है?"

स्वामीजीने उत्तर दिया "माहात्म्य तो सारे निर्मूल हैं, परन्तु ये गङ्गादि स्थान हमारे पूर्वज महर्षियोंके आश्रम-स्थान थे। इन पवित्र और स्वच्छ प्रदेशोंमें वे तप, जप और योगानुष्ठान किया करते, विद्यार्थियोंको ज्ञान-दान देते। सांसारिक कार्य्योंके भूरि भारसे परिश्रान्त और अशान्त जन इन स्थानोंमें जाकर विश्राम किया करते थे। तपोधन महात्माओंके दर्शनोंसे उनको आत्मिक शान्ति भी लाभ होजाती। बहुतसे जन दुर्वासनासे मलिन मनको उन सन्तोंके सत्सङ्गमें बैठकर शुद्ध कर लेते। परन्तु आज वे बातें नहीं रहीं। अब तो ये स्थान स्वार्थ-परायण लोगोंसे घिरे हुए हैं।

तिलक लगानेका भी कोई पुण्य नहीं है। यह रीति व्यर्थमें ही चल गई है। हाँ, यह बात तो ठीक है कि पुरातन आर्य्य लोग दोनों भौहोंके मध्यमें ध्यान किया करते थे। अपने शिष्योंको भी इसकी शिक्षा देते थे। इस स्थानमें ध्यान करनेसे लाभ भी महान् होता है। त्रिकुटीके अभ्यासियोंमेंसे किसी किसीको बिन्दुसमान उज्ज्वल ज्योति-कण दीखने लगता है। कोई तेजोमय चक्राकारको देख पाता है। कोई अर्द्ध चन्द्राकार तथा पूर्णचन्द्राकार प्रकाश-पुञ्जके दर्शन करता है और किसीको दीप-शिखाके आकारकी ज्योति दिखाई देती है। ये सब योग-चमत्कार हैं, आत्मिक उन्नतिके चिन्ह हैं। कोरे तिलकोंका इनके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

बैनीप्रसादजीने विनय की, "महाराज! आप परमात्माकी सिद्धि युक्तियोंसे तो कर देते हैं, परन्तु युक्तियाँ सदा बदलती रहती हैं। जो युक्ति आज अकाट्य कही जाती है कोई आश्चर्य नहीं कि कालान्तरमें वह किसीके कणपात करने योग्य भी न रहे।"

महाराजने उत्तर दिया कि "हम निरे बौद्ध नहीं हैं, जो युक्तियोंके बिना अन्य किसी प्रमाणका आदर ही न करें। हमारे सर्वोपरि प्रमाण वेद हैं। उनमें ईश्वर-विश्वास की आज्ञा है। ईश्वरकी सिद्धिमें प्रत्यक्ष प्रमाण भी है।"

'ईश्वर सबके समीप है और प्रतिदिन सबको उपदेश देता है। जो लोग अविद्यान्धकारमें ग्रस्त हैं वे उसको नहीं समझते। सोचिये, एक मनुष्य चला जा रहा है। एक मूल्यवान् वस्तुको मार्गमें पड़ी देखकर उसका जी ललचा जाता है। उसे उठानेके लिये भीतरसे उपदेश मिलता है; ऐं! ऐसा काम मत करना यह महा अधम कर्म है, इसका फल अति दुःखदायक होता है। ऐसे ही जब कोई मनुष्य परोपकारादि शुभ कर्म करने लगता है तो उसमें उत्साह तथा हर्षकी मात्रा बढ़ जाती है। उसके अन्तःकरणमें यह ध्वनि होने लगती है कि यह कर्म अत्युत्तम और सुखमय फलका देनेवाला है। यह दोनों प्रकारका उपदेश सबके अन्तरात्मा—परमात्मा—की ओरसे होता है। यह देववाणी सबके हृदयोंमें गूंजायमान बनी रहती है। परन्तु इसे सुनते और समझते वे ही हैं जिनके अन्तःकरणसे कालेमल कालिमाका कलङ्क दूर हो गया है। ईश्वरप्रत्यक्षतामें यही प्रबल प्रमाण है।"

महाशय बेनीप्रसाद उन दिनोंमें तरुण थे। एक दिन वे अपने छः सात मित्रों-सहित श्रीसेवामें गये। रातके नौ बजेका समय था। उन्होंने महाराजसे निवेदन किया कि भगवन्! आज हम आपके पाँव दबाना चाहते हैं। स्वामीजी ताड़ गये कि ये लोग, पैर दबानेके मिस मेरा बल देखना चाहते हैं। वे मुस्कराते हुए बोले कि पाँव पीछे दबाना, पहले आप सब मिलकर हमारे पाँवको भूमिपरसे तो उठाओ। स्वामीजीने पाँव पसार दिया और वे सात आठ युवक, सारा बल लगाकर भी, उसे न उठा सके। अन्तको पानी पानी होकर हांपने लगे।

एक दिन अनेक मुसलमान सज्जन तथा पादरीगण स्वामीजीके साथ ईश्वरीय आदेशपर सम्वाद करने आये। सबने स्वमतानुसार युक्तियां दीं और अपनी धर्म्म-पुस्तकोंको ईश्वरका आदेश बताया।

उत्तर देते समय महाराजने अन्य मतवादियोंकी युक्तियोंका भली भांति खण्डन किया, वेदके पक्षमें अटूट युक्तियां दीं, और कहा, "संस्कृत, भाषा भी एक स्वाभाविक और ईश्वर-प्रदत्त भाषा है। इसके स्वरोंको लीजिए। इनकी ध्वनि सब देशोंमें पाई जाती है। सब प्रचलित भाषाओंमें इसीको अक्षरमाला नैसर्गिक है। छोटासा बच्चा भी अ, इ, उका उच्चारण बिना सिखाए करने लग जाता है। क, ख आदि व्यञ्जन अक्षरोंका उच्चारण भी ऐसा ही सुगम और स्वाभाविक है। जो भाषा स्वाभाविक ध्वनिके अक्षरोंसे बनी है वही भाषा स्वाभाविक और आदिम होनी चाहिए। ईश्वरीय आदेश भी उसी भाषामें होना उचित है।"

बख्तावरसिंहजी उन दिनों मेरठमें सबजज थे। वे प्रतिदिन महाराजकी सेवामें आया करते थे। एक दिन, वे अपने एक युवक बन्धुके साथ दर्शनार्थ आये। महाराजने जज महाशयसे कहा, "इस युवककी आयु सोलह वर्षकी प्रतीत होती है। इतनी छोटी आयुमें आपने इसका विवाह क्यों किया है? आप पढ़े-लिखे सज्जन हैं। यदि आप लोग ही इस कुप्रथाको न हटायँगे तो आर्य्य जातिका सुधार कैसे होगा? यह बालविवाह आपकी जातिके जीवन जड़में घुन बनकर उसका सर्वनाश कर रहा है। अब जो होना था सो तो हो गया, परन्तु पच्चीस वर्षके पहले, इसकी वधूका द्विरागमन न कराना।"

स्वामीजीका परमात्मापर परम विश्वास था। उसीके भरोसे कार्य्य करते और निर्भय होकर विचरते थे। मेरठ छावनीका एक सेठ स्वामीजीका घोर विरोधी बन गया। स्वामीजीपर छापा मारनेके लिए उसने छः सात गूजर सुसज्जित कर लिये। इस बातका पता शिवलाल आदि महाशयोंको भी लग गया। उन्होंने यह समाचार श्रीस्वामीजीको सुनाकर कहा, भगवन्! ऐसे दुष्ट लोगोंसे सावधान रहना उचित है।" स्वामीजीने उत्तर दिया कि "आप मेरी चिन्ता न कीजिये। मैं तो परब्रह्मपर ही निर्भर करता हूं। वही मेरा एकमात्र रक्षक है।"

स्वामीजीने श्राद्ध-खण्डनपर, मेरठ नगरमें, एक व्याख्यान दिया। इससे वहाँके ब्राह्मण और आचार्य्य बहुत चिढ़े। जिस मार्गसे स्वामीजीको अपने डेरेपर जाना था उसपर वे लाठियाँ लेकर स्थान-स्थानपर बैठ गये और कहने लगे, "आज दयानन्द इधरसे निकले तो सही, हम उसे जीता न जाने देंगे।"

इस गोलमालका भेद, स्वामीजीके प्रेमियोंको भी मिल गया। व्याख्यान के पश्चात् जब महाराज चलने लगे तो भक्तोंने विनय की, "भगवन्! कुछ देर ठहर जाइये। पहले प्रबन्ध कर लेने दीजिये। आज कुछ उपद्रवी जन मार्गमें लट्ठ लिये बैठे हैं गड़बड़ करना चाहते हैं।"

वे हँसते हुए बोले, "वे लोग कुछ नहीं कर सकेंगे। ऐसी घटनाओंसे मैं सर्वथा निर्भय हूं। मैंने एक सभ्यको समय दे रक्खा है, इस लिये ठहर नहीं सकता।"

महाराज उस सारी गलीमें गम्भीर गतिसे चलते हुए उसके दूसरे छोरपर पहुंच गये परन्तु किसीको 'ओ' तक कहनेका साहस न हुआ। वे उपद्रवी एक दूसरेका मुँह ताकते ही रह गये।

एक ज्योतिषी महाशय, अपने, सज्जन मित्रों-सहित स्वामीजी की सेवामें गये। उस समय मध्यान्हकाल था। स्वामीजीने उनसे कहा कि मैं पच्चीस मिनटतक नींद लेनेके उपरान्त आपसे वार्त्तालाप करूंगा। इतनी देर आप सुखपूर्वक विराजिये। वे सब कमरेसे बाहर बैठ गये। थोड़ी देरमें स्वामीजीका प्रेमी एक तहसीलदार दर्शनार्थ आया। ज्योतिषीजीने उसे कहा कि महाराजको पच्चीस मिनटतक सोना है। उनको सोये पन्द्रह मिनट हुए हैं। दस मिनट और बीतनेपर वे अवश्य जाग उठेंगे। इस लिये आप भी बैठ जाइए। ठीक पच्चीस मिनट बीतनेपर महाराजकी निद्रा भङ्ग हो गई और वे जाग उठे। इससे उन महाशयोंको बड़ा ही आश्चर्य्य हुआ।

ज्योतिषीसे महाराजने वार्त्ता-विनोदमें पूछा, "आप किस प्रयोजनके लिए यहाँ आये हैं?" उसने निवेदन किया, "भगवन्! मैं ज्योतिषी हूं। कुछ

प्राप्तिकी लालसासे ही यहाँ आया हूं।" महाराजने हँसते हंसते कहा, "यहां आते समय, यदि आपको यह ज्ञान था कि कुछ प्राप्ति हो जायगी तो आपका ज्योतिष-ज्ञान मिथ्या है, क्योंकि मैं आपको कुछ भी न दूंगा। यदि आपका ज्योतिष यह बताता था कि कुछ प्राप्ति नहीं होगी तो आप व्यर्थ-कार्यकर्त्ता सिद्ध हो गये। तब इस बातका क्या प्रमाण है कि आप ज्योतिष-विद्या की भी व्यर्थ ही बातें नहीं बताते फिरते ?' ज्योतिषी महाशय को इसका कुछ भी उत्तर न सूझा।

एक दिन महाराजकी सेवामें नहरके जिलादार श्रीसेवारामजी आये। जब वे जाने लगे तो उन्होंने स्वामीजीसे निवेदन किया, "भगवन्! यदि मैं नहर-विभागमें डिपटी हो गया तो पहले मासका वेतन वेदभाष्यके लिए अर्पण करूंगा।" कुछ कालान्तरमें उनकी मनःकामना पूरी हो गई। अभी उन्होंने अपने इष्ट-मित्रोंको भी इसका समाचार नहीं दिया था कि स्वामीजीका पत्र उन्हें प्राप्त हुआ; जिसमें महाराजने उन्हें नवीन पद, प्राप्तिकी बधाई देते हुए उनका प्रण भी स्मरण कराया। इसपर सेवारामजीको बड़ा आश्चर्य हुआ कि स्वामीजीको इस बातका पता कैसे लग गया।

एक दिन अनेक, तिलक-मालाधारी ब्राह्मण, स्वामीजीके निकट बैठे थे। उसी समय एक भद्र पुरुषने आकर उनको नमस्कार किया और कुशल पूछा। महाराजने उत्तर दिया कि "हमें कुशल कहाँ ?" भक्तने फिर पूछा, "भगवन्! क्या कोई मानस खेद है ?"।

उस समय महाराजने एक लम्बी साँस भरकर कहा, "इससे बढ़कर खेद और क्या हो सकता है कि ये ब्राह्मण, जो पास बैठे हैं अपने कर्त्तव्य कर्म्मसे कोसों दूर हैं। बाहरी आडम्बर और पाखण्डसे अधिक प्यार करते हैं। धर्म्मके प्रचारका इन्हें ध्यानतक नहीं। आर्य्य सन्तानकी दीन हीन दशापर इनको टुक दया नहीं आती !"

महाराजकी प्रकृति कोमल थी। उनका हृदय इतना मृदु था कि आर्य्य जाति तथा आर्य्य धर्म्मकी दुःख-कथा और दुर्दशाका वर्णन करते समय उनका जी भर आता था और नेत्र अश्रु मोचन करने लग जाते थे।

महाराजके मेरठमें विराजनेसे नगरमें बड़ा धर्म्मान्दोलन हुआ। लोगोंमें सत्यकी जिज्ञासा प्रकट हो गई। अनेक व्यक्तियोंने अपने जीवनोंको शुद्ध किया। वहाँ आर्य्य समाज भी स्थापित हो गया। लाला रामसरणदासजी और श्री छेदीलालजी प्रभृति, अनेक प्रतिष्ठित पुरुष, उसके सभासद बन गये।

मेरठसे चलकर कोई आश्विन सुदी १२ सं० १६३५ को महाराज देहली आये। सब्ज़मण्डीमें लाला बालमुकुन्द केसरीचन्द्रके उद्यानमें विराजमान हुए। विज्ञापनोंद्वारा सारे नगरमें श्री उपदेशोंकी सूचना दे दी गई। शाहर्जाके छत्तोंमें उनके प्रभावजनक व्याख्यान हुए।

स्वामीजी यज्ञोंमें और यज्ञोपवीत आदि संस्कारोंमें गायत्री-पुरश्चरण कराया करते। बहुतसे विद्वान् मिलकर बारह चौदह दिनतक गायत्री जप करते। यजमानसे भी यह पवित्र जप कराया जाता। जयपुरके ठाकुर श्री रणजीतसिंह ने एक बड़ा भारी यज्ञ करनेका सङ्कल्प किया था। इसपर महाराजने उन्हें कह रक्खा था कि हमारे कथनानुसार गायत्रीका अनुष्ठान कराइएगा। उस चिरकालिक सङ्कल्पको सफलीभूत बनानेके लिये, ठाकुर महाशयने, जोशी रामस्वरूप को श्री स्वामीजीकी सेवामें भेजकर, उन्हें यज्ञ करानेके लिए आमन्त्रित किया। स्वामीजीने देहलीसे जयपुर जाना स्वीकार कर लिया।

स्वामीजीके दर्शन करने और उन्हें दानापुर ले जानेके लिए भोलानाथ और मक्खनलालजी, दो सभ्य आये और नमस्ते कहकर महाराजके पास बैठ गये। उनके नम्र निवेदनको सुनकर स्वामीजीने उत्तर दिया कि 'यहांसे तो मैं जयपुर जानेका वचन दे चुका हूं। फिर जब पुष्कल अवकाश होगा तो आपके नगरमें अवश्य आऊंगा।' वेद-भाष्यपर बातचीत करते हुए उन्होंने कहा कि यह कार्य मैं आप लोगोंके लिये ही कर रहा हूं, मेरे शरीर छोड़नेके अनन्तर यह अतिशय उन्नतिका साधन होगा।

महाराज देहलीमें आर्य्यसमाजकी शुभ स्थापना करके कार्तिक शुक्ला एकादशी अथवा द्वादशी सम्वत् १६३५ को जयपुरको प्रस्थान कर गये। जब

वे जयपुरके रेलवे स्टेशनपर पहुंचे तो वहाँ जोशी रामस्वरूपजीको उपस्थित पाया। उन्होंने सारा सिर मुण्डवाया हुआ था। स्वामीजीने कारण पूछा तो जोशीजी अविरल आँसू बहाते बोले 'भगवन् ! अति शोक है कि ठाकुर रणजीतसिंहजीका देहान्त हो गया है।"

स्वामीजीने, उस समय उन्हें कहा कि ऐसे समयमें मैं जयपुर नहीं जाता। आप ठाकुर महाशयके वन्धुओंको मेरी ओरसे आश्वासन दीजियेगा और कहियेगा कि अजमेरसे लौटते समय, मैं जयपुर अवश्य आऊंगा।

महाराज वहाँसे अजमेरका टिकट लेकर गाड़ीमें बैठगये और कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी सं० १९३५ को, दिनके तीसरे पहर, अजमेर जा पहुंचे। कई प्रतिष्ठित सज्जन, उनके स्वागतके लिए, रेलवे स्टेशनपर विद्यमान थे। स्वामीजी सरदार भक्तसिंह इञ्जनीयरकी बग्घीमें बैठकर, सेठ रामप्रसादके उद्यानमें गये; वहीं विश्राम लिया। कार्तिक पूर्णिमाको पुष्करजीमें मेला हुआ करता है। महाराज उसपर धर्म्म-प्रचार करना चाहते थे इस लिए उसी दिन अजमेरसे चलकर महाराज जोधपुरके घाटपर, ईश्वरनाथजीके दरीचेमें विराजे। आगामी दिन विज्ञापनद्वारा सबको धर्म्म-प्रचारकी सूचना देकर सत्संग लगाया गया। महाराजके धर्म्म-नादको सुनकर पन्थाई लोगोंमें भारी हलचल मच गई।

इसके पश्चात् महाराज अजमेर लौट आये। मार्गशीर्ष वदी चतुर्थी सं० १९३५ को वहाँ व्याख्यान-वारि-वर्षा करने लगे। वहाँ उनके विविध विषयोंपर अनेक उत्तमोत्तम भाषण हुए।

उनका एक भाषण ईसाई धर्म्मपर था। उसमें वे बाइबलकी आयतोंका पाठ सुनाकर उनपर समालोचना करते था। उस समय एक योरुपीय पादरीने कहा, "आप जिन बाईबल वचनोंपर आक्षेप करते हैं वे सब लिखकर हमारे पास भेज दीजिए। हम जब उनको भलीभाँति विचार लेंगे तो फिर, यहाँ आकर उनका उत्तर आपको सुना देंगे।"

अगले दिन स्वामीजीने चौबीस वाक्य लिखकर, असिस्टेण्ट कमिश्नर

पण्डित भागरामजी द्वारा पादरियोंके पास भिजवा दिये। दस दिन पर्यन्त पादरी महाशय उनका समाधान सोचते रहे और अन्तमें मार्गशीर्ष सुदी चतुर्थीको सम्वादके लिए आये। उस दिन सम्वाद-सभामें दर्शकोंकी बड़ी भारी संख्या थी। उच्च कर्म्मचारी भी आये थे। सम्वादको आरम्भ करते समय स्वामीजीने कहा, "पादरियोंके साथ मेरा बहुत बार सम्वाद हुआ, परन्तु कभी कोई गड़बड़ नहीं हुई। सो आशा है कि यहां भी शान्ति भङ्ग न होगी।" इसके उपरान्त महाराजने पूर्व पक्षकी स्थापना की, तौरेतकी उत्पत्ति पुस्तक पर्व १, आयत २ में लिखा है कि पृथ्वी बे डौल है। जब ईश्वर सर्वज्ञ है तो उसका कार्य्य बे-डौल नहीं हो सकता। यह काम तो किसी अल्पज्ञ जीवका ही कहा जा सकता है।"

इसपर पादरी ग्रे महाशयने कहा, "यहां, बे-डौलसे तात्पर्य ऊजड़से है।"

इसपर स्वामीजीने समालोचना की, "इससे पहली आयतमें यह कहा गया है कि आरम्भमें ईश्वरने आकाश और पृथ्वीको सृजा और पृथ्वी बे-डौल सूनी थी। जब सूनी शब्द विद्यमान है तो बे-डौलका अर्थ उजाड़ नहीं हो सकता।"

इसका उत्तर पादरी महाशयने यह दिया, "एक अर्थके दो शब्द सभी भाषाओंमें प्रयुक्त होते हैं।"

महाराज इसपर प्रत्यालोचना करने ही लगे थे कि पादरी महाशय कह उठे—"महाशय! एक वाक्यपर दो प्रश्नोत्तर ही होने चाहियें। नहीं तो चौबीस वाक्योंपर हम आज नहीं बोल सकेंगे।" स्वामीजीने बहुत बल लगाया कि "तीसरी बार भी बोलने दीजिए। समयका ध्यान न कीजिए। जो वाक्य आज रह जायँगे उनपर कल विचारकर लिया जायगा।" परन्तु पादरी महाशयने ऐसा करना स्वीकार न किया।

२ स्वामीजीने कहा, "उसी आयतमें कहा है कि ईश्वरका आत्मा जलके ऊपर डोलता था। इसके पहले केवल आकाश और पृथ्वीकी रचना कही गई है। जब जलकी रचनाही न हुई थी तो जलपर डोलना कैसे सिद्ध हो सकता

है ? जलपर डोलना हमारी तरह देहधारीके लिए होना सम्भव है। जब आपके मतानुसार ईश्वर देहधारी सिद्ध हुआ तो साकारसे आकाशादिकी रचना नहीं हो सकती।

इसका उत्तर पादरी महाशयने यह दिया कि "पृथ्वीकी रचनामें जल भी आ गया। तौरेतके आद्योपान्तमें ईश्वरको आत्मरूप वर्णन किया है।"

स्वामीजीने समालोचना की, "ईश्वरका जो वर्णन बाईबलमें आता है उससे प्रतीत होता है कि वह किसी प्रकारका शरीर भी रखता है—जैसे आदम की वाड़ी बनाना, फिर ऊपर चढ़ जाना, मूसादिसे वार्तालाप करना, तम्बूमें आना, और याकूबसे मिलकर युद्ध करना आदि।"

प्रत्युत्तरमें पादरीने कहा, "ये सब बातें उस आयतके साथ सम्बन्ध नहीं रखतीं ये केवल अनजानपनकी बातें हैं।"

फिर स्वामीजीने कहा, "उसी आयतमें वर्णन है कि तब ईश्वरने कहा कि आदमको अपने स्वरूपमें, अपने समान बनावें। इससे तो स्पष्ट ज्ञात होता है कि जैसे आदम देहधारी था ठीक वैसा ही इस आयतका ईश्वर है।"

पादरी महाशयने उत्तर दिया कि, "इस वाक्यमें शरीरका कोई वर्णन नहीं है। इसका वास्तविक अर्थ यह है कि ईश्वरने आदमको पवित्र, ज्ञानवान् और आनन्दयुक्त बनाया।"

इसपर महाराजने प्रत्यालोचना करते कहा, "जब आपकी धर्म्म पुस्तकमें यह विद्यमान है कि ईश्वरने आदमको अपने समान बनाया तो इसका पवित्र और ज्ञानवान् आदि अर्थ कैसे करते हो ? यदि पवित्र रचा था तो उसने ईश्वरकी आज्ञा, क्यों भङ्ग की ?"

"आपके धर्म्म-ग्रन्थोंमें लिखा है कि जब आदमने ज्ञानके पेड़का फल खाया तो उसकी आँख खुली। इससे सिद्ध होता है कि वह ज्ञानवान् नहीं बनाया गया था; ज्ञान उसे पीछे प्राप्त हुआ। यदि आप आदमको आँख खुलने और अपनेको नग्न आदि समझनेको अज्ञान मानते हो तो क्या ईश्वरको और ईश्वर

समान स्वरूपवालोंको इन अवस्थाओंका ज्ञान नहीं होता ? इससे तो आपके ईश्वरकी सर्वज्ञता ही खण्डित हो जायगी।

इसके पश्चात् पादरी महाशयने कहा, "अब समय समाप्त हो गया है। इससे अधिक काल हम नहीं ठहर सकते। इस प्रकार सम्वाद करनेमें बोलना और लिखना, दोनों काम करने पड़ते हैं। इससे समय अधिक व्यय होता है। अच्छा तो यह है कि आप, अपने सारे आक्षेप लिखकर हमारे मकानपर भेज दीजिये। हम भी आपको लेखबद्ध उत्तर भेज देंगे।"

स्वामीजीने कहा, कि "जब आपने पहली प्रतिज्ञा बदल डाली तो दूसरीका आप पालन करेंगे, यह कैसे माना जाय ? लिखकर पत्र व्यवहार करनेमें जनताको कुछ भी लाभ नहीं होता। हमारा प्रयोजन है, लोगोंको समझाना। घरमें बैठकर पत्र-व्यवहार करनेसे तो, यह क्रम एक वर्षमें भी समाप्त नहीं हो सकेगा।" पर पादरी महाशयने स्वामीजीका कथन स्वीकार नहीं किया। और वे उठकर चले गये।

इस सम्वादका अजमेरकी जनतापर अत्युत्तम प्रभाव पड़ा। लोग ईसाई धर्म्मकी वास्तविक मूर्त्तिको समझ गये।

अजमेरके मुसलमान भी सम्वाद करनेकी बातें करते थे, परन्तु जब उनको कहा गया कि आप अपने गुरुसे स्वामीजीका शास्त्रार्थ कराइये तो वे संवाद करनेसे टल गये।

अजमेरमें, एक दिन व्याख्यान देते समय, स्वामीजीने ढाई पुराने पन्ने उठाकर दिखाये और कहा कि मैंने अखिल आर्य्यावर्त्तमें धनुर्वेदको खोजा परन्तु केवल ये ढाई पन्ने ही मिले। यदि मेरे जीवनकी लड़ी बनी रही तो मैं वेदोंसे धनुर्वेदका प्रकाश अवश्यमेव कर दूंगा।

स्वामीजीके हृदयमें भारतके निर्धनोंके लिये अपार दया निवास करती थी। एक दिन वे व्याख्यान दे रहे थे। उसी समय समाचार मिला कि भरतपुरिये चमारोंके गञ्जमें आग लग गई है और उनके घास-फूसके मकान जलकर राखका

ढेर हो गये हैं। यह सुनते ही, उनके दयालु हृदयमें दया उमड़ आई। उनके त्राण तथा सहायताके लिए उन्होंने अपने पाससे कुछ द्रव्य दिया और दूसरे लोगोंको भी इसके लिए प्रबल प्रेरणा की। उनके उपदेशसे तत्काल पर्य्याप्त रुपया एकत्र हो गया।

मसूदा राज्यके राव श्री बहादुरसिंहजीने, प्रबल-प्रार्थनापूर्वक, स्वामीजीको अपने नगरमें निमन्त्रित किया। उनके आग्रहसे स्वामीजी मार्गशीर्ष सुदी अष्टमी सं० १९३५ को मसूदामें सुशोभित हुए। महाराजके वहाँ तीन चार व्याख्यान हुए। राव महाशय व्याख्यानोंमें तो आते ही थे, परन्तु स्वामीजीके सत्संगमें उनको इतना रस आता कि वे सारा दिन, श्री चरणोंमें ही बैठे बैठे बिता देते। मन-चाहे प्रश्न पूछते और संशय निवारण कराते रहते।

पौष वदी पड़वा सम्वत् १९३५ को स्वामीजी मसूदासे चलकर नसीराबाद में पधारे और मसूदाराज्यके उद्यानमें ठहरे। वहाँ महाराजने अपने अमृतमय उपदेशोंसे लोगोंको कृतार्थ कर दिया। नसीराबादमें तीन दिवस रहकर चौथे दिन वे जयपुरको प्रस्थान कर गये।

पौष वदी ५ सं० १९३५ को स्वामीजी जयपुर पहुंचे और डेढ़ उद्यानमें ठहरे। उनके खण्डन विषयके प्रभावशाली व्याख्यान हुए। ठाकुर रघुनाथसिंह ने महाराजा महाशयको स्वामीजीके दर्शनार्थ प्रेरित किया और वे समुद्यत भी हो गये। परन्तु दो एक ब्रह्मचारियोंने उनको कुछ उलटफेरमें डाल दिया और श्री दर्शनोंसे वञ्चित रक्खा।

जयपुर-राज्यके एक बहुत बड़े सत्ताधारी मनुष्यको एक सज्जनने कहा कि यहाँ स्वामीजी पधारे हुए हैं। आप भी उनके दर्शन कीजिए। उसने आवेशमें आकर उत्तर दिया कि आपतो दर्शनोंको कहते हैं, हमारा वश चले तो उन्हें कुत्तोंसे नुचवा डालें!

महाराजने जब मृतक-श्राद्ध और मूर्ति-पूजाका खण्डन किया तो महाराजा जयपुर भी अप्रसन्न हो गये। उनकी अप्रसन्नतासे कम्पित काय होकर, ठाकुर

लक्ष्मणसिंहजीने कहा, "भगवन् ! ऐसी अवस्थामें आपका यहां रहना अच्छा नहीं है। श्रीचरणोंको कहीं कोई कष्ट-क्लेश न भोगना पड़े।"

स्वामीजीने उत्तर दिया, "ठाकुर महाशय ! आप हमारे विषयमें सर्वथा निश्चिन्त रहिये। मैं, विपत्ति और बाधाओंके कारण, अपने उद्देश्यको नहीं छोड़ सकता। मुझे इन बातोंका भय भी नहीं है। हाँ, आप राजकर्मचारी हैं। इस लिए, आपको भय भी हो सकता है। सो उससे बचनेका सर्वोत्तम उपाय यह है कि श्रीमन्त मेरे समीप न आया करें, परन्तु मैं तो किसी मनुष्यका नौकर नहीं हूं। मेरे आत्माको तो कोई मनुष्य छीन सकता ही नहीं। शेष कौनसा पदार्थ है, जिसके छिन जानेका मुझे डर हो सकता है।"

स्वामीजीके सामर्थ्यको जयपुरके पण्डित जानते थे। वे आप तो उनके सामने आनेका साहस न करते, किन्तु विद्यार्थियोंको सिखा समझाकर भेजते थे। महाराज उनकी चातुर्य्ययुक्त चालको जान गये। उन्होंने विद्यार्थियोंको कहा, "यदि तुम शास्त्रार्थ करना चाहते हो तो हमारे शिष्योंके साथ कर लो; हम तो तुम्हारे गुरुओंसे ही सम्वाद करेंगे।"

जयपुरमें स्वामीजीके तीन अत्युत्तम भाषण; ठाकुर लक्ष्मणसिंहजीकी हवेलीमें हुए। इन व्याख्यानोंमें कई ठाकुर और उच्च राजकर्म्मचारी भी आते थे।

स्वामीजीके प्रेमियोंके कोमल अन्तःकरणोंको ठेस लगानेके लिए, दुष्ट जन अनेक मिथ्या समाचार उड़ा देते थे। कभी उनकी मृत्युका समाचार और कभी उनके बन्दी बनाए जानेका समाचार उड़ा देते थे। जब स्वामीजी जयपुरमें थे, तो रुड़कीमें किसी दुर्जनने यह बात फैला दी कि महाराजा जयपुरने स्वामीजी को, उनके कर्म्मचारियों-सहित, कारावासमें आबद्ध कर लिया है। यह समाचार सुननेके पश्चात् जब तक भक्त जनोंने स्वामीजीका सुख समाचार न मँगा लिया तबतक वे व्याकुल ही रहे।

रेवाड़ीमें राव युधिष्ठिरसिंह नामक एक प्रतिष्ठित व्यक्ति वास करते थे। वे अति सज्जन थे और कोई पचास गाँवके भूमिहार थे। उन्होंने श्री महाराजके

दर्शन, राजमहोत्सवके समय, देहलीमें किये थे। तभीसे उनके हृदयमें स्वामी जीकी भक्ति निवास करती थी। उनकी बार बारकी विनीत विनतीपर, श्री स्वामीजी पौष सुदी १ सं० १९३५ को रेवाड़ीमें सुशोभित हुए। नगरसे दूर एक उद्यानमें उन्होंने डेरा किया। वहाँ राव महाशयके प्रबन्धसे स्वामीजीके उत्तमोत्तम व्याख्यान हुए। उन व्याख्यानोंमें उन्होंने कुरीतियोंका बड़े बलसे खण्डन किया। गायत्रीके महत्त्वपर भी उनका एक अत्युत्तम उपदेश हुआ।

गङ्गाप्रसाद नाम एक व्यक्तिने महाराजकी सेवामें निवेदन किया, "भगवन्! ब्राह्मण यह कहते हैं कि ब्रह्मगायत्रीको ग्रहण करनेका अधिकार केवल ब्राह्मण को ही है।"

स्वामीजीने उत्तर दिया कि "उनको ऐसा मानना अमूलक है। शास्त्रमें तो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, इन तीनों वर्णोंके लिए एक ही गायत्री और सन्ध्या विधान की है।" इसके साथ ही स्वामीजीने गङ्गाप्रसादको अपनी पञ्च-महायज्ञ-विधि पुस्तककी एक प्रति प्रदान की। एक घण्टा लगाकर, उसे गायत्री का शुद्ध उच्चारण सिखाया। जब वह गायत्री सीखकर नगरमें गया तो ब्राह्मण उसे कहने लगे, "तू जो कुछ सीखकर आया है वह ब्रह्मगायत्री नहीं है।" गङ्गाप्रसादने आकर यही बात श्रीसेवामें निवेदन कर दी।

स्वामीजीने उसे कहा, "जो कोई आपसे कहे कि यह ब्रह्मगायत्री नहीं है, उसे मेरे पास ले आना। मैं उसे अच्छी तरह समझा दूंगा।" तब तो गङ्गा-प्रसाद सिंह हो गया। नगरमें सबको ललकारने लगा कि यही ब्रह्मगायत्री है।

राव महाशयने, स्वामीके व्याख्यान सुननेके लिए, अपनी बिरादरीके लोग बड़ी दूर दूरसे बुलाये थे। इस लिए रेवाड़ीके आस पासके गाँवमें भी धर्म्म-प्रचार हो गया।

राव महाशयको उत्तम जीवन प्रदान करनेके अनन्तर, महाराज माघ वदी १ सं० १९३५ को रेवाड़ीसे चलकर देहली आये और सब्जी मण्डीके पास बाल-मुकुन्द किशोरचन्द्रके मोती-उद्यानमें विराजमान हुए। इस बार उन्होंने वहाँ

दो तीन ही व्याख्यान दिये और फिर वे हरिद्वारके कुम्भमेलेपर जानेके लिए प्रस्थान कर गये। माघ वदी ६ को महाराज मेरठमें उतरे। वहाँसे उन्होंने विज्ञापन छपवाकर साथ ले लिये और मार्गमें सहारनपुर और रुड़कीमें ठहरते हुए फाल्गुन सुदी ६ सं० १९३५ को ज्वालापुरमें पहुंचे। वहाँ वे मूला मिस्त्रीके बङ्गलेमें विराजे और प्रतिदिन धर्म्मोपदेश करते रहे।

ज्वालापुरमें राव ओजखाँ नामके एक सम्भ्रान्त व्यक्ति निवास करते थे। वे स्वामीजीके सत्संगमें आया करते थे। उन्होंने एक दिन प्रार्थना की, "महाराज! क्या गो-रक्षा सब जीव-रक्षासे अच्छी है?" स्वामीजीने उत्तर दिया, "हाँ, गो-रक्षा सर्वोत्तम है और इसमें सबसे अधिक लाभ है। गो-रक्षा करना सब मनुष्योंका कर्तव्य है।"

ओजखाँ महाशयने यह भी पूछा, "आर्य्योंमें नित्य प्रति नहानेका नियम किस नींवपर रक्खा गया है?" स्वामीजीने उत्तर दिया, "आयुर्वेद विद्या के अनुसार प्रतिदिन स्नान करना बल-पुष्टिका वर्द्धक, आरोग्यदाता तथा स्वास्थ्य सम्पादक है। इससे देहमें स्वच्छता और स्फूर्त्ति बनी रहती है।" राव महाशयने स्वामीजीका युक्तिसंगत कथन स्वीकार कर लिया और प्रभावित होकर मांस खाना भी छोड़ दिया।

फाल्गुन सुदी ६ सम्वत् १९३५ को स्वामीजी ज्वालापुरसे हरिद्वार पधारे। वहाँ उन्होंने श्रवणनाथके उद्यान और निर्मलोंकी छावनीके सामने, मूला मिस्त्रीके खेतमें अपना डेरा डाला। वहीं तम्बू ताने गये, पर्ण-कुटियायें निर्माण की गईं। सत्संगके लिए भी एक सुन्दर मण्डप सुसज्जित हो गया।

उस समय स्वामीजीकी सहायतार्थ उनके शिष्य श्री रामशरणदासजी मेरठ से आ गये। पण्डित उमरावसिंहजी आदि अन्य भी अनेक शिष्य, अपने गुरुदेवके साथ सहयोग देनेको उपस्थित हुए और उसी छावनीमें ठहरे। विज्ञापनोंद्वारा सर्वसाधारणको विदित कर दिया गया कि पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज, वैक्रमी सम्वत् १९३५ फाल्गुन शुक्ला ६ गुरुवारको हरि-

द्वारमें आकर, निर्मलोंकी छावनीके सामने, मूला मिस्त्रीके खेतमें ठहरे हैं। जो महाशय उनसे लाभ उठाना चाहें वह उपर्युक्त स्थानमें उपस्थित होकर सभ्यता और प्रीतिपूर्वक वार्त्तालाप करें।

विज्ञापनके निकलते ही, सारे मेलेमें स्वामीजीका नाम गूंज गया। सहस्रों नरनारी उनके उपदेशोंमें आने लगे। साधु लोग भी टोलियां और मण्डलियाँ बनाकर आते थे। महाराजने जब, तत्कालीन कुरीतियोंपर टीका-टिप्पणी चढ़ाई, कुप्रथाओंपर कठोर कुठाराघात किया और वेषमात्रोपजीवी जनोंकी समालोचना की तो सारा साधु-सागर संक्षुब्ध हो गया। महन्तोंके आसन डोलने लगे। मण्डलेश्वर अपनी मँडलियोंसहित घबरा उठे। उन दिनोंमें जहाँ जाओ, जिधर देखो, लोग स्वामी दयानन्दजीका ही कथोपकथन करते मिलते। कई पौराणिक पण्डित विरोध करनेके लिए कटि-बद्ध हुए, परन्तु जब सारा सामर्थ्य लगाकर भी वे कुछ न कर सके तो, अन्तमें जी छोड़ बैठे।

दो नाङ्गे साधु स्वामीजीके निकट आकर, अपमान-जनक वचनों द्वारा, बातचीत करने लगे। वे दोनों विनय-विहीन बकवादी और हठीले थे। श्री महाराज उनके साथ हँसते हँसते सादर उत्तर देते थे। इस वार्त्तालापमें नाङ्गे कई बार कुपित हुए परन्तु स्वामीजीकी प्रकृति-लतापर, उनके क्रोधाङ्गारकी एक भी चिङ्गारी उड़कर न पड़ी। वे प्रशान्त और प्रसन्न बने रहे। महाराजकी शान्तिका यह प्रभाव हुआ कि उन नाङ्गोंने अपनी जटा लटाको उसी दिन विसर्जन कर दिया और श्री-चरण शरण लेकर अपने अपराध क्षमा कराये।

एक दिन तम्बूके द्वार खुले हुए थे। महाराज उसमें बैठे कार्य्य कर रहे थे। उसी समय, एक आनन्दवन नामक परमहंस वहाँ पधारे। उनके एक हाथमें कमण्डलु, दूसरेमें दण्ड और तनपर एक लम्बा, उज्ज्वल चोला शोभायमान था। उनके साथ कोई दस शिष्य थे।

ज्योंही, स्वामीजीने आनन्दवनजीको भीतर पदार्पण करते देखा, वे तत्काल आसनसे उठ खड़े हुए और तम्बू द्वारपर जाकर उनका स्वागत किया। उनको

उचित आसनपर बैठाया। उसी समय दोनोंमें शास्त्रार्थ आरम्भ हो गया। जब दिनके ग्यारह बजे तो स्वामीजीके सेवकने आकर निवेदन किया, "भगवन्! भोजन प्रस्तुत है।"

स्वामीजीने अतिथिसे भोजनके लिए कहा तो वे बोले कि जबतक इस प्रश्नका निर्णय न हो ले, हम भोजन नहीं करेंगे। शास्त्रार्थ द्वैताद्वैतपर था। स्वामीजी, चारों वेदों और पचास साठ अन्य पुस्तकोंको अपने पास रखकर, प्रमाणोंके प्रबल अस्त्रपातसे परमहंस आनन्दवनजीके सघन संशय-वनको लगे उड़ाने। जब द्वन्द्व-युद्ध होते दिनके दो बज गये तो वे दोनों महात्मा उठ खड़े हुए। थोड़ेसे वार्त्तालापके उपरान्त आनन्दवनजीने अपने शिष्योंको सम्बोधन करके कहा, "मैंने स्वामीदयानन्दजीके द्वैतसिद्धान्तको स्वीकार कर लिया है। आज इनकी युक्तियोंकी वायुने, मेरे अहं-ब्रह्मवादके घमण्डरूप, घोर घनघटाटोपको उड़ा दिया है। अब आपको भी ऐसा ही करना उचित है।" तत्पश्चात् वे महात्मा चले गये।

आनन्दवनजी श्री-उपदेशोंमें प्रायः आया करते और एकाग्र चित्तसे सुना करते थे। वे संस्कृतके धुरन्धर पण्डित थे। उनकी आयु उस समय कोई अस्सी वर्षके लगभग होगी

एक निर्मला साधु, जोतसिंह स्वामीजीके निकट आया और वार्त्तालाप करने लगा। वह स्वामीजीके विरुद्ध बार बार जले कटे वचन कहता था। यद्यपि स्वामीजीके शिष्य आवेशमें आजाते, परन्तु महाराज उनको शान्त करके उस मूर्ख महात्मासे कथोपकथन करते हो जाते थे। दो दिन तक तो वह साधु टेढ़ी ही चाल चलता रहा। वक्रवाक्य और व्यङ्ग-वचन-बाण वर्षामें उसने कोई त्रुटि न छोड़ी, परन्तु जब वह तीसरे दिन श्रीसेवामें आया तो उसके चित्तका चित्र और ही था। उसके दोनों कपोलोंपर आंसुओंकी धाराका तार बंधा हुआ था। वह बद्धाञ्जलि श्रीचरणोंपर गिर पड़ा और अपने किये अपराधोंके लिए क्षमा मांगने लगा। जोतसिंहके पश्चात्तापके उत्तापसे महाराजको अति अनुकम्पा आ गई।

उसे ढाढस बंधाकर उन्होंने उसे अपने पास ही रख लिया। अन्तमें वह पक्का आर्य्य बन गया।

एक दिन, एक अमृतसर-निवासी आर्यने श्रीसेवामें आकर निवेदन किया कि भगवन्! मुझे अमृतसरके आर्य समाजियोंने आर्य्य समाजकी सभासदीसे निकाल दिया है।

स्वामीजीने उससे पूछा कि आपको किस अपराधपर बहिष्कृत किया गया? उसने उत्तर दिया कि पुस्तक चुरानेका दोषारोप करके उन्होंने मुझे निकाला है। भगवान्ने गम्भीर भावमें उसे कहा कि सच सच कहना, क्या आपने पुस्तकें चुराई भी थीं? उसने कह दिया कि महाराज! यह दोष हुआ मुझसे अवश्य है।

स्वामीजीने परिलक्षित कर लिया कि सच्चे अन्तःकरणसे अनुताप कर रहा है। इसलिये उन्होंने उसे शिक्षा दी कि फिर ऐसे पाप-सोपानपर पदार्पण कभी न करना और आर्य्य समाज, अमृतसरके नाम भी पत्र लिख दिया कि हमने इसका अपराध क्षमा कर दिया है। अब इसे सभासद बना लीजियेगा।

एक दिन, स्वामीजीको महात्मा रत्नगिरिजी मिले। बातचीतमें महाराजने कहा, "सारे मठधारियों, महन्तों और मण्डलेश्वरोंमें सुखदेव गिरिजी, जीवन गिरिजी और विशुद्धानन्दजी, ये तीन पूरे पण्डित हैं। शेष तो निरे घाऊघप हैं। केवल लड्डू-पूरी उड़ाना ही जानते हैं। आप इन तीन महात्माओं के पास मेरे प्रश्न-पत्र ले जायँ।"

स्वामीजीके कथनानुसार, रत्नगिरिजी उनका पत्र सुखदेव गिरिजीके निकट ले गये। वे श्रीदयानन्दका पत्र पाते ही तिलमिला उठे और झुंझलाकर कहने लगे, "तुम दो-घरी बिल्लीकी नाईं बन गये हो। हम तुमपर विश्वास नहीं करते। आगेको, हमारे पास उनका कोई पत्र न लाना।"

श्रीस्वामीजी महाराजका ईश्वरकी प्रार्थना और उपासनामें बड़ा विश्वास था। उन्होंने सत्यार्थ-प्रकाशमें लिखा भी है कि स्तुतिसे ईश्वर-प्रेम बढ़ता है। उसके, गुण कर्म और स्वभावसे अपने गुण, कर्म और स्वभाव सुधर जाते हैं।

ईश्वरकी प्रार्थनासे निरभिमानता आती है और उत्साह प्राप्त होता है, प्रभुकी सहायता मिलती है। परोपकार करनेकी प्रार्थनाहीमें परमेश्वर सहायता देता है। महाराज व्याख्यानके आरम्भमें पहले परमात्मदेवकी प्रार्थना किया करते। वे ईश्वर-गुणगान ऐसे स्वरसे करते कि उनका गला गद्गद हो जाता। श्रोता भी भक्ति-रसमें झूमते हुए प्रेमाश्रु बहाने लग जाते। उनकी प्रार्थनामें एक विशेष अलौकिक रस होता था।

एक दिन, निर्मल महात्मा रामसिंहजीने स्वामीजीसे विनयकी, "महाराज! इतने पण्डित और ज्ञानी होकर भी, आप भिखारियोंकी भांति ईश्वरसे भीख मांगते हैं। ऐसे कर्म तो अज्ञानियोंके लिए कहे हैं। जिस ज्ञानीने 'अहंब्रह्मास्मि' का मनन कर लिया उसे इस प्रकार रोने झीखनेकी क्या आवश्यकता है?" महाराजने उत्तर दिया, "मनुष्यमें प्रार्थनाकी वृत्ति स्वाभाविक है। जैसे आपमें खाने, पीने और सोनेकी वृत्ति तो विद्यमान है, परन्तु परितृप्ति प्राप्त करनेके लिए, आप उस वृत्तिको जगाते हैं। ऐसे ही प्रार्थनारूप, भक्तिवृत्तिको जगानेकी आवश्यकता है। यह सत्य नहीं है कि ज्ञानी-जन प्रार्थना नहीं करते। आप अपनेको पूरे वेदान्ती मानते हैं, परन्तु फिर भी वेदान्त-वाक्य दुहराते रहते हैं। जिस वस्तुका किसीको जितना अधिक ज्ञान होता है। वह उसे उतना ही अधिक स्मरण करता है। जितनी अधिक प्रीति परमेश्वरमें बढ़ेगी उसका उतना ही अधिक प्रकाश होगा। भाई रामसिंहजी! ऊपरसे चाहे जो कहो, परन्तु जबतक भूख-प्यास और सुख दुःख आदिका अनुभव करते हो तबतक आप पूर्ण नहीं हो। आपमें न्यूनता अवश्य है। अपनी न्यूनताको पूर्ण करनेके लिए—तीन गुणमयी मायासे ऊपर होनेके लिए प्रार्थना आवश्यक है।" रामसिंहजीने सिर झुका कर श्रीवचनोंको स्वीकार किया।

स्वामीजीके व्याख्यानोंमें निर्मल साधु बड़ी भारी संख्यामें आया करते थे। उनमेंसे बहुतोंका महाराजसे प्रेम भी हो गया था। निर्मलोंके अखाड़ेमें ये साधु झण्डेको नमस्कार किया करते हैं। जब एक दिन व्याख्यानमें निर्मलोंका

एक दल आया तो महाराजने मुस्कराकर कहा—"आओ भाई लक्कड़ पूजको ! बैठ जाओ।" यह सुनकर सारे साधु खिलखिलाकर हँस पड़े। इसके उपरान्त स्वामीजीने उनको उपदेश दिया, "आप लोग रातदिन तो आत्मवाद छाँटते रहते हो, उपनिषद् वचनोंको घोटे लगाते हो, वेदान्त-सूत्रोंकी छानबीनमें प्रवीणता प्रकट करते हो, कर्म्मकाण्डकी कतरब्योंतमें कौशल दिखाते हो, परन्तु भ्रममें इतने ग्रस्त हो कि जड़ वस्तुओंको भी नमस्कार करते हो।" स्वामीजीके कथनका उनपर बड़ा प्रभाव पड़ा।

महाराजको सम्प्रदायोंके आडम्बर देखकर, देशकी अधोगतिपर अति दया आती थी। वे कहा करते थे कि इन पन्थाई लोगोंने सन्मार्गका लोप कर दिया है। ये लोग अपनी प्रतिष्ठाकी लालसामें अपनी अपनी खिचड़ी पृथक् ही पकाते हैं। जनतामें एकमत होने ही नहीं देते।

वे, भारतके सामाजिक विगाड़पर भी, भारी मार्मिक वेदनाका अनुभव करते थे। एक दिनका वर्णन है कि स्वामीजी बैठे बैठे लेट गये और फिर उठकर टहलने लगे। एक भक्तने विनयपूर्वक पूछा, "महाराजको आज क्या कोई वेदना हो रही है ?" उन्होंने एक लम्बा सांस भर कर कहा—"भाई ! इससे अधिक हृदय-विदारक दारुण वेदना और क्या हो सकती है कि विधवाओंकी दुःख-भरी आहोंसे, अनाथोंके निरन्तर आर्त्तनादसे और गो-वधसे, इस देशका सर्व नाश हो रहा है।"

एक दिन सवेरे, मेरठके कमिश्नर कई राजकर्म्मचारियों-सहित स्वामीजीके मिलापार्थ आये स्वामीजीके सेवकोंने उन्हें आदरसे आसन दिया। थोड़ीही देरमें महाराज भी अपने तम्बूसे बाहर आये और अतिथियोंसे सन्मानपूर्वक मिले। कमिश्नर महाशय स्वामीजीसे बातचीत करके अति प्रसन्न हुए और उनकी रक्षा आदिके लिये पुलिसके कई कानिस्टेबल नियुक्त कर गये।

एक दिन स्वामीजी अपने आसनपर विराजमान थे। एक मनुष्यने आकर चरण-वदन किया और कहा—"भगवन् ! मुझे जम्मू-कश्मीरके महाराजा रण-

वीरसिंहजीने श्री-सेवामें भेजा है। लोगोंने आपकी मृत्युका समाचार भी उड़ा रक्खा है। परन्तु उसपर पूर्ण विश्वास न करके, महाराजाजीने कहा है कि यदि स्वामीजी जीवित हैं तो हरिद्वारके कुम्भपर अवश्य आयेंगे। उनके पास जाकर हमारा विनय-पत्र उपस्थित करना।"

तब उस भद्र पुरुषने एक पत्र श्रीसेवामें उपस्थित किया। उसपर महाराजाको मुहर थी। उसमें स्वामीजीसे एक ऐसी पुस्तक बनानेके लिए प्रार्थना की गई थी, जिसमें, शास्त्रीय प्रमाणोंद्वारा, यह सिद्ध किया हो कि जो जन हिन्दू-धर्म्मसे पतित होकर मुसलमानादि मतोंमें मिल गये हैं वे फिर हिन्दू बन सकते हैं। साथ ही यह भी कहा गया था कि यदि हो सके तो इसमें यह भी सिद्ध कर दीजिए कि ईसाई और मुसलमान जातियोंके लोग भी हिन्दू-धर्म्ममें आ सकते हैं। उनके साथ खानपानका व्यवहार करनेमें कुछ भी दोष नहीं है। उस समय महाराजने उस आगन्तुक पुरुषको कहा, "ईसाई और मुसलमानोंको शास्त्र-रीतिसे आर्य्य बनाना सिद्ध करनेमें कोई भी कठिनाई नहीं है। यह बड़ी सुगमतासे सिद्ध होजायगा। मैं श्री महाराजाके नाम, इस विषयमें आपको एक पत्र लिखकर दूंगा।"

उमीदखाँ और पीरजी इब्राहीमने स्वामीजीसे विनय की, "महाराज! हम ने सुना है कि आप मुसलमानोंको आर्य्य बना सकते हैं।" महाराजने उत्तर दिया, "आर्य्य, सन्मार्गपर चलने वाले श्रेष्ठ मनुष्यको कहते हैं, सो यदि आप आर्य्य धर्म्माचारको ग्रहण कर लें तो आप भी आर्य्य बन जायेंगे।"

तब उन दोनोंने पूछा "हमारे आर्य्य बन जानेपर क्या आप हमारे साथ मिलकर भोजन करेंगे?" स्वामीजीने उत्तर दिया, "हमारे धर्म्ममें केवल किसी का जूठन खाना विवर्जित है। सहभोजनमें तो कुछ भी दोष नहीं है।"

वे बोले, "जूठा खानेसे परस्पर प्रेम बढ़ता है।" इसपर महाराजने कहा, "इस प्रकार प्रीति बढ़ती हो तो कुत्ते भी तो इकट्ठे खाते हैं, परन्तु खाते खाते

ही एक दूसरेको काटने-नोचने लग जाते हैं।" यह सुनकर वे दोनों महाशय अवाक् हो गये।

रुड़कीके तहसीलदार नजफ अली तो स्वामीजीका उपदेश सुनकर मोहित ही हो गये। उन्हें सिद्ध पुरुष मानने लगे। उनको निश्चय हो गया कि जैसा आत्मिक ज्ञान संस्कृत पुस्तकोंमें पाया जाता है वैसा दूसरे धर्म्मोंकी पुस्तकोंमें नहीं मिलता।

एक दिन नजफ अली महाशयने निवेदन किया कि हमारे मतमें अनेक स्त्रियोंसे विवाह करनेकी आज्ञा है। इसमें आपकी क्या सम्मति है?

स्वामीजीने उत्तर दिया कि अनेक स्त्रियोंसे विवाह करना सर्वथा अनुचित है और अन्याय है। बहुत विवाहमें महाराजने अनेक दोष दिखाकर कहा कि वेद पवित्र में केवल एक स्त्री-पुरुष ही के विवाहका उपदेश है। तहसीलदार महाशयने श्री वचनोंको सिर आँखोंसे स्वीकार किया।

नववाँ सर्ग।

महाराजके उपदेशों और शङ्का-समाधानसे सहस्रों मनुष्योंने अपने भ्रम निवारण किये। भक्त जनोंके लिए तो भगवान्‌का सत्सङ्ग गङ्गा-स्नान, कुम्भके पर्व और मठधारियोंके दर्शनोंसे कहीं अधिक मूल्यवान् वस्तु बन रहा था। वे लोग अति प्रेमसे श्री उपदेश श्रवण करते और अपनेको पवित्र हुआ मानते थे।

आर्य्य भाषाके प्रचारमें सबसे पहले यदि किसीने प्रयत्न किया तो वे स्वामी दयानन्दजी थे। गुर्जर देशमें उत्पन्न होकर, देश-देशान्तरोंमें आर्य्य समाज स्थापित करनेके अनन्तर भी आर्य्य भाषाको अपनाया, यह उनका एक तुलना-तीत कर्म है। उन्होंने आर्य्यसमाजका सङ्गठन करते हुए, मुम्बईके पाँचवें

नियममें, संस्कृत और आर्य्य भाषाका पुस्तकालय स्थापित करना और आर्य्य भाषामें 'आर्य प्रकाश' नामक पत्र निकालना, प्रधान समाजके लिए आवश्यक ठहराया। लाहौरके संगठन-संस्कारमें, एक उपनियम बनाकर, सब आर्य्य सामाजिकोंके लिए आर्य्य भाषाका सीखना अत्यावश्यक कर दिया। उपर्युक्त दोनों प्रमाणोंसे बलपूर्वक कहा जा सकता है कि आर्य भाषाको राष्ट्रीय भाषाका रूप देनेवाले प्रथम पुरुष, दयानन्द ही थे।

स्वामी दयानन्द गुर्जर भाषाके पूर्ण पण्डित थे। अपने मुम्बई-वासमें उन्होंने अनेक ग्रन्थ लिखे; परन्तु वे सब आर्य्य भाषामें ही लिखे; गुर्जर भाषामें एक भी नहीं लिखा। अपने जन्म-प्रान्तमें भी, वे अपनी मातृभाषाको छोड़कर, आर्य्य भाषामें ही व्याख्यान देते रहे। उनकी सारी पुस्तकें आर्य्यभाषाहीमें प्रकाशित हुईं। इन सब बातोंको ऐतिहासिक दृष्टिसे देखते हुए, मुक्त कण्ठसे कहना पड़ता है कि आर्य्य भाषाकी मौलिक जड़में जीवन डालने वाले श्री दयानन्दजी ही थे। निम्न लिखित प्रश्नोत्तरसे उनका आर्य्य भाषाके प्रति असीम स्नेह प्रकट होता है:—

हरिद्वारमें एक दिन महाराज अपने आसनपर बैठे सत्सङ्गियोंको समझा रहे थे। बीचमें एक सज्जनने निवेदन किया, "यदि आप अपनी पुस्तकोंका अनुवाद कराकर फारसी अक्षरोंमें छपवादें, तो पञ्जाबादि प्रान्तोंमें जो लोग नागरी अक्षर नहीं जानते उनको आर्य्य धर्म्मके जाननेमें बड़ी सुविधा हो जाय।"

महाराजने उत्तर दिया, "अनुवाद तो विदेशियोंके लिये हुआ करता है। नागरीके अक्षर थोड़े दिनोंमें सीखे जा सकते हैं। आर्य्यभाषाका सीखना भी कोई कठिन काम नहीं है। फारसी और अरबीके शब्दोंको छोड़कर, ब्रह्मावर्तकी सभ्य भाषा ही आर्य्य भाषा है। यह अति कोमल और सुगम है। जो इस देशमें उत्पन्न होकर अपनी भाषाके सीखनेमें कुछ भी परिश्रम नहीं करता, उससे और क्या आशा की जा सकती है? उसमें धर्म्म-लग्न है, इसका भी क्या प्रमाण है? आप तो अनुवादकी सम्मति देते हैं, परन्तु दयानन्दके नेत्र तो वह

दिन देखना चाहते हैं कि जब, काश्मीरसे कन्याकुमारी तक और अटकसे कटकतक नागरी अक्षरोंका ही प्रचार होगा। मैंने, आर्यावर्त्त भरमें भाषाका ऐक्य सम्पादन करनेके लिए ही, अपने सकल ग्रन्थ आर्य्य भाषामें लिखे और प्रकाशित किये हैं।"

महाराजको हरिद्वारमें मुम्बईका तार मिला कि श्रीयुत अल्काट यहाँ आ गये हैं और श्री दर्शनोंके लिए आतुर हैं। उन दिनों महाराजका स्वास्थ्य कुछ बिगड़ रहा था, इस लिए वे विश्राम लेना चाहते थे। उन्होंने मुम्बई समाचार भेज दिया कि अल्काट महाशय अभी आनेका कष्ट न उठायें।

स्वामीजीने यहाँ, अन्तिम उपदेशकी समाप्तिपर परमेश्वर का धन्यवाद किया कि हे जगदीश्वर! आपकी अपार कृपासे प्रचारका यह कार्य्य निर्विघ्न समाप्त हुआ है। फिर उन्होंने अपने साथियोंको सम्बोधन करके कहा, "अब आप यथा-सम्भव शीघ्र ही अपने अपने घरोंको चले जाइए। कोई आश्चर्य नहीं कि मेरे इस कथनका यह भी परिणाम निकाला जाय कि अंगरेज मेलेको बखेरना चाहते हैं और स्वामीजी भी उनके साथ ही मिल गये हैं। परन्तु मैं तो आपको चेतावनी देता हूं। जलवायुके बिगड़ जानेसे महामारी, विषूचिकाके फैलनेका पूरा भय है। यदि आप शीघ्रही चले जायंगे तो इस संक्रामक, महा भयङ्कर रोगके चंगुलसे बच जायंगे।" स्वामीजीका कथन सत्यही हुआ। मेलेके अन्तिम दिनोंमें सचमुचही विषूचिका रोग फूट पड़ा।

महाराजकी सावधानता भी आदर्श रूप थी। उनके डेरेपर कूड़ा कर्कट इकट्ठा करके सब जला दिया जाता था। वे अपने डेरेमें जूठनसहित पत्ते और कागज पड़े नहीं रहने देते थे। वहाँ इधर उधर सड़ी गली वस्तुयें सड़ाँद नहीं छोड़ा करती थीं। उनकी सारी छावनी स्वच्छ और मार्जित रहती। वहाँ प्रतिदिन हवन होता, जिससे वायुमें विकार नहीं उत्पन्न हो पाता था।

उस महामेलेमें बहुत थोड़े साधु-सन्त ऐसे थे जो स्वामीजीके अतिशय उच्च आशयको जानते थे। अधिकाँश साम्प्रदायिक लोग तो हठधर्म्मी और धड़े-

बन्दीकी दलदलोंमें धँसे हुए थे। वे लोग महाराजका जी खोलकर विरोध करते थे। बहुतेरे ऐसे भी वेष-विडम्बक थे, जो धर्म्मकी ओटमें और भगवे बानेकी आड़में, उस महापुरुषको मार मिटानेकी चेष्टा भी करते फिरते थे। स्वामीजी महाराज भी मानवी कौशलकी परमावधिपर पहुंचे हुए थे। वे सचेत थे और ऐसी प्रत्येक खटकेकी आहट लेते रहते थे।

एक दिन, एक जटाजूट, नाँगा उनके निकट आया और कहने लगा, "मैं आपके पास रहकर अध्ययन करना चाहता हूं। आपको कोई कष्ट नहीं दूंगा, अन्न मांगकर ले आया करूंगा और आपकी सेवा करता रहूंगा।" स्वामीजी उसके भीतरी भावको ताड़ गये और बोले, "आपको पढ़ानेके लिए मुझे अवकाश नहीं है।"

एक दिन दो नाङ्गोंने आकर शिष्य बननेकी विनय की। उनको भी महा-राजने टाल दिया। स्वामीजी प्रायः जिस किसीके हाथका लेकर नहीं खाते थे, अपनी रक्षामें आप चौकस रहते थे।

हरिद्वारमें प्रचार करनेके अनन्तर महाराजने विश्राम लेनेके लिए देहरादून जानेका निश्चय किया और अपने शुभागमनको वहाँ सूचना भेजदी। पण्डित कृपाराम गौड़ महाराजके प्रेमी थे। गुरुदेवके आगमनका प्रेम-पत्र पाकर वे पुलकित गात हो गये। कुछ वङ्गीय सज्जनोंके साथ मिलकर उन्होंने एक बङ्गला ले लिया। साथ ही उन्होंने अपने भतीजे और दो नौकरोंको हरिद्वारकी सड़कपर खड़ा कर दिया कि जब स्वामीजीकी गाड़ी आये तो उन्हें उस बङ्गलेमें लेजाकर उतार देना।

महाराज वैशाख वदी ८ सं० १९३६ को देहरादून पहुंचे। उस समय उन के साथ तीन चार कर्म्मचारी थे। बहुतसे बङ्गीय सज्जन स्वागतके लिए पहुंच गये और उपर्युक्त बङ्गलेमें उनका डेरा कराया गया।

महाराजके पहुंचते ही सारे नगरमें उनके शुभागमनका समाचार फैल गया और सत्संगियोंकी टोलियाँ आने लगीं। यद्यपि स्वामीजी स्वस्थ नहीं थे फिर भी अति प्रसन्नतापूर्वक वार्त्तालाप करते।

कृपारामजीसे पूछनेपर स्वामीजीको पता लगा कि भोजनादिके व्ययका प्रबन्ध ब्राह्म समाजियोंने किया है। उन्होंने कृपारामको कहा, "यह आपने अच्छा नहीं किया, हमारे प्रचारसे तो ये लोग रुष्ट हो जायंगे, उस समय आप को कठिनताका सामना करना पड़ेगा।" श्री कृपारामजीने हाथ जोड़कर विनती की, "ये लोग भले ही अप्रसन्न हो जायं; पूज्यपादका आतिथ्य करनेको सेवक के पास पत्र पुष्प पर्याप्त हैं।"

कुछ दिन विश्राम करनेके उपरान्त स्वामीजीने व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया। लोग बड़े प्रेमसे सुनने आते थे। एक दिन उनके व्याख्यानका विषय बाईबल और कुरानकी समालोचना था। उस दिन चार पांच यूरोपीय पादरी सुनने आये हुए थे। उनकी यौक्तिक समालोचनाको सुनकर एक पादरी आवेश में आ गया। व्याख्यानकी समाप्तिपर उसने कहा कि पण्डितजीने जो कुछ कहा है, निरी धूल उड़ाई है। इस धूलमें इसका वेद भी ढंप गया है।

स्वामीजीकी युक्तियोंका खण्डन करनेके लिये उसे अवसर दिया गया। जब वह बोलकर बैठ गया तो महाराजने खड़े होकर, उसका प्रत्युत्तर देना आरम्भ किया। पादरी महाशयकी प्रकृतिमें बार बार उबाल उठते थे ! वे आपेसे बाहर हुए जाते थे और बात बातमें बोल पड़ते थे। अन्तमें उसके साथियोंने ही उसे शान्त किया। व्याख्यानके पश्चात् दूसरे पादरी बड़ी देर तक स्वामीजीसे धर्म्म-चर्चा करते रहे।

इस व्याख्यानमें मुसलमानोंकी उपस्थिति बहुत थी। कुछ मौलवी महाशय भी बैठे सुनते थे, वे लोग भी भड़क उठे।

स्वामीजी जिस बङ्गलेमें रहते थे वह फूससे छता हुआ था। कृपारामजीने सुना कि कुछ एक मुसलमान, आज रात उस बंगलेको जला देना चाहते हैं। उन्होंने इसकी सूचना, तत्काल, स्वामीजीको दे दी। अपने तीन चार नौकर वहीं पहरेके लिए भेज दिये। स्वामीजी अति निर्भय थे। वे यही कहते थे कि डरो

नहीं, ये विरोधियोंकी कोरी धमकियां हैं। परन्तु पण्डित भीमसेनजीने जागते हुए, सारी रात आंखोंमें काटी।

स्वामीजीके वेद-विषयक व्याख्यानसे ब्राह्म समाजी चिढ़ गये और सहायता देना छोड़ बैठे।

ब्राह्म समाजी कालिमोहन घोषजीने स्वामीजीको भोजनका निमन्त्रण दिया; उन्होंने कहा कि आपका भोजन ग्रहण करनेमें मुझे केवल इतना ही सङ्कोच है कि आप लोगोंके यहां भङ्गी भी भोजन बनाते हैं। घोष महाशयने कहा कि यह तो सत्य है कि हम लोग किसीके भी हाथसे खानेमें कोई हानि नहीं मानते, परन्तु कर्म्ममें ऐसा नहीं आता। तब महाराजने उनका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

इस बातका पता जब कृपारामजीको लगा तो वे भोजनका थाल लेकर श्री सेवामें पहुंचे। उस समय घोष महाशयके घरसे भी थाल आ गया था। कृपारामजी ने निवेदन किया कि भगवन्! घोष महाशयके घरपर भङ्गिन पाचिका है, इस लिए उसका भोजन पीछे लौटा दीजिये और निज जनकी रूखी सूखी चपाती स्वीकार कीजिये। महाराजने उसी समय घोष महाशयका थाल लौटा दिया और कृपारामजीका अन्न ग्रहण किया।

स्वामीजीके चित्ताकर्षक भाषणोंको सुनकर कई सज्जन उनके अनुयायी बन गये और आर्य्य समाजकी स्थापनाका यत्न करने लगे।

श्रीमान् कर्नल अल्काट और मैडम ब्लैवट्स्की सहारनपुरमें आ पहुंचे और वहांके आर्यों ने अत्युत्तम रीतिसे उनका आतिथ्य किया। उन्होंने स्वामीजीको तार दिया कि हम आपके दर्शनोंके लिए, देहरादून आते हैं। महाराजने उनको तारद्वारा सूचित किया कि आप आनेका कष्ट न कीजिए, मैं स्वयं सहारनपुर आ रहा हूं।

महाराज वैशाख सुदी १० सं० १९३६ को सहारनपुरमें आये, बड़े वत्सल भावसे अपने भक्तोंको मिले। वैशाख सुदी १२ को स्वामीजी कर्नल तथा मैडम

सहित मेरठ पधारे। आर्य्य समाजके सभी सभासद, उनके स्वागतके लिए, रेलवे स्टेशनपर उपस्थित थे। अपने पूज्यतम गुरुदेवको, पश्चिमी शिष्योंसहित देखकर, आर्य्य पुरुषोंके तन हर्ष-पूरसे पुलकित हो रहे थे। उन्होंने बड़े उत्साहसे उनको ले जाकर, एक कोठीमें तो महाराजको और दूसरीमें उन दोनों अतिथियोंको ठहराया।

वैशाख सुदी १३ से ज्येष्ठ वदी २ तक स्वामीजीके तथा उनके शिष्योंके व्याख्यान बड़ी धूमसे हुए। कर्नल महाशय और मैडमने भाषणोंमें भली भाँति वेदका महत्त्व गान किया और क्रिश्चियन धर्म्मकी त्रुटियाँ प्रदर्शित कीं। इन व्याख्यानोंमें योरुपियन भी बहुत आते थे।

कर्नल अल्काट और मैडम ब्लैवट्स्की स्वामीजीके स्थानपर जाकर सत्सङ्गमें ज्ञान-चर्चा करते, आत्मा-सम्बन्धी प्रश्न पूछते और योगाभ्यासकी विधियाँ सुनते थे। वे दोनों अपनेको आर्य्य कहते। नीचे बैठकर भोजन पाते। उन्होंने ओम् का पदक और यज्ञोपवीत धारण किया हुआ था। वे महाराजको गुरु मानते थे और उनके प्रति अतिविनय प्रदर्शित करते थे।

महाराज एकदिन श्रीयुत छेदीलालजीकी कोठीमें आसनारूढ़ थे। सत्सङ्गी जन ज्ञान-गङ्गामें गोते लगा रहे थे। उसी समय अल्काट महाशय और ब्लैवट्स्की महाशया भी आ गईं। उन्होंने महाराजको भक्तिभावसे नम्रीभूत नमस्कार किया। योग-चर्चा चलनेपर, अल्काट महाशयने विनयकी, "भगवन्! सुना है कि शङ्कराचार्य्य अपने कलेवरसे आत्माको निकालकर परकायामें प्रवेश कर जाते थे। इसमें आपकी क्या सम्मति है?"

स्वामीजीने उत्तर दिया, "शङ्कराचार्य्यका परकाया-प्रवेश करना एक ऐतिहासिक विषय है। उसके सत्यासत्यमें, कुछ कहा नहीं जा सकता। हाँ इतना तो मैं दिखा सकता हूं कि चाहे जिस अंगमें, अपनी सारी जीवन-शक्तिको केन्द्रित कर दूं। इसमें, शेष सारा शरीर जीवन-शून्य हो जायगा। परकाया-प्रवेश तो इसके आगे एक पाँव उठाना मात्रही है।" अल्काट महाशय अपने गुरुके ऐसे योग-बलको जानकर अतीव हर्षित हुए।

कुछ दिनोंके पश्चात् अल्काट महाशय और ब्लैवट्स्की महाशया स्वामीजी से आज्ञा लेकर मुम्बई चले गये।

मौलवी मुहम्मद कासिम मेरठमें आकर सम्वादके लिए मुसलमानोंको उकसाने लगे। जब स्वामीजीको पता लगा कि मुसलमान महाशय सम्वाद करना चाहते हैं तो उन्होंने अपने सदा समुद्यत होनेकी घोषणा करदी। दोनों ओरसे प्रतिष्ठित पुरुषोंकी एक सभा, नियम-निर्णयके लिए जुटी। उसमें राज-पाठशाला के मुख्याध्यापक श्रीकैस्पन महाशय भी सम्मिलित कर लिये गये। अनेक नियमोपनियम बनते बनाते, जो कहीं आकर बात अटक गई और टूटने लगी तो वह इस नियमपर, स्वामीजी कहते थे कि सम्वाद लेखबद्ध हो और एक विशेष सभामें जनताके सामने हो; परन्तु मौलवी महाशय, रुड़कीकी भाँति, यहाँ भी अड़ते थे कि नहीं, सम्वाद मौखिक ही होना चाहिए। लिखने और फिर बोलनेमें चित्त उचट जाता है, स्मृति ठिकाने नहीं रहती। सम्वाद जनता के सम्मुख भी नहीं होना चाहिए। इसमें भीड़ भड़क्का बहुत होगा। कोई आश्चर्य्य नहीं कि परस्पर लड़ाई भिड़ाईतक नौबत आ जाय।

स्वामीजीने कहा, "केवल मौखिक सम्वादसे कोई परिणामपर नहीं पहुंच सकता। कई वादी अपने सिद्धान्तको निर्बल देखकर, चातुर्य्य और प्रवंचनाकी पेचीली चालोंसे, अपने पक्षहीको बदल डालते हैं! वे अपने पहले कहे शब्दोंसे नकार कर बैठते हैं। एक एक वचनपर अटककर सारा समय व्यर्थमें खो देते हैं। लिखकर बोलनेमें ऐसी बातोंकी सम्भावना न रहेगी। ठीक प्रबंधके हो जानेसे झगड़े टण्टेका सन्देह मिट जायगा।"

मुख्याध्यापक कैस्पन महाशयने मौलवीजीको कहा, "स्वामीजीका कथन युक्ति-संगत है। प्रश्नोत्तर लिखकर बोलनेमें बहुत लाभ है। जो आपने चित्त उखड़ जाने और युक्तियाँ भूल जानेकी बात कही वह उपहास-जनक है। भला वह विद्वान् ही क्या है जिसके विचार इतनेमें ही उलट पलट हो जाते हैं और जिसकी स्मृति ठिकाने ही नहीं रहती!"

मौलवी महाशयने एक न मानी; किसीकी न सुनी। वे यही पुराना तराना गाते रहे कि 'सम्वादमें लिखकर बोलना अनुचित है'। उनकी इसी बातपर ताल टूटी कि सर्वसाधारणके सामने सम्वाद न करना चाहिए।

इस प्रकार मौलवी महाशयकी टालमटोलसे मेरठमें भी सम्वाद न होसका, परन्तु वैदिक धर्म्मकी सचाईका सिक्का लोगोंके हृदयोंपर बैठ गया।

मेरठमें धर्म्म-प्रचार करनेके पश्चात् स्वामीजी अलीगढ़ आये। यहां उनके परम भक्त ठाकुर मुकुन्दसिंहजी और भूपालसिंहजी आकर उन्हें छलेसर लेगये। उन दिनोंमें स्वामीजीका स्वास्थ्य अच्छा न था, इसलिए वे वार्त्तालाप द्वारा ही सत्संगियोंको निहाल करते रहे। श्रीयुत इन्द्रमनजी स्वामीजीके दर्शनार्थ छलेसर आये। उन्होंने स्वामीजीसे मुरादाबाद पधारनेकी प्रार्थना की। एक माससे अधिक समयपर्यन्त छलेसरमें निवास करनेके उपरान्त ३ जुलाई सन् १८७६ को स्वामीजी मुरादाबादको प्रस्थान कर गये।

मुरादाबादमें महाराजका निवास राजा जयकृष्णजीके बङ्गलेमें हुआ। उनका स्वास्थ्य अभीतक, पूर्ववत् नीरोग न हुआ था इसलिए इसवार उनके तीन व्याख्यान ही होसके।

स्वामीजी जहाँ अद्वितीय दार्शनिक थे, परम योगी थे, धर्म्मके मर्मके अतुल्य ज्ञाता थे, अपने समयके असमान सुधारक थे और भारतभरमें एक ही विख्यात वक्ता थे, वहाँ वे राजनीति और राज-धर्म्मके भी एक धुरन्धर पण्डित थे। महाराजका समय, राज-पुरुष-तन्त्र-शासन और दमन नीतिके यौवनका युग था। निर्भय परिव्राजकाचार्य्य समयानुसार तीव्र समालोचना और टीका टिप्पणी भी किया करते थे। परन्तु उनके कथन इतने दार्शनिक, इतने निर्मल और इतने व्यापी होते थे कि उन्हें सुनकर राजकर्म्मचारी भी प्रसन्नता प्रकाशित करते थे; उनसे राजा-प्रजा-धर्म्मके व्याख्यान भी कराते थे।

मुरादाबादके कलेक्टर स्पेडिङ्ग महाशयने एक दिन श्रीसेवामें निवेदन किया कि आप राष्ट्र-नीतिपर एक व्याख्यान देना स्वीकार कीजिए। उसका सारा

प्रबन्ध मैं आप करूंगा। महाराजने उनकी प्रार्थनाको स्वीकार कर लिया। कलेक्टर महाशयने छावनीमें व्याख्यानका प्रबन्ध किया और लोगोंके प्रवेशके लिए टिकट वितरण कर दिये। नगरके सज्जनों और सब आर्य्य जनोंको टिकट मिल गये। नियत समयपर महाराजने भारतीय और यूरोपियन सज्जनोंको सम्बोधन करते हुए राष्ट्र-नीतिके उदात्त सिद्धान्तोंका निरूपण किया। शासकों और शासितोंके सम्बन्ध बताये, शासन-नीतिके पक्षपात आदि दोषोंका वर्णन किया।

उनका यह व्याख्यान, कई घण्टोंतक होता रहा और देशी विदेशी सभी दत्तचित्त होकर सुनते रहे। समाप्तिपर स्पेडिङ्ग महाशयने खड़े होकर धन्यवादपूर्वक स्वामीजीकी प्रशंसाकी और कहा, महाराजने जो कुछ वर्णन किया है वह सर्वथा सत्य है। यदि इस नीतिके अनुसार राजा-प्रजाके सम्बन्ध होते तो जो कष्ट हलचलमें उठाने पड़े हैं वे कभी सामने न आते।"

उसी स्थानमें, कालीप्रसन्न नामक एक वकील स्वामीजीके निकट बैठा, अङ्गरेजीमें बातचीत कर रहा था। उन्होंने उसे कहा, "महाशय! अपनी भाषा में वार्त्तालाप करना ही उत्तम है। स्वदेशियोंमें बैठकर विदेशी भाषामें बोलने लग जाना, भला प्रतीत नहीं होता, प्रत्युत ऐसा करना भद्दा लगता है और इससे घमण्ड भी प्रकट होता है। यदि छिपाकर बात करनेका प्रयोजन हो तो भी ठीक नहीं। यहां अँगरेजी समझनेवाले अनेक बैठे हैं। किसीसे छिपाकर काना-फूसी करना धर्म्मविरुद्ध, चोरकर्म्म है।"

स्वामीजीमें हठ नहीं था। वे अति कोमल और सरल थे। यदि कोई साधारण जन भी उन्हें नीति-न्यायकी कोई बात कहता तो वे तत्काल मान लेते। एक दिन, महाराजके पास एक पण्डित आया और संस्कृतमें वार्त्तालाप करने लगा। दैवयोगसे उनके मुखसे एक अशुद्ध शब्द निकल गया। उस पण्डितने उसी समय उन्हें कहा कि 'आपसे यह अशुद्धि हुई है' स्वामीजीने मान लिया कि "हाँ, मुझसे भूल होगई है।" थोड़ी देरके पश्चात् जब स्वामीजीके एक दो प्रेमी वहां आ गये तो उस पण्डितने फिर कहा, "स्वामीजी! आज मैंने आपको

एक अशुद्धि पकड़ी थी," उन्होंने उत्तर दिया कि "ठीक, आपने आज मेरी भूल निकाली है और मैंने उसे स्वीकार कर लिया है।" परन्तु वह पण्डित महाशय तो सोंठ की एक गाँठ पाकर पूरा पंसारी बन बैठा था। लगा बार बार आलापने कि आज मैंने आपकी एक भूल पकड़ही ली है! महाराजने जब देखा कि यह सिर ही चढ़ा जाता है तो उसे कहा, "तुम परले सिरेके सिड़ी और अड़ियल मनुष्य हो। मेरी सरलतासे लाभ उठाकर वक्र चाल चलने लग गये हो। अशुद्ध शब्दपर हठ करना अधर्म्म है। मैं ऐसा हठ कदापि नहीं करूंगा, परन्तु तुममें ऐसा सामर्थ्य कहां कि उसे अशुद्ध सिद्ध कर सको। इस बाल-लीलामें क्या पड़ा है? यदि कुछ पूछना चाहते हो तो कोई धर्म्मकर्म्म की बात पूछो।" इस से वह पण्डित अतीव लज्जित हुआ।

श्रावण सुदी १ सं० १९३६ को दुबारा आर्य्य समाज स्थापना करना नियत हुआ। राजा जयकृष्णके बङ्गलेपर हवन-सामग्री मँगाई गई। यज्ञके अनन्तर बाँटने को मोहन-भोग भी आ गया। परन्तु ठीक समयपर वर्षा होने लगी। जब वृष्टि थमनेमें ही न आई तो स्वामीजीके आदेशसे एक कमरेमें हवनयज्ञ करके समाज की शुभ स्थापना की गई और सब उपस्थित सज्जनोंको मोहन-भोग वितरण किया गया।

श्री इन्द्रमनजीने स्वामीजीसे निवेदन किया "आप परस्पर 'नमस्ते' कहने का आदेश करते हैं परन्तु हमने पहले 'जय गोपाल' शब्द चलाया था और फिर 'परमात्मा जीते' कहना आरम्भ कर दिया। पहले शब्दोंपरही लोगोंने बहुतेरे कटाक्ष किये थे। अब यदि नया 'नमस्ते' शब्द चलाया तो लोग हमारी खिल्ली उड़ाने लग जायंगे। वैसे भी देखें तो मेल-मिलापमें 'परमात्मा जीते' ऐसा कहना बहुत ही उचित्त है। छोटा तो बड़े को 'नमस्ते' करता अच्छा लगता है, परन्तु पिता पुत्रको, स्वामी नौकरको और राजा अपने एक चपरासीको 'नमस्ते' कहे यह बात शोभा नहीं देती।"

स्वामीजीने कहा—"इन्द्रमनजी! अभिमानी पुरुष बड़ा नहीं होता। बड़ा

वही है जिसने अपने अहङ्कारको जीता। जो वास्तवमें बड़े हैं वे अपने बड़प्पन को आप प्रकट नहीं किया करते। हमारे पूर्वजोंमें जितने भी ऋषि महर्षि और राजे महाराजे हुए हैं उनमेंसे एकने भी अपने मुखसे अपनी बड़ाई नहीं बताई। 'नमस्ते' का अर्थ पाँव पकड़ना नहीं है; इसका अर्थ यह है सम्मान-सत्कार। सभी ऊंच नीच और छोटे बड़े मेल-मिलापमें सम्मान-सत्कारके भागी हैं। सर्वत्र होता भी ऐसा ही है। अच्छा, आपही अपने अन्तःकरणसे कहें कि जब कोई मनुष्य आपके आवासपर आता है तो उस समय आपके हृदयमें क्या भाव उत्पन्न होता है?"

इन्द्रमनजी इसपर मौन साधे रहे। तब स्वामीजीने फिर कहा—"महाशय! इस बातको सभी जान लेते हैं कि जब कोई पूज्य और प्रतिष्ठित मनुष्य घरपर आता है तो उसे देखकर अभ्युत्थान और झुककर सम्मान देनेको जी चाहता है। पुत्रसे प्यार करनेका भाव उत्पन्न होता है। नौकरचाकरोंको अन्न-जल और आइए, बैठिये आदि शब्दोंसे सत्कृत करनेकी हृदय प्रेरणा करता है। ऊपर कहे सारे भावोंका प्रकाश 'नमस्ते' से तो होजाता है परन्तु उस समय परमेश्वरका नाम लेना असङ्गत है; आत्मगत भावोंके विपरीत है। जो भाव भीतर हो उसीको बाहर प्रकाशित करना शोभा देता है।"

"पुरातन कालमें आर्य्य लोग 'नमस्ते' ही कहा करते थे। यह शब्द वेदोंमें भी अनेक बार आया है। आर्य जनोंमें इसीका प्रचार होना चाहिए।"

कायमगंजके निवासी, श्रीरामलालजी वर्षा ऋतुके कष्ट झेलते हुए, मुरादाबादमें इसलिए आकर ठहरे थे कि स्वामीजीसे यज्ञोपवीत धारण करें। वे महाशय इन्द्रमनजीके पास टिके हुए थे। एक दिन इन्द्रमनजीने रामलालजीको साथ ले जाकर महाराजकी सेवामें विनय की—"भगवन्! यह महाशय बड़े श्रद्धालु भक्त हैं। आपसे धर्म्म-दीक्षा ग्रहण करना चाहते हैं। इसी लगनमें कड़े कष्ट सहते यहाँ आये हैं।"

महाराजने रामलालके धर्म्म-भाव और दृढ़ धारणाको देखकर, शुभ समय

विधिपूर्वक, उसे यज्ञोपवीत प्रदान किया। गायत्रीका उपदेश करके शुभ शिक्षा दी। जब उसने गायत्रीका शुद्ध उच्चारण स्वामीजीको सुनाया तो उन्होंने बड़े वत्सल भावसे उसे आशीर्वचन दिया, अपना परम पुनीत हाथ उसकी पीठपर प्रेमसे फेरते हुए कहा—"वत्स! हमारा शरीर बहुत देरतक नहीं रहेगा। आप आजीवन हमारी पुस्तकोंसे उपदेश लेते रहना। जहांतक बन पड़े अपने भूले भटके भाइयोंको भी सन्मार्ग दिखलाते रहना।"

महाशय रामलालने गुरुदेवके उपदेशामृतको सिर आँखोंपर स्वीकार किया, अन्तःकरणमें बसा लिया। रामलालजी दस दिन पर्यन्त श्री चरणशरणमें सत्संग लाभ करते रहे। एक दिन उन्होंने बद्धाञ्जलि होकर विनय की, "भगवन्! आपके आरोग्यपर कोई आघात हुआ जान पड़ता है।" महाराजने कहा—"इस देहको कई बार विकट तथा विषम विष दिया गया है। ऐसे कालकूट विषोंको, कितना ही योग-क्रियाओंसे वमन तथा वस्ति-कर्म्मद्वारा, निकाल दिया जाय परन्तु रक्त में मिश्रित हुआ हलाहल विष सर्वांशमें नहीं निकलता। उसका प्रभाव कुछ न कुछ बना ही रहता है, यही कारण है जो मेरे स्वास्थ्यकी आधार-शिला हिल गई है। यदि मुझपर ऐसा भीषण विष प्रयोग न किये जाते तो इस शरीरपर शिथिलताका चिन्ह, एक शताब्दीमें तो, कदापि न दीख पड़ता और न ही इतनी देरतक जरा-रोग इसके पास फटकने पाता।"

रामलालजीने फिर प्रार्थना की—"गुरुदेव! जब, आप अपने भक्त जनोंको नैराश्यनिशा दिखानेवाले शब्द कहने लग गये हैं तो आप ऐसे सुयोग्य शिष्य क्यों नहीं बनाते जो नौकाके निपुण नाविक बन सकें, जो सर्वस्व स्वाहा करके भी आपके उद्देश्यकी पालना करें।

महाराजने गम्भीर भावसे कहा—"वत्स! मैंने पहले पहल पाठशालायें चलाकर अनेक पण्डित शिष्य बनाये। वे लोग मेरे सम्मुख तो बहुतेरी विनय अनुनय प्रदर्शित करते परन्तु मुझसे पृथक् होकर वैसेके वैसे पौराणिक बनेरहते। कई एक तो मेरे प्रतिकूल अपनी चालोंका तानाबाना तनने लग जाते। अब तो

मुझे निश्चय होगया कि इस जन्ममें, मुझे सुयोग्य शिष्य नहीं मिलेगा। इसका प्रबल कारण भी है। मैं तीव्र वैराग्य-वश, यौवन-कालहीमें अपने पूज्य माता-पितादि परिवार-परिजनका परित्याग कर मृत्युको जीतनेके लिए योगा-भ्यास करता रहा हूं। मैंने घर छोड़ते समय माताकी ममताका कोई ध्यान नहीं किया। पितृ-ऋण भी नहीं उतारा। ये ऐसे कर्म हैं जो मुझे सुयोग्य शिष्य मिलनेके मार्गमें प्रबल प्रतिबन्धक हैं। परन्तु निराशाकी कोई बात नहीं है। आर्य्य समाजमें ऐसे जन अवश्य प्रकट होंगे, जो मेरे परम लक्ष्यकी पूर्णतासे पालना करेंगे।"

दसवाँ सर्ग।

मुरादाबादमें धर्म्म-प्रचार करनेके उपरान्त श्रीस्वामीजी श्रावण सुदी १२ सं० १९३६ को बदायूंमें सुशोभित हुए और साहू गङ्गारामके उद्यानमें ठहरे। वहाँ उनके दो तीन प्रभावशाली उपदेश हुए। लोगोंने सत्संगका भी बहुत लाभ लूटा।

बदायूंके मुसलमानोंने सम्वाद करनेके लिए मौलवी मुहम्मद कासिमको बहुतेरा बुलाया, परन्तु वे अन्तिम दिनतक न आये। कुछ एक पौराणिक पण्डित स्वामीजीकी सेवामें उपस्थित हुए और अपने प्रश्नोंका यथायोग्य उत्तर पाकर चले गये।

रक्षा-बन्धनके दिन बहुतसे तरुण और वृद्ध रक्षा बांधनेके लिए स्वामीजीके निकट आये। महाराजने मुस्कराकर कहा कि आप लोग अपनी देश-रीति तक भूल गये हैं। पूर्वकालमें बूढ़े रक्षा बाँधे नहीं फिरते थे। उस समय, इस पर्वके दिन सब विद्यार्थियोंके हाथमें, राजाकी ओरसे रखड़ी बाँधी जाती थी। उससे यह सूचित किया जाता था कि इनकी रक्षा करना राजा-प्रजा दोनोंका कर्त्तव्य है।

एक वैद्यने अपने एक साथीको स्वामीजीके सामने करके कहा कि महाराज! इसमें चिरकालसे भूतावेश है। स्वामीजीने हँसकर कहा कि आप वैद्य होकर भी ऐसे भ्रमजालमें फँसे पड़े हैं। भूत तो बीते हुए समयका नाम है। यह कोई योनिविशेष नहीं है। आयुर्वेदमें ऐसे अनेक रोग वर्णन किये हैं, जिनमें रोगी की उन्मत्त दशा हो जाती है। स्वामीजीने उसे औषध प्रदान किया और कहा कि यदि अनुपान और पथ्यपूर्वक इसका यथाविधि सेवन करोगे तो यह व्याधि उपशमन हो जायगी।

बदायूं-वासियोंको उपदेशामृत पान कराकर श्रीमहाराज भादों वदी द्वादशी सम्वत् १९३६ को बरेली आये और बेगम उद्यानमें लाला लक्ष्मीनारायणकी कोठीमें विराजमान हुए। वहाँ उनके कई दिनतक अति प्रभावजनक व्याख्यान हुए। उनमें पादरी महाशय और उच्च राजकर्मचारी सभी सम्मिलित होते थे।

स्वामीजी अपने प्रण-पालनपर बड़ा ध्यान दिया करते। एक शनिवारको लोगोंने कहा, "महाराज! कल छुट्टीका दिन है। इस लिए, नियत समयसे एक घण्टा पहले व्याख्यान आरम्भ कीजिएगा। उन्होंने उत्तरमें कहा, "मैं नगरसे डेढ़ कोसके अन्तरपर ठहरा हुआ हूं, यदि गाड़ी समयपर पहुंच गई तो समय पर अवश्य आ जाऊंगा।" लाला लक्ष्मीनारायणने निवेदन किया कि गाड़ीका प्रबन्ध, मैं कर दूंगा।

अगले दिन, लोग तो समय पर पहुंच गये, परन्तु स्वामीजी पौन घण्टा पीछे, सार्वजनिक भवनमें प्रविष्ट हुए। व्याख्यानके आदिमें उन्होंने कहा, "मैं तो समयपर समुद्यत था, परन्तु गाड़ी नहीं पहुंच सकी। अन्तमें पैदल चलकर आ रहा था कि मार्गमें गाड़ी मिली। समय अतिक्रम करनेमें मेरा दोष नहीं, किन्तु बच्चोंके बच्चोंका है, अर्थात् बाल विवाहकी सन्तानोंमें ऐसी निर्बलताका होना आश्चर्य नहीं है।"

एक दिन महाराज पुराणोंकी कथाओंकी समालोचना करते हुए कहने लगे कि इन ग्रन्थोंके कर्त्ताओंने कुन्ती आदि कन्याओंपर कितने कपोलकल्पित कलङ्क

मढ़े हैं ! तारा और दामोदरीपर कैसे मिथ्या आरोप किये हैं ! स्वामीजीके कथनमें उपहास-रस इतना रहता था कि व्याख्यान चाहे जितना लम्बा हो, किसीको नहीं खलता था। किसीका भी जी ऊबता न था। कभी कभी तो सारा सभा-समुद्र हँसीसे झकझोरा खाने लग जाता था।

पुराणोंकी समालोचनापर पादरी महाशय, कलेक्टर और कमिश्नर महाशय तथा अन्य योरुपीय सज्जन जी खोलकर हँसते रहे। थोड़ी देरहीमें स्वामीजीने कहा, "यह तो है पौराणिकोंकी लीला; अब किरानियोंकी सुनिये। ये लोग ऐसे हैं कि कुमारीके पुत्र होना बताते हैं और उसका दोष सर्वज्ञ शुद्ध-स्वरूप परमेश्वर पर लगाते हैं। यह घोर कर्म करते, ये लोग तनिक भी लज्जित नहीं होते।"

यह सुनकर कमिश्नर महाशयका चेहरा कोपावेशसे तमतमा उठा। स्वामीजी उसी वेगमें व्याख्यान देते चले गये और अन्तक ईसाई मतपर ही बोलते रहे।

अगले दिन, कमिश्नर महाशने लाला लक्ष्मीनारायणको बुलाकर कहा, "आप पण्डित महाशयको कह दीजिए कि अधिक कठोर खण्डनसे काम न लिया करें। हम ईसाई लोग तो सभ्य और सुशिक्षित हैं। वादप्रतिवादमें नहीं घबराते। परन्तु यदि हिन्दू मुसलमान उत्तेजित हो गये तो उनके व्याख्यान बन्द हो जायँगे।"

श्रीलक्ष्मीनारायण, स्वामीजी तक यह समाचार पहुंचा देनेका वचन देकर कमिश्नर महाशयसे विदा हो आये। परन्तु इस समाचारको स्वामीजीकी सेवामें पहुंचाए कौन, इसका उत्तर उन्हें नहीं सूझता था। आप तो वे क्या ही साहस कर सकते थे, परन्तु अपने मित्रोंमेंसे भी जिस किसीको कहते, वह कानोंपर हाथ धर लेता। अन्तमें एक नास्तिकने बीड़ा उठाया कि चलिए, मैं स्वामीजी को सब कुछ कह दूंगा। श्रीलक्ष्मीनारायण उस मनुष्य और कुछ एक अन्य सज्जनों-सहित श्री सेवामें उपस्थित हुए। उस नास्तिकपर महाराजकी तेजोमयी मूर्त्तिका ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह बड़ी कठिनतासे इतने ही शब्द कह सका; "कमिश्नर महाशयने लाला महाशयको बुलाया था, इस लिए ये कुछ निवेदन करना चाहते हैं।"

लाला महाशयने जब देखा कि घूम घामकर विपत्ति उन्हींके सिरपर आ पड़ी है तो वे बहुत घबराये। कितने ही पलोंतक वे किंकर्त्तव्यविमूढ़ बने रहे। अन्तमें खाँसते खखराते वे रुक-रुककर बोले, "महाराज! यदि नर्मीसे काम लिया जाय तो बहुत अच्छा है। इससे जनतापर प्रभाव भी बहुत अच्छा पड़ेगा। और अंग्रेज़ भी प्रसन्न रहेंगे।"

यह सुनकर स्वामीजी हँस पड़े और कहने लगे, "इतनीसी बातपर ही आप गिड़गिड़ा रहे हैं! इसीके लिए ही आपने हमारा इतना समय नष्ट किया है। कमिश्नर महाशयने यही कहा है न कि आपका पण्डित बड़ा खण्डन करता है। उसके व्याख्यान बन्द हो जायँगे। भाई मैं कोई हौआ तो नहीं था जिससे आप इतना डरते रहे। सरलतासे यही बात सुनानेमें झिझकते क्यों रहे हो?"

इस समय एक विश्वासी जन बोल उठा—"स्वामीजी तो सिद्धपुरुष हैं; मनकी जान लेते हैं।"

अगले दिनका व्याख्यान आत्माके स्वरूपपर था। जब स्वामीजी नागरिक भवनमें पधारे तो वह श्रोताओंसे खचाखच भरा हुआ था। पादरी स्काट महाशयको छोड़कर, पहले दिनवाले अन्य सभी योरुपीय सज्जन उपस्थित थे। महाराजने व्याख्यानमें आत्माके गुणोंको वर्णन करते सत्यपर कहना आरम्भ कर दिया। उन्होंने गम्भीर गर्जनासे कहा, "लोग कहते हैं कि सत्यका प्रकाश न कीजिए, क्योंकि कलेक्टर कुपित हो जायगा, कमिश्नर प्रसन्न नहीं रहेगा, गवर्नर पीड़ा पहुंचायगा। अजी! चाहे चक्रवर्ती राजा भी अप्रसन्न क्यों न हो जाय, हम तो सत्य ही कहेंगे।" इसके पश्चात् महाराजने कुछ उपनिषद्वाक्य बोलकर कहा, "आत्मा सत्य है। उसकी सत्ताको न कोई शस्त्र छेदन कर सकता है और न अग्नि जला सकती है। वह एक अजर, अमर और अविनाशी पदार्थ है। शरीर तो अवश्यमेव नाशवान् है, जिसका जी चाहे इसका नाश करदे। परन्तु हम देहकी रक्षाके लिए सनातन धर्म्मको नहीं त्यागेंगे। सत्यको नहीं छोड़ेंगे।" फिर वे अपने दोनों उद्दीप्त नेत्रोंकी ज्योतिका चारों ओर संचार करके

बोले—"वह शूरवीर पुरुष मुझे दिखाइए, जो मेरे अन्तरात्माको छिन्न भिन्न करनेका घमण्ड करता हो। जबतक ऐसा पुरुष दृष्टिगोचर नहीं होता दयानन्द के लिए सत्यमें सन्देह करना स्वप्नमें भी असम्भव है।"

भगवान्‌के सिंह-नादसे सारा भवन निनादित हो गया। सब ओरसे उन्हीं के शब्द प्रतिध्वनित होने लगे। सारी सभापर सन्नाटा छा रहा था। महाराजने भाषण समाप्त भी कर दिया; परन्तु लोगोंके कानोंमें उसका नाद गूंजताही रहा।

पादरी स्काटके साथ महाराजकी प्रीति थी। स्काट महाशय, अत्यादरसे प्रतिदिन व्याख्यानमें आते थे। वह पहला ही दिन था कि उनके निरन्तर आने में अन्तर पड़ा। स्वामीजीने व्याख्यानके पश्चात् पूछा कि भक्त स्काट नहीं आये? किसीने उत्तर दिया कि आदित्यवारको उनका गिर्जा होता है, इसी लिए वे नहीं आ सके। भवनसे बाहर आकर महाराजने कहा कि चलो, आज भक्त स्काटका गिर्जा देख आयें। तीन चार सौ मनुष्योंके साथ स्वामीजी गिर्जेमें पहुंचे। स्वामीजीको आते देख स्काट महाशय तत्काल वेदीपरसे नीचे उतर आये और प्रार्थना-पूर्वक महाराजको वेदीपर ले जाकर उपदेशके लिए विनय की। उनके आग्रहपर स्वामीजीने वहाँ कोई एक घड़ीपर्यन्त उपदेश दिया और मनुष्योंको ईश्वर माननेमें दोष दिखाये। लोगोंने उनके भाषणको एकाग्रचित्त होकर श्रवण किया।

बरेलीमें स्वामीजीके साथ स्काट महाशयका सम्वाद भी हुआ। यह सम्वाद सम्वत् १९३६ को भादों सुदी ७ से ९ तक बरेली पुस्तकालयमें लाला लक्ष्मीनारायणके सभापतित्वमें हुआ। उत्तर प्रत्युत्तर लिखकर सुनाये जाते थे। इसमें तीन लेखक थे—एक स्वामीजीके पास, दूसरा पादरी महाशयके निकट और तीसरा सभापतिके पास। प्रत्येक प्रतिपर तीनोंके हस्ताक्षर होते थे। इस सम्वाद का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है:—

भादों सुदी ७ सम्वत् १९३६ को पुनर्जन्मपर व्याख्यान आरम्भ करते हुए स्वामीजीने कहा—"जीव और जीवके स्वाभाविक गुण, कर्म और स्वभाव

अनादि हैं। न्यायादि परमेश्वरके गुण भी अनादि हैं। जो मनुष्य जीवके गुणोंकी उत्पत्ति मानता है उसे उनका नाश भी मानना पड़ेगा। कारणके विना कार्यका होना असम्भव है, इसलिए उसे सिद्ध करना होगा कि सत्यका कारण क्या है। जीवके शुभाशुभ कर्म प्रवाहसे अनादि हैं। उनका यथावत् फल देना ईश्वराधीन है। स्थूल और कारणशरीरके विना जीव सुख-दुःखका भोग नहीं कर सकता। इसलिए उसका बार बार देह-धारण करना आवश्यक है। प्रत्येक शरीरमें क्रिया-वान् होनेके कारण, जीव नये नये क्रियमाण, संचित और प्रारब्ध कर्म उत्पन्न करता रहता है। दिन और तिथिके बार बार लौट आनेसे भी प्रत्यक्ष सिद्ध है कि सृष्टिमें फिर फिर आनेका नियम विद्यमान है।"

इसपर पादरी महाशयने कहा, "पुनर्जन्मका सिद्धान्त है तो पुरातन, परन्तु अब लिखी-पढ़ी जातियाँ इसे छोड़ती चली जाती हैं। यह विचार अब मिट रहा है। मैं स्वामीजीसे पूछता हूं कि क्या ईश्वरीय आत्माके बिना अन्य आत्मायें भी अनादि हैं? वे आत्मायें कभी जन्मके चक्रसे पार भी होंगी? क्या पुनर्जन्म दण्ड भोगनेके लिए ही है? परमेश्वर सदा सगुण ही रहता है अथवा कभी निर्गुण भी होता है? पुनर्जन्म लेना उसीके नियमपर निर्भर करता है अथवा किसी अन्य नियमपर?"

स्वामीजीने उत्तर दिया—"जीव, ईश्वर और प्रकृति ये तीन अनादि पदार्थ हैं। जीव पुनर्जन्मसे कभी निवृत्त न होंगे। जन्मका होना दुःख-सुख दोनोंके लिए है। ईश्वर सदा ही सगुण और निर्गुण है। कोई जीव जैसा पुण्य-पाप करता है उसे वह वैसा ही, अपने अटल न्यायसे फल प्रदान करता है। पादरी महाशयने कहा कि 'इस पुरानी शिक्षाको सुधरी हुई जातियाँ छोड़ती चली जाती हैं'। मैं पूछता हूं कि क्या नवीन शिक्षा सर्वांशमें सत्य है? क्या पुरानी शिक्षा माननेके योग्य नहीं है तो बाईबलकी शिक्षा भी तो आजकी अपेक्षा पुरानी है तब तो यह भी आपको छोड़नी पड़ेगी!"

पुनर्जन्मपर उत्तर प्रत्युत्तर होकर यह विषय समाप्त किया गया और अगले

दिन भाद्रपद शुक्ला ८ को पादरी महाशयने 'ईश्वर देह धारण करता है' के विषयपर सम्वाद आरम्भ किया। उन्होंने कहा—"आजका प्रश्न यह है कि परमेश्वर देह धारण करता है अथवा नहीं ? मनुष्यको चाहिए कि इस विषयपर सोच विचारकर बातचीत करे। अहङ्कारसे काम न ले। हम उसके ज्ञान और सामर्थ्यको कुछ भी नहीं जानते। यदि जानते भी हैं तो बहुत स्वल्प जानते हैं आजके प्रश्नके दो भाग हैं—एक तो यह कि क्या ईश्वर देहधारण कर सकता है ? और दूसरे यह कि क्या कभी ऐसा हुआ भी है ? मनुष्यके और परमात्माके आत्मामें बहुतसे गुणोंमें समानता है। इनके दयादि गुण आपसमें मिलते हैं। इस अवस्थामें, जब हम देह धारण करते हैं तो ईश्वर क्यों न देह धारण करेगा ?"

इसपर स्वामीजीने समालोचना की, "पादरी महाशयने जब यह कह दिया कि हम ईश्वर-विषयमें कुछ नहीं जानते और यदि जानते भी हैं तो अति स्वल्प, तो फिर पादरी महाशयको कुछ कहनेका अधिकार नहीं रहा। पादरी महाशयने कहा कि ईश्वर देह धारण कर सकता है। मैं पूछता हूं, उसे ऐसा करनेकी क्या आवश्यकता है ? दूसरे उसकी इच्छाका कोई नियम है वा नहीं ? तीसरे वह निराकार है अथवा साकार ? चौथे वह सर्वव्यापी है वा एकदेशी ? जीव और ईश्वरके दयादि गुण क्या पूर्णतासे मिलते हैं ? यदि गुणोंसे दोनों बराबर हैं तो दोनों परमेश्वर सिद्ध हुए। ईश्वर जब देह-धारण करता है तो वह अखिल स्वरूपसे देहमें आता है अथवा अंश अंश होकर ? यदि अंशका आना मानते हो तो परमात्मा नाशवान् सिद्ध हो जायगा। यदि यह मानो कि परमात्मा अपने सकल स्वरूपसे शरीरमें प्रवेश करता है तो वह शरीरसे छोटा सिद्ध हुआ। अल्प, महान्‌का ईश्वर नहीं हो सकता। देहधारी हो जानेसे ईश्वर और जीव दोनों समान हो जाते हैं। दोनोंमें कुछ भी भिन्नभेद न रहनेसे उनमेंसे एकको ईश्वर मान लेना सर्वथा अयुक्त है।

यदि ईश्वर एकदेशी है तो वह एक स्थानमें रहता है अथवा सर्वत्र घूमता

फिरता है ? यदि उसे एक स्थानमें स्थित माना जाय तो उसे सर्वत्रका ज्ञान नहीं हो सकता। उसका घूमते रहना मानना भी दोषयुक्त है। फिर उसका अटक जाना और दूसरे पदार्थोंसे टकराकर आघात प्रत्याघातका सहन करना भी मानना पड़ेगा।

परमात्मा सृष्टिकी रचना निराकार स्वरूपसे करता है अथवा साकारसे ? निराकार स्वरूपसे रचना मानना तो ठीक है, परन्तु यदि साकार स्वरूपसे आप सृष्टिकी रचना मानते हैं तो यह युक्ति-सङ्गत नहीं है। साकार ईश्वरसे सृष्टि का रचा जाना सर्वथा असम्भव है। जब त्रसरेणुही साकारकी पकड़में नहीं आते तो वह साकार ईश्वर, सृष्टिके कारणरूप, परमाणुओंको कैसे वशीभूत कर सकेगा।"

वाद-प्रतिवाद होजानेके अनन्तर यह विषय समाप्त हो गया। फिर भाद्रपद शुक्ला नवमीको 'ईश्वर पाप क्षमा भी करता है' इस विषयपर संवाद आरम्भ हुआ। पादरी महाशयने पूर्वपक्षस्थापन करते कहा, मेरी यह प्रतिज्ञा नहीं है कि ईश्वर दण्ड नहीं देता। वह दण्ड तो अवश्य देता है, परन्तु देता है समयानुसार और उचित रीतिसे। वह मनुष्यकी भलाईके लिए पाप क्षमा भी कर देता है जब वह पूर्ण है, सगुण है और चेतन है तो हमें समझना चाहिए कि वह हमें देखता है और हमारी चिन्ता भी करता है। ईश्वरकी और हमारी समानता अवश्य है। बहुधा जीव और ईश्वरके गुण मिलते हैं। इससे हमें समझना चाहिए कि ईश्वरके साथ भी हमारा वैसा ही सम्बन्ध है, जैसा हमारे सम्बन्धियोंके साथ। वेद आदि सभी धार्मिक ग्रन्थ ईश्वरके साथ हमारा सम्बंध राजा-प्रजा और पिता-पुत्रका वर्णन करते हैं। उनके इस कथनमें, अवश्यमेव यह बात समाई हुई है कि परमात्मा भी राजा और माता-पिताके तुल्य ही वर्त्ताव करता है। यद्यपि राजा और माता-पिता दण्ड देते हैं परन्तु उनका इसमें यही आशय होता है कि ये लोग सुधर जायँ। यदि वे समझें कि सुधार क्षमासे हो सकता है तो वे क्षमा भी कर देते हैं।"

स्वामीजीने पादरी महाशयके पक्षका प्रतिवाद करते कहा, "इनका यह कथन कि परमेश्वर क्षमा भी कर देता है और दण्ड भी अवश्य देता है, परस्पर विरुद्ध है। क्या वह आधे कर्मोंके लिए दण्ड देता और आधे कर्म क्षमा कर देता है, अथवा कुछ न्यूनाधिक। जैसे हममें ज्ञान और न्याय आदि गुण हैं, क्या वैसे ही ईश्वरमें हैं।

मैं भी मानता हूं कि ईश्वरके साथ हमारा राजा और पिताके समान सम्बन्ध है; परन्तु वह अन्यायके लिए नहीं है। ईश्वरमें अन्याय नहीं है, इस लिए वेदादि शास्त्रोंमें पापका क्षमा करना नहीं कहा। ईश्वर पाप क्षमा कर देता है यह माननेसे वह पापका बढ़ानेवाला सिद्ध होजाता है। क्षमाकी आड़में पापी जन पाप-कर्म करनेमें उत्साहित होजाते हैं। परमात्मा सर्वज्ञ है। इसी लिए उसके कर्मोंमें भूल और भ्रांति नहीं होती। वह अपने स्वभावसे उलटा कार्य्य भी नहीं करता। न्याय उसका स्वाभाविक गुण है। इससे उलटा कर्म क्षमा कर देना—भला वह कब करने लगा? परमात्मा दयालु ठीक है, परन्तु उसका न्याय और दया एक ही प्रयोजनको सिद्ध करते हैं। यदि एक डाकूको क्षमा कर दिया जाय तो यह कर्म दयामें नहीं गिना जायगा। वह सहस्रों मनुष्योंकी हत्या करनेवाला दस्यु; क्षमा-प्राप्तिके अनन्तर चौगुने साहससे भ्रूण-हत्या तक करने लगेगा। ईश्वरकी दयाका जो अर्थ पादरी महाशयने समझा है वह यथार्थ नहीं।"

इस विषयपर उत्तर-प्रत्युत्तर सविस्तर होते रहे और अन्तमें बड़ी शान्तिसे सम्वाद समाप्त हुआ।

जिन दिनोंमें महाराज बरेलीमें धर्म्म-प्रचार कर रहे थे उन्हीं दिनों महात्मा मुन्शीरामजीके पिता वहाँ नगरके कोतवाल थे। महात्माजी भी अपने पिताके पास ही आये हुए थे। उस समय वे राजकीय महाविद्यालयमें अध्ययन करते थे। ईश्वर और वेदमें उनका विश्वास न था। धर्म्म-कर्ममें भी उनकी श्रद्धा न थी।

महात्माजीके पिता पुराण-धर्म्ममें बड़े निष्ठावान् थे। प्रतिदिन तीन घण्टे तक पूजा-पाठमें परायण रहते। उन्होंने स्वामीजीका पहला व्याख्यान श्रवण किया और घरपर आकर अपने पुत्रसे कहा—"मुन्शीराम! यहाँ एक दण्डी स्वामी आये हैं। बड़े विद्वान् और योगीराज हैं। उनके उपदेश सुननेसे तुम्हारे सारे संशय अवश्य दूर हो जायँगे।"

पुत्रने विनीत भावसे पिताके सम्मुख निवेदन किया कि बहुत अच्छा, कल मैं आपके साथ अवश्य चलूंगा। परन्तु उनके मनमें यही धारणा बनी रही कि वह संस्कृत-मात्र जाननेवाला साधु कोई बुद्धिकी बात क्या बता सकेगा। आगामी दिन जब सत्सङ्गमें गये तो महाराजके दर्शनसे ही वे प्रभावित हो गये। स्काट महाशय आदि योरुपीय सज्जनोंके हृदयमें स्वामीजीका महत्त्व देख, उनमें और भी लगन बढ़ी। परन्तु जब पाव घड़ीपर्यन्त उपदेश सुन लिया तो महात्मा मुन्शीरामकी विचार-परम्परामें बड़ा भारी पलटा आ गया। वे भगवान्के यौक्तिक कथनोंपर आश्चर्यचकित हो गये।

दैव-योगसे उस दिन उपदेश भी परमात्म-देव 'ओम्' नामपर था। वह व्याख्यान उनके लिए अश्रुत-पूर्व था। इस लिए उनको अपार प्रसन्नता प्राप्त हुई। उस दिनसे वे प्रायः श्री-उपदेशोंको सुनते रहे।

अब महात्मा मुन्शीरामको यह धुन समाई कि महाराजकी जीवनचर्य्याको देखना चाहिए। इस लगनमें मग्न वे पहली बार तो रातके ढाई बजे ही गाड़ीमें बैठकर उस उद्यानके निकट जा पहुंचे, जहाँ, महाराजका निवास था। कौपीन-मात्र धारण किये, महामुनि उद्यान-द्वारसे बाहर-भ्रमणार्थ जाने लगे तो वे भी पीछे पीछे हो लिये। महाराजकी गतिका वेग इतना तीव्र था कि महात्माजी थोड़ी देर ही पीछे चलकर हाँपने लगे और गाड़ीमें बैठकर घर चले आये। परन्तु अगले दिन उनकी लगनकी मात्रा इतनी बढ़ गई कि वे रातके बारह बजे उठ बैठे और उद्यानके समीप जा खड़े हुए। इस बार वे बहुत दूरतक उनके पीछे गये। वे महाराजको कुछ कालतक ध्यानावस्थित भी अवलोकन कर सके।

महात्मा मुन्शीरामजीने अपने तर्क-शक्तिके अभिमानमें महाराजके साथ ईश्वर विषयपर प्रश्न किये, परन्तु स्वामीजीकी युक्तियोंने उन्हें दस पलमें ही अवाक् बना दिया। महात्माजीने तीन वार ये वाक्य दुहराए,—"महाराज! आपने मेरा मुँह तो बन्द कर दिया, परन्तु अभी तक मुझमें विश्वासका अंकुर उत्पन्न नहीं हुआ।"

स्वामीजीने उत्तर दिया—"महाशय! आपकी युक्तियोंका मैंने युक्तियोंसे खण्डन कर दिया है। विश्वास तो परमात्माकी अपनी कृपासे हुआ करता है।"

बरेलीमें विष्णुलाल नामक एक वकील निवास करते थे। उन्होंने पाश्चात्य पद्धतिपर उच्चतम शिक्षा पाई थी। पदार्थ-विद्या और पाश्चात्य दर्शनके वे पूर्ण पण्डित माने जाते थे। आर्य्य-दर्शनको वे तुच्छ दृष्टिसे देखा करते थे। एक दिन इष्टमित्रोंके साथ वे श्रीसेवामें उपस्थित हुए। उन्होंने आर्योंके दार्शनिक विचारोंपर हृदय खोलकर आक्षेप किये। अपनी ओरसे उन्होंने पूर्वीय दर्शनकी धज्जियाँ उड़ा दीं। परन्तु जब स्वामीजीके बोलनेकी बारी आई तो वकील महाशयको अपना निश्चय भारी भ्रमसे भरा हुआ दीखने लगा। महाराजके दार्शनिक कौशलपर वह लट्टू हो गये। उन्होंने अपने मित्रोंको कहा, "स्वामीजी पूर्वीय तथा पश्चिमीय, दोनों दर्शनोंको जानते हैं। इनका तात्त्विक ज्ञान हम लोगोंसे बहुत बढ़ा चढ़ा है।"

महाराज लोगोंको सदाचारकी अत्युत्तम शिक्षा दिया करते। पारिवारिक जीवनको विशुद्ध बनाये रखनेके लिए पतिव्रत और पत्निव्रत धर्मका उपदेश देते। उनके उपदेशोंसे प्रभावित होकर कई धनाढ्योंने सुचिररक्षिता वाराङ्गनायें अपने भवनोंसे निकाल दीं। इस सत्यानाशी कुव्यसनके कीचड़से अपने कुलको कल-ङ्कित न करनेका, उन्होंने पक्का प्रण धारण कर लिया।

महाशय लक्ष्मीनारायणने एक वेश्या रखी हुई थी। इसका ज्ञान महाराजको भी हो गया। एक दिन लक्ष्मीनारायणजी उनके निकट आये तो महाराजने पूछा—"लाला महाशय! आपका वर्ण क्या है?" उन्होंने उत्तर दिया—

"महाराज, आप तो गुण-कर्मानुसार वर्ण मानते हैं। इस लिए मैं उत्तर दूं तो क्या दूं ?"

स्वामीजीने कहा, "आपका जो वर्ण लोग कहते हैं वही बतलाइये।" लाला महाशयने निवेदन किया कि "लोग तो मुझे क्षत्रिय कहते हैं।" तब महाराजने गम्भीर भावसे कहा, "लाला महाशय ? आप हमारे यजमान हैं सही परन्तु हम सत्यके कहनेमें कुछ भी संकोच नहीं करेंगे। भला यह तो बताइए कि क्षत्रिय से वेश्यामें पुत्र उत्पन्न हो तो उसे आप क्या कहेंगे ?"

महाराजके वचन सुनकर लाला महाशयके सिरपर घड़ों पानी पड़ गया। वे लज्जाके मारे भूमि ताकने लगे। भवनपर जाकर उन्होंने तत्काल वेश्याको निकाल दिया।

घरेलीमें बहुत दिनोंतक व्याख्यान-वारि-वर्षा करनेके पश्चात् श्रीस्वामीजी आश्विन वदी ४ सं० १९३६ को शाहजहाँपुर पधारे। विज्ञापनोंद्वारा सबको विदित कर दिया कि धर्म्मके प्रेमी जन नियत समयपर आकर व्याख्यान श्रवण करें और लाभ उठावें। जिन्होंको प्रश्न पूछने हों वे स्वामीजीके आसनपर जाकर अपनी शङ्काओंका समाधान करायें।

शाहजहाँपुरमें सत्यपर व्याख्यान देते हुए महाराजने कहा, "संसारमें अनेक मत फैल रहे हैं। पन्थाइयोंपर विश्वास कर जिज्ञासुके लिए सत्यका जानना कठिन है। जिससे पूछो वही अपने पन्थको सच्चा और दूसरोंको झूठा वर्णन करता है। इसपर महाराजने दृष्टान्त दिया कि एक जिज्ञासु किसी तत्त्वदर्शी पण्डितके पास जाकर कहने लगा कि 'महाराज ! मुझे वह सच्चा धर्म्म बताइए, जिसके आराधनसे मेरा कल्याण हो, मुझे परम धामकी उपलब्धि हो।

तत्त्वदर्शी महात्माने उसे कहा—चलो आपको सद्धर्म्मका बोध करायें, । वे उसे एक मतवादीके पास ले गये। उन्होंने उस मतवादीसे पूछा कि 'सत्य-धर्म्म कौनसा है ?' उस पन्थाई पुरुषने अपने मतकी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा की और दूसरे मतोंकी निन्दामें भूतलाकाश एक कर दिया। इस प्रकार वह जिज्ञासु

सभी मतवादियोंके निकट गया। सभी अपने उठने बैठनेकी रीतिको, अपनी उपासनाकी पद्धतिको और अपने धर्म्म-मन्दिरोंको 'धर्म्म' वर्णन करते रहे। प्रत्येकने अपने ही तीर्थों का यशगान किया। अपनी ही देव-मूर्तियोंको उत्तम बताया। अपने ही धर्म्म-चिन्होंको, बहिरङ्ग साधनोंको और अपने महापुरुषोंके वाक्योंको 'धर्म' प्रदर्शित किया, और अपनेसे भिन्न मतोंकी प्रत्येक बातकी भरपेट निन्दा की।

प्रत्येक मतवादीकी नवीन धारणा, नवीन पद्धति, नूतन धर्म्म-चिन्ह, नई मूर्त्तियाँ और भिन्न तीर्थ देख और सुनकर उस जिज्ञासुका जी घबरा उठा। मतवादियोंके सघन निविड़ वनमें फंसकर वह दिशामूढ़ हो गया। अन्तमें वह तत्त्वदर्शी महात्माकी सेवामें उपस्थित होकर सच्चे धर्म्मकी जिज्ञासा करने लगा। उस महात्माने जिज्ञासुको कहा, सत्य वह है जिसपर सबकी एकसी साक्षी हो। जिसपर सौमेंसे निन्नानवें मनुष्योंकी साक्षी समान होती है न्यायाधीश उसी बातको सत्य मान लेता है और एककी साक्षी असत्य समझता है। इसी प्रकार धर्मके जिन कर्मोंको सब मतवादी स्वीकार करें— उनमें कोई ननु-नच न करें—वही सच्चा धर्म्म है। उसीको मानो। किसी एक मतके आडम्बरमें न फंसो।

वह साधारण धर्म्म जिसमें कोई भी मतधारी किन्तु परन्तु नहीं कर सकता, यह है—एक तो परमेश्वरका विश्वास और उसकी उपासना; दूसरे जैसा भाव और ज्ञान भीतर हो उसीका वाणीद्वारा प्रकाश करना और उसीके अनुसार आचरण करना; तीसरे जितेन्द्रिय रहना; चौथे किसीके अधिकार और वस्तुको न छीनना; पांचवें निर्बलों और दीनोंपर दया करना। यह साधारण धर्म्म ऐसा है कि इसमें किसी भी मतावलम्बीका नकार नहीं है। यही धर्म्म कल्याणकारी और मोक्षदाता है।"

एक दिन, लक्ष्मण शास्त्री स्वामीजीके निकट जाकर शास्त्रार्थ करने लगे। शास्त्रार्थका विषय मूर्ति-पूजन था। स्वामीजीने शास्त्रीजीको कहा कि अपने पक्षके पोषणमें आप कोई वेदका प्रमाण उपस्थित कीजिए।

शास्त्री महाशयने कहा कि वेदका प्रमाण कहाँसे दूं ? वेद तो शंखासुरने हरण कर लिये हैं ! स्वामीजीने तत्काल वेद हाथमें उठाकर कहा—"पण्डितजी आपके आलस्य और प्रमाद रूप शंखासुरका वध करके ये वेद मैंने जर्मनीसे मँगाये हैं। लीजिए, इनमेंसे खोजकर कोई प्रमाण निकालिए।"

उस समय सारी सभा हास्य रसमें लोट पोट हो गई। पण्डितजीने भी मौन साधन ही अच्छा समझा।

लक्ष्मण शास्त्रीकी पराजयसे पौराणिकोंमें खलबली पड़ गई। अन्तमें, उन्होंने शास्त्रार्थ करनेके लिए अङ्गदशास्त्रीको पीलीभीतसे बुलानेका प्रबन्ध किया। अङ्गद शास्त्री बड़ा अभिमानी पुरुष था। वह अपनेसे बढ़कर, किसीको भी विद्वान् नहीं मानता था। उसकी दृष्टिमें सारे पण्डित तृण-तुल्य थे। उसने शाहजहाँपुरमें आते ही जनताको, उकसाना भड़काना आरम्भ कर दिया और शास्त्रार्थके समय ऊधम मचानेके उपाय स्थिर कर लिये। साथ ही शास्त्रार्थके लिए अपनी सुलज्जाका एक पत्र स्वामीजीकी सेवामें भेज दिया।

उसके पत्रका उत्तर महाराजने शास्त्रार्थके नियमोंसहित जो दिया उसका सारांश यह है—"क्या आप लोग वेदसे विमुख होकर, मूर्त्तिपूजा आदि वेद-विरुद्ध कर्म नहीं करते ? और क्या वेदोक्त एक परमेश्वरकी पूजा न कर उलटे नहीं चलते ? क्या आपने मेरा कोई कर्म्म वेदके प्रतिकूल देखा सुना है ? यदि शास्त्रार्थ करनेकी आपकी सच्ची इच्छा होती तो सभ्यता और विनयपूर्वक शास्त्रार्थ करनेसे मैंने आपको कब रोका था ? सभ्यतासे सम्वाद करना चाहते हो तो मेरा द्वार अब भी खुला है। परन्तु आप तो शास्त्रार्थ करना ही नहीं चाहते। यदि इच्छा थी तो मेरे पास ही क्यों न आ गये ? जहाँ मूर्ख लोग असभ्यतापर उतर आते हैं, और हल्लागुल्ला करने लगते हैं मैं तो वहाँ खड़ा होना भी नहीं चाहता। आपका यह लिखना कि जहाँ जहाँ मैं जाता हूं वहाँ वहाँसे आप किनारा काटकर निकल जाते हैं, कोरा झूठ है। आपसे मुझको कभी किंचिन्मात्र भी भय नहीं हुआ और न ही कभी होगा। आपमें ऐसी

योग्यता ही नहीं, जिससे कोई डर जाय। आपको तो लोगोंको परस्पर लड़ाना भिड़ाना आता है। आपकी इसी करतूतपर बरेलीमें, लक्ष्मीनारायणजीने आपको उद्यानतकमें तो आने नहीं दिया था। वह तिरस्कार आपकी कलहकारिणी प्रकृतिका कड़वा फल था।

इस समय हम दोनों शाहजहाँपुरमें हैं। अब जो बहाने बनाकर भाग जाय वह झूठा समझा जायगा। अपने सर्व सामर्थ्यसे शास्त्रार्थ कर लीजिए; टल न जाइए। परन्तु साथ ही यह भी स्मरण रखना कि जय सच्चाईकी ही होती है। सब आप्त जनोंका यही मार्ग है कि सत्यका मण्डन और असत्यका खण्डन किया जाय। मुझे अपनी विद्या और बुद्धिके अनुसार पूर्ण निश्चय है कि मैं लोगोंको सन्मार्गपर चला रहा हूं। यदि इसमें आपको कोई भ्रम है तो शास्त्रार्थके समय दूर हो जायगा।

मथुरामें अनेक विद्यार्थी श्रीविरजानन्दजीसे अध्ययन करते थे। आप भी कदाचित् उनकी सेवामें गये होंगे। परन्तु यदि आप उनके शिष्य होते तो उनके उपदेशके प्रतिकूल आचरण न करते। बड़ा छोटा और ऊँच नीच तो मनुष्य अपने गुण-कर्म्मसे होता है।

आपका पत्र कल मध्याह्नकाल मिला था। इसलिए कल उत्तर नहीं दिया जा सका। आपके पत्रमें संस्कृत और भाषाकी अनेक अशुद्धियाँ हैं। सो जब आपका मिलाप होगा उस समय सब कुछ समझा दिया जायगा।"

श्रावण कृष्ण एकादशी १६३६।

इसके अनन्तर भी अङ्गद महाशय स्वामीजीके सामने न आये। दूर बैठे ही गप्प शप उड़ाते रहे और लम्बे लम्बे पत्र लिखकर समय टालते रहे। स्वामीजी के नियमोंको भी उन्होंने स्वीकार नहीं किया। इसलिए वह शास्त्रार्थ न होसका।

कितना भी बड़ा मनुष्य कोई क्यों न होता यदि, वह कोई दबावकी बात कह बैठता तो महाराज तुरन्त करारा उत्तर देकर, उसका मुंह बन्द कर देते। एक दिन डिप्टी कलेक्टर, अली जान महाशय उस मार्गसे निकले, जहाँ, स्वा-

मीजी व्याख्यान दिया करते थे। डिप्टी महाशयने कहा कि पण्डितजी ! अपने व्याख्यानमें कुछ सम्भलकर बोला कीजिए। महाराजने तत्काल उत्तर दिया कि 'कोई भयकी बात नहीं है, अब राज्य अङ्गरेज़ी है, औरङ्गजेबी नहीं।'

स्वामीजीको मितव्ययिताका भी ध्यान रहता था। वे व्यर्थ व्ययके बड़े विरोधी थे। धनके सदुपयोगकी सबको शिक्षा दिया करते थे।

स्वामीजीको व्याख्यान-स्थानपर पहुंचानेके लिए जो सज्जन गाड़ी भेजा करता था वह एक दिन अपनी गाड़ी न भेज सका। किरायेकी गाड़ी स्वामीजी के निवासपर आ गई। महाराजने उस गाड़ीको देखकर कहा, "आप किरायेकी गाड़ी क्यों लाये हैं ? मुझे गाड़ीमें बैठनेका कोई व्यसन नहीं है। आने जानेमें अधिक समय न व्यय हो जाय इसलिए मैं गाड़ीमें बैठता हूं, वैसे तो मुझे पैरों चलनेहीमें आनन्द आता है।"

पण्डित भीमसेनजी एक दिन बाजारसे भोजन-सामग्री लिवा लाये। महाराजने भोज्य-पदार्थोंको निरीक्षण कर पण्डितजीको कहा, "आटे आदिका दाम आपसे अधिक लिया गया है। ऐसा जान पड़ता है कि आपने निरखकी पूछ-ताछ कुछ भी नहीं की। पदार्थ भी उत्तम कोटिके नहीं हैं। भाई, धन एक उपयोगकी वस्तु है। यह बड़े परिश्रमसे प्राप्त होता है। किसीने यदि कलकत्ते जाना हो तो वहां न पहुंच सकनेसे, चाहे उसे कितनी ही हानि क्यों न उठानी पड़े परन्तु वह किरायेमें एक भी पैसेकी कमीसे वहाँ नहीं जा सकता। किसी समय तो एक कौड़ीकी कमी भी करोड़ों रुपयोंकी हानिका कारण हो सकती है। इस लिए एक पैसेके व्ययमें भी सावधान रहना चाहिए।"

महाराज समयको एक बहुमूल्य वस्तु मानते थे। उन्होंने दिन रातके सारे पल अपने लिए तो नियमके तारमें पिरो ही रखे थे, परन्तु कर्म्मचारियोंको भी व्यर्थमें समय बिताने नहीं देते थे।

एक दिन उनके लेखक कार्य करनेके लिए समयपर समुद्यत न हो सके। वे कोई आध घण्टा देर करके कामपर आये। महाराजने उन्हें उपदेश देते हुए

कहा, "हमारे देशके लोग समयका महत्त्व नहीं जानते। नियम-बद्ध कार्य्य करना इनके लिए दुष्कर कर्म है। प्रातःसे सायंपर्यन्त, इनके सारे काम अनियमित होते हैं। समयका व्यर्थ खोना इनकी अस्तव्यस्त अवस्थाका एक भारी कारण है।

समय कितने मूल्यकी वस्तु है, इसका ज्ञान उस समय होता है, जब किसीका मरणासन्न प्रिय बन्धु शय्यापर पड़ा होता है और वैद्य आकर कहता है कि यदि पांच पल पहले मुझे बुलाया होता तो मैं इसे मरने न देता। चाहे सहस्रों रुपये व्यय कर डालो अब इसकी आंख नहीं खुल सकती।"

महाराजके इस उपदेशका कर्मचारियोंपर अत्युत्तम प्रभाव पड़ा। महाराज शाहजहांपुर-निवासियोंको अपने सुधा-समान उपदेशोंसे तृप्त करनेके अनन्तर आश्विन सुदी० २ सं० १९२६ को लखनऊ आये। वहां छः दिनतक निवास किया और आश्विन सुदी दशमी सम्वत् १९२६ को फरुखाबादमें पधारे। अबकी बार महाराजने लाला कालिचरणके उद्यानमें आसन लगाया।

महाराजके वहाँ प्रतिदिन भाषण होते। सहस्रों मनुष्य सुनने आते। कलेक्टर आदि राजकर्मचारी भी सम्मिलित हुआ करते और अत्यन्त प्रसन्न होते। उनके भाषणोंका प्रभाव वर्णनातीत होता था। एक व्याख्यानमें गो रक्षाके लाभ वर्णन करते हुए महाराजने कहा—"गो-हत्यासे इतनी हानि हो रही है परन्तु खेद है कि राजपुरुष इसपर कुछ भी ध्यान नहीं देते। यह दोष अधिक हमारा अपना है। हममें एकताका सर्वथा अभाव है। यदि मिलकर गो-वध बन्द करानेका निवेदन करें तो क्या नहीं हो सकता? जो लोग दान करते हैं वे भी हानि लाभको नहीं सोचते। भोले भाले भाई समझ लेते हैं कि गो-संकल्प करनेसे वैतरणी पार हो जायँगे। वे तर जाते हैं और गौ पुरोहित देवताके आँगनमें खूंटेसे बन्धी रहती है, प्रत्युत बार बार कई स्थानोंमें संकल्प कराई जाती है। बहुतसे ऐसे भी कुल-कपूत हैं जो तुरन्त उसे कसाईके हाथ बेच डालते हैं।"

एक दिन, दानपर बोलते हुए महाराजने कहा, "अन्न-जलका दान कोई भी भूखा प्यासा मिले उसे दे देना चाहिए। ऐसा दान पहले अपने दीन दुःखी

पड़ोसीको देना चाहिए। पासके रहनेवालेका दरिद्र दूर करनेमें सच्ची अनुकम्पा और उदारताका प्रकाश होता है। इससे वाहवाह नहीं मिलती, इसलिए अभिमानको भी अवकाश नहीं मिलता।

समीपस्थ दुःखीको देखकर और पीड़ितको अवलोकन करके ही दया, अनुकम्पा और सहानुभूति आदि हार्दिक भाव प्रकट होते हैं। जो समीप वर्त्ती दीन दुःखिया जनपर तो दयादि भावोंकी नहीं दिखलाता किन्तु दूरस्थ मनुष्यों के लिए उनका प्रकाश करता है उसे दयावान्, अनुकम्पा-कर्त्ता और सहानुभूति-प्रकाशक नहीं कह सकते। ऐसे मनुष्यका दान बाहरका दिखलावा और ऊपर का आडम्बर है। दान आदि वृत्तियोंका विकाश, दीपककी ज्योतिकी भाँति, समीपसे दूरतक फैलना उचित है।

यहाँ प्रश्न उत्पन्न होता है कि 'जो निर्धन जन अन्नादिका दान नहीं कर सकते वे दूसरोंको क्या दें ?' उत्तर स्पष्ट है कि जो अन्नादिका दान करनेमें असमर्थ हैं वह अपने पड़ोसी आदिको कष्ट और क्लेशमें सहायता दें। निर्बलों का पक्ष करें। विपत्ति और आधि-व्याधि-ग्रस्त जनोंकी सेवा करें। पर-पीड़ितों और व्याकुल मनुष्योंसे प्रेम करें। उन्हें मीठे वचनोंसे शान्ति दें। ये सब दान हैं और आत्मासे सम्बन्ध रखनेवाले दान हैं। ऐसे दान नित्यप्रति, निर्धन जन भी कर सकते हैं।"

महाराजने एक दिन वर्णन किया, "अनेक जन कहते हैं कि आपके खण्डन-परक व्याख्यानोंसे तो लोगोंमें घबराहट उत्पन्न होजाती है। उनके हृदय भड़क उठते हैं। इसका परिणाम शुभ कैसे होगा ! भाई, जब रोग दूर होनेमें नहीं आया करता तो अच्छे वैद्य लोग, देरके बढ़े दोषोंको शान्त करने और मलको बाहर निकालनेके लिए विरेचक औषधियाँ दिया करते हैं। विरेचक औषध पहले पहल घबराहट उत्पन्न करती है। व्याकुलता लाती है। कभी कभी उससे मुँह भी मचलाने लग जाता है। परन्तु जब विरेचन होकर कुपित दोष शान्त हो जाते हैं तब प्रसन्नता लाभ होती है। धीरे धीरे वास्तविक पुष्टि प्राप्त हो जाती है।

आर्य जातिमें अनेक कु-रीतियोंके दोष और मिथ्या मन्तव्योंके मल बढ़ गये हैं। उनके कारण यह इतनी रुग्ण हो गई है कि इसके स्नेहियोंको इसके जीवन के संशय पड़ गये हैं। लोग इसकी आयुके वर्षों को उङ्गलियोंपर गिनने लगे हैं।

हमारे उपदेश, आज विरेचक औषधकी भाँति, घबराहट अवश्य लाते हैं, परन्तु हैं वे जातीय शरीरके संशोधक और आरोग्यप्रद। वर्त्तमान आर्य्यसन्तान हमें चाहे जो कहे परन्तु भारतकी भावी सन्तति हमारे धर्म्म सुधारको और हमारे जातीय संस्कारको अवश्यमेव महत्त्वकी दृष्टिसे देखेगी। हम, लोगोंकी आत्मिक और मानसिक नीरोगताके लिए, जो कुरीतियोंका खण्डन करते हैं वह सब कुछ हित-भावनासे किया जाता है।"

पौराणिक पण्डितोंने स्वामीजीके पास पच्चीस प्रश्न भेजे। उनका उत्तर महाराजने आर्य पुरुषोंको लिखा दिया। वे प्रश्नोत्तर ये थे—

प्रश्न १—वेदादि शास्त्रोंमें संन्यासियोंके धर्म्म क्या कहे हैं? संन्यासियोंको यानारूढ़ होना और हुक्का पीना चाहिए अथवा नहीं?

उत्तर—वेदादि शास्त्रोंमें संन्यासियोंके धर्म्म ये बताए हैं—ज्ञानपूर्वक, वेदानुकूल, शास्त्रोक्त रीतिसे पक्षपात, शोक, वैर, हठ और दुराग्रहका त्यागना। स्वार्थ साधन, निन्दा-स्तुति और मानापमान आदि दोषोंको छोड़ना। संन्यासियोंका धर्म्म है कि सत्यासत्यकी आप परीक्षा करें। सर्वत्र विचरते हुए लोगोंसे असत्य छुड़ावें और सत्य ग्रहण करायें, जिससे उनकी शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति हो और वे साधनोंसहित विद्या लाभ कर अपने पुरुषार्थसे व्यावहारिक और पारमार्थिक सुखोंको उपलब्ध करें। लोगों से दुराचार हटाना संन्यासियोंका धर्म्म है।

हर्ष-शोकसे रहित संन्यासी जन यदि यानारूढ़ हों तो इसमें कोई भी दोष नहीं हैं। रोगादिकी निवृत्तिके लिए, परोपकारी संन्यासी जन यदि औषधवत् धूम्रपान करें तो कुछ भी हानि, दोष नहीं है। ऐसा करना शास्त्रानुसार है।

प्रश्न २—यदि आपके मतमें क्षमा नहीं मानी जाती तो मनु-स्मृतिके

प्रायश्चित्तोंका क्या फल है ? ईश्वरकी दयालुताका क्या प्रयोजन है ? यदि मनुष्य स्वतन्त्रतासे आगन्तुक पापोंसे बचा रहे तो ईश्वरकी क्षमाशीलता किस काम आयगी ?

उत्तर—हमारा मत वेदोक्त है, कोई कपोल कल्पित नहीं है। वेदोंमें कहीं भी किये पापोंकी क्षमा नहीं लिखी ! पापोंकी क्षमा मानना युक्तिसङ्गत भी नहीं है। उन मनुष्योंपर शोक होता है जिन्हें प्रश्न करने तो नहीं आते परन्तु वे पाँचोंमें सवार बननेकी चेष्टा करते हैं।

क्षमा और प्रायश्चित्तका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। प्रायश्चित्त कोई सुख भोगका नाम नहीं है। जैसे कारावासमें अपराधी मनुष्य चोरी आदि कर्मोंका फल भोग लेता है, ऐसे ही प्रायश्चित्तमें पाप-फल भोगा जाता है। अनेक नास्तिक जन ईश्वरका खण्डन करते हैं। दुःखोंमें और दुर्भिक्षादिमें मनुष्य पर-मात्माको गालियाँ तक देने लग जाते हैं ! वह सब सहन कर लेता और अपनी कृपाका परित्याग नहीं करता। यही उसकी क्षमा और दया है। न्यायकारी, यदि किये कर्मोंको क्षमा कर दे तो वह अन्यायकारी हो जाता है। परमेश्वर अपने स्वाभाविक गुणके विरुद्ध कभी कुछ नहीं करता। जैसे न्यायाधीश पापियोंको विद्या और शिक्षाद्वारा पापसे पृथक् कर प्रतिष्ठा और दण्डसे शुद्ध और सुखी कर देता है, ऐसे ही ईश्वरका न्याय समझना चाहिए।

प्रश्न ३—यदि आपके मतमें तत्त्वोंके परमाणु नित्य हैं और कारणका गुण कार्यमें रहता है तो यह बताइए कि सूक्ष्म परमाणुओंसे स्थूल सृष्टि कैसे हो गई ?

उत्तर—जो परम सूक्ष्म है उसीको परमाणु और अव्याकृत आदि नामों से पुकारा जाता है। ऐसे परमाणु अनादि और सत्य हैं। कारणके जो गुण समवायसम्बन्धसे हैं वे कारणमें नित्य हैं और कार्यावस्थामें भी नित्य बने रहते हैं। परमाणुओंमें संयोग और विभागका गुण भी नित्य है। इस लिए इनके मिलने और बिछड़नेसे इनके स्वरूपमें अनित्यता नहीं आती। परमाणुओंमें गुरुत्व और लघुत्व दोनोंका सामर्थ्य भी नित्य है। गुण-गुणीका समवाय सम्बन्ध है।

प्रश्न ४—मनुष्य और ईश्वरका परस्पर क्या सम्बन्ध है ? ज्ञानसे मनुष्य क्या ईश्वर बन सकता है ? जीवात्मा और परमात्मामें क्या सम्बन्ध है। क्या वे दोनों नित्य हैं ? यदि दोनों चेतन हैं तो जीव ईश्वराधीन है कि नहीं ? अधीन है तो क्यों ?

उत्तर—मनुष्य और ईश्वरका राजा-प्रजा, स्वामी-सेवक आदिका सम्बन्ध है। अल्पज्ञ होनेसे जीव ईश्वर नहीं हो सकता। जीव और ईश्वरमें व्याप्य-व्यापक आदि सम्बन्ध हैं। जीवात्मा सदा ईश्वराधीन रहता है; परन्तु कर्म करनेमें वह स्वतन्त्र है और फल भोगनेमें ही पराधीन है। ईश्वरका सामर्थ्य अनन्त है और जीवका अल्प, इसलिए जीवका परमात्माके अधीन होना आवश्यक है।

प्रश्न ५—क्या आप संसारकी रचना और प्रलय मानते हैं ? प्रथम सृष्टिमें एक मनुष्य उत्पन्न हुआ था अथवा अनेक ? आदिमें जब उनके कर्म समान थे तो परमेश्वरने कुछ एक मनुष्योंहीको वेद ज्ञान क्यों दिया ? ऐसा करनेसे उसमें पक्षपातका दोष आ जाता है।

उत्तर—सृष्टिकी उत्पत्ति और प्रलय हम मानते हैं। ईश्वरके गुण, कर्म और स्वभाव अनादि हैं। इस लिए सृष्टि भी प्रवाहसे अनादि है। यदि ऐसा न माना जाय तो रचनासे पूर्व ईश्वरको निकम्मा मानना होगा। परमेश्वरकी तरह प्रकृति और जीव भी अनादि हैं। जैसे इस कल्पकी सृष्टिकी आदिमें अनेक स्त्री-पुरुष उत्पन्न हुए वैसे ही पूर्व कल्पोंमें होते रहे और आगामी कल्पोंमें होते रहेंगे। जीवोंके कर्म भी अनादि हैं। जिन चार आत्माओंमें परमात्माने वेदका प्रकाश किया उनके सदृश अथवा उनसे अधिक किसीके भी पुण्य नहीं थे। इस लिए परमात्मामें पक्षपातका दोष नहीं आता।

प्रश्न ६—आपके मतानुसार कर्म-फल यथाकर्म न्यूनाधिक होता है तो मनुष्य स्वतन्त्र कैसे हुआ ? परमेश्वरका जैसा ज्ञान है जीव वैसा ही कर्म करेगा इसलिए स्वतन्त्र न रहा।

उत्तर—कर्म-फल न्यूनाधिक कभी नहीं होते। जिसने जैसा और जितना

कर्म किया हो उसे वैसा और उतना ही फल न दिया जाय तो अन्याय हो जाता है। हे आर्य जनो! ईश्वरमें भूत-भविष्यत् कालका सम्बन्ध नहीं है। ईश्वरका ज्ञान सदा एकरस है। जैसे ईश्वर अपने ज्ञानमें स्वतन्त्र है वैसे ही जीव कर्मों के करनेमें स्वतन्त्र है परन्तु फल भोगनेमें परतन्त्र है।

प्रश्न ७—मोक्ष क्या पदार्थ है?

उत्तर—सब अशुभ कर्मोंसे रहित होकर केवल शुभ ही कर्म करना जीवन-मुक्ति है, और दुःखमात्रसे छूटकर आनन्दपूर्वक परमेश्वरमें रहना मुक्ति है।

प्रश्न ८—धन बढ़ाना, कला-कौशलद्वारा लोगोंको सुखी करना और रोगग्रस्त पापी मनुष्यको औषधादि देना धर्म है अथवा अधर्म?

उत्तर—न्यायसे धन बढ़ाने, कला-कौशल निकालने और औषध आदि बनानेमें धर्म्म है। यदि कोई मनुष्य ऊपर कहे कर्म अन्यायसे करे तो अधर्म है। पापी मनुष्यको रोगसे छुड़ाकर धर्म्म-कार्यों में लगाना धर्म्म है।

प्रश्न ९—मांस खानेमें पाप है अथवा नहीं? यदि पाप है तो वेद और आप्त ग्रन्थोंमें, यज्ञमें हिंसाका विधान है और भक्षणार्थ मारना क्यों लिखा है?

उत्तर—मांस खानेमें पाप है। वेदों तथा आप्त ग्रन्थोंमें यज्ञादिमें हिंसा करना कहीं भी नहीं लिखा। गोमेध आदि शब्दोंके अर्थ वामियोंने बिगाड़े हैं। इनका वास्तविक अर्थ हिंसा-परक नहीं है। जैसे डाकू आदि दुष्ट जनोंको राजा लोग मारते हैं ऐसे ही हानिकारक पशुओंको मारना भी लिखा है, परन्तु खाने का लेख नहीं है। आजकल तो वामियोंने मिथ्या श्लोक बनाकर गो-मांस तक खाना भी बताया है। जैसे मनुस्मृतिमें इन धूर्तों का मिलाया हुआ लेख है कि गो-मांसका पिण्ड देना चाहिए। क्या कोई पुरुष ऐसे भ्रष्ट वचन मान सकता है?*

प्रश्न १०—जीवका क्या लक्षण है?

---

* यह उत्तर पं० लेखरामजीके नामसे बनाये स्वामी दयानन्दजीके जीवन चरित्रसे लिया गया है। परन्तु 'भारत सुदशा प्रवर्तक' नामक पत्रमें उस समय इस प्रश्नका जो उत्तर छपा था वह रोगमें अपवाद सहित इससे भिन्न है।

उत्तर—जीवके लक्षण न्याय-शास्त्रमें इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख-दुःख, और ज्ञान लिखे हैं।

प्रश्न ११—सूक्ष्म यन्त्रोंसे ज्ञान होता है कि जलमें अनन्त जीव हैं। इस अवस्थामें क्या जल-पान करना चाहिए?

उत्तर—जब पात्र और पात्रस्थल जल अन्तवाले हैं तो उनमें अनन्त जीव नहीं समा सकते। जलको आंखसे देखकर और वस्त्रसे छानकर पीना चाहिए।

प्रश्न १२—पुरुषके लिये बहुत स्त्रियोंसे विवाह करनेका कहाँ निषेध है? यदि है तो धर्म्म-शास्त्रमें यह क्यों आता है कि यदि एक पुरुषके अनेक स्त्रियाँ हों और उनमेंसे एक पुत्रवती हो जाय तो सब पुत्रवालियाँ समझी जायँ?

उत्तर—वेदमें बहु विवाहका निषेध है। संसारमें सभी मनुष्य अच्छे नहीं होते। इस लिए यदि कोई अधर्मी पुरुष अनेक स्त्रियोंसे विवाह कर ले तो उस की स्त्रियोंमें परस्पर विरोध अवश्य होगा। यदि एकके पुत्र हो तो दूसरी उसे विष आदिसे मार न दें, इस लिए धर्म्मशास्त्रमें लिखा है। कि उसे अपना पुत्र ही समझें।

प्रश्न १३—ज्योतिष-शास्त्रके फलित-भागको क्या आप मानते, हैं? क्या भृगु-संहिता आप्त ग्रन्थ है?

उत्तर—हम ज्योतिष-शास्त्रके फलित-भागको नहीं मानते, किन्तु गणित भागको मानते हैं। ज्योतिषके जितने सिद्धान्त ग्रन्थ हैं उनमें फलितका लेश भी नहीं है। भृगु-संहितामें गणित है इसलिए उसे हम मानते हैं। ज्योतिषशास्त्रके सिद्धान्त ग्रन्थोंमें भूत-भविष्यत् कालका ज्ञान नहीं लिखा है और न ही उनमें मनुष्यके सुख-दुःखके ज्ञानका लेख है।

प्रश्न १५—ज्योतिष-सिद्धान्तमें आप किस ग्रन्थको सिद्धान्त-ग्रन्थ स्वीकार करते हैं?

उत्तर—जितने भी वेदानुकूल ग्रन्थ हैं उन सबको हम आप्त ग्रन्थ मानते हैं।

प्रश्न १५—क्या आप पृथ्वीपर सुख-दुःख, विद्या, धर्म्म और मनुष्य संख्या

की न्यूनता और अधिकता मानते हैं ? यदि मानते हैं तो क्या पहले इनकी वृद्धि थी ? अब है ? अथवा आगे होगी ?

उत्तर—हम पृथ्वीपर सुखादिकी वृद्धि सापेक्ष होनेसे अनित्य मानते हैं और मध्यम अवस्थामें बराबर स्वीकार करते हैं।

प्रश्न १६—धर्म्मका क्या लक्षण है ? ईश्वरकृत सनातन है अथवा मनुष्यकृत ?

उत्तर—धर्म्मका लक्षण पक्षपात-रहित न्याय हैं और सत्यका ग्रहण तथा असत्यका परित्याग है। वह वेद प्रतिपादित और ईश्वरकृत सनातन है।

प्रश्न १७—यदि कोई ईसाई, मुसलमान आपके मतमें दृढ़ विश्वासी होजाय तो क्या आपके अनुयायी उसे अपनेमें मिला लेंगे और उसका बनाया भोजन खा लेंगे ?

उत्तर—वेद ही हमारा मत है। बड़े शोक और अन्धेरकी बात है कि आप लोगोंने केवल खान-पान, शौच-स्नान, वेश भूषा और उठने बैठने आदिको ही धर्म्म मान रक्खा है ! ये तो अपने अपने देशोंकी रीतियाँ हैं।

प्रश्न १८—क्या आपके मतमें ज्ञानके बिना भी मुक्ति हो जाती है ?

उत्तर—परमेश्वर सम्बन्धी ज्ञानके बिना किसीकी मुक्ति नहीं होती। जो धर्म्मपर आरूढ़ होगा उसे ज्ञान भी अवश्य होगा।

प्रश्न १९—श्राद्ध करना क्या शास्त्रानुसार है ? शास्त्रानुकूल नहीं तो पितृ-कर्मका क्या अर्थ है ? क्या मनुस्मृति आदि ग्रन्थोंमें इसका विधान मिलता है ?

उत्तर—जीवित पितरोंको श्रद्धासे, सेवासे, पुरुषार्थसे और पदार्थों से तृप्त करना श्राद्ध है। ऐसे ही श्राद्धका विधान वेदमें मिलता है। मनुस्मृतिमें भी जो लेख वेदानुकूल हैं वही मानने योग्य हैं।

प्रश्न २०—कोई मनुष्य यह समझकर आत्मघात कर ले कि मैं पापोंसे नहीं बच सकता तो क्या ऐसा करनेमें कोई पाप होता है ?

उत्तर—आत्मघात करनेमें पाप ही होता है ! पापाचरणके फल भोगे बिना कोई मनुष्य पापोंसे नहीं बच सकता।

प्रश्न २१—जीवात्मा असंख्य हैं अथवा संख्यासहित? क्या कर्म वश मनुष्य पशु और वृक्षादिकी योनियोंमें जा सकता है?

उत्तर—ईश्वरके ज्ञानमें जीवोंकी संख्या है, परन्तु अल्पज्ञानमें वे असंख्य हैं। पाप-कर्म्मों की अधिकतासे जीव, पशुओं और वनस्पतियोंकी योनियोंमें जाता है।

प्रश्न २२—क्या विवाह करना उचित है। सन्तान-प्राप्तिसे किसको पाप लगता है?

उत्तर—जो जन पूर्ण विद्वान् और जितेन्द्रिय होकर सबका उपकार करना चाहें उन्हें तो विवाह करना उचित नहीं है। जो मनुष्य ऐसा नहीं कर सकते उन्हें विवाह करना चाहिए; वेदानुसार विवाह करके ऋतुगामी रहते जो सन्तान प्राप्त हो उसमें कोई दोष नहीं है। व्यभिचार अन्याय है। इसलिए उससे उत्पन्न हुई सन्तान दोषयुक्त होती है।

प्रश्न २३—क्या अपने सगोत्रमें विवाह-सम्बन्ध करना दूषित है। यदि है तो क्यों? क्या सृष्टिकी आदिमें ऐसा हुआ था?

उत्तर—सगोत्रमें विवाह करनेसे शरीर और आत्माकी यथावत् उन्नति नहीं होती और बल तथा प्रेम भी ठीक ठीक नहीं बढ़ता। इन दोषोंके कारण भिन्न गोत्रमें विवाह करना उचित है। सृष्टिकी आदिमें तो गोत्र ही नहीं थे। इसलिए उस समयका प्रश्न करना व्यर्थ प्रयास है।

प्रश्न २४—गायत्रीके जापसे कोई फल भी होता है कि नहीं? यदि होता है तो क्यों?

उत्तर—वेदमें गायत्रीके अर्थानुसार आचरण करना लिखा है इस लिए वैदिक विधिसे गायत्रीका जप किया जाय तो उत्तम फल प्राप्त होता है। किया हुआ अच्छा बुरा कोई भी कर्म्म निष्फल नहीं जाता।

प्रश्न २५—धर्म्माधर्म्म मनुष्यके अन्तरङ्ग भावोंसे सम्बन्ध रखता है अथवा बाहरके परिणामोंसे? यदि कोई मनुष्य किसी डूबते मनुष्यको बचानेके लिए नदीमें कूद पड़े और आप भी डूब जाय तो क्या उसे आत्मघातका पाप लगेगा?

उत्तर—धर्म्माधर्म्म मनुष्यकी वहिरङ्ग और अन्तरङ्ग सत्तासे होते हैं। इन को कर्म और सुकर्म-कुकर्म भी कहा जाता है। परोपकारके लिए परिश्रम करते यदि बीचहीमें प्राणान्त हो जाय तो भी वह मनुष्य पुण्य-पुञ्ज उपार्जन कर लेता है। ऐसे जानको पाप कदापि नहीं लगता।

ऊपर लिखे प्रश्नोत्तर आर्य्य समाज फर्रुखाबादमें सुनाये गये और फिर 'भारत सुदशा प्रवर्त्तक' नामके पत्रमें प्रकाशित कराए गये।

स्वामीजी महाराज, अच्छे सुन्दर और सार्थक नाम रखनेकी शिक्षा दिया करते। एक दिन महाराजके पास अनेक सत्सङ्गी बैठे थे। उस समय कई स्त्रियाँ भी आ गईं। उनमेंसे एकके पास एक नन्हासा बच्चा था। महाराजने उसका नाम पूछा तो बालककी माता बोली—'इसका नाम भीमा है।'

स्वामीजीने उस समय कहा कि ऐसे नाम न रक्खा करो। नाम अत्युत्तम होने चाहियें। आजसे इस बालकको 'भूदेव' कहा करो

महाराज साधारण बातसे भी कोई न कोई शिक्षा निकाल लिया करते। एक दिन, वे अपने डेरेसे आर्य समाजके स्थानको गाड़ीमें आ रहे थे। मार्गमें एक कुत्ता, भौंकता हुआ, गाड़ीके पीछे दौड़ने लगा। थोड़ी दूरतक तो वह पीछे आया, परन्तु अन्तमें थककर रह गया। उस समय महाराजने अपने साथी सज्जन को कहा, "कपोल-कल्पित मतोंको माननेवाले, पहले पहल तो बहुतेरी बक-झक करते हैं, परन्तु अन्तमें इस कुत्तेकी तरह हारकर रह जाते हैं।"

फतेहगढ़में महाराजने व्याख्यानमें वर्णन किया कि आर्य्य समाजके दस नियम ऐसे पूर्ण हैं कि इनमें आजतक कोई मनुष्य भी त्रुटि नहीं दिखा सका। उस व्याख्यानके मध्यमें मदिरामें उन्मत्त एक मनुष्य चिल्लाने लग गया। लोगों ने उसे चुप करानेका बहुत यत्न किया, परन्तु उसने एक न मानी। अन्तमें महाराजके सिंह-नादको सुनकर वह सर्वथा शान्त हो गया।

स्वामी प्रतिपक्षीको उसके ही कथनसे निरुत्तर कर देते थे। एक दिन एक वकीलसे महाराजने पूछा कि आपका क्या मत है? उसने कहा कि मेरा कोई

मत नहीं। मैं किसी पक्षमें विश्वास नहीं करता। स्वामीजीने कहा कि किसीको भी न मानना यह भी तो एक पक्ष है।

स्वामीजीके सत्सङ्गमें बहुधा आत्मा, परमात्मा और आचार-विचारपर ही बातचीत हुआ करती थी। महाराज जगत्सम्बन्धी, व्यर्थके जाल-जंजालपर कान नहीं देते थे। सेठ निर्भयरामजी, एक दिन श्रीसेवामें उपस्थित हुए। स्वामीजीने उनको आनन्द पूछा तो सेठजीने कहा कि महाराज! आपकी कृपासे धन धान्य और पुत्र-पौत्र सभी हैं। इस लिए आनन्दित हूं।

स्वामीजीने हँसकर कहा—"सेठजी! धर्म्म-कर्म्म और आत्मा-परमात्मासे भिन्न वस्तुओंमें आनन्द समझना अविद्याका एक लक्षण है।"

एक दिन कई सज्जनोंके साथ वार्तालाप करते हुए महाराजने कहा, "इस देश में अनेक दयानन्द उत्पन्न होंगे। वैदिक धर्म्मकी वृद्धिके समय, उन मायिक पुरुषोंसे इस धर्म्मकी रक्षा करना आर्यों के लिए बड़ी सावधानी और बुद्धिमत्ता का काम होगा।"

स्काट महाशय फरुखाबादमें मजिस्ट्रेट थे। वे बड़े सज्जन और उदारचेता थे। महाराजके व्याख्यानोंमें निरन्तर आया करते थे। जिस दिन व्याख्यान न होता तो दर्शनार्थ अवश्य आ जाते। श्री चरणोंमें वे अति प्रीति रखते थे। उनके पाँवमें कोई दोष था। इस कारण वे लङ्गड़ाकर चलते थे।

एक दिन स्काट महाशयने स्वामीजीसे पूछा कि कर्म्म फलका पता हमें कैसे लगे? स्वामीजीने उनको कहा कि आपके पाँवमें लंगड़ापन क्यों है? उन्होंने उत्तर दिया कि ईश्वरकी इच्छा। इसपर महाराजने कहा, "इसे ईश्वर-इच्छा न कहिए। यह कर्म-फल है। सुख दुःखके भोगका नाम कर्म्म-फल है। जिस भोगका यहाँ कोई कारण दिखाई न दे, उसे पूर्व जन्मके कर्मों का परिणाम कहते हैं।

फरुखाबादमें बाजारकी नाप हो रही थी। उसी सड़कमें एक छोटीसी मढ़िया थी। उसमें लोग धूप-दीप किया करते थे। श्री मदनमोहनलालजीने

आकर स्वामीजीको कहा, "महाराज ! स्काट महाशय आपको बहुत मानते हैं। यदि आप उनको संकेत भी कर दें तो यह मढ़िया मार्गमेंसे मार्जित हो सकती है। भ्रमका स्थान दूर हो सकता है।"

स्वामीजीने उनसे कहा, "ऐसी उलटी पट्टी मुझे न पढ़ाइए। ऐसे टेढ़े, तिरछे और तीखे मार्गोंसे किसी मतको हानि पहुंचाना अधर्म्म है। द्रोह, नीचता अनीति और अन्याय है। मुसलमान बादशाहोंने सैकड़ों मन्दिरोंको मूर्तियों सहित मलयामेट कर दिया, परन्तु मूर्ति-पूजा बन्द करनेमें सफल न हो सके। हमारा काम तो, मनुष्योंके मनोमन्दिरोंसे मूर्तियाँ निकालना है, न कि ईंट-पत्थरके बने देवालयोंको तोड़ना फोड़ना।" महाराजमें सहानुभूतिका भाव बड़ा प्रबल था दीन हीन जनको देखकर उनका हृदय तुरन्त पिघल जाता था। एक दिन वे, श्री कालिचरणके उद्यानमें, अपने सत्संगियों-समेत बैठे शङ्का-समाधान कर रहे थे। उसी समय, एक स्त्री मरा हुआ बच्चा, एक मैले कुचैले वस्त्रमें लिपटे लिये जाती दिखाई दी। उससे महाराजने पूछा, "माई ! आपने इसपर श्वेत, स्वच्छ वस्त्र क्यों नहीं लपेटा ?" उसने रोकर कहा—"महाराज ! मुझ धन-हीन के पास स्वच्छ और नवीन वस्त्र कहाँ है जो इसपर डालती।" उसके वचन सुन कर स्वामीजीकी आँखोंसे आँसुओंकी लड़ी टूट पड़ी। उन्होंने आँसू पोंछते हुए कहा—"कभी यह भारत विभूतिका भव्य भवन था, ऐश्वर्य्यका स्थान था, शोभा और सुखोंका क्रीड़ा-धाम था, परन्तु आज यह दशा है कि भारतके मरे बालकों के तनको ढाँपनेके लिए, उनके बन्धुओंको नया कपड़ा भी नहीं जुड़ता !"

स्वामीजीके उपदेशोंसे आर्य्य पुरुषोंमें असीम उत्साह उत्पन्न हो गया। आर्य्य समाजके कार्य्योंको दृढ़ बनानेके लिए उन्होंने एक सभा की। उसमें सहस्रों रुपये एकत्र किये और उनका कुछ भाग वेद-भाष्यके काममें लगानेके लिए भी दिया।

ग्यारहवाँ सर्ग ।

फरुखाबादमें धर्म्मोपदेश करनेके अनन्तर श्री स्वामीजी महाराज आश्विन वदी ८ सं० १९३६ को कानपुर पधारे । वहाँसे उन्होंने एक पत्र निकाल आर्य्य समाजोंको सूचित कर दिया कि निम्नलिखित भ[illegible] को वेद-भाष्यके लिए चन्दा उगाहनेका अधिकार है:—

ठाकुर मुकुन्दसिंह और मुन्नासिंह छलेसर-निवासी; समर्थ दानजी बम्बई निवासी; इन्द्रमनजी बख्तरसिंहजी, मंत्री आर्य्य समाज, शाहजहाँपुर; श्रीराम शरणदासजी, उपप्रधान आर्य्य समाज, मेरठ; श्रीमान् साईंदासजी, मन्त्री आर्य्य समाज, लाहौर; बलदेवदासजी तथा डाक्टर विहारीलालजी, मन्त्री आर्य्य समाज गुरुदासपुर; चौधरी लक्ष्मणदासजी, सभासद आर्य्य समाज, अमृतसर; [illegible] सुन्दरलालजी, प्रयाग; श्री अर्जुनाधार वाजपेयी, लखनऊ; माधोलालजी, [illegible] आर्य्य समाज, दानापुर ।

जिसके पास जितना चन्दा हो वह फरुखाबादमें महाशय जसराम गोहें-शमके पास भेजकर उसकी रसीद मँगालें । मेरी बनाई पुस्तकें समर्थ दानजी और इन्द्रमनजीसे मिलेंगी ।

कानपुरसे चलकर महाराज प्रयाग और मिरजापुरमें ठहरते हुए द्वितीय आश्विन सुदी १५ सं० १९३६ को दानापुरमें सुशोभित हुए । दानापुर-वासी आर्य्य जनोंके चित्त महाराजके दर्शनोंके लिए अतीव आतुर थे । वे, चातककी भाँति, धर्म्म-मेघको उपदेश वर्षाके प्यासे थे । उन्हें प्रार्थना करते, विनयपत्र भेजते और श्री सेवामें उपस्थित होकर विनती करते बरसों बीत गये थे । जब उन्होंने श्रवण किया कि आज श्री महाराज पधारते हैं तो उनके हृदय हर्ष-पूरसे भरपूर हो गये । चित्तमें पूर्णमासीका चन्द्रमा चढ़ आया । उस दिन वे फूले गात नहीं समाते थे । सभीके नेत्र प्रसन्नताके प्रकाशसे उज्ज्वल और विकसित हो रहे थे ।

जिस समय महाराजकी गाड़ीने रेलवे स्टेशनपर पहुंचना था उसके बहुत ही पहलेसे नगरसे स्टेशनतक गाड़ियोंका ताँता बँध गया था। महाराजके स्वागतके लिए, इतनी जनसंख्या रेलवे स्टेशनपर एकत्र हो गई कि एक मेला अथवा महोत्सव प्रतीत होता था। भक्तलोग भगवान्को एक चौपहिया गाड़ीमें बैठाकर बड़े समारोहसे नगरमें लाये। कुछ काल तक विश्राम करनेके लिए उन्हें, श्री माधोरामजीके निवासमें ठहराया। वहाँ स्वामीजीसे सज्जनोंने परिचय प्राप्त किया। फिर वे, चायपान करके, श्रीमान् जोन्स महाशयके बङ्गलेपर जा विराजमान हुए। यहाँ, उमाप्रसाद नामके एक महाशयने कहा, "आपके उपदेश तो सत्य हैं, परन्तु यदि लोग हठधर्मीसे न मानें तो आप क्या कर सकते हैं।" इसपर स्वामीजीने कथन किया, "यदि हमारे वचनोंको लोग एक बार भी कान देकर सुन लें तो हमारा कार्य्य सिद्ध हो गया। ये कथन एक बार भी कानमें पड़े हुए फिर निकलने नहीं पाते। सुईकी भाँति गहरे चुभ जाते हैं। इन वचनोंको ऊपरसे कोई कितना छिपाये रक्खे, परन्तु इष्ट मित्रसे एकान्तमें बातचीत करते, इनका आप ही आप प्रकाश हो जायगा।"

महाराजके व्याख्यानोंके लिए प्रेमी पुरुषोंने एक मण्डप सजाया था। वहाँ महाराज सिंहासनारूढ़ होकर उपदेश किया करते। ईश्वरादि अनेक विषयोंपर सारगर्भित और चित्ताकर्षक भाषण होते। इनमें बीच बीचमें पन्थोंपर मनोगम समालोचमा भी होती रहती।

एक दिन, कुछ एक मुसलमानोंने स्वामीजीके व्याख्यान-स्थानके पास ही एक मौलवीका व्याख्यान कराना आरम्भ कर दिया। परन्तु वे लोग देरतक विघ्न बाधा न कर सके। पुलिसके एक अधिकारीने उनका डेरा डण्डा वहाँसे उठवा दिया।

महाशय गुलाबचन्द लालजी स्वामीजीके भक्तोंमेंसे थे। उन्होंने एक दिन निवेदन किया, "महाराज! मुसलमानोंके विरुद्ध कुछ भी न कहिएगा। ये लोग झटपट बिगड़ बैठते हैं और लड़ाई झगड़ेपर उतर आते हैं।" स्वामीजी उस

समय तो मौन रहे, परन्तु व्याख्यानमें मुसलमान मतपर तीक्ष्ण, तर्क-तीर-वर्षा करते हुए बोले—"छोकरे मुझे कहते हैं कि मुसलमान मतका खण्डन न कीजिए। मैं सत्यको कैसे छिपा सकता हूं ? जब मुसलमानोंकी चलती थी उन्होंने हमारा खण्डन खड्गसे किया। परन्तु बड़े अन्धेरकी बात है कि आज मुझे वचनोंद्वारा खण्डन करनेसे भी रोका जाता है। ऐसे सुराज्यमें, भला मतमतान्तरोंकी पोल खोलनेसे मैं रुक सकता हूं ?।"

व्याख्यानके अनन्तर जब महाराज अपने डेरेपर पधारे तो कहने लगे, इस समयका राज्य-प्रबन्ध किसी मतमतान्तरकी समालोचना करनेसे किसीको नहीं रोकता। वैदिक धर्म्मके प्रचारमें इस समय यह एक सुविधा है।"

पंजाबके एक नगरका वर्णन करते हुए महाराजने कहा, "वहाँ मैंने विज्ञापनों द्वारा घोषणा कर दी कि कल ईसाइयोंका खण्डन किया जायगा। व्याख्यानके समय बहुतसे देशी और योरुपीय ईसाई तथा पादरी महाशय आकर बैठ गये। उस समय प्रधान सेनापति, लार्ड राबर्ट्स महोदय भी वहाँ उपस्थित थे। उस दिन मैंने अपने सारे सामर्थ्यसे ईसाई मतकी समालोचना की। उस पर आक्षेप किये। बाईबलमें परस्पर विरोध बताया। परन्तु रुष्ट होना तो दूर, प्रधान सेनापति अति प्रसन्न हुए। व्याख्यानके पश्चात् उन्होंने, पास आकर, मुझसे हाथ मिलाया और कहा कि निस्सन्देह आप निर्भय मनुष्य हैं। हम लोगों की उपस्थितिमें हमारे धर्म्मका खण्डन करते, आप किंचिन्मात्र भी नहीं हिचके तो भला दूसरोंसे आपको कब भय हो सकता है ?।"

पत्तों, फूलों और फलोंको निष्प्रयोजन तोड़ना धर्म्म-शास्त्रमें विवर्जित है। इस लिए स्वामीजी भी इनका व्यर्थ नाश नहीं करने देते थे। एक दिन, महाराज बङ्गलेके बाहर टहल रहे थे। उस समय, महाशय अनन्तलाल दर्शनार्थ श्री सेवामें उपस्थित हुए। उन्होंने यों ही, गुलाबका एक फूल तोड़ लिया। स्वामीजीने डाँटकर कहा, "आपने यह अच्छा नहीं किया। यह पुष्प शाखासे लगा हुआ ही शोभायमान था और सुगन्धि प्रदान करता था। आपने व्यर्थमें अकालहीमें इसे तोड़ डाला है।"

भारतके जङ्गी लाट लार्ड रोबर्ट्स और निर्भीक संन्यासी ।

इसके अनन्तर वे भीतर आकर बैठ गये और मोरछलसे मक्खियाँ उड़ाने लगे। उस समय महाशय अनन्तलालने विनय की, "भगवन्! आपने पुष्प तोड़नेसे तो मुझे रोक दिया, परन्तु आप मोरछलसे मक्खियोंको पीड़ा पहुंचा रहे हैं, क्या इसमें दोष नहीं है?"

इसपर महाराजने कहा, "हानिकारक और क्षुद्र जीवोंके निवारण करनेमें आप जैसे बोदे मनुष्योंने बाधा डाली है। इसी नाममात्रकी दयासे भारतवर्षका सत्यानाश हुआ है। आप जैसे, मक्खी मच्छरकी दया माननेवाले, भीरू हृदयके दुर्बल मनुष्य, काम पड़नेपर रण-क्षेत्रमें क्या कर सकते हैं!"

स्वामीजी अपने सेवकोंको प्राणायामकी शिक्षा दिया करते थे। प्राणक्रिया से वे भयङ्कर रोगोंकी शान्ति मानते थे। इससे आत्मिक गुणोंका विकाश, प्रतिभाकी जाग्रति और मानसशक्तिकी उपलब्धिका होना भी वे स्वीकार करते थे। उन्होंने लिखा भी है कि प्राण अपने वशमें होनेसे मन और इन्द्रियाँ भी आधीन हो जाती हैं। बल और पुरुषार्थ बढ़ जाता है। बुद्धि इतनी तीव्र और सूक्ष्म हो जाती है कि अति कठिन और सूक्ष्म विषयको भी ग्रहण कर लेती है।

ठाकुरदास नामक एक सज्जन दानापुरमें वास करते थे। उन्हें योगाभ्यास की जब लगन लगी तो उन्होंने एक निपट अनाड़ो मनुष्यसे प्राणायाम सीखना आरम्भ कर दिया। विधि-विहीन, उलटी पुलटी रीतिसे पूरक, रेचक और कुम्भक करनेपर उनके प्राण प्रकुपित हो गये। नाभिकमल-निवासी, अपान पवनमें गाँठ पड़ जानेसे उसमें सदा पीड़ा रहने लगी! इससे, वे बड़े दुर्बल और कृश होगये। एक दिन, उन्होंने भगवान्के आगे अपने रोग-भोगका वर्णन किया। महाराजने उनको आश्वासन देते हुए कहा, "योगासनसे, हम आपका तीन वर्षोंका रोग दो ढाई पलमें दूर कर देंगे।"

महाराजने ठाकुरदासको एक कोठरीमें ले जाकर पीठके बल लिटा दिया और घुटने खड़े रखवाये। उनके पाँवपर अपने पाँव रखकर दबाव डाला और दूसरी

ओरसे उनका सिर ऊपरको उठवाया। इस क्रियासे वे तत्काल स्वस्थ होगये। उनकी व्याधि दूर हो गई।

एक दिन ठाकुरदासजीने स्वामीजीसे प्रार्थना की, "भगवन्! निराकार परमात्माका दर्शन कैसे हो सकता है?" स्वामीजीने उत्तरमें कहा, "जैसे सूक्ष्म रजकण सारे आकाशमें उड़ते फिरते हैं, परन्तु दृष्टिगोचर तभी होते हैं जब सूर्य्य की किरणें झरोकेमेंसे होकर उनको प्रकाशित करती हैं, ऐसेही परमेश्वर सर्वत्र परिपूर्ण है, परन्तु हृदयके झरोकेमें ध्यान किये विना देवके दर्शन दुर्लभ हैं।"

एक दिन जोन्स महाशय, कई पादरियों-सहित श्रीसेवामें आये और शिष्टाचारके अनन्तर कहने लगे—"महाराज! कोई धर्मोपदेश दीजिए।" स्वामीजी ने उनकी विनयपर उपदेश देना आरम्भ किया कि "परमात्माके रचे हुए पदार्थ सबके लिए एकसे हैं। सूर्य और चन्द्रमा सबको समान प्रकाश प्रदान करते हैं। वायु और जलादि वस्तुयें सबको एकसी दी गई हैं। जैसे ये पदार्थ ईश्वर की देन हैं, सब प्राणियोंके लिए एकसे हैं; ऐसे ही परमेश्वर-प्रदत्त धर्म्म भी मनुष्योंके लिए एक और एकसा होना चाहिए।"

फिर महाराजने कहा, "उस एक साधारण धर्म्मको ढूंढनेके लिए यदि कोई जिज्ञासु सारे मतवादियोंमें भटकता रहे और पन्थाइयोंके कथनोंपर विश्वास कर के धर्म्मको जानना चाहे तो उसे सच्चे धर्म्मका ज्ञान कदापि नहीं हो सकेगा। हाँ, यदि वह सबमेंसे सारको निकाले तो उसे प्रतीत होगा कि थोड़ा बहुत सत्य सब मतोंमें पाया जाता है, जैसे, सत्यको सब मतावलम्बी स्वीकार करते हैं। सभी कहते कि परोपकार पुण्यकर्म्म है, भूत-दयाका भाव बहुत अच्छा है, विपत्ति-व्याधि ग्रस्त मनुष्योंको सहायता देना और दान पुण्य करना शुभ कर्म्म है। सारांश यह कि सदाचार और धर्म्मके जिन अङ्गोंमें सब मत एकमत हैं वही धर्म्म ईश्वरकी देन है। वही सच्चा और सनातन है। शेष यह सब अपनी अपनी खींचातानी है कि ईसा, मुहम्मद और श्रीकृष्णके विना मुक्ति नहीं मिल सकती।"

इतना कहकर महाराजने अतिथियोंसे पूछा, "क्या आप इसपर कुछ कथन किया चाहते हैं ?"

जोन्स महाशयने कहा—"आपका कथन ही ऐसा है कि इसपर कुछ कहते बन नहीं आता। जब आप इतने उदार और स्वतन्त्र विचार रखते हैं तो छूताछूत क्यों मानते हैं ? आपको हमारे साथ मिलकर भोजन करनेमें क्यों नकार है ?"

इसपर स्वामीजी बोले, "किसी मनुष्यके साथ खाने पीनेमें धर्म्मा-धर्म्म नहीं है। ऐसी सब रीतियाँ, देश और जातिके आचार-व्यवहारके साथ सम्बन्ध रखती हैं। वास्तविक धर्म्मके साथ, इनका कोई भी सम्बन्ध नहीं है। परन्तु सोच-विचारवाले सभी मनुष्य, आवश्यकताके बिना अपने देश और जातिके नियमोंको नहीं तोड़ते; उनके प्रतिकूल आचरण नहीं करते। आप ही बताइए क्या आप अपनी पुत्रीका विवाह किसी देशी ईसाईके साथ करनेको समुद्यत हैं ? क्या ऐसा कर देनेसे आपको प्रसन्नता होगी ?

उस योरुपीय महाशयने कहा, "हम ऐसा करनेके लिए कभी भी समुद्यत न होंगे !"

स्वामीजीने पूछा, "क्यों धर्म्म-विचारसे ?"

उन्होंने उत्तर दिया—"नहीं, अपनी जातिकी रीति-नीतिके कारण !"

तब फिर महाराजने कहा, "इसी प्रकार, हम भी अपने देश बन्धुओंके नियम और व्यवहारके कारण आप लोगोंसे सहभोज नहीं करते।"

यह सुनकर वह लोग सन्तुष्ट हो गये।

जोन्स महाशयने फिर निवेदन किया, "हिन्दुओंमें मूर्त्तिपूजा क्यों है ?"

स्वामीजीने उत्तर दिया, "आर्य्यों के धर्म्म और धर्म्मग्रन्थोंमें प्रतिमापूजन की आज्ञा नहीं है। इसके चलनेका कारण यह प्रतीत होता है कि पहले लोग अपने मृत महापुरुषोंकी मूर्तियाँ बनाकर घरोंमें रखते थे। उन्हें अपने पूज्य पुरुषोंका स्मारक-चिह्न समझते थे। कालान्तरमें उन्हीं प्रतिमाओंको वे प्रेमसे पूजने लगे। आपके मतमें भी लोग ईसा और मरियमकी मूर्तियाँ रखते हैं। इनका पूजन भी करते हैं। अविद्याकी वे बातें दोनों मतोंमें समान हैं।"

जोन्स महाशय अपने साथियों-सहित, स्वामीजीकी कथन-शैलीपर अति प्रसन्न हुए और प्रशंसा-पूर्वक हाथ मिलाकर चले गये।

फिर एक दिन कई पादरी महाशय स्वामीजीके निवास-स्थानपर पधारे। गो-रक्षापर बातचीत चल पड़ी। महाराजने जोन्स महाशयसे पूछा, "भलाई क्या है?" उसने कहा—"आप ही कृपा कीजिए।" तब स्वामीजीने कहा, जिस कर्म में अधिकाँश मनुष्योंका अधिक उपकार हो उस कर्मको मैं भलाई मानता हूं।" इस सिद्धान्तको जोन्स महाशयने भी स्वीकार कर लिया। तब फिर, महाराज ने बड़ी उत्तमतासे सिद्धकर दिखलाया कि 'गो-रक्षासे अधिकांश मनुष्योंको अत्यन्त अधिक लाभ होता है।"

उनके उपदेशको सुनकर जोन्स महाशयने गो माँस भक्षणके परित्यागका वहीं प्रण धारण कर लिया।

जिन दिनोंमें स्वामीजी दानापुर-निवासियोंको धर्म्मोपदेश प्रदान कर रहे थे, उन्हीं दिनोंमें वहांकी धर्म्म-सभाने चतुर्भुज पण्डितको अलीगढ़से बुला लिया, उसके व्याखयन भी होते थे। चतुर्भुज था बड़ा नटखट। उसने अपने व्याख्या-नोंमें स्वामीजीके विरुद्ध मुसलमानोंको भड़काना आरम्भ किया। दानापुरके आर्य्यजन उसकी चालोंकी ताड़ गये। उन्होंने स्वामीजीको भी संयत और सचेत रहनेकी प्रार्थना की।

एक दिन महाराज व्याख्यान समाप्त कर चुके तो कुछ लोगोंने आकर उन से निवेदन किया कि कुञ्जविहारी शाहके मकानपर चलिए। वहां पण्डित चतु-र्भुज भी आयगा। परस्पर मिलकर शास्त्रार्थके नियमोंका निर्णय कर लीजिए। स्वामीजी सहज स्वभावसे उनके साथ चल पड़े। आर्य्य पुरुष भी उनके साथ हो लिए। जब स्वामीजीने उस मकानमें प्रवेश किया तो वह पहलेहीसे पौरा-णिकों और मुसलमानोंसे ठसाठस भरा हुआ था। वे लोग गोलमाल करनेके लिए कटिबद्ध बैठे थे।

स्वामीजीने कहा—'चतुर्भुजजी कहाँ हैं ? उन्हें बुलाइए जिससे शास्त्रार्थके नियम नियत किये जायँ।"

चतुर्भुज बड़ा खुर्राट था। वह वहाँ नहीं आया। धर्म्म-सभाके मन्त्रीने उत्तर दिया कि आप हमहीसे बातचीत कीजिए। महाराजने फिर बलपूर्वक कहा कि चतुर्भुजके साथ मिलकर नियत निश्चित करनेके लिए मुझे आमन्त्रित किया गया है। उन्हींसे वार्त्तालाप होगा।

धर्म्म-सभाके मन्त्रीने परुषभाषामें कहा कि चतुर्भुजजी तो आपका दर्शन करना भी पाप मानते हैं। आपने जो कुछ कहना है हमींसे कहिए।

स्वामीजीने उत्तर दिया कि यदि मुझे देखनेसे वे पातकी बन जाते हैं तो बीचमें एक पड़दा तानकर उन्हें उसकी ओटमें बैठा दीजिए, पर बातचीत अवश्य कराइए।

उस समय रातके नौ बजे होंगे। ऐसे वादमें किसीने दीपक बुझा दिया फिर चारों ओर ताली बजने लगी। लोग ठट्ठा मारकर हँसने लगे। उनको इस प्रकार खिल्ली उड़ाते देख श्री माधोलालजी, कोपावेशमें आकर गर्जनापूर्वक बोले कि स्मरण रखिए, यदि आपने कोई छेड़-छाड़ की तो हम भी आपको यहाँ से जीता न जाने देंगे। उसी समय आर्य्य पुरुष महाराजको आगे करके वहाँसे चल पड़े। दुष्ट जनोंने श्रीमहाराजपर दो चार ढेले भी फेंके, परन्तु वे सकुशल स्वस्थानपर पहुंच गये।

पुराने दानापुरका रहनेवाला 'दुर्गा अवस्थी' ब्राह्मण महाराजके दर्शनोंको बहुत ही तरस रहा था। पर वह बिरादरीसे इतना डरता था कि श्रीसेवामें जाने का साहस नहीं कर सकता था। एक दिन वह सात घड़ी रात रहते उठकर वहाँ जा खड़ा हुआ, जिधरसे स्वामीजी अपने स्थानको लौटा करते थे, भगवान् निकट आ गये तो उसने श्रीदर्शनोंसे अपनेको निहाल हुआ माना। स्वामीजी गम्भीर गतिसे अपने आसनको चले आते थे और दुर्गा अवस्थी उनकी मनोमोहिनी मूर्तिको, अतृप्त लोचनोंसे निहारता पीछे पीछे चला आता था। कोठीके सीमा

द्वारपर पहुंचकर स्वामीजी ठहर गये और उससे पूछने लगे कि क्या आप कुछ पूछना चाहते हैं ? भक्तने पहले अपनी क्लेश-कथा सुनाई। फिर निवेदन किया कि, भगवन् ! मैं आपके परम पुनीत, पूज्य पद-पद्मोंकी पवित्र रज, अपने मस्तकपर रमाना चाहता हूं। अपार कृपासे इस तुच्छ जनको यह सौभाग्य प्रदान कीजिए। महाराजने उसे बहुत कहा कि ऐसी बातोंमें धरा ही क्या है परन्तु अन्तमें भक्तकी भावनाके वशीभूत होकर, भगवान्ने अपने चरणको उस के मस्तकके साथ छूआया। दुर्गा अवस्थी, श्रीचरणोंकी धूल अपने भालपर लगा कर, अति प्रसन्नतासे अपने गृहको चला गया।

एक रातका वर्णन है कि महाराज आधी रातके समय जाग पड़े और उठ कर इधर उधर चक्कर लगाने लगे। उनके पांवकी आहट सुनकर एक कर्म्मचारी की भी आँख खुल गई। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि स्वामीजी किसी बड़ी व्याकुलता और घबराहटमें घूम रहे हैं। उसने विनय की, "भगवन् ! यदि कोई वेदना है तो आज्ञा कीजिए। सेवक औषधोपचार करनेके लिए उपस्थित है। यदि आदेश हो तो वैद्यको भी बुला लाऊँ।"

उस समय, स्वामीजीने सुदीर्घ साँस लेकर कहा, "भाई ! यह बड़े वेगसे बढ़ती हुई वेदना, आपके औषधोपचारसे शमन होनेवाली नहीं है। यह वेदना भारतके परिश्रमी लोगोंकी दुर्दशाके चिन्तनसे, चित्तमें अभी उत्पन्न हुई है। ईसाई लोग कोलभील आदि भारत-वासियोंको ईसाई बनानेके लिए अपनी कल्पनाओंके ताने बाने तन रहे हैं। रुपया भी पानीकी तरह बहानेको कटिबद्ध हैं। परन्तु इधर आर्य्य जातिके भी पुरोहित हैं, जो कुम्भकर्णकी नींद पड़े सोते हैं। उनके कानोंपर जूं तक नहीं रेंगती। मैं अब यह चाहता हूं कि राजों महाराजों को सन्मार्गपर लाकर सुधार करूं। आर्य्य जातिको, एक उद्देश्यरूपी सुदृढ़ सूत्र में आबद्ध करूं।"

महाराज आगन्तुक जनके मनोगत भावोंको जाननेमें अति निपुण। थे एक शब्दके उच्चारणपर ही दूसरेकी लम्बी चौड़ी वार्त्ताका आशय जान जाना उनके

लिए एक साधारण बात थी। किसीके प्रश्नका एक शब्द सुन पानेपर उसके सारे प्रश्नका उत्तर देने लग जाते थे। इससे श्रोताजन बड़े विस्मयको प्राप्त होते। उनके सत्सङ्गमें आनेवाले प्रेमी जन इस बातका अनुभव करने लगते कि महाराजके विमल चित्त दर्पणपर, हमारे हार्दिक भावोंका अवश्यमेव प्रतिबिम्ब पड़ जाता है, जिससे वे हमारी बातके एक अंशको सुनकर सम्पूर्णका परिज्ञान प्राप्त कर लेते हैं।

एक प्रेमी पुरुषने प्रार्थना की, "महाराज ! अभ्यासमें मन लगानेका बहुत ही यत्न करता हूं, परन्तु इसके तरल तरङ्ग अभंग ही बने रहते हैं; सङ्कल्पविकल्प शान्त ही नहीं होते।"

स्वामीजीने व्यंगभावसे समझाया, "मन नहीं टिकता तो भाँग भवानीका एक लोटा और चढ़ा लिया करो।"

यह उत्तर सुनकर उसे बड़ा आश्चर्य्य हुआ। वह मन ही मन कहने लगा, कि स्वामीजीको तो 'स्थाली-पुलाक न्याय' से भी पता नहीं है कि मैं भाँग पीता हूं। फिर यह जान कैसे गये ? सच है सत्पुरुषोंके सामर्थ्यकी कोई सीमा नहीं पा सकता। महापुरुषोंका माहात्म्य अगम्य हुआ करता है। एक महाशयने एक दिन निवेदन किया—भगवन् ! उपासनामें चंचल चित्तको टिकानेके लिए किसी योग-क्रियाका उपदेश दीजिए।

स्वामीजीने व्यङ्ग वचनसे शिक्षा दी कि एक और विवाह कर लो, फिर चित्त आपही स्थिर हो जायगा। यह उत्तर सुनकर, वह मनुष्य अति लज्जित और विस्मित हुआ। लज्जा तो उसे इससे आई कि एक स्त्रीके जीते जी उसने दूसरा विवाह कर लिया था, और आश्चर्य इस लिए हुआ कि बिना बताये, महाराजको इसका ज्ञान हुआ तो कैसे हुआ।

महाराज सत्यको अति महत्त्व देते। सत्यपर ही सारे सुधारका निर्भर समझते। उनका निश्चय था कि जबतक किसी जन अथवा जातिमें सत्य नहीं आता

तबतक उसकी उन्नतिके दिन सुदूर ही रहते हैं। सत्यवादी मनुष्यके लिए वे अति प्रेम और सम्मान प्रदर्शित किया करते।

महाराज व्याख्यान-स्थानमें आते समय सबको नमस्ते कहा करते। मेल-मिलापके समय भी नमस्ते उच्चारण करते। उनके पास कोई कितना ही साधारण परिस्थितिका मनुष्य क्यों न जाता वे मुस्कराते हुए, पहले 'नमस्ते' कहा करते। उनके इस शिष्टाचारपर प्रेमीजन मोहित हो जाते थे।

महाराजमें निरभिमानता चरमसीमाको पहुंची हुई थी। उनमें अहङ्कारका लेश भी न था। एक बार एक भद्र पुरुषने उन्हें कहा—"भगवन्! आप तो ऋषि हैं।"

महाराजने उत्तरमें कहा, "ऋषियोंके अभावमें, आप लोग मुझे ऋषि कह रहे हैं। परन्तु सत्य जानिए, यदि मैं कणाद ऋषिका समकालीन होता तो विद्वानोंमें भी अति कठिनतासे गिना जाता।"

दानापुरमें धर्म-वृक्षको उपदेशामृतसे सिंचन करके, स्वामीजी महाराज कार्त्तिक सुदी चतुर्दशी १९३६ को वहाँसे प्रस्थान कर उसी दिन काशीधाममें सुशोभित हुए। काशी धाममें उनका यह शुभागमन सप्तम और अन्तिम था। पण्डित भीमसेनजीके नामसे एक विज्ञापन प्रकाशित हुआ और काशीके कोने-कोनेमें लगाया गया कि श्रीमद्दयानन्द सरस्वती महाराज, यहाँ पधारकर, विजयनगरके आनन्द उद्यानमें विराजमान हैं। वे मूर्ति पूजा और पुराणोंका प्रबल खण्डन करते हैं। इनको वेद-विरुद्ध सिद्ध कर दिखलाते हैं। जो पण्डित इनके सिद्ध करनेका सामर्थ्य रखता हो वह स्वामीजीके सामने आकर शास्त्रार्थ कर ले।

जब इस विज्ञापनपर किसी महामहोपाध्यायकी निद्रा न टूटी तो चौगुने बलसे दूसरा विज्ञापन निकाला गया। पण्डित लोग घरोंमें बैठे तो बहुतेरी डींगें मारते, परन्तु शास्त्रार्थ करनेका नाम तक न लेते। जैसे कदली-कुँजको कर्दन-मर्दन करने वाले कुञ्जर, केसरीकी गर्जना सुनकर चिंघाड़ते अवश्य हैं परन्तु बलके कारण नहीं, प्रत्युत भयसे, ऐसे ही शास्त्री जन स्वामीजीके सिंहनादसे

कम्पित होकर चिल्लाते तो बहुत थे, परन्तु उस नरसिंहके समीप जानेका साहस नहीं करते थे।

श्रीमान् कर्नल अल्काट और मैडम ब्लैवट्स्की, तीन चार साथियोंसहित श्री महाराजके दर्शन करनेके लिए मार्गशीर्ष सुदी २ सं० १९३६ को काशीमें आए। उनके आगमनके पश्चात् दूसरे दिन राजा शिवप्रसाद भी वहाँ आगए। स्वामीजीसे थोड़ी देरतक बातचीत करनेके अनन्तर, वे अल्काट महाशय और मैडमसे मिले।

श्री अल्काट और मैडम, श्रीमहाराजके सत्सङ्गमें बैठकर, ज्ञान-चर्चा और योग-वार्त्ताका आनन्द उपलब्ध किया करते थे।

स्वामीजीने जब देखा कि शास्त्रार्थके लिए तो काशीका कोई पण्डित समुद्यत नहीं होता, तो उन्होंने उपदेश देनेका विचार कर लिया।। पण्डित भीमसेनजी की ओरसे विज्ञापन निकाला गया कि मार्गशीर्ष सुदी ७ सम्वत् १९३६ को, बङ्गाली टोला अन्तर्गत पुत्री-पाठशालामें, श्रीमहाराजका व्याख्यान होगा और अल्काट महाशय भी भाषण करेंगे। व्याख्यानके विज्ञापनोंको देखकर, काशीके कुछ मनुष्योंने एक निन्दनीय नीतिका आश्रय लिया। उन्होंने कलेक्टर महाशयको जाकर कहा कि "यदि स्वामीजीका भाषण हुआ तो काशीमें शान्ति-भंग हो जायगी।"

जिन स्वामीजीके इने गिने सङ्गी-साथी थे; वे सारे नगरकी जन-संख्याके साथ लड़ भिड़कर शान्ति भंग कैसे कर देंगे, इसपर कुछ भी ध्यान दिये बिना, कलेक्टर महाशयने आज्ञापत्र लिखकर ठीक उस समय स्वामीजीके पास पहुं-चाया, जब वे पुत्री पाठशालाके द्वारपर पहुंचे। उसमें लिखा था कि काशीमें कोई वाद अथवा व्यख्यान न कीजिए।

कलेक्टर महाशयकी आज्ञापर 'पायोनियर' समाचार-पत्रने अपने पौष वदी २ सं० १९३६ के अङ्कमें जो टिप्पणी की थी उसका सारांश यह है:—हमें निश्चय था कि भारतके शासक जन किसीके धर्म प्रचारमें हस्तक्षेप नहीं करते।

दिल्लीकी घोषणाका भी यही सार-मर्म है। परन्तु आज यह बात विचारणीय है कि बृटिश शासनमें हमको धार्मिक स्वतन्त्रता है भी कि नहीं ? देखिए, एक मनुष्य जिसकी विद्यामें किसीको नतु-नच तक करनेका अवकाश नहीं है, वह लगातार पाँच वर्षों से नगर नगरमें चक्कर लगाकर वेदोंका प्रचार करता है। वह केवल एक परब्रह्मकी उपासना करनेका उपदेश देता है। उसने युक्ति प्रमाणोंसे सिद्ध कर दिया है कि सती होनेकी रीति और मूर्ति-पूजन वेद विरुद्ध हैं। जो, बुरी बुरी रीतियाँ आर्य्यावर्त्त और आर्य्यजातिको बिगाड़ रही हैं उनको वह हटाता है। वह अपने देश-वासियोंके सुधारमें रात-दिन लीन रहता है। आज जो भारतके युवकोंमें उन्नतिकी उच्चाकांक्षा पाई जाती है यह उसीके उपदेशोंका प्रताप है। वर्त्तमान शासनके विरुद्ध आन्दोलन करनेकी उसने कभी इच्छा नहीं की। उस ने तो अपने भाषणोंमें कई वार कहा है कि यह शोभा बृटिश राज्य ही को प्राप्त है कि किसीके मतमें विघ्न-बाधा नहीं डाली जाती। वह महापुरुष आर्य्य समाज का संस्थापक, आचार्य्य दयानन्द सरस्वती है।

उन्होंने काशीमें पधारकर विज्ञापनोंद्वारा धर्म्मका आन्दोलन उत्पन्न कर दिया। स्वार्थीलोग उसका विरोध करनेके लिए इतने तुले कि कलेक्टरको कह कर उनका व्याख्यान बंद करा दिया। इस बातकी व्याख्या करना व्यर्थ है कि एक योरुपीय मजिस्ट्रेटने, उनके व्याख्यान बन्द करके, एक भारी भूल की है। निस्संदेह, कलेक्टर 'वाल' महाशय विचारनेपर स्वयमेव अनुभव करें कि उन्होंने इस कार्य्यवाहीसे, इस युगके अत्यन्त विद्वान्, योग्य महात्माके हृदयको ठेस पहुंचाई है।

वाल महाशयकी उस आज्ञापर और भी अनेक पत्रोंने कड़ी समालोचना की और उनके कर्मको सर्वथा अनुचित ठहराया। अन्तमें किसी ऊपरी दबावसे अथवा अपने पिछले कियेको अनुचित जानकर, वाल महाशयने मार्गशीर्ष सुदी १४ सं १९३६ को स्वामीजीकी सेवामें पुलिसके इन्सपेक्टरको भेजकर सूचित किया, "अब आप अपने निश्चयानुसार धर्म्म-प्रचार करनेमें स्वतन्त्र हैं।

इसके पश्चात् वाल महाशय आप स्वामीजीसे मिले और अपने आज्ञापत्रके विषयमें कहने लगे, "यह सब कुछ आपकी रक्षाके निमित्त किया गया था। एक तो मुहर्रमके दिनोंमें आपका व्याख्यान देना, अपने जीवनको जोखिममें डालना था। दूसरे काशीके बहुत बड़े सम्भ्रान्त व्यक्तिने हमें कहा था कि यदि स्वामीजी व्याख्या देंगे तो अवश्य शान्ति भंग हो जायगी।

स्वामीजीने वाल महाशयसे कहा, "आप राजपुरुष हैं। प्रबन्ध करना आपका कर्त्तव्य है। जब आपको ज्ञात हुआ था कि कुछ लोग गड़बड़ करना चाहते हैं तो आप उन्हें डाँट बताते और व्याख्यान-स्थानपर पुलिसका प्रबन्ध करते। परन्तु आपने उलटा व्यानख्यान ही बन्द कर दिया!"

वाल महाशयने अपनी भूल स्वीकार की और आगेको सावधान रहनेका वचन दिया।

कहा जाता है कि प्रान्तीय गवर्नर महोदयने वाल महाशयसे उत्तर माँगा था कि 'तुमने स्वामीजीके व्याख्यान क्यों बन्द किये हैं?' व्याख्यानोंके मार्गकी रुकावट तो एक अठवाड़ेमें ही उठा दी गई थी, परन्तु श्रीमहाराज फाल्गुन सुदी नवमी सम्वत् १९३६ तक अपने स्थानपर ही सत्संग लगाते रहे। धर्म्माभिलाषी जन वहीं आकर आनन्द उठाते थे।

फाल्गुन सुदी दशमी सम्वत् १९३६ से लक्ष्मीकुण्डपर, साँझके सात बजेसे नौ बजेतक प्रतिदिन, महाराजके धुँआधार व्याख्यान होने लगे। इन व्याख्यानोंमें उन्होंने मिथ्यामूलक मन्तव्योंका बलपूर्वक खण्डन किया। चैत्र सुदी ६ जब व्याख्यान-माला समाप्त हुई तो उसी दिन आर्य्यसमाजकी शुभ कर दी गई।

महाराजके व्याख्यानोंसे एक बार तो काशी हिल गई थी। जहाँ वहाँ व्याख्यानोंकी ही चर्चा सुनाई देती। उपदेशोंमें पण्डित लोग दल कर आते, परन्तु शास्त्रार्थ और प्रश्नोत्तर करनेके लिए एक भी समुद्यत न

स्वामीजी अपने शिष्योंसे कहा करते थे कि "प्रथम शास्त्रार्थमें

भट्टाचार्य्यने बड़ी टेढ़ी चालसे काम लिया था। जो पुस्तक उन्होंने मेरे सम्मुख की वह हस्तलिखित थी और इसी प्रयोजनसे प्रस्तुत की गई थी कि पढ़ी ही न जाय। अबकी बार मैं ऐसी सुलज्जासे आया हूं कि कोई किसी कुटिल और कूट नीतिसे भी मुझे धोखा नहीं दे सकेगा। पण्डित लोग अपने विद्यार्थियोंके सामने मुझे सहस्रों गालियाँ देते हैं, परन्तु सामने आनेका नामतक नहीं लेते।"

एक दिन एक ब्राह्मने महाराजसे कहा—आप मूर्त्तिका खण्डन क्यों करते हैं? स्वामीजीने उत्तर दिया कि मैंने अपने सारे जीवनमें एक भी मूर्तिका खण्डन नहीं किया। हाँ, मूर्ति-पूजाका खण्डन तो प्रतिदिन करता हूं।

महाराजके कर्मचारियोंमें एक दिनेशराम लेखक था। वह ऊपरसे तो बड़ा भक्त बना रहता, परन्तु भीतरसे स्वामीजीके कार्य्योंमें जान बूझकर अशुद्धियाँ कर देता। स्वामीजीके सम्मुख, वह बड़ी चिकनी चुपड़ी बातें करता, पर उनकी पीठ पीछे, दूसरे कर्मचारियोंको कहता कि यह साधुड़ा हम लोगोंके हथकण्डों को क्या जाने? हम अपने चातुर्य्यसे इसके ग्रन्थोंमें ऐसी बातें मिला देंगे और इस प्रकार मिला देंगे कि उनका पता, इसे प्रलय-कालतक भी न लगेगा? अन्तमें दिनेशराम महाराजकी सूक्ष्म दृष्टिसे न बच सका। वह लेखकके कामसे पृथक् कर दिया गया।

स्वामीजीके कर्मचारी कई बात उनके मन्तव्यके विरुद्ध कर देते। विद्यार्थी जन कई बातें बार बार समझानेपर भी न मानते। महाराजने एक दिन सबको एकत्र करके कहा, "आप लोगोंके हृदयोंमें जो मेरे कथनोंका विश्वास उत्पन्न नहीं होता इसके अनेक कारण हैं, एक तो आपमें सचाईके लिए अधिक आदर नहीं है। दूसरे, आप सब, मिथ्या कथाओंसे प्राप्त किये अन्नसे पले हो। तीसरे आप लोग मृतकोंका आदर करनेवाले बन गये हो। यह भाव आपमेंसे उठ गया है कि जीवित पितरोंका श्रद्धा भक्तिसे आदर करना धर्म्म है।"

महाराजका एक कर्मचारी आनन्द उद्यानमें, एक दिन बेर तोड़ रहा था।

उन्होंने उसे देखकर पास बुलाया और शिक्षा दी कि उद्यानके स्वामीसे पूछे विना, आगेको कभी कोई फल न तोड़ना।

काशी नगरके कोतवाल महाशय स्वामीजीके भक्त बन गये थे। उन्होंने महाराजके रसोइएको कह दिया था कि जिस वस्तुकी आवश्यकता हो वह हमारे नामपर, दुकानसे ले आया करो! एक दिन कोतवाल महाशयने स्वामीजीसे निवेदन किया कि भगवन्! आज बुढ़वा-मङ्गलका मेला है। यदि उसमें चलें तो नौकाका प्रबन्ध कर दिया जाय। महाराजने उत्तर दिया कि जिस मेलेमें वेश्या-ओंके नृत्य और गीत होते हैं, वह बुढवा-मङ्गल नहीं किन्तु भड़वा मङ्गल है। ऐसे मलिन मेलेको देखना मैं कदापि उचित नहीं समझता।

कोतवाल महाशयने अति प्रीतिसे, महाराजके बैठनेके लिए एक गद्दी बन-वाकर उनकी भेंट की। एक शीतलपाटी भी श्रीचरणोंमें रक्खी। वे प्रतिदिन दर्शनार्थ आते थे।

एक दिन पण्डित हरिश्चन्द्रजी श्रीसेवामें उपस्थित हुए। उस समय स्वा-मीजी अल्काट महाशयसे अपना जीवन-चरित्र लिखवा रहे थे। वार्त्तालापमें श्री हरिश्चन्द्रजीने निवेदन किया—"महाराज! आपके खण्डन करनेसे लोगोंमें वैर-विरोध बहुत बढ़ता है।"

महाराजने अपने हाथोंको मिलाकर कहा—"मेरा उद्देश्य इस प्रकार लोगों को आपसमें मिलाना है। सकल समुदायोंको एकतामें लाना है। मैं चाहता हूं कि कोल-भीलसे लेकर ब्राह्मणपर्य्यन्त, सबमें एक ही जातीय जीवनकी जागृति हो। चारों वर्णके लोग एक दूसरेको अङ्ग-अङ्गी समझें। परन्तु क्या करें, सुधारके विना मिलाप होना असम्भव है। मेरा खण्डन करना हित और सुधारसे भिन्न और कुछ भी नहीं है।"

एक भक्तने स्वामीजीसे निवेदन किया—"भगवन्! जहाँ आर्य्यसमाज न हो वहां आर्य्य जनोंको अपने धार्मिक जीवनको परिपुष्ट बनाये रखनेके लिए क्या उपाय करने चाहिए?

महाराजने उपदेश दिया, "जब कोई आर्य्य एकाएकी हो तो उसे स्वाध्याय करना चाहिए। दो आर्य्य जन हों तो उन्हें परस्पर प्रश्नोत्तर और सम्वाद करना उचित है। यदि दो से अधिक आर्य्य एकत्र हों तो उनको चाहिए कि परस्पर सत्संग करें, किसी धर्म्म-ग्रन्थका पाठ सुनें सुनावें।"

स्वामीजी को खुली वायुमें बैठना मनोनीत था। जिस कोठरीमें बैठकर वे कार्य्य किया करते वह, कभी कभी, दर्शकोंकी भीड़से खचाखच भर जाती थी। ज्यों ही लोग वहांसे चले जाते महाराज, उसी समय, उसमेंसे उठकर बाहर टहलने लगते। कभी कभी घूमने भी चले जाते। रातके समय उनके शयनकी कोठरीमें दनों ओरकी खिड़कियां खुली रहतीं। पवनके गमनागमनका उनको बड़ा ध्यान रहता था। मुखपर वस्त्र डालकर वे कभी न सोते थे।

खुले स्थानमें बैठकर कार्य्य करना, एक आसन बैठकर घण्टोंतक काम करते चले जाना, नियत समयपर नियमित कार्य्य आरम्भ करना और उस दिन का निश्चित कार्य्य समाप्त करके ही उठना, उनके स्वभावका एक अंग था। वे नित्य प्रति नियत कालपर ही घूमने निकला करते और ठीक समयपर लौट आते। उनकी सारी दिनचर्याका मार्ग घड़ीकी सूइयोंके मार्गकी भांति नियमित था। शिष्टाचारमें, मर्यादापालन और रहन-सहनमें वे दृष्टान्तरूप थे। सकल सद्गुण समूहका समावेश श्री स्वामीजीके स्वभावमें पाया जाता था। वैसे तो वे बड़े सरल, कोमल और मृदु थे परन्तु स्पष्टवादितामें वे किसीका भी पक्षपात नहीं करते थे। सत्य भाषण में वे आदर्श-स्वरूप थे। उनकी वाणीमें लाग-लपेट की वासनातक नहीं होती थी। उनके चित्तमें दूसरोंके लिए बड़ा आदर था। आगन्तुककी आव-भगतमें, वे बचन-कंजूस कभी नहीं कहलाये। वे छोटे बड़े सबको सम्मान देते। बातचीतमें वे अति सौम्य और प्रिय लगते थे। सब दर्शक जन, अतृप्त और निर्निमेष नेत्रोंसे, उनकी मनोज्ञ मूर्त्ति को देखा किया करते। परन्तु जब वे धर्म्म-संग्राममें उतरते तो उनका तेज सूर्य्य समान हो

जाता था। उनकी ओर झांकनेसे वादियोंकी आंखे चौन्ध्या जातीं। उनको वे केसरी सदृश दिखाई देते।

काशी-वासमें, स्वामीजीने अनेक उत्तमोत्तम कार्य्यों के साथ साथ माघ सुदी २ सं० १६३६ को लक्ष्मीकुण्डपर, महाराज विजयनगरके स्थानमें वैदिक मुद्रणालय स्थापित करके, उसीमें अपनी पुस्तकें छपानेका पूरा पूरा प्रवन्ध भी कर दिया।

स्वामीजी महाराजने काशी-निवासमें, कई मासके लगातार सत्सङ्गसे वहाँ-वालोंको कृतार्थ कर दिया। तत्पश्चात् उन्होंने निर्घोषित कर दिया कि "बैशाख कृष्ण एकादशी १६३७ को हम यहांसे प्रस्थान कर जायेंगे, इस लिए जिस किसीको धर्म्म-चर्चा करनी हो और प्रश्न पूछने हों, वह उक्त तिथिसे पहले, हमारे स्थानपर आकर, अपने सन्देह मिटा सकता है।"

इतने मासमें किसको पूछने योग्य कुछ भी न सूझा। किसीको भी स्वामी-जीके कार्य्यों और ग्रन्थोंमें कोई भूल दिखाई न दी। जिस समय स्वामीजी के उपकरण रेलवे स्टेशनको जा रहे थे और वे आप भी चलनेहीको थे, उस समय राजा शिवप्रसादने पत्र पहुंचाया और कुछ प्रश्नोंके उत्तर माँगे!

यद्यपि राजा महाशयका यह कर्म घृणित था और उनके घमण्डको प्रकट करता था; फिर भी मान मत्सर-रहित, उस महापुरुषने राजा महाशयको लिख दिया कि मैं प्रस्थान करनेको समुद्यत हूं। आप यथासम्भव शीघ्र आइए और अपनी शङ्काओंका समाधान सुन जाइए। पर वहाँ आना जाना किसने था! वह तो उंगलीको लहू लगाकर वीर वन जानेवाली वात थी। राजा महाशयने तो जैसे तैसे अपना पाण्डित्य प्रख्यात करना था।

स्वामीजी देरतक शिवप्रसादजीकी प्रतीक्षा करते रहे। जब वे न आये और गाड़ीका समय हो गया तो वे, वहाँसे प्रस्थान कर, लखनऊ आगये। श्रीरामाधार और सरयूदयाल आदि सज्जनोंने, महाराजको नदीके किनारे, मोती महलमें ठहराया। एक दिन, उस स्थानकी मनोभाविनी शोभा देखकर श्रीरामाधारजीने कहा, "यदि ऐसा शोभाशाली, आर्य्य समाजका मन्दिर हो

तब आनन्द आवे।" इसपर महाराजने कहा, "ऐसा विशाल धर्म्म-मन्दिर मिलना, कोई दुर्लभ बात नहीं है। यह कोठी राजा दिग्विजयसिंहजीकी है। यदि आप उनको पक्का अर्य्य समाजी बना लें तो यही धर्म्म-मन्दिर बन सकता है। रामाधारजी! पहले मनुष्योंको प्रेमसे अपनाओ, आर्य बनाओ, फिर उनके सुन्दर स्थान आपहीके हो जायेंगे।"

श्रीरामाधारजीने एक दिन लम्बी साँस लेकर कहा—"भगवन्! आप इतना पुरुषार्थ करते हैं, परन्तु लोग पौराणिक लीलायें छोड़ते ही नहीं। उन्हीं लोगों में रहकर सुधार कैसे होगा? ये कहीं हमें भी तो न ले डूबेंगे?"

स्वामीजीने ढाढस बँधाते कहा 'ब्राह्मसमाजियों और ईसाईयोंकी भांति पृथक् होकर, सामूहिक जातीय जीवनकी मात्राको घटा देना हमारा उद्देश्य नहीं है। इन्हीं लोगोंमें रहते हुए अपने कर्त्तव्य कर्मको करते जाओ। वैदिक धर्म्मका प्रचार करो। ये लोग यदि विकट विरोध करें और आपसे घोर घृणा करें तो भी इनको अपनानेका प्रयत्न करो, परन्तु अपनी धर्म्म धारणासे एक उङ्गलीभर भी इधर उधर नहीं झुकना चाहिए। अन्तमें ये सब आपका रूप बन जायंगे। उतावलीसे कुछ मनुष्य आगे निकल सकते हैं, परन्तु शोभा सबको साथ लेकर आगे बढ़नेमें है।"

एक दिन, महाराज व्याख्यान देकर अपने आसनको जा रहे थे। उस समय उनके साथ सरयूदयाल आदि कई सज्जन थे। मार्गमें जराजीर्ण कलेवर वाली एक अति कृशा बुढ़िया मिली। उसके तनके सारे वस्त्र जर्जरित थे। महाराजको आते देख वह कातर स्वरसे कहने लगी, "बाबा! मैं कई दिनोंकी भूखी अनाथा हूं। मेरा पालन-पोषण करनेवाला कोई भी नहीं है। भगवान् तेरा भला करेगा। आजका अन्न तो दिला दे।"

उस वृद्धाके आर्त्तनादको सुनकर स्वामीजीके पाँव रुक गये। उसका दारुण दुःख देखकर उनका हृदय पसीज गया। वे आँखोंसे टप टप आँसू बरसाते अपने प्रेमियोंको कहने लगे, "कभी वह भी काल था जब भारतवर्ष सुवर्णमय

बन रहा था। यहां खाद्य पदार्थोंकी इतनी अधिकता थी कि भूखा अनाथ देखने को नहीं मिलता था। परन्तु आज यह समय है कि क्षुधावेदनाने इस बुढ़िया को इतना व्याकुल बना दिया है कि इसे यह भी विवेक नहीं रहा, जिससे मैं मांग रही हूं वह तो आप माँगकर निर्वाह करता है।" महाराजने उस वृद्धाको पर्याप्त अन्न दिला दिया।

जब महाराज लखनऊमें आए तब भी उनका स्वास्थ्य कुछ अच्छी अवस्थामें न था। वे जब सवेरे वायु-सेवन करके आसनपर आते तो दहीका मठा पिया करते थे। यह सेवा श्री रामाधारजीको ही प्राप्त थी।

बारहवाँ सर्ग।

लखनऊसे चलकर श्री महाराज वैशाख सुदी ११ सं० १९३७ को फरुखाबादमें पधारे और व्याख्यानोंसे लोगोंको कृतार्थ करने लगे। उनके आगमनके बहुत दिन पहले, कुछ एक उद्दण्ड लोगोंने मिलकर एक आर्य्य सभासद् को मारा पीटा था और अभियोग चलनेपर, उनको स्काट महाशयके न्यायालय से दण्ड मिला था। जब स्वामीजी यहाँ पधारे तो आर्य्य पुरुषोंने अपनी विजय का समाचार बड़े हर्षसे, उन्हें सुनाया। स्वामीजीने कहा, "हमने लोगोंके कठोर हृदयोंको कोमल बनाना है। दूर भागतोंको आकर्षित करना है। यदि वे अत्याचार भी करें तो अपने उदात्त उद्देश्यको दृष्टिमें रखकर, हमें तो उनसे प्रेमही करना चाहिए। धर्म्मके नामसे बदला लेनेकी भावना सर्वथा अभद्र है।"

स्काट महाशयने जब महाराजसे भेंट की तो प्रशंसा-वश कहा—"आपके एक सेवकको कुछ एक दुष्ट मनुष्योंने पीटा था। उन लोगोंको उचित दण्ड मिल गया है।"

स्वामीजीने कहा—'महाशय ! संन्यासी लोग तो प्राण घातकको भी पीड़ा पहुंचते देखकर प्रसन्न नहीं होते। इस आश्रममें अपने पराये सब समान समझे जाते हैं।" महाराजकी उदारतासे स्काट महाशय अतीव प्रसन्न हुए।

फरुखाबादसे चलकर श्री महाराज आषाढ़ वदी ६ सं० १६३७ को मैनपुरी पधारे और थानसिंहके उद्यानमें विराजमान हुए। यहाँ उनके तीन चार प्रभावशाली भाषण हुए। उनमें नगरके सभी सामान्य और मान्य लोग तथा कलेक्टर आदि राज-पुरुष आते रहे। उनके भाषण प्रत्येक हृदयपर अङ्कित होजाते थे। उनको सुनकर सब सज्जन मुक्त कण्ठसे प्रशंसा करने लगते थे। मैनपुरी में सहस्रों मनुष्योंको उपदेश-सुधासे सींचकर महाराज आषाढ़ वदी १४ सं० १६३७ को मेरठको प्रस्थान कर गये।

आषाढ़ सुदी १ सं० १६३७ को श्री स्वामीजीने मेरठमें पदार्पण किया और श्रीमान् रामशरणदासजीकी कोठीमें आसन लगाया। यहाँ उन्होंने एक एक दो दो सप्ताहकी अनेक व्याख्यान-मालायें दीं; जिनसे मेरठके अधिवासी जन कृतार्थ हो गये। एक दिन महाराजके व्याख्यानमें बहुतसे पण्डित, ईसाई और मुसलमान अपनी शङ्कायें लिखते जाते थे। परन्तु व्याख्यानकी समाप्तिपर सबने टिप्पणी पत्र अपने फाड़ डाले। जब उनसे ऐसा करनेका कारण पूछा गया तो उन्होंने बताया कि हमारी शङ्काओंके उत्तर व्याख्यानहीमें आ गये हैं।

महाराजकी, यह हार्दिक कामना थी कि किसी प्रकार मातृ-शक्तिका सुधार हो। स्त्रियोंमें भी धर्म्म-प्रचार और शुभ शिक्षा फैले। वे अपनी कुशाग्र बुद्धिसे इस सिद्धान्तके मर्मको जानते थे कि सन्तानोंमें नवजीवनकी नींव रखनेवाले हाथ माताओंके होते हैं। मीठी मीठी लोरियोंके साथ और पोली पोली थपकसे मातायें, पुत्रोंमें वे भाव भर देती हैं, जो किसी भी दूसरे स्थानमें प्राप्त नहीं हो सकते। जननियाँ जातिके जीवनकी वास्तविक जड़ हैं, सन्ततिको उन्नतिके उच्चतम शिखरपर ले जानेके लिए जगमगाती ज्योतियाँ हैं। परन्तु उन्हें कोई ऐसी आर्य्य-देवी नहीं दीखती थी, जो भारतकी भोली भाली बहिनोंकी शिक्षा-

दीक्षाका भार अपने ऊपर ले सके, जो स्त्री-जाति सुधारके लिए प्राणपणसे समुद्यत हो जाय।

महाराजका हृदय इसी ऊहापोह और विचार-परम्परामें परायण था कि एका-एक उनकी सेवामें श्री रमाके पत्र आने लग गये। वे पत्र पूज्यभावसे, आदर बुद्धि और भक्ति-विनयसे परिपूर्ण थे। श्री रमाने अपनी विनय-पत्रिकाओंमें जहाँ श्री-दर्शनोंकी तीव्र लालसा प्रकटकी वहाँ श्री आदेशको भी परिपालन करनेकी आशा दिलाई।

महाराजने अपनी अपार कृपासे रमाको दर्शन देना स्वीकार कर लिया। श्री रमाजी बड़े भक्ति-भावसे मेरठमें आईं और श्री दर्शनोंसे लाभ उठाने लगीं।

श्री रमाबाईजी एक महाराष्ट्र-ब्राह्मणकी पुत्री थीं। उनका संस्कृतपाण्डित्य प्रख्यात था। वे धारा प्रवाह संस्कृत भाषण करती थीं। उनके विचार कुछ स्वतन्त्रताको लिए थे। वे एक वङ्गीय कायस्थसे विवाह करना चाहती थीं। इस लिए बन्धु-बान्धवोंने उन्हें घरसे पृथक् कर दिया था। वे कलकत्तासे मेरठ आई थीं। उस समय उनके साथ एक नौकर, एक नौकरानी और एक बङ्गाली सभ्य था। सम्भवतः, वह वही भद्र पुरुष था, जिसके साथ वे विवाह करना चाहती थीं।

श्री रमाबाईजीके मेरठमें अनेक भाषण हुए।

उन दिनोंमें पण्डित भीमसेनजी, ज्वालादत्तजी, पालीरामजी और श्रीमान् ज्योति-स्वरूपजी आदि विद्यार्थियोंने महाराजसे वैशेषिक दर्शन पढ़ना आरम्भ किया। श्रीमती रमाजी भी पढ़ा करतीं। महारजकी पढ़ानेकी शैली अत्युत्तम थी, उनकी व्याख्या-पद्धति अपूर्व थी। श्री रमादि सभी पाठक उनकी पाठन-परिपाटीसे अति प्रसन्न होते। किसीका कैसाही संशय क्यों न हो पाठ पढ़ते ही पढ़ते दूर हो जाता।

महारजने श्रीरमाजीको उपदेश दिया, "इस समय आर्य्य जातिकी पुत्रियों की अवस्था अति शोचनीय है। ये संसार भरके भ्रमों और कुरीतियोंका केन्द्र

बन रही हैं। आप आजीवन ब्रह्मचारिणी रहकर उनका सुधार कीजिए। उनको शिक्षाका बीड़ा उठाइए। उनको दीन दशासे उभारिये। इस शुभ कार्य्यको आर्य्य-समाजकी पद्धतिपर चलाते, आपको धनकी, पर्याप्त सहायता प्राप्त होती रहेगी।" महाराजने उनको यह भी कहा, "आपके विना, मैंने आजतक सामने बैठाकर, किसी स्त्रीको उपदेश नहीं दिया। आपको सम्मुख बैठकर, उपदेश सुननेका अवसर केवल इसी लिए दिया गया है कि आप अद्वितीय विदुषी हैं। सम्भव है मेरे वचन सुनकर आप आजीवन ब्रह्मचर्य्यव्रत धारण कर लें और स्त्रीजातिके परोपकार-रूप, परम पुण्य कार्यमें, प्राणपणसे परायण हो जायँ।"

श्री रमाजीने विनीत निवेदन किया—"महाराज! गृहस्थ लोग भी तो उपकारका कार्य्य कर सकते हैं। उन्हें भी तो पुण्य-कर्म्मकी पूंजी उपार्जन करने का पुष्कल अवकाश मिल जाता है।"

इसपर स्वामीजीने कहा, "बन्धु-बान्धवोंके विविध बन्धनोंमें जकड़े पकड़े हुए जन परहितका उतना कार्य नहीं कर सकते, जितना कि एक ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणी कर सकती है। जो जन एक दो व्यक्तियोंको अपने प्रेमका केन्द्र बना लेते हैं, उनमें परहित-साधनकी मात्रा, सहजहीसे स्वल्प हो जाती है। उन्हें काम धन्धों से अवकाश ही नहीं मिलता। जब पुत्र पुत्री उत्पन्न हो जाते हैं तो उनके पालन पोषणका सोच-विचार पीछे लग जाता है। पति और पुत्र-पौत्र आदिका वियोग सारे सुखको निपट नीरस बना देता है। जब मनुष्य इस प्रकार गृहस्थीके गहरे गढ़में गड़ जाता है तो परोपकारके भाव, एक एक करके, भूलने लग जाते हैं। इस लिए रमा! आप अपने जीवनको परार्थ अर्पणकर दीजिए। महिला-मण्डल का मङ्गल कार्य्य साधित कीजिये।"

जैसे ज्वरावेशमें मनुष्योंको भोजनकी रुचि नहीं होती, ठीक वैसे ही, प्रारब्ध कर्म्मके प्रभावसे श्रीमती रमाके हृदयमें, महाराजके उपदेशोंको स्थान नहीं मिला। श्री रमा सारा जीवन ब्रह्मचर्य्य व्रतमें वितानेके लिए समुद्यत न हुई।

रमाजी, महाराजसे दूसरे दर्शन भी अध्ययन करना चाहती थीं। परन्तु

रमाजीने श्री उपदेश श्रवण किये और फिर कलकत्तेको प्रस्थान कर गईं। महाराजने उस देवीको, चलते समय, अपनी सारी पुस्तकोंकी एक एक प्रति प्रदान की।

स्वामीजी महाराज अपने प्रेमियोंमें बैठकर अपने पिछले जीवनकी बीती बातें भी सुनाया करते थे। एक दिन उन्होंने सुनाया कि एक स्थानमें हमारा भाषण सुनकर वहाँके कलेक्टरने कहा कि आपके भाषणपर यदि लोग चलने लग जायँ तो इसका यह परिणाम निकलेगा कि हमें अपना बदना बोरिया बाँधना पड़ेगा। मैंने कहा कि मेरा तात्पर्य्य आप सर्वथा नहीं समझे। मेरे कथनका सारांश यह है कि मूर्ख और पण्डितका वास्तवमें मिलाप नहीं होता। इस लिए जबतक भारतकी जनता सुशिक्षादि गुणोंसे आपके जोड़की न हो जाय तबतक परस्पर के सम्बन्धका सच्चा सुख नहीं हो सकता। इसपर कलेक्टरने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की।

अपनी यात्राओंका वर्णन सुनाते हुए महाराजने कहा, "आप लोग मेरे इस समयके दूर तक वायु-सेवन करने जानेपर आश्चर्य करते हैं; परन्तु अवधूत दशा में मेरे लिए, एक दिनमें, चालीस कोस चलना एक साधारण बात थी। एक बार मैंने गङ्गा-स्रोतसे चलकर, इस महानदीके किनारे किनारे, गंगा-सागर संगमतक की यात्रा की थी। गङ्गोत्तरीसे रामेश्वर तक भी मैं चलकर गया हूं।"

जपाराधनका वर्णन करते हुए महाराजने कहा, "बद्रीनारायणमें रह कर मैंने भगवती गायत्रीका जपानुष्ठान किया था।"

अध्ययन-कालकी कथा सुनाते वे कहा करते थे कि "जब कभी रातको पढ़ने के लिए तैल न मिलता तो मैं दुकानोंके दीवोंकी लोमें बैठकर पढ़ा करता।"

तपका वृत्त सुनाते वे कहते, "ग्रीष्मके भीषण उत्तापसे, तप्त तवेकी तरह संतप्त रेतपर मैंने कई दोपहर काटे हैं। तुषार-राशिमें परिणत, पर्वतोंके पाषाणों और गंगा-पुलिनपर, पौष-माघकी रातोंके पाले, नग्न, निराहार सहन किये हैं।"

शिब्बामल वैश्य, स्वामीजीका प्रेमी भक्त था। एक दिन, वह जब श्रीसेवा

में आया तो महाराजने कहा कि आज मार्गमें आपको साँप दिखाई दिया और आप डर गये थे। उसने आश्चर्यके साथ इस बातका समर्थन किया। जब वह उठकर जाने लगा तो उन्होंने उसे कहा कि छाता ले लिया होता तो पानी पड़ने पर, भीगनेसे तो बच जाते। शिब्बामलको उस समय तो वर्षाका कोई चिह्न दिखाई न देता था, परन्तु मार्गमें ऐसी वृष्टि हुई कि वह सड़कोंपर पानी लाँघता बड़ी कठिनतासे घर पहुंचा।

एक दिन कुछ भद्र पुरुषोंने स्वामीजीसे निवेदन किया, "आप यदि नीति से काम लें तो बड़ी सफलता हो।" स्वामीजीने उत्तर दिया, "यह नीति पहले ही मुझे बड़ी महँगी पड़ी है। अब मेरा इसमें विश्वास नहीं है। राजा जयकृष्ण-दासजी कहा करते थे कि इस बातके रखनेसे लोग प्रसन्न होंगे, उस बातके न छेड़नेसे अधिक सुभीता और सुविधा होगी। जयपुरमें शैवोंने कहा वैष्णवोंका खण्डन करदो तो हम आपके अनुयायी बन जायँगे। वे तो वैसे ही रहे; परन्तु अब, जयपुरमें जाकर जब, मैं शैव मतको असूलक वर्णन करता हूं तो वहाँके ठाकुर लोग, अपने गलेसे रुद्राक्षकी मालाका एक दाना दिखाकर कहते हैं कि यह भी तो आपने ही पहनाई थी। हम आपकी किस बातको सच्ची मानें?"

अलकाट महाशय और ब्लैवट्स्की महाशया शिमले जाते हुए, स्वामीजीके आदेशानुसार, मार्गमें मेरठ ठहर गये। उन दिनों परस्पर वैमनस्य बढ़नेके साधन उपस्थित थे। इस लिए, मिलकर इस विषयपर बातचीत की गई। वहाँ, यह स्थिर हुआ कि सुनी सुनाई बातपर विश्वास न किया जाय। भ्रम उत्पन्न करनेवाले विषयोंमें गुरुशिष्य परस्पर मिलकर, अथवा पत्र व्यवहारद्वारा निर्णय कर लिया करें।

कर्नल और मैडमने यह भी वचन दिया कि वे किसी आर्य्य सभासद्को अपनी सभाका सभासद् बनानेका यत्न नहीं करेंगे।

मेरठमें अमृत-वर्षा करनेके पश्चात् भादों सुदी द्वादशी सम्वत् १९३७ को महाराज वहाँसे चलकर मुजफ्फरनगरमें पधारे और श्रीमान् निहालचन्दके बह्-

लेमें ठहरे। वहाँ महाराजके उत्तमोत्तम उपदेश हुए। उनसे नगरवासियोंको बड़ा भारी लाभ हुआ।

लाला भगवानदास आदि अनेक सज्जनोंने श्री-चरणोंमें बैठकर प्रश्न किये और पूर्ण उत्तर पाकर अपनेको कृतार्थ हुआ माना। वे दिन श्राद्धोंके थे। स्वामीजीने अनुकूल समय ताककर, मृतक श्राद्धका बड़े बलसे खण्डन किया। इससे लोग अति प्रभावित हुए।

श्रीमान् निहालचन्दजीने प्रश्न किया, "भगवन्! एक मनुष्यने अपने जीवन कालमें प्रभूत धन एकत्रित किया। वह मरकर ऐसे वैसे जन्ममें चला गया है। उसके एकत्र किये धनको, यदि, उसके पुत्र-पौत्र श्राद्धादि शुभ कर्मोंमें लगाते हैं तो उस कर्मका उसको लाभ क्यों नहीं होना चाहिए?"

महाराजने उत्तर दिया, "अपने ही किये कर्मका फल मिलता है। यदि पीछे छोड़े अपने धनसे शुभ कर्मोंका फल माना तो पिता पितामहकी सम्पत्ति को पाकर, पुत्र-पौत्र जो घृणित दुष्कर्म करते हैं उनका पाप भी मृतक आत्माको ही लगाना चाहिए। अपने पुरुषाओंकी सम्पत्ति पानेसे पुण्य थोड़े जन ही करते हैं। अधिकांश तो पाप ही किया जाता है।"

एक भक्तने स्त्री-शिक्षाके विषयमें प्रश्न करते कहा, "लोग कहते हैं कि स्त्रियोंको पढ़ानेसे उनमें दुष्कर्म बढ़ जयँगे।" स्वामीजीने इसपर कहा," शिक्षाका परिणाम पाप हो तो पुरुषोंको भी अशिक्षित ही रहना चाहिए। अधिकांश पाप कर्म्म अपढ़ और कुपढ़ जन ही किया करते हैं। स्त्रियोंमें विद्याका विस्तार अवश्यमेव होना चाहिए।"

एक भक्तने पूछा, "महाराज! क्या अज्ञानकी निवृत्ति और ज्ञानकी प्राप्ती-हीसे सुख होता है।

उन्होंने उत्तर दिया कि "सुख दो प्रकारके होते हैं—एक विद्या-जन्य और दूसरे अविद्या-जन्य। विद्या-जन्य सुख ही सच्चा सुख है। यह सुख अज्ञान-

की निवृत्ति और ज्ञानकी प्राप्तिसे प्राप्त होता है। अविद्या-जन्य सुख तो पशु आदि जीवोंमें भी पाया जाता है।

जीव एकदेशी होनेसे अल्पज्ञ है। इसी लिए अज्ञानी हो जाता है। परमात्मा देश-कालसे ऊपर और सर्वज्ञ है। उसमें अज्ञानका लेश भी नहीं है। वह परमानन्दमय, आनन्दघन, परब्रह्म है।"

जिस मकानमें महाराज ठहरे हुए थे, उसमें एक दिन अकस्मात् एक भयङ्कर साँप निकल आया। महाराजने उसे तत्काल अपने विद्यार्थीसे मरवा दिया। मैडम ब्लैवट्स्कीने लिखा है कि वङ्ग देशके एक नगरमें महाराज भाषण दे रहे थे। उस समय एक मनुष्यने एक भीषण विषैला फणियर नाग उनके पाँवके पास फेंक दिया। महाराजने उस विषम विषधरके सिरपर अपने पैरकी एड़ी रखकर, उसे मसलते हुए कहा कि जिनके देवता इस दशामें कुचले जाते हैं उन भक्तोंकी दुर्गतिका तो ठिकाना ही नहीं है।

श्रीस्वामीजी मुजफ्फरनगरके अधिवासियोंको आत्मा-परमात्मा और धर्म्म कर्म्मके उपदेश सुनाकर फिर मेरठ लौट आये।

असौज वदी चतुर्दशी सम्वत् १९३७ को आर्य्य समाजका दूसरा वार्षिकोत्सव था। भगवान् उसीको शोभाप्रदान करनेके लिए पधारे थे।

उत्सवकी दोनों सायंको, महाराजके प्रभावशाली उपदेश हुए। उनमें, उन्होंने थियासोफीकल सोसायटीसे सावधान रहनेके लिए अपने शिष्योंको सचेत किया। मैडमके चमत्कारोंकी भी समालोचना की। स्वामीजीके दोनों दिनके, वे व्याख्यान, थियासोफिकल सोसायटीको आर्य्यसमाजसे पृथक् करनेके लिए घोषणारूप थे। इस विषयके परिपुष्ट प्रमाण मिलते हैं कि ब्लैवट्स्की महाशयाके व्यवहारसे ही वे ऐसा करनेके लिए बाधित हो गये थे।

थियासोफीके संस्थापकोंका स्वामीजीके साथ गहरा सम्बन्ध था। अल्काट महाशय और ब्लैवट्स्की महाशया महाराजको अपना गुरु मानते थे। उन्होंने, अपनी सब सभाओंका प्रधानाचार्य्य उन्हींको नियत किया था। सभाके सब

कार्य्यों पर, महाराजकी एक प्रकारकी अनुमतिसे, उनकी नामाङ्कित मुद्रा लगाई जाती और अल्काट महाशय उनकी स्थानापन्नतामें हस्ताक्षर किया करते। भू-मण्डलकी सारी थियासोफीकल सभायें आर्य्य समाजकी शाखायें समझी जातीं।

कालके चक्रपर चढ़ा हुआ यह सारा चराचर जगत् परिवर्तनशील है। भूत-लाकाशके सभी पदार्थ नित्य नये रंग बदलते हैं। ऐसी अवस्थामें, किसी मनु-ष्यके विचारोंका, मन्तव्योंका, कर्म्म-धर्म्मका, प्रणप्रतिज्ञाका, और सम्बन्ध साथ का परिवर्त्तित हो जाना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। महाश्चर्य तो स्थिर रहनेमें है। वहिरंग और अन्तरंगके प्रभावोंने, थोड़े ही वर्षोंमें उस गुरु-शिष्य और अङ्ग-अङ्गी सम्बन्धनको भी शिथिल कर दिया। आर्य्य समाज और थिया-सोफीकल सोसायटीका प्रेमबन्धन ढीला हो गया।

इस सम्बन्धके किरकिरा होने और अन्तमें टूट जानेकी उदार भावसे मी-मांसा करना उचित है। उसके कारणोंको जानना आवश्यक है। यह बात नि-स्सन्देह सच्ची है कि कर्नल अल्काट और मैडम ब्लैवट्स्कीने, महाराजके साथ, अमरीकासे जो चिट्ठी-पत्री की वह शुद्ध भावसे की। उन्होंने उस समय, अपने को श्री-चरणोंमें उच्च भक्तिभावसे समर्पित किया। परन्तु इसके साथ, हमें इस बातको भी लक्षमें रखना चाहिए कि श्री महाराज अँगरेजी नहीं जानते थे और अमरीका देश-निवासी वन्धु आर्य्य भाषा और संस्कृतसे अनभिज्ञ थे। उन्होंने परस्परके पत्र व्यवहारका द्वार हरिश्चन्द्र चिन्तामणि, मुम्बई निवासीको नियत किया। उस समय पश्चिमी सभ्यताकी चटकीली चाँदनी, भारत-भूखण्डपर चहुं ओर चमक रही थी। खान-पान रहन सहन, बोल-चाल और भाव-भेद आदिमें अनुकरण करनेका युग भर यौवनमें था। नव-शिक्षित समाज, अपने पूर्वजोंकी पद-पंक्तिपर पदार्पण करनेमें, अपमान मानता था। पुराने इतिहास और स्मार्त्त धर्म्मसे लोग नाक-भौं सिकोड़ते थे। उन्हें प्रत्येक पुरानी रीति-नीति और चाल ढाल घृणा योग्य और अदर्शनीय दीखती थी। ऐसे समयमें पश्चिमी पण्डित के मुखसे आर्य्य धर्म्म-कर्म्मकी प्रशंसाके शब्द सुनना अतिशय सौभाग्य समझा

जाता। उन लोगोंकी थोड़ी सहानुभूति भी महामूल्यवती मानी जाती। इस दशामें, ऐसे युगमें और ऐसी परिस्थितिमें, यदि हरिश्चन्द्रजीने यह समझा हो कि अल्काट महाशय और मैडम ब्लैवट्स्की, वेदको वैसे तो मानते हैं ही, अवान्तर बातोंके भेद आप ही मिटजायंगे; उनके यहाँ आने, आर्य्य रीति-नीतिका पक्ष-पोषण करने, और प्रशंसित स्वामीजीको गुरु मान लेनेसे आर्य्यों का बड़ा प्रभाव पड़ेगा; इत्यादि विचारोंसे उभय पक्षके छोटे छोटे भेदोंको उन्होंने दृष्टि से ओझल कर दिया हो तो कोई आश्चर्य नहीं है। भाग-त्याग लक्षणासे काम लेते हुए, कुछ एक भेद-मूलक मन्तव्योंको मिलन-मूलक मान लेना उस समय सम्भावित था। कुछ भी हो, यह मानना पड़ता है कि सुदूरदेशस्थ बन्धुओंको समझने समझानेकी कुछ एक बातें, बीचमेंही गुप्त लुप्त अवश्य हो गईं।

स्वामीजी, अल्काट तथा मैडमके परस्पर साक्षात्के समय भी, दुभाषियोंसे काम लिया जाता था। दुभाषिया बनाना बड़ी निपुणताका काम है। अधुरे दुभाषिये बहुधा एकका कथन जब दूसरे मनुष्यको समझाने लगते हैं तो झटपट सारांशपर दौड़ जाते हैं। छोटी मोटी बातका भाषान्तर न करना उनके लिए कोई बड़ी बात नहीं है। अपनी टीका-टिप्पणियोंका रङ्ग चढ़ानेका चस्का उनको भी हुआ करता है। इस दूसरे साधनमें भी कई भूलोंका हो जाना सम्भावित है। थियासोफीकल सोसायटीके, आर्य समाजसे वियुक्त हो जानेका यह भी एक कारण है कि अल्काट और ब्लैवट्स्कीने भारत और भारत-वासियोंके विषयमें न जाने, कैसे कैसे मनोनीत चित्र अपने चित्तमें खींच रक्खे होंगे। वे लोग यहाँके वासियोंको देवतुल्य मानते होंगे। परन्तु यहां आकर उन्हें पता लगा होगा कि भारतके अधिकांश आर्य अपने परम सुधारक और आदर्श संस्कारक महापुरुषके विरुद्ध हैं। हमारे पास भी स्वामीजीके विपरीत बोलते हैं। अधिक जन-संख्या सुधारके प्रतिकूल हैं। स्वामीजीके साथ लगे रहनेसे हमारी सर्वप्रियतामें बट्टा लग जायगा। इसलिए उनसे कुछ पीछे हटा रहना चाहिए।

यहाँ आकर, उनके लिये यह जानना अति सुगम था कि भारतवासी जिस

किसीके पीछे चलनेके लिए समुद्यत हैं। आर्य समाजसे पृथक् होजानेसे, सहस्रों कुलीन ब्राह्मण उनका भी चरण-चुम्बन करने लगेंगे। भारतकी भ्रमभरी, भोली प्रजाको अपना शिष्य बनाना बड़ा सहज काम है।

हमारा यह भी निश्चय है कि राजा शिवप्रसाद आदि, स्वामीजीके कट्टर विरोधी लोग और अन्य पक्के पौराणिक प्रतिष्ठित पुरुष, महाराजके विरुद्ध मैडम और कर्नलके कान दिनरात भरते थे। स्वामीजीका साथ छोड़नेके लिए सम्मति देते थे। आर्य्य-समाजसे पृथक् हो जानेकी प्रबल प्रेरणा करते थे।

मैडम ब्लैवट्स्की और महाशय अल्काट आर्य्य समाजके सभासदोंको भी अपनी सोसायटीमें मिलाने लग गये थे। इसको स्वामीजीने अत्यन्त अनुचित समझा।

उपर्युक्त कारणोंसे गुरुदेव और शिष्योंमें दिनोंदिन मनोमालिन्य बढ़ताही गया। इसी मनमुटावको मिटानेके लिए स्वामीजीने मैडम और महाशयको शिमले जाते हुए, मार्गमें मेरठ ठहरनेके लिए आमन्त्रित किया। वे ठहरे भी, परन्तु भेदकी वेलका विषैला अंकुर उखड़ न सका।

मैडमके पत्रसे आर्य्य समाज और थियासोफीकल सोसायटीके संगभंगका कारण, एक यह भी प्रतीत होता है कि थियासोफीकल सभामें राजपुरुष सम्मिलित होने लग गये थे। सभा आर्य्य समाजकी शाखा थी। स्वामीजी सभाके प्रधान आचार्य्य और आर्य्य समाजके हर्त्ता-कर्त्ता थे। राजपुरुष तन्त्र-शासनके कुछ एक अधिकारी लोग, ऐसी दशामें, सभामें सम्मिलित होनेमें किन्तु-परन्तु करते होंगे। उनकी ऐसी धारणाका वर्णन मैडमने स्वयं किया है।

स्वामीजी महाराज मैडमके चमत्कारोंका समर्थन नहीं करते थे। एक तो वे उनके चमत्कारोंको योगकी सिद्धियां नहीं समझते थे। दूसरे वे सिद्धियाँ दिखाना उचित नहीं मानते थे। इससे भी मैडम अपने मनमें रुष्ट रहा करती थीं।

ऊपरके सारे कथनका सार-मर्म यह है कि मैडम और महाशयने स्वामीजी को जिस समय गुरु माना, जब उनकी सेवामें विनय-पत्रिकायें भेजीं और जब

वे भारतमें पधारे तो उनके भाव निर्दोष थे। उनका हृदय भक्ति-भावसे भरपूर था। वे सच्चे मनसे महाराजके शिष्य थे। परन्तु भारतमें आनेके पश्चात् बाहर की परिस्थितिने उनमें परिवर्त्तन उत्पन्न कर दिया। एक दूसरेके भावोंको समझनेमें भी त्रुटियाँ रह गईं।

स्वामीजीने अपने हाथसे लगाए हुए पौधेको सभाके सिरपरसे न्योछावर कर देना उचित नहीं समझा। उन्होंने अपने पश्चिमी शिष्योंसे, समाज रक्षण को प्रधानता दी। थियासोफीकल सभाके प्रधानाचार्य्य पदकी अपेक्षा आर्य्य समाजियोंको सब कुछ बनाकर, आप कोई पदवी ग्रहण न करना उत्तम माना। महाराजने, ठीक समयपर घोषणा द्वारा, आर्य्य पुरुषोंको सूचित कर दिया कि आर्य्य समाज और कर्नल तथा मैडमकी थियासोफीकल सभाका सम्बन्ध-सूत्र विच्छेद किया जाता है।

आर्य्य समाज और सभाके संग-भंगके कारण, नीचे दिए पत्रोंसे भलीभांति प्रकट हो जायंगे। ये पत्र श्रीमती परोपकारिणी सभाके मन्त्रीने एकत्र कर कार्तिक सुदी १ सम्वत् १६४६ को 'परोपकारी' नामक पत्रमें छपवाये थे।

मैडम महाशयका पत्र

बाबू छेदीलाल महाशयके नाम।

शिमला।

अक्टूबर सन् १८८०

"मेरे प्यारे बाबूजी,

यह चिट्ठी जो मैं आपको लिख रही हूं आपकी अपेक्षा स्वामीजीसे अधिक सम्बन्ध रखती है। मुझे इसका निश्चय नहीं है कि स्वामीजीके पास योग्य और विश्वास-पत्र अनुवादक हैं। इस लिए मैं आपसे प्रार्थना करती हूं कि आप इस का अनुवाद स्वामीजीके पास यथासम्भव शीघ्र भेज दीजिए।

आप हमारे मित्र हैं और मेरा आपपर अन्य आर्य्य समाजियोंकी अपेक्षा अधिक विश्वास है।

यदि आप आर्य्योंकी बात अपने जीमें ऐसी ही समझते हो जैसी कि मैं थियासोफीको समझती हूं तो आप इसको अतीव सावधानीसे पढ़ेंगे और जब स्वामीजीका उत्तर आयेगा तो मेरे पास भी भेज देंगे।

बिदाईके समय स्वामीजीने यह वचन कहा था कि आप इस समय यह प्रतिज्ञा करो कि जब कभी कोई मनुष्य आपके पास आकर कहे कि स्वामीजीने आपके और आपकी सभाके विरुद्ध ऐसा कहा है, या ऐसा किया है तो आप मुझे उसकी तुरन्त सूचना देंगे, जिससे मुझे इस बातका अवसर मिल जाय कि मैं अपनी ओरसे आपके जीमें अन्तर न पड़ने दूं। मैं भी आपके साथ इसी प्रकार वर्त्ताव किया करूंगा।

मैंने स्वामीजीके इस कथनको स्वीकार कर लिया था और अब वही समय सम्मुख उपस्थित हुआ है।

मैंने उनसे यह प्रतिज्ञा भी की थी कि यदि कोई मनुष्य आकर मुझसे ऐसी बातें करेगा कि जिससे हमारे और उनके बीच मेल मिलापके स्थान शत्रुता उत्पन्न हो जाय तो मैं जब तक स्वामीजीके मुखसे न सुन लूंगी उस बातपर कभी विश्वास नहीं करूंगी। अब भी आगेको ऐसा ही करूंगी। पर इस वर्त्तमान विषयमें न तो मुझसे किसीने कुछ कहा है और न ही यह सुनी सुनाई गप्प है। मैं जानना चाहती हूं कि स्वामीजी इसका क्या उत्तर देते हैं।

मेरठ आर्य समाजका दूसरा वार्षिकोत्सव अभी मनाया गया है। उसमें अन्यान्य आर्य्य समाजोंके सभासद सम्मिलित थे। ऐसे समयमें स्वामीजीने अपने व्याख्यानमें सबके सामने ये विचित्र वचन कहे कि 'जब किसी अन्य सभा-समाजके सभ्य आर्य्य समाजियोंको अपनी सभामें भरती होनेके लिए प्रेरणा करें तो उन्हें यह उत्तर देना चाहिए कि यदि आपकी सभाके नियम और उद्देश्य आर्य्य समाजके साथ मिलते हैं तो उसमें सम्मिलित होनेसे कोई लाभ नहीं है। यदि वे कहें कि हमारे नियम आर्य्यसमाजोंके नियमोंसे भिन्न हैं तो आर्य्य समाजियोंको उन्हें यह उत्तर देना चाहिए कि आर्य्य समाजके नियम अखण्डित

हैं। जिस सभाके नियम खण्डित हैं उसमें मिल जानेकी हमें आवश्यकता नहीं है।

यथार्थमें रोमका अभ्रान्तशील पोप इससे अधिक और क्या कहता है। स्वामीजी गर्वित ब्राह्मणोंके दम्भके विरोधी हैं। उनके कहनेका यह तात्पर्य कदापि न होगा।

उन्होंने यह भी कहा था कि अन्य देशियोंके समाजमें वैसी मित्रता और स्नेह नहीं हो सकता जैसा कि एक ही मत और देशके आर्य सभासदोंमें है।

उन्होंने दूसरे दिन कहा कि 'थियोसोफीकल सभाके सदस्य आर्यसमाजियों को अपनी सभामें मिलानेका उद्योग करते हैं। आर्य समाजियोंको चाहिए कि ऐसा अवसर आ पड़नेपर उन्हें वहीं उत्तर दें जो मैंने पिछली रात बताया था। थियोसोफीवालोंको ऐसा करना उचित नहीं है,।

उनके उक्त कथनका क्या अर्थ है ? हमने आपके बिना अन्य किसी भी आर्य्य समाजीको अपनी सभामें मिलानेका प्रयत्न नहीं किया। हाँ, मुम्बई, लाहौर और दूसरे नगरोंके आर्य्यसमाजी हमारी सभाके सभासद हैं। परन्तु उन को सम्मिलित होनेके लिए हमने कभी नहीं कहा।

हमारे नियमोंमें आर्य्यसमाजसे केवल इतनी प्रतिकूलता है कि हम प्रत्येक सभ्यके धर्म्मकी प्रतिष्ठा करते हैं। प्रत्येक मतावलम्बीको, चाहे वह आर्य समाजी हो, ईसाई हो अथवा मूर्तिपूजक हो, हम सभामें मिला लेते हैं। हम अपने सभासदोंके मत और धर्म्मके विरुद्ध कभी हस्तक्षेप नहीं करते। स्वामीजी स्वमतवादी हैं। जो धार्मिक विचार उनके हैं वे ही आर्यसमाजियोंके हैं। और यह सभासद होनेका आवश्यक नियम है। हम तो स्वामीजी और प्रत्येक सामाजिकको अपना मुख्य भाई समझते हैं।

उनके थियासोफी सभामें मिलनेमें कोई बात बाधक नहीं हो सकती। यहाँ तक कि स्वामीजी ढाई वर्षसे हमारे सबसे उत्तम सभासदोंमेंसे एक हैं। वे हमारे बहुतसे अङ्गरेज और अमरीकाके सभासदोंके गुरु हैं। मैं ईश्वरको कर्त्ता-धर्त्ता नहीं मानती हूं, इसलिए आपके समाजमें भरती नहीं हो सकती; तो बताइए कि वह भ्रातृ-भाव, जिसमें अधिक लाभ है, किनमें अधिक

हुआ ? सबसे मुख्य और गौण भ्रातृ-भाव कौनसा है ? क्या वह है जिस में सब मनुष्य भरती हो सकते हैं अथवा वह है कि जिसमें थोड़ेसे मनुष्योंका ही बन्धु प्रेम और रक्षण हो सके ? स्वामीजीके उक्त वाक्य विचित्र हैं और एक प्रकारसे हमारी ओरसे उनके हृदयमें भेद डालते हैं।

अबतक मैं जानती थी कि सब सामाजिक और हमारी सभाके सभ्य, आपस में, भाई हैं। जबसे हमारा मिलाप स्वामीजीसे हुआ है इस बातका अधिक प्रचार उन्होंनेही किया है। इसी विषयके पत्र भी उन्होंने आर्य्यसमाजोंको लिखे थे।

हमारे लण्डन और अमरीकाके सभ्य आर्य्यसमाजियोंको अपना भाई मानते हैं परन्तु जो अङ्गरेज हिन्दुस्थानमें हमारे सभासद् हैं वे ऐसा नहीं समझते। जो अङ्गरेज हमें यहाँ मिले हैं, विशेषतया वे प्रधान जन जो शिमलेमें हैं, वे कहते हैं कि थियासोफी-सभाके सदस्योंके साथ चाहे वे अङ्गरेज हों अथवा हिन्दुस्तानी, हम भ्रातृ-भावसे वर्तनेको समुद्यत हैं। परन्तु वे यह भी कहते हैं कि स्वामीजीके अनन्तर आर्य्यसमाजियोंके साथ वैसाही वर्ताव करनेका हमें कोई दृढ़ हेतु नहीं दीखता। स्वामीजीके साथ भ्रातृ-भावसे वर्ताव करनेका यह कारण है कि वे बहुतसे योरुप-वासी भाइयोंके गुरु हैं। ये शब्द कल मुझे एक नवीन सभासद्ने कहे थे। वह पुरुष सैनिक समाचारके कार्य्यालयका प्रधान है।

इसी हेतुसे मैंने आपको, और एक दो अन्य सज्जनोंको सभामें भरती होने की सम्मति दी थी।

रही यह बात कि आर्य्य सामाजिक हमसे मिलें अथवा न मिलें—इसकी हमें परवाह नहीं है। इसमें उन्हींकी और कदाचित् समाजोंकी हानि है।

पुलिसके सबसे बड़े अधिकारी, हँडरसन महाशय सभामें सम्मिलित हुए हैं। इससे हमारा अभीष्ट सर्वथा सिद्ध हो गया। हमारी सभामें सम्मिलित होते उन्होंने कहा कि मैं इसमें इस लिए मिलता हूं कि इससे बड़े बड़े लाभ पहुंचे हैं। आप और अल्काटने अठारह मासमें वह बात प्राप्त कर ली है, जो हम अङ्गरेज बहुत वर्षोंसे भी नहीं कर पाये। उन्होंने यह भी कहा कि हिन्दु-

स्तानियों और अङ्गरेजोंके बीच जो खाई है उसे आप भर रहे हैं। आपके कारण हम उनकी अधिक प्रतिष्ठा करने लगे हैं और वे हमसे घृणा छोड़ रहे हैं। वे हमारे कामकी प्रतिष्ठा करते और श्रेष्ठ समझते हैं। मुझे आशा है कि जैसे उनके विचार हैं वे वैसा ही कर दिखलायंगे। परन्तु जब स्वामीजीका प्रसंग चला तो उन्होंने भी यह कहा कि थियासोफीके समान स्वामीजीकी सम्मति नहीं है। उनके विचार अनिषेधक और उदार नहीं दीखते। आर्य्यसमाज ईश्वरको हर्त्ता-कर्त्ता माननेवालोंका एक जत्था है। ऐसी दशामें हम उनको भाइयोंके सदृश क्यों जानें ?

उपर्युक्तसे अब आप विचार सकते हैं कि थियासोफी-सभामें भरती होनेसे आर्य्यसमाजियोंको हानि है अथवा लाभ। उनको लाभ अवश्य है और ऐसा आप देखेंगे भी। परन्तु यह नहीं सिद्ध होता कि हमने स्वामीजीके सामाजिकोंको कभी भरती करनेका उद्योग किया है। हमने तो कभी ऐसा नहीं किया। इस हेतुसे वे चाहे, थियासोफीमें न भी मिलें पर वे हमारे भाई हैं। स्वामीजीने अपने शब्दोंद्वारा आर्य्यसमाजिकोंके चित्त प्रायः हटा दिए होंगे। अस्तु, इस विषयमें उनको अधिकार है।"

थियासोफी—सभामें बहुतसे अङ्गरेजोंके मिलनेका वर्णन करती हुई मैडम लिखती हैं—

"इस पत्रका उलथा करके स्वामीजीको भेज देना। मैं जानना चाहती हूं कि वे इस प्रश्नका क्या उत्तर देते हैं। हम परस्पर मित्र रहेंगे अथवा अकस्मात् शत्रु बन जायंगे ? चुन्नालालको मेरी ओरसे प्यार करना। शिवनारायण और दूसरोंको मित्र भाव।

(हस्ताक्षर) एच० पी० ब्लैवट्स्की।

ऊपरके पत्रका स्वामीजीने यह उत्तर दियाः—

"एच० पी० मैडम ब्लैवट्स्कीजी आनन्दित रहो।

आपकी चिट्ठी ता० ८ अक्तूबर १८८० की लिखी हुई बाबू छेदीलाल, रईस

मेरठ-द्वारा मेरे पास देहरादूनमें पहुंची। उसका क्रमानुसार उत्तर सत्य निश्चयसे देता हूं। आपके जो पत्र अमरीकासे मेरे पास आये और उनका जो उत्तर मैंने दिया, तथा सहारनपुर, मेरठ, काशी और फिर मेरठमें जो आपका मिलाप हुआ, उन सबके अनुसार और अपने निश्चयके अनुकूल मैं सदा व्यवहार करता हूं। परन्तु आपका व्यवहार वैसा दृष्टिगोचर नहीं होता। प्रथम आप लोगोंने जैसा लिखा था, जैसा समागममें प्रथम विदित किया था उसके अनुसार आप का वर्त्ताव अब कहाँ है?

वे पत्र छपाकर प्रकाशित कर दिए गए हैं, जिनमें आपने लिखा था कि हम संस्कृत अध्ययन करेंगे और अपनी सभाको समाजकी शाखा बना देंगे। जो पत्र मैंने आपके पास भेजे थे उनकी नकल भी मेरे पास है। देखिये, थोड़े दिन हुए जब आपसे मेरठमें आर्य्यसमाज और थियासोफी-सभाके विषयमें बात चीत हुई थी। उस समय मैंने सबके सामने क्या आपसे नहीं कहा था कि समाजके नियमोंसे सभाके नियमोंमें कुछ भी विशेषता नहीं है? यही बात मैंने मुम्बईमें भी पत्रद्वारा सूचित की थी। वैसेही मैं अब भी मानता हूं कि आर्य्यसमाजस्थोंको धर्म्मादिक विषयोंके लिए सभामें मिलना उचित नहीं है। यही बात आपने और अल्काट महाशयने अपनी पुस्तक 'उपदेश और सम्वाद' में नहीं लिखी? क्या यह नहीं कहा कि सत्य धर्म्म, सत्य विद्या, यथार्थ सुधार और परमोपयोगकी बातें जैसी आर्य्यावर्तीय मनुष्योंमें सदासे चली आई हैं वैसी कभी कहीं नहीं थीं और न अब हैं?

अब विचारणीय विषय यह है कि ऐसी दशामें थियासोफीवालोंको आर्य-समाजमें मिलना चाहिये अथवा आर्यावर्त-वासियोंको उस सभामें। देखिए, मैंने अथवा किसी आर्यसभासद्ने आजतक किसी भी थियासोफिस्टको आर्य-समाजका सभासद् बनानेका यत्न नहीं किया। आप अपने आत्मामें विचारिये कि आपने क्या किया और क्या कर रहीं हैं।

आपने कितने ही आर्य्य समाजियोंको अपनी सभामें भरती होनेके लिए

प्रेरणा की। कई सज्जनोंसे सभासद् बननेका दस रुपया चन्दा भी लिया। मेरठके वार्त्तालापके अनन्तर भी क्या अपने बाबू छेदीलालको अम्बालेमें प्रेरणा नहीं की? शिमलेसे उनको ऐसा पत्र नहीं भेजा? इन्हीं कारणोंसे मैंने मेरठ-आर्य्यसमाजके उत्सवपर अवश्य कहा था कि यदि आपको मैडम अथवा महाशय वा कोई अन्य थियासोफिस्ट और ऐसे ही किसी दूसरी सभाका सभासद् अपनी सभामें भरती होनेके लिए कहे तो उसे यही उत्तर दीजियेगा। यदि आर्य्य समाजके नियमों और उद्देश्योंके समान ही थियासोफी आदि सभाओं-के नियम हैं तो हम और आप एक ही हैं; और यदि नियमोंमें भेद है तो मिलनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। जबतक आर्य्य समाजके नियमोंमें कोई बात खण्डनीय सिद्ध न होजाय तबतक वे अखण्डित हैं।

अब बताइए कि निर्भ्रान्त पोपकी भाँति मेरे कथन हैं अथवा आपके?

अन्य देशियोंके समाजमें मित्रता और स्नेह वैसा कभी नहीं हो सकता, जैसा कि स्वदेशियोंके समाजोंमें होता है—यह बात मैंने उस समय कही थी, अब कहता हूं, और आगेको भी कहूंगा। परन्तु ऊपरकी बात मैंने जिस प्रसंगपर कही थी वह यह है कि 'असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे'। अर्थात् जिनका देश एक है, भाषा एक है, जन्म और सहवास एक है, जिनके विवाहादि सम्बन्ध परस्पर होते हैं, उनको परस्पर जितना लाभ होता है, उनकी जितनी परस्पर प्रीति होती है, उतना लाभ और उन्नति भिन्नदेशवासियों-को भिन्न-देशवासियोंसे नहीं हो सकती। देखिये, केवल भाषाका ही भेद होनेपर मुझको और योरुपीय महाशयोंको परस्पर उपकार करनेमें कितनी कठिनता होती है।

दूसरे दिन भी मैंने उन्हीं बातोंको दुहराया था; क्योंकि रोगीके रोगका निदान करना और उसे औषध-पथ्य देना आवश्यक है।

हम थियासोफी-सभाके सदस्योंको आर्य्य समाजका अवयवभूत शाखस्थ भ्रातृ-मण्डल मानते आये हैं और जहाँतक बन पड़ेगा भविष्यमें भी ऐसा ही

मानेंगे। उनको आर्य्य समाजमें मिलाने और दस रुपये चन्दा लेनेका यत्न, न हमने पहले किया है और न ही अब करते हैं। हाँ, जो मनुष्य आर्य्य समाज और सभामें नहीं हैं वे उपदेश सुनकर आर्य्य समाजमें स्वयं मिलते हैं। हम उनको प्रसन्नतासे स्वीकार कर लेते हैं।

आप जो लिखती हो कि आपके बिना मुम्बई, लाहौर और दूसरे नगरोंके आर्य्य सामाजिक हमारी सभामें सम्मिलित हैं, परन्तु हमने उनको भरती होनेके लिए कभी नहीं कहा; यह सत्य नहीं है। आपने मुम्बईमें श्री समर्थ-दानजी आदिको और प्रयागमें पण्डित सुन्दरलालजी आदि सभ्योंको सभामें सम्मिलित होनेके लिए अवश्य प्रेरित किया। इसका साक्षी मैं ही हूं। मैं जब-तक न सुनता तो इसका पता मुझे कैसे हो सकता था! जैसे मेरा नाम सभाके सभासदोंमें आप लिखती हो वैसा अन्यत्र भी आपने किया होगा। यह बात निस्सन्देह है!

आप यह भी लिखती हैं कि आर्य्य समाजके नियमोंके विरुद्ध हममें यही बात है कि हम प्रत्येक धर्म्मकी प्रतिष्ठा करते हैं। सब धर्म्मों के लोगोंको अपने में मिलाते हैं। उनके धर्म्ममें हस्तक्षेप नहीं करते, किन्तु भाई बनानेके लिए उन्हें मिलाते हैं। हमारी सभाका सदस्य होनेके लिए उनके मार्गमें कोई बात रुकावट नहीं बन सकती।

इसमें मैं आपसे पूछता हूं कि आपका धर्म्म क्या है? यदि आप कहें कि हमारा धर्म्म अमुक धर्म्मसे विरुद्ध है तो विरुद्ध धर्म्मवाला मनुष्य आपकी सभा में नहीं मिल सकता। यदि यह कहो कि हमारा धर्म्म किसीसे भी विरुद्ध नहीं है तो उसमें कोई काहेको मिलेगा? मुसलमान अपनेसे भिन्न धर्म्मवालोंको अधर्म्मी कहते हैं और उनमें मिलना अनुचित समझते हैं। भला ऐसे धर्म्मों वाले लोग आपमें कैसे मिल सकते हैं। यदि वे आत्मा और मनसे अन्यमतवालोंके साथ प्रीति करते हैं तो उनका अपना धर्म्म जाता है। यदि अपना बनाए रक्खें तो आपकी सभामें नहीं रह सकते। एक चित्तसे एक कालमें दो कार्य्य नहीं

किए जा सकते। इन सब बातोंके उत्तर दीजिएगा। विशेषतासे तो तभी वर्णन होगा, जब हम आमने सामने बैठकर वार्तालाप करेंगे।

क्या यह बात सर्वथा असम्भव नहीं है कि 'स्वामीजी ढाई वर्षसे हमारे सब से उत्तम सभासदोंमेंसे एक हैं,। भला आपही कहिए मैंने आपकी सभाका सदस्य बननेके लिए कब प्रार्थना-पत्र भेजा था। मैंने कब कहा था कि मैं आपका सभासद बनना चाहता हूं? मैंने जो मुम्बईमें पत्र भेजकर आपको सूचित किया कि मैं वेदोक्त, सनातन और आर्यावर्तीय धर्म्मके बिना अन्य किसी सभा समाज के नियमोंको न कभी स्वीकार करता था, न ही अब करता हूं और न आगे करूंगा। यह धर्म्म मेरे आत्मामें रमा हुआ है। चाहे प्राण भी चले जायं, परन्तु मैं इस धर्म्मके विरुद्ध नहीं हो सकता।

यह अपराध आप लोगोंका ही है कि बिना कहे, सुने सुनाये अपनी इच्छा से, मेरा नाम आपने अपने सभासदोंमें लिख लिया है। सो सत्य क्योंकर हो सकता हैं? क्या आप इस बातको भूल गई हो कि 'मेरठमें मैंने आपकी उपस्थितिमें अल्काट महाशयको कहा था कि आपने मुम्बई कौंसिलमें मेरा नाम सभासदोंमें क्यों लिखा? जिसमें मेरी सम्मति न हो ऐसा काम आप कभी न कीजियेगा। जो काम आप लोग अपने मनसे कर लोगे उसको मैं स्वीकार नहीं करूंगा'। इसपर अल्काट महाशयने कहा था कि 'ऐसा कार्य्य हम कभी नहीं करेंगे'।

मुम्बईमें मैंने चिट्ठी भी लिखी थी कि आपने अपनी इच्छासे जहां कहीं मेरा नाम सभासदोंमें लिखा हो, वहाँ काट दीजिए। इतना होनेपर भी जो बात आपने लिखी है क्या वह सत्य ठहर सकती है? क्या ही आश्चर्य्यकी बात है! आये तो विद्यार्थी और शिष्य बननेको, और चाहते हैं बनना गुरु और आचार्य्य! ऐसी पूर्वापर-विरुद्ध वार्त्ता करना किसीके लिए भी योग्य नहीं है।

आप ईश्वरको हर्त्ता-कर्त्ता नहीं मानतीं यह इसी १९३७ के भाद्रपदकी बात है। इस विषयमें आपने पहले कुछ भी नहीं कहा। हाँ, प्रमोददास मित्र

और डाक्टर लाजरसने मुझसे काशीमें इसकी चर्चा की थी। प्रमोददासको मैंने कहा कि आप मैडमका आशय नहीं समझे होंगे। मैंने दामोदर द्वारा आप से पुछवाया तो उसने कहा कि वे ईश्वरको मानती हैं। क्या उक्त वार्त्ता असत्य है? मेरी बातें भेद-कारिणी और विचित्र नहीं हैं, किन्तु आपकी बातें भेद उत्पन्न करने वाली हैं। मैं आपको भगिनी और मित्रसमान मानता रहा हूं। कोई विशेष कारण न हुआ तो ऐसा ही जानता रहूंगा। मैं और सभी आर्य्य सज्जन सदासे यही मानते आए हैं कि सामान्यतया आर्य्यावर्त्त, इङ्गलैण्ड और अमरीका आदि सकल भूमण्डलके मनुष्य भाई हैं। परस्पर मित्र हैं और समान हैं। पर मानते हैं धार्मिक व्यवहारोंके साथ, न कि असत्य और अधर्म्मके साथ।

यहाँ, अङ्गरेज आर्य्योंको चाहे जैसा मानें। कोई राज्याधिकारी हों अथवा व्यावहारिक हों। मुझको भी चाहे अपनी समझके अनुकूल यथेष्ट मानें। परन्तु मैं तो सब मनुष्योंके साथ सुहृद्भावसे वर्त्तता हूं और वर्तता आया हूं। उन लोगोंका यह कहना कि हम इसका कोई दृढ़ हेतु नहीं देखते कि स्वामीजीके अनन्तर अन्य आर्य्य समाजियोंसे भी वैसा ही वर्तें, तबतक है जबतक वे आर्य्यावर्त्तीय आर्य्योंका पूर्व इतिहास, आचार, नीति, विद्या, पुरुषार्थ और न्यायादि उत्तम गुणोंको नहीं जानते, वेदादि शास्त्रोंके सच्चे अर्थको नहीं समझते। जब उनको ऊपरकी बातोंका ज्ञान हो जायगा तो उनका भ्रम अवश्य दूर हो जायगा। तथापि मैं परमात्माको धन्यवाद देता हूं कि हमने आपसकी फूट, विरोध और अत्याचारसे, और जैन तथा मुसलमानोंकी पीड़ासे कुछ कुछ स्वास्थ्य और स्वतन्त्रता प्राप्त की है। सभी सज्जन अपने अभिप्रायके अनुसार पुस्तकें रचते हैं। स्वाधीनतासे उपदेश देते हैं। यदि भारतेश्वरी महाराणी, राज-सभा और आर्य्यावर्त्तमें शासन करनेवाले राजपुरुष धार्मिक, विद्वान् और सुशील न होते तो क्या मैं स्वतन्त्रतासे व्याख्यान दे सकता? इस लिए पूर्वोक्त महात्माओंको हम धन्यवाद देते हैं।

आपको स्मरण होगा कि काशीकी चिट्ठीके उत्तरमें आपने मुझे लिखा था

कि यदि आप भी वेदोंको छोड़ दें तो भी हम नहीं छोड़ेंगे। आपकी यह बात धन्यवाद और प्रशंसाके योग्य है। यदि सभी यूरोपियन इस उत्तम बातमें सहमत हो जायं तो कैसा आनन्द हो। और यदि वे लोग इस सिद्धान्तको न भी मानें तो हम आर्य्यों और आर्य्य समाजोंकी कोई हानि नहीं हो सकती। हमारे लिए यह कोई नवीन बात नहीं है। हम तो सृष्टिकी आदिसे वेदोंको मानते चले आये हैं; क्या हुआ जो थोड़े समयसे, अज्ञानवश, कुछ आर्य्य लोग वेद-विरुद्ध चलने लग गये हैं।

इस अवस्थामें, जिसका जी चाहे आर्य्य समाजमें मिले। उनके न मिलने से हमारी कुछ भी हानि नहीं हो सकती। हाँ, उनकी हानि अवश्य है। हम तो सबकी उन्नतिमें अपनी उन्नति करना इष्ट मानते हैं। हमारी कामना भी यही है।

यह बात तो प्रत्येक मनुष्य कह सकता है कि अमुक मनुष्यसे मेरा विचार बड़ा है। उसका विचार तुच्छ है। अमुक मनुष्य ईश्वरको हर्त्ता-कर्त्ता मानता है, फिर हम उससे क्यों प्रेम करें। परन्तु ये बातें आपके उस सिद्धान्तको काट देती हैं कि सबको अपना बन्धु जानना चाहिए।

सोचकर देखिये कि हानिके कारण किनकी ओर हैं। हमारा तो यह सिद्धान्त है ही कि किसीकी हानि नहीं करनी चाहिए और सबका उपकार करना चाहिये। यहाँ हम यह बात कह सकते हैं कि यदि थियासोफीवाले, आर्य्य समाजोंका विरोध करेंगे तो हमें कुछ भी हानि नहीं पहुंचा सकेंगे; किन्तु अपने भ्रातृ-भावको नष्ट कर अपनी हानि कर लेंगे। हमारा तो यही स्वभाव है कि धार्मिक जनोंसे मित्रभाव रखना और अधर्मियोंको धार्मिक बनाना। अपनी सामर्थ्यसे हम सबसे भ्रातृ-भावना रखते हैं और रखते रहेंगे। अब आप अपने पूर्वापर व्यवहारको समझकर यथेष्ट कीजिये। अल्काट महाशयको मेरा नमस्ते कह दीजियेगा।

माघ वदी ६ सं० १९३७ दयानन्द सरस्वती।

ऊपरके दोनों पत्रोंको उद्धृत करते हुए भाषाकी अपेक्षा भावपर अधिक ध्यान दिया गया है।

मेरठ आर्य्य समाजके उत्सवपर, अन्तिम व्याख्यान देते समय, उस अन्तिमाश्रमी महापुरुषने अतीव अन्तकी शिक्षायें दीं। उन्होंने कहा, "मुझे लोग कहते हैं, जो कोई आता है आप उसे ही भरती कर लेते हैं। मेरा इस विषयमें स्पष्ट उत्तर है कि मैं वेदहीको सर्वोपरि मानता हूं। वेदही ऐसी पुस्तक है कि जिसके झण्डेतले सारे आर्य्य आ सकते हैं। इसलिए जो मनुष्य कह दे कि मैं वेदोंको मानता हूं और आर्य्य हूं उसे आर्य्य समाजमें सम्मिलित कर लो। ऐसे विश्वासीको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। लोग भिन्न-भेदपर अधिक दृष्टिपात करते हैं परन्तु आप लोग परस्पर भेद-मूलक बातोंकी अपेक्षा मेल-मूलक बातोंपर अधिक ध्यान दो। तुच्छ भेदों और विरोधोंको त्यागकर मेल-जोलकी बातोंमें मिलाप सम्पादन करो। आपसमें मिलती बातोंमें मिल जानेसे विरोध और भेद स्वयमेव मिट जाते हैं।

अब आपको अपना कर्त्तव्य आप पालन करना चाहिए। अपने जीवनको ऊँचा बनाओ और अपनी आवश्यकताओंको आप पूर्ण करो। इस समय तो यह अवस्था है कि जब कोई प्रबल प्रतिपक्षी आ जाता है तो आप तारपर तार देकर, मुझे ही बुलाते हैं। किसी संशयके उत्पन्न होनेपर मुझपर ही अवलम्बित रहते हो। उपदेश कराने हों तो मुझपर ही निर्भर करते हो जब कभी आपसमें परस्परकी फूट, फूट निकलती है, वैमनस्य बढ़ जाता है, अनबन बढ़ने लगती है और वैर-विरोध उत्पन्न हो आता है तो उसे मिटानेकी चिन्ता मुझे ही करनी पड़ती है। मैं ही आकर आपमें शान्ति स्थापन करता हूं। आपके अन्तःकरणोंमें अवनतिकारी अन्तर नहीं पड़ने देता। आपके पारस्परिक स्नेहके सुकोमल सूत्र को छीजने नहीं देता। परन्तु महाशयो ! मैं कोई सदा नहीं बना रहूंगा। विधाताके नियम-न्यायमें मेरा शरीर भी क्षणभंगुर है। काल अपने कराल पेटमें सबको पचा डालता है। अन्तमें इस देहके कच्चे घड़ेको भी उसके हाथों टूटना है।

सोचो, यदि अपने पाँव खड़ा होना नहीं सीखोगे तो मेरे आँख मीचनेके

पीछे क्या करोगे। अभीसे अपनेको सुसज्जित कर लो। स्वावलम्बके सिद्धान्त का अवलम्बन करो। अपनी आवश्यकताओंको पूर्ण करनेके योग्य बन जाओ। किसी दूसरेके सहारेकी अपेक्षा अपनेही पर निर्भर करो। मुझे विश्वास है कि आपमें ऐसे अनेक सज्जन उत्पन्न होंगे जो उत्तमोत्तम कार्य्य कर दिखायेंगे। प्राणपणसे अपने पवित्र प्रणोंकी पालना करेंगे। आर्य्यसमाजका बड़ा विस्तार हो जायगा। कालान्तरमें ये वाटिकायें हरीभरी, फूली-फली और लहलहाती दिखाई देंगी। ईश्वरकृपासे वह सब कुछ होगा, परन्तु मैं नहीं देख सकूंगा।"

महाराजके इस भाषणका लोगोंपर बड़ा प्रभाव पड़ा। सबके हृदय उछल पड़े। लोग रोमाञ्चित हो गये। उनकी आँखें आँसुओंके बादलोंसे आच्छादित हो गईं। महाराजके कथनसे ऐसा प्रतीत होता था कि वे होनीकी निश्चित तिथि देखकर यह कह रहे हैं। अपने मानस पुत्रोंको बिछड़ने समयका उपदेश दे रहे हैं। मानों इस नौकाका यह निपुणनाविक, अब आप, विदा हुआ चाहता है। इसलिए यात्रियोंहीको अखिल खेप सौंपकर, नौका खेनेके लिए खेवट बना रहा है।

तेरहवाँ सर्ग।

महाराज मेरठके उत्सवको आशातीत सफलता प्रदान कर देहरादूनको चल पड़े। मार्गमें सहारनपुरके रेलवे स्टेशनपर कुछ कालके लिए ठहरे। जब सहारनपुर नगरके आर्य्य पुरुषोंको समाचार मिला कि गुरुदेव रेलवे स्टेशनपर विराजमान हैं तो वे, श्रीदर्शनोंके लिए, वहाँ दौड़े चले आये। वार्त्तालापके प्रसंगमें, लक्ष्मीदत्त नामके एक ज्योतिषीने महाराजको कहा कि मैं ज्योतिषके अनुसार प्रश्नोंके उत्तर दिया करता हूं। वे उत्तर सच्चे होते हैं।

इसपर महाराजने कहा, ऐसे उत्तर निरे अटकल पच्चू हुआ करते हैं। जैसे एक कौआ उड़ता हुआ, जब आमके पेड़के नीचेसे निकला तो अचानक उसपर,

ऊपरसे एक आम टूट पड़ा। उस फलकी चोटसे कौआ गिरकर मर गया। आम के लगनेका ज्ञान न तो कौवेको था और न ही आम जानता था कि मुझसे वह मर जायगा। ऐसी बातें दैवयोगसे हो जाया करती हैं। आपके प्रश्न कभी दैव-योगसे सच्चे हो जाते होंगे। यदि गणनासे सच्चे होते मानों तो गणितमें तो कोई भूल नहीं होती। उसके सारे नियम शुद्ध हैं। परन्तु आपके सारे प्रश्न पूर्ण नहीं होते। गणितनियमसे फलित होता तो उसमें भूल कदापि न होने पाती। फलित ज्योतिषको 'काकतालीय न्याय, के तुल्यही समझना चाहिए।"

एक भक्तने पूछा—'भगवन्! जन्मके समय जो दस दिनका सूतक माना जाता है क्या यह शास्त्रानुकूल है?' महाराजने उत्तर दिया कि "मनुस्मृतिके अनुसार तो, केवल नव-जात बालककी माताहीको एक रातका सूतक होता है—बच्चेके पिता तकको भी नहीं होता। यह सूतक-पातकका झमेला वैसे भी ठीक नहीं है। इनमें लोग सन्ध्या, अग्निहोत्र आदि भले काम भी छोड़ बैठते हैं। कोई असत्य भाषण और चौर-कर्म्म आदि बुराइयोंको तो नहीं छोड़ता। ऐसी रीतियोंको मानकर क्या करना जिससे शुभ तो दूर जाय और अशुभ धड़ाधड़ होता रहे?"

श्रीमान् भोलानाथजीने अति खेदसे खिन्न-चित्त होकर कहा, "महाराज! जैनमतवालोंने समाचार-पत्रोंमें विज्ञापन निकलवाये हैं। उनसे प्रतीत होता है कि वे लोग आपको कारागारमें आवद्ध कराना चाहते हैं। इसी विषयके विज्ञा-पन सहारनपुरमें भी स्थान-स्थानपर लगे हुए हैं!" यह वचन सुनकर महाराजके विमल, मधुर, मनोहर, और प्रफुल्ल मुखकमलका रङ्ग किंचिन्मात्र भी भङ्ग न हुआ। किन्तु उन्होंने गम्भीरतासे कहा, "भाई! सोनेको जितना तपाया जाता है उतनाही कुन्दन होता है। विरोधकी आँचसे सत्यकी कान्ति चौगुनी चमकती है। दयानन्दको तो यदि, कोई तोपके मुँहके आगे रखकर भी पूछेगा कि सत्य क्या है? तब भी उसके मुखसे वेदकी श्रुति ही निकलेगी। अब तो मैंने जैन-मतके बहुतसे ग्रन्थ देख लिए हैं। वे लोग मेरे प्रश्नोंका उत्तर कदापि नहीं दे सकते"।

इसप्रकार अपने सुधा-समान शब्दोंसे सेवकोंके हृदयको प्रबल प्रोत्साहन प्रदान करते हुए महाराज देहरादूनकी गाड़ीमें बैठ गये। जब गाड़ी हिलने लगी तो प्रेमीजन उनको नमस्कार कर अपने नगरको लौट पड़े।

स्वामीजी आश्विन सु० ४ सं० १९३७ को देहरादूनमें पधारे और लाला बलदेव सिंहकी कोठीपर ठहरे। उनके शुभागमन और व्याख्यानोंके विज्ञापन स्थान स्थान लग गये। जिज्ञासु और श्रोताजन श्री सत्संगोंसे अलभ्य लाभ उठाते। प्रश्न करनेवाले वादी लोग भी उनकी सुतीक्ष्ण तर्क-प्रणालीसे अपार प्रसन्नता प्राप्त करते।

कई पौराणिक पण्डित और पादरी महाशय वादप्रतिवादकी बातें तो बहुतेरी बनाते थे, परन्तु सरलतासे सम्वाद करनेके लिए सामने कोईभी न आया।

एक दिन महाराज बैठे शङ्का समाधान कर रहे थे। एक मौलवी कुछ पूछने के लिए आगे बढ़ा। परन्तु जब बोलने लगा तो उसकी जीभ लड़खड़ा गई।

लोगोंके आग्रह करनेपर, स्वामीजी एक दिन हवाघर (आबज़रवेटरी) देखने गये। उसका प्रधान प्रबन्धकर्त्ता एक यूरोपियन और मदखान मिस्त्री महाराजको प्रत्येक वस्तु, बड़े आदरसे दिखाते थे। प्रसङ्गप्रसङ्गपर, स्वामीजी भी संस्कृतके श्लोक बोलकर बताते कि इन वस्तुओंका वर्णन हमारी पुरातन पुस्तकोंमें पाया जाता है।

महाराज व्याख्यानके आरम्भमें पद्मासन बाँध और नेत्र बंद करके प्रार्थना करते। उसमें पहिले "ओम्" का उच्चारण गुंजाते। यह गुंज मधुर और मनोहारिणी होती। उसके कर्णगोचर होते ही मन मूर्छित हो जाता। ऐसा प्रतीत होता कि कोई वादन-कला-निपुण मनुष्य, सुर-मिली वीणा बजा रहा है। ऐसा रसीला स्वर किसीने कभी नहीं सुना था, उनका ओम् नाद बड़ा लम्बायमान होता था। उनके होंठ बंद कर लेनेपर भी उसकी ध्वनि बड़ी देरतक प्रतिध्वनित होती रहती। ओम् उच्चारणके अनन्तर स्वामीजी मंत्र-पाठ गायन करते। तत्पश्चात् आखें खोलकर, एक बार सारी सभापर नेत्र-ज्योति डालते। उस समय

बहुधा बहुतसे मनुष्य यह अनुभव करने लग जाते कि हम किसी अज्ञात विधिसे अत्यन्त प्रभावित हो रहे हैं। हमारी चित्त-वृत्तियाँ स्वामीजीकी ओर आपही आप खिंची चली जाती हैं। महाराजके नेत्रोंमें, अवश्यमेव प्रबल आत्मिक अयस्कान्त था। जब वे नेत्र-ज्योति चहुं ओर फिराते तो लोगोंके हृदयों में, तन्त्रीके तारोंकी भाँति, झंकार होने लग जाता।

समालोचनात्मक भाषणोंमें वे पहले पूर्वपक्षकी स्थापना करते। उस पक्षकी पुष्टिमें जो भी युक्तियाँ दी जा सकती हैं उनकी एक लड़ी पिरो देते। उस समय सबको यही जान पड़ता कि इन तर्कतीरोंका प्रतिकार करनेके समय स्वामीजी निपट निरुपाय हो जायँगे। इनका समाधान करनेमें सर्वथा असमर्थ सिद्ध होंगे। परन्तु ज्योंही वे उत्तर-पक्ष प्रारम्भ करते और अपूर्व प्रतिभा-प्रभासे पूर्व पक्षका खण्डन करने लगते तो लोगोंकी कल्पनाके कोट अपने कंगूरे-सहित धड़ाधड़ धराशायी होने लग जाते। सम्पूर्ण शङ्कासमूहका समूलोच्छेदन हो जाता। उस समय बालकी खाल उतारनेवाले तार्किकभी महाराजकी अलौकिक बुद्धिका आलोक देखकर आश्चर्य-चकित रह जाते।

स्वामीजीका, ईश्वर-चिन्तनके विषयपर एक व्याख्यान देहरादून-निवासियों के लिए, अमूल्य मणिके समान हो गया। उन्होंने ईश्वर-भक्तिका वर्णन ऐसे भावोंमें किया कि लोगोंके हृदय प्रेम-रसके प्रवाहसे भरपूर हो गये। तन में रोमाँच हो आया। आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। उन्होंने उस भाषणमें यह भी कहा कि सन्ध्या अवश्य किया करो। यह ईश्वरका सत्संग है। उपासना-कालमें उपासक अपने उपास्यके बहुत ही पास पहुंच जाता है। उपासनामें ईश्वरके गुणोंका विकाश, उपासकके भीतर अवश्यही होता है।

महाराजके व्याख्यान दो घण्टेतक हुआ करते थे। वे अपने पास उस समय घड़ी नहीं रखते थे; पर उन्होंने कभी दो चार पलके लिए भी कालातिक्रम नहीं किया। ठीक समयपर उपदेश समाप्त हो जाता।

बहुतसे सज्जनोंने महाराजकी छवि लेनेका आग्रह किया। वे पहले तो

मानते ही न थे। कहते कि आजतक हमने किसीको अपनी प्रत्याकृति नहीं लेने दी। परन्तु लोगोंके अत्यन्त अनुनय विनयपर उन्होंने प्रत्याकृति उतरवाना स्वीकार कर लिया। कुंवर बलवीरसिंह नामके एक प्रतिष्ठित व्यक्तिने उनकी छवि ली। सिरपर साफे और गलमें दुपट्टे वाली छवि देहरादूनमें ही ली गई थी।

देहरादूनके अधिवासियोंको सन्मार्ग दिखानेके उपरान्त महाराज मार्गशीर्ष व० ८ सं० १९३७ को मेरठ आ गये। उन दिनों वैदिक यन्त्रालयके प्रबन्धकर्त्ता महाशय बख्तावरसिंहजीने कुछ गोलमाल कर रक्खा था। इस लिए स्वामीजी उसी कार्यमें लगे रहे। उन्होंने यन्त्रालय का प्रबन्धकर्त्ता पण्डित भीमसेनजीको नियुक्त किया। फिर मार्गशीर्ष व० १२ को वहाँसे प्रस्थान कर आगरा नगरमें सुशोभित हुए। यहाँ, महाराज लाला गिरधारीलालके मकानपर ठहरे।

श्रीमान् लक्ष्मणप्रसादजीकी स्वामीजीमें भक्ति थी। वे ही सारे आगरेमें उनके कार्यके प्रबल पोषक थे। महाशय लक्ष्मणप्रसादजीने अपने इष्टमित्रोंसे मिलकर, स्वामीजीके व्याख्यानोंका प्रबन्ध मुफीदेआम स्कूलके मकानमें किया। यह स्थान पीपल मण्डीमें था। वहाँ वे पौष व० १२ से माघ व० ७ तक, प्रतिदिन सायंके सात बजे व्याख्यान देते रहे।

महाराजके उपदेशोंमें एक अद्भुत रस था। तीन तीन चार चार कोस तकसे लोग सुनने आते। उनकी मनोरञ्जक उक्तियाँ और अटूट युक्तियाँ सुनकर वे लट्टू हो जाते।

उनके तर्कके सामने कोई चिरकालतक नहीं ठहर सकता था। एक बङ्गाली डाक्टर आगरेमें निवास करता था। वह कट्टर नास्तिक था। उसकी तर्क शक्ति बड़ी प्रबल मानी जाती थी। उसने लोगोंपर अपने ज्ञान-विज्ञानका सिक्का जमा रक्खा था। वह एक दिन बड़ा दलबल साथ लेकर स्वामीजीके व्याख्यानपर गया। व्याख्यानके अनन्तर शङ्का-समाधानके लिए समय दिया जाता था। उसदिन, सबसे पहले वह बङ्गाली महाशयही उठे। उस समय लोगोंने एक
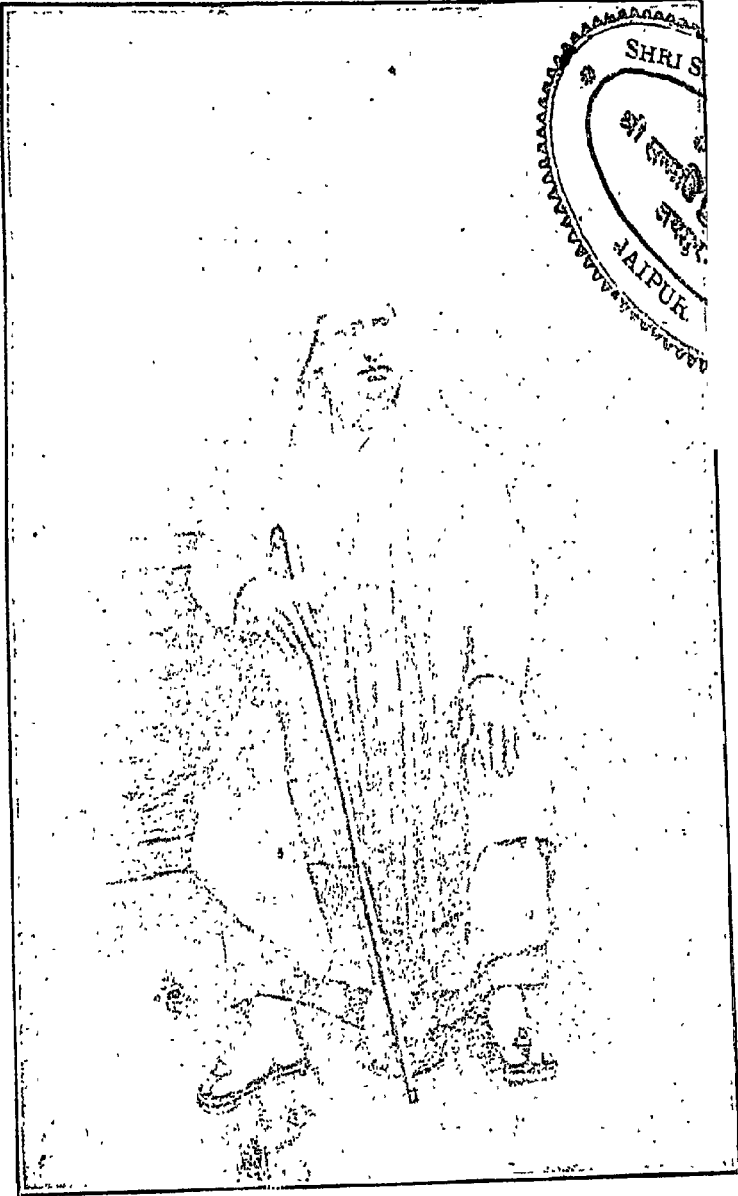
अद्वितीय व्याख्याता स्वामी दयानन्द सरस्वती।

दूसरेको कहा कि आज स्वामीजीको एक विशाल वज्र-शिलासे टक्कर लेनी पड़ी है। डाक्टर महाशयको जीतना 'टेढ़ी खीर' है।

परन्तु थोड़ेही समयमें लोगोंका आश्चर्य सीमाको पार कर गया। उन्होंने देखा कि बङ्गाली महाशय, दो तीन बार बोलकर, मुँहसे झाग उगलते हुए हारकर बैठ गये। उस दिन महाराजने, आगरा-निवासियोंके हृदयोंपर, अपनी तर्कना-तीत तर्कका ठप्पा लगा दिया। सभी लोग धन्य धन्य करते वहांसे लौटे।

श्रीस्वामीजीके व्याख्यानोंके प्रभावसे पौष ब० ६ को आर्य्य समाजकी स्थापना हो गई। यहाँ उन्होंने ठाकुर श्यामलाल सिंहजीके तीन पुत्रोंको अपने पवित्र कर-कमलोंसे विधि-पूर्वक यज्ञोपवीत पहनाये।

एक दिन महाराजने आगरेके बिशप महाशयसे मिलकर कहा कि 'आओ' पहले हम सब आपसमें मिलकर एक धर्म्म स्थिर कर लें और फिर नास्तिक-वादको निर्मूल किया जाय। बिशप महाशयने एकताके मार्गमें अनेक कठिनाइयाँ दिखाईं। उनके उत्तरमें स्वामीजीने कहा कि यदि वेद पवित्रको सभी सज्जन स्वीकार कर लें तो ये सब आपत्तियाँ तुरन्त दूर हो सकती हैं

वार्त्तालापके पश्चात् महाराज उनका बड़ा गिर्जा देखनेके लिए गये। जब वे उसके भीतर प्रवेश करने लगे तो एक ईसाईने कहा—'महाशय! सिरपरसे पगड़ी उतारकर भीतर प्रवेश कीजिये'। स्वामीजी आगे नहीं बढ़े और उससे बोले कि हमारे देशकी रीतिके अनुसार सिरपर पगड़ी धारण करके किसी जगह जाना प्रतिष्ठाका चिह्न है। अपने देशकी सभ्यताके प्रतिकूल हम नहीं करेंगे। परन्तु यदि आप कहें तो हम पांवसे जूता उतार सकते हैं। उसने उत्तर दिया कि दोनोंका उतारना उचित्त है। तब स्वामीजी भीतर नहीं गये और बराण्डेमें से उनकी मूर्तियाँ देखकर चले आये।

एक दिन स्वामीजी गो-रक्षापर व्याख्यान देते हुए बता रहे थे कि गोबधसे कैसी कैसी हानियाँ हो रही हैं। पास ही बैठा हुआ एक ब्राह्मण बे-तरह बिगड़ा और कुवचन बकने लगा। लोगोंने उसे शान्त करते हुए पूछा कि देवता वस्त्रोंसे

बाहर क्यों हुए जाते हो ? उसने उत्तर दिया कि 'उन्होंने गो-हत्यासे हानियोंका वर्णन करते समय 'गो-वध' शब्द अपने मुखसे क्यों उच्चारण किया महाराजने तब उसे कहा कि यह शब्द इस लिए उच्चारण किया था कि गो-से जो जो हानियाँ जगत्में हो रही हैं उनका लोगोंको ज्ञान हो जाय और गो-रक्षा करनेमें तत्पर हो जायँ।

इस व्याख्यानसे उस ब्राह्मणकी चिढ़का पारा और भी ऊपर चढ़ गया वह गालियाँ देता हुआ सभासे चल पड़ा। स्वामीजीने खेदसे कहा, देशके लोग हिताहितसे कितने अजान हैं। ये नामसे तो इतने चिढ़ते हैं आग बबूला बन जाते हैं परन्तु उसके विरुद्ध, काम करनेका नामतक नहीं लेते। जिस देशमें ऐसे विवेक-विचार-विवर्जित जन वास करते हों बताइए, वहाँ बुद्धिको स्थान कहाँ है ?

एक दिन, महाराज एक भेड़ियेकी माँदमें पले हुए मनुष्यको देखने गये। उसे बचपनमेंही एक भेड़िया उठाकर ले गया था। फिर वह किसी प्रकार ईसाईयोंके हाथ लग गया। महाराजने जब उसको देखा तो उस समय वह एक कुरता धारण किये हुए था और थोड़े थोड़े मानुषी व्यवहार भी सीख चुका था। स्वामीजीसे नमस्कार पूर्वक उसने पैसा माँगा। इसपर स्वामीजीने उससे कहा कि इतना चिर पशुओंमें वास करनेपर भी तुमने पैसोंका प्रेम न छोड़ा। महाराजके संकेतसे उनके साथी भक्तने दो चार आने उसको दे दिये।

पण्डित कालिदासजी सेण्ट जोन्स कालेजमें संस्कृतके मुख्याध्यापक थे। वे, किसी समय, छः सात मासपर्यन्त श्री विरजानन्दजीकी सेवामें भी अध्ययन करते थे। आगरेके बहुतसे पण्डित और श्रद्धालु सेठ उनके निकट जाकर कहने लगे, "स्वामी दयानन्दजीने सारे नगर-वासियोंके निश्चय हिला दिये हैं। पौराणिक देव-मूर्तियोंसे लोगोंकी धारणा उठती चली जाती है। आप उनको शास्त्रार्थद्वारा परास्त कीजिए, जिससे उनके विचारोंके फैलनेमें कुछ रोक थाम होजाय।"

पण्डित कालिदासजीने कहा, "स्वामीजीसे शास्त्रार्थ करनेका सामर्थ्य मुझमें

नहीं है। मैं जब श्री विरजानन्दजीके पास पढ़ा करता था, उन्हीं दिनों ये महानुभाव भी वहां अध्ययन करते थे। गुरुजीके आगे, ये कभी कभी ऐसे प्रबल तर्क उपस्थित करते थे कि उसपर गुरुजीको भी कहना पड़ता कि इसका उत्तर हम कल देंगे! भाई! ऐसे बड़े विद्वान्से वैर-विरोध बांधना अपनेको भाड़में भूनना है। तुच्छ पतङ्ग, दीपकका प्रतिपक्षही क्या कर सकता है।"

एक दिन, पण्डित कालिदासजी श्री-सत्सङ्गमें गये और वार्त्तालापके प्रसङ्ग में बोले—"भगवन्! सन्ध्याका विधान तो त्रयकालके लिए है। आप दो काल सन्ध्या करना क्यों बताते हैं? स्वामीजीने उत्तर दिया कि "धर्म्म-शास्त्रमें दो कालही सन्ध्या करना लिखा है। त्रयकाल सन्ध्याकी रीति सर्वथा अनार्ष है।"

स्वामीजी महाराज कठिन विषयोंका समाधिस्थ होकर मनन किया करते। उनकी धारणा थी कि जब मनुष्य अन्तर्मुख होता है तो उस समय उसमें ईश्वरीय ज्ञानका सीधा प्रकाश पड़ने लग जाता है।

ब्रह्मानन्दजी अपने युवाकालमें जब आगरा कालेजमें अध्ययन करते थे तो उन्हीं दिनों, श्री महाराजके वहाँ धुँआधार व्याख्यान होते थे। ब्रह्मानन्दजी एक दिन सत्सङ्ग प्राप्त करनेके लिए महाराजके निवास-स्थानपर गये। उस समय स्वामीजी तो स्थानपर नहीं थे, परन्तु भीमसेनजी और ज्वालादत्तजी आदि पण्डित बैठे आत्म-चर्चा कर रहे थे। ब्रह्मानन्दजीने उनसे पूछा, "आप कोई आत्म-ज्ञानी जन भी बता सकते है?" उत्तरमें ज्वालादत्तजीने कहा, "इस समय सबसे बड़े आत्मदर्शी हमारे स्वामीजी महाराज हैं। हमने उनको अनेक बार अचल ध्यानमें लीन देखा है। उनको योगकी सकल सिद्धियां सम्प्राप्त हैं। हमें वेद भाष्य लिखाते समय, कोई कठिन विषय उपस्थित होनेपर, वे कई बार बीच मेंसे उठकर चले जाते हैं। और कोठड़ीके किवाड़ लगाकर बड़ी देरतक अन्तर्ध्यान बैठे रहते हैं। फिर बाहर आकर पहले लिखेमेंसे कई वाक्य और पंक्तियाँ तक कटवा देते हैं और उनके स्थान पर नवीन वाक्यकी योजना लिखाते हैं। उनका अन्तःकरण इतना विमल और इतना विशुद्ध है कि सातवीं कोठरीमें भी

की गई वार्त्ताका आभास, उसमें पड़ जाता है। उन्होंने कई बार हमारे प्रच्छन्न मनोरथोंको हमारे आगे वर्णन किया है। वे हमें उपदेश दिया करते हैं कि जब मनुष्यके हृदयकी सकल ग्रन्थियां खुल जाती हैं तो उसे आत्म-ज्ञान प्राप्त हो जाता है। तिलोंमें तेलकी तरह आत्मामें ही परमात्मदेव रमे हुए हैं। इसलिए उनका भी उसी समय ज्ञान हो जाता है।"

आगरा-निवासियोंके हृदयोंको, अपने अमृतोपदेशसे तृप्त करके, महाराज इस देशके राजों महाराजोंको सुधारनेके लिए राजस्थानको प्रस्थान कर गये।

राजस्थान काण्ड।

पहिला सर्ग।

फाल्गुन सुदी दशमी सम्वत् १९३७ को महाराज भरतपुरमें पधारे और रेलके स्टेशनके निकट प्रतिष्ठित पुरुषके उद्यानमें ठहरे। उन्होंने वहाँ दस दिनतक व्याख्यान दिए और फिर चैत्र वदी पंचमीको प्रस्थान कर जयपुरमें सुशोभित हुए। यहाँ वे वदनपुरामें; अचरोलके ठाकुरोंके उद्यानमें विराजे। महाराजके सत्संगसे जयपुर-वासी प्रेमी जनोंने वहुत लाभ उठाया। फिर वहाँसे चलकर वे वैशाख सुदी सप्तमी सम्वत् १९३८ को अजमेरमें पधारे। यहाँ उन्होंने सेठ फतेहमलजीके उद्यानमें डेरा किया।

विज्ञापनोंद्वारा सर्वसाधारणको सूचना देकर व्याख्यान आरम्भ किये गये। श्रोता लोग भी अतिशय उत्साहसे सत्संगमें आते और एकाग्र भावनासे सुनते थे। महाराजके व्याख्यान, प्रतिदिन सायंके सात वजेसे रातके नौ वजेतक होते, परन्तु वीचमें उठकर चले जाना तो कहाँ, कोई हिलनेजुलने तकका भी नाम न लेता। सभी उपस्थित जन नीरव, निस्तब्ध और निर्निमेष होकर, अपने ललचाए हुए लोचनोंसे महाराजकी मंगलमयी मनोहर मूर्तिका दर्शन किया करते। सभासागरमें चहुं ओर चुप्पीका अचल भाव छाया होता। सुनते हुए लोग तृप्त नहीं होते थे। यही चाहते थे कि महाराज सुनाते जाय, व्याख्यान समाप्त न करें। उपदेशकी समाप्तिपर, सभी श्रोता स्वामीजीको शत-शत सहस्र सहस्र साधुवाद देते घरोंको जाते। उनके उपदेशोंमें वर्णनातीत रस होता था। जो एक दिन इसका आस्वादन कर जाता उसे ऐसा चसका लगता कि आगामी दिन, वह सबसे पहले पहुंचनेकी चेष्टा करता।

नसीरावाद-निवासी श्री हीरालालजीको महाराजने, यथाविधि, अपने श्री

हाथोंसे यज्ञोपवीत धारण कराया। उसको धर्म्म-कर्म्मका अतीव उपयोगी उपदेश भी दिया।

कुछ एक पेटार्थी पण्डित लोग परमहंसजीसे शास्त्रार्थ करनेकी कोरी गप्पें हाँकते तो थे, परन्तु वह मन उन्हें नहीं मिला था, वह हृदय उनको नहीं प्राप्त था और वह आत्मा उनमें निवास नहीं करता था, जिसमें स्वामीजीके सामने आनेका साहस हो सकता।

पण्डित श्री लेखरामजीके हृदयमें महाराजके दर्शनोंकी तीव्र लालसा उत्पन्न हो आई। वे,कुछ कालके लिए अपने सारे कामकाज छोड़कर, पंजाबसे अजमेर जा पहुंचे। ज्येष्ठ ब० ४ सं० १९३८ प्रातः काल श्रीसेवामें उपस्थित हुए। उन्होंने, भक्ति-भावके भारसे नम्रीभूत होकर, श्री चरणोंमें विनीत नमस्ते निवेदन किया। उनके प्रेम-रससे रसीले, विमल लोचनोंमें, मधुर मुखमण्डलको, शोभाशाली विशाल ललाटको और पतित-पावनी परम पवित्र आकृतिको अवलोकनकर, मोहियाल वंशके सुवीर सुपुत्रको अतिशय प्रसन्नता उपलब्ध हुई। वे मार्गकी सारी थकान तत्काल भूल गये। वे अतृप्त लोचनों से, अति तृष्णाके साथ, स्वामीजीके सुन्दर स्वरूपको देखने लगे।

पण्डितजीने बद्धाञ्जलि होकर पूछा कि भगवन्! आकाश और ब्रह्म दोनों पदार्थ व्यापक हैं। दोनों एक स्थानमें एकत्र क्योंकर रह सकते हैं, ?

महाराजने एक पास बड़ा पत्थर उठाकर पूछा कि इसमें अग्नि व्यापक है वा नहीं? उन्होंने कहा कि हाँ अवश्यमेव है फिर उन्होंने उसी पाषाण-खण्डमें वायु, जल, मृत्तिका, आकाश और परमात्माकी व्यापकता पूछी। पण्डितजीने सबकी व्यापकता स्वीकार कर ली। तब स्वामीजीने कहा, "भद्र! आपने समझ लिया कि एक पत्थरमें सब पदार्थ व्याप्त हो रहे हैं। इस व्यापकताका सरल सिद्धान्त यह है कि जो पदार्थ जिससे सूक्ष्म होता है वह उसमें व्याप्त हो सकता है। परमात्मदेव परम सूक्ष्म हैं। इस लिए वे सब पदार्थोंमें परिपूर्ण हो रहे हैं।

भगवान्‌ने ताड़ लिया कि भक्तकी हृदय-भूमि उपजाऊ है। उसमें धर्म-कल्पतरुका बीज बोनेकी भावनासे उन्होंने कहा कि आप यथेष्ट प्रश्न पूछकर अपने संशय निवारण कर लीजिए। उस समय पण्डितजीने दस प्रश्न पूछे। उनमें, पीछेसे उन्हें ये थोड़ेसे स्मरण रह गये।

प्रश्न—भगवन्! जीव और ब्रह्मके भिन्न भिन्न होनेमें कोई प्रमाण दीजिए।

उत्तर—यजुर्वेदका सारा चालीसवाँ अध्याय जीव और ब्रह्मका भेद वर्णन करता है।

प्रश्न—मुसलमान और ईसाई आदि मतोंके मनुष्योंको क्या शुद्ध कर लेना चाहिए!

उत्तर—हां, अवश्यमेव शुद्ध कर लेना चाहिए।

प्रश्न—बिजली क्या वस्तु है और किस प्रकार उत्पन होती?

उत्तर—बिजली सर्वत्र है। रगड़से अभिव्यक्त हो जाती है। बादलोंकी विद्युत् भी वायु और बादलोंके संघर्षणसे प्रकट होती है।

महाराजने पण्डितजीको कहा, "जबतक आपकी आयु पच्चीस वर्षकी न हो तबतक विवाह कदापि न कराइएगा।" धर्म्म-वीर जब अपने परम धीर और कर्म्म-वीर गुरुसे विदा होने लगे तो उनसे बोले—"गुरुदेव! कोई अपना स्मारक चिह्न प्रदान कीजिए।" महाराजने निज अनन्य भक्तको, अतिवत्सल भावसे, एक प्रति अष्टाध्यायीकी प्रदान की। तत्पश्चात् होनहार आर्य्यपथिक उनके अरुणवर्ण चरण छूकर वहांसे अपने प्रान्तको लौट आए।

एक दिन पश्चिमी विज्ञान एक धुरन्धर पण्डित स्वामीजीके निकट आया। वह योगकी सिद्धियोंको भ्रममूलक मानता था। उसने योग विभूतियोंके विषय में पूछा कि क्या आप इनको मानते हैं? स्वामीजीने योग सिद्धियोंको सिद्ध करते हुए कहा कि क्या आप समझते हैं कि मेरा इतना बड़ा काम बिना योग सिद्धिके ही हो रहा है। इतने ही शब्दोंसे, उसका वज्रसदृश कड़ा मन पिघल कर मोमसा नर्म होगया और उसे आर्य्य समाजसे प्रीति हो गई।

मसूदा—राज्यके नरेश, राव श्री बहादुरसिंहजीको जब समाचार मिला कि गुरुदेव अजमेरमें विराजमान हैं तो उन्होंने एक प्रतिष्ठित व्यक्तिको निमन्त्रण पत्र देकर श्री सेवामें भेजा और मसूदा राज्यको सौभाग्य प्रदान करनेकी प्रार्थना की। उनकी प्रार्थनापर श्री महाराज आषाढ़ वदी द्वादशी १९३८ को मसूदामें पधारे और राम उद्यानमें ठहरे। आगामी दिनसे उनके व्याख्यान धर्म्म, राज-नीति और पुनर्विवाह आदि विषयोंपर होने आरम्भ हो गये

पादरी शूलब्रेड, एक देसी पादरीसहित स्वामीजीसे मिलने आये। उस समय राव महाशय स्वामीजीके पास ही बैठे थे। उन्होंने एक नौकरको आज्ञा दी कि पादरी महाशयके लिए यहाँ कुर्सी ले आओ। जब कुर्सी लाकर, वह फर्शपर रखने लगा तो महाराजने कहा कि फर्शको उलटकर कुर्सी रखिए। राव महाशयके पूछनेपर उन्होंने कहा कि आप सब फर्शपर बैठे हैं। यदि फर्शपर रक्खी जायगी तो आगन्तुकके जूते फर्शपर होंगे। यह सभ्यताकी बात नहीं है कि जिस आस्तरणपर लोग आसन लगाये बैठे हैं उसपर एक मनुष्य, जूते-समेत पाँव रखकर, कुर्सीपर बैठे।

शूलब्रेड महाशयको स्वामीजीने अनेक प्रश्न पूछे, परन्तु वे उत्तर कुछ भी न दे सके। शूलब्रेडके पूछनेपर महाराजने कहा कि वेदोंमें गोमेध, अश्वमेध आदिका वर्णन नहीं है। एक देसी ईसाईने कहा कि 'स्वामीजी आप राजों महाराजोंको ही उपदेश देते हैं, परन्तु निर्धनोंमें जाकर उन्हें नहीं समझाते'।

इसपर उन्होंने कहा, "मैं सर्वत्र पर्यटन करता हूं। मेरे व्याख्यान भी सर्व-साधारणके लिए होते हैं। इनमें छोटेसे छोटा मनुष्य, किसी रुकावट और प्रति-बन्धनके बिना आ सकता है। वैसे तो कुएँके पास प्यासे ही आया करते हैं, न कि कुआँ प्यासोंके पास जाया करता है।"

उन्हीं दिनोंमें जैनियोंका साधु सिद्धकरण भी आया हुआ था। एक दिन वह घूमते हुए स्वामीजीको मिल गया। वह बड़े उजड्डपनसे उनको कहने लगा, "आपकी तोंद तो बड़ी बढ़ रही है। क्या इसमें ज्ञान भरा हुआ है? इसपर

लोहेका तवा बाँध लीजिए। नहीं तो कहीं ऐसा न हो कि यह फट जाय। आपको ज्ञानाजीर्ण भी हो रहा है।"

महाराजने उस साधुके अक्खड़ और फक्कड़पनपर कुछ भी दृष्टि न दी और न ही फब्ती उड़ानेपर कर्णपात किया। गम्भीर भावसे उन्होंने प्रश्न किया "आप लोग मुखपर पट्टी क्यों बाँधते हैं? और गर्मजल क्यों पीते हैं?" इसपर देर तक वादानुवाद होता रहा।

प्रातःकाल जब स्वामीजी भ्रमणार्थ जाया करते तो राव महाशय दूरवीक्षण यन्त्रद्वारा महाराजको देखा करते। उस दिन, जब उन्होंने देखा कि उनके साथ कोई बातचीत कह रहा है तो वे तुरन्त घोड़ेपर सवार होकर वहाँ जा पहुंचे। राव महाशयको आते देख साधुजी खिसक गये। स्वामीजी, राव महाशयके साथ वार्त्तालाप करते हुए स्वस्थानपर चले आये।

श्रावण वदी द्वितीया सम्वत् १९३८ को महाराजने निम्न लिखित प्रश्न सिद्ध करणके पास भेजे—

"जैन मतके अन्तर्गत आप 'ढूंढक' लोग मुखपर पट्टी बाँधना अच्छा समझते हैं। आपका यह सिद्धान्त भ्रममूलक है। जीव अजर और अमर है। वह मुखकी पवनसे नहीं मर सकता। यदि प्राणियोंको पीड़ा देनेसे पापका प्राप्ति होना मानते हो तो यह भी अयुक्त है। प्राणधारीको पीड़ा पहुंचाये बिना तो निर्वाहही नहीं हो सकता। यदि आपका यह कथन हो कि सारा वायुमण्डल जीवोंसे भरा पड़ा है। मुखपर पट्टी बाँधनेसे जितनोंका बचाव हो जाय उतना ही अच्छा है तो भी ठीक नहीं। जैसे आग जलाकर द्वार बंद कर देनेसे उष्णता बढ़ जाती है इसी प्रकार मुंह बंद रखनेसे वायु अधिक उष्ण हो जाती है और इससे जीवोंको अधिक पीड़ा पहुंचती है।'

मुखकी भाँति नाकसे भी तो पवन निकलती है। उससे भी जीव मरते होंगे। तब आप नाकपर पट्टी क्यों नहीं बाँधते? जैसे नलीद्वारा वायु बड़े वेगसे लगती है ऐसे ही इससे जीवोंका नाश भी होता होगा। इत्यादि युक्तियोंसे

आप अपने निश्चयके अनुसार, अहिंसक नहीं हो सकते। मुखपर वस्त्र बांधनेसे दुर्गन्ध भी बढ़ जाती है। इससे अधिक रोग बढ़ते हैं। दुर्गन्ध बढ़ानेवाला मनुष्य अधिक अपराधी हुआ करता है।

जो सादे पानीके पीनेमें दोष मानते हो और उष्ण कराकर पीते हो, यह भी आपकी भारी भूल है। तुम्हारे मन्तव्यके अनुसार, यदि जल जीवमय है तो उष्ण करनेसे उन्हें अधिक पीड़ा होती होगी। वे जीव, जीवित जल जाते होंगे। यदि कहो कि हम तो जलको उष्ण नहीं करते इस लिए जलीय जीवोंको जलानेके भागी, हम नहीं बन सकते, तो आपका यह भी कथन सत्य नहीं। यदि आप उष्ण जल न लें तो उसे कोई गर्म न करे। इस कारण आप उनकी हिंसाके भागी अवश्य हैं।

आपके मतमें ऐसी ही अनेक अयुक्त बातें पाई जाती हैं। आप लोगोंका यह मानना कि पैसा भर कन्दमें अनन्त जीव हैं, सर्वथा युक्तिविरुद्ध है। भला सान्तमें अनन्त कैसे समा सकते हैं?"

इसका जो उत्तर साधु सिद्धकरणने दिया उसका सार यह है:—"जब किसी मकानमें आग जलती हो तो उसके द्वारमेंसे वायुके जो जीव भीतर जाते हैं वे सब मर जाते हैं। ओटसे जानेवाले नहीं मरते। ऐसे ही मुखपर पट्टी बांधनेसे मुखके वायुद्वारा अधिक जीव नहीं मरने पाते। चूल्हेपर रक्खे हुए देगचेमेंसे जब भांफ निकलती है तो उसपर हाथ रखनेसे हाथ जलने लग जाता है। परन्तु यदि उसपर कपड़ा आदि रखदो तो उसमेंसे होकर जो भांफ जायगी वह अधिक उष्ण न होगी। ऐसेही मुखपर वस्त्र रखनेसे वायुके जीव नहीं मरते।"

इसका उत्तर स्वामीजीने फिर लिखकर भेजा, "वायु सब प्राणियोंके जीवनका कारण है। इसके बिना कोई भी जीव, जी नहीं सकता। इसके संयोगके बिना आग भी नहीं जलती। सर्वथा निर्वात स्थानमें रक्खा हुआ दीपक भी बुझ जाता है। ज्वालाको यदि बाहर जानेके लिए द्वारका मार्ग न मिलेगा तो

वह दूसरे मार्गसे बलपूर्वक बाहर निकल जायगी; किन्तु ठण्डी न होगी। इसी प्रकार मुखपर पट्टी बांधनेसे, नाकादि द्वारोंद्वारा भीतरकी वायु बलपूर्वक बाहर जाकर, आपके माने हुए जीवोंका हनन करेगी।

भांफपर हाथ रखनेसे वह शीतल नहीं हो जाती, किन्तु यदि हाथ न रखा जाय तो वह चारों ओर फैलकर शीघ्र ही शीतल हो जाती है। बर्तनके मुख-पर हाथ रखनेसे वह इस लिए नहीं जलती कि उष्ण बाष्प सीधी ऊपरको चली जाती है। यदि आगेसे उसे रोक दिया जाय तो आघात खाकर, वह चौगुने बलसे, दूसरे टेढ़े मार्गसे बाहर निकल जायगी।

आपका वायुके जीवोंपर दयाका भाव सृष्टि-नियमके प्रतिकूल है। यदि उष्णतासे ठण्डी वायुके जीव मर जाते हैं तो ग्रीष्मके भीषण उत्तापसे, जब पवन भी अत्यन्त तप्त हो जाती है और अतीव उष्ण लू चलने लगती है तो उस समय, कोई जीव जीता नहीं रहना चाहिए। ऐसे ही उष्ण वायुके जीवोंका, पौष-माघके जाड़ोंमें, प्राणान्त हो जाता होगा।"

जब लोग स्वामीजीका प्रत्युत्तर साधु सिद्धकरणजीके पास लेकर गये तो दो ढाई सौ मनुष्योंकी भीड़ भाड़ हो गई। लोगोंने साधुजीसे कहा कि अब आप इसका उत्तर लिख दीजिए। परन्तु उसने पहले भी बड़ी कठिनतासे ज्यों त्यों करके उत्तर दिये थे। इस बार तो वह सर्वथा साहस हारकर बैठा। उसने उत्तर देना स्वीकार न किया।

साधुजीके जी छोड़ देनेसे जैन लोगोंपर बड़ा प्रभाव पड़ा। उनको अपने मतमें भारी भ्रम दीखने लगे। उधर महाराज भी, प्रतिदिन अपने भाषणोंमें जैन मतकी अयुक्तता सिद्ध करते रहते थे। इसका अन्तिम परिणाम यह निकला कि एक दिन बहुतसे जैनियोंने मिलकर महाराजकी सेवामें प्रार्थना की, "आपने हमारे नेत्र खोल दिये हैं। अब हमें जैन मतकी असारता स्पष्ट दीखने लगी है। अपनी अपार कृपासे, हमें यज्ञोपवीत धारण कराकर, दीक्षित, आर्य्य बना दीजिए।"

महाराजने तब, राव महाशयको यज्ञ-सामग्रीके लिए आदेश किया। श्रावण

पूर्णमासी सम्वत् १९३८ के दिन राव महाशयकी ओरसे महोत्सव रचाया गया। उसमें बृहद् हवन हुआ। फिर श्री महाराजने अपने शुभ हाथोंसे तेंतीस भद्र पुरुषोंको यज्ञोपवीत प्रदान किये—उन्हें आर्य्य धर्म्मकी दीक्षा दी। मसूदाके जैनियोंके जैन-मत-त्यागसे सारे मारवाड़के जैनियोंपर प्रभाव पड़ा। आर्य्योंके उत्साह भी चतुर्गुण हो गये।

भाद्रपद कृष्णा दूजको भरतपुरके राजपूतों, क्षत्रियों, वैश्यों, कायस्थों और चारण लोगोंने श्री स्वामीजीसे यज्ञोपवीत ग्रहण किये। उस दिन भी रावमहाशयने उत्सव और यज्ञ रचाया।

कहते हैं कि मारवाड़के राज्योंमें जो लोग मुगलोंके समयमें मुसलमान हो गये थे उनको वहांके आर्य्य लोग, स्वामीजीके समयतक, अपनी लड़कियां देते थे। महाराजने ऐसे आर्य्यों (हिन्दुओं) को आमन्त्रित किया और सभा लगा कर उनको उपदेश दिया कि जान बूझकर अपनी प्यारी पुत्रियोंको मुसलमान न बनाओ। उनपर यह अनीति, अन्याय और अनर्थ न करो। महाराजके वचन लोगोंके हृदयोंमें घर कर गये। उन्होंने वहीं प्रण किया कि हम आगेको इस घोर अपराधके भागी नहीं बनेंगे। इस प्रकार स्वामीजीने बीसियों आर्य्य बालिकाओंके धार्मिक जीवनको बचा लिया।

रायपुर राज्यसे महाराजके पास निमन्त्रणपर निमन्त्रण आने लगे। उन्होंने राव महाशयसे प्रस्थानकी अनुमति मांगी। गुरु महाराजके प्रस्थानका प्रस्ताव सुनकर राव महाशयका जी भर आया। उन्होंने विनय की, "भगवन् ! आपका यहांसे गमन कर जाना मेरे लिए अतीव कष्टदायक है, परन्तु श्रीचरणोंको रोका भी नहीं जा सकता। सेवक आपकी आज्ञायोंको भली भांति पालन करता रहेगा और यथाशक्ति वेद भाष्यमें भी साहाय्य किया करेगा।

महाराजके प्रस्थानके दिन राव महाशयने सम्मान-सभाकी योजना की। किलेकी डेवढ़ीके आगे एक सुन्दर मण्डप रचा गया। उसमें स्वच्छ और बहुमूल्य फर्श बिछाया गया। स्वामीजीकी बग्घी उनके निवास-स्थानसे चलकर,

नगरमें से होती हुई, सभा मण्डपके सामने आ गई। सारी सभाने उठकर उनका स्वागत किया। एक ऊँचे सिंहासनपर आरूढ़ होकर, उन्होंने उस समय राजा-प्रजाके धर्म्मोंका अत्युत्तमतासे निरूपण किया।

उपदेश अनन्तर राव महाशयने उठकर अभिनन्दन-पत्र पढ़ा। उसमें स्वामीजीके उपकारोंकी प्रभूत प्रशंसा की गई। उसके उपरान्त, राव महाशयने श्री महाराजके गलेमें पुष्प-माला पहनाई और चरणोंपर पाँच सौ रुपया रखकर नमस्कार की। आशीर्वाद देते हुए स्वामीजीने भी, फूलोंका एक हार अपने मङ्गलमय हाथोंसे राव महाशयके गलेमें डाला। तत्पश्चात् राव महाशय आदि सज्जनोंसे वार्त्तालाप करते हुए स्वामीजी उठकर बग्घीमें बैठ गये। कोई आध कोस तक चार सौ मनुष्य उन्हें पहुंचाने गये। अन्तमें स्वामीजीने गाड़ी खड़ी करके उनको उपदेश दिया और नगरको लौटा दिया। राव महाशय तो लगभग चार कोसतक उपदेश सुनते चले गये। अन्तमें अत्याग्रहसे महाराजने उनको लौटाया।

महाराज भाद्रपद कृष्णा नवमी १९३८ को मसूदासे विदा हुए और अगले दिन रायपुरमें पहुंच गये। यहाँ उन्होंने माधोदासकी वाटिकामें डेरा किया।

उनका शुभागमन सुनकर, ठाकुर हरिसिंह अपने स्वजनों-परिजनों समेत श्रीदर्शनोंको आये। एक सुवर्णमुद्रा और पाँच रुपये भेंटकर चरण छूकर नमस्कार की। महाराजकी अनुमति पाकर सभी यथायोग्य स्थानपर बैठ गये। कुशल-क्षेम प्रश्नके पश्चात् स्वामीजीने समागत सभ्योंको एक अत्युत्तम उपदेश दिया। प्रसङ्गानुसार ठाकुर महाशयको समझाया कि प्रजारञ्जन, कर्त्तव्यपालन शासन-सुधार, भद्र और कुलीन कर्मचारियोंकी नियुक्तिपर विशेष ध्यान देना चाहिए। स्वामीजीके कथनोंसे कुछ एक सत्ताधारी मुसलमान बहुत लाल पीले हुए। उनको, वहाँ किसी विधिसे, वेदना पहुंचाना अपने वशसे बाहरकी बात जान, अन्तमें उन्होंने एक काजी महाशयको स्वामीजीके साथ ला भिड़ाया। उत्तर प्रत्युत्तरमें स्वामीजीने कुरानकी पुस्तक भूतलपर रख दी। इतनेहीसे काजी

महाशय कपड़ोंसे बाहर होने लगे और झुंझलाकर बोले—"आपने यह क्या अनर्थ ढाया है ? कुरानको पाँवके स्थानपर क्यों रख दिया है ?"

स्वामीजीने कहा—"काजीजी घबराइए नहीं। सोचिए तो, सही, ये कागज बनते किन पदार्थोंसे हैं। स्याहीके प्रस्तुत होनेकी विधि भी विचारिये। मुद्रणालयमें छपे पत्रोंकी क्या दुर्दशा होती है और वे कहाँ कहाँ रक्खे जाते हैं, इस क्रमपर भी टुक दृष्टि डालिये।"

काजी महाशय सर्वथा निरुत्तर होकर उठ खड़े हुए और अपने साथियों-सहित वहांसे चले आये।

पञ्जाब-निवासी श्रीमान् रूपसिंहजी, देशाटन करते हुए, दर्शनोंके निमित्त रायपुरमें जा पहुंचे। महाराजके पवित्र चरणोंको स्पर्श करके उन्होंने बड़ी भक्ति भावनासे नमस्कार की और निवेदन किया, 'भगवन् ! आपने पंजाब प्रान्तको तो अपने पुनीत पदार्पणसे पवित्र किया, परन्तु महाराज सीमा-प्रान्तमें क्यों नहीं पधारे ?'

महाराजने उत्तरमें कहा—'महाशय, आप लोगोंकी ओरसे हमें पूर्ण निश्चिन्तता है। इस समय तो राजस्थानमें प्रचारकी बड़ी आवश्यकता है।'

स्वामीजीके उपदेश उनके निवासस्थानपर प्रतिदिन हुआ करते। उनसे ठाकुर महाशय भी लाभ उठाते। ठाकुर महाशय एक यज्ञ करानेका भी उद्योग कर रहे थे, परन्तु उनकी ठाकुरानीके देहान्तका समाचार आ जाने से उनकी मनोकामना मनहीमें रह गई ! महाराजने जब देखा कि ठाकुर महाशय शोकाकुल हो रहे हैं तो वह भी प्रस्थानके लिए समुद्यत हो गये।

एक सज्जनने स्वामीजीसे कहा, 'आप भी ठाकुर महाशयके यहां शोक प्रकाशित कर आइए।' इसपर उन्होंने उत्तर दिया कि 'भद्र ? मैंने तो सारे सांसारिक बन्धन तोड़ दिये हैं। किसीका जीना और मरना मेरे सम्मुख अब समान है। मैं न तो किसीके जन्मपर प्रसन्नताका प्रकाश करने जाता हूं और न ही

मरणपर शोक ही प्रकट करता फिरता हूं। मेरा सम्बन्ध तो उपदेश और धर्म्मके अतिरिक्त किसीसे कुछ भी नहीं है।"

यहां स्वामीजीने वेदाङ्ग प्रकाश समासतक लिख लिया था।

बीस दिवसतक रायपुरमें निवास करके महाराज जिस दिन प्रस्थान करने लगे उस दिन ठाकुर महाशयने अपने पिता और प्रतिष्ठित बन्धुओंको भेजकर उनको बड़े आदरके साथ विदा किया।

भादों सुदी १५ सं० १९३८ को रायपुरसे प्रस्थान कर स्वामीजी ब्यावर पधारे। अगले दिन पता लगते ही लोग दल बांधकर और मण्डलियां बनाकर श्रीदर्शनोंको आने आरम्भ हो गये।

पादरी शूलब्रेड और बिहारीलालजी कई दिनोंतक धर्म्म-चर्चा करनेका आनन्द लूटते रहे। और भी अनेक सज्जनोंने अपने संशय और भ्रम मिटाये। यहां महाराजने कई दिनोंतक मनोहर उपदेश दिये।

चन्दूलालजीके पिता अति श्रद्धालु भक्त थे। स्वामीजीमें उनकी बड़ी भावना थी। एक दिन उन्होंने अपने पुत्रको पुकारकर कहा—"बेटा चन्दूलाल! स्वामीजीकी सेवा शुश्रूषा अवश्य किया करे। ऐसे महापुरुषोंका मङ्गल मिलाप अमूल्य पदार्थ है।"

पिताके आदेशानुसार चन्दूलालजी, श्रीचरणोंमें चित्तके उच्च भावसे जाते और सेवा किया करते। चन्दूलालजीके विचार वेदान्तके ढांचेमें ढले हुए थे। उन्होंने इस विषयपर स्वामीजीसे प्रश्न भी पूछे। महाराजने उनसे कहा—भद्र! अभी आप नवयुवक हैं, इस तात्त्विक मर्मको समझ नहीं सकेंगे। आप, हमारे रचे सत्यार्थ प्रकाशका ध्यानपूर्वक पाठ करते जाइए। आपके सारे संशय आपही आप दूर हो जायंगे।" चन्दूलालजीने कालान्तरमें सत्यार्थ प्रकाशके पाठ-हीसे पूर्ण विश्वास प्राप्त कर लिया।

स्वामीजीकी बताई विधिसे, प्रतिदिन २१ प्राणायाम करनेसे, उनका पुराना

पेचिश रोग दूर हो गया। इस रीतिके अनुसार, उनके एक मित्रका अति पुरा. अर्श-रोग जड़ मूलसे जाता रहा।

ब्यावरमें महाराजने बारह तेरह दिनतक निवास किया और फिर वे आश्विन बदी त्रयोदशी सम्वत् १९३८ को मसूदामें पधारे। वहां १५ दिनतक विश्राम किया। बनेड़ाके ठाकुरके अत्याग्रहसे आश्विन शुक्ला १४ को मसूदासे चलकर, मार्गमें तीन स्थानोंमें एक एक रात ठहरते, वे बनेड़ामें जा विराजे। मसूदा-नरेशकी ओरसे महाराजको बनेड़ातक पहुंचानेके लिए एक तांगा, एक रथ, उपकरण लादनेके लिए एक गाड़ी और चार अश्वारोही सैनिकगए।

बनेड़ाके राजा महाशयने उसका अत्यादरसे स्वागत किया और नगरसे बाहर झामरा मन्दिरके निकट तम्बू लगाकर उनमें निवास कराया।

राजा महाशयने अपने गुरुसे मिलकर निश्चय किया कि तीन चार दिनतक स्वामीजीसे कोई प्रश्नोत्तर न किया जाय। इतने दिनोंमें यदि हमें ज्ञात हो गया कि उनके सम्मुख प्रश्नोत्तर करनेका हममें सामर्थ्य है तो फिर जो कुछ पूछना होगा पूछ लेंगे। सायंकाल जब, राजा महाशय श्री सत्संगमें आए तो उस समय महाराज कौपीन लगाए एक कृष्णवर्ण आसनपर विराजमान थे। उनके भाग्यशाली विशाल भालकी शुभ शोभाको उनके विमल नेत्रोंको निर्मल ज्योतिको, उनके कमनीय मुखमण्डलकी उज्ज्वल कान्तिको और उनकी दिव्य देहकी दैवी दीप्तिको दूरहीसे देखकर, राजा महाशयके हृदयमें भक्तिका प्रभाव उमड़ पड़ा। वे प्रेम रसमें गद्गद् हो गए। अति निकट आकर श्री चरण-स्पर्श करते हुए उन्होंने निवेदन किया, "भगवन्! यह हमारे सौभाग्यकी शुभ सूचना है कि श्री महाराज यहाँ पधारे हैं आपके शुभ दर्शनोंसे सारा नगर कृतार्थ हो गया है।" महाराजने भी राजा महाशयको कुशल-मंगल और योग क्षेम पूछा और कहा कि आप कोई प्रश्न पूछिये। उन्होंने जीव-ब्रह्मके विषयमें प्रश्न किया, जिसके उत्तरमें स्वामीजीने कहा कि जीवात्मासे ब्रह्म न्यारा है। फिर स्वामीजीने समझाया कि जैसे आकाश सारे मन्दिरके भीतर बाहर परिपूर्ण है,

परन्तु मन्दिर आकाशसे भिन्न ही बना रहता है, ऐसे ही परमात्मा जीवात्मामें रमा हुआ है, परन्तु जीव उससे न्यारेही रहते हैं। एक दिन राजाजीके साथ राज-पण्डित भी आये। वार्त्ता महीधर-भाष्यपर चल पड़ी। स्वामीजीने महीधर भाष्यका ऐसा खण्डन किया कि राजगुरुसे उसका कोई भी उत्तर न बन आया।

महाराज धर्म्म-प्रचारसे भी बनेड़ा-वासियोंका मङ्गल साधित करनेमें तत्पर थे। उनके भाषणोंमें सैकड़ों जन आते थे। एक दिन चक्राङ्कितोंकी समालोचना करते हुए उन्होंने कहा कि यदि एक अङ्गके दग्ध करनेसे स्वर्ग मिलता है तो भड़भूंजेके भाड़में पड़कर भुनजानेसे तो तत्काल मुक्ति मिल जानी चाहिए।

श्री स्वामीजीके सत्संगसे राजा महाशयने अलभ्य लाभ उपलब्ध किया। वेदपर उनका निश्चय पक्का हो गया। उनके दोनों राजकुमारोंको भी सेवामें बैठकर शुभशिक्षा ग्रहण करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। बनेड़ाके अधिवासियोंमें धर्म्म-मेघ वरसाकर श्री महाराज चित्तौड़को चल पड़े।

कार्तिक सु० ५ सं० १९३८ को महाराज चित्तौड़में सुशोभित हुए और गम्भीरी नदीके तीरपर, रुण्डेश्वर महादेवके मन्दिरमें ठहरे। उन दिनों चित्तौड़में बड़ी चहल पहल थी। सर्व प्रिय, लाट रिपन महोदयकी वहाँ राज सभा लगनेवाली थी। इसलिए उदयपुरके अन्तर्गत जितने भी राजे और ठाकुर थे वे सब, अति सजधजसे वहाँ एकत्र हो रहे थे। मेवाड़ राज्यकी सारी शोभा, अतिशय तड़क-भड़ककी वेश-विभूषामें वहाँ शोभायमान थी। श्रीयुत राणा सज्जनसिंहजी, अपने-स्वजनसमूह और कर्मचारीवर्ग-सहित वहाँ सुशोभित थे।

स्वामीजीका सत्संग प्रतिदिन सायंकाल लगा करता। उसमें मेवाड़ राज्यके प्रायःसभी राजे जाते, श्रीदर्शनोंसे और उपदेशोंसे लाभ उठाते। उसके उपदेशों में श्रोताओंकी बड़ी भारी संख्या हुआ करती। कविराज श्यामलदासजी स्वामीजीके अति प्रेमी भक्त थे वे प्रतिदिन, श्री सत्संगमें जाते समय अपने साथ एक दक्षिणी शास्त्रीको भी लिवा ले जाते। छः सात दिवसतक शास्त्री-

जीने महाराजसे 'पदार्थ छः हैं अथवा सात' के विषयपर बातचीत की। स्वामीजीने छः ही पदार्थोंकी सत्ता सिद्ध करते हुए, सप्तम पदार्थ, अभावका अति प्रबल प्रमाणोंसे खण्डन किया।

स्वामीजीके सुगुण-सुमनोंकी शुभ सुगन्धि श्री राणा सज्जनसिंहजीतक भी पहुंच गई। उनकी निष्कलङ्क कीर्तिका मधुर कीर्तन उनके कानोंने भी आस्वादन किया। एकदिन, श्री राणाजीने कविराज फतेहकरणजी और एक राज-पण्डितको श्री स्वामीजीके पास, उनका गुण-ज्ञान और रहन-सहन आदि व्यवहार देखनेके लिए भेजा। उन दोनों व्यक्तियोंने वहांसे लौटकर श्रीराणाजीके सामने जगद्गुरुके गुणगण और गौरव गरिमाका भूरि-भूरि गायन किया। उसे सुनकर श्री राणा-जीके हृदयमें श्रीदर्शनोंकी उत्कट इच्छा प्रकट हो आई। एक दिन वे अपने प्रतिष्ठित राजों-सहित श्रीसेवामें आते समय बोले, "हम स्वामीजीके पास चुप चाप जाना चाहते हैं। उनके आगे हमारे नाम-ठामका निर्देश, दिग्दर्शन-रूपमें भी नहीं होना चाहिए। हम एक निःस्पृह सन्यासीसे अपना सम्मान कराना नहीं चाहते।"

श्री-सेवामें पहुंचकर श्री राणाजीने परोपकार-परायण परमहंसजीको परमा-दरसे नम्र नमस्कार की और फिर वे पास पड़े पटड़ेपर बैठ गये। उस समय महाराजने राजधर्म और राजकर्तव्यकर्मका ऐसी उत्तमतासे वर्णन किया कि सबके मुखसे धन्य धन्यकी ध्वनि निकलने लगी। जैसे कोरे घड़ेमें पानीकी बून्द रच जाती है, चिट्टे दुपट्टे पर बसन्ती रंग बस जाता है और अयस्कान्त मणिसे संघर्षण पाकर लोहेमें आकर्षण समा जाता है, ऐसे ही, उपदेशका एक एक वचन महाराणाके महत्त्वपूर्ण मनमें घर करता चला गया। उनका हृदय अनुपम प्रभावसे परिपूर्ण हो गया।

व्याख्यानकी समाप्तिपर श्रीमहाराजने शाहपुराधीशकी ओर नेत्रज्योति फिरा कुशल-क्षेम पूछा। फिर श्री महाराणाजीकी ओर निहार कर कहा, आपका पहले तो साक्षात्कार कभी नहीं हुआ दीखता"। एक बार तो शाहपुराधीश मौन रहे,

परन्तु दूसरी बार पूछनेपर उन्होंने कहा, "आप, राणा श्री सज्जन सिंहजी हैं"। तब स्वामीजी आत्मिक अयस्कान्त-दृष्टिसे निहारते हुए, अपनी सुधा-समान वाणीसे बोले, "राणाजी! श्रीमन्तका इस प्रकार चुपचाप आना और एक साधारण आसनपर बैठ जाना शोभा नहीं देता"।

श्री राणाजीने अति नम्रतासे निवेदन किया—"भगवन्! आप ऐसे सन्तों के समीप साधारण अवस्थामें आने और साधारण आसनपर बैठने हीमें हम गृहस्थोंकी शोभा और सौभाग्य है। दूसरी सभाओंमें तो हमें राजसी ठाठ बाटसे जानाही पड़ता है, यदि संन्यासियोंके सत्संगमें भी, उसी बाहरकी बन ठनमें आये तो विशेषता ही क्या हुई? यही तो एक आसन है जहां, आकर शासन-कर्त्ता नम्रता सीखते हैं।"

श्री राणाजी उस दिनके सत्संगसे बड़े प्रभावित होकर राज-भवनमें लौटे। उन्होंने एक बार गाड़ी भेजकर महाराजको अपने भवनपर निमन्त्रित किया और उपदेश सुननेके अनन्तर, उदयपुर में पदार्पण करनेकी प्रार्थना की। श्री महाराजने मुम्बईसे लौटते समय, उदयपुरमें आनेका वचन दे दिया।

स्वामीजीके हृदयमें स्त्रियोंके लिए अतिशय सम्मानका भाव था। उन्होंने स्त्री-जातिके सम्बन्धमें कभी समालोचना तक नहीं की। सब आचार्य्योंमें एक स्वामी दयानन्द ही ऐसे हैं जिन्होंने स्त्रियोंके गौरवको बढ़ाया है। उनके लिए समान अधिकारोंकी घोषणा की है। उनसे पहले जितने भी अर्वाचीन आचार्य्य हुए हैं वे सब, एकस्वर होकर स्त्रियोंकी परतन्त्रताका पोषण करते हैं, उनको शूद्र-पद प्रदान करते हैं। स्त्री-जातिकी जितनी निन्दा वेदान्तके आचार्य्योंनेकी है, भूतलपर उतनी कदाचित् ही किसी दूसरेने की होगी।

स्वामी दयानन्दजी स्त्री-जातिकी पूर्ण स्वतन्त्रताके पक्के पक्षपाती थे। वे उनको द्विज-पद प्रदान कर गये हैं शास्त्राधिकार दे गये हैं।

उनके किसी ग्रन्थमें भी महिला-मण्डलके महत्त्वको बट्टा लगानेवाला, कोई

वचन नहीं मिलता। उस महामुनिके विमल मनमें मातृमण्डलका कितना महत्त्व भरा हुआ था उसका पूर्ण प्रकाश इस कथासे होता है:—

एक दिन स्वामीजी व्याख्यानके अनन्तर कई राजों और पण्डितोंसहित भ्रमण करने जा रहे थे। मूर्ति पूजापर युक्तियाँ प्रयुक्तियाँ चल रही थीं। आगे ग्रामीण लोगोंका एक देवालय आ गया। उस समय वहाँ बहुतसे छोटे छोटे बच्चे मिल-जुलकर स्वच्छन्दता पूर्वक खेल कूद रहे थे। स्वामीजीने वहाँ एका-एक सिर नीचा कर दिया और फिर आगे चल पड़े। एक साथी पण्डितने कहा— "स्वामीजी! प्रतिमा पूजनका खण्डन चाहे जितना करो, पर देव-बलका भी प्रत्यक्ष प्रभाव है कि देवालयके सामने, आपका मस्तक आपही-आप नीचा हो गया। महाराज यह सुनते ही उन्हीं पाँवपर खड़े हो गये और उन बालकोंमें खेलती हुई एक चतुर्वर्षीया, विगत वस्त्रा, बालिकाकी ओर संकेत करके बोले—"देखते नहीं हो यह मातृ-शक्ति है, जिसने हम सबको जन्म प्रदान किया है!" ये शब्द सुनते ही सारी सङ्गतिपर सन्नाटा छा गया, सभी मूक हो गये। आसनपर लौट आनेतक, उन लोगोंके कानोंमें वही शब्द गूंजते रहे।

जीवनगिरी नामक एक संन्यासी वहाँ थोड़ी देरसे ठहरे हुए थे। स्वामीजीने उनको शास्त्रार्थ करनेके लिए आहूत किया, परन्तु कवि श्यामलदासजीने बीचमें पड़कर गिरीजीको बचा दिया। जीवनगिरी स्वामीजीका सम्मान सहन न कर सका। वह रात दिन अपने चित्तको ईर्ष्याकी चितापर चढ़ा, अकारण ही कोयले समान काला बनाता रहा।

दूसरा सर्ग।

जिस दिन महाराजने प्रस्थान करना था उस दिन श्री राणाजीने बग्घी भेज कर महाराजको अपने भवनपर निमन्त्रित किया। उनको भक्ति-भावसे

सम्मानित कर पांचसौ रुपए भेंट किए और श्री चरण छूकर प्रार्थना की- "भगवन्! उदयपुरमें यथा-सम्भव शीघ्र हो दर्शन दीजिएगा।"

महाराजने दो मास पर्य्यन्त चित्तौड़में निवास किया और फिर वे अति सम्मानसे विदा होकर मुम्बईको प्रस्थान कर गये।

इन्दौर-नरेश चिरकालसे श्रीदर्शनोंको चाहते थे और इन्दौर पधारनेकी प्रार्थना भी किया करते थे। परन्तु महाराज, जब मुम्बई जाते हुए, वहाँ उतरे तो दैवयोगसे वे कहीं अन्यत्र गये हुए थे। न्यायाधीश, श्रीनिवासजीने उनको बड़ी आव-भगतसे ठहराया और सेवा-शुश्रूषा की। एक सप्ताह पर्य्यन्त जनता को अपने सत्संग सुधासे सींचकर स्वामीजी पौष सुदी एकादशी १९३८ को मुम्बई नगरमें पधारे। उनका इस बारका आगमन स्थानिक समाजके वार्षिकोत्सव के उपलक्ष्यमें था। महाराजकी गाड़ी जिस समय रेलवे-स्टेशनपर पहुंची उस समय श्रीमान् अल्काट महाशय, आर्य्यसमाजके सभासदों-सहित वहाँ उपस्थित थे। जब वे गाड़ीसे उतरे तो सब नम्रतासे नमस्ते कहकर उन्हें मिले। महाराज ने भी अपनी मधुवर्षिणी वाणीसे अनुपम प्रेम प्रदर्शित करते, सब सज्जनोंको क्रमशः कल्याण पूछा। तत्पश्चात् गाड़ीमें बैठकर वालुकेश्वरपर गो-शाला नामके स्थानमें निवास किया। वह स्थान समुद्रके तटपर अति रमणीय है। सागरके उत्ताल तरङ्ग उसके साथ आकर टकराते हैं। यहाँ रहकर स्वामीजीने विशेषतासे लिखनेका कार्य्य किया।

मुम्बईके नागरिक भवनमें पादरी यूसफ महाशयने माघ व० १३ सं० १९३८ को एक व्याख्यान दिया। व्याख्यानका विषय था—"ईसाई धर्म्मही एक नारायणी धर्म्म है और सारे संसारपर इसीका विस्तार होगा।"

स्वामीजीने माघ व० १४ को उक्त पादरी महाशयको एक पत्र लिखा, "आपने जो व्याख्यानमें ईसाई मतको नारायणी धर्म्म और सारे भूमण्डलपर फैलनेवाला बताया है, यह सर्वथा असत्य है यदि आप अपनी प्रतिज्ञाको सिद्ध करनेके लिए समुद्यत हैं और यह नहीं चाहते कि यहाँके लोग बिना प्रमाण ही

आपके कथनको मान लें तो अति प्रसन्नतासे आपके साथ संवाद करनेके लिए कटिबद्ध हूं। आगामी आदित्यवार, सायंके पाँच बजेका समय, फ्रामजी काऊसजी इन्स्टीट्यूटका स्थान मैं व्याख्यानके लिए नियत करता हूं। आपको यह रुचिकर न हो तो कोई दूसरा स्थान नियत कर लीजिए।

आप और मैं दोनों एक दूसरेकी भाषासे अनभिज्ञ हैं, इस लिए यह आवश्यक है कि दोनोंके उत्तर और प्रत्युत्तरका अनुवाद करके सर्वसाधारणको सुना दिया जाय। सारा सम्वाद लेख-बद्ध हो। उसपर हम दोनोंके हस्ताक्षर हों, यह सम्वाद सभ्य-सभामें होना उचित है। इस सम्वादको अन्तमें मुद्रित कराकर प्रकाशित किया जाय, जिससे लोगोंको ज्ञात हो कि कौनसा धर्म्म परमेश्वर-प्रदत्त है।"

महाराजने इस पत्रका अनुवाद अल्काट महाशयसे कराकर भेजा।

पादरी महाशयने उत्तरमें लिख दिया कि सम्वाद करना मुझे स्वीकार नहीं है। तत्पश्चात् नियत तिथिपर महाराजने ईसाई मत-खण्डनपर व्याख्यान दिया। उसमें उन्होंने अति मनोरञ्जक समालोचना की। उनका व्याख्यान समाप्त होते ही अल्काट महाशयने भी ईसाई धर्म्मपर युक्तियुक्त आक्षेप किये।

मुम्बई--आर्य्य समाजका उत्सव बड़े उत्साहसे मनाया गया। उसमें एक दक्षिणी पण्डितका वेद गान लोगोंके लिए अतीव चित्ताकर्षक सिद्ध हुआ उत्सवपर महाराजके अमृतोपदेश भी अपूर्व प्रभाव उत्पन्न करनेवाले थे।

उस उत्सवमें दानापुरसे श्री जनकधारी लालजी अदि, कई सज्जन श्रीदर्शनोंको वहाँ आये। महाराजके मङ्गल मिलाप और मधुमय मनोहर वार्त्तालापसे उनको अति प्रसन्ता प्राप्त हुई। स्वामीजीने उनको कहा, "दानापुरसे चलते समय आपकी यह कामना थी कि वहाँ चलकर असुक असुक प्रश्न पूछेंगे। सो इस समय अवकाश है जो कुछ पूछना हो पूछ लीजिए।" वे बड़ा आश्चर्य करने लगे कि स्वामीजीने हमारी मनःकामना तकको जान लिया है।

श्री जनकधारी लाल, महाराजकी कोठीसे बाहर बैठकर अपने पूर्व चिन्तित कठिन प्रश्नोंको, स्वामीजीसे पूछनेके लिए लेखबद्ध करने लगे। वे ज्यों ही पत्र-

पर कोई प्रश्न लिखते थे त्यों ही उनका प्रबल उत्तर, उनके भीतर प्रकाशित हो जाता था। इस प्रकार उन्होंने सब प्रश्नोंको एक एक करके लिखा और उत्तर सूझनेपर उनको काट डाला। इस काट-छाँटसे प्रश्न तो उनके पास कोई न रहा, परन्तु उनके आश्चर्य्यका कोई ठौर ठिकाना न था। वे सोचते थे कि जिन युक्तियोंको हम वज्र शिलाके सदृश समझते थे वे आज, रूईके फहेकी भाँति, आप ही आप उड़ी जा रही हैं। मानो कोई अपूर्व तार्किक, हमारे अन्तःकरणमें आसन लगाकर, उत्तर दे रहा है। इतनेमें स्वामीजी बाहर आ गये और हँसकर बोले—"कहिये, प्रश्न लिख लिये ?" जनकधारी लालजीने विनय की कि और तो कुछ पूछने योग्य रहा ही नहीं, अब केवल ईश्वरोपासनाकी विधि बताइए। महाराजने कहा, "उपासनाकी विधि तो हमने आपको दानापुरहीमें बताई थी। प्रतीत होता है आप उसके अनुसार नहीं करते हो।"

जनकधारी लालजीने प्राणायाम करके दिखाया। उसको देखकर उन्होंने कहा, "आप प्राणायाम यथाविधि नहीं करते। चाहिये तो यह कि जब प्राणको भीतरसे बाहर निकाला जाय तो उस समय मूलाधार चक्रमें आकर्षण उत्पन्न किया जाय। उसमें रहनेवाली वायुको ऊपर उठाया जाय। सो वह आपसे बन नहीं पड़ता, इसलिए साधारण रीतिसे प्राणायाम किया करो।"

जनकधारी लालजीने फिर पूछा, "चंचल मन इधर उधर भाग जाता है। इसे कैसे ठहराया जाय और किस रूपमें कहाँ ठहराया जाय ?"

स्वामीजीने कहा, "मूलाधारसे ब्रह्म-रन्ध्रतक, जिस चक्रमें आपका चित्त स्थिर हो सके उसीमें ठहरा लो, रूपकी, अभ्यासमें कोई भी आवश्यकता नहीं है। यदि चित्त किसी प्रकार भी स्थिर न हो तो मूलाधारसे ब्रह्मरन्ध्र पर्य्यन्त, प्रत्येक चक्रमें चमकते हुए सनकोंकी धारणा करो। उनके साथ ओमूका जप ध्यानसे करो। अथवा त्रिकुटीमें, सुईकी नोकके समान बिन्दुकी कल्पना करके उसमें धारणा-पूर्वक ओमूका ध्यान करो। ज्यों ज्यों आपकी धारणा दृढ़ होती जाय त्यों

त्यों उस तिलके खण्ड करते जाओ। यहांतक कि अन्तमें विन्दुके विना ही आपकी धारणा ध्रुवताको धारण करले।"

श्री जनकधारी लालजीके एक साथीने भी प्रार्थना की कि भगवन्! मुझे भी उपासनाकी पद्धतिका उपदेश दीजिये। महाराजने उसके मुखपर अपने नेत्रों की ज्वलन्त ज्योतिको डालकर कहा कि आप अभी यम-नियमकाही पालन कीजिए। उसने तीन वार यही प्रश्न पूछा और महाराजने भी तीनों वार उसे यम नियमका निभाना ही वताया।

वह भद्र पुरुष, कुछ खिन्न और उदास होकर, कोठरीसे वाहर निकल आया। जब उसके साथी भी उसे आ मिले तो वह उनको उलाहना देकर वोला कि इतनी दूरसे यहाँ आये, परन्तु प्राप्त कानी कौड़ी भी न हुई! इस पर उसके सङ्गियोंने उसे समझाया कि स्वामीजी तो मनुष्योंके मनोंके गुप्त भेदोंको भी जान जाते हैं। वे यदि आपको यमनियम न वताते तो आप ही वतायें और क्या कहते।

उस समय उस भद्र पुरुषको भी अपने किए दुष्कर्मका ध्यान आ गया। वह मन-ही-मन कहने लगा कि जब, मैं दायभागके एक बड़े भारी झगड़ेमें झूठी साक्षी देकर आया हूं और यहांसे जाकर भी उसीमें मिथ्या-कथन करूँगा तोमहाराजने मुझे ठीक ही उपदेश दिया है। इससे अधिकका अधिकारी, मैं हूं ही नहीं।

एक सज्जनने स्वामीजीसे निवेदन किया, 'भगवन्! पातञ्जल शास्त्रका विभूति-पाद क्या सच्चा है'।

उन्होंने कृपा की, "आप यों ही सन्देह करते हैं। योग-शास्त्र तो अक्षरशः सत्य है। वह कोई पुराणोंकी सी कल्पना नहीं है, किन्तु क्रियात्मक और अनुभव-सिद्ध शास्त्र है। दूसरी विद्याओंमें उत्तीर्ण होनेके लिए, आप लोग कई वर्ष व्यय करते हैं। इसके लिए यदि आप तीन मासतक मेरे पास निवास करें और मेरे कथनानुकूल योग-क्रियायें साधें तो आप, इस शास्त्रकी सिद्धियोंका साक्षात्, स्वयं कर लेंगे।"

एक भक्तने विनय की, "आप योगादिके परम गोपनीय, गहन और गुप्त भेदोंको जिस किसीके सामने वर्णन कर देते हैं, यह उचित प्रतीत नहीं होता। अनधिकारियोंको उपदेश देना ऐसा है जैसे सूयरोंके सम्मुख मोती बखेरना।"

महाराजने उत्तर दिया—'भद्र! ऐसे बड़े समारोहमें कोई न कोई हँस भी आ जाया करता है। परन्तु यदि, परम देवकी दया हो तो सूयर भी हँस बन सकते हैं।'

श्रीकृष्णपर बात चली तो महाराजने कहा कि ये एक महाज्ञानी महापुरुष और योगिराज थे। स्वामीजी प्रसङ्गमें भगवद्गीताके श्लोक भी सुनाया करते थे।

स्वामीजीने, आर्य्य जातिका संस्कार करते हुए, शूद्रोंपर पूरा ध्यान दिया है। उन्होंने उनको वेद-शास्त्र पठन-पाठनका पूर्णाधिकार दिया है। वे उनकी समुन्नतिके पूरे पोषक हैं। शूद्रोंका वेदाध्ययनका विधान करते हुए वे लिखते हैं; "क्या ईश्वर पक्षपाती है जो शूद्रोंके लिए तो वेदाध्ययनका निषेध और द्विजोंके लिए उसका विधान करे? यदि ईश्वर शूद्रोंको पढ़ाना-सुनाना न चाहता तो उनके शरीरमें वाक् और कर्णेन्द्रिय ही न रचता। उसने जिस प्रकार पृथ्वी जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य्य और अन्नादि सबके लिए बनाये हैं वैसे ही वेदोंका प्रकाश भी मनुष्य-मात्रके लिए किया है।"

शूद्रोंके उद्धार और बचानेकी चिन्ता भी उनके चित्तमें बड़ी गहरी थी। एक दिन, एक मनुष्य महाराजके पास आया। उन्होंने उससे पूछा, "आप कौन हैं? क्या काम करते हैं? क्या कुछ संस्कृत भी जानते हैं?"

उसने उत्तर दिया—'भगवन्! मैं ब्राह्मण हूं। अब काम-धन्धा तो कुछ नहीं करता; केवल पेन्शनपर निर्वाह होता है। संस्कृत तो नहीं आती परन्तु कुछ कर्म्म-काण्डके श्लोक कण्ठाग्र किये हुए हैं।"

स्वामीजीने उसको कहा, "आप उपदेशका कार्य्य करने लग जाइए।" उस ने विनयकी कि, "रातदिन बाल बच्चोंकी चिन्ता और सोचमें लीन रहता हूं। ऐसी अवस्थामें उपदेशका काम कैसे किया जा सकता है?"

स्वामीजीने कहा, "आपको पेन्शन मिलती है। उसमें पुत्र पौत्रका परिपालन भली भाँति हो सकता है। आप ब्राह्मण-वंशीय हैं। आपके पुरातन पुरुष, पूर्वकालमें जगद्गुरु समझे जाते थे। वे जगदुपकारमें जी-जीवनसे लगे रहते थे। आपके लिए भी उनके चरण चिन्होंपर चलना उचित है। अपने पूर्वजोंकी भांति परोपकारका व्रत धारण कीजिए और कटि बान्धकर भीलोंकी बस्तियोंमें चले जाइए। वे दिनों दिन, धड़ाधड़ ईसाई होते चले जा रहे हैं। उनको अपनी इच्छानुकूल ईश्वर भक्तिका उपदेश देकर, किसी प्रकार ईसाईयोंके पंजेसे बचाइए। आर्य्य जातिके छिलते हुए तलुओंकी, टूटती हुई उङ्गलियोंकी और कटते हुए पाँवकी रक्षा कीजिए।" पर उस ब्राह्मणके ऐसे भाग्य न थे, जो श्री वचनोंको स्वीकार करता।

महाराजके उपदेशोंसे वहांके आर्य्य पुरुषोंमें उत्साहकी मात्रा उत्कर्षको पहुंच गई। उन्होंने आर्य्य धर्म्म-मन्दिर आदि निर्माण करनेके लिए गिरगांवमें भूमि मोल ले ली। वहां एक विशाल भवन बनानेका उद्योग होने लगा। यद्यपि स्वामीजी किसीसे सहायताकी याचना नहीं करते थे, परन्तु उनकी सन्निधिमात्रसे ही लोग बड़ी उदारता दिखाते थे।

महाराज, भावना और शक्तिके अनुसार दानादिका करना बताया करते। उत्तेजित होकर उतावलीसे किसी कार्य्यको कर बैठना और पीछे पछताने लग जाना, वे अच्छा नहीं समझते थे। वे कहा करते थे कि दान उतना दो, जिस से तुम्हें भीख न मांगनी पड़े। कार्य्य-क्षेत्रमें उतना चलो, जिससे जी हार न जाय और पाँव पीछे लौटानेकी आवश्यकता न हो।

मुम्बईमें, आर्य्यसमाज-मन्दिरके निर्माणके लिए एक निधि खोला गया। लोग यथाशक्ति उसमें दान देते थे। उन्हीं दिनोंमें एक मारवाड़ी सज्जन श्री स्वामीजीके निकट आया और नम्रतासे कहने लगा, "भगवन्! मेरे पास दस सहस्र रुपये हैं। वह सारा द्रव्य मैं आर्य्यसमाज-मन्दिरके कोशमें समर्पित करता हूं। कृपया यह तुच्छ भेंट स्वीकार कीजिए।"

भगवान्‌ने भक्तकी भावनाकी भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए कहा—मैं अतीव प्रसन्न हूं कि आपके हृदयमें आर्य्य धर्म्मका इतना अगाध प्रेम है। परन्तु मैं आपकी सम्पूर्ण पूञ्जी लेकर आपके परिवारको परमुखापेक्षी, परान्नपरायण भिक्षु नहीं बनाना चाहता। जिस धर्म्मके अङ्गको पालन करते पहला धर्म्माङ्ग बिगड़ जाय वह धर्म्म ठीक नहीं है। उस मन्दिरकी क्या शोभा होगी जिसके बननेमें आपका व्यापार बन्द हो जाय! आपकी गृहस्थ-यात्रा न चल सके। हाँ, आपसे एक सहस्र रुपया लिया जा सकता है।"

महाराजका जीवन, उद्योग और पुरुषार्थका जीवन था। उनके पास आलस्यका अंश तक न दिखाई देता। उनके सेवक भी आलसो, निरुद्यमी, निरे लोथसे पड़े, भूभार-रूप न थे। प्रत्येक कर्म्मचारी कुछ कार्य्य करता ही दीख पड़ता था। स्वामीजी उपदेश दिया करते, जैसे देव-यज्ञके अनन्तर, देवोंका दिया भोग भोगनेमें पुण्य है ऐसे ही मनुष्योंका उपकार करके उनका दिया भोगनेका अधिकार है। यदि किसीका अन्नादि ग्रहण करने लगो तो पहले मन में सोचो कि इसे लेनेका मुझे कोई अधिकार भी है? और दानियोंके लिए मैं क्या कर रहा हूं। व्यर्थमें पर-पुरुषार्थजीवी बनना पाप है।"

एक दिनका वर्णन है कि अङ्गरेजीका विद्वान, एक पञ्जाबी स्वामीजीके दर्शनार्थ मुम्बईमें आया। महाराजके आदेशानुसार उसके खान-पान और निवासका उत्तम और उचित प्रबन्ध, उनके डेरेपर ही कर दिया गया। कई दिनोंतक, वह महाशय सुख-पूर्वक वहाँ रहा। उसका दैनिक काम, छड़ी घुमाते नगरमें चक्कर लगाना अथवा थककर खाटपर पड़े खर्राटे लेना ही था! एक दिन महाराजने उसको आमन्त्रित किया और कहा—"भद्र! जो पदार्थ जितना अधिक उपयोगी है उतना ही अधिक अच्छा है। मनुष्य भी उतना ही अधिक अच्छा है, जितना वह उपयोगी हो। अब आप सोचिए, कि व्यर्थमें समय खोकर आप कितनी उपयोगिता नष्ट कर रहे हैं। देखिए, मैं भी परान्न-भोजी हूं, परन्तु प्रातःसे सायंपर्यन्त परार्थ कार्य्य करता हूं। आलसी और निष्क्रय होकर, किसी

की कमाईपर ताकते रहना, मेरे सिद्धान्तके सर्वथा विरुद्ध है। परमात्माने पुरुषार्थ के लिए प्रत्येकको पर्याप्त साधन दिये हैं। उन्हींके आधारपर प्राण-यात्राका चलाना उचित है। आप मेरे मतके अनुयायी बन जाइए। इस कर्म-भूमिमें कर्म-योग को प्रधान मानिए। जबतक आपका निवास इस नगरमें रहे मुझे अङ्गरेजी समाचारपत्र सुनाया कीजिए।"

उस भद्र पुरुषने उनके कथनको सिर आँखोंपर लिया और उसी दिनसे इस कार्य्यको करना आरम्भ कर दिया।

महामति रानाडे, भारतमें जातीय जीवनकी जोत जगानेवालोंमेंसे एक थे। वे श्री स्वामीजीमें बड़ी श्रद्धा रखते थे। उनके दर्शनोंसे आनन्द लाभ किया करते थे। एक दिन वे महाराजके दर्शनार्थ आए तो स्वामीजी काममें लगे हुए थे। चिरकालतक उन्हें प्रतीक्षा करनी पड़ी। महाराजने जब अपना नियत कार्य्य समाप्त कर लिया। तब उनसे वार्त्तालाप करने लगे। स्वामीजीकी उदात्त नीतिमत्ता की प्रशंसा, श्रीमान् रानाडे सदा किया करते थे।

स्वामीजीको अतिथियोंके सत्कारका बड़ा ध्यान रहता था। एक दिन, कोई वङ्गीय भद्र पुरुष उनके दर्शनोंको आया। वह महाराजके चरण छूकर बैठ गया और वार्त्तालाप करते, उसने पानी पीनेकी इच्छा प्रकट की। महाराजने अपने एक गुजराती शिष्यको आज्ञा की कि इनको जल पिलाइए। गुजरात देशके आर्य्य डाढ़ी नहीं रखते। उस सज्जनकी लम्बी डाढ़ी देखकर शिष्यने उसको मुसलमान समझा, इस लिए उसे दोनेमें पानी पिलाया। जब अतिथि उठकर चला गया तो उन्होंने उस शिष्यको बुलाकर झिड़का और कहा, "आप लोग अभी तक सभ्यताके साधारण नियम भी नहीं सीख पाये हैं। बताओ, आपने उसे गिलासमें जल क्यों नहीं दिया?"

शिष्यने प्रार्थना की, "एक मुसलमानको अपने वर्तनमें पानी पिलाकर मैं वर्तनको भ्रष्ट कैसे कर लेता?" महाराजने उसे कहा, "वैसे तो वह मुसलमान नहीं था प्रत्युत एक उपाधिधारी, बड़ा भारी आर्य्य भूमिहार था। किन्तु

मेरे पास ईसाई, मुसलमान सभी लोग आते हैं। उनके आदरमें कदापि कोई त्रुटि नहीं होनी चाहिये। आगेको, चाहे जिस मतका मनुष्य हो, जब जल माँगे उसे ग्लासहीमें दिया करो"।

उन्हीं दिनों मुम्बईमें, पश्चिमके सुप्रसिद्ध, पण्डित, मोनियर विलियम्स महाशय आये हुए थे। एक दिन उन्होंने भी श्री स्वामीजीका शुभ मिलाप प्राप्त किया। पहले संस्कृत भाषामें बातचीत आरम्भ हुई, परन्तु अतिथिको अनभ्यासके कारण संस्कृतमें वार्त्तालाप करना कठिन प्रतीति होता था। इस लिए महाराजने एक दुभाषिया बीचमें बैठा लिया। स्वामीजी तो संस्कृतहीमें बोलते थे और मोनियर विलियम्समहाशयकी इङ्गलिशका आर्य्य भाषामें अनुवाद करके, दुभाषिया स्वामीजीको समझाता था।

बड़े लम्बे कथनोपकथनके अनन्तर, मोनियर, विलियम्स महाशयने, महाराजके मङ्गल मिलापके लिए अति प्रसन्नता प्रकट करते हुए, कहा, "आपके विचार परिमार्जित ओर अत्युच्च हैं। यूरोप-वासियोंमें भी इन विचारोंका प्रचार होना चाहिए। यदि आप उस महाद्वीपकी यात्रा करना स्वीकार करें तो मैं आपके व्यय आदिका भार अपने ऊपर लेता हूं"।

स्वामीजीने अतिथिको उसकी इस उदारताके लिए धन्यवाद देकर कहा, "जिस भारत-भूखण्डमें मैं रहता हूं वहाँ अविद्यान्धकारघोरतम रूप धारण किये बैठा है। इस देशके वासी दिन पर-दिन दुःखी और दरिद्र होते चले जाते हैं। यहाँके समाजमें कुरितियोंका कोई भी पारावार नहीं है ऐसे ही कारणोंसे इस देशका सुधार करना मैं अपना मुख्य कर्तव्य मानता हूं।

दूसरे विदेश जानेके लिए वहाँकी भाषाका सीखना आवश्यक है। जितना समय विदेशकी भाषा सीखनेमें लगता है उसमें यहीं अधिक कार्य्य कर सकूंगा। तीसरे, जिस देहके इतने लोग विरोधी हैं उसका भी अब अधिक भरोसा नहीं है। थोड़ेसे समयमें, यदि इससे इसी देशका कल्याण-कार्य बन सके तो बहुत अच्छा है"। तत्पश्चात् अतिथि महाशय बिदा होगये।

स्वामीजीके उत्तमोत्तम कार्योंमें गो-रक्षाका कार्य्य भी सम्मिलित है। गो-वधके विरुद्ध आर्य्य लोग घोर घृणाका प्रकाश तो किया ही करते थे, परन्तु सभायें संगठित करके गो-रक्षा करनेका भाव, सबसे पहले श्री महाराजहीने जाग्रत किया। उनसे पूर्व किसी भी पुरुषको यह पद्धति नहीं सूझी थी।

गो-रक्षासे उनका तात्पर्य्य केवल यही न था कि अङ्गहीन, वृद्धा, जीर्णशीर्ण शरीरा, आसन्न मरणा अस्थि-पिंजरावशेषा, दो चार गायें पिंजरापोलमें बंद करके गो-रक्षाके ढोंगका ढोल बजाया जाय, और दूध देनेवाली गायें और बोझा ढोनेवाले बैल अधिकाधिक हनन होते रहें। उन्होंने अपने सङ्गठनका नाम 'गो-रक्षण और कृषि-सुधार' रक्खा था। जबतक युवावस्थाकी गायें और बैल वधसे न बचाये जायँ तबतक गो-रक्षणका कोई लाभ ही नहीं है। उनका बचाव केवल कृषि-सुधारसे ही हो सकता है। महाराजकी कुशाग्र बुद्धिने यह बात जान ली थी कि वास्तवमें गो-रक्षा तभी होगी, जब सभायें गो-जातिमात्रकी रक्षा करेंगी। किसानोंको खेत जोतनेके लिये, रहट चलानेके लिए, चरसा खींचनेके लिए, खलिहानसे अन्न और भूसा ढोनेके लिए तथा अन्यान्य कार्योंके लिए कृषि-प्रधान देशोंमें बैलोंकी अत्यावश्यकता है। नगरोंमें अच्छे दूधका प्रबन्ध करनेके लिए सहस्रों गायें पाली जानी चाहिएँ। कृषकोंको और नागरोंको अच्छी गो-सन्तान प्रदान करने हीसे गो-रक्षा हो सकती है।

महाराजने गो-रक्षापर सैकड़ों व्याख्यान दिये। सहस्रों मुसलमानों और ईसाइयोंको गायकी उपयोगिता निश्चित कराई। गो-करुणा-निधि नामकी एक युक्तियुक्त पुस्तक प्रकाशित की। और अन्तमें, सकल गोरक्षकोंको एकवाक् बनाकर महाराणीके पास पुकार पहुंचानेके लिए कटिबद्ध हो गये। महाराजका निश्चय था कि गो-वध बँद करानेके लिए, यदि सभी सज्जन अपने हस्ताक्षर भेजें तो सर्व प्रिय लाट रिपन महोदयके शासन-समयमें राजेश्वरीका गो-हत्या बंद कर देनेकी आज्ञा प्रचलित कर देना बहुत ही सम्भव है। इसलिए उन्होंने

लोगोंके हस्ताक्षर करनेके लिए भारतभरमें पत्र भेजे और गो-रक्षाकी उपयोगितापर निम्न लिखित प्रभावशाली लेख प्रकाशित किया:—

"ओम्। जगतमें ऐसा कौन मनुष्य है जो सुख-प्राप्तिमें प्रसन्न और दुःखकी प्राप्तिमें दुःखित न होता हो। जैसे अपने ऊपर यदि कोई उपकार करे तो आनन्द होता है, इसीप्रकार दूसरोंका उपकार करनेपर आनन्दित होना चाहिए। क्या भूगोलभरमें कभी कोई मनुष्य ऐसा था, अब है, अथवा आगेको होगा जो परोपकार-रूप धर्म्म और पर-हानि रूप अधर्म्मके बिना धर्म्माधर्म्मका कोई अन्य स्वरूप सिद्ध कर सके।

वे महाशय जन धन्य हैं जो अपने तन, मन और धनसे संसारका अधिक उपकार साधित करते हैं। वे लोग निन्दनीय हैं जो अपनी अज्ञानतासे स्वार्थवश होकर अपने तन, मन धनसे जगमें पर-हानि करके बड़े लाभका नाश करते हैं। सृष्टि क्रमसे यही सुनिश्चित होता है कि परमात्माके रचे सकल पदार्थ पूर्ण उपकार लेनेके लिए ही हैं। अल्प लाभके कारण महाहानि कर बैठना सृष्टि क्रमके प्रतिकूल है।

विश्वभरमें जीवनके मूल दो ही पदार्थ हैं—एक अन्न और दूसरा पान। मनुष्योंको खान पान पुष्कल प्राप्त हो, इस अभिप्रायसे आर्य्यावर्त्तके शिरोमणि राजे महाराजे और प्रजाके लोग महोपकारक गाय आदि पशुओंका न तो आप वध करते और न ही किसी दूसरेको करने देते थे। अबतक भी वे गाय बैल और भैंसका हनन नहीं होने देते। इनकी रक्षासे अन्न पानकी बहुत ही वृद्धि होती है, जिससे सर्वसाधारणका सुखपूर्वक निर्वाह हो सकता है।

राजा-प्रजाका जितनी हानि इनकी हत्यासे होती है उतनी किसी भी दूसरे कर्मसे नहीं हो सकती। एक गायके वधसे चार लाख और एक भैंसके वधसे बीस सहस्र मनुष्योंकी हानि होती है—इसका निर्णय हमने 'गो-करुणानिधि' नामक पुस्तकमें अति विस्तारसे किया है। इस लिए हम सब मिलकर प्रजा हितैषिणी श्रीमती राजराजेश्वरी महाराणी विक्टोरियाकी सेवामें प्रार्थना करें और

उनकी न्याय-पद्धतिमें, जो गो-हत्या रूप अन्याय हो रहा है। उसे बन्द कराकर प्रसन्नता लाभ करें।

इस बातका हमें पूर्ण निश्चय है कि विद्या, धर्म्म और प्रजा-हित-प्रिया श्रीमती राजेश्वरी महाराणी विक्टोरिया, शासक सभा और सर्वप्रिय राजप्रतिनिधि महोदय इस हानिकारक गाय-बैल और भैंसके हननको उत्साह और प्रसन्नता पूर्वक शीघ्र ही बन्द कर देनेसे हम सबको आनन्दित करेंगे। देखिए तो सही, अनेक गुणयुक्त गाय आदि पशुओंके वधसे दूध-घी कितने महंगे हो गये हैं। किसानोंको कितनी बड़ी हानि हो रही है, जिसका फलराजा-प्रजा सभी भोग रहे हैं। नित्यप्रति हानिकी मात्रा बढ़ती ही चली जाती है। जब कोई मनुष्य पक्षपातको छोड़कर देखता है तो परोपकारहीको धर्म्म और पर हानिहीको अधर्म्म जानता है। क्या यह विद्याका सिद्धान्त और फल नहीं है कि जिससे अधिकांश मनुष्योंका अधिक उपकार हो उसका नाश कभी नहीं करना चाहिए, किन्तु उसका पालन और वर्धन करना ही आवश्यक है।

परम दयालु, न्यायकारी, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान् परमात्मा इस जगदुपकारक कामके करनेमें समस्त राजा-प्रजाकी एक-सम्मति करे। हस्ताक्षरका—

विज्ञापन—सब आर्य्य सज्जनोंको विदित किया जाता है कि जिस पत्रके ऊपर 'ओ३म्' और नीचे 'हस्ताक्षर' ऐसा लिखा छपा है वही सही करनेका पत्र है। उसीपर हस्ताक्षर करना चाहिए। हस्ताक्षर इस प्रकार करने उचित हैं कि जिस राज्य अथवा देशमें ब्राह्मणादि वंशोंकी जितनी संख्या हो वह लिखकर फिर लिखना चाहिए कि मैं अमुक पुरुष इतने सौ, सहस्र, लाख अथवा करोड़ मनुष्योंकी ओरसे सही करता हूं। प्रधान महाशयकी सही पर ही सारे सभासदोंकी सही समझी जायगी। परन्तु जितने मनुष्योंकी ओरसे एक मुख्य पुरुष सही करे उसे चाहिए कि उनकी सही लेकर अपने पास रख ले।

जो जो मुसलमान ईसाई इस महोपकारक विषयमें अपनी सहीसे सहायता करना चाहें वे हस्ताक्षर कर सकते हैं। मुझे दृढ़ विश्वास है कि आप परमो-

दार महात्माओंके पुरुषार्थ, उत्साह और प्रेमसे यह महोपकारक महापुण्य और कीर्ति प्रदायक कार्य्य यथावत् सिद्ध हो जायगा।"

मुम्बई चैत कृष्णा नवमी १९३८। दयानन्द सरस्वती।

महाराजने उन दिनोंमें गो-रक्षाके विषयमें बड़े बलसे कार्य आरम्भ किया था। स्थान-स्थानपर पत्र भेजकर हस्ताक्षरोंके लिये प्रेरणा की थी।

मुम्बई वासहीमें स्वामीजीने आर्य्य समाज और थियासोफीकल सोसायटी के सङ्ग-भङ्गकी अन्तिम घोषणा कर दी।

तीसरा सर्ग।
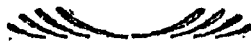
स्वामीजीके पास गुजरात—काठियावाड़ और आगरा—अवध आदि प्रान्तोंसे निमन्त्रण पत्र लगातार आते थे परन्तु उन्होंने देशीय शासकों को सुधारनेके विचारसे राजस्थानको प्रस्थानकर दिया। आषाढ़ सु० ६ सं० १९३९ को मुम्बईसे चलकर वे ८ को खण्डवा पहुंचे। फिर इन्दौर रतलाम और जावरा आदि नगरोंमें धर्म्मोपदेश करते हुए श्रावण सु० ६ सं० १९३९ को चित्तोड़में सुशोभित हुए। महाराजके वहाँ पहुंचनेसे पहले ही मेवाड़ राज्यकी ओरसे उनके निवासका पूर्ण प्रबन्ध हो गया था। ठाकुर जगन्नाथजी उस समय चित्तौड़में उच्च राजकर्म्मचारी थे। उन्होंने अति भक्तिभावसे महाराजकी सेवा शुश्रूषा की। स्वामीजीने दो सप्ताहपर्यन्त चित्तौड़में निवास किया।

द्वितीय श्रावण व० १२ को चित्तौड़से चलकर महाराज १३ को उदयपुरमें पधारे। वहाँ वे नौ-लखा उद्यानमें, एक सुन्दर धवल राजमन्दिर में—विराजमान हुए। उस समय उनके साथ रामानन्द ब्रह्मचारी, स्वामी आत्मानन्दजी और पण्डित भीमसेनजी थे। दो एक सेवक भी थे। जिस दिन महाराजने अपने चरण-स्पर्शसे उदयपुरको शोभा प्रदान की उसी दिन श्रीराणाजी

मन्त्रिमण्डल और पुरोहितों-सहित श्रीदर्शनोंको आये। पुरातन आर्य्य राजाओं की भाँति, राणा श्रीसज्जनसिंहजी आगे पैदल चलते थे और उनके पीछे सैकड़ों लोगोंकी भीड़ चली आती थी। स्वामीजीके समीप जाकर श्रीराणाजीने अति नम्र नमस्कार की और कुशल प्रश्नानन्तर यथायोग्य आसनपर बैठ गए। कुछ कालतक वार्त्तालाप करने पश्चात् राणाजी आज्ञा लेकर चले आए।

स्वामीजी प्रातःकाल उठकर गोवर्द्धन-विलास पर्वतपर भ्रमण करने जाया करते थे। परन्तु कुछ दिनोंके पश्चात्, राणाजी सवेरे ही श्रीसेवामें उपस्थित होने लग गये। इस लिए फिर गुलाब उद्यानमें ही पर्याप्त भ्रमण कर लेते।

उदयपुरमें पधारनेके एक मास पश्चात्, मौलवी अब्दुर्रहमानने स्वामीजीसे प्रश्नोत्तर किये वे प्रश्नोत्तर लिखे भी जाते थे। वे नीचे दिये जाते हैं—

"ऐसा कौनसा धर्म्म है जिसकी धर्म्म पुस्तक सब मनुष्योंकी बोल-चाल और प्राकृत नियमोंको सिद्ध करनेमें प्रबल हो। जितने मत मिलते हैं वे भिन्न भिन्न देशोंकी भाषाओंमें, भिन्न भिन्न नियमोंसे ऐसे बने हैं कि एक दूसरेसे मेल नहीं रखते। जहाँ जो मत उत्पन्न हुआ है उसके सारे गुण वहींतक सीमा-बद्ध हैं। मतोंमें एक दूसरेसे ऐसे भिन्न चिन्ह पाये जाते हैं कि जिन्हें दूसरे देखना भी अच्छा नहीं समझते। ऐसी अवस्थामें सच्चा धर्म्म कौनसा है?" "मत-सम्बन्धी सारी पुस्तकें हठधर्मीसे भरी पड़ी हैं। इस लिए उनमें विश्वास के योग्य एक भी पुस्तक नहीं है। मेरी सम्मतिमें जो पुस्तक ज्ञान सम्बन्धी है वही सत्य है। उसमें पक्षपात नहीं हो सकता। ऐसी ही पुस्तकका सृष्टि-क्रमके अनुकूल होना सम्भव है। मेरे आजतकके अन्वेषणमें वेद ही ऐसी पुस्तक है। वह किसी एक देशकी भाषामें नहीं है। वह ज्ञानमय है और उसकी भाषा भी ज्ञान भाषा है। इस लिए वेदपर ही निश्चय लाना चाहिए"। "क्या वेद मतकी पुस्तक नहीं हैं?' 'नहीं, वह ज्ञानकी पुस्तक है'। 'मतका आप क्या अर्थ करते हैं?' 'पक्षपातयुक्त मन्तव्योंके समुदायको मत कहते हैं"। 'हमारे पूछनेके अभिप्राय का उत्तर आपने वेद बताया है, सो क्या वेदमें वे सब गुण पाये जाते हैं?' 'हाँ,

पाये जाते हैं'। 'आपने कहा कि वेद किसी देशकी भाषामें नहीं है। जो भाषा किसी भी देशकी नहीं है वह सब भाषाओंपर कैसे प्रबल हो सकती है?' 'जो देश विशेषकी भाषा होती है वह व्यापक नहीं हो सकती'। 'जब वह भाषा किसी देशकी नहीं है तो वह सबपर प्रबल कैसे हो सकती है?'। जैसे आकाश किसी एक स्थानका नहीं है, परन्तु सर्वत्र व्यापक है ऐसे ही वेदोंकी भाषा देश-भाषा न होनेसे सब भाषाओंमें व्यापक है'। 'यह भाषा किसकी है।?' 'ज्ञानकी'। 'इसका बोलनेवाला कौन है?"। 'इसका बोलनेवाला सर्वदेशी परब्रह्म है'। 'इसका सुननेवाला कौन है?' 'इसके सुननेवाले अग्नि आदि चार ऋषि सृष्टिके आदिमें हुए हैं। उन्होंने परमात्मासे सुनकर सब मनुष्योंको सुनाया है,। 'ईश्वरने यह भाषा उन्हींको क्यों सुनाई? क्या वे इस बोलीको जानते थे?"। 'वे चारों सर्वोत्तम थे। ईश्वर हीने उनको तत्काल भाषाका भी ज्ञान करा दिया था"। आप इसमें क्या युक्ति देते हैं?'। 'कारणके विना कार्य्य नहीं होता यही युक्ति है और ब्रह्मादि ऋषियोंकी साक्षी है'। भूमण्डलभरके सारे मनुष्य क्या एक ही कुलके हैं'? 'भिन्न २ कुलोंके हैं। आदि सृष्टिमें उतने ही जीव मनुष्य-शरीर धारण करते हैं, जितने गर्भ सृष्टिमें शरीर धारण करनेके योग्य होते हैं। वे जीव असंख्य होते हैं'। 'इस पर कोई युक्ति दीजिए'। 'अब भी सब अनेक मां-बापकी सन्तान हैं'। जो आकृतियाँ मनुष्योंकी हैं उनके तन क्या एक ही प्रकारके बने थे'। 'आदिमें मनुष्योंमें रङ्ग और लम्बाई चौड़ाई आदिका भेद अवश्य था'। सृष्टिकी उत्पत्ति कब हुई'? 'सृष्टिको उत्पन्न हुए एक अर्ब छयानवे करोड़ और कई लाख वर्ष बीत गये हैं'। 'आप किसीमतके नियमोंका पालन करते हैं कि नहीं'? 'जो धर्म्म ज्ञानानुकूल है मैं उसके सारे नियमोंका पालन करता हूं'। 'क्या उपादान कारण अनादि है? आप कितने पदार्थोंको अनादि मानते हैं'? 'उपादान कारण अनादि है। जीवात्मा, परमात्मा और प्रकृति ये तीन पदार्थ अनादि हैं। इनका परस्पर संयोग-वियोग कर्म और कर्मोंका फल-भोग प्रवाहसे अनादि हैं'। 'जो वस्तु हमारी बुद्धिकी सीमासे बाहर है हम उसे अनादि कैसे मान लें'? 'जो वस्तुयें नहीं हैं वे कभी भी नहीं

हो सकतीं। जो हैं वे पहले भी थीं और आगेको भी बनी रहेगी'। वेद यदि ईश्वरका बनाया हुआ होता तो सूर्यादिकी भाँति सारे संसारके सब मनुष्योंको इससे लाभ पहुंचता। वेद पवित्र, सूर्यादि पदार्थोंकी तरह ही सबको लाभ पहुंचाता है। सारे धर्म्मोंके ग्रन्थों और विद्याकी पुस्तकोंका कारण वेद ही है। यह सबसे पहले है, इस लिए जितने शुभ विचार और ज्ञानकी वार्त्तायें दूसरे ग्रन्थोंमें पाई जाती हैं वे सब वेदसे ली गई हैं। हानिकारक कथायें उन ग्रन्थोंके कर्त्ताओंकी अपनी मन-घड़न्त हैं। वेदमें किसीका खण्डन-मण्डन नहीं पाया जाता, इस लिए वह पक्षपात-रहित है जैसे सृष्टि-विद्यावाले सूर्यादिसे अधिक लाभ लेते हैं ऐसे ही वेदका अनुशीलन करनेवाले वेदसे अधिकाधिक उपकार प्राप्त करते हैं'।

एक दिन सवेरे, एक कषायाम्बर-धारी, विहारी ब्राह्मण दण्ड कमण्डलु लिये नौ-लखा उद्यानमें आ निकला। उसने दूरसे देखा कि कोई महात्मा पद्मासन रमाये ध्यानमें लीन हैं। वह और निकट आकर उन महामुनिजीकी माधुरी और मनोहारिणि मूर्तिको एकटक, लालायित लोचनोंसे निहारने लगा। बाल सूर्य्यकी सुनहरी किरणें उनकी कुन्दनसमान, दीप्तिमान् देहपर पड़कर उसे और भी उद्दीप्त कर रही थीं। स्वर्ण कलशकी भाँति, उनका मस्तक चमक रहा था। तप्त-ताम्रसमान, उनके दोनों हाथोंकी हथेलियाँ, मुद्राबद्ध दशामें, शोभा पा रही थीं। सूर्य्यकी तरुण किरणसे प्रकाशित उनके अरुणवर्ण नख, नवपल्लवसदृश, दहकते दिखाई देते थे। उदयकालके सूर्यके समान रक्तवर्ण उनके दोनों होठों-पर एक नीरव, अनुपम, अनिर्वचनीय, आनन्दमयी मुस्कराहट खेल रही थी। आगन्तुक उस दैवी स्वरूपके दर्शनोंमें ऐसा निमग्न हुआ, ऐसा लीन हुआ कि चित्रवत् हो एक चित्तसे उस देव-दुर्लभ दर्शनामृतको अतृप्त तृषासे पान करने लग गया। उसे ऐसा प्रतित होता था कि इस सर्वाङ्गसुन्दर, सुवर्ण-प्रतिमाके चहुं ओर, प्रकाश-पुञ्जका एक चक्र-सा बना हुआ है।

कोई एक मुहूर्त्तके पश्चात्, उस महापुरुषने अपनी चित्त-वृत्तिको समाधिकी

उच्च भूमिसे नीचे उतारा और नेत्र खोलकर ओम् नामका बार बार सुरीले स्वरसे गायन किया। उसी समय आगन्तुकने उनके चरणोंपर अपना सिर रखकर नमस्कार की। दो चार बातोंहीसे अतिथिको ज्ञात हो गया कि यही भगवान् दयानन्द हैं।

फिर चरण ग्रहण करके उसने निवेदन किया, 'भगवन्! मैं विहार देशका रहनेवाला ब्राह्मण हूं। मैंने व्याकरण और दर्शन शास्त्रोंका अनुशीलन किया है। विशेषतासे वेदान्त शास्त्रको अधिक परिश्रमसे पढ़ा हैं मैं वैराग्यवश गृह-परित्यागकर पर्य्यटन कर रहा हूं, मेरा वेष तो संन्यासियोंका सा है और नाम भी सहजानन्द है, परन्तु मैंने विधिपूर्वक संन्यास नहीं लिया। मैं आपकी विमल कीर्ति सुनकर, सुदूर देशसे चलकर यहाँ आया हूं। अपनी अद्वितीय दयालुतासे, मुझे संन्यास देकर निज जनोंकी पंक्तिमें मिला लीजिए'।

भगवान्ने, अपने द्युतिमान् दहिने हाथसे, सहजानन्दजीके पृष्ठ-प्रदेशको प्रकाशित करते हुए कहा—"वत्स यदि आपकी ऐसी ही भावना है और आप सार्वजनिक जीवनकी जड़को अपने पुरुषार्थके पानीसे सींचना चाहते हैं तो चलिये हमारे डेरेपर ही विश्राम कीजिये। देश-काल मिलनेपर संन्यासकी वार्त्ता भी विचार ली जायगी।

सहजानन्दजो स्वामीजी महाराजके पास रहने लगे। अन्तमें सुयोग्य व्यक्ति जानकर महाराजने उनको अपने सेवक-समूहमें सम्मिलित कर लिया। महाराजने सहजानन्दजीको उपदेश दिया, 'संन्यासीको सदा परमात्मापर ही निर्भर करना चाहिये। आप नित्य प्रति प्रातः और सायं समय प्रणव पवित्रका जप और आराधन किया करें। यही हम लोगोंका आश्रय और आधार है। इसके चिन्तनसे चित्तकी सारी चंचलता चूर हो जाती है। पाप-पङ्कको धोनेके लिए इससे बढ़कर दूसरा साधन नहीं है। महामुनि जन, इसी महामन्त्रसे, मन्मथोन्मथन करके परमानन्दमें निमग्न रहा करते हैं।

लक्ष्यको वेधनेके समय, जैसे वीर धनुर्धर टकटकी लगाकर केवल लक्ष्य

ही को देखता है, इसी प्रकार मनोवृत्तियोंको एकाग्र कर प्रणव-पाठ जपनेसे कल्पनातीत परिणाम प्राप्त होता है। जब तुम चिरकालपर्यन्त इस भक्तियोगको करते रहोगे तो समाधिके मधुमय, स्वादु फलको आप ही आस्वादन करने लगोगे। उस समय आपकी सब वासनायें शान्त होजायँगी। कामनायें परा तृप्तिको प्राप्त कर लेंगी'।

सहजानन्दजीको स्वामीजीने दशलक्षण-युक्त धर्म्मका पालन करनेकी आज्ञा की।

महाराजने अपने ग्रन्थोंमें लिखा भी है—'इसी दश-लक्षणयुक्त वेदोक्त धर्म्मपर आप चलना और दूसरोंको समझा कर चलाना संन्यासियोंका विशेष धर्म्म है। संन्यासियोंका मुख्य कर्म यही है कि गृहस्थादि सब आश्रमोंको सब प्रकारके सच्चे व्यवहारोंका निश्चय करायें। उनसे अधर्मकर्म छुड़ा दें। उनके संशय छेदन कर उनको धर्म्म-युक्त व्यवहारोंमें प्रवृत्त करें।

जैसे देखने और सुननेके सामर्थ्यसे विहीन आँख और कानके गोलकोंका होना व्यर्थ है, ऐसे ही, जो संन्यासी जन सत्योपदेश नहीं देते और वेदादि सत्य शास्त्रोंका विचार तथा प्रचार नहीं करते वे भी जगत्में व्यर्थ भाररूप हैं'।

महाराजने अपने नूतन शिष्यको प्रचारके कार्य्यके लिए उत्तेजित किया। उसको कहा, 'आप पर्याप्त पठित हैं। सुयोग्य और समझविचारवाले हैं। आपको अवकाश भी बहुत है। कटिबद्ध होकर आर्य्य समाजोंमें पर्य्यटन कीजिए और स्थान-स्थानपर उपदेश देनेमें प्रवृत्त हो जाइए

सहजानन्दने सिर झुकाकर श्री वचनोंको स्वीकार कर लिया। उन्होंने रातदिन महाराजके पास निवास करते हुए देखा कि वे रातके समय केवल चार घण्टेभर विश्राम लेते हैं और फिर उठकर ध्यानारूढ़ हो जाते हैं। किसी निर्जन वन-स्थान अथवा एकान्त उद्यानमें भी, प्रतिदिन सूर्योदयके समय, एक घण्टाभरके लिये ध्यानारूढ़ हुआ करते हैं।

नौ-लखा उद्यानके पास ही एक विस्तीर्ण सरोवर है। महाराज गोवर्द्धन

पर्वतको उसीके किनारे किनारे जाया करते । वे तो बहुत सवेरे जाते थे, परन्तु सहजानन्दजी, सूर्योदयसे कुछ ही पूर्व, उसी ओर भ्रमण करने निकलते थे। एक दिन; अपने निवासके उद्यानसे बहुत अन्तरपर, सहजानन्दजीने देखा कि स्वामीजी जलपर पद्मासन लगाये, योग-मुद्रामें कमल-दलकी भाँति विराजमान हैं। गुरुदेवकी इस मनोहर योग-मुद्राने उनके मनमें एक गहरा भक्तिभाव उत्पन्न कर दिया। उस शान्त समयमें, उस शून्य प्रदेशमें, उस शान्त सरोवरके ऊपरी भागपर वे प्रशान्तात्मा ऐसे सुन्दरस्वरूप, ऐसे तप्त सुवर्ण-वर्ण और मनोहर दिखाई देते थे मानो सागरमें सूर्योदय हो रहा है।

महाराज कभी कभी लम्बी समाधि भी लिया करते थे। अपनी कोठरीके गवाक्ष खोल देते और द्वार बन्द करके ध्यानमें निमग्न हो जाते थे। जहाँ कहीं लम्बी समाधिमें अवस्थित होना होता, वहाँ एक दिन पहले ही मिलने जुलनेवालोंको उस दिनके लिये आनेसे रोक देते। समाधिस्थ होनेसे पूर्व अपने कर्मचारियोंको कह देते कि आज अमुक समयतक हमारी कोठरीके पास कोई न आये और न ही कोई किवाड़ खटखटाये। बहिर्मुख कर्म्मचारी वर्ग तो यही समझता कि आज स्वामीजीका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। वे भीतर पड़े आराम करते हैं। चलो छुट्टी मिल गई, इधर उधर चक्कर लगायँगे। परन्तु सहजानन्द ऐसी समझके मनुष्य न थे। उनको अपने गुरुदेवके गुणग्राम और गौरवगरिमाका ज्ञान हो गया था।

उदयपुरमें एक बार, महाराजने श्वास-प्रश्वासतककी क्रियाको रोककर निरन्तर चौवीस घण्टोंकी समाधि ली। गुरुदेवने, अपने नवीन शिष्यको यह भेद एक दिन पहले ही बता दिया था और कह दिया था कि आप चाहें तो चुपचाप, मौन भावसे खिड़की-विशेषद्वारा देख सकते हैं। उनके आदेशको पाकर, सहजानन्दजीने तुर्य्यावस्था अवस्थित और असंप्रज्ञात समाधिगत, गुरु महाराजके उस दिन रातमें कई बार दर्शन किये।

उस समय महाराजकी काया अकम्प और अचल थी। वे सौन्दर्यसमुच्चय

प्रतीत होते थे। उनके मुखमण्डलकी कान्ति, मस्तकका तेज, मुद्राकी शोभा और देहकी दीप्ति अद्भुत और अनुपम दीख पड़ती थी। उनके चारों ओर शान्ति बरस रही थी। उस समय वहां शान्ति रस मूर्तिमान हो रहा था।

महाराजका हृदय स्फटिक के सदृश था उसमें दूसरोंके मनोगत भाव प्रतिबिम्बित हो जाते थे। मन लगानेपर, दूर देशमें घटित घटनाओंका भी उसमें आभास पड़ जाता था।

एक दिन श्री राणा सज्जनसिंहजी और सहजानन्दजी आदि सज्जन स्वामीजीके पास बैठे थे। महाराजने श्री राणाजीको कहा, "पण्डित सुन्दरलालजी यहां आ रहे हैं। यदि पहले सूचना देते तो उनके लिये यानका उचित प्रबन्धकर दिया जाता।" राणाजीने निवेदन किया, "भगवन्! अब भी यान भेजा जा सकता है।' इसपर स्वामीजीने कहा, "अब तो वे बैलगाड़ीमें आ रहे हैं। उसका एक बैल शुक्ल वर्ण है और दूसरेके तनपर लाल धवल धब्बे हैं। वे कल यहां पहुंच जायंगे।' महाराजका कथन अगले दिन अक्षरशः सत्य सिद्ध हुआ।

एक दिन, दो साधु स्वामीजीसे मिलने आये। सहजानन्दजीने उनका आगमन श्रीसेवामें निवेदन किया। इसपर उन्होंने कहा कि अभी हमें कुछ कृत्य करना शेष है। इतनेमें आप अतिथियोंको भोजन कराइये। जब सहजानन्दजी उन अभ्यागतोंको भोजन करा चुके तो स्वामीजीने उनको-भीतर आमन्त्रितकर लिया। वे दोनों महात्मा महाराजसे बड़ी देरतक ज्ञान-चर्चा करते रहे। जब वे चलने लगे तो बोले—"भगवन्! आप अधिकारी जनको ही उपदेश दिया करें। जो लोग आपके सत्सङ्गोंमें आते हैं वे सब ही अधिकारी नहीं होते। आपके खण्डन-विषयक व्याख्यानोंके तो विरले जन ही अधिकारी होते होंगे।"

स्वामीजीने कहा, "धर्म्मोपदेशमें अधिकारानधिकारका प्रश्न उठाना व्यर्थ है। इसका अधिकारी मनुष्य-मात्र है। कोई भी बालक औषधि आप ही आप नहीं खाता किन्तु उसके बन्धु उसे विवश करके खिलाते हैं। हमारा कुरीतिखण्डन भी एक कड़वा क्वाथ है। साधारण जन धर्म्माधर्म्मके बोध और सत्या-

सत्यके विवेकसे विवर्जित हैं। उनको तो यह कटु क्वाथ बलात्कार हीसे पिलाना पड़ेगा। महात्माजी! आपके धर्म्म-बन्धु और जातिके अङ्ग आये दिन शत शत और सहस्र सहस्रकी संख्यामें ईसाई और मुसलमान होते जाते हैं; और आप हमें अधिकारानधिकारकी पट्टी पढ़ाने लगे हैं। यह समय तो कार्य्य करनेका है! धर्म्मकी नौकाको चट्टानके साथ टकरानेसे बचाने और भँवरसे निकालनेका है पहले, धर्म्मके आकाशसे विपत्तिके बादलोंको दूर कीजिये; अधिकारोंके विचार तो पीछे होते ही रहेंगे।

सहजानन्दजी, उदयपुरसेही, महाराजके आदेशानुसार उपदेशकार्य्यके लिए समुद्यत होकर चल पड़े और नगर नगरमें विचरने लग गये।

पण्ड्या मोहनलाल विष्णुलाल आदि कई सज्जन श्री महाराजसे पढ़ने लग गये। उन्हें देखकर श्रीराणाजी भी, बड़ी लगनसे, उस श्रेणीमें सम्मिलित हुए श्रीराणाजी पहले भी संस्कृत जानते थे। व्याकरणके कुछ अधिक नियम-स्वामी-जीने स्लेटपर लिखकर उन्हें समझा दिया। स्वामीजीने श्रीराणाजीको योग-दर्शन सारा पढ़ाया। न्याय और वैशेषिकके, बीच बीचमेंसे प्रकरण ऐसी रीतिसे पढ़ाये कि उन्हें सम्पूर्ण ग्रन्थका बोध हो गया। महाराजने उनको मनुस्मृति भी पढ़ाई। राजाओंके धर्म्मोंकी ऐसी उत्तम व्याख्या की कि राणाजी अतीव प्रभावित हुए। स्वामीजी कहा करते कि "मनु-स्मृति प्रत्येक मनुष्यको पढ़नी चाहिये। इसके जाने विना अपने कर्त्तव्य कर्मोंका बोध होना दुर्लभ है। यह आर्य धर्म्मका निचोड़ है। आर्य्य जातिकी नीति-रीतिका भरा, पूरा भण्डार है। मनुष्यको कार्य्य-कुशल और व्यवहार-निपुण बनाती है।"

उन्होंने मानव-धर्म्म-शास्त्र, राणाजीको सम्पूर्ण पढ़ाया। उनका अर्थ वर्णन करना, व्याख्या करके बताना, परस्परकी सङ्गति समझाना और दृष्टान्त देखकर विषयको स्पष्ट कर देना, कुछ ऐसा था कि ग्रन्थके आशयकी आकृति, एक बार तो आँखोंके सामने खड़ी हो जाती थी। किसी भ्रम और संशयको तो अवकाश ही नहीं रहता था।

उन्होंने प्रक्षिप्त श्लोकों और प्रकरणोंके समझनेके गुण भी बताये। वे उपदेश देते थे कि "जो बात प्रकरणविरुद्ध हो वह प्रक्षिप्त समझनी चाहिये। यह ग्रन्थ क्रमसे धर्म्मका वर्णन करता है। जहाँ क्रम टूटे और पूर्वापरमें विरोध आ जाय वहाँ मिलावट मानना उचित है। जैसे मनुमें बुद्धिके अनुसार दण्डका विधान है; अबोध मनुष्यके लिए थोड़ा दण्ड देना लिखा है और जो अधिक बुद्धिमान् होकर अपराध करता है उसे अधिक दण्ड देनेकी मर्यादा बाँधी है। परन्तु बीचहीमें ब्राह्मणके लिये इस नियमको शिथिल कर दिया गया है; इस लिये बीचका यह प्रसङ्ग प्रक्षिप्त है।" स्वामीजीने, राणाजीको महाभारतके भी कुछ भाग पढ़ाये।

श्री राणाजी, स्वामीजीके सत्सङ्गके लिये प्रति प्रातःकालको आया करते। जिस दिन, सवेरे समय न मिल सकता उस दिन सायंकाल अवश्य आते। एक दिन राणाजीने निवेदन किया, "भगवन्! आप जब किसी मूर्तिमान वस्तुमें ध्यान लगाना अच्छा नहीं समझते तो फिर ध्यान किया किसका जाय?"

महाराजने उत्तर दिया, "ईश्वरका कोई आकार कल्पना करके उसका ध्यान करना अनुचित है। वह सर्वव्यापक है। प्रत्येक पदार्थमें परिपूर्ण है। सबका स्वामी अन्तर्यामी और नियन्ता है; इत्यादि गुणोंका चिन्तन और ध्यान करना उचित है।"

महाराजने ब्रिटिश—भारतके प्रान्तोंमें राजा-प्रजा-धर्म्मपर अनेक व्याख्यान दिये। उनमेंसे कई व्याख्यान तो यूरोपीय राजपुरुषोंहीने कराये थे। वे जाति और देशकी उन्नति विषयोंपर भी, ओजस्विनी और तेजस्विनी भाषामें प्रभावशाली भाषण दिया करते थे। उनके भाषणोंको सुनकर श्रोताओंमें उष्मा भर जाती थी, उनका साहस बढ़ जाता था, उत्साह उमड़ आता था, हृदय उछलने लगता था अंग फड़क उठते थे और जातीय जीवनका रक्त खोलने लग जाता था, परन्तु किसी मनुष्य और जाति-विशेषके लिए मनमें घृणा और द्वेष उत्पन्न नहीं होता था। उनकी उदात्त नीतिमत्ता और राष्ट्र सुधारके

विचार, सिद्धान्त-रूपमें प्रकाशित होते थे। वे दार्शनिक भावको लिये होते थे और सबपर घट जाते थे।

महाराजने स्वराज्य और स्वायत्त शासनके सार-मर्मके कुछ एक सूत्र, और अति स्पष्ट सूत्र सत्यार्थ-प्रकाशमें उस समय लिखे थे जब, यहाँ जातीय महा-सभाका जात-कर्म्म भी नहीं हुआ था। शासन-सुधारवादियोंने स्वराज्य शब्दका अभी स्वप्न भी नहीं देखा था। महाराजके समय, भारतीयोंकी राष्ट्र नीति अभी नवजात बालिका थी, दूधमुंही बच्ची थी। पालनेमें पड़ी अंगूठा चूस रही थी। नीति-निपुण मुसलमान सज्जन उसे अछूत समझते और उससे बड़े अन्तरपर रहते थे। थोड़ेसे आर्य्य लोग थे जो कभी कभी दो एक बार, उसे व्याख्यान-भवनोंके हिण्डोलेमें डालकर, अपने धुँआधार भाषणोंके दो चार हिलोड़े दे छोड़ा करते। उनके भाई-बन्धु भी बहुतेरे ऐसे थे, जो मीठी मीठी लोरियों और कोमल कोमल थपकियोंसे उसे सुलाये रखनेहीमें तत्पर थे।

राष्ट्र जागृति और जातीय जीवनके ऐसे बालकालमें श्रीस्वामीजीका बलाढ्य शब्दोंमें, ओज और ऊष्मा-पूर्ण भाषामें स्वायत्त शासनका समर्थन करना, उसे परम सुखदायक बताना इस बातका उज्वल और ज्वलन्त उदाहरण है कि उनके राष्ट्र नीति-सम्बन्धी विचार पूर्ण प्रणतिको पाये हुए थे, चरम और परम लक्षको परिलक्षित कर चुके थे। उनके विशाल हृदयमें भारत की प्रजाका हित कूट कूटकर भरा हुआ था। उनके अन्तःकरणमें, मस्तकमें, अस्थिमें, मज्जामें, एक एक रक्तविन्दु और नाड़ी-नसमें भारतके कल्याणकी निष्कलंक कामना उत्कृष्ट उत्कर्षको पहुंच चुकी थी। समय आयगा जब भारतकी भावी सन्तति अपने जातीय मन्दिरोंमें स्वायत्त शासनकी देवीका पूजन करनेसे पूर्व उसे पहले पहल आहूत करनेवाले देव-स्वरूप दयानन्दका प्रथम अर्चन किया करेगी।

एक दिन पण्ड्या मोहनलाल विष्णुलालजीने निवेदन किया, "भगवन्! भारतका पूर्ण हित कब होगा ? यहाँ जातीय उन्नति कब होगी ?"

महाराजने उत्तर दिया, 'एक धर्म, एक भाषा और एक लक्ष बनाये बिना

भारतका पूर्ण हित और जातीय उन्नतिका होना दुष्कर कार्य्य है। सब उन्नतियोंका केन्द्रस्थान ऐक्य है। जहाँ भाषा, भाव और भावनामें एकता आ जाय वहाँ, सागरमें नदियोंकी भाँति, सारे सुख एक एक करके प्रवेश करने लग जाते हैं। मैं चाहता हूं कि देशके राजे महाराजे अपने शासनमें सुधार और संशोधन करें। अपने राज्यमें धर्म्म, भाषा और भावोंमें एकता उत्पन्न कर दें, फिर भारतभरमें आपही आप सुधार हो जायगा।"

फिर श्री पण्ड्याजीने प्रार्थना की, "जब आपका उद्देश्य और आदर्श एकता सम्पादन करना है तो आप मत मतान्तरोंका कठोर खण्डन क्यों करते हैं? इस से तो उलटा वैर-विरोध वैमनस्य बढ़ता है।"

महाराजने उत्तर दिया, "एक तो मेरा धर्म्मिक लक्ष्य सार्वजनिक है। उसे संकुचित नहीं किया जा सकता। दूसरे, भारतवासी लम्बी तानकर, ऐसी गहरी नींदमें सो रहे हैं कि मीठे शब्दोंसे तो आँख तक खोलनेको भी समुद्यत नहीं होते। सुधारका तो ये नाम तक नहीं लेते। कु-रीतियों और कु-नीतियोंके खण्डन रूप कड़े कोड़ेकी तड़ातड़ ध्वनिसे भी यदि, ये जग जायँ तो ईश्वरका कोटि कोटि धन्यवाद करूंगा।

पण्ड्याजी! कोई देश, जन शून्य नहीं हो जाया करता। लोग तो बने ही रहा करते हैं। परन्तु धर्म्म-गुरुओं और सामाजिक नेताओंकी असावधानी, प्रमाद और आलस्यसे भावना, भाव और भाषा आदि एकताके चिन्ह बदल जाते हैं। जातिके आचार-विचार परिवर्त्तित हो जाते हैं। रहन-सहनके ढङ्गोंमें भेद आ जाता है। ठीक ऐसा समय अब इस देशपर उपस्थित है। यदि सम्भाला न गया तो आर्य्य जाति परिवर्तनके चञ्चल चक्रपर चढ़कर अतिशय उतावलीसे, अपने पूर्व पवित्र शरीरको परिवर्तित कर डालेगी। इसके पिछले प्रमादके कारण करोड़ों मनुष्य मुसलमान बन गए। अब प्रतिदिन सैकड़ों ईसाई बनते चले जा रहे हैं! ऐसे समयमें तो, अपने सधर्म्म बन्धुओंको कड़े हाथसे उनकी चोटियाँ पकड़कर भी जगाना होगा। भाई! यह कटु कर्त्तव्य, मैं कोई अपने

स्वार्थके लिए तो पालन नहीं कर रहा हूं। मुझे तो इसके कारण अवहेलना, निन्दा, कुवचन, ईंट-पत्थर और विष ही स्थान-स्थानपर मिलता है। परन्तु बन्धु वात्सल्यकी भावना, मुझे विपत्तियोंके विकट और जटिल जालमें भी समाज-सुधारके लिए प्रोत्साहित कर रही है।"

पण्ड्याजीने नमस्कार-पूर्वक श्री वचनोंका हार्दिक अनुमोदन करते हुए कहा—"महाराज ! यदि दो चार धर्म्माचार्य भी आपके विचारके हो जायं तो, स्वल्प समयमें ही आर्य्य जातिका बेड़ा पार हो सकता है।"

प्रलोभन वश बड़े बड़े महात्मा भी अपनी मान-मर्यादाको मलिया मेट कर देते हैं। प्रलोभनके स्वरूपने कई तपस्वियोंकी तपश्चर्या और यतियोंके व्रत-धर्म्मको दिनदिहाड़े लूट लिया है—व्यक्तियोंकी तो कोई गणना ही नहीं हो सकती, इसके तो चरणोंको जातियोंके, मुकटोंसे चमकते हुए सिर चढ़ाकर भी चर्चित किया गया है। जहाँ कभी बाँके मन्दिर आकाशसे बातें करते थे और राग-रङ्ग होता था, वहाँ आज इसके हाथों चमगादड़ बसते, उल्लू बोलते, गीदड़ नाचते और चिल्लाते हैं। जिस महापुरुषने अन्नमय कोषमें रहकर, इस मायाधारी प्रलोभनपिशाचको जीत लिया है, वह सचमुच, इस मोह-मायामयी सृष्टिसे ऊपर है, दैवतबल-सम्पन्न है।

भगवान् दयानन्दके लिए भक्तोंका भक्ति-भाव अपार बढ़ जाता है जब यह कथा उनके कर्णगोचर होती है। एक दिन महाराज अकेले बैठे हुए थे। उस समय श्रीराणाजी पधारे और गुरु-महाराजसे विनीत विनय करने लगे, "भगवन् ! आप मूर्त्ति-पूजाका खण्डन छोड़ दें। यह राजनीतिके सर्व संग्रह सिद्धान्तके प्रतिकूल है। यदि आप ऊपरकी बातें स्वीकार कर लें तो एकलिङ्ग महादेवके महन्तकी गद्दी आपकी है। वैसे तो यह राज्य भी उसी मन्दिरके समर्पित है, परन्तु मन्दिरके नाम जो राज्यका भाग लगा हुआ है उसकी लाखों की आय है। इतना भारी ऐश्वर्य आपका हो जायगा। सारे राज्यके आप गुरु माने जायंगे।"

श्री राणाजीकी प्रार्थना श्रवण करते ही स्वामीजी झुँझलाकर बोले, "आप मुझे तुच्छ प्रलोभन दिखाकर परमात्मदेवसे विमुख किया चाहते हैं ! उसकी आज्ञा-भङ्ग कराना चाहते हैं। राणाजी ! आपके जिस छोटेसे राज्य और मन्दिर से मैं एक दौड़ लगाकर बाहर जा सकता हूं वह मुझे अनन्त ईश्वरकी आज्ञा-भङ्ग करनेके लिए विवश नहीं कर सकता । परमात्मदेवके परम प्रेमके सामने, इस मरुभूमिकी, मायाविनी मरीचिका अति तुच्छ है । लाखों मनुष्योंके विश्वास केवल मेरे भरोसेपर निर्भर हैं । मुझे ऐसे शब्द कहनेका फिर कभी साहस न कीजिएगा । मेरी धर्म्मकी ध्रुव धारणाको धराधाम और आकाशकी कोई भी वस्तु डगमगा नहीं सकती ।"

राणाजी, उनके सत्यके आवेशसे, सूर्यसमान चमकते हुए, मुखमण्डलको देखकर चौंक पड़े और चित्तमें अतीव आश्चर्य्य-चकित हुए । वे हाथ जोड़कर बोले—'भगवन् ! मैंने आपके निश्चयकी दृढ़ता देखनेके लिए ही ऐसा कहा था । सो इस धृष्टताको क्षमा कर दीजियेगा । अब मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि संसारकी कोई भी वस्तु, आपकी दृढ़ताको डाँवाडोल नहीं कर सकती । आपका निश्चय कभी हिल नहीं सकता ।"

श्रीराणाजीको, महाराजने दिन-चर्य्याको नियमबद्ध रखनेका उपदेश दिया 'तीन घड़ी रात रहते उठिये ।आवश्यकताओंसे निवृत्त होकर मुँह-हाथ धोइए । दातून और कुल्लेके करनेके अनन्तर एक गलास शीतल जलका पान कीजिए । उसी समय पास रहनेवालोंको पृथक् कर ईश्वरोपासनामें मग्न हो जाइए' । महाराजने राणाजीको प्रातः कालकी उपासनाके लिए कुछ मन्त्रभी सिखाए ।

फिर कहा, 'उपासनाके पश्चात्, हो सके तो चलकर नहीं तो बग्घीपरही, वायु-सेवनके लिए बाहर जाइए । एक घण्टाभरका भ्रमण पर्याप्त है । भ्रमण करते समय प्रत्येक वस्तुको ध्यानपूर्वक देखना उचित है । यात्रासे लौटकर जब आइए तो जिस भवनमें दिनभर रहना हो उसमें घृतादिका हवन कराइए । दिनके नौ बजे राज्यके कार्योंको किया कीजिए । फिर दश बजेके पश्चात्

भोजन पाइए और कुछ देरतक टहलिए। तदनन्तर यदि, चित्त चाहे तो बारह बजेतक शय्यापर विश्राम कीजिए। दोपहरके उपरान्त चार बजेतक न्याय करना और लिखने पढ़नेका काम करना उचित है। चार बजेके अनन्तर आवश्यकताओंसे निवृत्त होकर वस्त्र-परिवर्तन कीजिए। फिर अश्वारूढ़ होकर चाहे सेना देखिए अथवा उद्यान, मन्दिर और सड़कोंका निरीक्षण कीजिए। दिन छिपे राज मन्दिरमें आ जाइए। उस समय कुछ पढ़ना चाहिए। उपासना और ज्ञानकी वार्त्ताभी सुननी चाहिए। बुद्धिमानोंका सत्सङ्ग और इतिहास-श्रवण करना चाहिए। ये सब कार्य्य दो घण्टोंमें समाप्त हो जाने उचित हैं,। उसके पश्चात् भोजन ग्रहण करना चाहिए। खाना खानेके पश्चात् आधे घण्टेतक टहलना चाहिए। उस समय गन्धर्वोंसे राग भी सुनिए। रागमें अधिक लीन होना अच्छा नहीं है। कवियोंकी कोमल काव्य-कलाका भी रस लेना चाहिए और चारण तथा कड़खेतोंके कवित्त और कड़खे भी सुनने चाहिएं। परन्तु उनमें अश्लीलता नहीं होनी चाहिए।

तत्पश्चात् शोभन शय्यापर लेट जाइए। छः घण्टेतक पूर्ण निद्रा लीजिए। एकाकी सोना ही उत्तम है। शास्त्रानुसारही परिवार-सम्बन्धको पालन कीजिए'।

ऊपरका उपदेश देकर महाराजने पूछा कि आप मेरी बताई दिन-चर्य्यापर चलेंगे? राणाजीने सिर झुकाकर निवेदन किया कि कलहीसे इसके पालनमें कटिबद्ध हो जाऊँगा। राणाजीने किया भी ऐसे ही।

स्वामीजीने, श्रीराणाजीको शास्त्र पढ़ाकर, धर्म्मके रहस्य बताकर, राज्यके रक्षण और सम्वर्द्धनकी नीति सुनाकर, शारीरिक नियम सिखाकर, अन्य अनेक मार्मिक और तात्विक कथोपकथन श्रवण कराकर पूर्ण आर्य्य बना लिया। उनमें आर्य्य समाजके लिए असीम स्नेह और सहानुभूतिका भाव उत्पन्न कर दिया।

स्वामीजी, विद्याके कार्योंमें लोगोंको प्रोत्साहन दिया करते थे। एक दिन वे चारण-पाठशालाका निरीक्षण करने गये। वहाँ उन्होंने विद्यार्थियोंकी परीक्षा ली और उनको अपनी ओरसे प्रीति भोजन दिया। महाराजने, श्री राणाजीके

साथ विचार करनेके अनन्तर, सारे राज्यके राजों और ठाकुरोंके लड़कोंके लिए एक पाठशाला खोलनेका प्रबन्ध भी कर लिया। परन्तु पीछेसे, राणाजीके रुग्ण हो जानेके कारण, यह कार्य्य बीचहीमें रह गया।

एक दिन, श्री राणाजीको मनु-स्मृतिका पाठ पढ़ाते हुए महाराजने कहा, "यदि कोई अधिकारी धार्मिक आज्ञा दे तब उसका पालन करना चाहिए। अधर्म्म-युक्त कथनको कभी नहीं मानना चाहिए।"

इसपर सरदारगढ़के ठाकुर मोहनसिंहजीने निवेदन किया—"भगवन्! ये राणाजी हमारे भूपाल हैं। यदि हमें यह कोई आज्ञा दें और हम उसे अधर्म्म-युक्त समझकर न मानें तो हमारा लघु राज्यही छिन जाय।"

महाराजने कहा, "कोई चिन्ता नहीं। धर्म्मके लिए धन और ठाकुराई भलेही चली जाय। धर्म्म-हीन होजानेसे और अधर्म्मके काम करके अन्न खानेसे तो भीख माँगकर पेटकी पालना करना बहुत अच्छा है।"

स्वामीजीके उदयपुरमें निवासके दिनोंमें दसहरा आ गया। इस त्योहारको वहाँ बड़े समारोहसे मनाया जाता है। राणाजीकी यात्रा बड़े ठाठवाटसे निकलती है। बड़ी भारी राज सभा लगती है। उस दिन कई भैंसे भी काटे जाते हैं।

राणाजीके निवेदनपर, श्रीमहाराज भी दसहरा महोत्सव देखने पधारे। जब उन्हें पता लगा कि यहाँ बहुतसे भैंसे काटे जायँगे तो उन्होंने राणाजीको कहा कि आप नरेश हैं। न्याय करना आपका कर्त्तव्य कर्म्म है। मैं मारे जाने वाले भैंसोंका वकील बनकर श्रीमन्तके सम्मुख उपस्थित हूं। अब न्यायाधीशको निर्णय करना चाहिए कि इनका वध क्योंकर उचित है? चिरकालतक बातचीत होती रही। अन्तमें श्रीराणाजीने विनय की कि यह पुरानी परिपाटी, परम्परासे चली आ रही है। इसे एकाएक न तो हम उठा सकते हैं और न उठा देना उचित ही है। हाँ, आपके आदेशानुसार इसे धीरे धीरे घटा देनेका प्रयत्न किया जायगा। इसपर स्वामीजी भी सम्मत हो गये।

श्रीराणाजी, स्वामीजीके कथनोंको स्वीकार करनेके लिये सदा समुद्यत रहते थे, परन्तु महाराज, धार्मिक कार्य्योंके अतिरिक्त, राज्यके अन्य किसी भी कार्य्यमें हस्तक्षेप नहीं करते थे। एक दिनका वर्णन है कि राणाजी स्वामीजीके दर्शन करके जब राजभवनको लौटे तो उसी समय स्वामीजीके पास पचास पटेल आ गये और अभियोगकी बातचीत करने लगे। राणाजीने उन भूमिहारोंको स्वामीजीके पास जाते देख लिया था, इसलिए उन्होंने अब्दुर्रहमानको कहा कि जाइए, पता लीजिए कि इन लोगोंने श्रीसेवामें क्या निवेदन किया है। उसने उन लोगोंसे पूछकर राणाजीसे विनय की कि इन लोगोंने अपने अभियोगकी बात चलाई थी और इसपर महाराजने कहा कि हम साधु हैं; किसी सांसारिक झंझट झमेलेसे हमारा सम्बन्ध सर्वथा नहीं है।

उस समय राणाजीने कहा—"मौलवीजी! देखा, मैं कहता न था कि स्वामीजी राज-काजके कार्य्योंमें कदापि हस्तक्षेप नहीं करते। जगत्के रगड़े झगड़ेसे स्वतन्त्र, भला, ऐसा कोई दूसरा मनुष्य कभी आपने देखा है?"

उदयपुरहीमें रहते हुए, महाराजने परोपकारिणी सभा स्थापित की। अपनी सारी सम्पत्ति उसके नाम कर दी। उनका लिखा स्वीकार-पत्र इस प्रकार है—

"मैं दयानन्द सरस्वती निम्नलिखित तेईस सज्जन आर्य्य पुरुषोंकी सभाको वस्त्र, पुस्तक, धन और यन्त्रालय आदि अपने सर्वस्वका अधिकार देता हूं। इसको परोपकारके शुभ कार्य्यमें लगानेके लिए अध्यक्ष बनाकर यह स्वीकार-पत्र लिखे देता हूं कि समयपर काम आये।

इस सभाका नाम परोपकारिणी सभा है और निम्नलिखित तेईस महाशय इसके सभासद हैं:—

१, श्रीमन्महाराजाधिराज महिमहेन्द्र यावदार्य्य-कुल-दिवाकर महाराणाजी श्री १०८ सज्जनसिंहजी वर्म्मा जी० सी० एस० आई० उदयपुराधीश, राज्य मेवाड़, सभापति।

२, लाला मूलराज एम० ए० एक्स्ट्रा असिस्टेन्ट कमिश्नर प्रधान आर्य समाज लाहौर, उपप्रधान ।

३, श्रीयुत कविराज श्यामलदासजी उदयपुर, राज्य मेवाड़ मन्त्री ।

४, लाला रामसरनदासजी उपप्रधान आर्य्य समाज मेरठ मन्त्री ।

५, पण्ड्या मोहनलाल विष्णुलाल, उदयपुर, जन्म-स्थान मथुरा, उपमन्त्री ।

६, श्रीमन्महाराजाधिराज श्री नाहरसिंहजी वर्म्मा शाहपुराधीश, सभासद् ।

७, श्री राव तख्तसिंहजी बेदले, राज्य मेवाड़ । "

८, श्रीमन्त राजराणा श्री फतेहसिंहजी वर्म्मा, भीलवाड़ा । "

९, श्रीमत् रावत अर्जुनसिंहजी वर्म्मा, असन्द । "

१०, श्रीमत् महाराजा श्री राजसिंह वर्म्मा, उदयपुर । "

११, श्रीमत् राव श्री बहादुरसिंहजी वर्म्मा, मसूदा, जिला अजमेर "

१२, राय बहादुर पण्डित सुन्दरलाल सुपरिण्टेण्डेण्ट वर्कशाप अलीगढ़ "

१३, राजा जयकृष्णदासजी सी० एस० आई० डिपटी कलेक्टर विजनौर, मुरादाबाद ।

१४, साहू दुर्गाप्रसाद कोषाध्यक्ष, आर्य्यसमाज फरुखाबाद, सभासद्

१५, साहू जगन्नाथप्रसाद फरुखाबाद

१६, सेठ निर्भयराम प्रधान आर्य्यसमाज फरुखाबाद, विसावरराजपूताना सभासद् ।

१७, लाला कालिचरण रामचरण मन्त्री, आर्य्यसमाज फरुखाबाद "

१८ श्रीयुत छेदीलाल गुमाश्ते कमसरियट छावनी मुरार-ग्वालियर "

१९, लाला साईदास, मन्त्री आर्य्य समाज लाहौर "

२०, श्री माधवदास मन्त्री आर्य्य समाज, दानापुर "

२१, रावबहादुर राजमान्य राजेश्री पण्डित गोपालराव हरि देशमुख, सभासद्, कौंसल गवर्नर मुम्बई, तथा प्रधान आर्य्यसमाज मुम्बई, पूना "

२२, रावबहादुर महादेव गोविन्द रानडे, जज पूना

२३, श्रीयुत श्यामजी कृष्ण वर्म्मा प्रोफेसर, संस्कृत युनीवर्सिटी आक्स फोर्ड लण्डन मुम्बई।

स्वीकार-पत्रके नियम।

१, उक्त सभा जैसे मेरे जीवन-कालमें मेरे सकल पदार्थोंकी रक्षा करके निम्नलिखित परोपकारके काममें लगानेका अधिकार रखती है, वैसे ही मेरे पीछे अर्थात् मरनेके पश्चात् भी लगाया करे।

(१) वेद वेदाङ्गादि शास्त्रोंके प्रचार, उनकी व्याख्या करने कराने, पढ़ने पढ़ाने, सुनने सुनाने, छापने छपाने, आदिमें।

(२) वेदोक्त धर्म्म उपदेश और शिक्षा अर्थात् उपदेशक—मण्डली नियत करके देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तरमें भेजकर सत्यके ग्रहण और असत्यके त्यागादिमें।

(३) आर्य्यावर्त्तके अनाथ और दीन जनोंकी शिक्षा और पालनमें व्यय करे और कराये।

२, जैसे मेरी उपस्थितिमें यह सभा प्रबन्ध करती है वैसेही मेरे पीछे, तीसरे व छठे मास, किसी सभासद्को वैदिक यन्त्रालयके बही-खातेके समझने और पड़तालनेके लिए भेजा करें। वह सभासद् वहाँ जाकर सारे आय व्ययकी जाँच पड़ताल किया करे। उसके नीचे अपने हस्ताक्षर करे और उस पड़तालकी एक एक प्रति प्रत्येक सभासद्के पास भेजे। यदि यन्त्रालयके प्रबन्धमें कोई त्रुटि देखे तो उसके सुधारके लिये अपनी सम्मति लिखकर प्रत्येक सभासद्के पास भेजे। प्रत्येक सभासद्को उचित है कि अपनी सम्मति सभापतिके पास लिख भेजे और सभापति सबकी सम्मतिपर यथोचित कार्य करे। इस कार्यमें सभासद् आलस्य और अनुचित व्यवहार न करे।

३, इस सभाको उचित है कि जैसा यह परम धर्म्म और परमार्थका काम है उसको वैसे ही उत्साह, पुरुषार्थ, गम्भीरता और उदारतासे करे।

४, पहले कहे तेईस आर्य्य सज्जनोंकी सभा मेरे पीछे सब प्रकार मेरे

स्थानापन्न समझा जाय, अर्थात् जो अधिकार मुझे अपने सर्वस्वपर है वही अधिकार सभाको है और होगा। यदि उक्त सभासदोंमेंसे कोई सभासद् स्वार्थमें पड़कर इन नियमोंके विरुद्ध काम करे वा कोई अन्य मनुष्य हस्तक्षेप करे तो वह सर्वथा झूठा समझा जाय।

५, जैसे इस सभाको वर्त्तमान समयमें मेरी और मेरे सब पदार्थोंकी यथा शक्ति रक्षा और उन्नति करनेका भी अधिकार है, वैसे ही मेरे मृतक शरीरके संस्कारका भी अधिकार है। जब मेरा शरीर छूटे तो उसको न गाड़ें, न जलमें बहावें, न जङ्गलमें फेंकें। केवल चन्दनकी चिता बनायें। और यदि यह सम्भव न हो तो दो मन चन्दन, चार मन घी, पांच सेर कपूर, ढाई मन अगर तगर और दस मन काष्ठ लेकर वेद-विहित विधिसे जैसा कि संस्कार विधि पुस्तकमें लिखा है, वेदि बनाकर उस पुस्तकमें जो वेद-मन्त्र लिखे हैं उनसे भस्म करें। वेद-विरुद्ध कुछ भी न करें। उस समय यदि इस सभाका कोई भी सभासद् उपस्थित न हो तो जो कोई उपस्थित हो वही यह काम करे। जितना धन इस काममें लगे उतना सभासे ले लेवे और सभा उसको दे देवे।

६, अपने जीवनमें मैं और मेरे पीछे यह सभा इस बातका अधिकार रखती है कि जिस सभासद्को चाहे पृथक् करके, किसी और योग्य सामाजिक आर्य्य पुरुषको उसका स्थानापन्न नियत कर दे। परन्तु कोई सभासद् सभासे तब तक पृथक् न किया जायगा जबतक उसके काममें कोई अनुचित चेष्टा न पाई जाय।

७, मेरे सदृश यह सभा सदा स्वीकार-पत्रकी व्याख्या वा उसके नियमोंका पालन, वा किसी सभासद्को पृथक् करने, उसके स्थानमें अन्य सभासद्को नियत करने और मेरे आपत्कालके निवारण करनेके उपाय और यत्नमें उद्योग करे। यदि सभासदोंकी सम्मतिमें विरोध रहे तो बहु-सम्मतिके अनुसार काम करे। सभापतिकी सम्मति सदा द्विगुण समझें।

८, किसी दशामें भी, यह सभा तीनसे अधिक सभासदोंको, अपराधके

सिद्ध होनेपर पृथक् न कर सकेगी जबतक, उनके स्थानमें अन्य सभासदोंको नियत न कर ले।

९, यदि किसी सभासद्का देहान्त हो जाय वा वेदोक्त धर्म्मको छोड़कर वह उक्त नियमोंके विरुद्ध चलने लगे तो सभापतिको उचित है कि सब सभासदोंकी सम्मतिसे उसको पृथक् करके उसके स्थानमें किसी और योग्य वेदोक्त धर्म्मयुक्त आर्य्य पुरुषको नियत करे। परन्तु उस समयतक साधारण कामोंके अतिरिक्त कोई नया काम न छेड़ा जाय।

१०, इस सभाको अधिकार है कि सब प्रकारका प्रबन्ध करे और नये उपाय सोचे। परन्तु यदि सभाको अपने परामर्शपर पूरा पूरा निश्चय और विश्वास न हो तो समयका निर्धारण करके लेखद्वारा सम्पूर्ण आर्य्यसमाजोंसे सम्मति ले और बहुपक्षानुसार उचित प्रबन्ध करे।

११, प्रबन्धका घटाना बढ़ाना, स्वीकार, अथवा अस्वीकार करना, किसी सभासद्को नियत या पृथक् करना, आय व्ययकी जाँच-पड़ताल करना, अन्य हानि-लाभ सम्बन्धी विषयोंको सभापति वर्षभरमें अथवा छः मासमें छपाकर चिट्ठीद्वारा सब सभासदोंमें प्रचारित करे।

१२, यदि इस स्वीकारपत्रके विषयमें कोई झगड़ा उठे तो उसको राजगृहमें न ले जाना चाहिये, किन्तु जहाँतक हो सके यह सभा अपने आप उसका निर्णय करे। यदि आपसमें किसी प्रकार निर्णय न हो सके तो फिर न्यायालयसे निर्णय होना चाहिए।

१३, यदि मैं अपने जीतेजी किसी योग्य आर्य्य पुरुषको पारितोषिक देना चाहूं और उसकी लिखित-पढ़त कराकर रजिस्ट्री करा दूं तो सभाको चाहिये कि उसको माने और दे।

१४, मुझे और मेरे पीछे सभाको सदा अधिकार रहेगा कि उक्त नियमोंको देशके किसी विशेष लाभ और परोपकारके लिए न्यूनाधिक करें।

(हस्ताक्षर) 'दयानन्द सरस्वती'।

राणाजी एक दिन श्रीसत्संगमें बैठे हुए थे। उनके अन्तःपुरमें सन्तानदर्शनकी आशा थी। प्रसङ्ग-वश स्वामीजीने कहा कि आपको पुत्र प्राप्त होगा।

माघ सु० २ सं० १६३६ को स्वामीजीका वचन सत्य सिद्ध हो गया श्रीमन्महाराणाके भवनमें पुत्र-जन्म महोत्सवके उपलक्ष्यमें आनन्दके बाजे बजने लगे। चारों ओरसे बधाई आने लगी। राणाजीने इस प्रसन्नताका समाचार स्वामीजीके आसनपर निवेदन कराया और आठसौ रुपया फिरोजपुर अनाथालयको प्रदान किया।

राणाजीने श्रीसेवामें निवेदन किया कि यदि आप दर्शनोंका भाष्य कर दें तो उसके छपवानेके लिए बीस सहस्र रुपया मैं भेंट करनेको समुद्यत हूं। स्वामीजीने उत्तर दिया कि वेद भाष्य समाप्त होनेपर दर्शनोंके विषयमें सोचा जायगा।

जिस सीसोदिया वंशकी विमल कीर्तिको महाराणा प्रतापने उदयास्ततक विस्तृत करके अमर बना दिया, जिस वंशने—'जो राखे निज धर्म्मको तेंहि राखे करतार"—इस पदको अपना आदर्श माना, जिस वंशके वीरोंने अपनी आन-बान और मान मर्यादाकी रक्षाके निमित्त मर मिटना तो स्वीकार किया, परन्तु कायर बनकर उसको बट्टा नहीं लगाया, और जिस वंशकी बहु बेटियोंने प्रचण्ड चिताओंपर चढ़कर भस्मीभूत होना तो उत्तम समझा, परन्तु अपने पवित्र चरित्रकी चिट्टी चादरको मलिन-मनवाले, दुष्ट मनुष्योंका हाथ-स्पर्श होने नहीं दिया, उस विशुद्ध वंशके शिरोमणि, श्रीमन्महाराणा सज्जनसिंहजीको अपना शिष्य बनाकर, जगद्गुरु दयानन्द प्रस्थान करनेके लिए समुद्यत हो गये। महाराणाजी श्रीचरणोंसे वियुक्त होना तो नहीं चाहते थे, परन्तु ऐसे निर्मोही महापुरुष रोके रुक भी नहीं सकते।

फागुन बदी ७ सं० १६३६ को स्वामीजीने उदयपुरसे प्रस्थान करना नियत किया। उनके सम्मानके उपलक्ष्यमें एक सभा लगाई गई। महाराजको एक अत्युत्तम और उच्च सिंहासनपर बैठाकर, एक सुन्दर पुष्प-मालासे उनका पूजन

किया गया। इसके उपरान्त एक सज्जनने, श्रीमन्महाराणाजीकी ओरसे, नीचे लिखा सम्मान-पत्र पढ़कर सुनाया—

'स्वस्ति श्रीसर्वोपकारकरणार्थ कारुणिक परमहंस परिव्राजकाचार्य्यवर्य्य श्रीमद्दयानन्द सरस्वती यतिवर्येषु इतः महाराणा सज्जनसिंहस्य नतयः समुल्लसन्तु उदन्त्यः। आपका आठै सात मासका निवास सूचित्त अत्यन्त आनन्दमें रह्यो। क्योंकि आपकी शिक्षा का प्रकार श्रेष्ठ और उन्नतिदायक है। और आपका संयोग सूं केही न्याय धर्म्मादि शारीरिक काय्योंमें निस्सन्देह लाभ प्राप्त होवाकी, म्हांका सभ्य जनासहित दृढ़ आशा होवे है कारण कि शिक्षा और उपदेश वा पुरुषोंका दृढ़ होवे है जो स्वकीय आचरण भी प्रतिकूल नहीं राखै। सो आपमें यथार्थ मिल्यो। अब म्हें आपका वियोगको संयोग तो नहीं चावां परन्तु आपको शरीर अनेक मनुष्योंके उपकारका है। जीसूं अवरोध करणों अनुचित। तथापि पुनरागमनसूं आप भी म्हांका चित्तने शीघ्र अनुमोदित करेंगे इत्यलम्।" सम्वत् १९३६ फाल्गुन कृष्ण ५ भौमे।

हस्ताक्षर महाराणा सज्जन सिंहस्य।

चौथा सर्ग।

स्वामीजी, उदयपुरसे अतिसम्मान-पूर्वक बिदा होकर, चित्तौड़ होते हुए फाल्गुन वदी अमावस १९३६ को शाहपुरामें सुशोभित हुए निवास नगरके बाहर राजकीय उद्यानमें किया गया। साहपुराधीशने श्री चरणोंके दर्शन अनेक दिनोंतक चित्तौड़में किये थे। महाराजके अनुपम प्रभावजनक भाषणोंसे प्रभावित होकर राजाधिराजने अपने नगरमें पधारनेके लिए उनसे विनयकी थी। उन्होंने स्वीकार करते हुए कहा था कि अनुकूल अवसर आनेपर अवश्य आऊँगा उसी प्रणको पालनाके लिए वे शाहपुरामें पधारे।

श्रीस्वामीजीके शुभागमनको शाहपुराधीशने अपने सौभाग्यकी शुभ सूचना समझा। वे उसी सायंको श्रीसेवामें उपस्थित हुए और विनीत नमस्कार करके प्रश्न पूछने लगे। पाँच दिन तो राजाधिराजने संशयनिवारणमें विताये। उसके उपरान्त सायं-समयके छः बजेसे रातके नौ बजेतक वे एक घण्टाभर तो वार्त्तालाप करते और घण्टेतक अध्ययन करते। स्वामीजी राजाधिराजको मनु-स्मृति पढ़ाया करते। उनका समझानेका ढँग बहुत ही अच्छा था। फिर महाराजने उनको योग-दर्शन पढ़ाया और उसकी समाप्तिपर कुछ एक भाग वैशेषिकके भी अध्ययन कराये।

स्वामीजी प्रातःकाल भ्रमणार्थ बाहर जाया करते थे। किसी किसी दिन राजाधिराज भी वहां जा दर्शन करते और प्राणायामकी विधि सीखते।

स्वामीजी महाराजने अपने ग्रन्थोंमें संन्यास-धर्म्मका बड़ा महत्त्व दर्शाया है। वे प्रशान्त-चित्त, जितेन्द्रिय और ज्ञानी जनहीका संन्यासका अधिकारी वर्णन करते हैं। साम्प्रदायिक संन्यास देनेकी विधिके वे बड़े भारी विरोधी थे। उन्होंने संन्यास लेकर भिक्षाका ग्रहण करना उन्हींके लिए बताया है, जो जन जनताके हितार्थ अपना जीवन उत्सर्ग कर देते हैं। लोक कल्याणके लिए रात्रि-दिवा यत्नशील रहते हैं। सत्योपदेश और परोपकार कर्म्ममें परायण पाये जाते हैं, और जो आठों पहर प्रजाप्रेमका परम पावन पुण्यपाठ पढ़ते रहते हैं। जो मनुष्य मानव हित-शून्य होकर अपाहजोंकी भाँति गली गलीमें भटकते फिरते हैं, जन जनके आगे हाथ पसारते हैं और घर घरके टुकड़ोंके चटोरे बन जाते हैं वे आश्रमकी मान-मर्यादा और महत्त्वको मूलसे मिटाने वाले हैं।

शारीरिक सामर्थ्य रखते हुए, अनुपकारी जनका पराये अन्नपर पेट पालना एक प्रकारका पतित कर्म्म है। इसलिये, स्वामीजीने जो लोग, लोकहितके कार्य्य नहीं करना चाहते अथवा उनके करनेमें असमर्थ हैं उनके लिये सत्यार्थ-प्रकाशके प्रथम संस्करणमें लिखा है, 'बाह्य जितने कर्म्म हैं उनको त्यागकर योगाभ्यासादि आभ्यन्तर कर्म्मोंको यथावत् करें। अन्तःकरणकी सारी मलिनता

और राग-द्वेष आदिको छोड़कर, निश्चिंत होकर, सदा वेदका अभ्यास करें अपने पुत्रोंसे अन्नवस्त्र शरीरके निर्वाहके लिये लेवें। नगरके समीप एकान्तमें वास करें। प्रतिदिन भोजन-आच्छादन घरसे लेकर अपनी मुक्तिके साधनमें तत्पर रहें।"

शाहपुरामें, स्वामीजीने एक होनहार ब्राह्मण युवकको संन्यास देकर दण्ड धारण कराया। उसका नाम ईश्वरानन्द रक्खा। कुछ पठित भी था, परन्तु अधिक अध्ययन करनेके लिए उसे प्रयाग भेज दिया गया। स्वामीजीने वहाँ अपने यन्त्रालयके प्रबन्धकर्त्ताको लिखदिया कि जबतक यह साधु अध्ययन करता रहे इसे पाँच रुपये मासिक मिला करें।

गोपालराव नामका एक ब्राह्मण भक्त श्री स्वामीजीका जीवन-चरित्र लिख रहा था। चित्तौड़का वृत्तान्त लिखते हुए उसने वर्णन किया कि वहाँ श्री-मन्महाराणाजी, श्री महाराजको प्रतिदिन दो बार मिलते। इसपर एक नवीन वेदान्ती, साधु अमृतरामने स्वामीजीको शाहपुरामें लिखा कि गोपालरावने आपके सत्सङ्गमें राणाजीका नित्य प्रति दो बार आना लिखा है सो सर्वथा असत्य है।

स्वामीजी महाराजने साधु महाशयका पत्र पाते ही गोपालरावको यह पत्र लिखा—'पण्डित गोपालराव हरि जी ! आनन्दित रहो। आज एक साधुका पत्र मेरे पास आया वह आपको भेजता हूं। साधुका लेख सत्य है, परन्तु चित्तौड़ सम्बन्धी इतिहासमें न जाने कहांसे सुन सुनाकर ऐसा लेख दिया है। उस समय वहां उदयपुराधीशसे मेरा समागम केवल तीन बार ही हुआ। आपने तो प्रतिदिन दो बार होता लिखा है आप जानते ही हैं कि ऐसे कार्य्योंके परि-शोधनका अवकाश मुझे नहीं मिलता।

आप यद्यपि सत्य-प्रिय हैं और शुद्धभाव भावित हैं, चित्त और हितसे कार्य्य कर रहे हैं, परन्तु जब आपको मेरा ठीक ठीक वृत्तान्त विदित ही नहीं है तो इसके लिखनेमें साहस कभी न कीजिए। थोड़ासाभी असत्य मिल जानेसे

सम्पूर्ण निर्दोष कृत्य भी बिगड़ जाता है। ऐसा ही निश्चय रखो और इस पत्रका उत्तर शीघ्र भेजो।

वैशाख शुक्ला द्वितीया १९४० दयानन्द सरस्वती।

एक दिन, एक नैयायिक पण्डित स्वामीजीसे सम्वाद करने लगा। उसको महाराजने कहा कि 'देवदत्तो ग्रामं गच्छति' इसका नव्य न्यायकी रीतिसे अर्थ करो। वह आध घड़ीतक इसीपर बोलता रहा। फिर महाराजने उसके कथनमें दोष दिखाकर खण्डन किया और कहा कि इसका सरल और सीधा अर्थ तो यह है कि देवदत्त ग्रामको जाता है, परन्तु ये काक-भाषाभाषी इसे ऐसा जटिल बनायँगे कि किसीके पल्ले कुछ पड़ने ही नहीं पाता। महाराजने उसे यह भी कहा कि देवताजी! पहले आर्ष दर्शनोंके दर्शन कर लीजिए। इसके पश्चात् दार्शनिक बातचीत कीजिएगा।

एक दिन, एक मनुष्य स्वामीजीके निकट बतासे लाया। उन्होंने देखते ही कहा कि ये पत्थरपर चढ़ाये गये हैं, इस लिए मैं नहीं लेता। उसके पूछनेपर, स्वामीजीने उसके बतासोंपर सिन्दूरका चिन्ह पड़ा हुआ दिखा दिया।

एक दिन, स्वामीजी बड़े बलसे मूर्ति पूजाका खण्डन कर रहे थे। उस समय एक पण्डितने कहा कि वाल्मीकि-रामायणमें लिखा है कि श्रीरामने महादेवका पूजन किया था—जैसे 'अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद् विभुः'। स्वामीजीने उत्तरमें कहा कि इसमें तो प्रतिमा-पूजनका लेश भी नहीं है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि यहाँ परमेश्वरने कृपा की।

एक दिन, दधिमथ स्वामीजीके पास आया। स्वामीजीने कहा 'आइए, व्यास-जी बैठिये। आज मुझे भी छुट्टी है आपसे वार्त्तालाप करनेमें पूरा सुभीता होगा'। व्यासने निवेदन किया—'भगवन्! छुट्टी तो बद्ध लोगोंके लिए हुआ करती है। आप तो परमहंस हैं। पूर्ण स्वाधीन और स्वच्छन्द हैं। आपको ऐसा कौन बन्धन शेष है जिससे आपने आज अवकाश मनाया है।

स्वामीजीने उत्तर दिया, 'मैं सारे धार्म्मिक बन्धनोंको मानता हूं। वर्णा-

भ्रमसे, नीति-रीतिसे मैं उच्छृंखल और निरङ्कुश नहीं हूं। स्वच्छन्दतापूर्वक ही वेद-भाष्य आदिका कार्य किया करता हूं। आज उससे छुट्टी मनाई है।

एक रामस्नेही सज्जनने, स्वामीजीके समीप आकर निवेदन किया, 'केवल नामहीसे निस्तार हो जाता है। भव-सागर पार उतरनेके लिए नामोंके गुणोंको जानना कोई आवश्यक नहीं है'।

स्वामीजीने कहा, 'परमानन्दकी प्राप्तिके लिए नामोंके गुणोंका ज्ञान होना अत्यावश्यक है। जैसे शब्दके साथ ही उसके अर्थका बोध हो जाता है, जल कहते ही शीतगुण-प्रधान, द्रवीभूत जल पदार्थकी प्रतीति हो जाती है, ऐसे ही नाम लेते ही उसके वाच्यका ज्ञान हो जाना चाहिये और उसको प्राप्तिकी क्रिया करना परमावश्यक है ऐसे ही नाम और उसके अर्थको जानना तथा उसकी उपलब्धिके लिए प्रत्याहार, धारणा और ध्यान आदि क्रिया-कलापका करना अतीव आवश्यक है'।

स्वामीजी कच्ची पक्की रसोईके झगड़ेको एक आडम्बर ही समझते थे। एक साधु स्वामीजीके पास पढ़ता था। वह एक दिन चौकेके बखेड़े पर रसोइएके साथ लड़ पड़ा। स्वामीजीने उसे बुलाकर कहा, 'आप संन्यासी भी होगये परन्तु चौके चूल्हेका भ्रम-जाल आपके पीछे पड़ा ही रहा। कच्चे पक्केके पाप पाखण्डने आपका पिण्ड न छोड़ा। भाई! यहां तो चारों वर्णोंके परस्पर भेद-भावको मिटाना होगा। सार्वजनिक बन्धु-भावनाकी भूमिपर प्रेमका प्रासाद निर्माण करना होगा।

महाराजने रामस्नेहियोंके महन्तको धर्म-चर्चाके लिए आहूत किया। परन्तु वे महन्तजी तो अपने आसनपरही बैठे बढ़-बढ़कर बातें बनाना जानते थे। बेतुकी उड़ाना ही उन्हें आता था। सिर-पैर-विहीन कथायें, अपने सेवकोंके मस्तकमें उडेलते जाना उनके कर्त्तव्यकी इति श्री थी। वे भोलेनाथ, भला शास्त्रार्थ और सम्वादको क्या जानें! इस लिए सम्वाद न हो सका।

स्वामीजीने मनोनिग्रह भी परम कोटिका किया हुआ था। उनकी सब

वृत्तियाँ वशवर्तिनी थीं। मस्तकके सूक्ष्मतम् तन्तुओंपर भी उनका इतना वशीकार था कि निद्रातक उनके सर्वथा आधीन थी। शाहपुरामें मध्यान्ह समय भोजन पाकर, स्वामीजी स्वल्प समयके लिए सो जाया करते। उन दिनोंमें सोलह मिनट तक नींद लिया करते थे। सोते उठकर मुँह हाथ धोने और कुल्ले करनेके लिए जल लेते। नौकर भी घड़ी देखता रहता। ज्योंहीं सोलहवाँ मिनट आरम्भ होता त्योंही वह जलका कलसा और अंगोछा ले, हस्त-मुख प्रक्षालन करनेके स्थानपर, जाकर खड़ा हो जाता। ठीक सोलहवें मिनटकी समाप्तिपर, जगद्गुरु जगजाते और तत्काल मुखादि धोकर कार्य्यपर आ बैठते।

रात्रिके समय वे ठीक दस बजे शुद्ध, स्वच्छ, साधारण और शुभासन शय्यापर शयन किया करते। भक्तजनोंसे वार्त्तालाप करते हुए जिस समय दस बजनेकी पहली 'टन' की ध्वनि होती वे तुरन्त खाटपर टेढ़े हो जाते। दूसरी 'टन' की ध्वनिपर प्रगाढ़ निद्रामें लीन जान पड़ते। उनके इस असाधारण सामर्थ्यपर सभीको परमाश्चर्य्य हुआ करता था।

योगानुष्ठानसे उनकी पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ इतनी निर्मल हो गई थीं, कि सूक्ष्मतम विषयको सुगमतासे ग्रहण कर लेती थीं। योग-दर्शनकथित दिव्य सम्वित् उन्हें प्राप्त थी।

स्वामीजीके निवास स्थानपर खसकी टट्टियाँ लगा दी गई थीं। दुपहरके पश्चात् जब लू चलने लगती, ग्रीषमका भीषण उत्ताप, जब वायु-सहित भूमिको उत्तप्त बना देता तो उस समय, उन टट्टियों पर जल सींच दिया जाता, जिससे सारी कोठरी की वायु सु-शीतल और सु-गन्धित हो जाती।

एक दिन मध्यानोत्तर समय, जब जल छिड़का गया तो महाराज ने कहा कि आज कहींसे दुर्गन्धि आ रही है। सेवकोंने इधर उधर सर्वत्र घूमकर देख भाल की, परन्तु कहीं भी कोई सड़ी गली वस्तु दिखाई न दी। टट्टियोंमें जल सींचनेके लिये एक कुण्ड में कुछ पानी एकत्र रहा करता। उसका बासी जल नित्य निकाल कर नया जल उसमें डाला जाता। भगवान्ने सेवकको बुलाकर

पूछा कि बताओ, क्या तुमने उसकी टट्टियोंपर कुण्डका बासी पानी डाला है ?

उसने बिनती की कि महाराज। वैसे तो कुण्डमेंसे कलका सारा पानी मैंने उलीचकर निकाल दिया था, कदाचित् घड़ा आध घड़ा रह गया होगा। परन्तु उसमें लगभग सौ घड़े नये जल के डलवाये हैं। तब महाराजने कहा कि उसी थोड़े से बासी जल को दुर्गन्ध आ रही है। अच्छा इस समय टट्टियां उतार दो और फिर कभी इनपर ऐसा जल न सींचना। भगवान् की घ्राण-इन्द्रिय की इतनी प्रबल शक्ति का पूर्ण परिचय पाकर भक्तों को पूरा निश्चय होगया कि इनको योगबलही से ऐसे सूक्ष्म विषय का ज्ञान होजाता है।

जिस समय श्रीमहाराज उदयपुरमें धर्म्मोपदेश दे रहे थे उन्हीं दिनों श्री-महाराजा प्रतापसिंहजी और राव राजा तेजसिंहजीके प्रार्थना-पत्र श्रीसेवामें आये थे। उनमें उन्होंने जोधपुर पधारनेके लिए अत्याग्रहपूर्वक बिनती की थी। महा-राजने उन महानुभावोंकी उत्कृष्ट उत्कण्ठाका आदर करते हुए लिख दिया था कि हम शाहपुरासे होकर जोधपुर आएँगे।

शाहपुरामें महाराजा जसवन्तसिंहजीका लिखा हुआ निमन्त्रण-पत्र आया जिससे श्रीमहाराजने शाहपुरासे प्रस्थान करनेका समय ज्येष्ठ कृष्णा ४ शनिवार सम्वत् १९४० और दिन के दस बजे नियत कर दिया।

स्वामीजीकी जोधपुर जानेकी सु-सज्जा देखकर, शाहपुराधीशजीने श्रीसेवा में निवेदन किया, "भगवन्! राजा लोग भोग विलास और मन-माने आमोद-प्रमोदमें निमग्न रहा करते हैं। जहां आप पधारने लगे हैं वहां वाराङ्गनाओंको अधिक खण्डन न कीजियेगा।"

स्वामीजीने उत्तर दिया—"मैं बड़े बड़े कँटीले वृक्षोंको नुहरनेसे नहीं काटा करता। उनके लिये तो अति तीक्ष्ण शस्त्रोंकी आवश्यकता होगी।"

शाहपुराधीशने महाराजको विदा करते समय २५०) ढाई सौ रुपये श्री-चरणोंमें निवेदन किये। और पचास रुपये मासिक एक उपदेशकके लिए देने

का वचन दिया। विदाईके समय अति भक्ति-भावसे सभामें यह सम्मानपत्र श्री महाराजको सुनाया गयाः—

स्वस्ति श्रीसर्वोपकारार्थ कारुणिक परमहँस परिव्राजकाचार्य्य श्रीमद्दयानन्द सरस्वतीजी महाराजके चरणारविन्दमें महाराजाधिराज शाहपुरेशकी बार बार नमस्तेऽस्तु !

अपरञ्च यहाँ आपका विराजना सार्द्धद्वय मासपर्य्यन्त हुआ। तथापि आपके सत्यधर्म्मोपदेशके श्रवणसे मेरी आत्मा तृप्त न हुई। आशा थी कि आप ग्रीष्मान्त अत्रस्थित होते, परन्तु जोधपुराधीशोंकी ओरसे दर्शनोंकी, वेदोक्त धर्मोपदेश-ग्रहणकी, सत्याचरण और असत्य त्यागकी तथा आपके मुखारविन्दसे श्रवण करनेकी अभिलाषा देखकर आपने वहाँ पधारना स्वीकार किया। भवच्छरीर भी करोड़ों मनुष्योंके उपकारार्थ प्रकट हुआ है यह समझकर, मेरी भी सम्मति यही हुई है कि आपका वहाँ पधारना ही उत्तम है। यही समझकर यहां विराजनेकी प्रार्थना नहीं की। आशा है कृतकृत्य करनेके निमित्त पुनरागमन करेंगे।

सम्बत् १९४० ज्येष्ठ कृष्ण ४ (हस्ताक्षर) नाहरसिंहस्य।

जोधपुर जाते समय आर्य्य लोगोंने स्वामीजीसे कहा, "जहाँ आप जा रहे हैं वहाँके लोग कठोर प्रकृतिके हैं। कहीं ऐसा न हो कि सत्योपदेशसे चिढ़कर श्रीचरणोंको पीड़ा पहुंचायें।"

स्वामीजीने उत्तर दिया—"यदि लोग, हमारी अंगुलियोंको बत्तियां बनाकर जला दें तो भी कोई चिन्ता नहीं। मैं वहाँ जाकर अवश्य सत्योपदेश दूंगा।

महाराज अति सम्मानपूर्वक शाहपुरासे विदा हुए और ज्येष्ट वदी ५ को अजमेर ठहरकर पाली रेलवे स्टेशनपर पहुंचे। वहां, जोधपुरके महाराजाकी ओरसे चारण नवलदान आदि सज्जन, स्वामीजीको लिवा ले जानेके लिए, एक हाथी, तीन ऊँट, तीन रथ, एक सेज-गाड़ी और चार अश्वारोही सैनिक लेकर, आ गये।

पालीसे चलकर श्रीमहाराज दो रातें मार्गमें रहे और ज्येष्ठ बदी ८ को जब, जोधपुरसे तीन कोसके अनन्तरपर रह गये तो प्रातःकालके वायुसे लाभ उठानेके लिए पैदल चलने लगे। साथी भी यानोंसे उतर खड़े हुए और पीछे पीछे पैदल हो लिये।

जोधपुर-नरेशकी ओरसे महाराजके स्वागतका अत्युत्तम प्रबन्ध किया गया। रावराजा तेजसिंहजी, और राव राजा ज्वानसिंहजी, परिब्राजकाचार्य्यजीके सम्मुखाभिगमन और प्रतिग्रहण करनेके लिए, रत्नगढतक पैदल गये। उन्होंने दूरसे देखा कि एक काषायाम्बरधारी संन्यासी गम्भीर गतिसे चलते चले आ रहे हैं। उनके एक हाथमें एक लम्बायमान दण्डा है। उनका विशाल भाल बाल-कालके सूर्य्यकी किरणसे महामूल्य मणिके समान, दीप्तिमान् हो रहा है। मनोहर मुखमण्डल, मेघ-मुक्त चन्द्रमाकी भाँति, चमकता हुआ दर्शकके चित्तको आल्हादित कर रहा है। उसपर अपूर्व प्रतिभाकी शुभ्र-प्रभा पूर्ण-रूपसे विराजमान है। नीले गुलाबी डोरोंसे खचित उनके विमल रसीले नेत्रोंकी निर्मल ज्योति, दर्शकके अन्तःकरणकी कोठरीको जगमगाये जाती है। उनके नव-पल्लवसमान होठोंपर, मन्द मुस्कानकी मनोरम रेखा रह-रहकर चमकती है। दाड़िमके दानोंकी भाँति, उनके उज्ज्वल दांतोंकी पाँति, पवित्र प्रभा निःसरण कर रही है। उनकी दोनों भुजायें घुटनोंको स्पर्श करती हुई शोभा-युक्त बन रही हैं। उनका वर्ण, तप्त स्वर्णसमान है। गौरव-सूचक गेरूए वेषमें उनकी निष्कलङ्क और कुन्दन-कल्प कायाकी अलौकिक छटा, ऐसी दिखाई देती जैसे स्वर्णके सिंहासनपर विशुद्ध स्वर्णकी प्रतिमा, सौन्दर्यका स्रोत बन रही हो सम्पूर्ण पवित्रताओंसे परिवेष्टित, तेजोधाम, संन्यासीराज धीरे धीरे जब दोनों रावराजाओंके निकट पहुंचे तो उन्होंने नम्रीभूत होकर गुरुदेवके अरुणवर्ण, चारु चरण अपने हाथोंसे चर्चित किये। विनीत भावसे कुशल-मङ्गल पूछा महाराजने भी उनको आशीर्वाद देकर योग-क्षेम पूछा और कहा, 'आप इतनी दूर पैदल चलकर क्यों आये हैं? आपको इसमें कष्ट हुआ होगा।"

रावराजा तेजसिंहजीके हृदय-देशमें तो श्री दर्शनोंहीसे भवभारनाशिनी, भगवती, भक्ति-भागीरथीका प्रादुर्भाव हो गया था, श्रद्धाकी लताका शुभांकुर निकल आया था। उन्होंने झुककर निवेदन किया कि श्री महाराजकी अगौनी के लिए पैदल चलकर आना हमारे लिए, परम पुण्यके उपार्जनका एक साधन हो गया है। दोनों राव राजाओंने, अपने साथियों-सहित, अति सम्मान और समारोहसे स्वामीजीको ले जाकर मियाँ फैजुल्लाखाँके उद्यानमें ठहराया। उस उद्यानके द्वारपर महाराजा श्रीप्रतापसिंहजी उपस्थित थे। उस समय स्वामीजीके साथ माननीय रायबहादुर श्री गोपालराव हरि देश-मुखके सुयोग पुत्र लक्ष्मण-रावजी भी थे। ये खानदेशमें असिस्टेंण्ट कलक्टर थे। वहाँ से छुट्टी लेकर महाराजसे योगाभ्यास सीखने आये थे।

जोधपुराधीशकी ओरसे चारण नवलदान, चार सेवकों-समेत श्रीसेवामें नियुक्त हुए। छः सैनिकों-सहित एक हवलदार पहरेपर लगाया गया। महाराजके दुग्ध पानके लिए एक गाय आ गई और राव राजा तेजसिंहजीको भी महाराजाकी आज्ञा हुई कि वे श्री स्वामीजीकी सेवासुश्रूषाकी स्वयं देखरेख रक्खें। रावराजा महाशय तो महाराजके भक्त बन ही चुके थे, इस लिए उन्होंने इस आदेशको अपने सौभाग्य-सूर्य्यके उदयके समान ही समझा।

जिस दिन महाराज जोधपुरमें पधारे उसी दिनसे सत्सङ्गियोंकी मण्डलियाँ उनके पास आने लगीं। वार्त्तालाप और प्रश्नोत्तरद्वारा ही अनवरत रूपसे, उप-देश वारिवर्षण होने लग गया। उनकी उक्तियाँ और प्रयुक्तियाँ श्रोताओंकी लहलहाती चित्त-लताओंको धीमे धीमे पड़नेवाली सावनकी फुहारकी तरह, शान्त करती थीं। राठौर-राज्यके सरदार और राठौर-वंशके राजपूत प्रभु दयानन्दके एक एक करके शिष्य बनने लग गये। महाराजा श्री प्रताप-सिंहजीका हृदय-कमल महाराजकी अनन्य भक्तिकी सुगन्धिसे परम सुवासित हो गया था। उनको गुरुमहाराजके सुखका रात दिन ध्यान रहता। वे प्रतिदिन नियमपूर्वक और बड़ी भावनासे सत्सङ्ग सुधासिन्धुमें स्नान करके अपने अहो-

भाग्य मानते। उनकी इस अपरिमित प्रीतिसे, अन्य अनेक राजपूत भी प्रभावित हो रहे थे। राठौर-राज्यमें नमस्तेकी मधुर और कर्ण-कोमल ध्वनि सर्वत्र गूंजती सुनाई देती थी। आर्य्यत्वका सर्वत्र प्रचार होता चला जाता था।

महाराजके जोधपुरमें जानेके पश्चात्, सत्रहवें दिन श्री महाराजा यशवन्तसिंहजी बड़े समारोहसे उनके दर्शनोंको आये। समीप आकर उन्होंने बड़ी विनीततासे चरण स्पर्शपूर्वक नमस्कार की। एक सौ रुपये और पाँच सुवर्ण-मुद्रायें भेंटमें रक्खीं। यद्यपि कुर्सियोंका यथोचित् प्रबन्ध था और श्रीस्वामीजी महाराजा महाशयको कुर्सी निमन्त्रित भी कर रहे थे, परन्तु आश्रम-मर्यादा और विनयधर्म्ममें निपुण, जोधपुराधीश नीचे फर्शपर ही बैठ गए। उन्होंने साथ ही यह भी कहा, "आप हमारे स्वामी हैं और हम आपके सेवक हैं, इस लिये आपके सामने नीचे आसनपर बैठनेहीमें हमारी शोभा है।"

श्री स्वामीजी, महाराजा महाशयको नीचे बैठा देखकर उठ खड़े हुए और कहने लगे कि आपका ऐसे आसनपर विराजना मेरे मनको अच्छा नहीं लगता। साथ ही उन्होंने सम्मान-पूर्वक शिष्ट पद्धतिसे महाराजाका हाथ अवलम्बन करके उनको कुर्सीपर ला बिठाया। परमहंसजीके आर्य्योचित्त औदार्य्यका परम प्रमाण, प्रत्यक्ष रूपमें पाकर, राठौर-वंशके सभी सरदार मोहित हो गये। और मन-ही-मन उनकी प्रशंसा करने लगे। तीन घण्टे तक महिपाल महर्षिके सत्सङ्गमें बैठकर मनुस्मृतिसे राजधर्म्मका श्रवण करते रहे। स्वामीजीके वचन उनके लिए अपूर्व रुचिकर थे; उनके आत्मामें बसते जाते थे। उनके अन्तःकरणमें रचते जा रहे थे। थोड़ी देरतक कुछ वार्त्तालाप भी हुआ और फिर महाराजाने वहाँसे उठते समय निवेदन किया—"भगवन् आप ऐसे पर दुःख भंजन करनेवाले दयालु महात्माओंका यहां पदार्पण करना अति दुर्लभ है। यह हमारे सौभाग्य-प्रभातका शुभ-सूचक शुभागमन है, जो श्रीमन्तने यहां अपने देव-दुर्लभ दर्शन दिये हैं! इस लिए, श्री सेवामें यह विनीत विनय है कि पूज्यपाद जब तक यहां निवास करें, अपने उपदेशामृतसे लोगोंको कृतार्थ करते रहें।

महाराजाके मिलापके दूसरे दिनहीसे, स्वामीजीने विविध विषय सम्बन्धी व्याख्यान वारिवर्षणकी घोषणा कर दी जिस बङ्गलेमें महाराज विराजमान थे उसके विशाल आङ्गनहीमें उपदेशोंका प्रबन्ध किया गया। समय सायंके चार बजेसे छः बजेतक नियत हुआ।

पहले दिन जब महाराज व्याख्यान स्थानको पधारने लगे तो राव राजा तेजसिंहजीने प्रार्थना की कि भगवन्, महाराजा महाशयके रहनसहनके विषयमें कुछ भी न कहिएगा।

स्वामीजीने किंचित् बलपूर्वक कहा कि क्या आप मुझसे झूंठ कहलाना चाहते हैं? स्मरण रखिए, मैं जो कुछ कहूंगा सत्य ही कहूंगा। मेरा कथन कभी असभ्यता सूचक भी नहीं हुआ करता। और न ही मैं, किसी व्यक्ति विशेषका नामनिर्देश करके, कभी कर्ण कटु कटाक्ष किया करता हूं।

राव राजा महाशयने सिर झुका दिया और महाराज व्याख्यान-स्थानमें जा पहुंचे और एक स्वच्छ और सुन्दर सिंहासनपर आरूढ़ हो गये। उस दिन महाराजा यशवन्तसिंहजीके बिना राज्यके सारे उच्च पदाधिकारी कर्मचारी वहाँ एकत्र हुए। सेठ साहूकार आदि सज्जन भी आये। सभी उपस्थित सभ्य चातककी भांति उनके वचन-बिन्दुके प्यासे थे चकोरकी भांति तृषित और निर्निमेष नयनोंसे उनके विमल मुख-चन्द्रके दर्शन पा रहे थे।

ठीक समयपर स्वामीजीने अपने दोनों नेत्रोंके पलक-द्वार बन्द कर लिये और उनकी ज्वलन्त ज्योतिको उलटकर, त्रिकुटि-मन्दिरको जगमगा दिया फिर भव-भय हरण, परम पावन प्रणवका गम्भीर नाद ऐसा गूंजाया कि सब श्रोताओंकी मन,-वृत्तियाँ मूर्छित हो गईं। ऐसा प्रतीत होता था कि कोई वादन कला-प्रवीण जन किसी मन्दिरके द्वार बन्द करके वीणा बजा रहा है। सङ्गीत-रसने मानों इस स्वरमें अवतार धारण कर लिया है। जैसे वसन्तमे, पुष्पित लतापर भ्रमर गूंजता है उसी प्रकार होंठ बन्द करके महाराज ओम्-ध्वनि गूंजाते थे, परन्तु उसका अलौकिक माधुर्य्य मोहिनी मन्त्रका काम करता

जाता था। ग्रीष्मके भीषण उत्तापसे सन्तप्त वनराजीपर, जैसे बदली छमाछम बरसकर, उसे शान्त बना रही हो, उसी प्रकार वह स्वर-रस श्रोताओंके वृत्ति बनकर वर्षण करके उसे अननुभूत आनन्द प्रदान कर रहा था। वह सहस्रों मनुष्यों की सभा थी, परन्तु कोई भी मनुष्य हिलताडुलता तक न था। सर्वत्र मौन छा रहा था। प्रशान्तिका अटल राज्य विराजमान था।

प्रत्येक उपस्थितको यह प्रतीत होता था कि यह अपूर्व नाद मेरे कानोंके अति निकट गूंज रहा है। उससे दशों दिशायें निनादित हो रही हैं। सारी सभा, कई मिनटोंतक एकचित्त होकर अनुपम नाद-रस लूटती रही। फिर जब श्री स्वामीजीने मन्त्र गायन आरम्भ किया तब लोगोंकी चित्तवृतियाँ एकाकार पदसे नीचे उतर सकीं। जोधपुरके अधिवासियोंके लिये वह आनन्द सर्वथा नया था। उन्होंने ऐसे स्वर्गीय स्वादु रसका, पहले कभी स्वप्नमें भी आस्वादन नहीं किया था। इस लिये हर्षके उत्कृष्ट उत्कर्षसे उनके हृदय उछलने लग गये।

महाराजका व्याख्यान जब आरम्भ हुआ तो सबकी दृष्टियाँ सिमिटकर उनके देवी स्वरूपकी अद्भुद छटाको निरखने लगीं। सबके श्रोत्र एकरूप होकर उनके वचनामृत पान करने लगे। उनका प्रथम व्याख्यान 'ईश्वर' विषय पर था। उसमें उन्होंने ईश्वरके स्वरूपका निरूपण ऐसे अनुपम प्रकारसे किया कि भक्ति भावके भादोंकी झड़ी लग गई।

लोग परम्परासे पुराणोंकी पुरानी चासनी चखते चखते उकता गये थे। देवमालाकी मनोरंजक, रोचक, भयानक, और कल्पित कथा-कहानियोंसे उनके जी ऊब गये थे। [illegible]राजके यथार्थ उपदेशोंसे उनके हृदयके कपाट खुल गये। उनको छल-बल-र[illegible] सरल सत्यकी समझ पड़ी।

प्रतिदिन, श्री [illegible]राज सायंके चारबजे व्याख्यान-स्थानपर आ विराजते और ज्ञान-गङ्गा बहाकर श्रोताओंको निहाल कर देते। वे अपनी शाण-शोणित कुशाग्र बुद्धिके प्रबल प्रतापसे युक्तियों और-प्रमाणोंका ऐसा तार लगाते कि सुनते सुनते ही सारे भ्रम दूर हो जाया करते। यद्यपि व्याख्यानके अनन्तर

शङ्का-समाधानके लिये समय दिया जाता परन्तु विरला ही कोई उस समय कुछ पूछता। हाँ, कभी कभी कोई अपनी पुरानी परिपाटीको पीटनेवाला, पुराण-पद्धतिका पण्डित कुछ पूछ लेता, परन्तु एक दो वार बोलकर ही जी छोड़ बैठता।

क्षीर-नीरका निर्णय करनेवाले परमहंसके सत्सङ्गमें न्याय होता था, नीति होती थी, युक्तियाँ होती थीं, प्रमाण होते थे और सर्वोपरि सत्यका प्रकाश होता था। कितना ही बली-छली कोई क्यों न हो वहाँ आकर वह छलछिद्रकी सारी चालें चूक जाता। उसका हृदय शून्य होजाता। उसे पूछने योग्य कोई बात सूझती ही नहीं थी। वह बचाव इसी वातमें समझता था कि उस नर सिंहके सामने ही न आये।

जोधपुरमें उन दिनों एक गणेशपुरी नाम प्रसिद्ध संन्यासी आये हुए थे। वे प्रबल पण्डित भी थे। अपने डेरेपर स्वामीजीके विरुद्ध बोलनेमें भूतलाकाश एकाकार कर देते। अपने पक्षकी पुष्टिमें, छाती ठोंककर प्रमाण देनेके लिए समुद्यत हो जाते। कुछ सज्जनोंने उनको जाकर कहा, "महात्माजी! स्वामी दयानन्दजी अपने शास्त्र-सामर्थ्य और यौक्तिक बलसे देवमालाकी लड़ीको तोड़ रहे हैं। आपकी पुराण-पाठकी पक्की और परिपुष्ट पटड़ीको उखाड़े चले जाते हैं। आप चलकर उनसे शास्त्रार्थ कीजिए। नहीं तो बड़ी देरका बना बनाया आडम्बर बिगड़ जायगा।"

गणेशपुरीने आज-कल करते कई दिन तो टालमटोलमें विता दिये, परन्तु जब देखा कि ऊपरकी टीप-टाप बनाए रखनेके लिए शास्त्रार्थकी चक्कीमें पिसना ही पड़ेगा तो स्पष्ट कह उठे, "भाई! वे तो जो कुछ कह रहे हैं सो सब सत्य है। उनके सम्मुख होनेका न तो हममें साहस है और न ही सामर्थ्य।" जब उनको लोग बहुत विवश करने लगे तो वे अपना डेरा-डण्डा उठाकर वहाँसे चुपके ही कहीं चल दिये।

राव राजा ज्ञानसिंहजी आदि अनेक सज्जनोंने सत्सङ्गमें प्रश्नोत्तर करके

अपने सारे संशय मिटाये। एक दिन श्री महाराजा प्रतापसिंहजीने श्रीसेवामें विनीत निवेदन किया कि भगवन्! आप ब्रह्म हैं अथवा जीव?

उन्होंने उत्तर दिया मैं जीव हूं। महाराजा महाशयने कहा कि "हमारे पण्डित तो हमें ब्रह्म बताया करते हैं।"

स्वामीजीने उपदेश देते हुए कहा कि आप ब्रह्म होते तो आपमें ब्रह्मके गुण भी पाए जाते। उसके सर्वज्ञता आदि गुण आपमें नहीं हैं इस लिए आप जीव हैं। ब्रह्ममें भूल और अशुद्धिका मानना भारी भ्रम है।

महाराजा महाशयने फिर निवेदन किया—"भगवन्! कोई ऐसा उपाय अथवा साधन बताइए जिससे विविध वासनाओंके पाशमें बद्ध, मेरे जैसे मनुष्यकी भी मुक्ति हो जाय।" महाराजने कृपा की—"आप लोगोंके दूसरे कर्म तो मोक्ष-मार्गके नहीं हैं, किन्तु एक काम करना आपके आधीन है और वह निरपेक्ष न्याय करना है। यदि आप प्रजाका न्याय करनेमें न्यूनता नहीं आने देंगे तो आपका आत्मा, इसीसे, निर्लेप होकर निर्वाण-पद पा लेगा।"

महाराजा प्रतापसिंहजी एक दिन श्री स्वामीजीको अपना दुर्ग दिखानेके लिये ले गये। उन्होंने अनेक अद्भुत वस्तुओंको देखते २ राठौर-वंशके प्रबल प्रतापी पुरुष, महाराजा प्रतापसिंहका एक हस्त-चित्र भी देखा। उनका डाढ़ी-रहित मुखमण्डल, बल खाती बाङ्की मूछोंसे तेजोधाम प्रतीत होता था। स्वामीजी ने महाराजको सम्बोधन करके कहा, "टुक इस छविकी छटा देखिए। आपके पुरातन पुरुषोंके मुखोंपर ऐसा तेज और गौरव हुआ करता था। देखिए, इस चित्रहीसे कैसी वीरता टपके पड़ती है।"

महाराजने एक दिन, अपने ओजस्वी भाषणमें, वैष्णवोंके चक्राङ्कित सम्प्रदायपर प्रबल टीका टिप्पणी की। उनके और अलीक और अमूलक मन्तव्योंका जी खोलकर खण्डन किया। उनके तिलक छापको निराधार और मिथ्या-मूलक बताया। उस सम्प्रदायके अनेक जन उस सभामें बैठ बल तो बहुत खाते थे, परन्तु उनका वश कुछ न चलता था। महाराजकी युक्तियोंके अनिवार्य्य

और अचूक प्रहारोंकी चोट निरे पुरे चिढ़नेसे क्योंकर दूर हो सकती थी।

एक पहाड़ी पण्डित श्रीराम, बड़ा कट्टर चक्राङ्कित था। उसके वहाँ चेले-चाँटे भी बहुतेरे थे। वह आगे बढ़ा और शास्त्रार्थके लिये लिखा पढ़ी करने लगा। परन्तु किसी एक नियमपर न टिका। अन्तपर्यन्त यही कहता रहा कि मेरे महता विजयसिंहको मध्यस्थ मानो तो मैं शास्त्रार्थ करनेको कटिबद्ध हूं। स्वामीजीने उसको उत्तर दिया कि महता महाशय संस्कृत भाषासे सर्वथा शून्य हैं। इसलिए उनका मध्यस्थ नियत होना अनुचित है। कोई विद्वान् पण्डित चुनकर बताइए। उनको मध्यस्थ बना दिया जायगा। परन्तु उस पण्डित महाशयने महाराजके कथनोंको स्वीकार न किया।

श्रीरामने सामने आकर शास्त्रार्थ तो न किया, परन्तु अपने अनुगामियोंके हृदयोंमें विषम वैर की आग सुलगा दी। महता महाशयके मनमें भी एक विकट गांठ पड़ गई। कुछ एक वैष्णव लोग जैसे भी हो, पूज्यपादके अप्रिय करनेमें प्राण-पणसे परायण हो गये।

महाराज, अपने व्याख्यानोंमें सभी मत-मतान्तरोंपर, प्रसङ्गानुसार समालोचना कर दिया करते थे। कोई कितना ही सत्ताधारी सामने क्यों न बैठा होता, प्रकरणानुसार वे उसके मतके भ्रम-मूलक विचारोंपर आक्षेप कर ही देते। जोधपुरमें भगवान्ने मुसलमान मतपर भी समालोचनात्मक भाषण दिया। उसको सुनकर भैया फैजुल्लाखाँके तन-बदनमें आगसी लग गई। वे बहुतही चिढ़कर बोले—"स्वामी! यदि मुसलमानोंका राज्य होता तो आपको लोग जीवित जाग्रत न छोड़ते। उस समय आप ऐसे भाषण भी न कर पाते।"

स्वामीजीने खाँ महाशयको बड़ी धीरतासे उत्तर दिया—"यदि ऐसा अवसर आता मैं भी कभी थरथराहटमें न आता और निठल्ला न बैठता, किन्तु निधड़क मनसे, दो चार वीर राजपूतोंकी पीठ ठोंककर विरोधियोंके धुर्रे उड़ा देता। ऐसा छकाता कि उनके छक्के छूट जाते।" महाराजके इस उत्तरसे खाँ महाशय सटपटा उठे।

उनके भाषणमें, एक दिन एक मुसलमान युवक, सहसा झिड़झिड़ाकर उठ खड़ा हुआ। एक हाथ तलवारकी मुट्ठीपर रख झुंझलाकर बोला—"आप मुँह सम्भालकर बोलें। हमारे मतके विषयमें कुछ भी न कहें।"

स्वामीजीने, अति कोमलतासे उस युवकको कहा—"सौम्य! आपके अभी दूधके दांत हैं। संसारके उतार-चढ़ावका आपको कुछ भी अनुभव नहीं। आप तो कोरे खड्गको हाथसे थामनेवाले हो, उसे कोशसे निकाल नहीं सकते। भला चना भड़केगा तो क्या भाड़ फोड़ डालेगा। यदि हम ऐसी थोथी झिड़काझिड़की से झिझकने लगते तो इतना बड़ा बोझा कैसे उठा सकते।"

वह युवक थरथराता हुआ बैठ गया और इतना लज्जित हुआ कि फिर ऊपरको सिर न उठा सका।

भैया फैजुल्लाखांके हृदयमें उपर्युक्त बात-चीतसे बहुतसे पेचीले बल पड़ गये। वे प्रतिकारके उपायके लिए चिन्तित रहने लगे।

महाराजका हृदय सरल था। वे सर्वसाधारणके हितार्थ सत्योपदेश देते थे। लाग-लपेटकी बात बनाना और शक्तिशालियोंकी चापलूसी करना कभी स्वप्नमें भी नहीं सीखे थे। संसार छल-कपटसे भरा है। इसमें खरेखोटेको परखनेवाले मनुष्य विरलेही मिलते हैं। उस महापुरुषके मानस महत्त्वको मर्त्यलोकके कीटाणु क्या जानते! हास-विलास और विषयानन्दके जीव-जन्तुओंको तो वे बतकड़ही अच्छे लगते हैं, जो मुँह-देखी बातें करते हैं। चबा-चबाकर चिकनी चुपड़ी गप्पशप हांकते रहते हैं। बड़े मनुष्योंकी मिथ्या प्रशंशाके पुल बाँधदेते हैं। भगवान् दयानन्द, किसीके षडयन्त्र रचनापर कुछ भी ध्यान न दे, अपने नियत कार्य्योंको किये जाते थे। वे प्रातःसमय भ्रमण करने जाते और एकांत विजन प्रदेशमें बैठ घण्टाभर ध्यानमें निमग्न रहते थे। भ्रमण-कालमें वे एक कौपीन और धोती-मात्र वस्त्र तनपर रखते, पाँवमें जूता धारण करते और हाथ में एक सुदृढ़ दण्ड रक्खा करते। जब स्वस्थानपर लौट आते तो पन्द्रह बीस मिनटतक कुर्सीपर बैठकर, एक गलास दूधका पीते। तत्पश्चात् ठीक आठ बजे

वेद-भाष्यका परमोपयोगी कार्य्य करना आरम्भ कर देते। ग्यारह बजे यह कार्य्य बन्द कर देते और फिर स्नानादि करके भोजन पाते। उनका भोजन परिमित और बहुत ही सादा होता था। सब वस्तुयें मिलाकर उनका आहार डेढ़ पावके अन्दर ही होता था। भोजनान्तर महाराज कुछ कालके लिए विश्राम भी लिया करते।

दोपहर ढले, एक बजनेपर महाराज सत्यार्थ-प्रकाश और संस्कारविधिकी कापियोंके प्रूफ देखते, उनका संशोधन करते। तत्पश्चात् चिट्ठी-पत्रोंका काम करने लग जाते। बीचमें यदि कोई आवश्यक कार्य आ पड़ता तो वह भी कर डालते। चार बजेसे कुछ पूर्व स्नान करके सारे तनपर मिट्टी भी रमाया करते। मस्तक, छाती और भुजाओंपर लेप लगाते। रेशमी धोती और रेशमी साफा धारण करके एक लम्बा चोगा पहनते। उसके पश्चात् ठीक चार बजे व्यास-गद्दी पर जा विराजते और छः बजेतक परम-प्रभाव-उत्पादक उपदेश देते रहते। छः से आठ बजेतक शङ्कासमाधानमें लोगोंके भ्रम मिटाते। फिर नौ बजे तक वैसे ही वार्त्तालापमें जनताका हित-साधन करते। इसके उपरान्त प्रभु औटाया हुआ सेरभर दूध मिश्री मिलाकर पीते थे।

आम्रफल उनका चित-चाहता भोजन था। थोड़ेसे आम वे अवश्य चूसते थे। पास बैठे सत्सङ्गियोंमें भी, बड़ी वत्सलतासे, आमके फलोंका प्रसाद बाँटा करते। यही समय उनका समाचारपत्र सुननेका था। जब दस बजते तो तत्काल शुभासनपर लेट जाते। कभी कभी महाराजा महाशय सात बजे श्रीसेवामें आते और वार्त्तालापमें जब दस बजने लगते तो भगवान् कह देते कि 'राजन्! अब शयनका समय हो गया है। शेष वार्त्तालाप कल किया जायगा। महाराजका जीवन सुनियमताके ढाँचेमें ऐसा ढला हुआ था कि उसका दूसरा उदाहरण मिलना अति दुर्लभ है। वे प्रत्येक कार्य्यमें आदर्श स्वरूप थे।

पूज्यपाद परमहंसजी सबके साथ प्रेमसे वर्ताव करते। किसीका धार्म्मिक विचार चाहे जो हो परन्तु उनके शिष्टाचारमें अपने पराये सभी समान थे। उन

का हृदय पद्मकमलकी पँखड़ियोंसा कोमल था, मन मोम समान नर्म था, बर्ताव मृणाल समान मृदु था। और कथनोपकथन तो मधुमयी मिठासका भी तिरस्कार करता था।

उनका हृदय सङ्कुचित नहीं था। उनके विचारोंमें सङ्कीर्णताका लवलेश भी नहीं दिखाई देता था। किसी दीन दुःखियाको देखकर उनके भीतर दया का प्रवाह बहने लगता था। किसीका आर्त्तनाद और करुणक्रन्दन कर्ण-गोचर करनेपर उनमें सहानुभूतिका सागर उमड़ आता। वे तत्काल पिघल जाते, आँखें भर लाते और उसकी विपत्तिको, बाधाको, वेदनाको, दूर करनेमें भरसक प्रयत्न करते।

महाराजका आर्य्य सामाजिकोंसे कल्पनातीत प्रेम था। उन्होंने इस वाटिका को अपने हाथोंसे लगाया। इसमेंसे घास फूस और झाड़-झँखाड़ फेंकनेमें वे बड़ी दौड़धूप करते रहे। उन्होंने इस परम और चरम कर्ममें रात दिन कुछ भी नहीं गिना। लहू पसीना एक कर दिया। किसी विनीत आर्य्य समाजीको अपने सामने नत-शिर देखकर उनकी छाती उतनी ही ठंडी होती थी, उनका हृदय उतनाही वात्सल्य-भावसे भर जाता था और उनके नेत्रोंमें उतनाही प्रेम पूर प्रकट हो आता था जितना एक प्रेमके पुञ्ज पिताको, प्रीतिके पुतले और सुपात्र औरस पुत्रमें हो आता है।

महाराज अपनी मानस सन्तानसे क्या आशा रखते थे उसका प्रकाश इस बातसे होता है। एक दिन राव राजा ज्ञानसिंहजीने नम्र निवेदन किया— "प्रभो! आप कोई सुयोग्य शिष्य तो बनाइए, जिसमें आपके उद्देश्योंकी लड़ी बीचमें कहीं टूटने न पाये।"

भगवान्‌ने भक्तको कहा, "शिष्योंसे मुझे कोई आशा नहीं है। ऐसा एक भी सुपात्र और सुयोग्य शिष्य मुझे नहीं मिल सका, जिसके हाथमें अपने कार्य्यकी बागडोर सौंप सकूं। अब तो मेरे शिष्य सभी आर्य्य सामाजिक हैं। वेही मेरे विश्वास और भरोसेके भव्य भवन हैं। उन्हींके पुरुषार्थपर मेरे कार्य्यों की पूर्त्ति और मनोरथोंकी सफलता अवलम्बित है।"

महाराजकी शारीरिक अवस्था अधिक कार्य्य करनेपर भी अत्युत्तम थी। उनके तनपर वार्द्धिकताका कोई चिन्ह नहीं दीख पड़ता था। सत्सङ्गी जन प्रायः यह कहा करते कि सौ वर्षसे पूर्व इनकी दैवी देह पर जराका आक्रमण कदापि न होगा। कहीं भी कोई झुर्री दिखाई न देगी। इनके तनका थकना ढीला हो जाना और थलथलाने लगना एक शताब्दीके भीतर तो असम्भव है। महाराज स्वयं भी कहा करते कि हमारा देहपात यदि विष-प्रयोग अथवा शस्त्र-संयोगसे न हुआ तो यह देह मानुषी जीवन-कालको परमावधितक कार्य्य करनेमें समर्थ बनी रहेगी और मुरझाने तथा कुम्लाने नहीं पायगी।

राव राजा तेजसिंहजी आदि भक्त जन, कभी पाँव दबानेके बहानेसे, महाराजकी पिण्डलीमें बलपूर्वक अपनी उङ्गलियाँ धसाते तो वे कुछ भी न धसने पातीं। उनको महाराजके सारे अङ्ग वज्रसमान बलिष्ठ और परिपुष्ट प्रतीत होते। अस्थियोंसे मांसका ढलकना तो दूर यदि कभी कोई सेवा करते करते मांसको मुठ्ठीमें लेने लगता तो उसे हड्डी, मांस और त्वचा एकात्म हुए जान पड़ते। उनकी देह वज्रसङ्गठित थी और वज्रसमान सुदृढ़ थी। उनकी कायाका कल्पतरु सांसारिक कलह-कल्पनाके कलुष कीचड़से ऊपर था। लोककी कल्याण-कामनासे परिपूर्ण था। प्रार्थ और परमात्माकी प्रजाके पालनार्थ उसकी रचना हुई थी। पाँवके अङ्गूठेसे लेकर शिखा स्थानतक उसमें पर-हित और पर-प्रेम भरपूर हो रहा था। महाराज तन, मन, धन-सहित मनसा, वाचा, कर्मणा परोपकारमें समर्पित थे। परन्तु द्रोह, धोखे और धड़ा-वन्दीके भारसे लदी हुई इस धरणीपर, लोग धर्म्मकी आड़में रात दिन धड़ाधड़ महा अधर्म्म कमाते हैं। किसी किसी समय वे अपनोंपर ऐसे घोर अत्याचार कर बैठते हैं; कि जिनके स्मरणसे रोमराजी खड़ी हो जाती हैं; कलेजा काँप उठता है।

महाराजके दर्शनोंके लिये, महाराजा श्री यशवन्तसिंहजी तीन वार उनके आसनपर आये और तीन बार ही श्रीचरणोंको अपने आवासमें आमन्त्रित किया।

एक दिन श्री महाराज जब जोधपुराधीशको दर्शन देने गये तो उस समय

वहाँ वाराङ्गना 'नन्ही जान' आई हुई थी। उनको आते देखकर महाराजा महाशयने उसकी पालकीको उठवानेका सङ्केत किया। नन्ही जानका बहुत कुछ मान था। सभी नौकर चाकर उससे काँपते थे। यहाँ तक कि अधिकारियोंको भी उसे प्रसन्न रखनेकी आवश्यकता होती थी।

वह वाराङ्गना तो वहाँसे चली गई, परन्तु उस दृश्यको देखकर भगवान् दयानन्दका हृदय अतीव दुःखित हुआ।

वेश्या-प्रेमके घोर घृणित कुव्यसनका वे वैसे ही कड़ा खण्डन किया करते थे। सैंकड़ो पुरुषोंका, उन्होंने इस पाप-पङ्क और दुर्व्यसनकी दलदलमेंसे, उद्धार किया था। महाराजा महाशयको भी वे धर्म्मावेशमें आकर कहने लगे—'राजन्! राजा लोग सिंहसमान समझे जाते हैं। स्थान, स्थानपर भटकनेवाली वेश्या कुतियाके सदृश हैं। वीरशार्दूलका कृपणा कुतियापर प्रेम करना और आसक्त हो जाना सर्वथा अनुचित है। आर्य्य जातिकी कुल-मर्यादाके विपरीत है। केसरीकी कन्दरामें, ऐसी कल्मष कलुषित कुक्कुरीके आगमनका क्या काम है? इस कुव्यसनके कारण धर्म्म-कर्म्म भ्रष्ट हो जाता है। मान-मर्य्यादाको बट्टा लगता है। इस पापसोपानपर प्रथम,पदार्पण करते ही, पुनः पद पदपर पुरुषका अधःपतन,आपही आप होता चला जाता है। इस दुर्व्यसनको तिलाञ्जलि देनी चाहिए।

उपदेश देनेके अनन्तर महाराज अपने आसनपर चले आये। प्रेमी पुरुषोंसे कथनोपकथन करते उन्होंने कई वार कहा कि हमारे देशके बड़े बड़े मनुष्योंके आचार-विचार तो इतने बिगड़ गये हैं कि इनका सर्वनाश कभीका हो चुका होता, इनकी नौका मंझदारमें डूब गई होती, परन्तु इनकी पत्नियोंका पतिव्रत धर्म्म ही इन्हें अभीतक बचाए हुए है। कुलवन्तियाँ आर्य सतियाँ ही अपने धर्म्मसे इनकी रक्षा कर रही हैं।

नन्ही जान इस बातको जानती थी कि महाराजके उपदेश वेश्या-व्यसनके विरुद्ध मोहिनी मंत्रका प्रभाव रखते हैं। बरसोंके महाव्यसनी भी उनके श्रवण-मात्रसे सुधर जाते हैं। उसे इस बातका भी पता लग गया कि स्वामीजीने

उसकी तुलना कुतियाके साथ की है। इन दोनों बातोंसे उसके कलेजेपर साँप लौटने लगे। वह विकट वरकी विषम ज्वालासे रात दिन सन्तप्त रहने लगी।

इसी बीचमें भगवान्ने महाराजा प्रतापसिंहजीको यह पत्र लिखा—

'श्रीयुत मान्यवर शूरवीर महाराजा श्रीप्रतापसिंहजी! आनन्दित रहो।

यह पत्र बाबा महाशयके दृष्टिगोचर भी करा दीजिएगा।

मुझे इस बातका बहुत शोक होता है कि श्रीमान् जोधपुराधीश आलस्य आदिमें वर्त्तमान हैं और आप तथा बाबा महाशय रोगी शरीरवाले हैं। इस राज्यमें सोलह लाखसे अधिक मनुष्य बसते हैं। उनके रक्षण और कल्याणका बड़ा भार आप लोग उठा रहे है। उनका सुधारबिगाड़ भी आप तीन महाशयों पर ही निर्भर है। तथापि आप लोग अपने शरीरको रोगसे रक्षा करने और आयु बढ़ानेके कामपर बहुत अल्प ध्यान देते हैं। यह बात कितनी बड़ी शोचनीय है।

मैं चाहता हूं कि आप लोग अपनी दिनचर्य्या मुझसे सुधार लें, जिससे मारवाड़ तो क्या अपने आर्य्यावर्त्त देशभरका कल्याण करनेमें आप लोग प्रसिद्ध हो जायँ। आप जैसे योग्य पुरुष जगत्में बहुत थोड़े जन्मते हैं और जन्म कर भी बहुत स्वल्प आयु भोगते हैं।

इसके हुए बिना देशका सुधार कभी नहीं होता। आप जैसे पुरुष जितना अधिक जियें उतनी ही अधिक देशोन्नति होती है, इसपर आप लोगोंको ध्यान अवश्य देना चाहिए। आगे जैसी आप लोगोंकी इच्छा हो'।

आ० वदी तृतीया १९४० हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती।

महाराजका ऊपरका पत्र राठौर-वंशकी हितेच्छासे कितना पूर्ण है, यह उसके एक एक पदसे प्रकाशित हो रहा है। परन्तु जो वस्तु एकके लिये अमृत होती है वही दूसरेके लिये विष बनजाती है नन्ही जानको यह पत्र ठीक कालके सदृश दीख पड़ा। महाराजके उत्तमोपदेशसे उसके हृदयमें जो गहरा घाव उत्पन्न हो गया था उसपर इस पत्रने लवणका काम किया। उधर उसे

दिनोंदिन यह दीखने लगा कि वह महाराजाके जीसे उतरी और आँखोंसे गिरी चली जा रही है। वह दिन दूर नहीं, जब वह म्लान कुसुम मालाकी भाँति परित्यक्ता हो जायगी। उसकी चिन्ताकी प्रचण्ड पवनने वैर-दावानल को द्विगुण चतुर्गुण भड़का दिया।

नन्हीं जान, सताये हुये फणियर साँपकी भांति, बल खाती थी। लम्बे सांस लेती थी; प्रतिकार, प्रतिबंध और प्रतिरोधके उपाय सोचती थी। उसको निश्चय हो गया था कि स्वामीजीही उसके रङ्गको भङ्ग करनेवाले हैं, मिलेसुरकी तन्त्रीको तोड़नेवाले हैं। उन्हींके वचन उसके क्षीर-नीर प्रेममें काँजीका बिन्दु बनकर गिरे हैं। इस लिए वह अन्यायसे, अनीतिसे, निष्ठुरतासे और अनर्थसे महाराजका अनिष्ट करनेपर पूरी तुल गई।

नागिनकी भाँति, वैरविषसे व्याकुल, उस वाराङ्गनाके साथ वे लोग भी क्रियात्मक सहानुभूति करनेके लिए समुद्यत हो गये, जिन्होंने कभी मत-भेदसे स्वामीजीकी बातोंको बुरा मनाया था। जो कभी भकसे उड़ जानेवाली वस्तुकी भांति उनके व्याख्यानोंमें भड़क उठे थे। स्वामीजीको सांझा शत्रु समझकर कुटिल नीतिके गुप्त सूत्रपात होने लगे।

जब कोई विषम विपत्ति आने लगती है तो बयार पहले ही विपरीत बहने लग जाती है। महाराजका सेवक कल्लू कहार अति प्रीतिसे उनकी सेवा किया करता था। परन्तु जोधपुर-निवासके पञ्चम मासमें वह कहार छः सात सौका द्रव्य लेकर चुपकेसे चम्पत हो गया। द्रव्य बटोरकर वह जिस खिड़कीके द्वारसे बाहर निकला उसके आगे ब्रह्मचारी रामानन्दजीको सोनेकी आज्ञा हुई थी, परन्तु उस रात वे वहां नहीं सो सके।

प्रभात होते ही कहारके चौर्य्य-कर्म्मका कोलाहल मच गया। राजाज्ञा हुई कि उसे पातालसे भी ढूंढ निकालना चाहिये। परन्तु अत्याश्चर्यकी बात यह हुई कि वह विदेशी कहार मक्खनमेंसे बालकी भांति निकल गया। वह मारवाड़के दुर्गम और विषम मार्गोंसे सर्वथा अपरिचित था, परन्तु पकड़ाईमें नहीं

आया ! इतना पूर्ण प्रबन्ध होनेपर भी चोरका कपूरकी तरह उड़ जाना स्वामीजीके हृदयमें सन्देहकी रेखाको प्रकट करता था। उधर पहरेवाले नोकर भी अपने कर्त्तव्य कर्मसे अन्यमनस्क हो रहे थे।

नन्ही जानने अपना बदला लेने और कलेजा ठण्डा करनेके लिए ईश्वर जाने क्या क्या क्रूर कर्म करने निर्धारित किये होंगे। वह अपने हृदयके फफोले फोड़नेके लिए न जाने कैसा पाप पाश लगा रही होगी। अपने मान-भङ्गसे उसने जो कुछ भी किया हो सो सम्भव है। परन्तु जबतक अपना न फूटे, पराया अत्याचार करके कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। अपने ही दीपकसे भवन भस्म होते हैं। अपने ही भीतरकी आग दावानल बनकर विस्तृत वनोंको दग्ध कर देती है। द्रोह, दम्भ और लालच-वश, अपनायतोंने संसारमें अपनोंके सिरपर घोरसे घोर और घृणित अनर्थ ढाये हैं। भारतभूमिमें तो ऐसे सहस्रों दृष्टान्त मिलते हैं, जिसमें दिनोंदिन बढ़ते द्रोहसे, नीचतासे, दुष्टतासे, प्रलोभनवश और विश्वासघातसे अनेक कुलकलङ्की कपूतोंने, अनेक क्रूरतम कर्मोंसे, अपने ही कुलोंको कीर्तिको अत्यन्त काली कलूठो बनाया है।

ऐसेही विशुद्धवंश-विदूषक अधम नर स्वामीजीके पास भी बसते थे। महाराजका स्वास्थ्य दो चार दिनसे कुछ शिथिल था। आश्विन बदी चतुर्दशी सम्वत् १६४० को रात्रि-समय महाराजने अपने रसोइएसे दूध लेकर पान किया और फिर सो गये। थोड़ी ही देरतक आंख लगने पाई थी कि उदर-वेदनाकी खलबलीने उनको जगा दिया। उसो विकट व्याकुलतामें उन्होंने तीन बार वमन की। आप ही जलादि लेकर कुल्ले करते रहे। पास सोये सेवकोंको जगाकर कष्ट नहीं दिया।

भगवान्, प्रतिप्रातः भ्रमणार्थ बाहर जाया करते थे, परन्तु आश्विन अमावास्याको वे चार पाईसे बड़े दिन चढ़े उठे। उठतेही उन्हें एक और उलटी आई। इस वमनसे उनको कुछ सन्देहसा हुआ, इस लिए कुछ जल पान करके उन्होंने दूसरी उलटी आप कर डाली। वे अपने कर्म्मचारियोंको कहने लगे कि

आज हमारा दिल कच्चा हो रहा है। उदरमें गड़बड़ हो रही है। अग्नि जलाकर आप लोग हवन कीजिए, जिससे बङ्गलेके भीतरकी वायु शुद्ध हो जाय। उनकी आज्ञाका पालन तुरन्त हो गया। इसके अनन्तर उनके उदरमें शूलवेदना उत्पन्न हो गई। उसको उपशम करनेके लिए उन्होंने अजवायन आदि वस्तुओंका काढ़ा लिया। इससे वेदना तो शान्त न हुई, किन्तु साथ ही अतिसार होने लग गये।

लोगोंने डाक्टर सूर्य्यमलजीको बुलाया। उन्होंने उलटी बन्द करनेकी औषधि देकर श्रीमहाराजसे पूछा कि आपका स्वास्थ्य अब कैसा है ? उन्होंने कहा कि पेटमें प्रबल पीड़ा हो रही है, मुंह भी सूख रहा है। तत्पश्चात् डाक्टर महाशयने प्यासके रोकनेका भी औषध दिया। महाराजके उदरमें ऐसा तीव्र, ऐसा विषम और ऐसा भीषण शूल उठता था कि यदि कोई दूसरा मनुष्य होता तो छटपटाकर प्राणान्तको पहुंच जाता। वे धैर्य्यसे असह्य दारुण वेदना सहन कर रहे थे। हाय हूं आदिसे घबराहटका कोई चिन्हतक प्रकाशित नहीं करते थे। अन्तमें वे स्वयं यह प्रतीत करने लग गये कि हलाहल विषमविष उनके तनकी नसनस, नाड़ी नाड़ी और एकएक रक्त बिन्दुमें प्रवेश करके जीवनशक्तिको शोषण कर रहा है। उनकी सारीदेहमें दाह लगी हुई थी। रह रहकर भयङ्कर शूल उठता था। श्वास-प्रश्वासका वेग अति तीव्रतासे बढ़ता चला जाता था। परन्तु स्वामीजी महाराज थे कि उनके मुखमण्डलपर व्याकुलताका कोई चिन्ह चक्रतक न दिखाई देता था। वे घबराहटका नाम तक नहीं लेते थे। प्रशान्त चित्तसे कालकूटके उत्क्रुष्टको सहन करते हुए परमात्म-देवके भजन तथा ध्यानमें निमग्न थे।

सायंकालके चार बजे महाराजकी रुग्णावस्थाका समाचार महाराजा प्रतापसिंहजीको मिला। उन्होंने तत्काल डाक्टर अलीमर्दान खांको औषधोपचारके लिए नियत करके उनके पास भेज दिया। डाक्टर महाशयने आकर उनकी पीठपर पट्टी बँधवाई और कुछ औषधि भी दी। परन्तु शान्त होनेके स्थान इस नये

औषधसे रोगने महा भयङ्कर रूप धारण कर लिया। तीस चालीस अतिसार हुए। शूल भी पहलेसे बढ़ता ही चला गया।

अगले दिन डाक्टर महाशयने आकर ग्लास लगाये। उनसे खाँसीके साथ जो पीड़ा उठती थी वह तो शान्त हो गई, परन्तु शूल ज्योंका त्योंही बना रहा। आश्विन शुक्ला १ को प्रातःकाल ८ बजे जब डाक्टर महाशय आये तो महाराजने कहा कि हम विरेचक औषधि लिया चाहते हैं। उन्होंने उत्तर दिया कि यह तो ठीक है, परन्तु पहले कोई ऐसी औषधि लेनी चाहिए जिससे कफ फूल जाय और छः सात विरेचन हों। महाराजने कहा कि व्याधिका विनाश होना चाहिए, औषधि चाहे जो हो।

उस दिन डाक्टरजी चले गये और उन्होंने घरसे गोलियाँ बनाकर भेज दीं। महाराजने उनके कथनानुसार उनका सेवन किया। आश्विन शुक्ला २ को विरेचक औषध दिया गया। दस बजेसे विरेचन होने आरम्भ हुए। रात्रिभरमें कोई तीससे भी अधिक विरेचन हो गये। आगामी दिन सवेरे, जब डाक्टर महाशय आये तो महाराजने उनको कहा कि आप तो यह कहते थे कि छः सात विरेचन होंगे। यहाँ तो तीससे भी अधिक हो चुके है! अब तो हमारा जी मिचलाता है और बार बार डूबता जाता है।

विरेचक औषधिसे जो विरेचन हुए वे बहुत ही भयङ्कर सिद्ध हुए। उनके साथ शरीरपर अचेतना छा जाती थी। अली मर्दानखाँकी औषधि उलटा ही काम करती गई। उससे अतिसार रोग बढ़ गया। तीस पैंतीस अतिसार प्रतिदिन आने लगे। आठ नौ दिनहीमें भगवान्‌की पाँचभौतिक देह क्षीण और दुर्बल हो गई। उस वज्रमयी कायाको, किसी कुटिलताके कालकीटने भीतर प्रविष्ट होकर, घुने हुए दानेकी भाँति खोखला कर दिया। उस लोह-सदृश शरीरको औषधोपचारने शीघ्रतासे जीर्ण-शीर्ण होनेमें बड़ी भारी सहायता दी। विष-ज्वालापर जो वस्तु पानी कहकर डाली जाती थी कोई कह नहीं सकता, वह क्योंकर तेलका काम करती थी।

स्वामीजी महाराज आदर्श संन्यासी थे। किसीके लिए भी मनमें अनिष्ट चिन्तन करना उनके कर्त्तव्य कर्म्मके प्रतिकूल था। वे यह भी नहीं चाहते थे कि आगमापायी शरीर किसीकी अपकीर्त्तिका कारण बन जायं। इस लिए मनसे जानते हुए भी उन्होंने मुखसे किसी विश्वस्तको भी नहीं कहा कि हमारी कायापर कालकूट विषका प्रयोग हुआ है।

इस भवार्णवमें भौतिक शरीरका भव धारण करके कौन है जो भवितव्य-ताके भीषण प्रभावसे बच सका हो। होनहारके आगे सभी ऋषि महर्षि हार मान रहे हैं। अपनी भाग्य-भूमिमें जिसने रोग-भोगके जैसे भी पेड़ लगाए हों उनके फल भोगनेपर ही उसका छुटकारा होता है। भगवान् दयानन्दके सदृश महापुरुष, अपनी भावीका प्रत्यक्ष प्रभाव देखकर, उसके लिए एक साधन बन जाने वाले जनपर कोप कदापि नहीं किया करते। उनकी दृष्टिमें ठोकर गिरने से भूमिको पीटने लग जाना बाल-कालकी लीला है। जो कुछ होता है वह तो अपने किये कर्म्मका परिणाम-मात्र है। बीचमें जो मनुष्य बहाना बन गया है, उसको वध बन्धनमें डालकर, घेरने घोटनेमें सन्त जन कोई लाभ नहीं समझते ऐसे बड़े ब्रह्मज्ञानियोंका बड़प्पन और भगवद्भक्तोंका भूषण क्षमा कर देना— अपने प्राणोंके प्यासे पुरुषको भी क्षमा-दान देना है।

महाराजके कर्म्मचारियोंमें कोई जन कपट कौशलकी चाल चलता और उन्हें पीछे पता तक न लगता यह बात सर्वथा असम्भव है। मनोगत भावोंको भी परि-लक्षित कर लेनेवाली आर्य्य आंखसे भला कोई अपना काला मुँह कैसे छिपा सकता था। सच बात तो यह है कि श्रीमद्दयानन्दके दयामय हृदयने जान बूझकर, अपने प्राणोंके अपराधीको अपने परम प्रेमियों-राठौर-वंशियोंके हाथ समर्पण करना स्वीकार नहीं किया। उनके मनने नहीं माना कि हत्यारेको अपने भक्त महाराजोंके सामने कर, उसे कठोर दण्डसे दण्डित करायें।

राजकोटसे एक महाशयने सद्धर्म्म-प्रचारक समाचार-पत्रको जो सूचना दी थी। उसके आधारपर बलपूर्वक कहा जा सकता है कि प्रभु दयानन्द दण्डीको

दया अद्वितीय थी। उसका दूसरा दृष्टान्त दुर्लभ है। उस पत्रमें छपा था कि एक जगन्नाथ नाम ब्राह्मण-वंशीय मनुष्य महाराजके पास चिरकालसे रहता था। वे उसे विश्वास-पात्र समझते थे। वह पाकशालामें पाचनकी क्रिया भी किया करता था। जगन्नाथ, न जाने किसके बहकानेसे, उलटी पुलटी पट्टी पढ़ानेसे, चकमा दिखानेसे, अथवा किसी प्रलोभन-वश महापातकके पाप-पङ्कमें सहसा कूद पड़ा। अनीति, अन्याय और नीचतासे घोरघृणित अनर्थ कर बैठा। गुरुद्रोह और ब्रह्म-हत्याका अपराधी बन गया। हाय, आश्चर्य्य है ऐसे क्रूरतम कर्मका साहस करते समय उसकी छाती न फटी! उसका कलेजा टूक टूक क्यों न हो गया।

परम पवित्र परमहंसजीने अपने तन-पिंजरको जर्जरीभूत करनेवाले और प्राण-पंखेरुओंके वधिक जगन्नाथको पकड़ लिया। जगन्नाथने अपने अधमतम अपराधको मान भी लिया। परन्तु कर्म-गति और फल-भोगके विश्वासी महर्षि ने ताड़ना-तर्जना तो कहाँ उसे तू तक नहीं कहा! वे गम्भीर भावसे दया दर्शाते बोले—"जगन्नाथ, मेरे इस समय मरनेसे मेरा कार्य्य सर्वथा अधूरा रह गया। आप नहीं जानते कि इससे लोक हितकी कितनी भारी हानि हुई है। अच्छा, विधाताके विधानमें ऐसा ही होना था। इसमें आपका भी क्या दोष है। जगन्नाथ लो ये कुछ रुपये हैं, मैं आपको देता हूं। आपके काम आयंगे। परन्तु जैसे भी हो राठौर-राज्यकी सीमासे पार हो जाओ। नैपाल राज्यमें जा छिपने से ही आपके प्राणोंका परित्राण हो सकता है। यदि यहांके नरेशकोघुणाक्षर न्यायसे भी इस बातका पता लग गया तो वे आपका बिन्दु विसर्गतक विनष्ट करकेही विश्राम लेंगे। उनके प्रकोपके उत्तापसे आपका परित्राण कोई भी न कर सकेगा। जगन्नाथ अब देर न करो। जाओ चुपचाप भाग जाओ। देखना किसीको स्थाली पुलाक न्यायसे भी आपका कर्म्म ज्ञात न हो जाय। मेरी ओरसे सर्वथा निश्चिन्त रहना। इस हृदय सागरसे आपका, यह भेद किसी प्रकार कभी भी प्रकाशित न होगा।

विष देनेवाले जगन्नाथ पाचकको (प्राणरक्षार्थ) रुपये दे विदा करना ।

भगवान्‌ने अपने जीवनकी ज्योतिको बुझानेवाले जगन्नाथको पकड़ा, उससे सब कुछ मनवाकर उसे मार्ग-व्ययके लिये, रुपये दिये और अन्तमें बालबाल बचाकर वहांसे ऐसे निकाल दिया कि उसके प्रेमी जन भी कुछ भी कल्पना तक नहीं कर सके। उसके कर्मचारियोंको इसमें कुछ भी सन्देह नहीं हुआ। इसका सबसे बड़ा कारण यही है कि उन्होंने विष प्रयोगका कभी नाम तक नहीं लिया जगन्नाथने भेस बदलकर पन्द्रह बरस नैपालमें काटे।

महाराजके चरण-चिन्होंका अवलोकन करते, उनकी परम पावन पदपंक्तियोंकी यात्राके भावसे गङ्गा-कूलपर फिरते समय हमने भी यह सुना था कि राजघाटमें सम्वत् १९७० तक एक जगन्नाथ नाम ब्राह्मण प्रायः आकर वास किया करता था। वह साधुओंके वेशमें रहता था। पगलासा प्रतीत होता था। वह जोधपुरमें महाराजके सङ्ग था। कुछ एक साधु जनोंमें यह भेद खुल भी गया था कि उसकी उन्मत्तता कृत्रिम थी। वास्तवमें वह ब्रह्मघातक था।

भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्रने भी, अपने पाँवके तलुवेमें तीर मारनेवालेको क्षमा दान दे कर, पाससे खिसका दिया था। परन्तु उसके और जगन्नाथके कर्म्मोंमें रातदिन और भूतलाकाशका अन्तर है। उसने, श्रीकृष्णके पाँवके चमकते चक्रको, मृगकी आँख समझकर आविद्ध किया था, परन्तु जगन्नाथ तो सोच-विचारपूर्वक, किसी पड्यन्त्रके चङ्गुलमें फँसकर उस महाहत्याका भागी बना। इस लिए धन्य धारणा स्वामीजी महाराजकी है जिन्होंने ऐसे विषम विषैले विषधरको भी क्षमा प्रदान कर दी, और प्रेरणा करके, उसे पाथेय-सहित अपने प्राण परित्राणके उपायमें भी प्रवृत्त कर दिया।

महर्षिकी वेदना-व्याधिका समाचार, आर्य्य सामाजिक जगत्‌को, आश्विन शुक्ला एकादशीको मिला। अजमेर आर्य्य समाजके एक सभासद्‌ने राजपूताना गजेटमें पढ़ा कि जोधपुरमें भगवान् किसी भयंकर व्याधिमें ग्रस्त हो रहे हैं। इस समाचारने उसके चित्तको चलायमान कर दिया। उसने बातकी बातमें यह शोचनीय समाचार अजमेरके सामाजिक मण्डलमें पहुंचा दिया। अजमेर

समाजने अपना एक सभासद् श्री चरणोंमें जोधपुर भेजा। उसने महाराजकी देह-दशा देखकर निवेदन किया कि भगवन्, आपने आर्य्य जनताको अपनी इस दशाकी सूचना तक नहीं दी। महाराजने कहा—'सौम्य, रोगका होना तो दैहिक धर्म्म ही है। इसका समाचार देकर आप लोगोंके हृदयोंको दुःखित करनेका भागी क्यों बनता। हाँ, आप लोगोंके हृदय-कमलोंको प्रफुल्ल करनेका कोई समाचार होता तो मैं तुरन्त आर्य्य जनताके कर्णगोचर कर देता'।

उस सभासद्के अजमेर लौटनेपर महर्षिकी वेदना-व्याधिके तार समाचार लाहौर, मुम्बई और मेरठ आदि सामाजिक केन्द्रोंमें दौड़ने लगे। उस दिन अजमेरका तार-घर आर्य्योंकी चित्त-चिन्तासे अत्यन्त चंचल हो रहा था। उद्वेग-वेगसे व्याकुल जनोंके सैकड़ों तार आ जा रहे थे। उस घरके दिवाल द्वारतक पर, एक विचित्र घबराहट छा रही थी।

कई भक्तजन तो गुरुमहाराजकी व्याधिके समाचारको पाकर इतने अधीर हो गये कि अपने सभी काम-धन्धे छोड़ छोड़कर, तत्काल श्री चरणदर्शनोंके लिए दौड़ पड़े।

आश्विन शुक्ला चतुर्दशीको महाराजको देखनेके लिए सबसे बड़ा डाक्टर आया। स्वामीजी आबू पर्वतपर जाना चाहते थे। इसमें वह डाक्टर महाशय भी सम्मत हो गया। उस दिन सायंको श्री महाराजा यशवन्तसिंहजी अपने सरदारों सहित श्री सेवामें पधारे और महाराजकी व्याधिपर अति चिन्तित हुए। उन्होंने ढाई सहस्र रुपया श्री चरणोंमें भेट किया।

आश्विन पूर्णिमाको महाराजके आबू जानेकी सब सामग्री उपस्थित हो गई। दिनके तीसरे पहर श्रीमन्महाराजा यशवन्तसिंहजी तथा महाराजा श्रीप्रताप-सिंहजी स्वामीजीको बिदा करनेके लिए आये। महाराज उस समय पलंगपर पड़े हुए थे। उनके पास ही कुर्सीपर श्रीमन्महाराजा महाशय बैठ गये। महा-राज, नरेशोंसे हर्ष-पूर्वक वार्त्तालाप करते रहे।

अश्वारोही सैनिक और रथादि सब आगये। महाराजके लिए एक विशेष

पालकी आई। उसमें खसकी टट्टियाँ लगी हुई थीं। एक पंखा भी था। सोलह कहार पालकीको उठानेके लिए थे। एक नौकर इस कार्य्यपर नियत हुआ कि मार्गमें उस पंखेको खींचता चले। भगवान् बंगलेकी छतपर निवास करते थे। प्रेमीजन उनको हाथोंपर उठाकर धीरे धीरे नीचे ले आए। जब वे महाराजकी अतिकृश कायाको पालकीमें रखने लगे तो श्रीमन्महाराजा यशवन्तसिंहजीने भी दोनों हाथोंसे सहायता देकर, अपने आर्योचित आचार और प्रेमका पूर्ण परिचय दिया। महाराजा महाशयने भक्ति-भावके साथ अपने बाँधनेकी फलालेनकी विशेष पेटी, भगवान्‌की कमरके साथ अपने कोमल हाथोंसे बाँध दी। इससे यात्रामें कष्ट बहुत थोड़ा होता है। भगवान्‌की पालकीके साथ साथ पैदल चलते हुए वे उद्यान-द्वार तक आये। वहाँ पालकी ठहर गइ। उस समय श्रीमन्महाराजा यशवन्तसिंहजीने श्रीमहाराजा प्रतापसिंह सहित श्रीचरणोंको छूकर नम्र नमस्कार की। तत्पश्चात् हाथ जोड़कर प्रार्थना की, भगवन् आप ऐसी दशामें यहाँसे जा रहे हैं; इसका मुझे अतीव दुःख है। आपकी कायाके इस उत्कृष्ट कष्ट क्लेशको मैं अपने ऊपर, एक प्रकारका कलंक ही मानता हूं। यदि पूज्यपाद, पूर्ण आरोग्य प्राप्त करनेके उपरान्त यहाँसे प्रस्थान करते तो मुझे अपार प्रसन्नता उपलब्ध होती। शोक! मेरे मनके मनोरथ मनही मनमें रह गये। यह शब्द कहते कहते उनका जी भी भर आया।

भगवान्‌ने अपने प्रेमी महाराजको आश्वासन देते हुए कहा, कि राजन् कोई चिन्ता न कीजिए। ईश्वरके ज्ञानमें जो कुछ होना नियत है, उस ललाट लेखमें मीन-मेख करनेकी शशि किसीमें भी नहीं है। रोग तो देहके साथ धूप और छायाकी भाँति लगे ही रहते हैं। इस सप्त धातुमय भौतिक भवनमें विकारका उत्पन्न हो जाना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। आप शोक न कीजिए। मैं आप लोगोंके प्रेम-सत्कारसे अतीव प्रसन्न हूं। मुझे आप अपना पूर्ण हितेच्छु जानिए।"

अन्तमें फिर श्रीमन्महाराजने श्री स्वामीजीको नमस्कार की और उदासीन-

तासे वहाँसे राजभवनको लौटे। दूसरे भी अनेक सज्जन उस समय वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने भी श्री चरणोंको स्पर्श करके अपने अहोभाग्य समझे। राजाज्ञासे डाक्टर सूर्य्यमल महाराजके साथ ही गये। आबू पर्वतपर भी, जोधपुरके राजनिवास के अध्यक्षको स्वामीजीके वहाँ जानेकी सूचना तार-द्वारा कर दी गई।

पांचवाँ सर्ग।

महाराज सायंकाल वहाँसे चले। सारी रात चलकर सवेरे रोपट पहुंचे। वहां आठ पहर तक निवास किया। उसके अगले दिन पालीमें आ गये। वहां रात्रि-निवास किया और फिर रेलवेमें बैठकर खारचीमें जा उतरे। वहाँ कुछ दिन विश्राम लेकर फिर रेलवेमें बैठ गये और कार्त्तिक कृष्णा ६ सम्वत् १९४० को प्रातः पांच बजे आबू-रोड नामके स्टेशनपर जा पहुंचे।

भगवान्की पालकी जिस समय आबू पर्वत पर धीरे धीरे आरोहण कर रही थी तो मार्गहीमें पंजाब प्रान्तके अतिशय पुण्यवान् सुपुत्र, डाक्टर लक्ष्मण दासने प्रभुके दर्शन पाये। यह भाग्यवान् भक्त जिला शाहपुरके अन्तर्गत भेरा नगरका निवासी था। अपने प्रान्तके सुलभ स्वभावसे उसने झुककर श्रीचरण-बन्दना की और फिर उनकी नाड़ीको देखना आरम्भ किया। वह चतुर वैद्य भगवान्की कष्ट-कथा सुन और नाड़ी देखकर अति व्याकुल हो गया। भगवान् ने उसे इतना ही कहा कि इस समय कुछ ही कष्ट है। परन्तु उनकी दशाको देखकर भक्तराज वैद्यकी काया कांप उठी। उनका चित्त चञ्चल हो उठा।

उस समय डाक्टर लक्ष्मणदास अजमेर जा रहे थे परन्तु उनका कलेजा इतना भर आया कि वे आबू-मार्ग स्टेशनकी ओर एक डग भी न उठा सके, और महाराजके साथ साथ ही लौट पड़े।

महाराजको कोई पन्द्रह दिनसे हिचकियोंका उपद्रव सता रहा था। उनके वेगसे सारी अंतड़ियां तनी जाती थीं। सम्पूर्ण तनमें ऐंठनसी हो रही थी। उदर तो वार वारकी खींचसे हाथ लगानेपर भी दुखता था। परन्तु प्रेमी लक्ष्मणदासजीकी चिकित्सासे यह उपद्रव दूसरे ही दिन दूर हो गया। अतिसार भी बंद हो गये।

इतने चिरकी दारुण वेदना झेलते हुए भगवान्‌को एकही भक्त, राजवैद्य मिला था परन्तु भवितव्यताने उसे भी उनके पाससे ढकेल दिया। भावीको यह नहीं भाता था कि आर्योंका सौभाग्य सूर्य्य, अभागे भारतभू-भाग पर कुछ काल और चमककर, उसकी निविड़-तमोराशिका सर्वनाश करे। कार्त्तिक कृष्णा अष्टमीको डाक्टर लक्ष्मणदासको ऊपरके अधिकारीकी आज्ञा हुई कि आप तुरन्त अजमेर चले जाइए। भक्त लक्ष्मणने अपने अधिकारीके आगे अति विनय-अनुनय की। गुरुमहाराजकी शोचनीय दशाका दृश्य उपस्थित किया परन्तु उसने एक न सुनी, उनकी अति दीनताकी प्रार्थनापर कर्णपात तक न किया। अन्तमें भक्त लक्ष्मणने जब देखा कि उनका अधिकारी किसी प्रकार भी माननेमें नहीं आता, उसका हृदय किंचित् भी नहीं पसीजता तो उन्होंने राजनौकरीसे त्याग पत्र तक दे दिया।

भक्त लक्ष्मणके अमर आत्मा तू धन्य है। तेरा परम त्याग तेरी उच्चताका परिचायक है। तूने वही काम कर दिखलाया जिसकी किसी आर्य्य जननीके जायेसे आशा की जा सकती है। तूने अपने नामको भक्तोंकी मालामें एक बहुमूल्य मणि बनाकर अमर कर दिया है।

भक्त लक्ष्मणने भक्ति-भावसे प्रेरित होकर त्याग-पत्र तो दे दिया परन्तु कर्मकी गति मतिसे हठीला अधिकारी अधिक अकड़ गया। उसने कठोर हृदयसे, निकली हुई, कड़ी आज्ञाके हाथों द्वारा भक्त लक्ष्मणको झपट कर श्री सेवासे छीन लिया। बलात्कारसे, विवश करके उसे आबूपरसे अजमेरको पटक दिया।

भक्त लक्ष्मण पर्वत शिखरसे उतर तो रहा था सही परन्तु केवल कलेवर

से, शून्य हृदयसे, जलते कलेजेसे और भरे हुए जीसे। उसका मन-भ्रमर तो श्री चरणोंके चहुं ओर चक्कर लगाकर उनकी परिक्रमाका परम पुण्य उपार्जन कर रहा था। मार्गमें आते हुए भक्तकी हृदय-सतारके तारने कई बार इस स्वरका झंकार किया—'पराधीन सपने सुख नाहीं।'

आबूसे नीचे आते समय, भक्त लक्ष्मणको कई आर्य्य पुरुष ऊपर जाते मिले। उन्होंने भक्तराजको पहचानकर, उससे भगवान्का समाचार उतनी ही आतुरतासे पूछा, जितनीसे पाण्डु-पुत्रने श्रीकृष्णका ऊधवजीसे पूछा था। भक्तने अनर्गल आँसू बहाते हुए कहा,"भगवानकी अवस्था अतीव शोचनीय है। निर्बलता परले पारकी बढ़ गई है। उनके कण्ठमें, जीभपर, मुखमें, माथे और सिर पर छाले पड़ गए हैं। पानीका घूंट भी बड़ी कठिनतासे गलेसे नीचे उतरता है। इस महाघोर अन्धकारमें, निपट हताशाकी निशामें, उदासीनताके गहरे सागरमें आशाकी केवल यही एक झीनी रेखा चमकती है कि महाराजकी चेतना ठीक है। उनकी आत्मा स्वस्थ है। हाय! मैं क्या करूँ, पराधीन हूं, विवश हूं। ऐसे समयमें अकिञ्चित्कर हो गया हूं, परन्तु पीछे महाराजके लिए औषधादि लिख आया हूं।"

भक्त लक्ष्मणने फिर कहा, आप लोग भगवान्को किसी प्रकार अजमेर ले आयें तो बहुत ही अच्छा हो। उनको अजमेर लानेके लिए पूरा प्रयत्न कीजिएगा। इसीमें अब कुछ हो सकता है।" भक्तराज इतना निवेदन करके रुमालसे आँखें पोंछते हुए आबू-मार्ग स्टेशनको चल पड़े। श्री दर्शनार्थी आर्य्य जन आँसुओंसे सड़कको सींचते हुए पर्वतारोहण करने लगे।

ठाकुर भूपालसिंहजी स्वामीजीके साथ जोधपुरमें भी थे। आपने उनकी सेवामें रात दिन कुछ नहीं देखा। यद्यपि आप जिला अलीगढ़के भूमिहार ठाकुरोंमेंसे एक प्रतिष्ठित ठाकुर थे परन्तु उन्होंने महाराजकी उलटियोंको अपने हाथसे उठाकर दूर बाहर फेंका। वे महाराजका मूत्रपुरीष तक उठाते रहे। अपनी गोदमें उठाकर उनको शौच-स्थानमें ले जाते। कई बार उनके

हाथोंपर ही अतिसार हो गए। वे उनके मलमूत्रके वस्त्रोंको भी धोते जो भी गुरु-सेवा कोई आदर्श सेवक कर सकता है वह ठाकुर महाशयने की और रातों जागकर की।

प्रशंसित ठाकुर महाशय तो श्री सेवामें थे ही, मेरठसे महाशय लक्ष्मण स्वरूपजी, फरुखाबादसे लाला शिवदयाल और मुम्बईसे सेवक लाल कृष्णदास आदि अनेक भक्तजन आबूपर आ पहुंचे।

आबूके तार-घरके कर्मचारियोंको उन दिनोंमें आँखें झपकना भी नहीं मिलता था। पल पलमें इतने तार आते थे कि किसीको सिर खुजलाने तकका अवकाश न था। आर्य्योंकी व्यस्ततावेगके निरन्तर आने वाले तार उस तार घरको धुआँ धार कर रहे थे। सभी कर्मचारी कहते थे कि इतने तार पहले वहाँ कभी नहीं आये।

भगवत्पाद-पद्मोंमें महाराजा श्री प्रतापसिंहजीकी भक्ति अपार थी। वे अनन्य मनसे उनके सेवक थे। उनके आबूपर आनेके दो तीन दिन पश्चात् ही वे वहाँ गये और श्रीचरण चुम्बनकरके पीछे लौट आये। महाराजके निवासादिका भी वे पूरा प्रबन्ध कर गये।

स्वामीजी तो आबूपरही रहना चाहते थे, परन्तु प्रेमीजन रातदिन प्रार्थना करते कि प्रभो, अजमेरमें पधारिये। वहीं यथायोग्य रीतिसे औषधोपचार हो सकेगा। वहाँ श्री चरणोंके एक निष्ठावान् सेवक डाक्टर श्री लक्ष्मणदासजी विद्यमान् हैं।

भक्तोंके अत्याग्रह-वश भगवान् कार्तिक कृष्णा एकादशीको अजमेरको चल पड़े। अजमेर स्टेशन पर उस दिन आर्य्य पुरुषोंकी एक भारी भीड़ लगी हुई थी। गाड़ी आनेपर, जब चार पाँच मनुष्योंने स्वामीजीको अपने हाथोंपर उठा-कर नीचे उतारा तो आर्य्य जनोंके हृदय व्याकुलतासे चूर चूर हो गये। उनके लिए पहलेसे ही एक कोठी नियत की हुई थी। वहाँ ले जाकर उन्होंने महा-राजकी अतिकृश कायाको पलंगपर लिटा दिया।

कार्तिक कृष्णा द्वादशीसे फिर डाक्टर लक्ष्मणदासजीकी औषधि आरम्भ

हो गई। भक्त लक्ष्मणदास नियत समयपर बदल बदलकर औषधि देते, आप भी अधिक समय वहाँ रहते परन्तु सभी प्रयत्न निष्फल जाते थे। कोई भी औषधि लगती न थी। पल पल, घड़ी घड़ी और दिन दिनमें महारोग भीषणाकार होता चला गया। इससे सबकी चित्त-भित्तियोंपर निराशा और चिन्ताके चिन्ह चित्रित होते जाते थे। कार्तिक कृष्णा त्रयोदशीको पण्डित भागरामजी भी दर्शनोंके लिए आये। महाराजने उनको अति धीमी ध्वनिसे कुशल प्रश्न किया। उन्होंने निवेदन किया कि भगवन्, आपकी कृपासे मैं तो अच्छा हूं परन्तु श्री भगवानको इस दशामें देखकर हृदय विदीर्ण हुआ जाता है। भगवान्, भक्त भागरामकी ओर गम्भीर भावसे देर तक देखते रहे। अन्तमें पण्डितजी न्यायालयको चले गये।

उसी दिन लाहौरसे लाला जीवनदास और पण्डित गुरुदत्तजी वहाँ पहुंचे। नम्र नमस्कार करके लालाजी पलङ्गके पायतानेकी ओर बैठ गये, महाराजने उनको आँख खोलकर देखा। फिर उनको हाथसे पकड़ अपनी ओर खींचकर लाहौरकी सामाजिक सृष्टिका सुख-समाचार पूछा। उसी समय लालाजीने पण्डित श्री गुरुदत्तका परिचय कराया। पण्डित महाशयने, उठकर बड़ी विनीततासे, श्रीचरण छूकर नमस्कार की।

श्रीमन्महाराणा सज्जन-सिंहजीने, उदयपुरसे, पण्ड्या मोहनलालजीको पूज्यपादजीका कुशल-समाचार पूछनेके लिए भेजा। पण्ड्याजीने जब आकर देखा कि उनके फेफड़े काश-श्वाससे धौंकनीकी भाँति धौंक रहे हैं, अन्तकालीन वेदनासे उनका बदन व्यथित हो गया है, उनकी परिपुष्ट काया अब अस्थि-पिंजरावशेष यष्टि बन गई है, और उनके जीवन-स्रोतके सामने उसे शोषण करनेके लिए मृत्युकी महामरुस्थली आपड़ी है तो वे पाँवके तलुओंसे सिरकी चुटिया तक थरथर काँप गये। एकाएक उनका सिर चकरा गया, जी घटने लगा और आँखोंके आगे अन्धेरा छा गया। अन्तमें उन्होंने कलेजा थामकर चरण-वन्दना की और बताया कि 'श्रीमहाराणाजी आपकी व्याधिका वृत्त जानकर अति

चिन्तित हो रहे हैं। वे रातदिन आपका स्वास्थ्य समाचार जाननेकी प्रतीक्षा करते रहते हैं। महाराज आज आपकी परोपकार-मूर्तिकी, यह अवस्था देखकर मैं भी अति अधीर हो रहा हूं। भगवन्, भारत भूमिके शुभभाग्य-प्रभातको आहूत करनेके लिए, आप ऐसे भारत-भक्तोंकी, अभी बड़ी भारी आवश्यकता है। ये हमारे, हमारी जातिके और हमारे देशके दुर्दिन हैं जो आपकी दया पूर्ण देह इस दुःखद दशामें आ पड़ी है।"

महाराजने कहा, "पण्ड्याजी, खेदसे खिन्न न हूजिए। अब विधाताकी ऐसी ही इच्छा है। देहका बनना और बिगाड़ना तो, पानीके बुद्‌बुदे और सागर तरङ्गकी भाँति होता ही रहता है। यह मर्त्यलोक मरणाभिमुख है। कोई अन होनी होने लगे तो उसका कोई शोक भी करे, परन्तु मिलकर टूटना, बनकर बिगड़ना, होकर न रहना, जन्म कर मर जाना तो जगतका अवश्यम्भावी नियम है। इसके लिए सोचना नहीं चाहिए।"

कार्त्तिक कृष्णा १४ को महाराजके शरीरपर नाभितक छाले पड़ गये थे। उनका जी घबराता था। गला बैठ गया था। श्वास-प्रश्वासके वेगसे उनकी नस नस हिल जाती थी। सारी देहमें दाहसी लगी हुई थी। परन्तु वे नेत्र मूंदकर ब्रह्म ध्यानमें वृति चढ़ाये हुए थे। अजान लोग उनकी इस ध्यानावस्थाको मूर्छा मान लेते थे। जब शरीर अपने व्यापारसे शिथिल हो जाय और बोलने आदिकी शक्ति भी मन्द पड़ जाय तो सभी सन्तजन मनोवृत्तियोंको मूर्छित करके निमग्नावस्थामें चले जाया करते हैं।

कार्त्तिक अमावस्या मङ्गलवार, दीप मालाके दिन, सवेरे, विदेशी बड़ा डाक्टर न्यूटन महाशय आया। उसने उनके-रोग-भोगकी अवस्था देखकर आश्चर्यसे कहा कि ये बड़े साहसिक और सहनशील हैं। इनकी नस नस और रोम रोममें रोगका विषैला कीड़ा घुसकर कुलबुलाहट कर रहाहै परन्तु ये प्रशान्तचित्त हैं। इनके तन पिंजरको महाव्याधिकी ज्वाला-जलन जलाये चली जाती है जिसे दूरसे देखतेही कँपकपी छूटने लगती है। पर ये हैं कि चुपचाप

चारपाई पर पड़े हैं। हिलने डुलने तक नहीं। ऐसे रोगमें जीते रहना इन्हींका काम है। भक्त लक्ष्मणदासने उनसे कहा कि महाशय ये महापुरुष स्वामी दयानन्दजी हैं।

यह सुनकर डाक्टर महाशयको अत्यधिक शोक हुआ। महाराजने उस बड़े वैद्यसे प्रश्नोंका उत्तर संकेत-मात्रसे दिया। एक मुसलमान वैद्य, पीरजी, बड़े प्रसिद्ध थे। वे भी उनको देखने आये। उन्होंने आतेही कह दिया-'इनको किसी कुलकण्टकने कालकूट विष देकर अपनी आत्माको कालिख लगाई है। इनकी देह-पर सारे चिन्ह विष-प्रयोग-जन्य ही दिखाई देते हैं'। पीर जीने भी महाराजका सहन-सामर्थ्य देख दांतोमें उङ्गली दबाते हुए कहा, धैर्यका ऐसा धनी, धरणी-तलपर हमने दूसरा नहीं देखा'।

इस प्रकार राजवैद्यों और भक्तजनोंके आते जाते दिनके ग्यारह बजने लगे। रोगीका साँस अधिक फूलने लगा। वे हाँपते तो बहुत थे परन्तु बोलनेकी शक्ति कुछ लौट आई थी। उनका कण्ठ खुल गया था। इससे प्रेमियोंके मुखमण्ड-लोंपर प्रसन्नताकी रेखा खेलने लगी परन्तु पीछे जाकर उन्हें पता लगा कि वह तो दीपक-निर्वाणकी अन्तिम प्रदीप्ति थी। सूर्य्यास्तका उजेला था।

महाराजने उस समय शौच होनेकी इच्छा प्रकट की। चार भक्तोंने उन्हें हाथोंपर उठाकर शौच होनेकी चौकी पर बिठादिया। निवृत्त होकर वे फिर भली भांति शुद्ध हुए और आसनपर विराजमान हो गये।

उस समय श्री स्वामीजीने कहा कि आज इच्छानुकूल भोजन बनाइए। भक्तोंने समझा कि भगवान् आज अपेक्षाकृत कुछ स्वस्थ हैं इस लिए अन्न ग्रहण करना चाहते हैं। वे थाल लगाकर श्रीमहाराजके सामने ले आये। स्वामीजीने टुक देखकर कहा कि अच्छा, इसे ले जाइए अन्तमें प्रेमियोंकी प्रार्थनापर उन्होंने चनोंके झोलका एक चमचा ले लिया फिर हाथ मुँह धोकर भक्तोंके सहारे वे पलंगपर आ गये।

शरीरकी वेदना बराबर ज्योंकी त्यों बनी हुई थी। श्वास रोगका उपद्रव

पूरे प्रकोपपर पहुंच चुका था। पर वे शिष्य-मण्डलीसे वार्त्तालाप करते और कहते थे कि एक मासके अनन्तर आज स्वास्थ्य कुछ ठीक हुआ है। बीच बीचमें जब वेदनाका वेग कुछ तीव्र हो जाता तो वे आँखें बन्दकर मौन हो जाते। उस समय उनकी वृत्ति स्थूल शरीरका सम्बन्ध छोड़ देती—आत्माकारताको लाभ कर लेती।

इसी प्रकार पल विपल बीतते साँझके चार बजनेको आये। भगवान्ने नाईको बुलाकर क्षौर करनेको कहा। लोगोंने निवेदन किया कि भगवन् उस्तरा न फिराइए। छाले फुंसियाँ कटकर लहू बहने लगेगा, परन्तु उन्होंने कहा कि इसकी कोई चिन्ता नहीं है। क्षौर कराकर उन्होंने नख उतरवाए। फिर गीले तौलियेसे सिरको पोंछकर सिरहानेके सहारे पलङ्गपर बैठ गये।

उस समय श्रीमहाराजने आत्मानन्दजीको प्रेमसे आहूत किया। जब आत्मानन्दजी हाथ जोड़कर सामने आ खड़े हुए तो कहा—वत्स, मेरे पीछे बैठ जाओ। गुरुदेवका आदेश पाकर वे सिरहानेकी ओर, तकियेके पास, प्रभुकी पीठ थामकर विनयसे बैठ गये।

महाराजने अतीव वत्सलतासे कहा—वत्स, आत्मानन्द, आप इस समय क्या चाहते हैं? गुरु महाराजके बचन सुनकर आत्मानन्दजीका हृदय भर आया। उनकी आँखोंसे एका एक आँसुओंकी लड़ी टूट पड़ी। गद्गद् गलेसे आत्मानन्दजी नम्रीभूत निवेदन किया कि 'यह तुच्छ सेवक रात दिन यही प्रार्थना करता है कि परमेश्वर अपनी अपार कृपासे श्री चरणोंको पूर्ण स्वास्थ्य प्रदान करे। इसे इससे बढ़कर त्रिभुवन भरमें दूसरी कोई वस्तु प्रिय नहीं है।

महाराजने हाथ बढ़ाकर आत्मानन्दजीके मस्तकपर रक्खा और कहा—वत्स इस नाशवान् क्षणभंगुर शरीरको कितने दिन स्वस्थ रहना है। बेटा अपने कर्तव्य कर्मको पालन करते आनन्दसे रहना। घबराना नहीं। संसारमें संयोग और वियोगका होना स्वाभाविक है।

महाराजके इन बचनोंको सुनकर आत्मानन्दजी सिसककर रोने लगे। गुरु

वियोग-वेदना-को अति समीप खड़ा देखकर उनका जी शोक सागरके गहरे तलमें डूब गया।

गोपालगिरी नामके एक संन्यासी भी कुछ कालसे श्री चरण-शरणमें वास करते थे। महाराजने उनको आमन्त्रित करके कहा कि आपको कुछ चाहिए तो बता दीजिए। उन्होंने भी यही विनयकी कि भगवन्! हम लोग तो आपका कुशल-क्षेम ही चाहते हैं। हमें सांसारिक सुखकी कोई भी वस्तु नहीं चाहिए। फिर महाराजने दो सौ रुपये और दो दुशाले मँगाकर भीमसेनजी और आत्मानन्दजीको प्रदान किये। उन दोनोंने अश्रुधारा बहाते, भूमिपर सिर रखकर वे वस्तुयें लौटा दीं। वैद्यवर भक्तराज श्रीलक्ष्मण दासजीको भी भगवान् ने कुछ द्रव्य देना चाहा परन्तु उन्होंने द्रवीभूत हृदयसे कर जोड़कर लेनेसे इनकार कर दिया।

इस प्रकार अपने शिष्योंसे गुरु महाराजको बिदा होते देखकर, आर्यजनोंके चित्त की चञ्चलता और चिन्ताकी प्रचण्डता चरम सीमातक पहुंच गई। वे बड़ी व्याकुलतासे सामने आ खड़े हुए। उस समय, श्री स्वामीजी, अपने दोनों नेत्रोंकी ज्योति सब बन्धुओंके मुखमण्डलोंपर डालकर, एक नीरव पर अनिर्वचनीय स्नेह-संताप सहित, उनसे अन्तिम बिदाई लेने लगे। उनके प्रेम पूर्ण नेत्र, अपने पवित्र प्रेमके सुपात्रोंको धैर्य्य देते और ढाढस बँधाते प्रतीत होते थे महाराज प्रसन्न-चित्त थे। उनके मुखपर घबराहटका कोई भी चिन्ह परिलक्षित नहीं होता था।

परन्तु भक्त जनोंकी आशायें क्षण क्षणमें निराशा निशामें लीन हो रही थी। उनके उत्साहकी कोमल कलियोंके सुकोमल अङ्ग पल पलमें भङ्ग हुए चले जाते थे। वे गुरुदेवकी दैवी देहके देव-दुर्लभ दर्शन पा तो रहे थे परन्तु उनकी आंखों के आगे रह रह कर आंसुओंकी बदलियाँ आ जाती थीं। रुलाईका कुहरा छा जाता था। सर्वत्र निविड़ तमोराशिका राज्य दिखाई देने लगता था। वे जोको

कड़ा किये कलेजा पकड़ कर खड़े तो थे, परन्तु खोखले पेड़ और भुने हुए दाने की भाँति, मानो सत्व रहित थे।

ऐसी दशाहीमें सायंकालके पांच बजने लगे। उस समय एक भक्तने पूछा कि भगवान्, आपकी प्रकृति कैसी है? श्रीमहाराजने उत्तर दिया कि अच्छी है; प्रकाश और अन्धकारका भाव है। इन्हीं बातोंमें जब साढ़े पाँच बजे तो महाराजने सब द्वार खुलवा दिये भक्तोंका अपनी पीठके पीछे खड़े होनेको आदेश किया। फिर पूछा कि आज पक्ष, तिथि और वार कौनसा है। पण्ड्या मोहन लालने शिरोनत होकर निवेदन किया कि प्रभो, कार्तिक कृष्ण पक्षका पर्य्यवसान और शुक्लका प्रारम्भ है। अमावस्या और मङ्गलवार है।

तत्पश्चात् महाराजने अपनी दिव्य दृष्टिको उस कोठरीके चहुं ओर घुमाया और फिर गम्भीर ध्वनिसे वेद-पाठ करना आरम्भ कर दिया। उस समय उनके गलेमें, उनके स्वरमें, उनके उच्चारणमें, उनकी ध्वनिमें, उनके शब्दोंमें किञ्चिन्मात्र भी निर्बलता प्रतीत नहीं होती थी।

भगवान्के होनहार भक्त, पण्डित श्रीगुरुदत्तजी उस कमरेके एक कोनेमें भित्तिके साथ लगे हुए, भगवान्की भौतिक दशाके अन्तका अवलोकन कर रहे थे। टकटकी लगाये निर्निमेष नेत्रोंसे उनकी ओर देख रहे थे।

पण्डित महाशय उस धर्म्मावतारके दर्शन करने पहले पहल ही आये थे। उनके अन्तःकरणमें अभी आत्म-तत्त्वका अंकुर पूर्ण-रूपसे नहीं निकल पाया था। परन्तु श्रीमहाराजकी अन्तिम दशाको देखकर वे अपार आश्चर्यसे चकित हो गये। वे चौकसाई विचारसे देख रहे थे कि मरणासन्न महात्माके तन पर अगणित छाल फूट निकले हैं। उनको विषम वेदना व्यथित किये जाती है। उनकी देहको दावानल सदृश दाह-ज्वाला एक प्रकारसे दग्ध कर रही है। प्राणान्तकारी पीड़ा उनके सम्मुख उपस्थित है। परन्तु महात्मा शान्त बैठे हैं दुःख-क्लेशका नाम-निर्देशतक नहीं करते। उलटे गम्भीर गर्जनासे वेद-मन्त्र गा रहे हैं। उनका मुख प्रसन्न है। आँखें कमल सदृश खिल रही हैं उनका विमल भाल

अद्भुत आभासे चन्द्रमाके सदृश चमक रहा है। व्याधि मानों उनके लिए त्रिलोकीमें त्रयकाल, उत्पन्न ही नहीं हुई। यह सहनशीलता शरीरकी सर्वथा नहीं है। अवश्यमेव यह इनका आत्मिक बल है।

यह पहला पल था कि जिसमें महर्षिकी मृत्युकी अवस्था देखकर श्रीगुरुदत्त ऐसे धुरन्धर नास्तिकके हृदयकी उपजाऊ भूमिमें आत्मिक जीवनकी जड़ लग गई। इन भावोंकी विद्युत-रेखा चमकते ही वे सहसा चौंक पड़े। उन्होंने क्या देखा कि एक ओर तो परम धामको पधारने के लिए प्रभु परमहंस पलङ्ग पर बैठे प्रार्थना कर रहे हैं और दूसरी ओर वे, व्याख्यान देनेके वेशमें सुसज्जित, उसी कमरेकी छतके साथ लगे बैठे हैं। इस आत्म योगके प्रत्यक्ष प्रमाणको पाकर पण्डित महाशयका चित्त-स्फटिक, आस्तिक भावकी प्रभासे चम-चमा उठा। मानों एक ओरसे निकलती हुई ज्योति उनकी देहके दीपमें प्रवेश कर गई।

गुरुदत्त अपने गुप्त रीतिसे आत्मदाता गुरूदेवको फिर अतिशय श्रद्धासे देखने लगे। भगवान् वेद-गानके अनन्तर, परम-प्रीतिसे पुलकित-अंग होकर, संस्कृत शब्दोंमें परमात्मदेवकी प्रार्थना करने लगे। फिर आर्य्यभाषामें ईश्वर गुण गाते भक्तोंकी परम गति भगवती गायत्रीको जपने लगे। उस महामन्त्रके पुण्यपाठ को करते करते मौन हो गये। और चिरकालतक सुवर्णमयी मूर्त्तिकी भांति निश्चल रूपसे समाधिस्थ बैठे रहे। उस समय उनके स्वर्गीय मुख मण्डलके चारों ओर सुप्रसन्नता-प्रभातकी झलमलाहट पूर्ण-रूपसे झलमल कर रही थी।

समाधिकी उच्चतम भूमिसे उतर कर, भगवान्ने दोनों नेत्रोंके पलक-कपाट खोलकर, दिव्य ज्योतिका विस्तार करते हुए कहा —हे दयामय, हे सर्व शक्ति-मान् ईश्वर, तेरी यही इच्छा है! सचमुच, तेरी ही इच्छा है। परमात्मदेव तेरी इच्छा पूर्ण हो। अहा! मेरे परमेश्वर, तैंने अच्छी लीला की?"

इन शब्दोंका उच्चारण करते ही, ब्रह्मर्षिने आत्मिक प्राणको ब्रह्माण्डद्वारा परम धामको जानेके लिये स्वर्ग-सोपान पर आरूढ़ किया और तत्पश्चात्

पवन रूप प्राणको कुछ पलतक भीतर रोककर प्रणवनादके साथ बाहर निकाल दिया। उसे सूत्रात्मा वायुमें लीन कर दिया।

प्रभुके स्थूल प्राणके निकलनेके साथ ही उपस्थित सेवकोंकी अश्रु-धारायें अनर्गल हो गईं। अनाथ बालकोंकी भाँति, भक्तजनोंने रो रोकर कमरेकी भूमिको, भिगो दिया। उनके दुःखका, उनके क्लेशका, उनकी निराशाका, उनके शोकका, कोई पारावार न रहा। सबके हृदय इस दारुण दुःखसे विदीर्ण हो गये। वे बहुतेरा थामते पर उनका कलेजा बार बार मुंहको आता था। वे धैर्य्य धारण करनेकी चेष्टा भी करते पर चित्त चकनाचूर ही हुए चला जाता था। फूट फूटकर रोते उनकी आँखें फूल गईं। घिघियाँ बँध गईं। व्याकुलता वेगने उनको शोकके अति गहरे सागरमें डुबो दिया।

आर्त्त भारतके भाग्यका भानु, भगवान् दयानन्द, कार्त्तिक अमावस्या सम्वत् १९४० वैक्रमी, मंगलवारको सायंके छः बजे एकाएक, काल करालरूप अस्ताचलकी ओटमें हो गया। उस समय सूर्य्यदेव भी अस्त हो गये थे। तमोमयी महा तमिस्रा रजनी ज्यों ज्यों घोरतररूप धारण करती जाती थी त्यों त्यों अजमेरके तार-घरसे दौड़ते हुए तार आर्यसंसारमें निराशाकी, अति शोककी और असह्य विपत्ति वज्रपातकी घोरतम तमोराशिकी निपट निशाका विस्तार कर रहे थे।

महाराजके निर्वाणका अचानक समाचार पाकर आर्योंके चित्त चौंक पड़े, चञ्चल हो उठे; उनके सिरपर दुःखरूप पर्वत-शिखरका सहसा विनिपात हो गया। उस समय आर्यजनोंकी आँखें गङ्गा-यमुनाकी भाँति बड़े वेगसे वह रहीं थीं। उनके हृदय अस्त-व्यस्ततामें व्याकुल हो रहे थे। मन गहरे खेदकी खाईमें गिरकर खिन्नावस्थामें खण्ड खण्ड हुए जाते थे। उनकी आत्मायें इतनी अधीर हो गई थीं कि उनको एक एक पल द्रौपदीके चीरके समान दिखाई देता था और वह रात्रि काल-निशा सदृश जान पड़ती थी।

जिस प्रकार श्रीरामके वियोगसे भरतजी व्याकुल हो उठे थे और श्रीकृष्णके

निर्वाणपर ऊधवजी तथा पाण्डवोंने करुण-क्रन्दन किया था। उसी प्रकार भगवान् दयानन्दके स्वर्ग सिधारने पर आर्य समाजियोंमें अनवरत आर्त्त-नाद होने लगा। उनके मध्यान्हके सूर्यकी प्रखर किरणोंपर अकस्मात् काल-कालिमा छा गई। शरत्पूर्णिमाके शुभ्र ज्योत्स्ना-युक्त चन्द्रमापर पृथ्वीकी छाया पड़ गई। उनकी उन्नति और उदयके बाल रविको राहुने सहसा ग्रस लिया। हरित, भरित, पुष्पित और फलित आर्य समाज वाटिका पर परुष-पाषाणराशिको भी तुषार-रूपमें परिणत करनेवाला, भीषण तुषारपात हो गया। प्रसन्नतापर खिन्नताकी झलक आ गई। चारु प्रेम-प्रतिमा अकालहीमें सामनेसे उठा ली गई। उनकी सुविमल सुशीतल, सुवासित, सुकोमल चित्त-कलियोंको कालकी लूके झकोलेने जहाँ तहाँसे झुलस दिया। वे गुरु-वियोग व्यथासे विह्वल हो, बिलख बिलख कर रोदन करते थे।

आगामी दिनके समाचार पत्रोंने शोक-सूचक गहरी काली रेखा देकर अपने स्तम्भोंके स्तम्भ इस शोक-समाचार पर लिखे, जिससे पूर्वसे पश्चिम और उत्तरसे दक्षिण पर्यन्त भारतभरमें भगवान्के असामयिक स्वर्गारोहणका शोक छा गया। नगर नगरमें लोगोंने सभायें लगा कर इस अति भारी क्षति और धर्म्महानि पर आँसू बहाये। इस सार्वभौम शोकमें अमेरिका और यूरोप के देश भी सम्मिलित हुए।

कार्तिक शुक्ला प्रतिपदाको, प्रातःकाल भक्तजन भगवान्की जीवन-ज्योति बिहीन, निर्जीव देह-दीवटको उठा कर स्नान कराने लगे। वे चाहते थे कि महाराजके शरीरपर केवल सुशीतल जल ही पड़े परन्तु बलात्कारसे उनके आंसू बराबर, टपटप करके टपक पड़ते थे। स्नान करानेके उपरान्त महाराजकी देहको चन्दनादि सुगन्धित वस्तुओंसे चर्चित किया गया। फिर उसे बहुमूल्य वस्त्रोंमें वेष्टित करके, पलङ्गपर प्राण-त्याग आसनमें स्थापित किया गया। उस समय सैकड़ों मनुष्य उनके अन्तिम दर्शनोंको दौड़े आकर, अपने नेत्रोंकी सहस्र धाराओंसे उस कोठरीकी भूमिको भिगोते थे। वहाँ ऐसा प्रतीत होता था कि

आज यहाँ शोकके सातों सागर उमड़े पड़े हैं। जिस समय महाराजकी देहको उठानेके लिये भक्तजन विमान बनाने लगे तो पण्ड्या मोहन लालजीने भ्रातृ-मण्डलके सामने निवेदन किया कि 'श्रीमन्महाराणा श्री सज्जन सिंहजीने मुझे चलते समय आदेश किया था कि यदि हम लोगोंके दुर्भाग्यसे महाराजका शरीर छूट जाय, तो किसी प्रकार तीन चार दिन पर्यन्त उसका दाह-कर्म न किया जाय, जिससे मैं और उनके दूसरे शिष्य राजे महाराजे उनके अन्तिम दर्शन पा सकें, उनके दाह-कर्ममें सम्मिलित हो सकें। परन्तु प्रभुके उपस्थित प्रेमियोंने दाह कर्म उसी दिन कर देना ही उचित समझा। शिविका पुष्पों, कदली स्तम्भों और कोमल पत्तोंसे सुसज्जित की गई, दिनके दस बजे महाराजकी अरथी उठाई गई। उस समय सैकड़ों सज्जन नङ्गे पांव उसके पीछे चलते थे। राय भागराम भी नङ्गे पांव साथ थे। महाराजके, शिविकामें पड़े शवको पञ्जाबी सैनिक अपने बलिष्ठ कन्धोंपर उठाये वाहन कर रहे थे। रामानन्दजी और गोपालगिरिजी आदि आगे आगे वेद-पाठ करते चलते थे। अजमेर नगरके आगरा द्वारसे होते हुए बाजारों और चौकोंका उल्लङ्घन करते नगरसे बाहर दक्षिण भागमें शिविका पहुंचाई गई।

वेदी बननेमें कुछ देर जानकर पण्डित भागरामजीने आर्य्योंके डाँवाडोल मनोंको धैर्य बंधाते हुए स्वर्गीय स्वामीजीके गुण-कीर्तन किये। उनके उपकार बताये और स्वामीजीके उद्देश्योंकी परिपूर्तिके लिए स्वामीभक्तोंको प्रोत्साहन दिया। यद्यपि पण्डित महाशयका कण्ठ बीचमें बाष्पसे बारबार रुक जाता था, फिर भी उन्होंने यथा तथा करके अपना हार्द प्रकाशित कर ही दिया।

तत्पश्चात् रायबहादुर पण्डित सुन्दरलालजी कलेजेको कड़ा करके कथन करने लगे। परन्तु वे तो दो चार शब्दोंहीमें शोक-सागरमें डूब गये। उनके दोनों नेत्रोंसे बहते हुए अश्रुओंने उनके वक्ष-स्थलको गीला कर दिया उनका गला इतना रुक गया कि वे आगे कुछ भी न बोल सके।

बेदी बन जानेपर भक्त लोगोंने दो मन चन्दन और दस मन पीपलकी

समिधाओंसे चिता चयन की। अपने टूक टूक होते हृदयोंको थाम कर उन्होंने गुरुदेवके शवको उस अन्तिम शय्यापर शायी कर दिया। रामानन्द और आत्मानन्दजीने यथाविधि अग्न्याधान किया। अग्नि-स्पर्श होते ही घृतसिंचित चिता, ज्वाला-मालासे आवृत हो गई। उस दाह-कुण्डमें चार मन घी, पांच सेर कपूर एक सेर केसर और दो तोले कस्तूरी डाली गई। चरु और घृतकी पुष्कल आहुतियोंसे हुत श्री महाराजका शव प्रेमियोंके नीर भरे नेत्रोंसे देखते ही देखते अपने कारणोंमें लय हो गया। महाराजकी अमर आत्मा तो जागतिक ज्योतिमें पहिले ही लीन हो चुकी थी। सेवकोंने उनके शरीरको भी ज्योतिः शय्या पर आरूढ़ करके उसके तात्विकरूपमें पहुंचा दिया।

गुरु महाराजकी दुर्लभ देहका दाह-कर्म्म करनेके अनन्तर, अति शोकातुर आर्य्यजन नगरको लौट आये। उस दिन वे अपनेको निःसार और निसत्व समझते थे, प्रत्येक कार्य्यमें अनमनेसे हो रहे थे। अपने अति प्यारोंको भी देखकर उनको प्रसन्नता नहीं होती थी। उनको अपने देहके दीवटपर धरा हुआ मनका दीवा प्रसन्नताकी ज्योतिसे सर्वथा शून्य जान पड़ता था।

कार्त्तिक शुक्ला द्वितीयाको पण्ड्या मोहनलालजीने महाराजके स्वीकारपत्रके अनुसार उनकी सारी वस्तुओं पर अधिकार कर लिया और कागज-पत्रादि उदयपुर भेज दिये।

भगवान्की अस्थियोंको चयन करके, शाहपुराधीशके दिये उद्यानमें गाड़ दिया गया। यह उद्यान अन्नासागरके किनारे पुष्करकी सड़कपर है।

महाराजके निर्वाणके अनन्तर, कई दिनों तक सारे भारतियोंके मानस आकाशमें शोकका मेघमण्डल मण्डलाता रहा। भारत-भक्तोंके हृदयपर गहरी चोट आई। सुधारक दलका दहिना हाथ गिर गया। अबलाओंके पक्ष-पोषक दीन-दुर्बलोंके सहायक और अनाथोंको सनाथ करनेवाले मस्त योगीने अपनी काया, कन्दरा त्याग दी, पर्ण-कुटी छोड़ दी। वह एकाएक चुपकेसे स्वर्गधामको पधार गया। परन्तु उसकी फेरीका अलख नाद जनताके कानोंमें ज्योंका त्यों

गुंजता रहा। उसकी माधुरी मूर्ति आँखोंके सामने वैसीकी वैसीही फिरती रही।

कुछ कालतक तो आर्य्य-समाजोंके साथ सबने सहानुभूतिका प्रकाश किया। उनके गहरे घावपर मरहम-पट्टी की। परन्तु मत-मतान्तरोंकी ममता और अपनी अपनी अहन्ताके कारण बहुतसे मतवादी पुरुष इस पारिजातपादपपंक्तिको परि-रक्षण-रहित समझने लगे। इस नन्दनवनको महामालीके बिना उजड़ा हुआ मानने लगे। नगर नगर और ग्राम ग्राममें आर्य्योंका विरोध होने लगा। विच-क्षण विज्ञानियोंने, स्वामीजीके स्वर्गारोहणपर, आर्य्य-समाजके जीवन-दिन अपनी उङ्गलियोंपर गिन लिये। उन्होंने अनुमान कर लिया कि इस नौकाका न्याय और नीतिनिपुण नाविक इसे भँवरसे तो निकाल गया है परन्तु मझधार से बाहर नहीं कर सका। अब उस कुशल कर्णधारके बिना यह निपट अनाड़ि-योंके हाथ पड़कर आपही आप डूब जायगी।

आर्य्यसमाजियोंके हृदय, कई दिनों और मासोंतक डगमगाते रहे। उनके मनोंमें निराशाका राज्य बना रहा। उनके चित्तोंका उत्साह भग्न हो गया उनके साहसको, कहीं ठौर ठिकाना न रहा। वे अपनेको जहाँ तहाँ निस्सहाय और निरवलम्ब पाते थे। परन्तु थोड़ेही मासोंके अनन्तर आर्य्योंकी आशालतामें लाल ताम्र वर्ण, सुकोमल कोंपल निकल आई उनकी सेवक-सेनाके सुचतुर संचालक सेनापतिका काम करने लग गये। वे जगद्गुरुकी जगाई जोतको जी-जीवनसे बचाये रखनेमें प्रयत्नशील हो गये।

जैसे भूमण्डल भरको भयभीत करने वाले, भारी भूकम्पसे समुद्र कुछ पीछे हटकर फिर चौगुने बलसे आगे बढ़ता है, उसी प्रकार भारी निराशा के अनन्तर आर्य्यसमाजियोंका उत्साह सागर और प्रबलतासे उछल उछलकर ऊँचे किनारों परसे भी पार होने लगा। नगर और ग्राम ग्राममें धर्म्म ध्वनिकी गूंज सुनाई देने लगी। उनकी धर्म्म-प्रचारको तत्परताने, सुधारकी अनोखी लगनने, धर्म्म-चर्चाके विचित्र चातुर्य्यने, शास्त्रार्थोंके निर्भय भावने देखनेवालोंकी आँखोंमें चका-चौंध लगादी। आर्योंका 'नमस्ते' का मधुर नाद उस समय मनोमोहन महा-

मन्त्र था। इसको सुनते ही आर्य्यजनकी छाती प्रेमसे उछलने लगती। वह आगन्तुकके मुखसे यह मन्त्र सुनकर उसे गले लगा लेता। उसे, उसके नाम-धामकी पूछताछ की भी आवश्यकता न रहती ! इस महामन्त्रके पुण्य पाठहीसे परम विश्वासका प्रकाश हो जाता। भेद-भावना मिटाकर, भ्रातृ-भावके सूत्रमें, मनोंके मनके पिरोनेके लिए इस महामन्त्रका मुखसे उच्चारण करनाही पर्याप्त समझा जाता।

उस समय मिलापमें एक अनुपम माधुर्य्य आ गया था। संहति और संघका बड़ा महत्व माना जाता था, लोगोंमें नया पुरुषार्थ, नूतन प्रेम, नवीन जीवन नव उद्योग और लगन उत्पन्न होगई। जैसे आकाशमें धमा चौकड़ी मचा-नेवाला मेघमण्डल वर्षामें हिमालयपर बरसकर, कार्तिक मासमें सर्वथा शान्त हो जाता है और नील नभमें उसकी एक टुकड़ी भी दिखाई नहीं देती। परन्तु वही मेघमाला समूह, उस गिरिराजके अनेक अङ्गोंमेंसे नदियोंके रूपमें, नालोंके आकारमें छोटी कूलोंकी आकृतिमें, झरझर झरते झरनोंकी कायामें, टप टप टपकते बिन्दुओंके वेशमें, स्रोतोंके स्वरूपमें अवतार-धारण करके अनेक मार्गोंसे बहकर, भारतके नाना भू-भागोंको हरा भरा करने लगता है, वनोंके दावानल तकको शान्त कर देता है। उसी प्रकार, महर्षि धर्म-मेघ बन कर बरसों निर-न्तर वर्षा करते रहे और अन्तको कार्तिक मासहीमें शान्त हो गये, परन्तु उनके भावोंके जीवनांश, आर्य्य वीरोंका अवतार-धारण कर देशदेशान्तरोंमें विविध प्रकारसे धर्म्म-प्रसाद बाँटने लगे।

उस समय छोटा बड़ा, जिसे भी देखो, दयानन्दके जीवनांशसे सजीव हो रहा था। उसके भालपर वैसी ही निर्भयता थी, वचनोंमें वैसा ही ओज था। उसकी आँखोंमें दयानन्दी तेज चमकता था। उसके मनमें दयानन्दी उमङ्गके ऊँचे तरङ्ग उठते थे। उसके हृदयमें दयानन्दी उच्चभिलाषाका विकाश झलकता और उसके कर्म्मोंमें उस कर्म योगीकी क्रियाका कौशल प्रकाशित होता था।

उन दिनों जहाँ जाओ वहाँ आर्य्य बन्धुओंमें देश-हितके गीत गाये जाते

एकता देवीके पाठ सुनाई देते, सामाजिक संशोधनके सूत्र सङ्गठित होते और परमात्मदेवका यश-वर्णन किया जाता। उस समय आर्य्योंके मनोंमें आर्य्यों-के घरोंमें, आर्य्यों की मण्डलियोंमें, आर्य्यों के मन्दिरोंमें आर्य्यों के महोत्सवोंमें जहां देखो, सर्वत्र वेद-प्रचार था, ईश्वर-विचार था, शिक्षा-विस्तार था, सामा-जिक सुधार था, और आनन्द कन्द भगवान् दयानन्दके पावन प्रकाशका जय जयकार था।

॥ समाप्तम् ॥